

वसिष्ठ ऋषिका दर्शन

(ऋग्वेदका सप्तममण्डल तथा अथर्ववेदके मन्त्र)

लेखक

पं० श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर

अध्यक्ष—स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम'

किल्ला-पारडी, (जि. सूरत)

संवत् २००८; सन १९५२

मूल्य ७) रु.

वसिष्ठ ऋषिका संदेश

ऐसा वीर हो

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्व सनिता धनानि ।
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळ्हः साह्वान् पृतनासु शत्रून् ॥

ऋ० ९।९०।३

(शूरग्रामः) शूरवीरोंका संघ बनानेवाला, (सर्ववीरः) सब प्रकारके वीरोंको अपने पास रखनेवाला, (सहावान्) शत्रुका पराभव करनेवाला, (जेता) विजयी, (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण आयुधोंको धारण करनेवाला, (क्षिप्रधन्वा) शीघ्र धनुष्य चलानेवाला, (समत्सु असाळ्हः) युद्धोंमें शत्रुके लिये आजिंक्य, (पृतनासु शत्रून् साह्वान्) युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करनेवाला, (धनानां सनिता) धनोंका दान करनेवाला ऐसा वीर तुम बनो और सबको (पवस्व) पवित्र करो।

मुद्रक तथा प्रकाशक
व. श्री. सातवलेकर, बी. ए.
भारत-मुद्रणालय, आनन्दाश्रम, किल्ला-पारडी (जि. सूरत)



वसिष्ठका मण्डल

ऋग्वेदका सप्तम मण्डल '**वसिष्ठ मण्डल**' करके प्रसिद्ध है। इसमें १०४ सूक्त हैं और ८४१ मंत्र हैं। इसके अतिरिक्त ऋग्वेदमें वासिष्ठमंत्र हैं। वे अष्टम मण्डलके (८।८७) सतासीवे सूक्तमें ६ मंत्र हैं और नवम मण्डल–सोममण्डलमें ५३ मंत्र है (सूक्त ६७।१९–३२ और ९०।१–६ तथा ९७।१–३०; १०८।१४–१६)। ऋग्वेदके १०।१३७।७ वाँ एक मंत्र है। और अथर्ववेदमें ४४ मंत्र हैं। इस तरह कुल मंत्र ९४५ हुए। इनके अतिरिक्त यजुर्वेदमें तथा ब्राह्मणग्रंथोंमें थोडेसे वासिष्ठ मंत्र होंगे, परंतु उनका संग्रह यहां किया नहीं है।

ऋग्वेदके द्वितीय मण्डलसे पाहिले छ मण्डल सप्तऋषियोंके मुख्यतः हैं (मण्डल २) गृत्समद, (३) विश्वामित्र, (४) वामदेव, (५) अत्रि, (६) भरद्वाज, (७) वासिष्ठ ये बडे ऋषि हैं। प्रथम मण्डलमें शतर्चीं ऋषि हैं। दशम मण्डलमें छोटे छोटे अनेक ऋषि हैं। नवम मंडल सोमदेवताका है और अष्टम मंडल भी फुटकर छोटे सूक्तवाले ऋषियोंका है। इन सबमें मुख्य और प्राचीन अर्थात् माननीय ऋषि वासिष्ठ हैं। इसलिये इसका मण्डल प्रथम प्रकाशित किया है।

विश्वामित्र राजा था। वह ब्राह्मण होनेकी इच्छा करके तपस्या करने लगा। उसको ब्राह्मण पदके घोषणा करनेका प्रश्न वसिष्ठका था, क्योंकि उस समयके ब्राह्मण समुदायमें वसिष्ठ ऋषि मुख्य थे। वसिष्ठने विश्वामित्रको ब्राह्मण मान लिया, तो सब लोग उसको ब्राह्मण मानने लगे इतना महत्त्व वसिष्ठका था।

नवीन स्तोत्र

नवीन स्तोत्र करता हूं ऐसा वसिष्ठमंत्रोंमें निम्नलिखित मंत्रोंमें है—

८५ **इदं वचः... अग्नये ऊढ्... अजनिष्ट।** ऋ० ७।८।६ यह स्तोत्र अग्निके लिये बनाया है।

१०५ **अग्ने! त्वां वर्धन्ति मतिभिः वसिष्ठाः।** ऋ० ७।१२।३ हे अग्ने! वसिष्ठ लोग अपने स्तोत्रोंसे तेरा वर्णन करते हैं।

१५० **वसिष्ठः ब्रह्माणि उपससृजे।** ऋ. ७।१८।४ वसिष्ठ स्तोत्रोंको निर्माण करता रहा।

२१० **हे इन्द्र! ये च पूर्वे ऋषयो ये च नूत्ना ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः।** ऋ० ७।२२।९।— हे इन्द्र! जो प्राचीन ऋषि और जो अर्वाचीन विप्र स्तोत्र करते हैं।

२४५ **उप ब्रह्माणि शृणव इमा नः।** ऋ० ७।२९।२ ये हमारे स्तोत्र श्रवण कर।

२४७ **येषां पूर्वेषां अशृणोः ऋषीणां।** ऋ० ७।२९।४ जिन प्राचीन ऋषियोंके स्तोत्र तुमने सुने थे।

३४५ **जुषन्त इदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः।** ऋ० ७।३५।१४ नये किये जानेवाले इस स्तोत्रका सब देव स्वीकार करें।

३४८ **इमां सुवृक्तिं... कृण्वे ... नवीयः।** ऋ० ७।३६।२ इस नवीन स्तोत्रको करता हूं।

३५९ **वयं... ब्रह्म कृण्वन्तो... वसिष्ठाः।** ७।३७।४ हम वसिष्ठ स्तोत्र करते हैं।

५१० **मन्मानि नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन् इमानि।** ७।६१।६। ये नवीन किये मननीय स्तोत्र हैं।

५९४ **पुरूणि अभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम्।** ७।७०।५— बहुतसे ऋषियोंके किये स्तोत्र तुम देखते हो।

७७५ **इयं... सुवृक्तिर्ब्रह्म इन्द्राय वज्रिणे अकारि।** ७।९७।९ यह उत्तम स्तोत्र वज्रधारी इन्द्रके लिये किया है।

वसिष्ठके मंत्रोंमें ये मन्त्र बडे महत्त्वके हैं । इनमें—

नूत्ना ब्रह्माणि विप्रा जनयन्त (७।२२।९)
नवीयः क्रियमाणं ब्रह्म (७।३५।१४)
नवीयः सुवृक्तिं कृण्वे (७।३६।६)
नवानि इमानि मन्मानि कृतानि (७।६१।२)

इन मंत्रोंमें नये स्तोत्र बनानेका स्पष्ट उल्लेख हैं । '**विप्राः नूत्नानि ब्रह्माणि जनयन्तः**' (७।२२।९) ज्ञानी ब्राह्मण नये स्तोत्र रचते हैं ऐसा स्पष्ट कहा है । इसी मंत्रमें—

'**पूर्वे ऋषयः ये च नूत्नाः ब्रह्माणि जनयन्त**
(७।२२।९)

' प्राचीन ऋषि और नये ऋषि स्तोत्र करते हैं । ' ऐसा कहा है । '**नवीयः क्रियमाणं ब्रह्म**' (७।३९।१४) नया स्तोत्र किया जा रहा है । यह वर्णन तो स्पष्ट है कि स्तोत्र बनाया जाता था। बडे वृद्ध ऋषि भी स्तोत्र बनाते थे और नये तरुण ऋषि भी बनाते थे । ये सब मंत्र होते हुए इनके साथ यह भी एक मंत्र है—

दैव्यः श्लोकः इन्द्रं सिषक्तु ।
देवकृतस्य ब्रह्मणः राजा । (७।९७।३)

' यह दिव्य श्लोक इन्द्रका वर्णन करे। यह इन्द्र देव के बनाये स्तोत्रका राजा है।' यहां देवकृत स्तोत्र हैं ऐसा स्पष्ट कहा है ।

देवस्य पश्य काव्यं
न ममार न जीर्यति । (अथर्व० १०।८।३२; १०।१५। १०।९)

' देवका यह काव्य देखो जो मरता नहीं और न जीर्ण होता है, ऐसा अथर्ववेदका वचन है । अब इनकी संगति कैसी है उसका विचार करना चाहिये । '**देवस्य पश्य काव्यं**' इतना मंत्रभाग दो वार आया है (अ० १०।८।३२; १०।१५ (१०) ९) और '**न ममार न जीर्यति**' यह मन्त्रभाग अथर्वमें एक ही वार आया है। यह देवका काव्य है, इसको देखो, यह मरता नहीं और यह जीर्ण भी नहीं होता ।

यहां दो प्रकारके भाव हमारे सामने आगये। एक यह कि ' यह ईश्वरका काव्य है अतः यह मरता नहीं और न यह जीर्ण होता है । ' तथा दूसरा यह भाव है कि ' यह सूक्त नया भी बनाया जाता है । ' इन दो भावोंका समन्वय कैसा हो सकता है । इसका विचार करना चाहिये । पूर्व स्थानमें जो मंत्र दिये है उनमें '**नवीन स्तोत्र**' बनानेका भाव स्पष्ट है। '**क्रियमाणं**' आदि शब्द स्पष्ट हैं । वसिष्ठका नाम भी है और अनेक वसिष्ठोंका भी उल्लेख है। अनेकवचनी वसिष्ठपद होनेसे यह वसिष्ठ पद कुलका-कुटुंबका-नाम प्रतीत होता है । नहीं तो अनेक वसिष्ठ होनेका अर्थ कुछ भी नहीं हो सकता ।

देवका काव्य है, उसके द्रष्टा वसिष्ठ, जो एक या अनेक होंगे, हो सकते हैं । एक वसिष्ठ जो मूल गोत्रका प्रवर्तक है वह भी द्रष्टा हो सकता है और उसके गोत्र धारण करनेवाले द्रष्टा हो सकते है। अर्थात् यह एक योगसाधनकी प्रक्रिया होगी जो उसका अनुष्ठान करनेवाले को साध्य हो सकती है । अर्थात् योगसाधनसे मनुष्य उस उच्च अवस्थाको प्राप्त हो सकता है कि जिस अवस्थामें उसको मंत्रोंका स्फुरण होना संभव है ।

आकाशका गुण शब्द है । आकाश ईश्वरका देह है उसका निज स्वभाव शब्द है । अतः यह शब्द सनातन और शाश्वत है । शाश्वत शब्द ही वेद है । यदि ईश्वरके शाश्वत आकाशका गुण शाश्वत शब्द है, और वही शब्द वेद है, तब तो यह निःसंदेह है कि जो उस आकाशके प्रकंपनोंको प्राप्त कर सकता है वह वेद मंत्रोंको देख सकता है और देखकर उच्चार भी कर सकता है । इसलिये ऐसी एक प्रक्रिया देखनी चाहिये जिससे हम आकाशके स्थायी प्रकंपनोंको स्वीकार कर सकें और वही हम भी बोल सकें। दूसरे नीच स्तरवाले कंपन उसमें न मिल सकें ।

'आकाशका गुण शब्द है और आकाशके सात विभाग हैं । उनमें उच्चसे उच्च विभागमें वेदके शब्द हैं । जो अपना संबंध उससे निर्माण कर सकता है वह उन शब्दोंका स्फुरण अपने अन्तःकरणमें होनेका अनुभव कर सकता है । इसलिये मंत्र में कहा है कि--

पूर्वे ऋषयः नूत्नाः च ब्रह्माणि जनयन्तः ।
(७।२२।९)

पूर्व समयके ऋषि और नवीन ज्ञानी स्तोत्रोंको प्रकट करते हैं । ' जैसे पूर्व समयके ऋषि स्तोत्र बोलते थे वैसे नवीन ऋषि भी स्तोत्र बोलते हैं । क्योंकि उनका स्फुरणका मूलस्रोत एक ही है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वरका सनातन काव्य है, उसका स्फुरणसे दर्शन जिस रीतिसे प्राचीन ऋषि

करते थे, वैसे ही नवीन ऋषि भी करते हैं। इसलिये वे कह सकते है कि हम नवीन स्तोत्र करते है ।

श्री न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षणका नियम देखा और उन्होंने उस नियमका प्रकाशन किया । पर यह नियम सनातन ही है। श्री न्यूटनने उसको बनाया नहीं । श्री न्यूटनने उसका दर्शन किया वैसा ही वैशेषिकोंने भी दर्शन किया था और '**गुरुत्वात् पतनं**' यह सूत्र भी उन्होंने लिखा था । इस नियमका दर्शन आज भी कोई कर सकता है। जैसा प्राचीन द्रष्टाओंने किया था । इसलिये कहा है—

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत ।

ऋ० १।१।२

'अग्निकी स्तुति जैसी प्राचीन ऋषियोंने की वैसी ही नूतन ऋषियोंने भी की है। ' इसका भाव यही है ।

योगसाधन द्वारा मनकी एकाग्रता करनेसे आंखें बंद करनेपर भी नाना प्रकारके पृथिवी आप आदि तत्त्वोंके रंग दिखाई देते हैं। जो तत्त्व उस समय सामने आता है उसका रंग आंखके सामने दीखता है । इन रंगोंसे पञ्चतत्त्व जाने जा सकते है। इसी तरह ध्यानके समय शब्द भी सुनाई देते हैं। यह बात प्रसिद्ध है कि रंगरूप ध्यानमें दिखाई देनेका कार्य अग्नितत्त्वके साक्षात्कारसे होता है और शब्दका श्रवण होनेका सुयोग आकाश तत्त्वके साक्षात्कारसे होता है । यही शब्दश्रवणका साक्षात्कार आकाशके अत्यंत सूक्ष्मतत्त्वके संपर्कसे होने लगा तो वही शाश्वत शब्दका स्फुरण समझना योग्य है। यह साधन करनेवालोंको हो सकता है । इससे सबको विदित होगा कि किसी नवीन ऋषिको स्फुरण हुआ तो भी वह शाश्वत शब्दका ही स्फुरण है। आकाशतत्त्व शाश्वत है, उसमें व्यापक आत्मा शाश्वत है । आत्माका ज्ञान सत्य सनातन और शाश्वत है । यह परमात्माका ज्ञानमय शब्द परमात्माकी प्रेरणासे आकाशमें व्यापक है । वह आकाशका निज स्वभाव ही है। जो उसके प्रकंपनोंको ले सकता है, उसमें वही शब्द स्फुरित हो सकता है। मास दोमास प्राणायाम करनेपर अद्भुत शब्दका नाद सुनाई देता है । यह नाद इतना मधुर रहता है कि देरतक इसका श्रवण करनेपर भी इसकी मधुरिमामें न्यूनता नहीं आसकती। यह शब्दश्रवण प्राणायामाभ्यासीके परिचयकी बात है। यह प्राथमिक अनुभव है । शाश्वत शब्दश्रवण अन्तिम सिद्धि है। पर आकाशतत्त्वका अनाहत शब्द प्रारंभावस्थामें भी सुनाई देता है ।

गंध-रस-रूप-स्पर्श-शब्द ये क्रमशः पृथिवी-आप-तेज-वायु आकाशके निजगुण हैं और प्राणायामाभ्यासीको इन तत्त्वोंके साक्षात्कारके साथ इन गुणोंका साक्षात्कार होता है । यह अधिक अभ्यास होनेपर शाश्वत शब्दका स्फुरण होना स्वाभाविक है और इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है ।

इसलिये 'नूतन ऋषि नवीन स्तोत्र करते हैं' इस प्रकारके वर्णन इस मानसिक एकाग्रताकी अवस्थामें साक्षात् होनेवाली बात है । इसलिये वह शक्य है ।

भावका सनातनत्व

अब मन्त्रोंके भावका सनातनत्व कैसा होता है यह देखना है । इसके लिये एक दो उदाहरण हम देते हैं—

१ रामने रावणका वध किया,

२ हे राम ! तू रावणका वधकर्ता है,

३ मैं राम हूं और मैं रावणका वध करूंगा ।

पहिले वाक्यमें तृतीय पुरुषका प्रयोग है, दूसरे वाक्यमें द्वितीय अथवा मध्यम पुरुषका प्रयोग है और तीसरे वाक्यमें प्रथम या उत्तम पुरुषका प्रयोग है । इसी तरह पहिला वाक्य भूतकालमें, द्वितीय वर्तमानकालमें और तीसरा भविष्यकालमें है । पर इनसे 'रामके द्वारा रावणका वध' का भाव ही प्रकट हो रहा है और वहां मुख्य सनातन तथा शाश्वत भाव है । मुख्य वक्तव्य वचनका उद्देश भी यह है। देखिये और उदाहरण—

१ इन्द्रः वृत्रं हन्ता । ऋ० ७।२०।२

२ हे इन्द्र ! स्वेन शवसा वृत्रं जघन्थ ।

ऋ० ७।२१।६

३ इन्द्रः वृत्राणि अप्रति जघन्वान् ।

ऋ० ७।२३।४

४ हे शूर ! वृत्रा सुहना कृधि । ऋ० ७।२५।५)

यहां वृत्र पद एकवचनमें है और बहुवचनमें भी है। तथा भूत- वर्तमान-भविष्यकालोंके प्रयोग भी हैं । परंतु इससे

मन्त्रके मुख्य उद्दिष्टमें कोई भेद नहीं होता। ' इन्द्र वृत्रका वधकर्ता है। ' यह मुख्यभाव है। इन सब मंत्रोंमें वही स्थायीभाव है, शाश्वत और सनातन भाव है, न बदलनेवाला भाव है। इसलिये मुख्यभावको सामने रखकर कालमें तथा पुरुषमें थोडासा व्यत्यय किया तो कोई सनातन अर्थकी हानि नहीं होती।

इसी तरह एक मंत्रके अनेक टुकडे करके, सब पदोंका भाव स्थायी रखकर, अर्थ देखनेमें भी कोई हानि नहीं है, प्रत्युत अर्थका गौरव ही है, इसका उदाहरण देखिये—

मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे॥
ऋ० ७।३२।९

१ सोमिनः मा स्रेधत– यज्ञ करनेवालोंको कष्ट न दो,

२ दक्षत— दक्षतासे कर्म करो।

३ महे आतुजे कृणुध्वं– बडे शत्रुनाशके युद्धके लिये यत्न करो,

४ राये कृणुध्वं– धन प्राप्त करनेका यत्न करो,

५ तरणिः इत् जयति– त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला निःसंदेह विजय प्राप्त करता है,

६ तरणिः इत् क्षेति– त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला घरमें सुखसे रहता है।

७ तरणिः इत् पुष्यति— त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला धन धान्यसे, सेवकोंसे पुष्ट होता है।

८ कवत्नवे देवासः न— कुत्सित कर्म करनेवालेकी सहायता देव नहीं करते।

यहां एक मंत्रके अनेक विभाग किये हैं। कई पद और कई क्रियाएं पुनः पुनः ली हैं। और इन्द्रके वर्णनपरक मन्त्रमें भी सनातन शाश्वत धर्मका दर्शन किया है। यह पद्धति अशुद्ध नहीं है। मन्त्रके पदोंमें यह सब अर्थ है वह अधिक स्पष्ट करनेके लिये ऐसा किया गया है। वह योग्य ही है।

आगेके दिये अर्थमें प्रथम मन्त्रका अर्थ दिया है और पश्चात् आशय मनमें धारण करके उससे प्रकट होनेवाला मानव धर्म दिया है। तथा मन्त्रका सनातन, शाश्वत, स्थायीभाव ऐसे मन्त्रोंके टुकडे देकर दिया है। यह पद्धति मंत्रका रहस्य ध्यानमें आनेके लिये अत्यन्त आवश्यक है और पाठक भी इस पद्धतिका अवलंबन करके जितने रहस्यार्थ यहां दिये हैं उनसे अधिक अर्थ मननसे कर सकते हैं। ऐसा करनेके समय कहांका पद कहां भी लगा देना उचित नहीं है। पर एक वाक्यके अधिक वाक्य बनाना और उससे अर्थगौरवको प्रकट करना योग्य है। इस अर्थमें ऐसा अनेक मंत्रोंके साथ किया है।

इसी तरह ' **वज्रहस्त शूर इन्द्र** ' ये संबोधनके पद हैं। ये संबोधनके पद मंत्रोंके अर्थमें संबोधनपरक ही रहेंगे। पर रहस्य अर्थके प्रकाशन करनेके समय ' **इन्द्रः शूरः वज्रहस्तः अस्ति** ' इन्द्र वीर शूर और शस्त्रधारी होता है। जो शूर है वह शस्त्रधारी हो ऐसा सामान्य अर्थ भी इससे प्रकट हो जाता है। इसी रीतिसे संबोधनके वाक्य (सामान्य सनातन अर्थ करनेवाले) करनेमें भी कोई दोष नहीं है उदाहरणके लिये देखिये —

' **हे शूर इन्द्र! सूरिभ्यः वरूथं यच्छ** ' हे शूर इन्द्र! तू ज्ञानियोंको धन दो। यह इन्द्रको संबोधन करके कहा है, वह बदलकर ' शूर वीर ज्ञानियोंके लिये धन देवे। ' ऐसा भाव देखनेमें कोई हानि नहीं, प्रत्युत इससे अच्छा मानव धर्म प्रकट हो जाता है। इस तरह अनेक मंत्रोंमें शाश्वत अर्थ पाठक देख सकते हैं।

मंत्रोंके अर्थ करने और स्पष्टीकरण देनेमें जो हमने विशेषता की है वह यही है। पाठक इसको इस पुस्तकमें देखेंगे। इसके पश्चात् विषयवार मंत्रोंके वचन दिये हैं, तथा क्रमसे मंत्रोंके सुभाषित भी दिये हैं। ये सुभाषित और ये विषयवार संग्रह व्याख्याता तथा लेखकोंके लिये अत्यंत उपयोगी सिद्ध होनेवाले हैं। आशा है कि पाठक इनका यथायोग्य उपयोग करके लाभ उठावेंगे।

इस पद्धतिसे वेदमंत्रोंका अर्थ दर्शाना और रहस्य बताना यह इस समयतक किसीने नहीं किया है। यही प्रथम प्रयत्न है। वेदमंत्रसे स्मृतिका संबंध हम इस रीतिसे बता सकते हैं। हमने इसमें यह नहीं बताया है, परंतु मानवधर्ममें हमने यह

दिग्दर्शित किया है। आगे स्वतंत्र लेखसे किस श्रुतिसे कौनसा स्मृतिवचन बना है यह हम बतायेंगे।

ऋषि देवताकी स्तुति करता है वहां उस देवतामें वह आदर्श पुरुषका दर्शन करता है और उस देवतामें प्रतीत होनेवाले आदर्श पुरुषका वह वर्णन होता है। इसलिये वेदका देवताका वर्णन आदर्श पुरुषका वर्णन है, अतः वह मानवोंके लिये अपने सामने आदर्श रखने योग्य है। यह बात हमने इस पुस्तकमें बतायी है। पाठक इसका अधिक मनन करें। इससे वेद मंत्रोंसे मानवधर्म प्रकट होता है। यही मुख्य वेदका मननीय विषय है। हमने प्रायः प्रत्येक सूक्तके विवरणमें यह बताया है। जो पाठकोंके लिये मार्गदर्शन करा सकता है।

देवताके वर्णनमें आदर्श पुरुष

देवताओंके वर्णनमें आदर्श पुरुषका दर्शन है, अथवा आदर्श पुरुषका वर्णन है, यह नवीन बात पाठक यहां देख सकते हैं। इसका नमूना यहां दिखाना योग्य है। इसलिये यहां थोडासा नमूना दिखाते हैं—

अग्निवर्णनमें आदर्श पुरुष

देखिये अग्निका वर्णन ऋषि कर रहा है, वह केवल 'आग' का ही वर्णन नहीं है, क्योंकि उस वर्णनमें ऐसे पद प्रयुक्त हुए हैं कि जो आगमें संगत नहीं हो सकते। देखिये— "५० **कविः (६७); ८७ कवितमः, ८९ अमूरः कविः**" ये पद आगका वर्णन करनेमें सार्थ नहीं हो सकते, क्योंकि आग कभी 'कवि' नहीं हो सकती। अमूढ कवि तो आगका होना संभव ही नहीं है। पर ज्ञानी पुरुषके वर्णनके समान पद और वाक्य अग्निके वर्णनमें हैं। वे आदर्श ज्ञानीका वर्णन करते हैं। (सूचना- यहां जो क्रमांक दिये हैं वे वसिष्ठ मंत्रोंके क्रमांक हैं। उस क्रमांकके मंत्रमें वे पद पाठक देख सकते हैं।)

'**७७ ब्रह्मा; १२८ सुब्रह्मा**' ये अग्निके वर्णनके पद बडे ज्ञानीके वाचक हैं। अग्नि तो ज्ञानी नहीं है। पर उसका वर्णन ज्ञानी जैसा किया जाता है। इसलिये हम कह सकते हैं कि यहां अग्निमें ऋषिने आदर्श ज्ञानी पुरुषका दर्शन किया है। '**१२८ सुशमी**' उत्तम रीतिसे इन्द्रियोंका दमन या शमन करनेवाला। यह अग्नि नहीं है, पर अग्निमें जिस ज्ञानी पुरुषका दर्शन ऋषिने किया, उसका यह वर्णन है।

'**८८ विशां तमः तिरः ददृशे**' प्रजाजनोंका अन्धकार यह अग्नि दूर करता है। अग्नि प्रकाशता है और उजाला करता है, उस उजालेसे अन्धकार दूर होता है। अग्निमें यह बात है। जहां वह जलता है, वहांका अन्धेरा दूर होता है। इसलिये अन्धेरेमें प्रवास करनेवाले लोग अपने साथ जलती लकडी, दीप तथा कुछ अन्य प्रकाशका साधन रखते हैं और मानते हैं कि अग्नि हमारा मार्गदर्शक होता है। अग्नि हमें अन्धेरेसे पार करता है। यह सत्य भी है। परंतु ज्ञानी पुरुषमें यह विशेष रीतिसे सत्य है। ज्ञानी अज्ञानीमें ऐसा ज्ञान दीप जलाता है कि, उससे उसका अज्ञानान्धकार दूर हो जाता है और उसके लिये प्रकाशका मार्ग खुल जाता है। इस तरह शुद्ध आगका वर्णन भी ज्ञानीका वर्णन हो जाता है और ज्ञानीका वर्णन भी कभी कभी आगका वर्णन होता है। इसीलिये हमने कहा कि 'अग्निमें ऋषि आदर्श पुरुषका दर्शन करता है।'

अग्निका वर्णन करते हुए '**१८ सत्यवाक्, ७६ मधुवाचा, १९ ऋतावा**' ये पद प्रयुक्त हुए हैं। यह अग्नि सत्यभाषण करनेवाला है, मीठा भाषण करनेवाला है, सत्यनिष्ठ है। पाठक देखें कि ये पद केवल आगका वर्णन किस तरह कर सकते हैं। कौन कह सकता है कि यह आग सत्यभाषण करती है। इसलिये ये पद निःसंदेह आदर्श पुरुष, जो सत्यभाषण करनेवाला है, मधुरभाषण करनेवाला है, उसका दर्शन कर रहे हैं।

वास्तवमें '**अग्नि**' पद भी '**अग्रणी**' अथवा नेताका वाचक है। अग्रणीमें '**अ-ग्-र्-णी**' इन अक्षरोंके बीचके 'र' कारका लोप होकर '**अग्नी**' बना है, अतः यह अग्रणी ही है और अग्रणी तो ज्ञानी, मार्गदर्शक होना ही चाहिये। इस तरह अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन होता है।

'**४८ तरुणः, ३४ वीरः, ४ सुवीरः**' ये वीरके वाचक पद अग्निके वर्णनमें आये हैं। अग्नि वीर है, अर्थात् अग्रणी वीर होना चाहिये। जो वीर नहीं होगा, वह नेता किस तरह बन सकता है? नेतृत्वमें वीरताका होना अत्यंत आवश्यक है।

'**६१ नृतमः, ५८ नेता**' ये पद नेताके वाचक हैं, ये यहां अग्निके लिये प्रयुक्त हुए हैं। वे बता रहे हैं कि यहांका अग्नि नेता है। संचालक है। धुरीण है। जनताका प्रमुख है।

'२३ स्वनीकः' अर्थात् उत्तम सेना अपने साथ रखनेवाला अग्नि है। यह निःसन्देह नेता है, जो अपने साथ उत्तम सेना रखता है। इसका वर्णन भी '४० ते सेना सृष्टा पाति' तेरी सेना आज्ञा होनेपर शत्रुपर आक्रमण करती है। ऐसी जिसकी सेना होगी वह आग किस तरह हो सकती है ? यह तो अग्रणी ही होगा।

इस तरह अग्निके वर्णनमें आदर्श पुरुषका दर्शन ऋषि करता है। वेदके मंत्र देखकर उनमें आदर्श पुरुषका दर्शन पाठकोंको करना उचित है। वेदमें यही देखना चाहिये। वेदके मंत्रोंका मनन करनेपर यह आदर्श पुरुष कैसा है, वह पाठकोंको जानना चाहिये और ऐसा आदर्श मैं अपने जीवनमें ढालूंगा, ऐसा यत्न पाठकोंको करना चाहिये। वेदका प्रत्येक पद बडा बोध-प्रद हो सकता है, यदि उससे इस तरह बोध प्राप्त किया जाय।

इसी तरह इन्द्रके वर्णनमें शक्तिकी प्रधानता और शत्रुके नाश करनेका वर्णन विशेष है। अग्निका आदर्श ब्राह्मणका आदर्श है और इन्द्र क्षत्रियका आदर्श है। अन्यान्य देवताएं अन्यान्य आदर्श दर्शाते है। वेदके पदोंके अर्थकी अपेक्षा यह आदर्श अधिक उपयोगी है। साधकको इसी आदर्शकी ओर अपना ध्यान लगाना उचित है। मैं ऐसा बनूंगा ऐसा मनमें निश्चय करना और वैसा बननेका प्रयत्न करना साधककी उन्नतिके लिये आवश्यक है। इस ग्रंथमें यह आदर्श बताया है।

इस तरहका विचार हमने प्रथम ही जनताके सन्मुख रखा है। प्रथम रखनेके कारण इसमें त्रुटि रहनेकी संभावना है। यदि किसी पाठकको इस तरहकी त्रुटी मालूम हुई तो कृपा करके वह विद्वान पाठक उसको लिखकर हमारे पास भेज दें। हम उसका विचार करेंगे और योग्य सुझावका हम स्वीकार करेंगे।

स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम
किल्ला-पारडी (जि. सूरत)
११ माघ २००८

लेखक
श्री. दा. सातवलेकर
अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल



ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

वसिष्ठ ऋषिका दर्शन

सप्तमं मण्डलम् ।

(ऋग्वेदके ५१–५६ अनुवाक)

अनुवाक ५१ वाँ

अग्नि प्रकरण

(१) २५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । विराट्, १९-२५ त्रिष्टुप् ।

१ **अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् । दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम्** १

[१] (नरः प्रशस्तं दूरेदृशं) नेता लोग प्रशंसा करने योग्य, दूरदर्शी (गृहपतिं अथर्युं) अपने घरोंका पालन करनेवाले प्रगतिशील (अग्निं) अग्निको (अरण्योः) दोनों अरणियोंमेंसे (हस्त-च्युती) हाथोंकी कुशलतासे (दीधितिभिः जन-यन्त) अपनी अंगुलियोंके द्वारा निर्माण करते हैं।

मानव धर्म— नेता लोग प्रशंसा योग्य, दूरदर्शी, अपने घरोंकी सुरक्षा करनेमें समर्थ, प्रगतिशील अग्रणिको प्रकाशित करते हैं । उसके निज तेजसे ही वह प्रकाशित होता है, उसको अपने प्रयत्नसे आगे बढावें ।

मनुष्य (नरः) नेतृत्व करें, लोगोंको प्रशस्त मार्गसे चलावें, (दूरे दृशं) दूरदर्शी हो, दूरसे भी जिसका नाम सुनाई देता है, अथवा दूरसे भी जिसको दीखता है, भविष्यमें होनेवाली बातें जो स्वयं पहिले ही जानता है ऐसा दूरदर्शी हो, (गृह-पतिं) अपने घर, अपने प्रदेश, अपने राष्ट्रका संरक्षण करनेमें समर्थ हो, संरक्षणकी शक्ति अपनेमें रखे और बढावे, (अ-थर्युं) प्रगतिशील हो, पर वह शक्ति उसके अंदर गुप्त रहे, न्यून न होती रहे, ऐसा (अग्निं) अग्रणी हो । (अग्निः अग्रं नयति) जो अन्ततक पहुंचाता है उसको अग्रणी कहते हैं । जो बीचमें ही छोडकर चला न जावे, सहारा देकर अन्ततक सब कार्यका संचालन करे । अग्नि जैसा अपने प्रकाशसे दूसरों-को मार्ग दर्शाता है, उत्साह ठंडा पडने नहीं देता और सदा प्रगतिशील रहता है वैसा नेता, जनताको मार्ग बतावे, सिद्धि-तक आगे ले जावे, उत्साह बढाता रहे । ऐसे अग्रणीको नेता लोग उसके तेजसे प्रकाशित करें, यह नेता है ऐसा प्रसिद्ध करें । अपने प्रयत्नोंसे उसको बढावें और ऐसे पुरुषकी ही (प्रशस्त) प्रशंसा करते रहें ।

२ तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन् त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् । दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः २
३ प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ । त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ३
४ प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः । यत्रा नरः समासते सुजाताः ४
५ दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम् । न यं यावा तरति यातुमावान् ५

---

[२] (यः दक्षाय्यः) जो दक्ष रहनेवाला अथवा बलवान् (नित्यः दमे आस) सदा अपने स्थानमें रहता था, (तं सुप्रतिचक्षं अग्निं) उस उत्तम दर्शनीय अग्निको (कुतः चित्) सब ओरसे (अवसे) सबकी सुरक्षा करनेके लिये (वसवः) निवास कर्ताओंने (अस्ते नि ऋण्वन्) अपने घरमें, रहनेके स्थानमें लाकर रख दिया ।

मानव धर्म—बलवान पुरुष सदा अपने घरमें रहे और घरकी सुरक्षा दक्षतासे करता रहे । ऐसे वीर पुरुषको सब ओरसे अपनी सुरक्षा करनेके लिये आदरसे लावें और महत्त्वके स्थानपर रखे अर्थात् निवास करनेवाले नागरिक ऐसे पुरुषको सुरक्षाके कार्य में नियुक्त करें ।

जो (दक्षाय्यः) बलके कारण सत्कार करने योग्य है, जो (नित्यः दमे आस) जो सदा अपने घरमें रहकर घरकी सुरक्षा करता था, ऐसे दर्शनीय वीर अग्रणीको (वसवः) निवास करनेवाले, जनताका निवास सुरक्षासे करनेवाले नेता लोग (कुतः चित् अवसे) किसी स्थानसे भय न हो और सब ओरसे सुरक्षा हो इसलिये (अस्ते नि ऋण्वन्) अपने घरमें, स्थानमें, प्रदेशमें लायें और महत्त्वके स्थानपर रखें । और ऐसे वीरसे प्रदेशको सुरक्षित करें । जिससे सब लोग सुख शान्तिसे निवास कर सकें ।

[३] हे (यविष्ठ अग्ने) तरुण अग्ने ! (प्र इद्धः अजस्रया सूर्म्या) प्रदीप्त होकर प्रचण्ड ज्वालाओंसे (नः पुरः दीदिहि) हमारे सन्मुख प्रकाशित हो । (त्वां शश्वन्तः वाजाः उपयन्ति) तेरे पास बहुत अन्न और बल आते रहते हैं ।

मानव धर्म—तरुण अग्रणि अपने अतुल तेजसे प्रकाशित होता रहे । जो ऐसा तेजस्वी होगा, उसके पास अन्न और बल स्वयं उपस्थित होते रहेंगे ।

जो बलवान और तेजस्वी होगा उसके पास अन्न और बल स्वयं उपस्थित होंगे, उसके पास धनवान् और बलवान वीर आयेंगे और इससे उसका बल अधिकाधिक बढता जायगा ।

[४] (अग्निभ्यः वरं द्युमन्तः) अग्नियोंसे भी अधिक तेजस्वी (ते सुवीरासः अग्नयः) वे उत्तम वीररूप अग्नि (प्र निः शोशुचन्त) विशेष रीतिसे अधिक प्रकाशित होते हैं । (यत्र सुजाताः नरः) जहां उत्तम कुलीन वीर (सं आसते) संगठित होकर बैठते हैं ।

मानव धर्म— जहां उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए वीर उत्तम रीतिसे संगठित होकर रहते हैं, वहां उत्तम वीर अग्निसे भी अधिक तेजस्वी होकर प्रकाशते हैं । (अतः वीर अपना संगठन करें । एक विचारसे कार्य करें और उत्तम वीरोंको अधिक वीरता करनेके लिये अवसर दें ।)

इस मंत्रके स्मरण करने योग्य वाक्य —

१ **अग्निभ्यः वरं द्युमन्तः सुवीरासः**—अग्निसे भी अधिक तेजस्वी हमारे वीर हों । हमारे पुत्र पौत्र ऐसे वीर हों कि जो अग्निसे भी अधिक तेजस्वी हों ।

२ **सुजाताः नरः समासते**— उत्तम कुलीन पुरुष एक स्थानपर बैठते हैं । एक स्थानपर बैठकर अपनी संघटना करते हैं ।

३ **सुवीरासः प्र निः शोशुचन्त**—उत्तम वीर ही निःसंदेह चमकते हैं । उत्तम वीर यशस्वी होते हैं ।

[५] हे (सहस्य अग्ने) शत्रुका पराभव करनेमें कुशल अग्ने ! (नः) हमें (सुवीरं स्वपत्यं प्रसस्तं रयिं) जिसके साथ वीर हों, उत्तम संतति हो, ऐसे प्रशंसित धनको (धिया दाः) बुद्धिके साथ दो । (यं यातुमावान् यावा न तरति) जिसको हिंसक शत्रु कभी बाधा नहीं कर सकता ।

मानव धर्म—शत्रुका पराभव करनेका बल प्राप्त करो । धन ऐसा प्राप्त करो कि जिसके साथ वीर पुरुष हों, वीर संतति हो और जिसकी प्रशंसा होती हो ॥

६ उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची । उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः ॥६॥
७ विश्वा अग्नेऽप दहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम् । प्र निस्वरं चातयस्वामीवाम् ॥७॥

जिसके साथ वीर पुरुष तथा वीर संतति नहीं होती, वह धन अपने पास रहेगा भी नहीं । इसी तरह धन प्रशंसित हो। जिसकी निंदा होती है वैसा धन न हो अर्थात् निंदनीय साधनोंसे धन प्राप्त किया न हो । इसी तरह धनके साथ बुद्धिमत्ता भी रहे। निर्बुद्धका धन बुरे व्यवहारमें व्यर्थ खर्च होता है। धन ऐसा हो कि जिसको डाकू चोर या शत्रु न लूट सकें। अर्थात् धनके संरक्षणका पूरा साधन अपने पास रहे।

स्मरण रखने योग्य वचन—

१ सुवीरं स्वपत्यं प्रशस्तं रयिं धिया नः दाः— उत्तम वीरोंसे तथा उत्तम वीर संतानोंसे युक्त यशस्वी धन बुद्धिके साथ हमें दे ।

२ यातुमावान् यावा यं रयिं न तरति— हिंसक डाकू जिसको लूट नहीं सकता ऐसा धन हमें चाहिये अर्थात् उसके संरक्षण का बल भी हमारे पास चाहिये ।

[६] (यं सुदक्षं) जिस उत्तम बलवानके पास (हविष्मती घृताची युवतिः) अन्नवाली घृत परोसनेवाली तरुणी (दोषा वस्तोः) रात्रीके और दिनके समय (उप एति) जाती है, (एनं स्वा वसूयुः अरमतिः उपैति) उसके पास धनके साथ रहनेवाली बुद्धि भी होती है।

मानव धर्म—बलवान तरुणके पास घी और अन्न लेकर तरुणी रात और दिन जाती है, वैसी ही उसके साथ धन प्राप्त करनेकी बुद्धि भी होती है ।

यहां अग्निको तरुण वीर कहा है और ऐसा कहा है कि उसके पास जुहू घी और अन्न लेकर हवनकी आहुति डालनेके लिये जाती है। इससे तरुण पुरुष पर आसक्त होकर प्रेमसे पौष्टिक अन्न तथा उत्तम घी लेकर तरुणी जाती है ऐसा सूचित किया है। यह उत्तम आलंकारिक वर्णन है। उस वीरके पास धन प्राप्त करनेकी बुद्धि भी होती है। जो तरुण बलवान् तथा बुद्धिमान होता है उसपर तरुण स्त्री प्रेम करती है।

स्मरणीय वचन—

१ वसूयुः अरमतिः एनं उपैति, सुदक्षं युवतिः उपैति—धन प्राप्त करनेकी उत्तम बुद्धि जिसके पास होती है उस उत्तम बलवान् तरुण पुरुषके पास तरुणी जाती है । अर्थात् निर्बुद्ध और निर्बल मनुष्यको तरुणी नहीं चाहती । इसलिये मनुष्य बुद्धिमान और बलवान बनें ।

[७] हे अग्ने! (विश्वाः अरातीः तपोभिः अप दह) सब शत्रुओंको अपने तेजोंसे जला दो, (येभिः जरूथं अदहः) जिनसे कठोर भाषी शत्रुको तूने जलाया था, तथा (अमीवां निःस्वरं प्र चातयस्व) रोगोंको निःशेष रीतिसे हटा दो।

मानवधर्म— अपने तेजोंसे ही शत्रुओंको दूर करना, कठोरभाषी को हटाना और रोगोंको भी दूर करना चाहिये ।

कठोर भाषी शत्रुको अपने तेजसे ही लज्जित करना योग्य है । इसी तरह अपने तेजोंसे ही शत्रुओंको निस्तेज करना, जलाकर भस्म करना । रोगोंको भी अपने आन्तरिक जीवन तेजसे दूर करना । अन्दरका जीवनरस जिसके अन्दर प्रबल होता है उसके शरीरमें रोग घुस नहीं सकते ।

स्मरणीय वचन—

१ विश्वाः अरातिः तेजोभिः अपदह—सब शत्रुओंको अपने तेजोंसे जला दो ।

२ जरूथं अदहः— कठोरभाषी, असत्यवादी, को दूर कर।

३ अमीवां प्रचातयस्व— रोगोंको हटादो,

'अमी-वा' आमसे, अन्नके अपचनसे, होनेवाले रोगोंको अमीवा कहते हैं । इन रोगों और शत्रुओंको दूर करनेकी युक्ति अपना तेज बढाना है ।

४ निःस्वरं चातयस्व—चुपचाप शत्रु दूर हो जाय ऐसा कर । अपना तेज बढ जानेसे शत्रु स्वयं दूर होते हैं ।

८ आ यस्ते अग्न इधते अनीकं वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक । उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः ८
९ वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा । उतो न एभिः सुमना इह स्याः ९
१० इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि सन्तु मायाः । ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम् १०
११ मा शूने अग्ने नि षदाम नृणां माशेषसोऽवीरता परि त्वा । प्रजावतीषु दुर्यासु दुर्य ११

---

[८] हे (वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक अग्ने) हे निवास हेतु शुद्ध तेजस्वी पवित्रता करनेवाले अग्ने ! (यः ते अनीकं आ एधते) जो तेरे तेजको प्रदीप्त करता है; उन (नः उतो एभिः स्तवथैः इह स्याः) हम सबके पास इन प्रशंसा स्तोत्रोंके साथ आकर यहां रह ।

मानव धर्म-- लोगोंका उत्तम निवास करनेवाला स्वयं शुद्ध और पवित्र, स्वयं तेजस्वी, सबकी पवित्रता करनेवाला वीर अग्निके समान तेजस्वी होता है। इसका सैन्य या बल इसका सामर्थ्य ही है। ऐसे तेजस्वी पुरुषकी प्रशंसा सब करते हैं और यह अपने पास आकर रहे ऐसा भी चाहते हैं ।

जैसा अग्नि (वसिष्ठ) सबका निवास करता है, (शुक्र दीदिवः) पवित्र, बलिष्ठ और तेजस्वी होता है और (पावक) सर्वत्र पवित्रता करता है । वैसा मनुष्य अग्निके समान तेजस्वी होवे। जैसा (अनीकं आ एधते) बल तथा सैन्य बढाया जाता है, वैसा मनुष्य अपना बल बढावे । ऐसा वीर (नः इह स्याः) हमारे समाजमें आकर यहा रहे । क्योंकि इससे सबका निवास उत्तम होगा, सबकी पवित्रता और तेजस्विता बढेगी और स्वच्छता होगी । रक्षक सैन्य अधिक बढनेसे सबकी सुरक्षा होगी । इसलिये सभी चाहेंगे कि यह वीर हमारे पास आकर हमारे समाजमें रहे ।

[९] हे अग्ने ! (ते अनीकं) तेरा तेज, (पित्र्यासः मर्ताः नर) पितरोंका हित करनेवाले मर्त्य लोगोंने (पुरुत्रा विभेजिरे) अनेक स्थानोंमें, अनेक देशोंमें फैलाया है, उनके समान (नः उतो एभिः सुमना इह स्याः) हमारे इन स्तोत्रोंसे प्रसन्न होकर तुम यहां रहो ।

मानव धर्म--अपने उपास्य देवका यश जैसा हमारे पूर्वज पितर नेता लोग देश विदेशमें फैलाते थे । वैसा हमें भी करना उचित है । ऐसा करनेसे प्रभुकी प्रसन्नता होगी ।

देश विदेशमें धर्मका प्रचार करना चाहिये और सबको आर्य बनाना चाहिये

[१०] (ये मे प्रशस्तां धियं पनयन्त) जो मेरी प्रशंसनीय बुद्धि की स्तुति करते हैं, (इमे नरः वृत्रहत्येषु शूराः) वे ये नेता वृत्र वध करनेके लिये शुरू किये युद्धमें शूरवीरता करनेवाले वीर पुरुष (अदेवीः विश्वाः मायाः अभि सन्तु) सब आसुरी कपटोंको पराभूत करें ॥

मानव धर्म—प्रशंसा योग्य बुद्धि तथा कर्मकी सब लोग प्रशंसा करें । युद्धोंके अन्दर उपस्थित शूरवीर नेता असुरोंके शत्रुपक्षके सब कपटजालोंको दूर करके अपना विजय हो ऐसा प्रयत्न करें ।

संस्मरणीय वचन—

१ **प्रशस्तां धियं पनयन्त**—प्रशंसा योग्य बुद्धिकी तथा वैसे कर्मकी प्रशंसा करो,

२ **शूराः नरः अदेवीः मायाः अभिसन्तु**—शूर नेता आसुरी कपट जालोंको दूर करें, उनमें न फंसे ।

[११] हे अग्ने । (शूने मा नि सदाम) पुत्र पौत्रादि रहित शून्य घरमें हम न रहें। हे (दुर्य) घरके लिये हित कर्ता ! (नृणां) मनुष्योंके बीचमें हम ही (अ-शेपसः अवीरता मा) पुत्र पौत्र रहित तथा वीरता रहित न रहें। प्रजावतीषु दुर्यासु त्वा परि) पुत्र पौत्रादिकोंसे युक्त घरोंमें हम तेरी उपासना करते हुए रहें।

मानव धर्म—पुत्र रहित घरमें हमें रहना न पडे । हमारे पुत्र पौत्र हमारे घरमें हों । और बाहर भी जहां हमें रहना पडे, वहां भी पुत्रपौत्रोंसे भरे घर हों । पुत्र रहित तथा वीरतारहित जीवन बुरा है । पुत्र पौत्रोंसे युक्त घरमें रह कर हम प्रभुकी भक्ति करेंगे ।

१२ यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः। स्वजन्मना शेषसा वावृधानम् १२
१३ पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात् पाहि धूर्तेररुषो अघायोः। त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् १३
१४ सेदग्निरग्नीँरत्यस्त्वन्यान् यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः। सहस्रपाथा अक्षरा समेति १४

स्मरण रखने योग्य वाक्य—

आदर्श गृहस्थीका घर

१ शूने मा निसदाम—पुत्र पौत्र रहित, संतान हीन घरमें हम न रहें। हम ऐसे घरोंमें रहें कि जहां पुत्र पौत्र प्रपौत्र बहुत हों। पुत्रोंसे घर भरे हुए हों।

२ नृणां अशेषसः अवीरता मा—मनुष्योंमें पुत्ररहित तथा वीरता रहित जीवन बहुत बुरा है, वैसा जीवन हमें कभी प्राप्त न हो।

३ नृणां मा निसदाम--दूसरे मनुष्योंके घरमें रहनेका अवसर हमें न प्राप्त हो। हम अपने घरमें रहें। रहनेका घर अपना हो।

४ प्रजावतीषु दुर्यासु त्वा परि निसदाम-- संतानोंसे युक्त घरोंमें प्रभुकी उपासना करते हुए हम रहें।

घरमें संतान अवश्य हों। '**दशास्यां पुत्रानाधेहि**'-दस पुत्र संतान हों ऐसा वेदमें अन्यत्र कहा है। इसके अतिरिक्त पुत्रियां भी होनी चाहिये। ऐसी संतानोंसे घर भरे हों। यह वैदिक आदर्श गृहस्थीका घर है।

[११] (यं यज्ञं अश्वी नित्यं उपयाति) जिसके पास पूजनीय अश्वारूढ अग्नि जैसा तेजस्वी वीर जाता है (तं प्रजावन्तं स्वपत्यं) वैसा प्रजावाला उत्तम संतानवाला (स्वजन्मना शेषसा वावृधानं) अपनेसे उत्पन्न हुए औरस संतानसे बढनेवाला (क्षयं नः देहि) घर हमें दो।

मानव धर्म--घर ऐसे हों कि जो पुत्र पौत्रादि संतानोंसे युक्त हों, अपने घरमें अपने औरस संतान हों, और घर औरस संतानोंसे बढनेवाले हों।

दत्तक संतान दूसरेसे लेनी न पडे। अपने घरमें औरस संतान हों और घर उनसे बढनेवाला हो।

स्मरण रखने योग्य वचन—

१ अश्वी यं नित्यं उपयाति--अश्वारूढ वीर जहां नित्य आते जाते हों ऐसे घर हों।

२ प्रजावंतं स्वपत्यं स्वजन्मना शेषसा ववृधानं क्षयं--सेवकोंसे युक्त उत्तम बालकोंसे युक्त, औरस संतानसे बढनेवाला घर हो।

[१३] हे अग्ने! (अजुष्टात् रक्षसः नः पाहि) संबंध रखनेके लिये अयोग्य ऐसे दुष्ट राक्षसोंसे हमें बचाओ। (अररुषः अघायोः धूर्तेः पाहि) दुष्ट पापी धूर्तसे हमें सुरक्षित कर। (त्वा युजा पृतनायून् अभिस्यां) तुम्हारी सहायतासे सेना लेकर हमला करनेवाले शत्रुका भी हम पराभव करेंगे।

मानव धर्म—राक्षसोंसे अपना बचाव करो, पापी छली दुष्टोंसे अपने आपको सुरक्षित रखो और सेना लेकर आक्रमणकारी शत्रुका पराभव करनेकी तैयारी करो।

शत्रुका नाश करनेकी तैयारी करो।

[१४] (यत्र वाजी वीळुपाणिः) जहां बलवान् सुदृढ शस्त्रधारी (सहस्र-पाथाः तनयः) सहस्रों प्रकारके धनस्रोतोंसे युक्त अपना पुत्र (अक्षरा सं एति) अक्षरोंसे ज्ञानोंसे युक्त होता है-स्तोत्रोंसे अग्निकी उपासना करता है, (स इत् अग्निः) वही अग्नि (अग्नीन् अति अस्तु) अन्य अग्नियोंसे श्रेष्ठ है।

मानव धर्म--अपना औरस पुत्र बलवान् हो, शूर हो, शस्त्रधारी हो, धन अन्न युक्त हो, विद्वान हो ऐसा पुत्र जिस अग्निमें हवन करता है वही अग्नि श्रेष्ठ है।

ऐसा शिक्षाका प्रबंध करना चाहिये कि जिससे अपने औरस पुत्र बलवान् बनें, शूरवीर हों, सुदृढ शस्त्रधारी बनें, धनों अन्नों तथा साधनोंसे संपन्न हों, विशेष विद्वान हों, ऐसे अपने पुत्र जहां हो वही स्थान श्रेष्ठ समझना चाहिये।

१५ सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात् । सुजातासः परि चरन्ति वीराः १५
१६ अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान् । परि यमेत्यध्वरेषु होता १६
१७ त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या । उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे १७
१८ इमो अग्ने वीततमानि हव्या ऽजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ । प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु १८
१९ मा नो अग्नेऽवीरते परा दा दुर्वाससेऽमतये मा नो अस्यै ।
मा नः क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्थाः १९

[१५] (यः समेद्धारं वनुष्यतः निपाति) जो जगानेवालेकी हिंसकसे सुरक्षा करता है, (उरुष्यात् अंहसः निपाति) अधिक पापसे बचाता है, (यं सुजातासः वीराः परिचरन्ति) जिसकी पूजा कुलीन वीर पुत्र करते हैं (सः इत् अग्निः) वही श्रेष्ठ अग्नि है ।

मानव धर्म— जो अपने उद्बोधन कर्ताको सुरक्षित करता है, जो पापसे बचाता है और अपने औरस वीर पुत्र जिसकी पूजा करते हैं वह अग्नि श्रेष्ठ है ।

१ **समेद्धारं वनुष्यतः निपाति** – जगानेवालेकी हिंसकसे सुरक्षा करो
२ **उरुष्यात् पापात् निपाति**-पापसे बचाओ,
३ **सुजातासः वीराः परिचरन्ति**--उत्तम कुलीन वीर पुत्र बैठकर पूजा करें । जहां पुत्र ऐसा करते हैं वह घर श्रेष्ठ है ।

[१६] (यं हविष्मान् ईशानः सं इन्धे) जिसको हविष्यान्न देनेवाला ऐश्वर्यवान् याजक प्रदीप्त करता है, (यं होता अध्वरेषु परि एति) जिसको होता हिंसारहित यज्ञोंमें प्रदक्षिणा करता है (सः अयं अग्निः पुरुत्रा आहुतः) वह यह अग्नि है कि जो बहुतवार आहुतियोंसे हुत हुआ है ॥

[१७] हे अग्ने! (त्वे ईशानासः) तुम्हारी कृपासे धनके स्वामी बने (नित्या उभा वहतू कृण्वन्तः) नित्य करने योग्य दोनों प्रकारके स्तोत्र तथा शस्त्र करनेवाले हम (मियेधे भूरि आहवनानि जुहुयाम) यज्ञमें बहुत प्रकारका हवन तुम्हारे लिये करते हैं ।

सुगंधयुक्त द्रव्योंका हवन

[१८] हे अग्ने ! तू (अजस्रः इमो वीततमानि) अखंडित रीतिसे ये अत्यंत प्रिय (हव्या) हवन द्रव्य (देवतातिं अभि वक्षि) देवताओंके समूहके पास पहुंचावे, (अच्छ गच्छ च) और वहां सीधा जा । (नः ईं सुरभीणि प्रतिव्यन्तु) हमारे ये सुगंधित हविर्द्रव्य प्रत्येक देवताको प्रिय हो ॥

इस मन्त्रमें (**सुरभीणि वीततमानि हव्या**) सुगंधित, प्रिय और आल्हाददायक हवनीय पदार्थ कहे हैं । इससे हवनीय पदार्थोंमें सुगंधित पदार्थोंका समावेश होता है, यह बात स्पष्ट होती है ।

[१९] हे अग्ने ! (नः अवीरते मा परादाः) हमें पुत्र-हीनता न प्राप्त हो । (दुर्वाससे च नः मा परा दा) मलिन वस्त्र परिधान करनेकी अवस्थाको हमें न पहुंचा ।(अस्यै अमतये नः मा परा दाः) इस निर्बुद्धताको हमें न पहुंचा । (नः क्षुधे मा) हमें भूखके कष्ट न हों ।(मा रक्षसः) राक्षस हम पर हमला न करें । हे (ऋतावः) सत्यवान् अग्ने ! (नः दमे मा) हमें घरमें कष्ट न हों (वने मा आजुहूर्थाः) हमें वनमें कष्ट न हों ।

मानव धर्म— हमारे पास पुत्रहीन अवस्था न आवे । बुरे वस्त्र पहननेकी दुःस्थिति हमें न मिले । निर्बुद्धता हमारे पास न आवे । भूख हमें न सतावे । राक्षस हम पर हमला न करें । हमें घरमें अथवा वनमें कोई कष्ट न हों । हम सर्वत्र प्रसन्न रहें ।

१ **नः अवीरता मा परा दाः**—पुत्र न होना, वीर संतान न होना, अथवा हमारे पास वीरोंका अभाव होना ये कष्ट

२० नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवभ्द्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २०

२१ त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक् सुदीती सूनो सहसो दिदीहि ।
मा त्वे सचा तनये नित्य आ धङ्मा वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत २१

२२ मा नो अग्ने दुर्भृतये सचैषु देवेद्धेष्वग्निषु प्र वोचः ।

हमारे पास न आजांय । हमें पुत्र हों, वे वीर पुत्र हों और हमारे पास शूरवीर सदा रहें ।

२ दुर्वाससे नः मा परा दाः—बुरा वस्त्र पहननेकी अवस्था हमें कभी प्राप्त न हो । करावास, दारिद्र्य आदिके कारण बुरे वस्त्र पहनने होते हैं। यह अवस्था हमें भोगनी न पडे।

३ अमतये नः मा परा दाः— हमारे पास बुद्धि हीनता, भ्रान्ति, विचारमें भ्रम कभी न हो ।

४ क्षुधे नः मा दाः—भूख हमें न सतावे, अकाल दुर्भिक्ष्य हमारे पास न आवे ।

५ रक्षसः नः मा दाः—राक्षसोंके अधीन हम न हों, राक्षस हमपर हमला न करें, हमारे राष्ट्रके स्वामी राक्षस न हों ।

६ दमे वने वा नः मा आजुहूर्थाः) घरमें अथवा मनमें हमारा घात पात न हो। हम सर्वत्र सुरक्षित रहें । हमारा नाश न हो ।

मनुष्योंको उचित है कि वे इन आपत्तियोंसे अपने आपको बचानेका प्रयत्न करें ।

[२०] हे अग्ने ! (मे ब्रह्माणि नुउत् शशाधि) मेरे लिये अन्नोंको उत्तम प्रकारसे पवित्र कर । हे (देव) तेजस्वी अग्नि देव ! (त्वं मघवद्भ्यः सुषूद) तू हम सब हविर्द्रव्यरूप धनोंको धारण करनेवालोंके लिये अन्नोंको प्रेरित कर । (ते रातौ उभयासः आ स्याम) तेरे दानमें हम दोनों लेनेवाले होकर रहेंगे । (यूयं सदा नः स्वतिभिः पात) आप सदा हमें कल्याण करनेद्वारा सुरक्षित करो ।

मानव धर्म--अन्नोंको परिशुद्ध रीतिसे तैयार करना चाहिये । मलिनता उसमें रखना योग्य नहीं है । अन्नवानों को भी उत्तम अन्न मिलना चाहिये। प्रभुके दानके हम सब भागी हों। हमारा कल्याण हो ऐसी रीतिसे हमारी सुरक्षा हो ।

[२१] हे (सहसः सूनो अग्ने) बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! (सुहवः रण्वसंदृक्) उत्तम प्रार्थित होनेवाला और रमणीय दीखनेवाला तू (सुदीती दिदीहि) ज्वालाओंसे प्रकाशित हो । (तनये नित्ये त्वे सचा) पुत्रके लिये नित्य सहायक होकर (मा आ धक्) उसे मत् जला । (वीरः नर्यः मा अस्मत् वि दासीत्) वीर और मानवोंका हित करनेवाला पुत्र हमसे विनष्ट न हो ।

मानव धर्म— बालकोंकी सहायता करना, बालमृत्यु न हो ऐसा प्रबंध करना, तथा शूरवीर तथा जनताका हित करनेवाले पुत्रको सब प्रकारसे सुरक्षित रखना !

१ तनये मा आधक्— पुत्र जल न मरे । पुत्रका ऐसा संभाल करना चाहिये ।

२ वीरः नर्यः अस्मत् मा विदासीत्— वीर और सबका हित करनेवाला पुत्र हमसे दूर न हो ऐसा प्रबंध करना योग्य है ।

३ सुहवः रण्वसंदृक् सहसः सूनुः— प्रेमसे बुलाने योग्य तथा रमणीयताका पुतला जैसा पुत्र है जो अपने ही बलसे उत्पन्न हुआ है । अतः उसकी उत्तम पालना होनी चाहिये ।

[२२] हे अग्ने ! (सचा देवेद्धेषु एषु अग्निषु) तू हमारा साथी है अतः तू देवों द्वारा प्रदीप्त किये अग्नियोंको (नः दुर्भृतये मा प्रवोचः) हमारे भरण पोषण न करनेके लिये न कहना । हे (सहसः सूनो) बलसे उत्पन्न होनेवाले पुत्र ! (देवस्य ते दुर्मतयः) प्रकाशमान होनेवाले तेरी बुद्धियां

मा ते अस्मान् दुर्मतयो भृमाच्चिद् देवस्य सूनो सहसो नशन्त ॥ २२

२३ स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवानमर्त्ये य आजुहोति हव्यम् ।
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति ॥ २३

२४ महो नो अग्ने सुवितस्य विद्वान् रयिं सूरिभ्य आ वहा बृहन्तम् ।
येन वयं सहसावन् मदेमाऽविक्षितास आयुषा सुवीराः ॥ २४

२५ नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २५

हमारे विषयमें कदापि दोष युक्त न हों; (भ्रमात् चित् नशंत) भ्रमसे भी हमपर तुम्हारा विरोधी भाव न हो।

मानव धर्म— मित्रको उचित है कि वह अपने मित्रका भरणपोषण न हो ऐसा कोई कार्य न करे। मित्रके विषयमें बुरे विचार भी प्रकाशित न करे। भ्रमसे भी मित्रका घातपात न हो ऐसा कोई कार्य न करे।

१ सखा नः दुर्भृतये मा प्रवोचः— कोई साथी अपने मित्रोंके भरणपोषणमें बाधा डालनेका यत्न न करे।

२ दुर्मतयः मा— कोई मित्र अपने साथीके संबंधमें बुरे विचार प्रकट न करे।

३ भृमात् चित् सखा मा नशंत— भ्रमसे भी मित्रके विषयमें उसका साथी बुरे विचार प्रकट न करे।

[२३] हे (स्वनीक अग्ने) उत्तम तेजस्वी अग्ने! (अमर्त्ये यः हव्यं आ जुहोति) अमर ऐसे तुझ अग्निमें जो हवन करता है। (सः मर्तः रेवान्) वह मनुष्य धनवान् होता है। (यं सूरिः अर्थी पृच्छमानः एति) जिसके विषयमें ज्ञानी और धनकी कामना करनेवाला पूछता हुआ आता है (सः देवता वसुवनिं दधाति) वह देवताके उद्देश्यसे धन अर्पण करता है।

[२४] हे अग्ने! (नः महो सुवितस्य विद्वान्) हमारे बडे कल्याणकारक कर्मके ज्ञाता तू है। (सूरिभ्यः बृहन्तं रयिं आ वह) विद्वानोंके लिये उस बडे ऐश्वर्यका प्रदान कर। हे (सहसाऽवन्) बलसे संरक्षण करनेवाले अग्ने! कि (येन वयं आयुषा अविक्षितासः) जिससे हम आयुसे क्षीण न होते हुए, पूर्णायुषी होकर, (सुवीराः मदेम) उत्तम वीर पुत्र पौत्रोंके साथ आनंदसे रहेंगे।

मानव धर्म— कल्याण जिससे होगा, उस मार्गको जानना चाहिये। ज्ञानियोंको धनका दान करना योग्य है। ऐसा कर्म करना चाहिये कि जिससे आयु क्षीण न हो, मनुष्य पूर्णायुषी हो और वे उत्तम वीर सन्तानोंके साथ रहकर हृष्ट पुष्ट हों।

१ महो सुवितस्य विद्वान्— महान कल्याण जिसमें निःसंदेह होगा उस मार्गको जानना चाहिये।

२ सूरिभ्यः बृहन्तं रयिं आवह— ज्ञानियोंके लिये बडा धन देना चाहिये।

३ आयुषा अविक्षितासः— आयुसे क्षीण कोई न हो, सब पूर्ण आयुवाले हों, दीर्घायु हों।

४ सुवीराः मदेम— उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त होकर सब आनंदसे युक्त हृष्ट पुष्ट हों।

[२५] (पचीस वां मन्त्र २० वाँ मंत्र ही है। इसका अर्थ पूर्वोक्त २० वें मंत्रका अर्थ ही देखो।)

(२) ११ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। आप्रीसूक्तं = (१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः)। त्रिष्टुप्।

१ जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद् यजतं धूममृण्वन्।
उपस्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य २६

२ नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या २७

३ ईळेन्यं वो असुरं सुदक्षमन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम्।
मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम २८

---

[१] (२६) हे अग्ने! (नः समिधं अद्य जुषस्व) हमारी समिधाका आज स्वीकार करो। (यजतं धूमं ऋण्वन्) प्रशस्त धूमको फैलाकर (बृहत् शोच) बहुत प्रकाशित हो। (दिव्यं सानु स्तूपैः रश्मिभिः उपस्पृश) अन्तरिक्षमें पहुंचे पर्वतके ऊंचे भागको अपने तप्त रश्मियोंसे स्पर्श करो। (सूर्यस्य रश्मिभिः संततनः) सूर्यके किरणोंके साथ मिलकर रहो।

[२] (२७) (ये देवाः सुक्रतवः) जो देव उत्तम यज्ञका संपादन करनेवाले हैं, (शुचयः धियंधाः) शुद्ध हैं और बुद्धिका वा कर्म शक्तिका धारण करते हैं, वे (उभयानि हव्या स्वदन्ति) दोनों प्रकारके हविर्द्रव्योंका आस्वाद लेते हैं। (एषां) उनके मध्यमें (नराशंसस्य यजतस्य) नरोंद्वारा प्रशंसित तथा पूजनीय अग्निकी (महिमानं) महिमाको (यज्ञैः उपस्तोषाम) हविर्द्रव्योंके अर्पणके साथ हम वर्णन करते हैं।

मानव धर्म--जो उत्तम कर्म करनेवाले शुद्ध और बुद्धिमान हैं, उनमें जो सब मनुष्यों द्वारा प्रशंसित और अधिक पूजनीय है उसकी महिमाका वर्णन करना चाहिये।

१ सुक्रतवः शुचयः धियंधाः-उत्तम कर्म करना, पवित्र होना और बुद्धि तथा श्रेष्ठ कर्म उत्तम रीतिसे करनेकी शक्तिको धारण करना प्रत्येकको योग्य है।

२ नराशंसस्य यजतस्य महिमानं उपस्तोषाम--सब मनुष्यों द्वारा प्रशंसित होनेवाले पूजनीय वीरकी महिमाका हम वर्णन करते हैं।

मनुष्य उत्तम कर्म करे, अत्यंत पवित्र बने, और उत्तम बुद्धिका तथा कर्म शक्तिका धारण करे। मानवों द्वारा प्रशंसित तथा पूजनीय महा पुरुषका गुणगान गायन करे।

[३] (२८) (वः ईळेन्यं असुरं सुदक्षं) आप सबके लिये स्तुत्य, बलवान, उत्तम दक्ष, (रोदसी अन्तः दूतं) द्युलोक और पृथिवीके मध्यमें दूतके समान कार्य करनेवाले (सत्यवाचं) सत्यभाषी, (मनुष्वत् मनुना समिद्धं) मनुष्योंके समान मनुने प्रदीप्त किये (अग्निं अध्वराय) अग्निको अहिंसामय कर्म करनेके लिये (सदं इत् सं महेम) सदा ही हम सुपूजित करते हैं।

मानव धर्म--जो स्तुत्य, बलवान्, दक्ष, सत्यभाषी सेवकके समान कार्यकर्ता होता है, उसको हिंसा-कुटिलता रहित कार्यके लिये बुलाना और सत्कार करना योग्य है।

१ ईळेन्यं असुरं सुदक्षं सत्यवाचं अध्वराय महेम--प्रशंसनीय कार्य करनेवाले बलवान्, उत्तम दक्षतासे कर्तव्य करनेवाले, सत्यभाषी, दूतका उसके अहिंसक कर्मके लिये सत्कार करना योग्य है।

ये उत्तम दूतके तथा राजदूतके लक्षण हैं।

४ सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृञ्जते नमसा बर्हिरग्नौ ।
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्वदध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम् २९

५ स्वाध्यो३ वि दुरो देवयन्तोऽशिश्रयू रथयुर्देवताता ।
पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुवो न समनेष्वञ्जन् ३०

६ उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम् ३१

७ विप्रा यज्ञेषु मानुषेषु कारू मन्ये वां जातवेदसा यजध्यै ।
ऊर्ध्वं नो अध्वरं कृतं हवेषु ता देवेषु वनथो वार्याणि ३२

---

[४] (२९) (सपर्यवः) अग्निकी सेवा करनेवाले (अभिज्ञु भरमाणाः) घुटने टेककर पात्रको भरते हुए (बर्हिः नमसा अग्नौ प्रवृञ्जते) दर्भोंको हविर्द्रव्यके साथ अग्निमें अर्पण करते हैं। हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो! (घृतपृष्ठं पृषद्वत्) घृतसे सिंचित स्थूल घृत बिंदुओंसे युक्त दर्भमुष्टिको (हविषा आजुह्वानाः मर्जयध्वं) हविके साथ हवन करनेके समय परिशुद्ध करके हवन करो।

[५] (३०) (स्वाध्याः देवयन्तः) उत्तम कर्म करनेवाले, देवताकी भक्ति करनेवाले (रथयुः) रथकी कामना करनेवाले (देवताता दुरः वि अशिश्रियुः) यज्ञके अन्दर द्वारोंका आश्रय करते हैं। (समनेषु पूर्वीः) यज्ञोंमें पूर्वकी ओर अग्रभाग करके रहनेवाले जुहू आदिकोंको (शिशुं न मातरा) वत्सको गोमाताके (रिहाणे) चाटनेके समान तथा (अग्रुवः न) अग्रगामी नदियाँ क्षेत्रोंको अपने उदकसे सिंचन करनेके समान (सं अंजन्) अग्निको घृतसे सिंचन करते हैं।

[६] (३१) (उत दिव्ये योषणे) और दो दिव्य युवतियां (मही बर्हिषदा) बडी और दर्भोंपर बैठनेवाली (पुरुहूते मघोनी) बहुतों द्वारा प्रशंसित होनेवाली तथा धनवाली (यज्ञिये उषा सानक्ता) पूजनीय उषा और रात्री (सुदुघा धेनुः इव) उत्तम दूध देनेवाली गौके समान (नः सुविताय आ श्रयेतां) हमारे कल्याणके लिये हमें आश्रय देती रहें।

उषा और रात्रीको- अहोरात्रको यहां दो स्त्रियोंकी उपमा दी है। ये दिव्य स्त्रियां हैं, धनवाली हैं, बहुतों द्वारा प्रशंसित हो रही हैं। उत्तम गुणवाली होनेके कारण सब लोग इनकी प्रशंसा करते हैं।

'मघोनी योषणे' इन दो पदोंसे यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियां भी धनवती हो सकती हैं, अपना निज धन अपने पास अपने अधिकारमें रख सकती हैं। तथा ये धनवती होनेके कारण **'नः सुविताय आश्रयेतां'** हमारा कल्याण करनेके लिये हमें आश्रय देवें। अर्थात् दूसरोंका कल्याण करनेके लिये उनको आश्रय दे सकती हैं। इससे पता चलता है कि ये स्त्रियां सर्वथा परतंत्र नहीं थीं। अपना धन पास रखतीं, दूसरोंको आश्रय देती और उनका कल्याण कर सकती थी। इस वेदमंत्रने स्त्रियोंको अपना धन अपने पास रखनेका अधिकार दिया है।

[७] (३२) हे (विप्रा जातवेदसा) ज्ञानी और धन उत्पन्न करनेवाले, (मानुषेषु कारू) मानवोंमें कुशलतासे कर्म करनेवाले दिव्य होताओ! (वां यजध्यै मन्ये) आपकी मैं यज्ञके लिये स्तुति करता हूं। (हवेषु नः अध्वरं ऊर्ध्वं कृतं) इन हवनोंमें हमारे हिंसा रहित यज्ञ कर्मको उच्च करो। (ता देवेषु वार्याणि वनथः) वे आप दोनों देवोंमें हमारे धनोंको पहुंचाइये।

मानव धर्म— कारीगरलोग मानवोंमें कुशल हों और वे विशेष ज्ञानी तथा धनका उत्पादन करनेवाले हों। सब ऐसे कारीगरोंकी प्रशंसा करें। वे यज्ञमें सत्कार पावें। यज्ञको उत्तम रीतिसे निभावें। व्यवहार करनेवालोंको धन देवें।

८ आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ३३

९ तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ३४

---

१ मानुषेषु कारू विप्रौ जातवेदसौ-मनुष्योंमें कारीगर विशेष बुद्धिमान, विशेष ज्ञानी और धनका उत्पादन करने वाले हों ।

२ यजध्यै मन्ये—उन कारीगरोंका सत्कार करनेके लिये उनका सन्मान होता रहे ।

३ अध्वरं ऊर्ध्वं कृतं—ये कारीगर अपने कर्मोंको हिंसा तथा कुटिलता रहित और उच्च बनावें ।

४ देवेषु वार्याणि वनथः—विजिगीषु व्यवहार कर्ताओंको उत्तम धन देओ ।

कारू—कर्ममें कुशल, कारीगर, कौशल्यके कर्म करनेवाले ।

जातवेदसौ—जातधनौ-अपनी कारीगरीसे धनका उत्पादन करनेवाले, राष्ट्रमें कारीगर ही धनका उत्पादन करते हैं इसलिये वे सन्मानके योग्य है ।

देवौ—देव वे होते हैं कि जो व्यवहार करते हैं, उन व्यवहारोंमें विजयी होनेकी इच्छा करते हैं । (दिवु-विजिगीषा, व्यवहार०)

वार्य—धन, जो सब प्रकारसे चोर आदिके निवारण पूर्वक संरक्षणके योग्य होता है ।

[८] (३३) (भारती भारतीभिः सजोषा) भारती भारतीयोंके साथ (देवैः मनुष्येभिः इळा अग्निः) देवों और मनुष्योंके साथ इळा रूप अग्नि और (सारस्वतेभिः सरस्वती) सारस्वतोंके साथ सरस्वती ये (तिस्रः देवीः) तीन देवियाँ (अर्वाक्) पास आजांय और (इदं बर्हिः आ सदन्तु) इस आसनपर बैठें ।

तीन देवियां

मानवधर्म— भारती यह देशभाषा है। मातृभाषा इसका नाम है। इळा मातृभूमिका नाम है। और सरस्वती प्रवाहवाली संस्कृति है। मातृभाषा, मातृभूमि और मातृसभ्यता ये तीन देवताएं हैं जिनका सत्कार यज्ञमें होना चाहिये ।

ये तीनों अग्निके रूप है । मातृभाषा भी अग्निका रूप है क्योंकि अग्निसे ही वाणी उत्पन्न होती है । मातृभूमि भी अग्निका रूप है क्योंकि भूमि अग्निका ही स्थान है और सभ्यता या संस्कृति भी अग्निके समान तेजस्वी होती है । इन तीन देवियोंकी भक्ति होती रहनी चाहिये ।

भारतीभिः भारती— उपभाषाओंके साथ राष्ट्रभाषा प्रांत भाषाओंके साथ राष्ट्रभाषा सहायक होकर रहे ।

देवेभिः मनुष्यैः इळा—दिव्य मनुष्योंके साथ मातृभूमि उन्नत होती रहे । दिव्य वे हैं कि जो " क्रीडाकुशल, विजयेच्छु, व्यवहार चतुर, तेजस्वी, प्रशंसनीय, प्रसन्न, आनन्दित, प्रिय कर्मकर्ता, और प्रगतिशील " होते हैं ।

सारस्वतेभिः सरस्वती--सरस्वतीके उपासकोंको सारस्वत कहते हैं । इनके साथ सभ्यता रहती है ।

मनुष्योंको इन तीन देवियोंकी भक्ति करनी चाहिये ।

उत्तम संतानकी उत्पत्ति

[९] (३४) हे (देव त्वष्टः) त्वष्टा देव ! (रराणः) प्रसन्न होकर तू (नः) हमें (तत् तुरीयं पोषयित्नु वि स्य स्व) उस त्वरित पुष्टि करनेवाले वीर्यको प्रदान करो। हमें वीर्यवान बनाओ । (यतः) जिस वीर्यसे (कर्मण्यः सुदक्षः) कर्म करनेमें तत्पर दक्ष (देवकामः युक्तग्रावा) देवत्वको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला और यज्ञकर्ता (वीरः जायते) वीर होता है ।

मानवधर्म— **मनुष्य अपने अन्दर ऐसा बलवर्धक और पोषक वीर्य उत्पन्न करें कि जिससे पुरुषार्थ साधन करनेवाला, दक्षतासे कर्म करनेवाला, दिव्यगुणोंको अपने अन्दर धारण करनेकी इच्छा करनेवाला, यज्ञ करनेकी इच्छावाला वीर पुत्र उत्पन्न हो ।**

*

१० वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ३५

११ आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ३६

मनुष्यको पुत्र चाहिये, पर वह पुरुषार्थी, कर्म करनेमें प्रवीण, दक्ष, दिव्यगुण संपन्न, सत्कर्म करनेवाला शूर वीर धीर ऐसा होना चाहिये। पुरुषार्थहीन, कुशलताहीन, ढीला, आसुरी दुर्गुणोंसे युक्त, स्वार्थी, लोभी, भोगी, भीरू ऐसा कुपुत्र नहीं होना चाहिये। मातापिता अपना पुत्र पूर्वोक्त सुलक्षणोंसे युक्त हो ऐसी इच्छा करें। जैसा वीर्य वैसा पुत्र। इसलिये मातापिता अपनेमें ऐसे सुपुत्रकी प्रबल इच्छा करें जिससे उनके वीर्यमें वे गुण उतरेंगे और वैसे ही गुण रजसे मिलकर निःसंदेह ऐसा दिव्य गुणवाला पुत्र उत्पन्न होगा।

१ **तुरीयं पोषयिष्णु**— अन्न ऐसा सेवन करना चाहिये कि जो सत्वर शुक्र बनानेवाला और पुष्टि देनेवाला हो।

ये सब नियम उत्तम संतानकी उत्पत्तिके लिये आवश्यक हैं।

[१०] (३५) **हे वनस्पते ! (देवान् उप अव सृज) देवोंको यहां ले आ। (अग्निः शमिता हविः सूदयाति) अग्नि शान्ति करनेवाला होकर अन्नको पकाता है। (स इत् उ होता सत्यतरः यजाति) वह देवोंको बुलानेवाला अग्नि अधिक सत्य यज्ञनिष्ठ होकर यज्ञ करता है। (यथा देवानां जनिमानि वेद) वह देवोंके जन्म वृत्तान्तको यथायोग्य रीतिसे जानता है।**

मानवधर्म— दिव्य विबुधोंको यहां पास बुला ले आओ। उनको देनेके लिये अन्न उत्तम रीतिसे पकाओ। सत्यनिष्ठासे वह अन्न उनको देओ। दिव्य विबुधोंके जीवन वृत्तोंको यथावत् जानो (जिनसे तुम्हें पता लग जायगा कि दिव्य जीवन किस तरह बन सकते हैं)।

१ **देवान् उप अवसृज**— दिव्य विबुधोंको समीप ले आओ। विद्वानोंमें एकता करो। वे एक स्थानपर आकर बैठें ऐसा करो। विद्वानोंकी सभा बनाओ, वे एक स्थानपर आयें और विचार करें ऐसा करो।

२ **देवानां जनिमानि वेद**— दिव्य विबुधोंके जीवन वृत्तान्त जानो। जानकर वैसा बननेका यत्न करो।

३ **स सत्यतरः यजाति**— ऐसा जाननेवाला अधिक सत्यनिष्ठ होता है और वह यजन करता है।

[११] (३६) **हे अग्ने! (समिधानः) प्रदीप्त होकर (अर्वाक्) हमारे समीप (इन्द्रेण तुरेभिः देवैः) इन्द्र और त्वारा करनेवाले देवोंके साथ (सरथं आयाहि) एक रथमें बैठकर आओ। (सुपुत्रा अदितिः) उत्तम पुत्रोंकी माता अदिति (नः बर्हिः आस्तां) हमारे इस आसनपर बैठे। (अमृताः देवाः स्वाहा मादयन्तां) अमर देव स्वाहाकारसे दिये अन्नसे आनन्दित हों।**

मानवधर्म— स्वयं तेजस्वी बनकर सत्वर कार्य करनेवाले विबुधोंके साथ यहां आकर कार्य करो। उत्तम पुत्रोंकी माता यहां आकर आसनपर बैठे, उस माताका सत्कार होता रहे। अमर देव उत्तम अन्नसे आनन्दित होते रहें।

१ **सुपुत्रा अदितिः बर्हिः आस्तां**— उत्तम पुत्रोंकी माता दीन नहीं होती, उसका सत्कार हो। जिसके पुत्र तेजस्वी होंगे उनकी वह माता कदापि (अदितिः— अदीना) दीन नहीं होती, वह सामर्थ होती है, वह (अत्ति इति अदितिः) उत्तम भोजन करती है। उत्तम पुत्र होनेसे भाग्य बढता है।

२ **अमृताः देवाः स्वाहा मादयन्तां**— अमृत अन्न खानेवाले अर्थात् मुर्देसे प्राप्त होनेवाले पदार्थ न खानेवाले ज्ञानी (स्व—हा) आत्मार्पण करनेसे आनंदित होते हैं।

३ **तुरेभिः देवैः सरथं आयाहि**— सत्वर कर्तव्य कर्म करनेवाले विबुधोंके साथ एक रथमें बैठकर आजाओ। सुस्तोंके साथ न रह। चुस्तोंके साथ सदा रहना लाभदायक है।

(३) १० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ३७

२ प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा महः संवरणाद् व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ३८

[१] (३७) (वः) आप (अग्निभिः सजोषाः) अन्य अग्नियोंके साथ रहनेवाले (यजिष्ठं) पूजा योग्य (अग्निं देवं) अग्नि देवको (अध्वरे दूतं कृणुध्वं) हिंसा रहित प्रशस्ततम कर्ममें दूत बनाइये । (यः मर्त्येषु निध्रुविः) जो मर्त्योंमें रहनेवाला, (ऋतावा) सत्यका पालन करनेवाला (तपः मूर्धा) तेजसे तपनेवाला (घृतान्नः पावकः] घी खानेवाला और पवित्रता करनेवाला होता है ।

मानवधर्म-- जो स्वयं अग्निके समान तेजस्वी है, और जो तेजस्वी मित्रोंके साथ रहता है, ऐसे सत्कार करने योग्य पुरुषको दूत बनाना योग्य है । यह दूत मानवोंमें रहनेवाला हो, सत्यनिष्ठ हो, अपने तेजसे शत्रुको तपानेवाला हो; पवित्रता करनेवाला तथा घृतमिश्रित अन्न खानेवाला हो ।

१ अग्निभिः सजोषा अग्निं देवं दूतं कृणुध्वं- तेजस्वी पुरुषोंके साथ सदा रहनेवाले तेजस्वी ज्ञानी पुरुषको विशेष कार्यमें नियुक्त करो । मित्र, दूत , राजदूत नियुक्त करना हो तो जिसके मित्र तेजस्वी हों ऐसा ही तेजस्वी पुरुष नियुक्त करना चाहिये । जो हीन साथीयोंके साथ सदा रहता है ऐसे हीन पुरुषको महत्त्वके स्थानपर रखना योग्य नहीं है । अग्निका ऊर्ध्वज्वलन है, प्रकाश देता है, मार्ग बताता है । ऐसे जिसके उत्तम कर्म हों वही महान कार्यके लिये योग्य है ।

२ मर्त्योंमें निध्रुविः--जो सदा मानवोंमें मिलजुलकर रहता है वही मानवके हितके कार्यमें नियुक्त करना योग्य है । जो मनुष्योंमें रहता नहीं, जो जनताके सुख दुःखको जानता नहीं, जो लोगोंसे सुदूर रहता है वह जनताके हितको कैसे जान सकेगा ? इसलिये महत्त्वके स्थानपर ऐसा पुरुष नियुक्त करना चाहिये कि जो जनतामें रहनेवाला हो ।

३ ऋतावा, पावकः, तपुर्मूर्धा—सत्यनिष्ठ, स्वयं पवित्र रह कर सर्वत्र पवित्रता करनेवाला और जिसका सिर तेजस्वी है ऐसा पुरुष महत्त्व पूर्ण कार्यके लिये नियुक्त करना चाहिये ।

४ घृतान्नः--जिस अन्नमें घी अधिक मात्रामें है ऐसा घृत मिश्रित अन्न खानेवाला पुरुष हो । अर्थात् पवित्र अन्न खानेवाला हो । घी विषका शमन करता है । इसलिये घी भोजनमें पर्याप्त प्रमाणमें हो ।

५ अध्वर--जिस कार्यमें हिंसा कुटिलता, टेढापन, कपट आदि न हो और जिससे सबका कल्याण होता हो वह कार्य यज्ञ कार्य है वह श्रेष्ठतम वा प्रशस्ततम कार्य हो । ऐसे कार्यके लिये इन शुभ गुणोंसे युक्त जो पुरुष होगा, उसीको नियुक्त करना उचित है ।

इस मन्त्रमें ' अग्नि ' के वर्णनके मिषसे महत्त्वके कार्यमें किसकी नियुक्ति हो, वह बताया है । ' जो अग्नि अग्नियोंके साथ रहता है उसको यज्ञमें नियुक्त करो ' यह मंत्र है इसीका अर्थ जो वीर वीरोंके साथ रहता है उसको वीरोचित कार्यमें नियुक्त करो । ' इसी तरह मंत्रसे मानव धर्मका बोध होता है ।

[२] (३८) (यवसे अविष्यन्) घास खानेवाला (प्रोथत् अश्वः न) घोडा जैसा शब्द करता है, वैसा (यदा महः संवरणात् व्यस्थात्) बडे निरोधनसे अग्नि काष्ठोंपर रहता है [उस समय वह शब्द करता है और लकडीयोंको खाता भी है] इस समय (अस्य शोचिः अनु) इसके प्रकाशके अनुकूल (वातः अनुवाति) वायु बहता है । (अध ते व्रजनं कृष्णं अस्ति) और तेरा मार्ग काला होता है ।

छोटापन और बडापन

यहां एक बडा सिद्धान्त कहा है वह यह कि जिस समय अग्नि छोटा रहता है उस समय वायु जोरसे बहने लगा, तो वह छोटा अग्नि बुझ जाता है । पर वही अग्नि जिस समय बडा रूप धारण करके दावानल बन जाता है, उस समय उसी अग्निकी सहायता

३ उद् यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।
अच्छा द्यामरुषो धूम एति सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ३९

४ वि यस्य ते पृथिव्यां पाजो अश्रेत् तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः ।
सेनेव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस्म जुह्वा विवेक्षि ४०

५ तमिद् दोषा तमुषसि यविष्ठमग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः ।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः ४१

वायु करता है। जो वायु छोटी अग्निका शत्रुसा था वही वायु बडे अग्निका मित्र और सहायक होता है। छोटेपनके कारण जो शत्रु जैसे बर्तते हैं, वेही बडापन प्राप्त होनेपर मित्र हो जाते है। यही विश्वव्यवहार है। छोटे अग्निरूप दीपको वायु बुझा देती है, पर वही अग्नि दावानल बनकर वनोंको जलाने लगे तो वही वायु उसका सहायक होता है। अर्थात् छोटेपनमें शत्रु बढते हैं और बडापन प्राप्त होनेपर वेही मित्रता करने लग जाते हैं।

१ अस्य शोचिः वातः अनुवाति-- इस अग्निका प्रकाश बढने लगा तो वायु भी अनुकूल होकर बहने लग जाता है।

छोटेपनमें दुःख और बडेपनमें सुख तथा निर्भयता है।

[३] (३९) हे अग्ने ! **(नवजातस्य वृष्णः यस्य ते) नवीन उत्पन्न हुए तुझ बलशालीकी (अजराः इधानाः) जरा रहित ज्वालाएं (उत् चरन्ति) ऊपर उठती हैं। (अरुषः धूमः) इसका प्रकाशमान धूवां (द्यां अच्छ एति) द्युलोकमें सीधा जाता है। हे अग्ने ! तू हमारा (दूतः देवान् हि सं ईयसे) दूत होकर देवोंके पास पहुंचता है।**

अग्निकाज्वलन ऊपर होता है. उसकी ज्वालाएं ऊपरकी ओर जाती हैं, धूवां ऊपर जाता है, यह स्वयं देवोंमें जाकर बैठता है। अग्निका सभी कर्म उच्च मार्गसे होता है। अतः अग्नि उच्च-प्रगति करनेवाली देवता है। नीच गति करनेवाली नहीं है। इसीलिये इनकी गति देवोंमें होती है। जिसका ऐसा स्वभाव होगा वह भी ऐसा ही प्रगति ही करेगा।

[४] (४०) (यस्य ते पाजः पृथिव्यां) तेरा तेज पृथिवीपर (तृषु व्यश्रेत्) शीघ्र ही फैलता है, (यत् अन्ना जंभैः समवृक्त) जब तू अपने काष्ठ रूप अन्नोंको अपने जबडों--ज्वालाओं-से खाने लगता है, तब (ते सेना इव सृष्टा प्रसितिः एति) तेरी सेना जैसी ज्वालाएँ तेरेसे छूटीं हुई धडाकेसे हमला करती है। हे (दस्म) दर्शनीय अग्ने ! तूं (यवं न जुह्वा विवेक्षि) जौ के खानेके समान ज्वालाओंसे काष्ठोंको भक्षण करता है।

युद्धनीति

यहां अग्निकी ज्वालाओंको सेनाके (ते प्रसितिः सेना इव एति) आक्रमणकी उपमा दी है। इससे युद्ध विद्याकी एक बात मालूम पडती है वह यह कि जिस तरह अग्नि धडाकेसे क्रम पूर्वक वनकी लकडियोंको खाना जाता है, उस तरह अपने सैन्यके द्वारा शत्रुके प्रदेशको क्रम पूर्वक पादाक्रान्त करना चाहिये।

[५] (४१) **(यविष्ठं अतिथिं तं इत् अग्निं) अत्यंत तरुण, अतिथिके समान पूज्य उस अग्निको (दोषा उषसि) रात्रीके तथा उषा या दिनके समय (तं अस्य योनौ निशिशानाः नरः) उसके उत्पत्तिस्थानमें प्रदीप्त करनेवाले नेता लोग (अत्यं न) घोडेके समान (तं मर्जयन्तः) उसको शुद्ध करते वा सेवा करते हैं। (आहुतस्य वृष्णः शोचिः दीदाय) हवन हुए बलवान अग्निकी ज्वाला अधिक प्रदीप्त होती है॥**

१ अतिथिं दोषा उषसि मर्जयन्तः—अतिथिकी सेवा दिन और रात्रीमें भी करो। 'अतिथि देवो भव' इसका वेदमंत्रमें यह आधारवचन है।

२ अत्यं न दोषा उषसि मर्जयन्तः--घुडदौडमें दौड लगानेवाले घोडेकी सेवा दिन रात करते हैं, या करनी चाहिये। घुड दौडके लिये घोडे इस तरह सेवा करके तैयार रखे जाते थे।

६ सुसंदृक् ते स्वनीक प्रतीकं वि यद् रुक्मो न रोचस उपाके।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम् ४२

७ यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि ४३

८ या वा ते सन्ति दाशुषे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुरुष्याः।
ताभिर्नः सूनो सहसो नि पाहि स्मत् सूरीञ्जरितॄञ्जातवेदः ४४

---

३ **यविष्ठं दोषा उषासि निशिशाना नरः मर्जयन्तः**- तरुणकी रात्रीमें तथा दिनमें उनको अधिक तेजस्वी करनेके लिये शुद्धता की जाती है, या की, जानी चाहिये। तरुण राष्ट्रके आधार स्तंभ हैं, इसलिये उन्हें अधिक कार्यक्षम बनना चाहिये, अधिक तेजस्वी बनना चाहिये, इसलिये उनकी कार्यक्षमता बढानेके लिये दिन रात यत्न करना चाहिये।

४ **अस्य योनौ निशिशानाः नरः**—इसके उत्पत्ति स्थानकी शुद्धता नेता लोग करते हैं। घोडेकी वंशावली देखते हैं, अग्निकी अरणियोंकी पवित्रता करते है, इसी तरह मातापिता-ओंको परिशुद्ध रखते हैं जिससे उत्तम वीर पुत्र उत्पन्न हों वे सामर्थ्यमें बढते जांय।

[६] (४२) हे (**स्वनीक**) उत्तम तेजस्वी अग्ने! तू (**यत् रुक्मः न**) जब सूर्यके समान (**उपाके रोचसे**) समीप स्थानमें प्रकाशित होता है, तब (**ते प्रतीकं सुसंदृक्**) तेरा रूप उत्तम दर्शनीय होता है। तथा (**ते शुष्मः दिवः तन्यतुः न एति**) तेरा प्रकाश विद्युत्‌के समान फैलता है। (**चित्रः सूरः न**) दर्शनीय सूर्यके समान (**भानुं प्रति चक्षि**) अपनी दीप्तिको भी तू दर्शाता है।

अग्निके समान मानव अधिकाधिक तेजस्वी होता जाय।

[७] (४३) हे अग्ने! (**अग्नये वः स्वाहा**) तुझ अग्निके लिये दिये हुए हविसे तथा (**इळाभिः घृतवद्भिः हव्यैः यथा परिदाशेम**) गौओंके घृतसे मिश्रित हवन द्रव्योंसे जब हम तुम्हारी सेवा करते हैं, तब तू भीः (**तेभिः अमितैः महोभिः**) उन अपरिमित तेजोंसे (**शतं आयसीभिः पूर्भिः नः नि पाहि**) सैकडों लोहेके कीलोंसे हमारी सुरक्षा कर।

१ अग्निमें गौके घीसे भीगे हवन द्रव्य डालने चाहिये।

२ **आयसीभिः शतं पूर्भिः अमितैः महोभिः नः पाहि**—लोहेके सेंकडों कीलोंसे और अपरिमित सामर्थ्योंसे हमारी उत्तम सुरक्षा कर।

यहां " आयसी शतं पूः " का वर्णन है। ' आयस् ' का अर्थ, लोहा, पत्थर अथवा सुवर्ण है। ' पूः या पुर, पुरी ' नाम नगरीका है। पुरी बडी नगरीका नाम है। पुरीके बाहर पत्थरों-का शक्तिशाली किला होना चाहिये। प्राकार लोहेसे प्रभावी बनाया हो ऐसे सेंकडों कीलोंसे अपना संरक्षण करनेका प्रबंध करना चाहिये। प्राकारमें सेंकडों पक्के स्थान हों जिनमें नगरीके संरक्षण करनेके स्थान हों। नगरीमें धन तथा सुवर्ण हो, और कीला लोहेके जैसा मजबूत हो। इस तरह नगरीयों की सुरक्षा करनी चाहिये। इस नगरीके बाहरके कीलेमें (अमितैः महोभिः) अपरिमित तेजस्वी साधन ऐसे हों कि जिनसे शत्रुका नाश सहजहीसे होता रहे। इस तरह नगरियां सुरक्षित होनी चाहिये। और राष्ट्रमें ऐसी सुरक्षित नगरियां सेंकडों होनी चाहिये। राष्ट्र रक्षाका प्रबंध किस तरह और कितना होना चाहिये, वह इस मंत्रसे विदित हो सकता है। मनुष्य अपनी नगरियोंको इस तरह सुरक्षित बनाकर उनमें सुखसे रहें।

[८] (४४) हे (**सहसः सूनो जातवेदः**) बल-से उत्पन्न होनेवाले वेदोत्पादक अग्ने! (**दाशुषे ते या वा सन्ति**) दाताके लिये हितकारी जो तुम्हारी ज्वालाएं हैं, तथा जो (**अप्रधृष्टाः गिरः वा**) अहिंसित वाणियां हैं, (**याभिः नृवतीः उरुष्याः**) जिनसे सुपुत्रवती प्रजाका तुम रक्षण करते हो, (**ताभिः न स्मत् सूरीन् जरितॄन् नि पाहि**) उनसे हमारे विद्वानों और स्तोताओंको सुरक्षित कर।

९ निर्यत् पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात् स्वया कृपा तन्वा३ रोचमानः ।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ४५

१० एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४६

(४) १० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम् ।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ४७

---

१ **नृवतीः उरुष्याः**—संतानवाली प्रजाका संरक्षण करना चाहिये । संतानका संरक्षण होना चाहिये ।

२ **सूरीन् पाहि**—विद्वानोंकी सुरक्षा कर ।

[९] (४५) **(यत् शुचिः स्वया तन्वा कृपा) जब पवित्र अग्नि अपनी फैली हुई ज्वालारूपी कृपासे (रोचमानः) प्रदीप्त होता है तब (पूता इव स्वधितिः) तीक्ष्ण शस्त्रके समान वह (निः गात्) बाहर आता है, अरणियोंसे बाहर आता है । (यः उशेन्यः) जो कामना योग्य प्रिय (सुक्रतुः पावकः) उत्तम कर्म करनेवाला, पवित्रता करनेवाला (मात्रोः आ जनिष्ट) दोनों अरणिरूप माताओंसे उत्पन्न हुआ वह (देव यज्याय) देवोंके यजन करनेके लिये ही हुआ है ।**

जिस तरह अग्नि दोनों अरणियोंसे उत्पन्न होता है, उस समय वह तीक्ष्ण शस्त्र म्यानसे बाहर आनेके समान चमकता है । म्यानसे बाहर निकलनेवाला शस्त्र जैसा चमकता है, वैसा अग्नि दोनों अरणियोंके मध्यमें चमकता है । यहां अरणीको म्यानकी और अग्निको तीक्ष्ण तेजस्वी शस्त्रकी उपमा दी है ।

१ **रोचमानः शुचिः पूता स्वधितिः इव निःगात्**—प्रकाशित होनेवाला पवित्र अग्नि तीक्ष्ण शस्त्र म्यानसे बाहर आनेके समान चमकता है ।

२ **उशेन्यः सुक्रतुः पावकः देवयज्यायै मात्रोः आ जनिष्टः**—प्रिय उत्तम कर्मकर्ता पवित्रता करनेवाला सुपुत्र देवोंके यजनके लिये ही मातापितासे उत्पन्न हुआ है ।

यहां पुत्रके गुण ये कहे हैं, (वशेन्यः) वशमें रहनेवाला, प्रिय, (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाला, (पावकः) पवित्रता करनेवाला (देवयज्यायै) देवोंके पूजनके कार्य करनेवाला, ईश्वर भक्त । पुत्रमें ये शुभ गुण होने चाहिये ।

[१०] (४६) **हे अग्ने ! (एता सौभगा नः दिदीहि) ये उत्तम कर्म करनेवाले उत्तम ऐश्वर्य हमें दे दो । (अपि क्रतुं सुचेतसं वतेम) और उत्तम कर्म करनेवाले उत्तम बुद्धिमान पुत्रको हम प्राप्त करेंगे । (विश्वा स्तोतृभ्यः गृणते च संतु) सब धन ईश्वर भक्तोंके लिये मिलते रहें । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करके सुरक्षित रखो ।**

१ **सौभगा नः दिदीहि**—हमें सब प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त हों । हम धनवान् और ऐश्वर्यवान् बनें ।

२ **सुचेतसं क्रतुं वतेम**—उत्तम बुद्धिवान् तथा उत्तम कर्म करनेवाले पुत्रको हम प्राप्त करें । हमें पुरुषार्थी बुद्धिमान पुत्र हों ।

३ **गृणते विश्वा सन्तु**-ईश्वर भक्तके लिये सब ऐश्वर्य प्राप्त हों

४ **स्वस्तिभिः नः पात**—कल्याणकारक उपायोंसे हमें सुरक्षित कर ।

ऐश्वर्य, धन, उत्तम संतान चाहिये इनका तिरस्कार करना उचित नहीं है ।

[१] (४७) **(वः शुक्राय मानवे सुपूतं) तुम सब शुद्ध तेजस्वी अग्निके लिये उत्तम पवित्र (हव्यं मतिं च प्रभरध्वं) हव्य पदार्थ तथा उत्तम बुद्धि अर्थात् स्तोत्र भर दो, कर दो, गाओ (यः दैव्यानि मानुषा विश्वानि) जो दिव्य और मानुष ऐसे सब (जनूंषि अन्तः विद्मना जिगाति) प्राणियोंके जन्मोंमें अन्दर ही अन्दर ज्ञानसे संचार करता है ।**

शुद्ध अग्निके लिये उत्तम पवित्र हवनीय पदार्थ अर्पण करो और उत्तम स्तोत्र गाओ । वह अग्नि सब दिव्य और मानुष आदि प्राणियोंके जन्मोंके अन्दर ज्ञान पूर्वक संचार करता है । अग्नि सब प्राणियोंमें व्यापक है ।

२ स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः ।
स यो वना युवते शुचिदन् भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः ४८

३ अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे ।
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच ४९

४ अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ५०

---

१ **शुक्राय भानवे सुपूतं हव्यं मतिं च प्रभरध्वं**— वीर्यवान् तेजस्वी वीरके लिये पवित्र अन्न और प्रशंसाके शब्द अर्पण करो।

१ **यः विश्वानि दैव्यानि मानुषा जनूंषि अन्तः विश्वना जिगाति** ।— जो सब दिव्य और मानुष जन्मोंके आन्तरिक ज्ञानको जानता और उनमें संचार करता है ।

[२] (४८) (सः अग्निः गृत्सः तरुणः अस्तु) वह अग्नि बडा बुद्धिमान और तरुण है । (यतः मातुः यविष्ठः अजनिष्ट) जब माता रूप अरणियोंसे वह तरुण उत्पन्न होता है । (यः शुचिदन् वना सं-युवते) जो तेजस्वी दांतवाला अग्नि वनोंके साथ संमिलित होता है, लकडियोंको जलाता है, तब वह (भूरिचित् अन्ना सद्यः इत् सं अत्ति) बहुत अन्नोंको तत्काल ही खाजाता है।

१ **सः अग्निः गृत्सः यविष्ठः तरुणः मातुः अजनिष्ट**- वह माताका सुपुत्र अग्नि समान तेजस्वी और अत्यंत उत्साही तरुण हो गया है । यहां पुत्रके गुण बताये है । ऐसा अपना पुत्र होना चाहिये ।

१ **सः भूरि अन्ना सं अत्ति**—वह बहुत प्रकारके अन्न उत्तम प्रकारसे खाता है । अन्नोंमें बलवर्धक, बुद्धिवर्धक तथा उत्साहवर्धक अन्न अनेक प्रकारके होते हैं ।

अग्नि परक मंत्रोंके शब्द तरुण पुत्र पर अर्थमें भी देखे जा सकते हैं। पाठक इस तरह देखें और बोध प्राप्त करें । अन्यथा केवल अग्निपरक ही ' विद्वान्, बुद्धिमान्, वेदज्ञ ' आदि शब्दोंके कुछ भी अर्थ नहीं हो सकते, पर यदि यह वर्णन मनुष्य पर किसी अवस्थामें लगना हो तो ही ये पद सार्थ हो सकते हैं ।

[३] (४९) (अस्य देवस्य अनीके संसदि) इस देवके तेजस्वी यज्ञ सभामें (श्येतं यं मर्तासः जगृभ्रे) जिस तेजस्वी अग्निको मानवोंने धारण किया, जिसकी सेवा की । (यः पौरुषेयीं गृभं नि उवोच) जो अग्नि मनुष्यों द्वारा की गयी सेवाका स्वीकार करता है । वह (अग्निः आयवे दुरोकं शुशोच) अग्नि आयुके लिये सेवन करनेके लिये अशक्य रीतिसे प्रकाशित होता है । अत्यंत प्रकाशता है, जो प्रकाश सहन करना अशक्य है ।

मनुष्य अग्नि देवको निर्माण करते है, हविर्द्रव्योंसे उसकी सेवा करते है । इस सेवाका ग्रहण करनेके पश्चात् वह इतना प्रकाशता है कि जिसको सहना मानवोंके लिये अशक्य हो जाता है ।

[४] (५०) (कविः प्रचेता अमृतः) ज्ञानी विशेष बुद्धिमान् अमर ऐसा (अयं अग्निः) यह अग्नि (अकविषु मर्तेषु निधायि) अज्ञानी मानवोंमें रखा गया है । हे (सहस्वः बलवान् अग्ने ! (त्वे सुमनसः स्याम) तेरे विषयमें हम सदा उत्तम बुद्धि धारण करनेवाले हैं । इसलिये (सः त्वं अत्र नः मा जुहुरः) वह तू यहां हमें विनष्ट न कर ।

मनुष्य अग्निके समान तेजस्वी ज्ञानी, बुद्धिमान और अमर हो । यदि वह अज्ञानी मर्त्योंमें रहने लग जाय, तो भी उसके विषयमें उत्तम विचार ही मनमें धारण करना योग्य है, क्योंकि वह किसीका भी नाश नहीं करता।

५ आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्यग्निरमृताँ अतारीत् ।
तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति ५१

६ ईशे ह्यग्निरमृतस्य भूरेरीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः ।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ५२

७ परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ५३

---

[५] (५१) (यः देवकृतं योनिं आ ससाद) वह अग्नि देवोंद्वारा बनाये स्थानपर बैठता है, क्योंकि (हि क्रत्वा अग्निः अमृतान् अतारीत्) वह अग्नि अपने पुरुषार्थ प्रयत्नसे अमर देवोंको भी सुरक्षित रखता है। (विश्वधायसं तं) विश्वका धारण पोषण करनेवाले उस अग्निको (ओषधीः वनिनः च भूमिः च गर्भं बिभर्ति) औषधियां, वृक्ष, तथा भूमि अपने अन्दर धारण करती हैं।

जो सबका तारण करता है वही श्रेष्ठ स्थानमें विराजता है। सबका धारण पोषण जो करता है उसको सब अपने अन्तः करणमें आदरसे धारण करते हैं।

१ यः क्रत्वा अमृतान् अतारीत् सः देवकृतं योनिं आससाद—जो अपने प्रयत्नसे श्रेष्ठोंका तारण करता है वह देवनिर्मित श्रेष्ठ स्थानमें विराजता है ।

२ विश्वधायसं गर्भं बिभर्ति—सबका धारण पोषण करनेवालेको सभी अपने अन्तः करणमें आदरसे रखते हैं ।

[६] (५२) (अमृतस्य भूरेः अग्निः ईशे हि) अन्नदान बहुत करनेके लिये अग्नि समर्थ है। (सुवीर्यस्य रायः दातोः ईशे) उत्तम वीर्य युक्त धन देनेमें अग्नि समर्थ है। हे (सहसावन्) बलवान् अग्ने ! (वयं अवीराः त्वा मा परिषदाम) हम पुत्रहीन वा वीरताहीन होकर तेरी सेवा करनेके लिये न बैठें। (अप्सवः मा) रूपरहित होकर हम न बैठें। (अदुवः मा) भक्तिहीन भी हम न हों।

मानवधर्म-- मनुष्योंके पास बहुत अन्न हो, उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति हो, वे पुत्रहीन तथा वीरता हीन अर्थात् भीरु न बनें, कुरूप तथा सौंदर्यहीन न हों। भक्ति हीन भी न हों। मनुष्य धनवान्, शूर, पराक्रमी, वीर्यवान्, सामर्थ्यवान्, पुत्रपौत्रवान्, धैर्यवान्, सुन्दर, शोभायुक्त, भक्तिमान हों। मनुष्य मलीन न रहें। अपना सौंदर्य बढावें, शृंगार बढावें, अपने घर, उद्यान और शरीरकी सजावट करके शोभा बढावें। सुन्दर रहें, दुर्मुख कभी न रहें।

१ अमृतस्य भूरेः ईशे—बहुत अन्नका दान करनेमें हम समर्थ हों ।

२ सुवीर्यस्य रायः ईशे—उत्तम वीर्य युक्त धनके हम स्वामी बनें ।

३ वयं अवीराः मा—हम संतान रहित अथवा वीरता रहित न हों ।

४ वयं अप्सवः मा—हम सौंदर्य हीन न हों ।

५ वयं अदुवः मा--हम भक्ति हीन भी न हों ।

[७] (५३) (अरणस्य रेक्णः परिषद्यं हि) ऋण रहित मनुष्य का धन पर्याप्त होता है। (नित्यस्य रायः पतयः स्याम) इसलिये हम नित्य रहनेवाले धनके स्वामी बनें। हे अग्ने ! (अन्यजातं शेषः न अस्ति) अन्य मनुष्यका पुत्र औरस पुत्र नहीं कहलाता। (अचेतानस्य पथः मा विदुक्षः) निर्बुद्धके मार्ग को हम न जानें ॥

मानवधर्म-- जो मनुष्य ऋण नहीं करता उसका धन पर्याप्त होता है। सब अपने पास नित्य रहनेवाले धनके स्वामी बनें। दत्तक पुत्र औरस नहीं कहलाता। मूर्ख मनुष्यके मार्गसे कोई न जावे।

१ अरणस्य रेक्णः परिषद्यं—ऋण रहित मनुष्यका धन बहुत होता है। मनुष्य ऋण न करे और अपने पासके

८	नहि ग्रभायारणः सुशेवो ऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ ।	
	अधा चिदोकः पुनरित् स एत्याऽऽनो वाज्यभीषाळेतु नव्यः	५४
९	त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।	
	सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री	५५
१०	एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।	
	विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	५६

धनमें ही अपनी आवश्यकताओंको निभावे । ऋण करके भोग न करे ।

२ नित्यस्य रायः पतयः स्याम—स्थायी रहनेवाला धन हमारे पास हो । विनष्ट होनेवाला धन हमारे पास न आवे ।

३ अन्यजातं शेषः नास्ति--अन्यका पुत्र अपना औरस पुत्र नहीं होता । अपना पुत्र औरस ही होना चाहिये ।

४ अचेतनस्य पथः मा विदुक्षः-- मूढोंके मार्गोंको हम कदापि न जानें और उनसे कभी हम न जांय ।

[८] (५४)(**अन्य-उदर्यः सुशेवः अरणः**) **दूसरेका पुत्र सुखसे सेवा करनेवाला और ऋण न करनेवाला होनेपर भी वह पुत्र करके (ग्रभाय नहि) ग्रहण करने योग्य नहीं होता, इतना ही नहीं परंतु वह (मनसा मंतवै ऊं) मनसे माननेके लिये भी योग्य नहीं है । (अध ओकः चित् पुनः इत् स एति) क्योंकि वह अपने निज पिताके घरके पास ही खींचा जाता है। अतः (नव्यः वाजी अभीषाट् नः आ एतु) नवीन बलवान् शत्रुका पराभव करनेवाला पुत्र ही हमें प्राप्त होवे।**

मानवधर्म-- दूसरेका पुत्र दत्तक लिया और वह उत्तम सेवा करनेवाला, ऋण न करनेवाला भी हुआ, तथापि वह अपना पुत्र नहीं हो सकता। जो दूसरेका है वह दूसरेका ही होता है। मनसे भी उसे औरस नहीं मान सकते। वह अपने मातापिताके घरकी ओर खींचा जायगा। इस लिये हमें बलवान् शत्रुका पराभव करनेवाला ऐसा औरस पुत्र ही चाहिये।

१ अन्योदर्यः सुशेवः अरणः ग्रभाय नहि—दूसरेका पुत्र उत्तम सेवा करनेवाला, तथा अधिक व्यय न करनेवाला, ऋण न करनेवाला होनेपर भी उसको औरस पुत्रका महत्त्व नहीं प्राप्त हो सकता । जो औरस पुत्र होता है वही उत्तम है ।

२ अन्योदर्यः मनसा मंतवै नहि—दूसरेका पुत्र औरस मानना, मनसे वैसी कल्पना करना भी अशक्य है ।

३ सः ओकः एति—वह अपने मातापिताके घरकी ओर ही जायगा । उसका मन इधर नहीं लगेगा ।

४ नव्यः वाजी अभीषाट् नः एतु—नवीन बलवान और शत्रुका पराभव करनेवाला औरस पुत्र हमें उत्पन्न हो ।

यहां औरस पुत्रका महत्त्व कहा है वह सत्य है । गृहस्थीको औरस संतान अवश्य होनी चाहिये ।

[९] (५५) **हे अग्ने! (त्वं वनुष्यतः नः निपाहि) तू हिंसकों से हमें बचा। हे (सहसावन्) बलवान्! (त्वं अवद्यात् नः पाहि) तू पापसे हमें बचा। (त्वा ध्वस्मन्वत् पाथः अभि एतु) तुम्हारे पास निर्दोष अन्न पहुंचे। (स्पृहयाय्यः सहस्री रयिः सं एतु) हमारे पास प्राप्त करने योग्य सहस्रों प्रकारका धन आ जाय ।**

मानवधर्म— हिंसकोंसे अपने आपको बचाओ। पापसे अपने आपको बचाओ। दोष रहित अन्नपानका सेवन कर। प्रशंसा करने योग्य हजारों प्रकारका धन प्राप्त करो।

१ वनुष्यतः निपाहि—हिंसकोंसे बचाओ,

२ अवद्यात् निपाहि—पापसे बचाओ,

३ ध्वस्मन्वत् पाथः अभ्येतु--निर्दोष खान पान तुम्हारे पास आजावे

४ स्पृहयाय्यः सहस्री रयिः समेतु—स्पृहणीय हजारों प्रकारका धन हमें प्राप्त हो ।

१० (५६) अर्थ लिखा है देखो १० (४६) वां मंत्र ।

*

(५) ९ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। वैश्वानरोऽग्निः। त्रिष्टुप्।

१ प्राग्नये तवसे भरध्वं गिरं दिवो अरतये पृथिव्याः ।
यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः ५७

२ पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां नेता सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम्
स मानुषीरभि विशो वि भाति वैश्वानरो वावृधानो वरेण ५८

३ त्वद् भिया विश आयन्नसिक्नीरसमना जहतीर्भोजनानि ।
वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यदग्ने दरयन्नदीदेः ५९

४ तव त्रिधातु पृथिवी उत द्यौर्वैश्वानर व्रतमग्ने सचन्त ।
त्वं भासा रोदसी आ ततन्थाऽजस्रेण शोचिषा शोशुचानः ६०

---

[१] (५७) (तवसे दिवः पृथिव्याः अरतये) वृद्धिंगत हुए, द्युलोक और पृथिवीपर गमन करनेवाले (अग्नये गिरं भरध्वं) अग्निके लिये स्तोत्र भर दो, करो। (यः वैश्वानरः) जो वैश्वानर अग्नि (विश्वेषां अमृतानां उपस्थे) सब देवोंके समीप (जागृवद्भिः ववृधे) जागनेवालोंके द्वारा बढाया जाता है।

[२] (५८) (सिन्धूनां नेता) नदियोंका चालक और (स्तियानां वृषभः) जलोंका वर्षण कर्ता (पृष्टः अग्निः) सुपूजित हुआ अग्नि (दिवि पृथिव्यां धायि) द्युलोकमें और पृथिवीपर स्थापित हुआ है। (सः वैश्वानरः वरेण ववृधानः) वह सर्वजन हितकारी अग्नि श्रेष्ठ हविसे बढता हुआ (मानुषीः विशः अभि वि भाति) मानवी प्रजाओंमें प्रकाशता है।

यह अग्नि वृष्टि करता है, वृष्टिसे नदियां भरपूर भरकर बहती हैं। यह अग्नि पृथिवीपर तथा आकाशमें है और यहां पूजा लेता है। वही अग्नि यहां हवनसे बढता हुआ मानवी प्रजाओंमें यज्ञोंके अन्दर प्रकाश रहा है।

[३] (५९) हे वैश्वानर! (त्वत् भिया) तेरी भीतिसे (आसिक्नीः विशः) काली प्रजा (भोजनानि जहतीः) भोजनोंको भी त्यागती हुई (असमनाः आयन्) तितर बितर होकर भागने लगी थी। (यत् पूरवे शोशुचानः) जब तू पुरु राजाके लिये प्रकाशित होकर (पुरः दरयन् अदीदेः) शत्रुकी नगरियोंका विदारण करके प्रज्वलित हुआ था।

पुरु राजाके पास अग्नि था, यह अग्नि उसका सहायक था। पुरु राजाके लिये इसने शत्रुकी नगरियोंको जलाया, तब भोजन, धन आदि सबको त्याग कर इस अग्निकी भीतीसे काली प्रजा तितर बितर होकर भागने लगी थी।

युद्धके समय शत्रुकी नगरियोंको अग्नि प्रयोगसे जलाते हैं, उस समय जलनेवाले नगरकी प्रजा जल जानेके भयसे इतस्ततः भागती है, और अपने सब सुख साधन फेंक कर जहां अग्नि-भय नहीं होगा वहां जाती है। युद्धमें अग्निके अस्त्र प्रयोगसे शत्रुसेनाकी अवस्था ऐसी होती है।

[४] (६०) हे वैश्वानर अग्ने! (तव व्रतं त्रिधातु) तेरे व्रतका त्रिधातु अर्थात् पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोकमें रहनेवाले लोग (सचन्त) पालन करते हैं। (अजस्रेण शोशुचा शोशुचानः) विशेष प्रकाशसे प्रकाशित होता हुआ (त्वं) तू अपने (भासा रोदसी आततन्थ) तेजसे द्युलोक और पृथिवी लोकको विस्तृत करता है।

अग्निके व्रतका पालन सब करते हैं, उसका उल्लंघन कोई कर नहीं सकता। वह स्वयं अजस्र प्रकाशसे प्रकाशित होकर अपने प्रकाशसे सब स्थानोंको प्रकाशित करता है जिससे मानवी कार्यक्षेत्रके लिये विस्तृत स्थान मिलता है यही इसका द्यावापृथिवीको विस्तृत करना है।

५ त्वामग्ने हरितो वावशाना गिरः सचन्ते धुनयो घृताचीः ।
पतिं कृष्टीनां रथ्यं रयीणां वैश्वानरमुषसां केतुमह्नाम् ६१

६ त्वे असुर्यं वसवो न्यृण्वन् क्रतुं हि ते मित्रमहो जुषन्त ।
त्वं दस्यूँरोकसो अग्न आज उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय ६२

७ स जायमानः परमे व्योमन् वायुर्न पाथः परि पासि सद्यः ।
त्वं भुवना जनयन्नभि क्रन्नपत्याय जातवेदो दशस्यन् ६३

---

[५] (६१) हे अग्ने! (कृष्टीनां पतिं) कृषि करनेवाली प्रजाके स्वामी, (रयीणां रथ्यं) धनों के संचालक, (उषसां अह्नां केतुं) उषाओं सहित दिनोंके ध्वजके समान (वैश्वानरं त्वां) तुझ वैश्वानरकी (वावशाना हरितः) चाहनेवाले घोडे (सचन्ते) सेवा करते हैं। तथा (घृताचीः धुनयः गिरः सचन्ते) घीको हविके साथ मिलाकर पापको धोनेवाली स्तुतियां भी तेरी सेवा करती हैं।

सूर्यरूपी अग्नि उषाओं और दिनोंका मानो ध्वज ही है, दिनमें सब व्यवहार होकर धन प्राप्त होते है, इसलिये यह धनोंका प्रेरक है, धनोंका रथ ही है। इस कारण प्रजाओंका कृषकोंका हितकारी है। इस अग्निको घोडों द्वारा चलाये रथमें रखकर चारों ओर घुमाते हैं, उस समय स्तोता इसकी प्रशंसा गाते है और साथ साथ हवन भी करते हैं।

[६] (६२) हे (मित्रमहः) मित्रके महत्त्वको बढानेवाले अग्ने! (त्वे वसवः असुर्यं नि ऋण्वन्) तेरे अन्दर वसु देवोंने बलको स्थापित किया है। तथा उन्होंने (ते क्रतुं जुषन्त हि) तेरी प्रीति करनेवाले कर्मको किया है। तथा (त्वं आर्याय उरु ज्योतिः जनयन्) तूने आर्योंके लिये विशेष प्रकाश उत्पन्न करके (दस्यून् ओकसः आजः) शत्रुओंको अपने स्थानसे उखाड दिया है।

इस अग्निमें विलक्षण बल है वह बल उसमें वसुओंने रखा है। जो आठ वसु हैं उनके कारण यह बल इस अग्निमें है। इस बलसे यह अग्नि जिसका सहायक होता है उसका बल और महत्त्व बढा देता है। यह अग्निका अस्त्र है। उसके नियमोंका पालन करनेवालोंके लिये ही यह सहायक होता है। जो पुरुषार्थी लोग होते है वे आर्य हैं। उनके पास यह अग्निका अस्त्र था। युद्धमें वे इसका प्रयोग करके शत्रुओंको भगाते थे। युद्धमें इन अस्त्रोंका उपयोग करना और शत्रुओंको दूर करना चाहिये। यह इसका बोध है। शत्रुपर ऐसा हमला करना चाहिये कि जिससे शत्रु स्वस्थानको छोडकर भाग जाय।

[७] (६३) (सः त्वं) वह तू (परमे व्योमन् जायमानः) अति दूरके आकाशमें सूर्य रूपसे उत्पन्न होकर (वायुः न) वायुके समान (पाथः सद्यः परिपासि) सोमरसको प्रथम ही सत्वर पीता है। हे (जातवेदः) वेदके प्रकाशक! (त्वं भुवना जनयन्) तू भुवनों-जलोंको प्रकट करता हुआ (अपत्याय दशस्यन्) संतानकी कामनाओंको पूर्ण करता है और (अभिक्रन्) गर्जना करता है, विद्युत् रूपसे बडा शब्द करता है।

अग्नि द्युलोकमें सूर्य रूपसे, अन्तरिक्षमें विद्युत् रूपमें रहता और गर्जना भी करता है और पृथ्वीपर रहकर मनुष्योंकी सहायता अनेक प्रकारसे करता है। अग्निका वाणीसे संबंध विद्युत् रूपी अग्निकी मेघगर्जनासे स्पष्ट अनुभवमें आता है। अग्निसे वाक् हुई, विद्युदग्निसे गर्जना हुई। यह अग्निसे वाणीका संबंध है।

अग्निसे जल उत्पन्न होनेका अनुभव भी अन्तरिक्षमें ही होता है, मेघोंमें विद्युत् चमकती है, पश्चात् वृष्टि होती है। यही अग्निसे जलका उत्पन्न होना है।

८ तामग्ने अस्मे इषमेरयस्व वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः ।
यया राधः पिन्वसि विश्ववार पृथु श्रवो दाशुषे मर्त्याय ६४

९ तं नो अग्ने मघवद्भ्यः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यं युवस्व ।
वैश्वानर महि नः शर्म यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः ६५

(६) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वैश्वानरोऽग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि ६६

---

[८] (६४) हे (**जातवेद वैश्वानर अग्ने**) **वेदके प्रकट करनेवाले विश्वके नेता अग्ने! (तां द्युमतीं इषं अस्मे आ ईरयस्व) उस दीप्तिमय वृष्टिको हमारे पास प्रेरित करो। (यया राधः पिन्वसि) जिससे धनका पालन तू करता है, और हे (विश्ववार) सबको स्वीकार करने योग्य अग्ने! (पृथु श्रवः दाशुषे मर्त्याय) बडा यश दाता मनुष्यके लिये तू ही देता है।**

अन्तरिक्षमें मेघोंमें रहा अग्नि विद्युत् रूपसे चमकता है और वृष्टिको प्रेरित करता है, जिससे लोगोंको धान्यरूपी धन प्राप्त होता है, इसका दान यज्ञमें मनुष्य करते हैं और उससे उनको बडा यश मिलता है । " विद्युत्-अग्नि-वृष्टि-धान्य-धन-दान-यज्ञ-यश " का यह संबंध है । अग्निसे यह सब होता है ।

[९] (६५) हे (**वैश्वानर अग्ने**) **सब मानवोंका हित करनेवाले अग्ने! (मघवद्भ्यः नः) हविरूपी धन धारण करनेवाले हमारे लिये (तं पुरुक्षुं रयिं) उस बहुत यश देनेवाले धनको तथा (श्रुत्यं वाजं युवस्व) कीर्ति बढानेवाले बलको दो। हे अग्ने! (वसुभिः रुद्रेभिः सजोषाः) वसु और रुद्रोंके साथ रहनेवाला तू (नः महि शर्म यच्छ) हमारे लिये सुख दो।**

हमारे पासका हवि हम अग्निको देते हैं और वह अग्नि हमें धन, बल, यश और सुख देवे । हमें धन चाहिये, बल चाहिये, यश, तथा सुख चाहिये । वह इस अग्निकी सहायतासे मिल सकता है । (वैश्वानरः अग्निः) मनुष्य अग्निके समान तेजस्वी बने और सब लोगोंके हित करनेके कार्य करे । (पुरुक्षुं रयिं·) धन ऐसा प्राप्त करे कि जिससे सबका जीवन सुखमय हो । (श्रुत्यं वाजं) बल ऐसा प्राप्त करे कि जिससे इसका यश सर्वत्र फैल जाय । और (महि शर्म) सबको अधिकसे अधिक सुख प्राप्त होता रहे । मानवोंके लिये अग्नि आदर्श है। उसके गुण योग्य मार्गसे मनुष्य अपने जीवनमें ढाल देवे ।

[१] (६६) (**दारुं वन्दे**) **शत्रुओंकी नगरियोंका नाश करनेवाले वीरको मैं प्रणाम करता हूं। (वंदमानः) उसको नमन करता हुआ मैं (सम्राजः असुरस्य पुंसः) सम्राट् बलवान् वीर (कृष्टीनां अनुमाद्यस्य) प्रजाओं द्वारा अनुमोदित (तवसः इन्द्रस्य इव) बलवान् इन्द्रके समान वैश्वानर अग्निके (कृतानि विवक्मि) किये कर्मोंका वर्णन करता हूं।**

सब प्रजाजनोंका हित करनेवाला वैश्वानर अग्नि है। यह शत्रुओंके किलों और नगरोंको तोडता है । यह सम्राट् है, बलवान है और वीर है तथा प्रजाओं द्वारा अनुमोदित है, इसको प्रजाओंकी अनुमति है । इन्द्रके समान यह बलिष्ठ है । इसने पराक्रम किये हैं उनका मैं यहां वर्णन करता हूं ।

१ दारुं वन्दे—शत्रुका विदारण, शत्रुके किलों और नगरोंका नाश करनेवाले वीरको प्रमाण करता हूं । ऐसा वीर सबके प्रणाम लेने योग्य होता है ।

२ कृष्टीनां अनुमाद्यः—प्रजाजनों द्वारा, कृषि करनेवाले किसानों द्वारा अनुमोदित, इनकी संमतिसे सुप्रतिष्ठित जो होता है वह राजा होता है ।

२ कविं केतुं धासिं भानुमद्रेर्हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः ।
पुरंदरस्य गीर्भिरा विवासेऽग्नेर्व्रतानि पूर्व्या महानि ६७

३ न्यक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीँरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान् ।
प्र प्र तान् दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून् ६८

---

३ सम्राट् असुरः पुमान्-- प्रजाओंके द्वारा अनुमोदित सम्राट् बलवान् और वीर, पुरुषार्थ करनेकी शक्तिसे युक्त जो होता है वही सबको वन्दनीय है ।

४ वैश्वानरः अग्निः—यह सब जनोंका हित करता है, अग्नि समान तेजस्वी है, अग्रणी नेता और मार्ग दर्शक है । यही वीर वन्दनीय है ।

५ इन्द्रस्य इव कृतानि विवक्मि—इन्द्रके समान इस वीरके पराक्रमोंके कर्मोंका मै वर्णन करता हूं। इन्द्रके पराक्रमोंका वर्णन इन्द्रके सूक्तोंमें होगा और इस वैश्वानरके पराक्रमोंका वर्णन इस सूक्तमें तथा अन्य सूक्तोंमें होगा ।

६ तवसः पूंसः कर्माणि—बलवान् वीर पुरुषके ये कर्म हैं । ये शूरवीर विजेता और अपराजित विजयी वीरके ये पौरुष कर्म हैं ।

इस सूक्तमें अग्निके विशेषण ऐसे दिये हैं कि जो वीर सम्राट्के विशेषण हो सकते हैं । उत्तम आदर्श सम्राट्का यह वर्णन हो सकता है । वेदकी यह एक विशेष शैली है कि किसी देवताके वर्णनके मिषसे वह सम्राट्, नायक आदिका वर्णन करता है । पाठक इस वर्णनको देखें और यह श्लेषार्थ जानें ।

मानवधर्म— वीर युद्धमें शत्रुके किले और नगर तोडे । वह बलवान् पुरुषार्थी तथा उत्तम राजा होकर प्रजाका हित करनेके लिये राज्य करे । जिसके लिये प्रजाकी अनुमति हो वही राजा बने । ऐसे राजाके जो उत्तम पौरुषके पराक्रम हों, उनका वर्णन करना योग्य है ।

ऐसे वर्णनके वीरकाव्य गाये जांय । इनको सुनकर अन्य पुरुषार्थी वीरोंके मनोंमें उत्तम प्रेरणा होगी और वे भी पुरुषार्थी बननेका प्रयत्न करेंगे । वीर काव्योंके गानका यह समाज पर सुपरिणाम होता है ।

[२] (६७) कविं केतुं) ज्ञानी, सूचक, अथवा ज्ञापक, (अद्रेः धासिं भानुं) कीलोंका धारक, प्रकाशक, (रोदस्योः शं राज्यं) द्युलोक और पृथिवीका सुखकारक रीतिसे राज्य करनेवाला, ऐसे (पुरंदरस्य अग्नेः पूर्व्या महानि व्रतानि) शत्रुके किले तोडनेवाले अग्निके पुरातन बडे महान पुरुषार्थोंका (गीर्भिः आ विवासे) अपनी वाणीसे मैं वर्णन करता हूं। इस वर्णनसे मैं उसकी सेवा करता हूं ।

मानवधर्म— राजा ज्ञानी, दूरदर्शी, उत्तम प्रभावका सूचक, अपने किलों और नगरोंका संरक्षक, तेजस्वी, जनताको सुख देनेके लिये ही राज्य करनेवाला हो। ऐसे वीर राजाके पौरुषोंका काव्य किया जाय और गाया जाय ।

उत्तम राजाके गुण ये हे--

१ कविः—राजा ज्ञानी हो, क्रान्तदर्शी, सुदूरदर्शी हो, जो अन्योंको दीखता नहीं वह उसको समझे, भविष्यमें जो होनेवाला है वह इसको प्रथम विदित हो और वैसा वह प्रबंध करे ।

२ केतुः-राजा ध्वज जैसे उच्च स्थानपर रहता है, वैसे उच्च स्थानपर विराजे । वह उत्तम राज्य व्यवस्थाका झंडा जैसा हो ।

३ अद्रेः धासिः – पहाडों, किलों और नगरके प्राकारोंका संरक्षण करे,

४ भानुं--राजा तेजस्वी हो,

५ शं राज्यं--शान्तिसे राज्य करे, जिससे जनताको सुख प्राप्त हो,

६ पुरंदरः--शत्रुके किलों और नगरोंको युद्धके समय तोडे,

७ महानि व्रतानि--महान पुरुषार्थ करता रहे.

[३] (६८) (अक्रतून् ग्रथिनः) सत्कर्म न करनेवाले, वृथा भाषण करनेवाले, (मृध्रवाचः पणीन्) हिंसक वाणी बोलनेवाले, पणी अर्थात् सूदका व्यवहार करनेवाले, (अश्रद्धान् अवृधान्) अश्रद्ध और हीन अवस्थाको पहुंचनेवाले (अय-

४ यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचीश्चकार नृतमः शचीभिः ।
तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीषेऽनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ॥ ६९

५ यो देह्यो अनमयद् वधस्नैर्यो अर्यपत्नीरुषसश्चकार ।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः ॥ ७०

ज्ञान् तान् दस्यून्) यज्ञ न करनेवाले उन दस्युओंको (अग्निः प्र प्र विवाय) अग्नि निःसंदेह हटा देता है। हीन कर देता है, दूर करता है। (पूर्वः अग्निः) मुख्य अग्नि (अ-यज्यून्) यज्ञ न करनेवालोंको (अ-परान् चकार) कनिष्ठ बना देता है। श्रेष्ठ स्थानपर नहीं रखता।

मानवधर्म-- जो शुभकर्म नहीं करते, जो केवल वृथा भाषण ही करते रहते हैं, हिंसाको बढानेवाला भाषण करते हैं, जो सूदका व्यवहार करते हैं, जो अत्यधिक सूद लेते हैं, जो ईश्वरपर श्रद्धा नहीं रखते, जो हीन अवस्थाको प्राप्त होनेके ही व्यवहार करते हैं, जो यज्ञ नहीं करते, जो डाका डालते रहते हैं, इनको राजा उच्च अधिकारके स्थानोंपर न रखे, उच्च स्थानसे हटा देवे।

अर्थात् जो सदा प्रशस्ततम सत्कर्म करते हैं, जो मित, पथ्य और हित कारक भाषण करते हैं, जो हिंसाको कम करनेका यत्न करते हैं, जो सूदका व्यवहार नहीं करते, पर करेंगे तो ऋणीको हानि पहुंचाने योग्य कठोर रीतिसे नहीं करते, जो श्रद्धालु है, जो उच्च होनेकी इच्छासे सतत प्रयत्नशील होते हैं, जो यज्ञ करते है, जो सज्जन होते हैं ऐसे पुरुषोंको राजा उच्च अधिकारके स्थानपर रखें।

उत्तम राज्यशासन होनेके लिये उत्तम लोग ही उच्च अधिकारके स्थानोंपर चाहिये। इसलिये जो उच्च स्थानोंपर रहनेके योग्य नहीं है, उनका वर्णन इस मन्त्रमें किया है। ऐसे दुष्टोंको उच्च अधिकारके स्थानपर रखना उचित नहीं है।

[४] (६९) (नृतमः) उत्तम नेता ने (अपाचीने तमसि) गाढ अन्धकारमें (मदन्तीः) निमग्न होकर आनंद माननेवाली परन्तु स्तुति करनेवाली प्रजाको (शचीभिः प्राचीः चकार) प्रज्ञाबुद्धिसे ऋजुगामी किया। (तं वस्वः ईशानं) उस धनके स्वामी (अनानतं पृतन्यून् दमयन्तं) अदीन परंतु सेनासे हमला करनेवाले शत्रुका दमन करनेवाले (अग्निं गृणीषे) अग्निकी मैं प्रशंसा करता हूं।

मानवधर्म— उत्तम नेताको उचित है कि वह गाढ अन्धकारमें पडी और वहीं आनंद माननेवाली प्रजाको, उनकी प्रज्ञा जागृत करके, सीधे उन्नतिके मार्गसे चलावे। ऐसे धनके स्वामी, आत्मसंमान रखनेवाले तथा शत्रुका दमन करनेवाले अग्निसमान तेजस्वी वीरके गीत गाये जांय।

१ नृतमः अपाचीने तमसि मदन्तीः शचीभिः प्राचीः चकार--उत्तम नेता वह है कि जो अज्ञानमें पडी प्रजाको, उनकी बुद्धिमें जाग्रति उत्पन्न करके उन्नतिके मार्गसे चलावे।

२ वस्वः ईशानं अनानतं पृतन्यून् दमयन्तं गृणीषे। —धनके स्वामी, आत्मसंमानी तथा शत्रुका दमन करनेमें समर्थ वीरकी स्तुति की जाय।

ऐसे वीरोंकी स्तुति की जाय। ये वीरोंके गीत सुननेवालोंमें वीरताकी ज्योति जगा सकते हैं।

[५] (७०) (यः देह्यः वधस्नैः अनमयत्) जो आसुरी घातकोंको अपने आयुधोंसे विनम्र करता है, (यः उषसः अर्यपत्नीः चकार) जो सूर्य पत्नी उषाको निर्माण करता है। (सः यह्वः अग्निः सहोभिः विशः निरुध्य) उस महान अग्निने अपनी शक्तियोंसे प्रजाका निरोध करके (नहुषः बलिहृतः चक्रे) उस प्रजाको राजाको कर देनेवाली बना दिया।

मानवधर्म-- प्रजाको सतानेवाले आसुरी गुण्डोंको अपने दण्डसे अथवा शस्त्रसे राजा नम्र तथा शासनानुकूल चलनेवाली बनावे। महान शासक अपने शासनके प्रबंधसे प्रजाको निरुद्ध करके कर देनेवाली बनावे।

६ यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः ।
वैश्वानरो वरमा रोदस्योराग्निः ससाद पित्रोरुपस्थम् ७१

७ आ देवो ददे बुध्न्याऽऽ वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य ।
आ समुद्रादवरादा परस्मादाग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः ७२

प्रजाका पालन राजा करता है, इसलिये प्रजाको उचित है कि वह अपने संरक्षणके लिये अपने प्राप्त धनसे राजाको योग्य कर देवे । जो प्रजा कर न देनेका प्रयत्न करे, अर्थात् योग्यता होने पर भी कर न देनेका प्रयत्न करे, उन दुष्ट प्रजाजनोंको राजा चारों ओरसे घेर कर उनको कर देनेवाली बना देवे । सब ओरसे घेर कर ' कर देनेका एक ही मार्ग ' उनके लिये खुला छोडे, जिससे वह प्रजा जाय और कर देती रहे ।

१ स वधस्नैः देह्यः अनमयत्--वह राजा शस्त्रोंसे हिंसक आसुरी कर्म करनेवाले गुण्डोंको विनम्र करे, गुण्डपन वे छोडें और उनको सज्जन बना देवे ।

२ सहोभिः विशः निरुध्य बलिहृतः चक्रे—अपने सामर्थ्योंसे कर न देनेवाली प्रजाको निरोधन करके उनको कर देनेवाली बनावे । जो जान बूझकर कर देना टालते हैं, उनसे कर वसूल करे।

[६] (७१) (विश्वे जनासः शर्मन्) सब लोग अपने सुखके लिये (यस्य सुमतिं भिक्षमाणाः) जिसकी उत्तम बुद्धिकी प्रार्थना करके (एवैः उप तस्थुः) अपने उत्तम कर्मोंके समीप खडे रहते हैं, वह (वैश्वानरः अग्निः) सब मानवोंका हितकर्ता अग्नि (पित्रोः उपस्थे) द्यावा पृथिवीके बीचमें (वरं आससाद) श्रेष्ठ स्थानपर बैठ गया।

मानवधर्म-- सब लोग अपनी सुरक्षाके लिये जिसकी सदिच्छाकी अपेक्षा करते हैं, और अपने उत्तम कर्म जिसके सामने रखते हैं, वह सर्वजन हितकारी वीर उच्च स्थानपर विराजने योग्य है।

१ विश्वे जनासः शर्मन् यस्य सुमतिं भिक्षमाणाः- सब लोग अपनी सुरक्षाके लिये जिसकी सद्बुद्धिकी अपेक्षा करते हैं वह श्रेष्ठ वीर है ।

२ एवैः यं उपतस्थुः--सब लोग अपने कर्मोंको जिसके सन्मुख रखना चाहते हैं वह श्रेष्ठ पुरुष है ।

३ वैश्वानरः वरं आससाद—सब जनोंका हित करनेवाला वीर उच्च स्थान प्राप्त करता है । जो सब जनोंका हित करनेके कार्य करेगा वह उच्च होगा ।

सब जनोंको सुरक्षित रखना, सबके कर्मोंका निरीक्षण करके उनमें जो श्रेष्ठ होगा उसको उच्च स्थान देना और सर्वजन हितकारी वीरको श्रेष्ठ पदपर नियुक्त करना योग्य है ।

[७] (७२) (वैश्वानरः अग्निः देवः) सब जनोंका हित करनेवाला अग्नि देव (बुध्न्या वसूनि सूर्यस्य उदिता आददे) अन्तरिक्षके अन्धकारको सूर्यके उदयके समय लेता है । (समुद्रात् अवरात् पृथिव्याः) समुद्रसे तथा इधरकी पृथिवीकी ओरसे (आ) अन्धकारको लेता है । (परस्मात् दिवः आददे) परले द्युलोकसे भी अन्धकारको लेता है । सबको प्रकाशित करता है ।

मानवधर्म-- सब जनोंका हित करनेके लिये उन सब जनोंका अज्ञान पूर्णतया दूर करना चाहिये । बुद्धि, मन, इंद्रिय, शरीर तथा विश्व सम्बन्धी सब अज्ञानान्धकार दूर करना चाहिये ।

जिस तरह विश्वका अन्धकार दूर होनेसे सब मार्ग स्पष्ट रीतिसे दिखाई देते हैं, उसी तरह मानवोंके अज्ञान दूर होनेसे उनको भी उन्नतिके मार्ग दिखाई देंगे । जो राजा अथवा जनता का नेता है उसको उचित है कि वह जनताका अज्ञान दूर करने का प्रबल यत्न करे ; और जनताको ज्ञान विज्ञान संपन्न बना दे । जिससे उनकी उन्नतिके मार्ग उनके सामने खुले हो जायगे ।

(७) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ प्र वो देवं चित् सहसानमग्निमश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः ।
भवा नो दूतो अध्वरस्य विद्वान् त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः ७३

२ आ याह्यग्ने पथ्या३ अनु स्वा मन्द्रो देवानां सख्यं जुषाणः
आ सानु शुष्मैर्नदयन् पृथिव्या जम्भेभिर्विश्वमुशधग्वनानि ७४

३ प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः प्रीणीते अग्निरीळितो न होता ।
आ मातरा विश्ववारे हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः ७५

४ सद्यो अध्वरे रथिरं जनन्त मानुषासो विचेतसो य एषाम् ।
विशामधायि विश्पतिर्दुरोणेऽग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ७६

---

[१] (७३) (वः देवं सहसानं) प्रकाशमान और राक्षसोंके पराभव कर्ता (अग्निं अश्वं इव वाजिनं) अग्रणीको अश्वके समान वेगवान जानकर मैं (नमोभिः चित् प्र हिषे) अन्नोंके साथ प्रेरित करता हूं। (विद्वान् नः अध्वरस्य दूतः भव) तू सब जानता है। इसलिये हमारे हिंसारहित यज्ञ-कर्मका तू दूत हो (त्मना देवेषु मितद्रुः विविदे) स्वयं देवोंमें वृक्षोंको जलानेवाला करके प्रसिद्ध हो।

मानवधर्म-- राक्षसों अथवा शत्रुओंका पराभव करनेवाला तेजस्वी वीर अग्रणी होता है, जो घोडेके समान वेगवान तथा बलवान होता है, उसका प्रणामोंसे, अन्नोंसे तथा धनोंसे सत्कार करना उचित है। जो विद्वान् होगा वही यज्ञोंमें कार्य करे।

[२] (७४) हे अग्ने! तू (मन्द्रः) आनंदित होकर (देवानां सख्यं जुषाणः) देवोंके साथ मित्रता करनेवाला (पृथिव्याः सानुं शुष्मैः) पृथ्वीके ऊपरके उच्च भागको अपने शोषक तेजोंसे (नदयन्) शब्द युक्त करके (जंभेभिः विश्वं वनानि उशधक्) अपनी ज्वालाओंसे सब वनोंको इच्छानुसार जलाता हुआ (स्वाः पथ्याः अनु आ आ याहि) अपने मार्गोंसे इस ओर आ जा।

[३] (७५) (यज्ञः प्राचीनः) यज्ञ पूर्वाभिमुख है। (बर्हिः हि सुधितं) दर्भासन अच्छी तरह रखा है। (ईळितः अग्निः प्रीणीत) प्रशंसित अग्नि तृप्त होता है। (होता न) और होता भी वैसा ही होता है। (विश्ववारे मातरा) विश्वके द्वारा वरणीय द्यावा पृथिवी (हुवानः) बुलाये जा रहे हैं। हे (यविष्ठ) तरुण अग्ने! तू (यतः) जब (सुशेवः जज्ञिषे) उत्तम सेवा करने योग्य होता है। तब यह सब ऐसाही होता है।

[४] (७६) (विचेतसः मानुषासः) विशेष बुद्धिमान मनुष्य (अध्वरे रथिरं सद्यः जनन्त) हिंसारहित यज्ञमें रथमें बैठनेवाले नेता अग्निको शीघ्रतासे उत्पन्न करते हैं। (यः एषां) जो इनके हविका हवन करता है वह (विश्पतिः मन्द्रः) प्रजाओंका पालक आनन्द बढानेवाला है, (मधुवचा ऋतावा) वह मधुरभाषी सत्यनिष्ठ अग्नि (विशां दुरोणे अधायि) प्रजाओंके घरमें स्थापित हुआ है।

विशेष ज्ञानी मनुष्य हिंसा रहित कर्म करते हैं और उसमें वीरका सत्कार करते है, क्योंकि वीर ही ऐसे कर्म कर सकता है। प्रजाओंका यह पालक-राजा-सबका आनन्द बढाता हुआ, मीठा भाषण करनेवाला तथा सत्यनिष्ठ रह कर प्रजाओंके स्थानमें ही रहे, प्रजाजनोंमें ही रहे। अपने राष्ट्रमें ही रहे।

जो राजा प्रजाओंमें रहता है उसको प्रजाके सुखदुःख मालूम होते हैं और इस कारण वह सत्य रीतिसे प्रजाका हित कर सकता है।

५ असादि वृतो वह्निराजगन्वानग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता ।
द्यौश्च यं पृथिवी वावृधाते आ यं होता यजति विश्ववारम् ७७

६ एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरन्त मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन् ।
प्र ये विशस्तिरन्त श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य ७८

७ नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवभ्द्य आनड् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७९

(८) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीळते सबाध आग्निरग्र उषसामशोचि ८०

२ अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यह्वो अग्निः ।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे ८१

---

[५] (७७) (वृतः वह्निः ब्रह्मा) वरण किया हुआ ब्रह्मा ज्ञानी (विधर्ता अग्निः) विशेष रीतिसे धारण करनेवाला अग्नि (आजगन्वान्) आ गया है और वह (नृषदने असादि) मनुष्योंके स्थानमें बैठा है। (यं द्यौः च पृथिवी च वावृधाते) जिसको द्युलोक और भूलोक बढाते हैं। और (यं विश्ववारं होता आ यजाति) जिस सबके द्वारा वरण करने योग्यका यजन होता करता है।

[६] (७८) (एते द्युम्नेभिः विश्वं आ तिरंत) ये हमारे लोग अन्नोंसे सब पोष्यवर्गको पुष्टकर रहे हैं। (ये नर्याः मन्त्रं वा अरं अतक्षन्) ये मनुष्य मनन करने योग्य रीतिसे संस्कार करते हैं। (ये विशः श्रोषमाणाः प्रतिरन्त) जो प्रजाजन इसको सुनकर वीरको बढाते हैं। (मे ये ऋतस्य आ दीधयन्) और मेरे ये लोग सत्यको प्रकाशित करते हैं।

यह सब यज्ञविधिका वर्णन है।

[७] (७९) हे (सहसः सूनो अग्ने) बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने! (वसिष्ठाः वयं) हम सब वासिष्ठ (वसूनां ईशानं त्वां) धनोंके स्वामी तुझको हमारे (स्तोतृभ्यः मघवद्भ्यः इषं आनट्) स्तोता और हवि अर्पण करनेवालोंके लिये यह अन्न पहुंचा दो। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप सदा हमें कल्याण करने द्वारा सुरक्षित करो।

[१] (८०) (राजा अर्यः अग्निः नमोभिः सं इन्धे) यह श्रेष्ठ राजा-अग्नि-अन्नोंसे प्रदीप्त हो रहा है। (यस्य प्रतीकं घृतेन आहुतं) जिसका रूप घीके द्वारा हवन करके बढाया जा रहा है। (नरः सबाधः हव्येभिः ईळते) मनुष्य मिलकर हव्योंद्वारा इसको पूजते हैं। वह (अग्निः उषसां अग्रे आ अशोचि) अग्नि उषाओंके सामने प्रकाशित हो रहा है।

[२] (८१) (स्य अयं होता मन्द्रः यह्वः अग्निः) यह हवन कर्ता सुखदायी बडा अग्नि (मनुषः सुमहान् अवेदि) मानवोंमें अत्यंत महान् करके प्रसिद्ध है। वह (भाः वि अकः) प्रकाश करता है। (कृष्णपविः पृथिव्यां ओषधीभिः ववक्षे) वह काले मार्गसे जानेवाला अग्नि इस पृथिवीपर औषधियोंसे-काष्ठोंसे-बढता है।

*

३ कथा नो अग्ने वि वसः सुवृक्तिं कामु स्वधामृणवः शस्यमानः ।
कदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ॥ ८२

४ प्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत् सूर्यो न रोचते बृहद् भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥ ८३

५ असन्नित् त्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।
स्तुतश्चिदग्ने शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ॥ ८४

---

[३] (८२) हे अग्ने ! तू (कथा नः सुवृक्तिं वि वसः) किससे हमारी उत्तम स्तुतिको स्वीकारता है ? (कां स्वधां शस्यमानः ऋणवः) किस अन्नको लेकर स्तुति करनेपर तू हमें प्राप्त होगा ? हे (सुदत्र) उत्तम दान देनेवाले ! हम (कदा दुष्टरस्य साधोः रायः पतयः) कब शत्रुके लिये अप्राप्य उत्तम धनके स्वामी और उस (वंतारः भवेम) धनका बटवारा करनेवाले होंगे ?

धन ऐसा चाहिये कि जो शत्रुके लिये अप्राप्य हो। अर्थात् हम वीर हों और हमें धन मिले और उसको हम अपने मित्रोंमें बांट सकें।

[४] (८३) (अयं अग्निः भरतस्य प्र शृण्वे) यह अग्नि भरतके यज्ञमें प्रसिद्ध हुआ है। (यत् सूर्यः न बृहद् भाः विरोचते) तब सूर्यके समान यह अत्यंत तेजसे प्रकाशता रहा। (यः पृतनासु पूरुं अभि तस्थौ) यह अग्नि युद्धोंमें पुरु नामक असुरके विरोधमें खडा रहा, (द्युतानः दैव्यः अतिथिः शुशोच) यह तेजस्वी दिव्य अतिथिके समान पूज्य होकर प्रज्वलित हुआ है।

(पृतनासु अभितस्थौ) युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेके लिये अग्नि खडा रहता है। इसका अर्थ स्पष्ट रूपसे यह है कि शत्रुपर आग्न्यस्त्रका प्रयोग करना और उसका पराभव करना। युद्धोंमें प्रदीप्त अग्नि शत्रुपर फेंका जाता था। अग्नि अस्त्र यही है।

यहां भरत और पुरु ये दो पद मानवोंके वाचक हैं। भरतके अनुकूल, अर्थात् भरतके पक्षमें यह अग्नि था और पुरुके विरोधमें यह युद्धमें खडा हुआ था। पुरुका नाश इस अग्निने किया था। 'भरत' पदका अर्थ 'भरण पोषणमें समर्थ' और 'पुरु' का अर्थ जो 'नगर करके उसमें वसता है, 'पुरवासी' अथवा 'सब भोग साधनोंसे परिपूर्ण' यह शत्रु है, असुर है, विरोधी पक्षका है। अग्निने भरतका हित और पुरुका नाश किया है। पुरुका सहायक भी अग्नि वेदमें है, वहांका पुरु इससे भिन्न है।

[५] (८४) हे अग्ने ! (त्वे आहवनानि भूरि असन् इत्) तेरे अन्दर हविर्द्रव्यकी आहुतियाँ बहुत डाली जाती हैं। तू विश्वेभिः अनीकैः सुमना भुवः) अनंत तेजोंसे सुप्रसन्न होता है। (स्तुतः चित् शृण्विषे) स्तुति करनेपर तू उसको श्रवण करता है। हे (सुजात) उत्तम जन्मवाले अग्ने ! (गृणानः स्वयं तन्वं वर्धस्व) स्तुति करनेपर अपने शरीरका वर्धन कर। बडा हो जा।

१ **विश्वेभिः अनीकैः सुमना भुवः**-- सब सैनिकोंसे प्रसन्नताके साथ वर्ताव कर। उत्तम सुप्रसन्न चित्तसे वीरोंके साथ बात कर। सबके साथ हास्यमुख रहकर बात कर।

२ **स्वयं तन्वं वर्धस्व**— स्वयं प्रयत्न करके अपने शरीरको बढा। अपना शरीर बढानेके लिये स्वयं प्रयत्न कर।

६ इदं वचः शतसाः संसहस्रमुदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः ।
शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमदमीवचातनं रक्षोहा ८५

७ नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ८६

(९) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ अबोधि जार उषसामुपस्थाद्धोता मन्द्रः कवितमः पावकः ।
दधाति केतुमुभयस्य जन्तोर्हव्या देवेषु द्रविणं सुकृत्सु ८७

२ स सुक्रतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अर्कं पुरुभोजसं नः ।
होता मन्द्रो विशां दमूनास्तिरस्तमो ददृशे राम्याणाम् ८८

---

[६] (८५) (शतसाः संसहस्रं द्विबर्हाः) सैंकडों और सहस्रों प्रकारका धन पास रखनेवाले तथा विद्या और कर्मसे श्रेष्ठ बने वसिष्ठने (इदं वचः अग्नये उत् अजनिष्ट) यह स्तोत्र अग्निके लिये बनाया है । (यत् द्युमत् अमीवचातनं रक्षोहा) जो तेजस्वी, रोग दूर करनेवाला, राक्षसोंको दूर करनेवाला तथा जो (आपये शं भवाति) बांधवोंके लिये सुखदायी होता है ।

यहां वसिष्ठको ' द्वि-वर्हाः ' कहा है । ज्ञान और कर्ममें प्रवीण ऐसा इसका शब्दार्थ किया है । दो शिखावाला ऐसा भी इसका अर्थ प्रतीत होता है । यहां ' द्विबर्हाः ' के अतिरिक्त वसिष्ठका निर्देश करनेवाला कोई निर्देश नहीं है । इस सूक्तका ऋषि वसिष्ठ है । इसलिये ' अग्नये इदं वचः अजनिष्ट ' अग्निके लिये यह सूक्त बनाया है, इन पदोंसे वसिष्ठका अध्याहार यहां किया है ।

यह सूक्त (अमीव चातनं) रोगोंका नाश करनेवाला (रक्षोहा) रोग कृमियोंका नाशक है अथवा अदृष्टदोषको दूर करनेवाला है । पाठक इस मंत्रका इस कार्यके लिये उपयोग करें । (आपये शं) बंधु बांधवोंको सुख प्राप्त कर देनेवाला यह सूक्त है । पाठक इस सूक्तका यह उपयोग करें और अनुभव लें ।

७ (८६) यह मंत्र ७ (७९) में देखो ।

[१] (८७) (जारः होता मन्द्रः) सबकी वयोहानि करनेवाला, देवोंको आह्वान करनेवाला, आनन्द देनेवाला (कवितमः पावकः) अत्यंत ज्ञानी, पवित्र करनेवाला (उषसां उपस्थात् अबोधि) उषाओंके मध्यमें जाग उठा । (उभयस्य जन्तोः केतुं दधाति) दोनों प्रकारके प्राणियोंको ज्ञान देता है । (देवेषु हव्या) देवोंमें हवन द्रव्योंको और (सुकृत्सु द्रविणं) पुण्य कर्म करनेवालोंको धन देता है ।

' जार ' शब्दका अर्थ " आयुष्यका नाश करनेवाला " ऐसा भी है और " स्तुति करनेवाला " भी है । अग्नि जागते ही यज्ञ स्थानमें स्तुतिके मंत्र बोले जाते हैं । अन्यान्य देवोंको बुलाया जाता है । यज्ञ कर्मका प्रारंभ होता है । इससे सबको आनंद होता है । यह अत्यंत अधिक ज्ञानी और परिशोधन करनेवाला है । यह उषः कालमें उठता है । मनुष्यों तथा पशु पक्षियोंको भी यह जगाता है । उषः कालमें अग्नि जागता है, पशु पक्षी उठते हैं, देवोंका गुणगान शुरू होता है और पुण्य कर्म करनेवालोंको धन दिया जाता है ।

कवि-ज्ञानी उषः कालमें उठता है, अपने शुद्धता करनेके कर्म करता है, देवोंको प्रार्थनासे बुलाता है, स्वयं आनंद प्रसन्न रहता है और दूसरोंको भी प्रसन्न रखता है । देवयज्ञ करके हवन करता है और शुभ कर्म कर्ताओंको उनके कर्मोंके अनुसार धन देता है । यह इसी मंत्रका भाव ज्ञानीके दैनंदिनके आचारके विषयमें है । अग्निसे ज्ञानीका वर्णन होता है ।

[२] (८८) (सः सुक्रतुः) वह उत्तम कर्म करनेवाला है, (यः पणीनां दुरः वि) जिसने पणियोंके-- गौको चोरनेवालेके-- द्वार खोल दिये ।

३ अमूरः कविरदितिर्विवस्वान् त्सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः ।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रे ऽपां गर्भः प्रस्व१ आ विवेश ८९

४ ईळेन्यो वो मनुषो युगेषु समनगा अशुचज्जातवेदाः ।
सुसंदृशा भानुना यो विभाति प्रति गावः समिधानं बुधन्त ९०

५ अग्ने याहि दूत्यं१ मा रिषण्यो देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गणेन ।
सरस्वतीं मरुतो अश्विनापो यक्षि देवान् रत्नधेयाय विश्वान् ९१

६ त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो जरूथं हन् यक्षि राये पुरंधिम् ।
पुरुणीथा जातवेदो जरस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ९२

(पुरुभोजसं अर्कं नः धुनानः) वह अधिक दुग्धरूपी भोजन देनेवाले पूजा करने योग्य गौके झुण्डको ढूंढता है। (होता मन्द्रः दमूनाः) वह देवोंको बुलानेवाला, आनंददायक, मनःसंयमी है। (राम्याणां विशां तमः तिरः ददृशे) रात्रियोंका तथा प्रजाओंका अन्धेरा दूर करता है।

वह उत्तम कर्म करता है, चोरोंको पकडता है और उनके द्वार खोलकर गौवोंको मुक्त करता है, पश्चात् ये गौवें अधिक दूध देती हैं। वह हवन कर्ता, आनंद दायक तथा संयमी है। वह रात्रियोंका अन्धेरा दूर करता है और प्रजाजनोंमें जो अज्ञान होता है उसको भी दूर करता है।

अग्निके वर्णनके मिषसे यह ज्ञानीका भी वर्णन है।

[३] (८९) (यः अमूरः कविः) जो अमूढ और ज्ञानी (अदितिः विवस्वान्) अदीन और तेजस्वी (सुसंसत् मित्रः अतिथिः) उत्तम साथी, मित्र और पूज्य (नः शिवः) हमारे लिये शुभकारी (चित्रभानुः) विशेष तेजस्वी (उषसां अग्रे भाति) उषाओंके अग्र भागमें प्रकाशता है, (सः अपां गर्भः) वह जलोंका उत्पादक (प्रस्वः आ विवेश) ओषधियोंके अन्दर प्रविष्ट हुआ है।

वह मूढ नहीं है, वह ज्ञानी, अदीन, तेजस्वी, उत्तम मित्र, पूज्य, शुभ कारी, प्रकाशमान, जलोंका उत्पादक, उषाओंका प्रकाशक और ओषधियोंमें प्रविष्ट हो कर रहनेवाला है। अग्निके मिषसे यह ज्ञानीका वर्णन है।

[४] (९०) (वः) तू (मनुषः युगेषु) मनुष्योंके युगोंमें यज्ञके समयमें (ईळेन्यः) स्तुत्य है। (यः जातवेदाः) जो अग्नि धन और वेदका उत्पादक है, (समनगाः अशुचत्) युद्धमें सामना करनेके समयमें वह अधिक तेजस्वी होता है। (सु संदृशा भानुना) उत्तम दर्शन योग्य तेजसे (विभाति) वह प्रकाशता है। उस (समिधानं गावः प्रति बुधन्त) प्रदीप्त होनेवाले अग्निको गौवें अथवा स्तुतियां जगाती हैं।

ज्ञानी सर्व समयमें स्तुतिके लिये योग्य है। जो ज्ञान तथा धन उत्पन्न करता है वह शत्रुके साथ युद्ध करनेके समयमें भी अधिक उत्साही दीखता है। वह दर्शनीय तेजसे प्रकाशता है। इस तेजस्वी ज्ञानीके लिये गौवें प्राप्त होती हैं।

[५] (९१) हे अग्ने ! (दूत्यं याहि) दूत कर्म करनेके लिये तू जा। (देवान् अच्छ) देवोंके प्रति जा। (गणेन ब्रह्मकृतः मा रिषण्यः) संघमें रहकर ब्रह्म-स्तोत्र-करनेवाले हम जैसोंका विनाश न कर। (सरस्वतीं मरुतः अश्विना अपः) सरस्वती, मरुत्, अश्विनौ और आप (विश्वान् देवान् रत्नधेयाय यक्षि) विश्वेदेवोंको रत्नोंका दान हमें देनेके लिये सुपूजित कर।

[६] (९२) हे अग्ने ! (त्वां वसिष्ठः समिधानः) तुझे वसिष्ठ ऋषि प्रदीप्त करता है। (जरूथं हन्) तू कठोर भाषीका वध कर। (राये पुरंधिं यक्षि)

(१०) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। अग्निः। त्रिष्टुप्।

१ उषो न जारः पृथु पाजो अश्रेद् दविद्युतद् दीद्यच्छोशुचानः।
वृषा हरिः शुचिरा भाति भासा धियो हिन्वान उशतीरजीगः ९३

२ स्व१र्ण वस्तोरुषसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म।
अग्निर्जन्मानि देव आ वि विद्वान् द्रवद् दूतो देवयावा वनिष्ठः ९४

३ अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीरग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः।
सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ९५

धनके लिये बहुत बुद्धिवान् दिव्य विबुधोंका सत्कार कर। हे (जात वेदः) अग्ने ! (पुरुनीथा जरस्व) बहुत स्तोत्रोंसे देवोंकी स्तुति कर। (यूयं स्वतिभिः नः सदा पात) आप कल्याण करनेके साधनोंसे हम सबको सदा सुरक्षित रखो।

१ जरूथं हन्—कठोर भाषण करनेवालेके लिये ताडन कर। उसे दण्ड दे।

२ राये पुरंधिं यक्षि—धनके लिये बुद्धिमानका सत्कार कर।

[१] (९३ (उषः न जारः) उषाका नाश करनेवाला सूर्य है उसके समान, (पृथु पाजः अश्रेत्) बहुत तेज यह अग्नि अपनेमें धारण करता है। (दविद्युतत् दीद्यत् शोशुचानः) अत्यंत चमकनेवाला तेजस्वी और प्रकाशमान (वृषा हरिः शुचिः) बलवान् दुःखका हरण करनेवाला पवित्र अग्नि (धियः हिन्वानः) बुद्धि तथा कर्मोंको प्रेरित करता है और (भासा आभाति) अपने तेजसे प्रकाशता है। तथा (उशतीः अजीगः) सुखकी कामना करनेवालोंको जगाता है।

मानवधर्म- सूर्यके समान बहुत तेज मनुष्य अपने अन्दर धारण करे। अत्यंत तेजस्वी बलवान् पवित्र दुःखहरण करनेवाला ज्ञानी बुद्धि युक्त कर्मोंको करता है और अधिक तेजस्वी होता है। यह सुखकी इच्छा करनेवाली प्रजाको जगाता है।

१ पृथु पाजः अश्रेत्—मनुष्य बहुत तेज धारण करे।

२ वृषा शुचिः धियः हिन्वाति भासा आभाति- सामर्थ्यवान् शुद्ध पवित्र ज्ञानी बुद्धियों और कर्मोंको चलाता है और अपना तेज बढाता है।

[२] (९४) (अग्निः वस्तोः) अग्नि दिनके समय (उषसां अग्रे) उषाओंके आगे (स्वः न अरोचि) सूर्यके समान प्रकाशता है। (उशिजः न यज्ञं तन्वानाः) सुखकी इच्छा करनेवाले जैसे यज्ञ फैलाते हैं और (मन्म) मननीय स्तोत्र पढते हैं। (विद्वान् दूतः देवयावा वनिष्ठः) वैसा विद्वान् देवोंका दूत देवोंके पास जानेवाला दाता (अग्निः देवः वि आ द्रवत्) अग्नि देव अनेक प्रकारसे देवोंके सहायतार्थ गमन करता है।

मानवधर्म- ज्ञानी सूर्यके समान तेजस्वी बनें। सुख बढानेके लिये प्रशस्ततम कर्म करते रहें और मननीय विचार भी मनमें धारण करें। ज्ञानी ज्ञानियोंके साथ रहें और उनके साथ प्रगति करें।

१ वस्तोः स्वः न अरोचि—दिनके समय सूर्यके समान प्रकाशित हो जाओ।

२ उशिजः यज्ञं मन्म च तन्वानाः—सुखकी इच्छा करनेवाले प्रशस्त कर्मो और मननीय विचारोंका प्रचार करें, फैलावें।

३ वनिष्ठः विद्वान् देवयावा वि आ द्रवत्—दाता विद्वान् देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छासे विशेष प्रगति करता है।

[३] (९५) (मतयः देवयन्तीः) बुद्धियाँ देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली और (द्रविणं भिक्षमाणाः गिरः) धनकी प्रार्थना करनेवाली वाणियाँ (सुसंदृशं सुप्रतीकं) उत्तम दर्शनीय, सुरूप,

४ इन्द्रं नो अग्ने वसुभिः सजोषा रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम् ।
आदित्येभिरदितिं विश्वजन्यां बृहस्पतिमृक्वभिर्विश्ववारम् ९६

५ मन्द्रं होतारमुशिजो यविष्ठमग्निं विश ईळते अध्वरेषु ।
स हि क्षपावाँ अभवद् रयीणामतन्द्रो दूतो यजथाय देवान् ९७

(स्वञ्चं हव्यवाहं) उत्तम प्रगतिशील, तथा हव्यका वहन करनेवाले, (मनुष्याणां अरतिं) मनुष्योंके स्वामी (अग्निं अच्छ यन्ति) अग्निके समीप जाती है।

मानवधर्म- मनुष्यकी बुद्धियाँ देवत्व प्राप्त करें, तथा धनकी प्राप्तिकी इच्छा करें और उत्तम सुंदर शरीरधारी प्रगतिशील, अन्नवान, मनुष्योंके राजाके समीप जाय। (देवत्व प्राप्त करके अपनी योग्यता बढावें और धनके लिये सुन्दर प्रगतिशील, धनवान मानवोंके नेता अग्रणिके पास जावे ।)

१ **देवयन्तीः मतयः-** मनुष्यकी बुद्धियां देवत्व प्राप्त करनेका यत्न करें ।

२ **गिरः द्रविणं**—वाणियां धन चाहें। क्योंकि विना धनके इस लोकमें सुख नहीं होगा ।

३ **सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहं मनुष्याणां अरतिं अच्छ यन्ति**—सुन्दर सुडौल, प्रगतिशील, अन्न धनवान, मानवोंके नेताके पास मनुष्य जांय। जिससे उनको कर्म करनेके लिये मिलेगा और उससे धन भी मिलेगा ।

[४] (९६) हे अग्ने! (वसुभिः सजोषाः) वसुओंके साथ मिलकर तू (नः इन्द्रं आवह) हमारे लिये इन्द्रको बुलाओ। (रुद्रेभिः बृहन्तं रुद्रं) रुद्रोंके साथ मिलकर महान् रुद्रको बुलाओ। (आदित्यैः विश्वजन्यां अदितिं) आदित्योंके साथ मिलकर सर्वजन हितकारी अदिति माताको बुलाओ। (ऋक्वभिः विश्ववारं बृहस्पतिं आ वह) स्तुतियोग्य ज्ञानी अंगिरा देवोंके साथ मिलकर सबके द्वारा संसेवित बृहस्पतिको बुलाओ ।

(१) जो लोगोंको वसाते हैं उनको वसु कहते हैं, उनके साथ देवराज इन्द्रको बुलाना है। राजाकी सहायतासे ये लोगोंका निवास कराते है। (२) जो शत्रुओंको रुलाते हैं वे वीर सैनिक हैं, इनके साथ महावीर रुद्रको बुलाना है। सेनाके साथ सेनापति आवे और शत्रुको दूर करे। (३) अदितिके पुत्र आदित्य है । पुत्रोंके साथ माता देवीको यज्ञमें बुलाना है । (४) ज्ञानियोंके साथ ज्ञानाधिपतिको बुलाना है ।

' वसु ' धनका नाम है । वसुदेव धनके देव हैं । रुद्र ये वीर है । बृहस्पति ज्ञानी है। बृहस्पति ब्राह्मण, रुद्र क्षत्रिय, वसु वैश्य है । ये त्रैवर्णिक है जो यज्ञमें बुलाये जाते हैं । पुत्रोंके साथ माताओंको भी बुलाना है । यज्ञ राष्ट्रका है इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनके प्रतिनिधि और बालकोंके साथ स्त्रियोंके प्रतिनिधि बुलाये गये है । यह यज्ञ इन सबके लिये है ।

[५] (९७) (उशिजः विशः) सुखकी कामना करनेवाली प्रजाएं (मन्द्रं होतारं यविष्ठं अग्निं) स्तुत्य. आह्वान करनेवाले, तरुण अग्निकी (अध्वरेषु ईळते) हिंसा रहित यागोंमें स्तुति गाते हैं। (सः हि क्षपावान्) वह रात्रीमें रहनेवाला, (रयीणां देवान् यजथाय) धनोंके लिये देवोंका यजन करनेके लिये (अतन्द्रः दूतः अभवत्) आलस्य रहित कार्य करनेवाला दूत हुआ है ।

जो प्रजा सुखकी इच्छा करती है वह प्रशंसनीय तरुण तेजस्वी अग्रणी नेताका प्रशस्त कर्म करनेके लिये स्वीकार करे। वह नेता रात्रीके अन्दर जागता है, धनोंके लिये धनवानोंको लाता है और अपना कर्तव्य आलस्य छोडकर करता रहता है।

(११) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वदमृता मादयन्ते ।
आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैर्न्यग्ने होता प्रथमः सदेह ९८

२ त्वामीळते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः ।
यस्य देवैरासदो बर्हिरग्नेऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति ९९

३ त्रिश्चिदक्तोः प्र चिकितुर्वसूनि त्वे अन्तर्दाशुषे मर्त्याय ।
मनुष्वदग्न इह यक्षि देवान् भवा नो दूतो अभिशस्तिपावा १००

[१] (९८) हे अग्ने! (अध्वरस्य महान् प्रकेतः असि) तू हिंसारहित कर्मका महान ध्वज जैसा सूचक है। (त्वत् ऋते अमृताः न मादयन्ते) तेरे विना अमर देव आनंदित नहीं होते। (विश्वेभिः देवैः सरथं आ याहि) सब देवोंके समेत एक रथपर बैठकर आओ और (इह प्रथमः होता नि षद) यहां पहिला आह्वाता होकर बैठो।

१ अध्वरस्य महान् प्रकेतः असि— हिंसा-कुटिलता रहित कर्मोंका महान् प्रचारक बन। क्योंकि जगत्में हिंसा और कुटिलता बढ जाती है, इसलिये उसका प्रतिकार करनेके लिये महान् प्रयत्न सरलतावादियोंके द्वारा होना आवश्यक है।

२ त्वदृते अमृताः न मादयन्ते—अहिंसा-सरलताका प्रचार तथा आचार करनेवालोंके विना श्रेष्ठ पुरुषोंकी प्रसन्नता नहीं होती। इसलिये अहिंसा-सरलता युक्त कर्मोंका प्रचार करनेका कार्य मनुष्य करें।

३ विश्वेभिः देवैः सरथं आ याहि— सब विबुधोंके साथ एक रथमें बैठकर आओ। सदा विबुधों, ज्ञानियोंके साथ रहो।

४ इह प्रथमः निषद—यहां पहिला बनकर रह। सब से प्रथम स्थानमें बैठनेकी योग्यतावाला बनकर रह!

इस तरह अग्निका ही वर्णन मानव धर्म बताता है पाठक इसका विचार करें।

[२] (९९) हे अग्ने! (अजिरं त्वां) प्रगतिशील तुझको (मानुषासः हविष्मन्तः) मनुष्य हवि लेकर (सदं इत्) सदा ही (दूत्याय ईळते) दूत कर्म करनेके लिये प्रार्थना करते हैं। (यस्य बर्हिः) जिसके आसनपर (देवैः आसदः) देवोंके साथ तू बैठता है (अस्मै अहानि सुदिना भवन्ति) उसके लिये अच्छे दिन आते हैं।

मानवधर्म-- प्रगतिशील वीरको मनुष्य दूतकर्ममें नियुक्त करें। त्वरासे कर्म करनेवाला दूत कर्मके लिये अच्छा है। जिसके आसनपर विबुध आकर बैठते हैं, उसके लिये अच्छे दिन आयेंगे।

१ मानुषासः अजिरं सदं इत् दूत्याय ईळते— मनुष्य सत्वर कार्य करनेवाले दूतको ही सदा चाहते हैं।

२ यस्य बर्हिः देवैः आसदः अस्मै अहानि सुदिना भवन्ति—जिसके घर विबुध आकर बैठते हैं उसके लिये उत्तम दिन आते हैं।

दूत सत्वर कार्य करनेवाला, तथा तत्परतासे कार्य करनेवाला हो। सुस्त न हो। जिसके घरमें उत्तम ज्ञानी आते हैं उसके लिये उत्तम दिन प्राप्त होते हैं। अर्थात् जिसकी संगति बुरी है उसके लिये खराब दिन आते हैं। इसलिये संगति देवोंकी करनी चाहिये, असुरोंकी नहीं।

[३] (१००) हे अग्ने! (त्वे अन्तः अक्तोः वसूनि त्रिः चित् मर्त्याय दाशुषे) तेरे पास दिनमें तीनवार दाता मनुष्योंको देनेके लिये धन है ऐसा (प्रचिकितुः) सब जानते हैं। (मनुष्वत् इह नः दूतः भव, देवान् यक्षि) मनुके समान यहां हमारा दूत होकर देवोंका यजन कर और (नः अभिशस्ति-पावा भव) हमारा रक्षण शत्रुओंसे करनेवाला हो।

४ अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्याऽग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य ।
क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्ताऽथा देवा दधिरे हव्यवाहम् १०१

५ आग्ने वह हविरद्याय देवानिन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्ताम् ।
इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १०२

(१२) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् १०३

मानवधर्म-- यज्ञ करनेवाले दाता मनुष्योंको धन प्राप्त होवे । धन इसी कार्यके लिये है, यह मनुष्य जानें । दूत होकर विबुधोंका सत्कार करें और दूतको उचित है कि वह दुष्टोंसे संरक्षण करे ।

१ दाशुषे मर्त्याय अक्तोः त्रिः वसूनि प्र चिकितुः-- दाता मनुष्योंको दिनमें तीन वार धनका दान करना योग्य है यह सब जानते हैं ।

२ इह दूतः भव, देवान् यक्षि, अभिशस्ति-पावा भव --यहां दूत हो, देवोंके लिये सत्कार कर और दुष्टोंको दूर कर तथा सबकी सुरक्षा कर । दूतका यह कर्तव्य है । जिसका जो दूत हो वह उसका संरक्षण अवश्य करे ।

३ अभिशस्ति-पावा भव --शत्रुओंसे अपनी सुरक्षा करनी चाहिये ।

जो सुरक्षा करनेवाला है उसको अन्न धन आदि देकर उसका सत्कार करना चाहिये । उसको उचित है कि वह अपने घर की संपत्तिवालोंका सत्कार करे और आसुरी लोगोंको दूर करें ।

[४] (१०१) (बृहतः अध्वरस्य अग्निः ईशे) महान हिंसारहित प्रशस्ततम कर्मका अग्नि अधिपति है । (विश्वस्य कृतस्य हविषः) सब संस्कार किये हविष्यान्नका अग्नि ही अधिपति है । (हि अस्य क्रतुं वसवः जुषन्त) इसके किये क्रतुका वसुदेव सेवन करते हैं । (अथ देवाः हव्यवाहं दधिरे) और देवोंने अग्निको हव्योंका वहनकर्ता करके धारण किया है ।

[५] (१०२) हे अग्ने ! (हविरद्याय देवान् आ वह) अन्नके भक्षण करनेके लिये देवोंको यहां बुलाकर ले आओ । (इह इन्द्रज्येष्ठासः मादयन्तां) इस यज्ञमें इन्द्र प्रमुख देव आनन्द प्रसन्न हों । (इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि) इस यज्ञको द्युलोकमें देवोंके अन्दर स्थापन कर । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप सब हमें कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित रखो ।

मानवधर्म-- भोजनके लिये विबुधोंको बुलाओ । वीर श्रेष्ठ विबुध यहां भोजन पाकर आनन्द प्रसन्न होते रहें । प्रशस्तकर्म ऐसा करो कि जो विबुधोंको प्रिय हो । और सबकी सुरक्षा करो ।

अग्निके वर्णनसे मानवधर्म और मानवोंके लिये जीवन धर्मका बोध किस तरह मिलता है । यह यहां पाठक देखें । और अधिक विचार करके अधिक बोध प्राप्त करें ।

[१] (१०३) (यः स्वे दुरोणे समिद्धः दीदाय) जो अपने स्थानमें जागकर प्रकाशित होता है, और (उर्वी रोदसी अन्तः) विस्तीर्ण द्यावापृथिवीके मध्यमें । चित्रभानुं यविष्ठं स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चं । विलक्षण प्रकाश देनेवाले तरुण उत्तम पदार्थोंसे हवन किये हुए और सब ओरसे संसेवित उस अग्निकी (नमसा अगन्म) नमस्कारसे हम सेवा करते हैं ।

१ स्वे दुरोणे समिद्धः दीदाय--अपने निज स्थानमें (घरमें, देशमें, राष्ट्रमें) तेजस्वी होकर प्रकाशित हो । अपने देशमें जागते हुए प्रकाशित हो । अपने राष्ट्रमें जागो और बाहेर अपने तेजको फैलाओ ।

१ चित्रभानुं स्वाहुतं, विश्वतः प्रत्यञ्चं यविष्ठं

२ स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
स नो रक्षिषद् दुरितादवद्यादस्मान् गृणत उत नो मघोनः ॥ १०४
३ त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १०५

नमसा अगन्म— विलक्षण तेजस्वी, उत्तम प्रकारसे सत्कार पूर्वक अन्नका सेवन करनेवाला, सब ओरसे जिसके पास लोग आते हैं ऐसे तरुण वीरके समीप हम नमस्कार करते हुए जाते हैं। तेजस्वी उत्तम अन्नका सेवन करनेवाले, सबके प्रिय तरुण वीरका सब सत्कार करें। तेजस्वी तरुणोंका राष्ट्रमें सत्कार हो।

[२] (१०४) (सः अग्निः मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वान्) वह अग्नि अपने महत्वसे सब पापोंको दूर करता है, (जातवेदाः दम आ स्तवे) वह वेदोंका तथा धनोंका उत्पादक अपने स्थानमें प्रशंसित होता है। (सः दुरितात् अवद्यात् नः रक्षिषत्) वह पापोंसे और निंदित कर्मोंसे हमें बचावे। (गृणतः अस्मान्) स्तुति करनेवाले हम सबकी तथा (उत नः मघोनः) हमारे धनवान यज्ञ कर्ताकी सुरक्षा करे।

मानवधर्म— तेजस्वी पुरुष अपने सामर्थ्यसे सब पापोंको दूर करता है। पापमय तथा निंदित कर्मोंसे सबको सुरक्षित रखता है। वह ज्ञानका प्रकाशक और धनका दाता अपने स्थानमें प्रशंसित होकर प्रकाशता है। जो ऐसे तेजस्वी पुरुषका वर्णन करते हैं, गुणगान गाते हैं, जो धनी अपने धनका दान प्रशस्त कर्ममें करते हैं, उनकी सुरक्षा वह करता है।

१ मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वान्— अपने महत्त्वसे सब पापोंको दूर करो। अपनी आत्मिक शक्ति बढाओ और पाप विचारोंको दूर करो। अपने उपस्थित रहनेसे ही सब पाप दूर हो जांय, इतनी अपनी शक्ति बढानी चाहिये।

२ दमे जातवेदाः— अपने स्थानमें, घरमें (देशमें राष्ट्रमें) विद्याका प्रचार करो, धनोंका वितरण करो, सबको ज्ञानी और धनी बनाओ।

३ सः दुरितात् अवद्यात् नः रक्षिषत्— वह पापों और निंदित कर्मोंसे सबको सुरक्षित रखे। पापोंसे और निंदित ही कर्मोंसे अपने आपको बचाना चाहिये।

४ गृणतः मघोनः रक्षिषत्— प्रभुका काव्य गान करनेवालों और यज्ञमें धन दान करनेवालोंकी राष्ट्रमें सुरक्षा हो।

'जात-वेदाः' में 'वेदस्' पदका अर्थ 'वेद और धन' है। जिससे वेदोंका और धनोंका प्रचार होता है वह 'जात वेदाः' है।

[३] (१०५) हे अग्ने! (त्वं वरुणः असि) तू वरुण है, (उत मित्रः) और मित्र भी तू है (वसिष्ठाः मतिभिः त्वां वर्धन्ति) वसिष्ठ मननीय स्तोत्रोंसे तुम्हें बढाते हैं। (त्वे वसु सुषणनानि सन्तु) तेरे पास सब प्रकारके धन संविभजनीय हों। (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात) आप कल्याणोंके साथ हम सबको सदा सुरक्षित रखिये।

अग्नि ही वरुण तथा मित्र हैं। अर्थात् वरुण और मित्र देवताके गुण धर्म अग्निमें हैं और अग्निके गुण इनमें हैं। जो वरण करने योग्य होता है वह वरुण है और जो मित्रवत् आचरण करता है वह मित्र है। अग्नि सबको स्वीकारने योग्य है और सबका मित्रवत् हितकारी है।

यहां "**वसिष्ठाः मतिभिः वर्धयन्ति**" सब वसिष्ठ स्तोत्रोंसे अग्निके महत्त्वका काव्य गाते और उसका महत्त्व बढाते हैं ऐसा कहा है। यहां '**वसिष्ठाः**' पद बहुवचनमें है। इससे स्पष्ट होता है कि यह जातिनाम है, गोत्रनाम है, जो सबके लिये प्रयुक्त हो सकता है।

वसु सुषणनानि सन्तु— धन सबको सेवनीय हो। किसी एकके उपभोगके लिये धन नहीं है। जो धन है वह सबके लिये है। जिस किसीके पास धन हो वह उसका विश्वस्त पालक है, वह उसका भोक्ता नहीं। धन 'सु षणन' है। सबके उपभोगके लिये है। यदि धन किसी एकके ही उपभोगके लिये रहा तो वह पाप करेगा और वह सबका विनाश करेगा।

*

(१३) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वैश्वानरोऽग्निः । त्रिष्टुप् ।

१ प्राग्नये विश्वशुचे धियंधेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम् ।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् ॥ १०६

२ त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः ।
त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुञ्चो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥ १०७

३ जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून् न गोपा इर्यः परिज्मा ।
वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १०८

---

[१] (१०६) (विश्वशुचे धियंधे) विश्वको प्रकाश देनेवाले, बुद्धियों और कर्मोंका धारण करनेवाले, (असुरघ्ने अग्नये) असुरोंके नाश कर्ता अग्निके लिये (मन्म धीतिं प्र भरध्वं) मननीय काव्यों और प्रशस्त कर्मोंको भर दो। (मतीनां यतये) कामनाओंके दाता और (वैश्वानराय बर्हिषि) विश्वके नेताके लिये यज्ञमें (हविः न) हविष्यान्नके समान शुद्ध अन्न (प्रीणानः भरे) संतुष्ट हुआ मैं देता हूं अर्पण करता हूं।

मानवधर्म- जो विश्वमें प्रकाशमान वा शुद्ध है, जो बुद्धिमान तथा पुरुषार्थी है, जो असुरोंका विनाश करता है, उसका काव्यगान करो और उसकी सहायतार्थ उत्तम कर्म करो। जो कामनाओंकी पूर्ति करता है, उस सबके नेता पुरुषके लिये संतुष्ट होकर उत्तम अर्पण देना योग्य है।

१ विश्वशुचे धियंधे असुरघ्ने अग्नये मन्म धीतिं प्र भरध्वं— विश्वमें तेजस्वी, पवित्र, बुद्धिमान्, पुरुषार्थी, शत्रुनाशक नेताका सन्मान करो। उसके चरित्रका गान करो, उसका महत्त्व बढाओ, उसको संतुष्ट करनेके लिये अर्पण करो।

२ प्रीणानः वैश्वानराय हविः भरे— संतुष्ट होकर सबके नेता अग्रणीके लिये मैं अन्न देता हूं। अर्पण करता हूं। उसको संतुष्ट करनेके लिये अपना समर्पण करता हूं।

मनुष्य विश्वमें पवित्र हो, सबको प्रकाश देनेवाला बने, दुष्टोंका नाश करे सबका संचालन करे, विश्वका नेतृत्व करे।

[२] (१०७) हे अग्ने! (त्वं शोचिषा शोशुचानः) तू अपने तेजसे प्रकाशित होकर (जायमानः रोदसी अपृणः) उत्पन्न होते ही द्युलोक और पृथिवीको भरपूर भर देता है। हे (जातवेदः वैश्वानर) वद और धनके उत्पन्न कर्ता और विश्वके नेता! (महित्वा) अपनी महिमासे (त्वं देवान् अभिशस्तेः अमुञ्चः) तूने देवोंका शत्रुओंके द्वारा होनेवाले विनाशसे बचाया है।

मानवधर्म- तेजस्वी पुरुष अपने तेजसे प्रकाशित हो और अपनी दीप्तिसे विश्वको भर देवे। ज्ञानका प्रसार करे, धनकी निर्मिति करे, विश्वका नेतृत्व करे। और अपनी शक्तिसे सबको शत्रुसे बचावे।

१ त्वं शोचिषा शोशुचानः रोदसी अपृणः— तू तेजस्वी होकर अपने तेजसे विश्वको भर दे।

२ जात-वेद. वैश्वानर— ज्ञानका प्रसार कर, धनका उत्पादन कर, विश्वका नेतृत्व कर।

३ त्वं अभिशस्तेः अमुञ्चः— तू शत्रुओंसे सबको बचाओ।

[३] (१०८) हे वैश्वानर अग्ने! (जातः) उत्पन्न होते ही तू (इर्यः परिज्मा) सबका प्रेरक और सर्वत्र गमन कर्ता होकर (पशून् गोपाः) पशुओंका संरक्षण करता है। (यत् भुवना व्यख्यः) जब तू भुवनोंका निरीक्षण करता है, तब (ब्रह्मणे गातुं विंद) ज्ञान प्रसारके लिये मार्ग प्राप्त करता है। (सदा नः यूयं स्वस्तिभिः पात) सदा हम सबको आप कल्याणोंके द्वारा सुरक्षित रखो।

(१४) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । त्रिष्टुप्, १ बृहती ।

१ समिधा जातवेदसे देवाय देवहूतिभिः ।
हविर्भिः शुक्रशोचिषे नमस्विनो वयं दाशेमाग्नये १०९

२ वयं ते अग्ने समिधा विधेम वयं दाशेम सुष्टुती यजत्र ।
वयं घृतेनाध्वरस्य होतर्वयं देव हविषा भद्रशोचे ११०

३ आ नो देवेभिरुप देवहूतिमग्ने याहि वषट्कृतिं जुषाणः ।
तुभ्यं देवाय दाशतः स्याम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १११

मानवधर्म- प्रकट होते ही सर्वत्र जाकर देखो और सबको प्रेरणा करो, पशुओंकी पालना करो, सब प्रदेशोंका निरीक्षण करो, ज्ञानके प्रसारका मार्ग देखो और सबकी सुरक्षा करो ;

१ जातः परिज्मा इर्यः—बाहर प्रकट होते ही सब स्थानोंमें जाओ और सबको उन्नतिके मार्गपर चलनेकी प्रेरणा करो ।

२ पशून् गोपाः—पशुओंका संरक्षण करो ।

३ भुवना व्यख्यः—सब प्रदेशोंका निरीक्षण करो ।

४ ब्रह्मणे गातुं विंद्—ज्ञानके प्रसारका उत्तम मार्ग ढूंढो और उसको प्राप्त करो (अर्थात् उस मार्गसे ज्ञानका प्रचार करो ।)

५ स्वस्तिभिः पात—कल्याणमय योजनाओंके द्वारा सब को सुरक्षित करो ।

[१] (१०९) (जातवेदसे अग्नये) जिससे वेद प्रकट हुए उस अग्निके लिये (समिधा वयं दाशेम) समिधाओंसे हम परिचर्या करते हैं । (देवाय देवहूतिभिः) इस अग्निदेवके लिये देवस्तुतियोंसे, तथा (शुक्रशोचिषे नमस्विनः हविर्भिः) पवित्र प्रकाशवाले अग्निके लिये अन्न लेकर हम हविकी आहुतियोंसे (दाशेम) सेवा करते हैं ।

अग्निसे यज्ञ होता है और यज्ञमें वेद बोले जाते हैं, इस कारण अग्निसे वेद प्रकट हुए ऐसा कहा है । '**जातवेदा**' शब्दका अग्निपरक इस तरह अर्थ है । समिधा अग्निमें डालकर अग्निकी सेवा करनेसे अग्नि प्रदीप्त होता है । '**देव-हूति**' का अर्थ ईश्वरस्तुति है । ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये उसकी स्तुति गाई जाती है । यह गाई हुई स्तुति भक्तके लिये मार्ग बताती है । अग्नि आदि देवताके वर्णनसे मनुष्यकी उन्नतिका मार्ग मनुष्यके सन्मुख प्रकट होता है । अग्नि प्रदीप्त होनेपर उसमें आहुतियां डालना चाहिये । यह यज्ञविधि प्रसिद्ध है ।

१ समिधा वयं दाशेम—प्रथम अग्निमें समिधा डालकर उसे प्रदीप्त करना । अग्नि उत्पन्न करनेपर यह प्रथम करने योग्य सेवा है ।

२ देवहूतिभिः देवाय—ईश्वर स्तुतिके स्तोत्रोंका पाठ करना, यह द्वितीय विधि है ।

३ शुक्रशोचिषे हविर्भिः दाशेम—अग्नि प्रदीप्त होनेपर हविकी आहुतियां देना, यह यज्ञकी तीसरी सिधि है ।

इस तरह यहां यज्ञविधि बतायी है ।

[२] (११०) हे अग्ने ! (ते वयं समिधा विधेम) तेरी हम समिधाओंसे परिचर्या करते हैं । हे (यजत्र) यजनीय अग्ने ! (वयं सुष्टुतीः दाशेम) हम उत्तम स्तुतियोंसे तुम्हारी सेवा करते हैं । हे (अध्वरस्य होतः) हिंसारहित यज्ञके होता अग्ने ! हम (घृतेन) घृतसे तेरी परिचर्या करते हैं । हे (भद्रशोचे देव) कल्याण प्रकाशवाले अग्ने ! हे देव ! (वयं हविषा) हम हविके अर्पणसे तेरी परिचर्या करते हैं ।

इस मंत्रमें यज्ञविधि बतायी है । प्रथम '**समिधा**' डालना और अग्निको जगाना, पश्चात् '**सुष्टुती**' स्तोत्र पाठ करना, पश्चात् '**घृतेन**' घीसे उसको प्रदीप्त करना, अग्नि अच्छी तरह प्रदीप्त होनेपर '**हवि**' अर्पण करना । यह यज्ञका क्रम है ।

[३] (१११) हे अग्ने ! (नः देवहूतिं) हमारी देवस्तुतिरूप यज्ञके प्रति (देवेभिः) देवोंके साथ

[१५] १५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । गायत्री ।

१ उपसद्याय मीळ्हुष आस्ये जुहुता हविः । यो नो नेदिष्ठमाप्यम् ११२
२ यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमेदमे । कविर्गृहपतिर्युवा ११३

(वषट्कृतिं जुषाण) वषट् कारसे दिये अन्नका सेवन करते हुए तू (उप आ याहि) आ (देवाय तुभ्यं दाशतः स्याम) तुझ देवकी सेवा करनेवाले हम हों। (यूयं सदा नः स्वतिभिः पातं) आप सदा हमारी कल्याणके साधनोंसे सुरक्षा कीजिये।

हम ईश्वरकी स्तुति गाते हैं, वषट् कारसे अन्न अथवा हवि समर्पण करते है और देवताओंके उद्देश्यसे यज्ञ करते है। वह यज्ञ हमारा सफल हो। इससे हम सबकी सुरक्षा होती रहे।

[१] (११२) (उपसद्याय मीळहुषे) पास बैठने योग्य और इच्छाकी पूर्ति करनेवाले अग्निके लिये (आस्ये हविः जुहुत) उसके मुखमें हविका हवन करो। (यः नः नेदिष्ठं आप्यं) जो हमारा अत्यंत समीपका बंधु है।

मानवधर्म–अत्यंत समीपका बन्धु उसको कहते हैं कि जो समीप बैठनेयोग्य है और जो अपना हित करता है।

(नेदिष्ठं आप्यं) समीपका बन्धु वह है कि जो (उपसद्यः) कठिन प्रसंगमें भी पास जाने और उससे सहायता मांगने योग्य है। तथा (मिळ्हुष्) जो समयपर आवश्यक सहायता करता है।

आजकल हम देखते हैं कि भाई भाईमें मित्रताकी अपेक्षा द्वेष ही अधिक होता है। कौरव–पांडवोंका द्वेष प्रसिद्ध है। आज इससे भी अधिक द्वेष है। वेदमें समीपस्थ (नेदिष्ठं आप्यं) भाईचारा यहां वर्णन किया है। वैसी स्थिति समाजमें आजाय तो अच्छा है। वेदका आदर्श कुटुंब वह है कि जिसमें,—

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्
मा स्वसारमुत स्वसा ।(अथर्व)

' भाई भाईसे द्वेष न करे और बहिन बहनसे वैर न करे।' यह आदर्श कुटुंब है। यही सुखी कुटुंब हो सकता है।

[२] (११३) (यः कविः गृहपतिः युवा) जो अग्नि ज्ञानी, गृहस्वामी और तरुण है, (पंच चर्षणीः दमे दमे) पांचों लोगोंके घरघरमें (निषसाद) रहता है।

'**पंच चर्षणीः**' ये पञ्च मानव हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पञ्चजन हैं। इनमेंसे प्रत्येक घर, घरमें यह अग्नि रहता है। यह ज्ञानी गृहस्थी युवा है। आठवें वर्ष बालक गुरुकुलमें जाता है, वहां १२ वर्ष विद्या पढता है २० वें वर्ष स्नातक होकर वापस आता है। यह तरुण है, कवि-ज्ञानी है और गृहपति भी है। गुरुकुलका ब्रह्मचारी गृहपति नहीं होता, क्योंकि वह गुरुकुलमें प्रविष्ट होते ही घरका संबंध छोड देता है। वह विद्यामाताके गर्भमें जाता है। वानप्रस्थी और संन्यासी भी गृहपति नहीं होते। इन तीनों–ब्रह्मचारी, वाननप्रस्थी और संन्यासी—को गृहपति नहीं कहते। ये '**अ-निकेतन**' होते हैं। इनका अपना निज कोई घर नहीं होता। इसलिये गृहस्थाश्रमी युवा पुरुष ही गृही अथवा गृहपति कहलाता है। कवि-गृहपति–युवा ये विशेषण गृहस्थीके होते हैं। २५ वर्षसे ५० वर्षतक तारुण्य अवस्था है और इसी अवस्थामें ये तरुण गृहपति होते हैं।

पंचजनोंके घर घरमें ये युवा गृहपति होते हैं। इससे स्पष्ट होता है ब्रह्मचर्य, वानपस्थ, संन्यास पञ्चजनोंमें सबमें होते थे। नहीं तो ' पञ्चजनोंमें युवा गृहपति ' का दूसरा कोई तात्पर्य नहीं हो सकता।

' अनिकेतन ' ' अ–गृही ' होनेकी अवस्था जिनमें होगी उनको ही ' तरुण कवि गृहपति ' कहा जा सकता है। पञ्चजनोंमें ' युवा ही गृहपति ' होता था, और घर घरमें (दमे दमे) होता था। इससे स्पष्ट है कि इन पञ्चजनोंमें बालक, वानप्रस्थी, यती इन अवस्थाओंमें अर्थात् तरुण अवस्थाको छोडकर दूसरी किसी अवस्थामें गृहपति नहीं होता था।

३	स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु विश्वतः	। उतास्मान् पात्वंहसः	११४
४	नवं नु स्तोममग्नये दिवः श्येनाय जीजनम्	। वस्वः कुविद् वनाति नः	११५
५	स्पार्हा यस्य श्रियो दृशे रयिर्वीरवतो यथा	। अग्रे यज्ञस्य शोचतः	११६
६	सेमां वेतु वषट्कृतिमग्निर्जुषत नो गिरः	। यजिष्ठो हव्यवाहनः	११७
७	नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं देव धीमहि	। सुवीरमग्न आहुत	११८
८	क्षप उस्रश्च दीदिहि स्वग्नयस्त्वया वयम्	। सुवीरस्त्वमस्मयुः	११९

[३] (११४) (सः अग्निः नः आमात्यं वेदः) **वह अग्नि हमारा साथ रहनेवाला धन (विश्वतः रक्षतु) सब ओरसे सुरक्षित रखे। (उत अस्मान् अंहसः पातु) और हमें पापसे बचावे।**

'**अमा-त्यं वेदः**' जन्मके साथ आया हुआ धन, पैतृक धन जो अपने साथ रहता है, साथ आया धन। गुरुकुलसे स्नातक बनकर अपने घर जानेपर उसका जैसा अपने घर पर स्वामित्व होता है, वैसा उसका पैतृक धन भी उसको प्राप्त होता है। यह '**अमा-त्य वेदः**' है। यह 'साथ रहा, साथ आया धन' है। जन्म और धनका यहां साथ निवास कहा है। पैतृक संपत्तिपर पुत्रका जन्मके साथ अधिकार आता है यह इससे सिद्ध है। यद्यपि यह धन यज्ञके लिये है तथापि पिताके धनका अधिकारी पुत्र है यह इस शब्दसे सिद्ध होता है।

[४] (११५) (दिवः श्येनाय अग्नये) **द्युलोकमें श्येनपक्षीके सदृश शीघ्र गमन करनेवाले अग्निके लिये (नवं स्तोमं) नवीन स्तोत्र (जीजनं) मैं बनाता हूँ, वह अग्नि (नः) हमारे लिये (कुवित् वस्वः वनाति) बहुत धन देवे।**

[५] (११६) (यज्ञस्य अग्रे शोचतः) **यज्ञके अग्रभागमें प्रकाशित होनेवाले अग्निकी (श्रियः) शोभा देनेवाली ज्वालाएँ (वीरवतः रयिः यथा) जैसा वीर पुत्रवालेका धन होता है, उस प्रकार (दृशे स्पार्हाः) देखनेके लिये स्पृहणीय होती हैं।**

वीरवतः रयिः स्पार्हः— वीर पुत्र जिसको है उसका धन स्पृहणीय होता है। पुत्रहीनके पासका धन वैसा शोभा-दायी नहीं होता। पुत्रका महत्त्व इतना है।

[६] (११७) (यजिष्ठः हव्यवाहनः अग्निः) **यजनके लिये योग्य हवनीय द्रव्योंका वहन करनेवाला अग्नि (इमां वषट् कृतिं) हमारी दी हुई इस आहुतिको (वेतु) स्वीकारे और (नः गिरः जुषतं) हमारे वचन सुने।**

[७] (११८) हे (नक्ष्य विशांपते) **पास जाने-योग्य, प्रजाओंके अधिपते (आहुत अग्ने देव) आहुति दिये हुए अग्निदेव! (द्युमन्तं सुवीरं त्वा नि धीमहि) तेजस्वी उत्तम वीरोंके साथ रहनेवाले ऐसे तेरा हम यहां स्थापन करते हैं।**

सुवीरं निधीमहि—जो उत्तम वीरोंसे युक्त है उसको यहां स्थापन करते हैं। ऐसा यहां कहा है। जिसके पास वीर नहीं अथवा जिसको संतान नहीं, उसको हम यहां नहीं सन्मानित करेंगे यह इसका भाव है। अपने पास वीर संतान अवश्य चाहिये।

[८] (११९) (क्षपः उस्रः च दीदिहि) **रात्रिमें और दिनमें प्रदीप्त होते रहो, (त्वया वयं स्वग्नयः) तेरे कारण हम उत्तम अग्निवाले होंगे और (त्वं अस्मयुः सुवीरः) तू भी हमारे कारण उत्तम वीरोंसे युक्त होगा।**

देवसे भक्त और भक्तोंसे देव लाभ प्राप्त करते है। देवसे भक्तोंको धनादि प्राप्त होता है और भक्तोंके कारण देवका यश तथा माहात्म्य बढता है।

९	उप त्वा सातये नरो विप्रासो यन्ति धीतिभिः ।	उपाक्षरा सहस्रिणी	१२०
१०	अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः ।	शुचिः पावक ईड्यः	१२१
११	स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो ।	भगश्च दातु वार्यम्	१२२
१२	त्वमग्ने वीरवद् यशो देवश्च सविता भगः ।	दितिश्च दाति वार्यम्	१२३
१३	अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति ष्म देव रीषतः ।	तपिष्ठैरजरो दह	१२४
१४	अधा मही न आयस्यनाधृष्टो नृपीतये ।	पूर्भवा शतभुजिः	१२५

[९] (१२०) (त्वा नरः विप्रासः) तेरे पास नेता ज्ञानी लोग (धीतिभिः सातये उपयन्ति) बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंके साथ धन प्राप्तिके लिये आते हैं। (सहस्रिणी अक्षरा उप) सहस्रों अक्षरोंवाली हमारी वाणी भी तेरे पास पहुंचती है।

[१०] (१२१) (शुक्रशोचिः अमर्त्यः) शुभ्र किरणवाला अमर (शुचिः पावकः ईड्यः) पवित्र शुद्धता करनेवाला स्तुत्य (अग्निः रक्षांसि सेधति) अग्नि राक्षसोंका नाश करता है।

तेजस्वी शुद्ध पवित्र प्रशंसनीय वीर शत्रुओंका नाश करे, उनको दूर भगावे, जैसा अग्नि करता है।

[११] (१२२) हे (सहसः यहो) बलके पुत्र अग्ने! (सः ईशानः नः राधांसि आ भर) वह सबका स्वामी तू हमें भरपूर धन दो। (भगः च वार्यं दातु) भाग्यवान् देव भी हमें धन देवे।

इस मंत्रमें धनके नाम दो दिये है। 'राधांसि' और 'वार्यं'। जो धन परम सिद्धितक सहायक होता है वह धन 'राधांसि' है, यह अनेक प्रकारका होनेसे इसका प्रयोग यहां बहुवचनमें किया हैं। सिद्धितक पहुंचानेवाले धन बहुत होते हैं। दूसरा धन 'वार्य' है। शत्रुओंका निवारण करना जिसके लिये आवश्यक होता है उसको वार्य कहते हैं। सभी धन शत्रुसे संरक्षणीय होता है। हम धन प्राप्त करें और डाकू उसे लूट लेवे तो वह हमारे क्या कामका होगा। इसलिये धन भी चाहिये और उसका संरक्षण करनेकी शक्ति भी चाहिये।

[१२] (१२३) हे अग्ने! (त्वं वीरवत् यशः) तू वीर पुत्रोंसे युक्त यश हमें दे, (सविता भगः च वार्यं) सविता और भाग्यवान् देव वरणीय श्रेष्ठ धन हमें देवे। (दितिः च दाति) दिति देवी भी हमें धन देवे।

इस मंत्रमें अग्निके साथ सविता और भग, तथा दिति भी गिनाये है। दिति यह दैत्यों, राक्षसोंकी माता कही जाती है। वह यहां किस तरह गिनाई है यह अन्वेषणीय है।

[१३] (१२४) हे अग्ने! तू (नः अंहसः रक्ष) हमारा पापसे बचाव कर। हे देव! तू (अजरः) जरारहित है अतः तू (रिषतः तपिष्ठैः दह स्म) शत्रुओंको अपने दाहक तेजोंसे जला दे।

यहां अपना पापसे बचाव करना और शत्रुओंका नाश करना ये दो बातें है। पापसे बचकर हम पवित्र बनेंगे और शत्रुका नाश होनेसे हम निर्भय होंगे। उन्नतिके लिये इन दोनोंकी आवश्यकता है।

[१४] (१२५) (अथ अनाधृष्टः) और शत्रुओंसे आक्रान्त न होकर (नः नृपीतये) हमारे सब मानवोंकी सुरक्षाके लिये (शतभुजिः मही आयसीः पूः भव) सैंकडों मानवोंसे सुरक्षित बडी विस्तृत लोहेके प्रकारावाली पुरी जैसा तू संरक्षक हो।

शतभुजिः मही आयसी पूः नृपीतये।-[शतभुजिः] सैंकडों वीरोंकी भुजाओंसे सुरक्षित होनेवाली बडी (आयसी पूः) लोहेके प्राकारोंसे वेष्टित नगरी, 'आयस्' का अर्थ लोहा है, तथा पत्थरोंसे बनी कीलेकी दिवार भी है। 'पूः' का अर्थ बडी नगरी है, जो सब सुख साधनोंसे भरपूर होती है, उसका नाम 'पूः या पुरी' है। इसकी सुरक्षाके लिये लोहेके अथवा

१५ त्वं नः पाह्यंहसो दोषावस्तरघायतः । दिवा नक्तमदाभ्य १२६

(१६) १२ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । प्रगाथः (= विषमा बृहती, समा सतोबृहती) ।

१ एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् १२७

२ स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् १२८

पत्थरोंके शक्तिशाली प्राकार होते हैं। सात प्राकार होनेका वर्णन है। ऐसे सात प्राकारोंसे वेष्टित होनेके कारण पुरी सुरक्षित होती है। वेदमें ऐसी नगरियोंके निर्माण करनेका आदेश है। पुरीके बाहर सात प्राकार हों और प्रत्येक प्राकारका संरक्षण सेंकडों वीर, आलस्य छोडकर करते रहें। ऐसा सुरक्षाका प्रबंध होगा, तो अंदर रहनेवाले नागरिक सुरक्षित होनेका आनंद प्राप्त कर सकते हैं। नागरिकोंकी सुरक्षा (नृपीतये) होनी चाहिये।

[१५] (१२६) हे (अदाभ्य) न दबनेवाले वीर ! (त्वं नः) तू हमें (दोषावस्तः) रात्रीके समय और दिनके समय (अंहसः पाहि) पापसे बचाओ और (दिवा नक्तं अघायतः) दिनमें और रात्रीमें दुष्ट पापी शत्रुओंसे बचाओ।

यहां सुरक्षाका प्रबंध जैसा रात्रीके समय वैसा ही दिनके समय भी जागरूकताके साथ होना चाहिये ऐसा कहा है। वह योग्य है। यह सुरक्षाका प्रबंध जैसा अन्धेरेमें वैसा ही प्रकाशमें होना चाहिये। प्रति समय संरक्षक वीर जागते रहें और अपना कर्तव्य करते रहें। सुरक्षाके प्रबंधमें ढिलापन न रहे।

[१] (१२७) (ऊर्जः नपातं) बलका पतन न करनेवाले (प्रियं चेतिष्ठं) प्रिय और चेतना देनेवाले (अरतिं स्वध्वरं) प्रगतिशील और उत्तम अहिंसामय यज्ञ निर्माता (विश्वस्य अमृतं दूतं) सबका अमर दूत ऐसे (एना नमसा आ हुवे) इस अग्निको नम्रता पूर्वक (वः) आप सबके हितके लिये मैं बुलाताहूं।

यहां का अग्नि '**ऊर्जः न-पातः**' है। बलको कम न करनेवाला है। बलको क्षीण न करनेवाला। '**चेतिष्ठः**' चेतना देनेवाला, उत्साह बढानेवाला, चित्तके व्यापारको चलानेवाला '**अरतिः**' गमनशील, प्रगतिवान् शीघ्र गति करनेवाला '**स्वध्वर (सु-अ-ध्वर)**' उत्तम रीतिसे हिंसारहित रीतिसे प्रशस्ततम कर्म करनेवाला, जिसमें कुटिलता, टेढापन, हिंसा नहीं है ऐसे कर्म करनेवाला। 'अमृतः दूतः' जो मरनेवाला नहीं ऐसा दूत, जो मुर्दा जैसा नहीं जो जीवित और जाग्रत रहता है ऐसा दूत। ऐसे दूत अग्निको यहां बुलाया है।

मानवधर्म— अपना बल कम होने योग्य कुछ भी न करना, प्रिय आचरण करना, उत्साह बढाना, प्रगतिशील होना, हिंसारहित कर्म करना, मुर्दा जैसा न रहना, प्रभुसेवाके भावसे कार्य करना, नम्रतापूर्वक वीरको बुलाना, सबके हितके लिये प्रयत्नशील रहना।

[२] (१२८) (सः विश्वभोजसा अरुषा) वह अग्नि विश्वको भोजन देनेवाले अपने तेजसे (योजते) युक्त होता है। प्रकाशता है। और (स दुद्रवत्) शीघ्र गतिसे जाता है। वह (स्वाहुतः सुब्रह्मा) वह उत्तम आहुतियोंको लेनेवाला, उत्तम ज्ञानी, (यज्ञः सुशमी) यजनीय और उत्तम कर्म करनेवाला अग्नि (वसूनां देवं राधः) धनोंमें दिव्य धन (जनानां) लोगोंको देता है।

पूजा योग्य तरुण वीर कैसा होना चाहिये, इसका उत्तर यहां दिया है—वह (विश्व-भोजसा अरुषा योजते) विश्वरक्षक, विश्वको भोजन देनेवाले तेजसे युक्त हो, (सु ब्रह्मा) उत्तम ज्ञानी हो, उत्तम अन्न अपने पास रखे, (यज्ञः) सत्कार-संगठन दानात्मक शुभ कर्म करता रहे, (सुशमी) इन्द्रियोंका शमन करनेवाला हो, उत्तम कर्म करे और उत्तम धन लोगोंको देता रहे।

३ उदस्य शोचिरस्थादाजुह्वानस्य मीळ्हुषः ।
उद् धूमासो अरुषासो दिविस्पृशः समग्निमिन्धते नरः ॥ १२९

४ तं त्वा दूतं कृण्महे यशस्तमं देवाँ आ वीतये वह ।
विश्वा सूनो सहसो मर्तभोजना रास्व तद् यत् त्वेमहे ॥ १३०

५ त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे ।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि वेषि च वार्यम् ॥ १३१

६ कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि ।
आ न ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश्च दक्षते ॥ १३२

७ त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान् दयन्त गोनाम् ॥ १३३

---

[३] (१२९) (मीळ्हुषः आजुह्वानस्य) कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले और जिसमें हवन हो रहा है ऐसे (अस्य शोचिः उत् अस्थात्) इस अग्निकी ज्वालाएं ऊपर उठती हैं। (अरुषासः दिविस्पृशः धूमासः उत्) तेजस्वी आकाशको स्पर्श करनेवाले धूम ऊपर जा रहे हैं। ऐसे (अग्निं नरः सं इन्धते) अग्निको लोग प्रदीप्त करते हैं।

[४] (१३०) हे (सहसः सूनो) बलसे उत्पन्न हुए अग्ने! (यशस्तमं तं त्वा दूतं कृण्महे) अत्यंत यशस्वी ऐसे तुझे हम दूत करते हैं। वह तू (देवान् वीतये आवह) देवोंको हविका भक्षण करनेके लिये यहां ले आ। (यत् त्वा ईमहे) जब हम तेरे पास आते हैं तब (तत् विश्वा मर्तभोजना रास्व) सब मनुष्योंको भोगने योग्य धन हमें दो।

विश्वा मर्तभोजना रास्व — मनुष्योंके लिये जो जो धन भोगने योग्य है वे सब धन हमें चाहिये। धन, रत्न, घोडे, गौवें, रथ, घर आदि सभी भोग्य पदार्थ हमें चाहिये।

[५] (१३१) हे (विश्ववार अग्ने) सबके द्वारा वरने योग्य अग्ने! (त्वं नः अध्वरे गृहपतिः) तू हमारे यज्ञ कर्ममें गृहका संरक्षक है, (त्वं होता) तू देवोंको बुलानेवाला है, (त्वं पोता प्रचेता) तू पवित्र करनेवाला अत्यंत बुद्धिमान है अतः तू (वार्यं यक्षि वेषि च) यज्ञमें प्रयुक्त होनेवाले हविरूप अन्नका यजन कर और उसकी प्राप्तिकी इच्छा कर।

मनुष्य (विश्ववारः) सबको प्रिय, (गृहपति) अपने घरका स्वामी, अपने स्थानका स्वामी, देशका पालक, (प्रचेताः पोता) उत्तम बुद्धिमान और पवित्र करनेवाला बने। अग्निके गुण मनुष्यमें देखनेसे आदर्श व्यक्ति सामने खडी हो जाती है।

[६] (१३२) हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म करनेवाले अग्ने! (यजमानाय रत्नं कृधि) यजमानके लिये रत्न वा धन दो। (हि त्वं रत्न धाः असि) क्योंकि तू रत्नोंका धारण करानेवाला है। (नः ऋते) हमारे यज्ञमें (विश्वं ऋत्विजं आशिशीहि) सब ऋत्विजोंको तेजस्वी कर। (यः सुशंसः च दक्षते) जो उत्तम प्रशंसा योग्य है उसको दक्षतासे बढाओ।

[७] (१३३) हे अग्ने, हे (स्वाहुत) उत्तम आहुति लेनेवाले! (ते सूरयः प्रियासः सन्तु) तुझे विद्वान् प्रिय हों। विद्वानोंके लिये तू प्रिय हो। तथा (ये यन्तारः मघवानः) जो दाता धनवान हैं और जो (जनानां गोनां ऊर्वान् दयन्त) लोगोंको गौओंके झुण्डोंको दानमें देते हैं, वेभी तुझे प्रिय हों।

८ येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति ।
ताँस्त्रायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्घश्रुत् १३४

९ स मन्द्रया च जिह्वया वह्निरासा विदुष्टरः ।
अग्ने रयिं मघवद्भ्यो न आ वह हव्यदातिं च सूदय १३५

१० ये राधांसि ददत्यश्व्या मघा कामेन श्रवसो महः ।
ताँ अंहसः पिपृहि पर्तृभिष्ट्वं शतं पूर्भिर्यविष्ठ्य १३६

---

१ सूरयः ते प्रियासः सन्तु — ज्ञानी तुझे प्रिय हों, ज्ञानीयोंके पास रहो, उनकी संगतिमें रहो ।

२ मघवानः यन्तारः — धनवान् दाता हों, धनी लोग अपने धनका दान करते रहें ।

४ जनानां गवां ऊर्वान् दयन्त — उत्तम सत्पुरुषोंको गायोंके झुण्डके झुण्ड दानमें दिये जाय ।

[८] (१३४) (येषां दुरोणे घृतहस्ता इळा) जिनके घरमें घी हाथमें लेकर अन्न परोसनेवाली देवी (प्राता आ निषीदति) भरपूर अन्न लेकर बैठती है। हे (सहस्य) बलवान्! (तान् त्रायस्व) उनको सुरक्षित करो। (द्रुहः निदः) द्रोहकारी निंदक शत्रुसे उनको बचाओ। (नः दीर्घश्रुत् शर्म यच्छ) हमें दीर्घकाल टिकनेवाले यशसे युक्त सुख या घर दो ।

१ येषां दुरोणे घृतहस्ता इळा प्राता आ निषीदति — जिनके घरोंमें देवियाँ घी और अन्नके भरे पात्र लेकर अन्नपान करानेके लिये सिद्ध रहती हैं। **तान् त्रायस्व** - उनका संरक्षण कर।

२ द्रुहः निदः तान् त्रायस्व — द्रोही तथा निंदक शत्रुओंसे उनका संरक्षण कर ।

३ दीर्घश्रुत् शर्म नः यच्छ — जिसकी कीर्ति दीर्घकाल तक टिकी रहती है ऐसा घर, सुख, संरक्षण हमें दो। पूर्वोक्त प्रकारका अन्नदान करनेवाला घर ही ऐसा यशस्वी घर है।

इस मन्त्रसे पता लगता है कि घरमें भरपूर घी और अन्न चाहिये और उसको मुक्त हस्तसे देना चाहिये। पर आजकल अन्न, दूध, दही, घी शहदकी इतनी कमी हुई है कि यह वैदिक समयका घर आजकल मिलना असंभव सा दीखता है ।

[९] (१३५) हे अग्ने! (मन्द्रया आसा जिह्वया) आनन्ददायक मुखमें रहनेवाली जिह्वासे-ज्वालासे-(वह्निः विदुष्टरः) हवनीय द्रव्योंका वहन करनेवाला ज्ञानी (सः) वह अग्नि तू (मघवद्भ्यः नः रयिं आ वह) धन देनेवाले हम सबके लिये धन ले आओ, और (हव्यदातिं च सूदय) हवनीय अन्नका दान करनेवाले यजमानको प्रशस्त कर्ममें प्रेरित करो ।

१ विदुष्टरः वह्निः मन्द्रया आसा जिह्वया नः रयिं आ वह — विद्वानोंमें श्रेष्ठ तेजस्वी वीर आनन्द देनेवाली मधुर भाषाके साथ हमें धन देवे । उत्तम भाषण करे और श्रेष्ठ अन्न भी देवे ।

२ मघवद्भ्यः रयिं आ वह — धनवान् दानी मनुष्योंके लिये धन दो । जिससे वे अधिक दान देते रहें ।

३ हव्यदातिं सूदय—अन्नका दान करनेकी प्रेरणा कर ।

[१०] (१३६) हे (यविष्ठ्य) अत्यंत तरुण वीर अग्ने! (महः श्रवसः कामेन) बडे यशकी इच्छासे जो (राधांसि अश्व्या मघा) सिद्धिदायक अश्व युक्त धन (ददति) दानमें देते हैं, (तान् अंहसः) उनको पापसे अथवा दुष्ट शत्रुसे (पर्तृभिः शतं पूर्भिः त्वं पिपृहि) संरक्षक साधनोंसे तथा सैंकडों कीलोंवाली नगरियोंसे तू सुरक्षित रख ।

१ महः श्रवसः कामेन राधांसि अश्व्या मघा ददाति -- जो बडे यशकी इच्छासे सिद्धि देनेवाले धन, जिनमें अश्व गौ घर आदिका समावेश होता है, दानमें देते हैं, उसका संरक्षण होना चाहिये ।

११ देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्यासिचम् ।
उद् वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद् वो देव ओहते १३७

१२ तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे १३८

(१७) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः । द्विपदा त्रिष्टुप् ।

१ अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध उत बर्हिरुर्विया वि स्तृणीताम् १३९

२ उत द्वार उशतीर्वि श्रयन्तामुत देवाँ उशत आ वहेह ॥१॥ १४०

---

२ तान् अंहसः पर्तृभिः पिपृहि — उनको पापसे बचाओ । उनको दुर्गतिसे बचाओ ।

३ शतं पूर्भिः पिपृहि — सौ पौरकीलोंसे उनको सुरक्षित कर, सौ प्राकारोंके अन्दर ऐसे दाताओंको सुरक्षित रख।

यहां 'शतं पूर्भिः पर्तृभिः पिपृहि' ऐसा कहा है। नगरकी सुरक्षाका साधन नगरका प्राकार है, नागरिक दुर्ग है । दुर्गके ऊपर शतघ्नी, वीर, शत्रुनाशक यंत्र, शस्त्र अस्त्र आदि अनेक है । ये सब साधन सदा सुसज्ज रहें । जो अपने धनका दान करते है, उसको उत्तम संरक्षण मिलना चाहिये । यहां 'सैंकडों कीलों' का वर्णन है । एक ही नगरीमें सौ प्राकार नहीं होते । अधिकसे अधिक सात प्राकार होंगे। यहां राष्ट्रमें सैंकडों नगरियोंमें ऐसे दुर्ग हों और उनसे प्रजा सुरक्षित हो, ऐसा कहा है । प्रजाकी सुरक्षाका प्रश्न बडे महत्त्वका है । नागरिकोंकी सुरक्षाका प्रश्न प्रथम विचारणीय है, यह प्रश्न अत्यंत महत्त्वका है ।

[११] (१३७) (द्रविणोदाः देवः) धन देनेवाला अग्निदेव (वः पूर्णां आसिचं विवष्टि) आपकी घृतादिसे परिपूर्ण चमसकी इच्छा करता है । (वा उत् सिंचध्वं) पात्र भरपूर भर दो, अथवा (वा उप पृणध्वं) पात्रको परिपूर्ण करो। (आत् इत् देवः वः ओहते) अनंतर अग्निदेव तुम्हें उच्च अवस्थाको पहुंचा देता है ।

चमस भरपूर भरकर आहुतियाँ दे दो । इससे यज्ञ सफल होगा और यज्ञकर्ताका यश फैलेगा ।

[१२] (१३८) (देवाः प्रचेतसं तं वह्निं) देव उत्तम ज्ञानी अग्निको (अध्वरस्य होतारं अकृण्वत) हिंसारहित कर्मका करनेवाला करके निर्माण करते हैं । वह (अग्निः विधते दाशुषे जनाय) अग्नि परिचर्या करनेवाले दाता मनुष्यके लिये (सुवीर्यं रत्नं दधाति) उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति और उत्तम धन देता है ।

१ देवाः प्रचेतसं वह्निं अध्वरस्य होतारं अकृण्वत -- देवोंने विशेष ज्ञानी अग्निके समान तेजस्वी वीरको कुटिलता रहित कर्मके करनेके लिये निर्माण किया है ।

२ अग्निः विधते दाशुषे जनाय सुवीर्यं रत्नं दधाति -- यह तेजस्वी वीर कर्ता दाता जनके लिये उत्तम वीर्य और धन देता है ।

मनुष्य कुटिलता रहित कर्म करें, शौर्यके कर्म करे और धन प्राप्त करे । छल कपट, भीरुता आदि के द्वारा धन कमाना अच्छा नहीं है ।

[१] (१३९) हे अग्ने ! (सुषमिधा समिद्धः भव) उत्तम समिधासे प्रदीप्त हो। (उत) और (उर्विया बर्हिः विस्तृणीतां) याजक उत्तम विस्तीर्ण आसन फैलावे ।

यज्ञकर्ता लोग समिधा डालकर अग्निको प्रदीप्त करें और यज्ञ शालामें बैठनेवालोंके लिये विस्तीर्ण आसन फैला देवे ।

[२] (१४०) (उत उशतीः द्वारः विश्रयन्तां) और देवभक्ति करनेवाली देवियां विश्राम करें । (उत उशतः देवान् इह आ वह) यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाले देवोंको यहां यज्ञमें ले आ ।

३	अग्ने वीहि हविषा यक्षि देवान् त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः	१४१
४	स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद् देवाँ अमृतान् पिप्रयच्च ॥२॥	१४२
५	वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः सत्या भवन्त्वाशिषो नो अद्य	१४३
६	त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्ज आ नपातम् ॥३॥	१४४
७	ते ते देवाय दाशतः स्याम महो नो रत्ना वि दध इयानः ॥४॥	१४५

[३] (१४१) हे जातवेदः! (वीहि) जाओ (हविषा देवान् यक्षि) हविसे देवोंका यजन करो, उनको (स्वध्वरा कृणुहि) उत्तम यज्ञवाले बनाओ।

[४] (१४२) (जातवेदाः अमृतान् देवान्) जातवेद अग्नि अमर देवोंको (स्वध्वरा करति) उत्तम यज्ञवाले बनाता है, (यक्षत् पिप्रयत् च) यज्ञ करता और प्रसन्न करता है।

[५] (१४३) हे (प्रचेतः) उत्तम बुद्धिवान् अग्ने! (विश्वा वार्याणि वंस्व) सब प्रकारके धन हमें दो। और (नः आशिषः अद्य सत्या भवन्तु) हमारे आशीर्वाद आज सत्य हों।

[६] (१४४) हे अग्ने! (ऊर्जः नपातं त्वां बलको न गिरानेवाले तुझको (हव्यवाहं ते देवासः दधिरे उ) हविका वहन करनेके लिये उन देवोंने धारण किया है।

अग्नि शरीरके बलको गिराता नहीं, उत्साहको स्थायी रखता है, शरीर ठंडा होने लगा तो बल न्यून होता है। इस शरीर स्थानीय अग्निका धारण शरीरके इन्द्रियोंनें – देवोंने किया है।

[७] (१४५) (देवाय ते) तुझ देवके लिये (ते दाशतः स्याम) वे हम हवि देनेवाले हों और (महः इयानः) महत्त्वको प्राप्त होकर (नः रत्ना विदधः) हमें रत्नोंको दे दो।

॥ यहां अग्नि प्रकरण समाप्त ॥



अनुवाक दूसरा [अनुवाक ५२ वाँ]

[२] इन्द्र प्रकरण

१ (१८) २५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः, २२-२५ सुदाः पैजवनः । त्रिष्टुप् ।

१ त्वे ह यत् पितरश्चिन्न इन्द्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन् ।
त्वे गावः सुदुघास्त्वे ह्यश्वास्त्वं वसु देवयते वनिष्ठः १४६

[१] (१४६) हे इन्द्र ! (त्वे ह यत् नः पितरः चित्) तेरे पाससे ही हमारे पितर (जरितारः विश्वा वामा असन्वन्) स्तुति करते हुए सब प्रकारके धन प्राप्त करते रहे। (त्वे सुदुघा गावः) तेरे पास उत्तम दूध देनेवाली गौवें हैं, (त्वे हि अश्वाः) तेरे पास उत्तम घोडे हैं, (त्वं देवयते वसु वनिष्ठः) तू देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवालेके लिये अत्यंत श्रेष्ठ धन देता है।

१ हे प्रभो ! हमारे पितर तुम्हारी भक्ति करते थे और तुम्हारे पाससे सब प्रकारका धन प्राप्त करते थे । हमारे माता पिता जिस तरह सर्व नियंता प्रभुकी उपासना करते थे, वैसे ही हम भी उसी प्रभुकी उपासना करते हैं ।

२ उसके पास गौवें, घोडे और सब प्रकारके धन हैं। जो देवभक्ति करते हैं उनको वह सब प्रकारका धन देता है ।

'इन्द्र' वह है जो (इन् + द्र) शत्रुओंका विदारण या नाश करता है। शत्रुका नाश करना यह इसका स्वभाव है। इन्द्र युद्धकी देवता है। वेदमें वृत्रके साथ इन्द्रका युद्ध प्रसिद्ध है । असुरोंका नाश यह इन्द्रका मुख्य कर्म है।

'इन्द्र' शरीरमें जीवात्मा है । यह देवोंका राजा है । यहां शरीरमें सब इन्द्रियां देव हैं और उनका शासक शरीरमें इन्द्र है। रोग, कुविचार आदि यहां शत्रु है । यह इन्द्र इनका नाश करके विजयी होता है ।

विश्वमें विश्वके प्रभुका नाम 'इन्द्र' है । यह परमात्मा है । यहां सूर्य, विद्युत्, अग्नि, वायु, आदि देव हैं । इनका यह राजा है । अन्धकार यहां असुर है ।

राष्ट्रमें राजा इन्द्र है, राज्यशासनके अधिकारी देव हैं। राष्ट्र विरोध करनेवाले यहां असुर हैं। इस तरह इन्द्र, उसके शत्रु आदिका स्वरूप है । मनन पूर्वक यह इसका कार्यक्षेत्र जानना चाहिये ।

इस प्रभुकी — इस इन्द्रकी उपासना हमारे पितर करते थे, हम करते हैं और हमारे वंशज भी करेंगे । इस तरह इन्द्रकी भक्ति वंशानुवंश इन्द्र भक्ति होती रहेगी ।

'**विश्वा वामा**' सब प्रकारके संसेवनीय धन हैं वे सबके सब इन्द्रके पास हैं और अपने भक्तोंको वह बांट देता है। जिसके पास जो धन होगा, वह अपने अनुयायियोंको बाटनेके लिये ही है। वह धन अपने भोगके लिये ही केवल नहीं। परंतु वह सबके लिये है । धनपर एक व्यक्तिका अधिकार नही है। सब धन संघका है । इसलिये वह अनुयायियोंमें बांट, दिया जाता है । बांट देना ही यज्ञ है और केवल अपने भोगके लिये रखना अयज्ञ है । यज्ञ उपकारक है और अयज्ञ हानिकारक है।

यहां धन गिनाये हैं ! '**सुदुघाः गावः**' उत्तम दूध देने वाली गौवें यह पहिला धन है। '**अश्वाः**' उत्तम घोडे यह दूसरा धन है । '**वसु**' अपने उत्तम निवासके लिये जो उपयोगी है वह धन है। धान्य, वस्त्र, गृह, भूमि आदि अनेक प्रकारके धन हैं । वे इन्द्रके पास रहते है और वह भक्तोंको बांट देता है ।

'**देवयन्**' देव बननेकी इच्छा करनेवाला जो होता है, देवताके समान जो बनना चाहता है, उसको ये धन मिलते हैं। मनुष्योंकी उन्नतिका अनुष्ठान इस शब्दसे सूचित होता है । देवताके गुण जानना और वैसा बननेका यत्न करना, वे गुण अपने अन्दर ढालनेका प्रयत्न करना, यह भाव 'देवयन्'

२ राजेव हि जनिभिः क्षेष्येवाऽव द्युभिरभि विदुष्कविः सन् ।
पिशा गिरो मघवन् गोभिरश्वैस्त्वायतः शिशीहि राये अस्मान् १४७

३ इमा उ त्वा पस्पृधानासो अत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुप स्थुः ।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन् १४८

शब्दसे सूचित होता है। दैवी संपत्ति अपने अन्दर बढाना और आसुरी वृत्तीको दूर करना ही मानवी उन्नतिका अनुष्ठान है। मनुष्य इस तरह अनुष्ठान करे और देवत्व प्राप्त करे।

[२] (१४७) (जनिभिः राजा इव) जैसा स्त्रियोंके साथ राजा रहता है वैसा (द्युभिः क्षेषि) दीप्तियोंके साथ तू निवास करता है। हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! तू (विदुः कविः सन्) ज्ञानी और दूरदर्शी, होकर (पिशा गोभिः अश्वैः) सुंदर रूपसे, गौओं और घोडोंसे (गिरः) वाणियोंको (त्वायतः अस्मान् राये अभि शिशीहि) तेरे साथ रहनेकी इच्छा करनेवाले हम सबको धनके लिये संस्कार संपन्न कर।

जनिभिः राजा — अनेक स्त्रियोंके साथ राजा रहता या विलास करता है। यह उपमा यहां है। 'जनिभिः' का अर्थ कमसे कम तीन या तीनसे अधिक स्त्रियां ऐसा है। इतनी स्त्रियोंके साथ राजा रहता है। दशरथकी जैसी तीन रानियाँ थी और अन्य स्त्रियां तीनसों थी। यह आदर्श राजा नहीं है क्योंकि एक पत्नी भगवान् रामचन्द्र ही आदर्श पुरुष है। पर यहां इन्द्रका वर्णन करनेके प्रसंगमें अनेक स्त्रियोंके साथ रहनेवाले राजाकी उपमा है। संभव है कि इन्द्रके साथ भी स्त्रियां रहती होगी। पंखा, चंवर आदि तथा तांबूळधारी स्त्रियां इन्द्रके साथ रहती होंगी।

यहां '**द्युभिः क्षेषि**' ज्वालाओंके साथ रहता है ऐसा वर्णन है। ज्वाला, तेजकी दीप्ति यहां स्त्रीरूपसे वर्णन की है। अतः इन्द्रपर अनेक पत्नियां करनेका दोष नहीं आ सकता। अनेक दीप्तियोंका होना यह अनेक स्त्रियोंके साथ रहनेके समान है ऐसा यहां वर्णन है। यह एक आलंकारिक वर्णन है। तथापि उपमासे राजाकी अनेक पत्नियोंका होना सिद्ध हो रहा है, वह दूर नहीं हो सकता।

यहां इन्द्र (मघवान्) धनवान्, (विदुः) ज्ञानी और (कविः) क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी, अतींन्द्रियार्थदर्शी वर्णन किया है। राजा भी इन गुणोंसे युक्त हों। राज पुरुष, राज्याधिकारी इन गुणोंसे युक्त होने चाहिये। वे अज्ञानी, अदूरदर्शी और निर्धन होनेके कारण रिश्वतखोर नहीं होने चाहिये।

वह (पिशा) सुन्दर रूपवाला हो तथा उसके पास उत्तम गायें और श्रेष्ठ घोडें हो तथा अन्य प्रकारका धन भी उसके पास पर्याप्त हो। यह राजाका वैभव है। वह उसके पास अवश्य चाहियें।

(गिरः अभि शिशीहि) वह राजा प्रजाकी वाणीको शुभ संस्कारोंसे सुसंस्कृत बनावे। तथा (राये अभि शिशीहि) धन प्राप्त करनेके लिये जैसे उत्तम संस्कार होने चाहिये वैसे उत्तम संस्कार प्रजापर होंगे ऐसा शिक्षा प्रबंध राज्यमें राजा करे। (त्वायतः – इन्द्रायतः) इन्द्रके समान बननेका यत्न करनेवाली प्रजा हो। राजा अपने राष्ट्रमें ऐसा शिक्षाका प्रबंध करे कि जिससे प्रजाजन इन्द्र जैसे शूरवीर हों और प्रजामें कोई भीरु न हो।

[३] (१४८) हे इन्द्र! (त्वा अत्र पस्पृधानासः) तेरे वर्णन करनेमें यहां इस यज्ञमें स्पर्धा करनेवाली (मन्द्राः इमाः देवयन्तीः गिरः) आनन्ददायक और देवत्वको प्राप्त करनेवाली ये वाणियाँ (उपस्थुः) तेरे पास उपस्थित होती हैं, तेरा वर्णन करती हैं। (ते रायः पथ्या अर्वाची एतु) तेरे धनके मार्ग सीधे हमारे पास आवें। (ते सुमतौ शर्मन् स्याम) तेरी उत्तम बुद्धिमें रहकर हम सुखमें रहें।

१ त्वा पस्पृधानासः गिरः — तेरा वर्णन करनेमें स्पर्धा करनेवाली हमारी वाणियाँ हैं। हममें तेरा वर्णन करनेकी स्पर्धा लगी है।

२ देवयन्तीः मन्द्रा गिरः— हमारी वाणियाँ देवत्वको

४ धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः ।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा ऽऽ न इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ ॥ १४९
५ अर्णांसि चित् पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत् सुपारा ।
शर्धन्तं शिम्युमुचथस्य नव्यः शापं सिन्धूनामकृणोदशस्तीः ॥ १५०

प्राप्त करनेकी इच्छा करती है, इसलिये तुम्हारे देवत्वका वर्णन वे कर रही है, इस कारण वे आनन्द देती हैं। तुम्हारे देवत्वके शुभ गुण काव्यरूपमें वर्णन करनेसे वे गुण अपनेमें धारण करनेकी स्फूर्ति हम में उत्पन्न होती है, और उन गुणोंके धारण करनेसे हमारे अन्दर देवत्व बढता जाता है। इस तरह तुम्हारा वर्णन स्तोताकी उन्नति करनेवाला होता है।

३ ते रायः पथ्या अर्वाची एतु -- तेरे धनके मार्ग सीधे हमारे पास पहुंचनेवाले हों। अर्थात् वह धन हमारे पास ही आ जावे।

४ ते सुमतौ शर्मन् स्याम — हम सब तेरी सुमतिमें रहकर सुखी हो जांय। तुम्हारी सुमति हमारे ऊपर रहे और हम सब प्रकारसे सुखी हो जांय।

[४] (१४९) (सुयवसे धेनुं न) उत्तम घास जहां है ऐसी गोशालामें रहनेवाली धेनुके पास जानेके समान (त्वा दुधुक्षन् वसिष्ठः) तेरा दोहन करके बहुत धन प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला वसिष्ठ (ब्रह्माणि उप ससृजे) बहुत स्तोत्र निर्माण करता है। (विश्वः त्वां इत् गोपतिं मे आह) सब लोग तू ही गौओंका स्वामी है ऐसा मुझे कह रहे हैं। (नः सुमतिं इन्द्रः अच्छ आ गन्तु) हमारे स्तोत्र सुननेके लिये इन्द्र सीधा हमारे पास आ जावे।

१ दुधुक्षन् सुयवसे धेनुं — दूध दुहनेकी इच्छा करनेवाला जहां घास अच्छा है ऐसी गौशालामें रहनेवाली धेनुके पास जाता है। क्योंकि ऐसी धेनु पुष्ट होती है और उत्तम स्वादु दूध देती है। गौको उत्तम गौशालामें रखा जाय और उनको उत्तम घासका प्रबंध किया जाय। जिससे गौवें पुष्ट होकर अधिक दूध देती रहेंगी।

२ वसिष्ठः दुधुक्षन् ब्रह्माणि उप ससृजे -- वसिष्ठ धनकी कामनासे ज्ञानमय काव्य निर्माण करता है। इनके गानसे सुननेवालोंपर अच्छा प्रभाव होता है और वे धनको प्राप्त करनेके प्रयत्नमें लगे रहते हैं।

३ विश्वः इन्द्रं गोपतिं आह -- सब विश्व कहता है कि इन्द्रके पास बहुत गौवें हैं। जीवात्मा इन्द्र है और उसके पास इन्द्रिय रूपी गौवें हैं, राजा इन्द्र है उसके पास गौवें रहती है। सूर्य इन्द्र है उसके पास किरणें गौवें हैं।

४ नः सुमतिं इन्द्रः आगन्तु -- हमारी स्तुति सुननेके लिये इन्द्र आवे और हमें धन देवे।

[५] (१५०) (नव्यः इन्द्रः अर्णांसि) प्रशंसनीय इन्द्रने जलोंको (पप्रथाना) फैलाकर (सुदासे गाधानि सुपारा) सुदास राजाके लिये चलकर पार करने योग्य (अकृणोत्) किया, बनाया। (शर्धन्तं उचथस्य शिम्युं शापं) उत्साही उचथके शिम्युके पास शाप और तथा (सिन्धूनां अशस्तीः) नदियोंके घोर प्रशस्त महापूरको पहुंचने योग्य (अकृणोत्) किया, पहुंचाया।

१ इन्द्रः सुदासे अर्णांसि गाधा सुपारा अकृणोत् -- इन्द्रने राजा सुदासके लिये परुष्णी-रावी-नदीके अगाध जलोंको पार करने योग्य बना दिया। परुष्णी नदीको महापूर आया था, और सुदासकी सेना पार जा नहीं सकती थी। उस समय सुदासकी सहायताके लिये इन्द्र आया और उसने उतारके लिये नदीमेंसे मार्ग किया अथवा किसी अन्य युक्तिसे सुदासका सैन्य सुखसे नदीपार कर सके ऐसा प्रबंध किया। इसका बोध यह है कि महापूरके समयमें भी नदीके पार जानेके साधन अपने पास रखने चाहिये। अपना मार्ग कहीं भी रुकना नहीं चाहिये।

२ उचथस्य शापं, सिन्धूनां अशस्तीः शर्धन्तं शम्युं अकृणोत् — उचथके शापको, तथा नदियोंके महापूरके जलोंको शत्रुभूत शम्युके ऊपर भेजा अर्थात् नदियोंके जलोंने शत्रुका नाश किया और उसको कष्ट पहुंचाये। युद्धमें नदियोंके जल प्रवाह तथा अन्य आपत्तियां शत्रुको कष्ट दें ऐसा करना योग्य है। अपने लिये सुख हो और शत्रुकी खराबी हो ऐसा करना योग्य है।

६ पुरोळा इत् तुर्वशो यक्षुरासीद् राये मत्स्यासो निशिता अपीव ।
श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद् विषूचोः १५१

७ आ पक्थासो भलानसो भनन्ताऽलिनासो विषाणिनः शिवासः ।
आ योऽनयत् सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन् युधा नॄन् १५२

---

[६] (१५१) (यक्षुः पुरोळाः इत् तुर्वशः) यज्ञ करनेवाला प्रगतिशील तुर्वश राजा (आसीत्) था । (मत्स्यासः राये निशिताः अपि इव) मत्स्य लोग धन प्राप्तिके लिये सिद्ध जैसे थे। (भृगवः द्रुह्यवः च श्रुष्टिं चक्रुः) भृगु और द्रुह्यु शीघ्र धन प्राप्तिके लिये स्पर्धा कर रहे थे। (विषूचोः सखा सखायं अतरत्) दोनों स्पर्धकों में मित्रने मित्रका संरक्षण किया।

१ तुर्वशः पुरोळाः यक्षुः आसीत्— तुर्वश पुरोडाश अन्न तैयार करके यज्ञ करना चाहता था । ' तुर्वश ' (तुर्-वश) त्वरासे वश करनेवाला, किसी कार्यको कुशलतासे सत्वर करनेवाला तुर्वश कहलाता है । ऐसा यज्ञ करनेकी इच्छा करता था । यह अपने कर्म कौशलसे धन प्राप्त करना चाहता है ।

२ मत्स्यासः राये निशिताः अपि इव— मत्स्य उनको कहते हैं कि जो अपने जीवनके लिये दूसरोंको निगलते हैं, खाते हैं । ' मत्स्य-न्याय ' उसको कहते हैं कि जहां बडा छोटेको खाजाता है। जीवन कलहमें बडा छोटेको खाता है । वह बडा है इसीलिये वह छोटेको खायगा । जो ऐसा आचरण करते हैं उनका नाम मत्स्य होता है । ये मत्स्यवृत्तिके लोग धन प्राप्त करनेके लिये तीक्ष्ण होकर आपसमें स्पर्धा करते रहते हैं। प्रत्येक अपने आपको अधिक योग्य सिद्ध करता रहता है और दूसरेको अपनेसे कम दिखाता है और उस कारण वह धन कमाता है । इस तरह मत्स्य लोगोंमें सतत स्पर्धाका जीवन रहता है। स्पर्धा करना और दुर्बलोंको खानाही उनका जीवनका मध्य बिन्दु होता है ।

३ भृगवः द्रुह्यवः श्रुष्टिं चक्रुः— भृगु और द्रुह्युमें सत्वर धन प्राप्ति करनेकी स्पर्धा रहती है। ' भृ-गु ' अपने भरण पोषणके लिये जो हलचल करते हैं ' वे भृ-गु ' हैं । (भृ) भरणपोषणके लिये जो (गु) अपनी गति करते हैं, अपने प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा करते हैं वे भृगु हैं । आजीविका के लिये सदा प्रयत्न करना ही इनका कार्य होता है । ' द्रुह्यु ' वे हैं कि जो द्रोह करते हैं, घातपात करते हैं, डाका डालते हैं । भृगु- जीवन निर्वाहकी चितामें रहते हैं और द्रुह्यु द्रोह करके, घातपात करके अपनी आजीविका करते हैं । ये सब प्रत्येक अपनी पराकाष्ठा करके धन शीघ्रसे शीघ्र कमानेके यत्नमें रहते हैं ।

४ विषूचोः सखा सखायं अतरत्— इन परस्पर विरोधियोंमें जो मित्र होता है वह अपने मित्रका तारण करता है । उक्त स्पर्धा करनेवालोंमें मित्र और शत्रु होते ही हैं । जो जिसका मित्र होता है वह अपने मित्रको संकटसे तारता है ।

यहां धन कमानेवालोंके कई वर्ग हैं । वे ये हैं—

(अ) तुर्वशः यक्षुः -- सत्वर कुशलतासे अपना कर्म करनेवाला, यज्ञकर्म कुशलतासे करनेवाला,

(आ) मत्स्यासः — अपने जीवनके लिये दूसरोंको खानेवाले,

(इ) भृ-गुः — अपने भरणपोषणके लिये हलचल करनेवाले,

(ई) द्रुह्युः — द्रोहकारी, घातपात कर्ता, डाकु,

(उ) सखा सखायं अतरत् -- कठिन समयमें सहायक होता है वह मित्र है ।

ये सब धन मनुष्य प्राप्त करना चाहते हैं । इनमें ' तुर्वश ' त्वरासे कुशलताद्वारा कर्म करनेवाला और ' सखा ' मित्रकी सहायता करनेवाला ये श्रेष्ठ हैं । इन्द्र इनका सहायक होता है । ये सब लोग इस समय भी समाजमें दिखाई देते हैं। परमेश्वर इनमेंसे तुर्वशकी सहायता करता है । इसलिये त्वरासे कुशलता द्वारा कर्म करनेकी पराकाष्ठा करना मनुष्यके लिये योग्य है। ऐसे कुशल मनुष्योंपर प्रभुकृपा होती है ।

[७] (१५२) (पक्थासः) हविष्यान्नका पाक यज्ञके लिये करनेवाले, (भलानसः भल-आनसः) सुन्दर प्रसन्न मुखवाले, (अलिनसः) अलिन, तपके कारण क्षीणशरीर, (विषाणिनः) सींग हाथमें लेनेवाले, खुजली करनेके लिये अथवा शत्रुपर प्रहार करने-

८ दुराध्योऽ अदितिं स्रेवयन्तोऽचेतसो वि जगृभ्रे परुष्णीम् ।
मह्नाविव्यक् पृथिवीं पत्यमानः पशुष्कविरशयच्चायमानः ॥ १५३
९ ईयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णीमाशुश्चनेदभिपित्वं जगाम ।
सुदास इन्द्रः सुतुकाँ अमित्रानरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः ॥ १५४

.. लिये हाथमें कृष्ण मृगका सींग लेनेवाले, (शिवासः) सब जनोंका कल्याण करनेकी कामना .. मनमें धारण करनेवाले इन्द्रकी (आ भनंत) प्रशंसा करते हैं। (यः आर्यस्य सधमाः गव्याः) ..इन्द्र आर्यकी साथ रहनेवाली गायोंके झुण्डोंको (तृत्सुभ्यः आ अनयत्) हिंसक शत्रुओंसे वापस लाता है। और उसने (युधा नॄन् अजगन्) युद्धसे उन शत्रुके वीरोंपर आक्रमण करके उनका वध किया।

इन्द्रकी प्रसन्नता करनेके लिये यज्ञमें उत्तम अन्नका (पक्तासः) पाक करनेवाले, (भल--आनसः) यज्ञ हो रहा है यह देखकर जिनके मुखपर प्रसन्नता दीखती है, (अलीनसः) जो यज्ञमें आवश्यक परिश्रमके कारण क्षीण हो रहे हैं, (विषाणिनः) जो हाथमें सींग रखते हैं, शरीरपर खुजली करनेके लिये जिन्होंने हाथमें सींग लिया है, (शिवासः) सब कल्याण करनेकी इच्छा करनेवाले ये सब याजक इन्द्रके गुण गाते हैं। ये गुण ये हैं—

१ **यः आर्यस्य सधमाः गव्याः तृत्सुभ्यः आ अनयत्** -- यह इन्द्र आर्योंके घरोंमें घरवालोंके साथ रहनेवाली गौवें हिंसक शत्रुओंसे वापस लाता है और जिसकी थी उनको वापस देता है। राजाका यह कर्तव्य है कि वह चोरको ढूंढ निकाले और उससे चोरीकी वस्तुएं प्राप्त करे और जिसकी वह थी उसको वापस देवे।

२ **अजगन्, नॄन् युधा** -- शत्रुओंपर आक्रमण करे और शत्रुके वीरोंका वध युद्धमें करे।

इन्द्र ये कर्म करता है। मनुष्य ये कर्म देखे और वैसे कर्म करे और इन्द्र जैसे पराक्रम करे।

'सध-माः गव्यः' ये पद बता रहे हैं कि गौवें घरके घरवालोंके समान आर्योंके घरमें रहती थीं। जैसी माताएं वैसी ही गोमाताएं घरमें रहती थी। गौको घरके कुटुंबका अंग माना जाता था। और गौका इतना संमान होता था। गौ घरके परिवारका एक सदस्य थी।

[८] (१५३) (दुराध्यः अचेतसः) दुष्टबुद्धिवाले मूढ शत्रु (अदितिं परुष्णीं) अन्न देनेवाली परुष्णी नदी-रावी नदीके तटको (स्रेवयन्तः वि जगृभ्रे) तोडते रहे। उस इन्द्रने (मह्ना पृथिवी आविव्यक्) अपने सामर्थ्यके द्वारा पृथिवीको व्याप दिया। अर्थात् उसका यश पृथिवीपर फैल गया। और शत्रुरूपी (चायमानः कविः पत्यमानः पशुः अशयत्) चायमानका कवि वीर पशु जैसा सोया, अर्थात् इन्द्रके द्वारा उसका वध हुआ।

दुष्ट शत्रुने आक्रमण किया, उस समय शत्रुओंने परुष्णी नदी के तटोंको, बन्धारोंको तोड दिया, जिससे नदीका जल इतस्ततः फैल गया और बडी हानि हुई। युद्धमें शत्रु ऐसा करते ही रहते हैं। अपने पास उनका निवारण करनेकी योजना तैयार चाहिये। इन्द्रके पास ऐसी योजना थी, इसलिये इन्द्रने उस संरक्षक योजना द्वारा संरक्षक किया, जिससे उसका यश पृथिवीभर फैल गया। पश्चात् इन्द्रने शत्रुपर आक्रमण किया। शत्रु (चायमानः) अपने स्थानसे उखाडा गया और स्थानभ्रष्ट होनेके कारण (पत्यमानः) भाग रहा था। यद्यपि वह (कविः) ज्ञानी था, तथापि (पशुः) पाशवी बलसे युक्त था, पाशवी बलकी घमेंड उसमें था। इसलिये इन्द्रने उसको पशु जैसा मारकर गिरा दिया।

शत्रुके साथ, शत्रुका आक्रमण होनेके पश्चात्, किस तरह व्यवहार करना चाहिये और उसका नाश किस तरह करना चाहिये यह इस मन्त्रमें कहा है। इस दृष्टीसे इस मंत्रका विचार करना चाहिये।

[९] (१५४) इन्द्रने परुष्णीके जलप्रवाहोंको पहिलेके समान (अर्थं ईयुः) योग्य मार्गसे चलाया और (न्यर्थं परुष्णीं न ईयुः) अयोग्य मार्गसे परुष्णीके प्रति नहीं जाने दिया। (आशुः चन इत्) उसका शीघ्रगामी घोडा भी (अभिपित्वं

१० ईयुर्गावो न यवसादगोपा यथाकृतमभि मित्रं चितासः ।
पृश्निगावः पृश्निनिप्रेषितासः श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रन्तयश्च १५५
११ एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनान् राजा न्यस्तः ।
दस्मो न सद्मन् नि शिशाति बर्हिः शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम् १५६

जगाम) अपने जानेके मार्गसे ही गया । (इन्द्रः सुदासे) इन्द्रने सुदासके लिये (मानुषे) मनुष्य लोकमें रहनेवाले (वध्रिवाचः सुतुकान् अमित्रान् अरंधयत्) व्यर्थ बडबड करनेवाले, उत्तम पुत्र-वाले शत्रुओंको मार दिया ।

१ इन्द्रने परुष्णीके दोनों ओरकी बाजुओंकी दिवारोंको ठीक किया और परुष्णी नदीका पानी जैसा पहिले बहता था, वैसा बहने योग्य बना दिया । इससे जो खेतोंकी हानि होना संभव थी वह हानि नहीं हुई । और खेतोंका संरक्षण हुआ ।

२ इससे घोडे गाडियां जानेके मार्ग भी ठीक हो गये ।

३ इन्द्रने सुदास राजाके लिये शत्रुओंको उनके पुत्रों समेत विनष्ट किया ।

यहां बताया है कि राजा नदी और नहरोंकी उत्तम व्यवस्था रखे । नदीके और नहरोंके बंध शत्रुने तोड दिये, तो उनको अतिशीघ्र ठीक करे और जलसे खेतोंकी हानि न पहुंचे ऐसा करे । और दुष्ट शत्रुओंको संपूर्णतया विनष्ट कर देवे । ताकि उनमेंसे दुःख देनेके लिये एक भी अवशिष्ट न रहे । यहां राज-नीतिका पाठ उत्तम स्पष्ट शब्दों द्वारा दिया है ।

[१०] (१५५) (पृश्नि-निप्रेषितासः) माताके द्वारा प्रेरित हुए (चितासः) उत्तम संगठित हुए (पृश्निगावः) नाना वर्णवाली गौवें जिनके पास हैं, ऐसे मरुत् वीर (यथाकृतं) जैसा पहिले किया था वैसा सहाय्य करनेके निश्चयसे (मित्रं) मित्र इन्द्रके पास (यवसात् अगोपाः गावः) जौ के खेतके पास गवालियेके विना रही गौवें जाती हैं, वैसे (अभि ईयुः) गये । (रंतयः नियुतः च श्रुष्टिं चक्रुः) आनंदित हुए मरुतोंके घोडे भी चपलतासे अच्छी दौड करने लगे ।

पूर्वोक्त प्रकार सुदासके संरक्षणार्थ इन्द्र युद्धमें तत्पर हो रहा है, यह देखकर उत्तम संगठित हुए मरुद्वीर भी इन्द्रके सहायातार्थ दौडे । सैनिकोंका कर्तव्य यहां बताया है । मुख्य वीर युद्ध कर रहा है यह देखकर उसके सहायकोंको उचित है कि वे उस मुख्य वीरकी सहायता करनेके लिये उद्यत हों । (अ-गोपाः गावः) जिनके लिये गवालिया नहीं हैं ऐसी स्वतंत्र गौवें जिस तरह घासवाली भूमिके पास दौडती हैं, वैसे ये वीर अपने नेता वीरके सहायातार्थ दौडे । यह उपमा बहुत ही अच्छी उपमा है । घोडोंपर चढे वीर भी इसी तरह दौडें और अपने प्रमुख नेताकी सहायता करें ।

' पृश्निगावः ' गौका दूध पीनेवाले ये मरुद्वीर हैं, (चितासः चित्तवाले, ज्ञानी तथा संगठित हैं । (पृश्नि-निप्रेषितासः माताके द्वारा प्रेरित हुए ये वीर हैं । माताएं भी अपने पुत्रोंको युद्धमें जानेका उपदेश करें । राष्ट्रके वीर किस तरह तैयार रहें यह यहां बताया है ।

[११] (१५६) (यः राजा श्रवस्या) इस राजाने यशकी इच्छासे (वैकर्णयोः एकं च विंशतिं च जनान्) वैकर्ण राष्ट्रोंके इक्कीस वीरोंका (नि अस्तः) वध किया । जैसा (दस्मः न) दर्शनीय युवा (सद्मन् बर्हिः नि शिशाति) अपने घरमें दर्भोंको काटता है । ऐसे युद्धोंके लिये ही (शूरः इन्द्रः एषां सर्गं अकरोत्) शूर इन्द्रने इन मरुतोंको निर्माण किया था ।

मानवधर्म– दुष्ट शत्रुओंके वीरोंका नाश शूरवीर ऐसा करें कि जिस तरह याजक यज्ञशालामें दुर्भोंको काटते हैं । इसी कार्य करके लिये शूरोंका जन्म है ।

१ राजा श्रवस्या वैकर्णयोः जनान् नि अस्तः–राजा-क्षत्रिय यशकी इच्छासे विकर्ण–न सुननेवाले शत्रुके लोगोंका वध करे । क्षत्रिय यशके लिये शत्रुका नाश करे ।

' विकर्ण ' उनको कहते हैं कि जो वारंवार समझानेपर भी बिलकुल सुनते नहीं हैं । संधि करनेके समय ' हां ' कहते हैं, पर पीछेसे वैसे ही उद्दण्डतासे वर्तते हैं । सुनानेपर भी जान बूझकर शत्रुता छोडते नहीं ।

१२	अध श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्वनु द्रुह्युं नि वृणग्वज्रबाहुः ।	
	वृणाना अत्र सख्याय सख्यं त्वायन्तो ये अमदन्ननु त्वा	१५७
१३	वि सद्यो विश्वा दृंहितान्येषामिन्द्रः पुरः सहसा सप्त दर्दः ।	
	व्यानवस्य तृत्सवे गयं भाग्जेष्म पूरुं विदथे मृध्रवाचम्	१५८

२ दस्मः सद्मन् बर्हिः नि शिशाति- तरुण सुंदर याजक यज्ञशालामें – घरमें दर्भोंको काटता है, वैसे शत्रुको काटा जाय।

३ शूरः इन्द्रः एषां सर्गं अकरोत्- शूर वीर इन्द्रने- प्रभुने- इन वीरोंको इस शत्रु निर्दालनके कार्यके लियें ही निर्माण किया है वीरोंका यही कार्य है कि वे शत्रुको दूर करे।

[१२] (१५७) (अध वज्रबाहुः) इसके पश्चात् वज्रधारी इन्द्रने (श्रुतं कवषं वृद्धं द्रुह्युं अनु) श्रुत, कवष, वृद्ध और द्रुह्यु इनको क्रमसे (अप्सु निवृणक्) जलमें डुबा दिया। (अत्र ये त्वायन्तः त्वा अनु अमदन्) इस समय जिन्होंने तेरे अनुकूल रहकर तेरे लिये आनन्द होने योग्य कर्म किया, वे (सख्याय सख्यं वृणानाः) तेरी मित्रताको प्राप्त हुए।

शत्रुमित्रकी परीक्षा

मानवधर्म- विद्वान् या वृद्ध भी यदि द्रोहकारी हुए तो शस्त्रधारी वीर उन वशमें न आनेवाले शत्रुओंको नष्ट करे। जो लोग अनुकूलतासे रहकर आनन्द बढानेवाले सहायक मित्र हैं उनके साथ मित्रवत् बर्ताव करे।

१ वज्रबाहुः श्रुतं वृद्धं द्रुह्युं कवषं अप्सु निवृणक् — शस्त्रधारी संरक्षक वीर, द्रोहकारी शत्रु ज्ञानी तथा वृद्ध भी हुआ तो भी उस, वशमें न आनेवाले शत्रुको जलमें डुबा देवे, उसका नाश करे।

'श्रुतं' = जो बहुश्रुत विद्वान है, 'वृद्धं' = जो आयुसे वृद्ध है, 'कवषं = कं-वशं' = जो वशमें नहीं रहता, जो कठिनतासे वश हो सकता है, 'द्रुह्युं' = जो द्रोह करता है। शत्रु ज्ञानी वयोवृद्ध भी हुआ तो भी उसको क्षमा करना उचित नहीं है। उसका नाश करना ही चाहिये।

२ ये त्वायन्तः त्वा अनुअमदन् सख्याय सख्यं वृणानाः — जो अनुकूल रहकर आनंद बढाते हैं, सख्य करते हैं, उनसे मित्रता करनी चाहिये।

इस मंत्रमें राजनीतिका उत्तम पाठ दिया है। जो सदा शत्रुता करनेवाले द्रोही दुष्ट हैं, वे विद्वान् हों, वृद्ध हों अथवा अन्य रीतिसे पूज्य भी हों, तो भी उनका नाश करना चाहिये। तथा जो अपने साथ मित्रता करता हैं, समय पर सहायता करता है, आनन्द बढाने योग्य व्यवहार करता है, उनके साथ मित्रता करनी चाहिये और उनका हित करना चाहिये।

[१३] (१५८) (एषां विश्वा दृंहितानि पुरः) इन शत्रुओंके सब सुदृढ नगरोंके (सप्त सहसा सद्यः विदर्दः) सातों प्राकारोंको बलसे तत्काल तोड दिया, और (अनवस्य गयं तृत्सवे वि भाक्) शत्रुभूत अनुके घरको तृत्सुको दिया। हमने (मृध्रवाचं पूरुं जेष्म) असत्यवादी मनुष्योंपर विजय किया।

मानवधर्म - शत्रुओंके सब कीलों और नगरोंको तथा सब प्राकारोंको तोड दो, शत्रुओंके स्थान मित्रोंको दो और असत्य व्यवहार करनेवालों पर विजय प्राप्त करो।

१ एषां विश्वा दृंहितानि पुरः सप्त सहसा सद्यः विदर्दः—इन शत्रुओंके सब कीले, नगर आदिके सब सातों प्राकारोंको अपने बलसे तत्काल तोड दो। अपना बल इतना बढाओ कि जिससे शत्रुके कीले तोडना सहज हो जाय।

२ अनवस्य गयं तृत्सवे वि भाक्—शत्रुके स्थान मित्रोंको दो। शत्रुका नाश करके वहां मित्रोंका निवास हो ऐसे करो।

३ मृध्रवाचं पूरुं जेष्म—असत्य भाषी मनुष्योंपर हमारा विजय हो। हम इस तरह उत्तम व्यवहार करते रहेंगे कि जिससे असद्व्यवहार करनेवालोंका पराजय ही होता रहे।

१४	नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा ।	
	षष्टिर्वीरासो अधि षड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि	१५९
१५	इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः ।	
	दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे	१६०
१६	अर्धं वीरस्य शृतपामनिन्द्रं परा शर्धन्तं नुनुदे अभि क्षाम् ।	
	इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः	१६१

[१४] (१५९) (गव्यवः अनवः द्रुह्यवः च) गौओंको चुरानेवाले अनु और द्रुहुके अनुयायी (षष्टिः शता षट् सहस्रा षष्टिः च अधि षट् वीरासः) छियासठ हजार, छियासठ वीरोंको (दुवोयु नि सुषुपुः) सहायकोंके हित करनेके लिये निःशेष मारे गये, (विश्वा इत्) ये सभी (इन्द्रस्य वीर्या कृतानि) इन्द्रके किये पराक्रम हैं।

मानवधर्म – धन लूटनेवाले डाकू और द्रोहकारी शत्रु सहस्रोंकी संख्यामें रहे तो भी उनको निःशेष करना चाहिये।

१ गव्यवः द्रुह्यवः अनवः नि सुषुपुः—गौवें चुराने-वाले द्रोही तथा उनके अनुकूल रहनेवाले उनके साथी दुष्टोंकी निःशेष सुलाया, उनका वध किया । इनका नाश ही करना चाहिये ।

[१५] (१६०) (एते दुर्मित्रासः तृत्सवः) ये दुष्टोंके साथ मित्रता करनेवाले बाधाकारी शत्रु (प्रकलवित्) विशेष युद्ध कलाको जाननेवाले (इन्द्रेण वेविषाणाः सृष्टाः) इन्द्रके द्वारा अन्दर घुसकर हटाये गये शत्रु (आपः न नीचीः अध-वंत) जलप्रवाहोंके समान नीचे मुंह करके भागने लगे। (मिमानाः) मारे जानेपर (विश्वानि भोजना सुदासे जहुः) सब भोजन साधन- रूप धनोंको सुदासके लिये छोडकर भाग गये।

मानवधर्म– दुष्टोंके साथ मित्रता करनेवाले बडे कला निपुण होनेपर भी शत्रु ही होते हैं। उनके अन्दर घुसकर उनका वध करना चाहिये, तथा उनको भगाना चाहिये। उनके अन्दर ऐसी घबराहट उत्पन्न करनी चाहिये कि वे जल प्रवाह जैसे नीचेकी ओर दौडते हैं, वैसे वे दौड कर भाग जांय और भागनेके समय उनके भोजन धन आदि उनको वहीं छोडने पडें ।

१ दुर्मित्रासः तृत्सवः प्र-कल-वित्—दुष्टोंके मित्र विशेष कला निपुण होनेपर भी शत्रु ही समझने चाहिये। शत्रुके मित्र शत्रु ही होते हैं ।

२ वेविषाणाः सृष्टाः नीचीः अधावंत—उनके अन्दर घुसकर उनको नीचे मुंह करके भगानेके योग्य घबराना चाहिये । उनको असावध अवस्थामें पकडकर मथना चाहिये और भगादेना चाहिये ।

३ विश्वा भोजना जहुः—अपने भोजन छोडकर भाग जांय ऐसी घबराहट उनमें उत्पन्न करनी चाहिये ।

[१६] (१६१) (इन्द्रः क्षां अभि) इन्द्र मातृ-भूमिको देखकर (वीरस्य अर्धं) वीरका नाश करनेवाले तथा (शृतपां शर्धन्तं अनिन्द्रं परा नुनुदे) हविष्यान्न खानेवाले विनाशक शत्रुका नाश करता रहा। (इन्द्रः मन्युभ्यः मन्युं मिमाय) इन्द्रने शत्रुता करनेवालेके शत्रुके क्रोधका नाश किया। और (पत्यमानः पथः वर्तनिं भेजे) भागने-वालेके मार्गका अवलंबन करनेके लिये शत्रुको बाधित किया ।

मानवधर्म – मातृभूमिके हितका विचार मनुष्य करे। अपने वीरोंका नाश करनेवाले और अपने भोगोंका हरण करनेवाले शत्रुओंका नाश करना या इनको दूर करना चाहिये। शत्रुके क्रोधको निष्फल बनाना चाहिये और शत्रुको भागनेके मार्गसे भिन्न दूसरा कोई मार्ग रखना नहीं चाहिये।

१७ आध्रेण चित् तद्वेकं चकार सिंह्यं चित् पेत्वेना जघान ।
अव स्रक्तीर्वेश्यावृश्चदिन्द्रः प्रायच्छद् विश्वा भोजना सुदासे १६२

१८ शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम् ।
मर्ताँ एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन् नि जहि वज्रमिन्द्र १६३

---

१ क्षां अभि—मातृ भूमिकी ओर ध्यान दो । प्रत्येक कार्य करनेके समय इसका परिणाम मातृ भूमिपर क्या होगा इसका विचार करो ।

२ अनिन्द्रं वीरस्य अर्धं शर्धन्तं परा नुनुदे—नास्तिक तथा वीर घातक हिंसाकारी शत्रुको दूर भगाना चाहिये।

३ मन्युम्यः मन्युं मिमाय— क्रोधी हिंसक शत्रुके क्रोधका नाश करना, अर्थात् उसके क्रोधको निष्फल करना चाहिये ।

४ पत्यमानः पथः वर्तनिं भेजे—भागनेवालोंके मार्गका ही सेवन शत्रु करें । उनके लिये दूसरा मार्ग ही न रहे ऐसा करना चाहिये ।

'अनिन्द्रः' (अन्-इन्द्रः) जो प्रभुको मानता नहीं, नास्तिक, ईश्वरको न माननेवाला शत्रु । 'मन्यु-म्यः' क्रोधसे हिंसा करने वाला । क्रोधी हिंसक शत्रु । 'शृत-पा' –सिद्ध किये अन्नको ले जाकर खानेवाला । ये सब शत्रुके लक्षण हैं ।

[१७] (१६२) (तत् इन्द्रः आध्रेण चित् एकं चकार) तब इन्द्रने दरिद्रके द्वारा भी एक बडा दान कराया । (सिंह्यं चित् पेत्वेन जघान) प्रबल सिंहको भी बकरेसे मरवाया । (वेश्या स्रक्तीः अव अवृश्चत्) सूईसे स्तंभके कोने कटवा दिये। और (विश्वा भोजना सुदासे प्र अयच्छत्) सब भोग्य धन सुदासको दिये ।

ये असंभवसे दीखनेवाले कर्म इन्द्रने अपनी शक्तिसे करवाये। इसी तरह मनुष्यको उचित है कि वह अपनी शक्ति बढावे और असंभव कार्योंको भी सिद्ध करके दिखावे।

[१८] (१६३) हे इन्द्र ! (ते शत्रवः शश्वन्तः ररधुः हि) तेरे बहुतसे शत्रु वशमें आ गये हैं। (शर्धतः भेदस्य रन्धिं विंद) स्पर्धा करनेवाले भेदकर्ताको वश करनेका उपाय प्राप्त कर। (यः स्तुवतः मर्तान् एनः कृणोति) जो भक्तोंके प्रति भी पाप करता है, (तस्मिन् तिग्मं वज्रं निजहि) उस शत्रुपर तीक्ष्ण वज्रका प्रहार कर।

मानवधर्म – शत्रुओंको वशमें कर, अपने समाजमें भेद करके आपसमें स्पर्धा करानेवालेका दमन कर, जो सज्जनोंके विरुद्ध भी पापका आचरण करता है उसको शस्त्रके प्रहारसे विनष्ट कर ।

१ ते शत्रवः शश्वन्तः ररधुः—तेरे शत्रुओंको वशमें कर, वे शत्रुता न कर सकें ऐसे उनको शान्त कर।

२ शर्धतः भेदस्य रन्धिं विन्द—अपने समाजमें पक्षभेद निर्माण करनेवालोंको शान्त करनेका उपाय प्राप्त कर। अपने समाजमें रहकर अनेक पक्षभेद उत्पन्न करते हैं, आपसमें झगडते हैं और इस तरह संघटना नष्ट करते हैं। ये समाजके महा शत्रु हैं । इनको शान्त करना चाहिये । ये अपने समाजमें भेद उत्पन्न न कर सकें ऐसा प्रयत्न करना योग्य है । भेद उत्पन्न करनेवाले असफल रहें ।

३ यः स्तुवतः मर्तान् एनः कृणोति—जो धार्मिक सदाचारी लोगोंको भी, स्वयं पाप करके, कष्ट देता है उसपर (**तिग्मं वज्रं निजहि**) तीक्ष्ण शस्त्र फेंककर उसका वध ही करना योग्य है। ऐसे असत्याचारी लोग समाजके लिये हानिकारक हैं ।

शत्रुओंको दूर करना चाहिये । आपसमें फूट बढानेवालोंके षड्यंत्र असफल करने चाहिये, तथा आपसमें फूट नहीं होगी ऐसा प्रयत्न करना चाहिये । समाज ऐसा सुसंस्कारसंपन्न करना चाहिये कि जो आपसमें फूट पाडनेवालोंके प्रयत्नोंको सफल होने न दे । तथा जो सज्जनोंके विषयमें भी पाप करता और उनको कष्ट देता है उसका वध शस्त्रसे करना चाहिये ।

१९ आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत् ।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि १६४

२० न त इन्द्र सुमतयो न रायः संचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नाः ।
देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थाऽवत्मना बृहतः शम्बरं भेत् १६५

२१ प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताऽधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् १६६

---

[१९] (१६४) (अत्र सर्वताता यः भेदं प्रमुषायत्) इस सर्वत्र फैले युद्धमें जिस इन्द्रने भेद करनेवाले शत्रुका वध किया, (तं इन्द्रं यमुना तृत्सवः च आवन्) इस इन्द्रका रक्षण यमुना और तृत्सुओंने किया । (अजासः च शिग्रवः यक्षवः च अश्व्यानि शीर्षाणि बलिं जभ्रुः) अज, शिग्रु तथा यक्षु लोगोंने प्रमुख घोडोंका प्रदान इन्द्रके लिये किया ।

मानवधर्म – यज्ञमें उसको दूर करो कि जो आपसमें फूट निर्माण करता है । यम नियम पालन करनेवाले तथा संकटोंसे पार करनेवाले वीर अपने नेताका संरक्षण करें । हलचल करनेवाले, सत्वर कार्य करनेवाले तथा याजक ये सब अपने नेताको सहायता प्रदान करें और उसको युद्धमें प्राप्त किये उत्तम घोडोंका प्रदान करें ।

' **सर्वताता** '–सर्वत्र फैलनेवाला यज्ञ तथा युद्ध । ' **भेदः** '–समाजमें पक्ष भेद करनेवाला शत्रुका मनुष्य । ' **यमुना** '–यमन, नियमन करनेवाले शासक । ' **तृत्सवः** ' संकटोंसे पार होनेवाले वीर । ' **अजासः** '–हलचल करनेवाले वीर, (अजति इतिः अजः) सतत प्रयत्न शील जो होते हैं । ' **शिग्रवः** '–सत्वर कुशलताके साथ कर्म करनेवाले । ' **यक्षवः** ' याजक, यजन करनेवाले ।

१ सर्वताता भेदं प्रमुषायत्— सबका शक्ति–विस्तार करनेके कार्यके समय आपसमें फूट करनेवालेको दूर कर । आपसकी फूट बढेगी तो शक्तिका विकास नहीं होगा ।

२ तं यमुना तृत्सवः आवन्— उस वीरको यमनियमोंके पालक तथा संकटोंसे पार करनेवाले वीर सुरक्षित रखें ।

३ अजासः शिग्रवः यक्षवः अश्व्यानि शीर्षाणि बलिं जभ्रुः-- हलचल करनेवाले शीघ्रकारी याजक मुख्य श्रेष्ठ घोडोंका दान अपने नेताको करते ह । शत्रुसे प्राप्त किये घोडे अपने नेताको अर्पण करते हैं ।

[२०] (१६५) हे इन्द्र ! (ते पूर्वाः सुमतयः न संचक्षे) तेरी पुरातन समयसे चली आयी शुभ कृपाएं अवर्णनीय हैं तथा (रायः) धन भी (उषसः न) उषाओंके समान (न संचक्षे) अवर्णनीय हैं तथा (नूत्नाः न) तुम्हारी नूतन कृपाएं भी अवर्णनीय हैं । (मान्यमानं देवकं चित् जघंथ) मान्यमान देवक शत्रुका तूने वध किया । और (त्मना बृहतः शंबरं अवभेत्) तूने स्वयं ही बडे पर्वतसे शंबर नामक असुर शत्रुका नाश किया ।

१ पूर्वाः नूत्नाः च सुमतयः न संचक्षे— पूर्व समयकी तथा इस समयकी कृपाएँ अवर्णनीय हैं । कृपा निष्कपट भावसे करनी चाहिये ।

२ रायः न संचक्षे— धन भी नानाप्रकारके हैं और वे भी अवर्णनीय हैं । धन अनेक प्रकारके होते हैं और वे सब उपयोगी होते हैं ।

३ मान्यमानं देवकं जघंथ-- घमंडी गर्विष्ठ लोग ही जिसकी मान्यता करते हैं ऐसे दांभिक तुच्छ देवताके पूजकोंको' अर्थात् श्रेष्ठ एक देवकी भक्ति श्रद्धासे न करनेवाले शत्रुका वध करना योग्य है । देव, देवक इनमें ' देव-क ' शब्द तुच्छ देवकी पूजाके निषेध अर्थमें प्रयुक्त हुआ है । ' देवक ' का अर्थ ' छोटा देव ' है । हीन पूजक शत्रु ।

४ बृहतः शंबरं अव भेत्— बडे पहाडपर रहकर युद्ध करनेवाले शत्रुका नाश करना योग्य है ।

[२१] (१६६) (ये पराशरः शतयातुः वसिष्ठः) जो पराशर, सैंकडों राक्षसोंका सामना करनेवाला वसिष्ठ ये (त्वायाः) तेरी भक्ति करनेवाले ऋषि

२२ द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् १६७

२३ चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके ।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति १६८

(गृहात् प्र अममदुः) घरघरमें तुझे संतुष्ट करते हैं। (ते भोजस्य सख्यं न मृषन्त) वे ऋषि भोजन देनेवाले तुम्हारी मित्रताका विस्मरण नहीं होने देते। (अध सूरिभ्यः सुदिना वि उच्छान्) इन ज्ञानियोंको उत्तम दिन प्राप्त हों।

पराशर तथा वसिष्ठ ये ऋषि ऐसे हैं कि जो सेंकडों राक्षसोंका सामना करनेवाले (शत-यातुः) थे। ' परा-शर ' वह है कि जो दूरतक शर संधान कर सकता है और ' वसिष्ठ ' वह है कि जो शत्रुओंके हमले होनेपर भी (वसति इति वसिष्ठः) अपने स्थानपर रहता है। ये दोनों गुण विजयके लिये आवश्यक हैं। दूरसे बाणोंका प्रयोग करनेसे दूरसे ही शत्रु भाग जायगा अथवा विनष्ट होगा। तथा अपना स्थान न छोडनेवाला भी शक्तिशाली चाहिये। ऋषियोंके आश्रम शस्त्रास्त्रोंसे संपन्न थे इस बातकी सूचना इन शब्दोंसे बोधित होती है। राक्षसोंका प्रतीकार करनेकी शक्ति ये अपनेमें रखते थे। इस कारण ही वनमें आश्रम करके ये अपना कार्य कर सकते थे।

१ गृहात् प्र अममदु—घर घरमें अपने नेताको संतुष्ट करते थे। अपने नेताका यश घर घरमें गाया जाता था। धर्मका प्रचार घर घरमें करना चाहिये यह इसका बोध है।

२ ते भोजस्य सख्यं न मृषन्त--भोग्य वस्तुओंका प्रदान करनेवाले प्रभुकी भक्तिसे वे दूर नहीं होते थे। वे उसका नित्य स्मरण रखते थे।

३ सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान्-ज्ञानियोंके लिये अच्छे दिन प्राप्त हों। ज्ञानी, विद्वान, सदाचारी, सज्जन जो होंगे उनके लिये उत्तम दिवस होने चाहिये। राज्य व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये कि जिसमें सज्जनोंकी सुरक्षा हो और उनके लिये अच्छे दिन मिलते रहें। और जो दुष्ट लोग हों उनके लिये कष्ट हों। उनका निर्दालन होता रहे।

[२२] (१६७) हे (अग्ने) अग्ने ! (देववतः नप्तुः) देव भक्तके पौत्र (पैजवनस्य सुदासः) पिजवनके पुत्र सुदासकी (गोः द्वे शते) दो सौ गाइयाँ (वधूमन्ता द्वा रथा) वधुओंके साथ दो रथ (दानं रेभन्) इस दानकी प्रशंसा करता हुआ मैं (अर्हन्) योग्य (होता इव सद्म परि एमि) होता यज्ञगृहमें जाता है वैसा मैं अपने घरमें जाता हूं।

इस मंत्रमें एक राजासे सौ गौवें, दो रथ तथा रथके साथ कन्याएं दानमें मिलनेका उल्लेख है। इस तरहके दान ऋषियोंके आश्रमोंको मिलते थे जिनपर आश्रम चलते थे। ऐसे दान देने चाहिये यह इसका तात्पर्य है।

गौवें तो छात्रोंके दूध पीनेके लिये हैं। रथ और घोडे तो वाहनके कार्यके लिये हैं। पर वधूयें, कन्याएं क्यों दी हैं ? प्रत्येक रथके साथ कन्याएं क्यों दी जाती थी यह एक अन्वेषणीय विषय है। ये कन्याएं यहां वसिष्ठ जैसे महातपस्वी ऋषिको मिली हैं। और वासिष्ठ तो श्रेष्ठसे श्रेष्ठ ऋषि हैं। इस लिये इसकी खोज विशेष मनन पूर्वक होनी चाहिये

[२३] (१६८) (पैजवनस्य सुदासः) पिजवनके पुत्र सुदास राजाके (स्मद्दिष्टयः कृशनिनः) दानमें दिये, सुवर्णके अलंकारोंसे लदे (निरेके ऋज्रासः) कठिन स्थानमें भी सरल जानेवाले ऐसे सुशिक्षित (पृथिवीस्थाः दानाः चत्वारः) पृथिवीपर प्रसिद्ध दानमें दिये चार घोडे (तोकं मा) पुत्रवत् पालनीय मुझ वासिष्ठको (तोकाय श्रवसे वहन्ति) पुत्रोंके पास यशके साथ जानेके लिये ले जाते हैं।

दो रथोंके साथ, प्रत्येक रथमें दो घोडे मिलकर, चार घोडे हुए। ये घोडे सुवर्णालंकारोंसे लदे थे। इससे अनुमान हो सकता है कि कितना धन वसिष्ठको एक ही समय मिला होगा। ऐसे दान मिलने चाहिये और देने चाहिये यह इसका तात्पर्य है।

२४ यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णेशीर्ष्णे विबभाजा विभक्ता
सुतेदिन्द्रं न स्रवतो गृणान्ति नि युध्यामधिमशिशादभीके १६९

२५ इमं नरो मरुतः सश्चतानु दिवोदासं न पितरं सुदासः ।
अविष्टना पैजवनस्य केतं दूणाशं क्षत्रमजरं दुवोयु १७०

(१९) ११ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः १७१

---

[२४] (१६९) (यस्य श्रवः उर्वी रोदसी अन्तः) जिसका यश इस बडी द्यावा पृथिवीके अन्दर फैला है, (विभक्ता शीर्ष्णे शीर्ष्णे विबभाज) जो मुख्य मुख्य विद्वानोंको ऐसा ही धन देता है, (सप्त इन्द्रं न इत् गृणन्ति) सात लोक इन्द्रकी स्तुति करनेके समान इसकी प्रशंसा करते हैं। उसके शत्रु (युध्यामधिं सरितः अभीके नि अशिशात्) युध्यामधिका नदीके समीप वध हुआ।

ऐसा दान देना कि जिससे चारों ओर यश फैले। विद्वानों में जो श्रेष्ठ विद्वान हों उनको ही दान देना। विद्या विहीनको दान न देना। दानका यह नियम " **विभक्ता शीर्ष्णे शीर्ष्णे विबभाज** " दान देनेवाला श्रेष्ठसे श्रेष्ठ विद्वानको दान देवे इस मंत्रसे सिद्ध होता है।

युध्यामधिं सरितः अभीके नि अशिशात्–शत्रुको युद्धमें नदीके समीप नष्ट किया। यहां नष्ट करना मुख्य है। नदीके समीप शत्रुका नाश किया जाय वा अन्यत्र किया जाय, यह तो महत्त्वकी बात नहीं हैं, पर शत्रु का वध करना चाहिये यह मुख्य विषय है।

'**युध्या-मधि**' उसको कहते हैं कि जो शत्रु युद्धसे ही सदा दुःख देता रहता है। नाना प्रकारसे कहनेपर सुनता नहीं और आक्रमण करता ही रहता है। ऐसे शत्रुका वध करना योग्य है।

[२५] (१७०) हे (नरः मरुतः) नेता मरुद्वीरो! (इमं पितरं दिवोदासं न) उसके, पिता दिवोदास के समान ही इस (सुदासः अनु सश्चत) सुदासकी सहायता करो। (दुवोयु पैजवनस्य केतं अविघ्न) आशीर्वाद प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले पिजवन पुत्र सुदासके घरकी सुरक्षा करो। तथा इसका (क्षत्रं दुणाशं अजरं) क्षात्र बल बढता जाय कभी कम न हो।

राष्ट्रसुरक्षाका अमर संदेश

जो (मर्-उत्) मरनेतक उठकर लडते हैं वे वीर मरुत् है। ये ही युद्धके नेता है। युद्ध संचालन करनेकी विद्या ये जानते है। इसीलिये इनको 'नरः' पुरुष कहते हैं। ये वीर्यवान् पुरुष वीर हैं। ये सब जनताके संरक्षक है। दाताकी सुरक्षा ये करते है।

राष्ट्रकी सुरक्षा करनेके लिये '**अ-जरं क्षत्रं दुणाशं**' क्षात्र-बल अविनाशी और बढनेवाला, शिथिल न होनेवाला चाहिये। यह इस सूक्तका अंतिम संदेश बडा स्मरण रखने योग्य है।

[१] (१७१) (यः तिग्मशृंगो वृषभो न भीमः) जो तीखे सींगवाले बैलके समान भयंकर (एकः विश्वाः कृष्टीः प्र च्यावयति) अकेला ही सभी शत्रुओंको स्थानसे भ्रष्ट कर देता है। (यः अदाशुषः शश्वतः गयस्य) जो दान न देनेवालेके अनेक घरोंको भी स्थान भ्रष्ट कर देता है, वह (सुष्वितराय वेदः प्रयंता असि) तू यज्ञ करनेवालोंके लिये धन देता है।

मानवधर्म – वीर तीक्ष्ण सींगवाले बैलके समान बलवान और भयंकर हो। वह सब शत्रुओंको स्थानभ्रष्ट करे। कोई शत्रु अपने स्थानपर स्थिर न रह सके। कंजूस और

२ त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥ १७२

३ त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ १७३

४ त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चाऽस्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥ १७४

उदार लोगोंके स्थान भी अस्थिर रहें, ऐसे लोग राष्ट्रमें ...सिद्ध होने न पावें । जो यज्ञ करता और दान देता है, ...को पर्याप्त धन प्राप्त हो ।

१ एकः भीमः विश्वाः कृष्टीः प्रच्यावयति-अकेला ...वीर सब शत्रुओंको अपने स्थानसे उखाड देता है ।

२ अदाशुषः शश्वतः गयस्य च्यावयिता--कंजूसके ...को उखाडनेवाला वीर हो । कंजूस राष्ट्रमें न रहे ।

३ सुष्वि-तराय वेदः प्रयंता--यज्ञकर्ताको धन दो, ...लोग यज्ञकर्ताको धनका दान देते रहें । धनके अभावके ...रण यज्ञ बंद करना न पडे । राष्ट्रके दाता लोग राष्ट्रमें यज्ञ ...ते रहें इतना दान यज्ञकर्ताओंको देवें ।

[२] (१७२) हे इन्द्र! (त्वं ह त्यत् तन्वा शुश्रूषमाणः) तूने तब अपने शरीरसे शुश्रूषा करके (समर्ये कुत्सं आवः) युद्धमें कुत्सकी सुरक्षा की, (यत् आर्जुनेयाय अस्मै शिक्षन्) उस अर्जुनीके ...त्र कुत्सको धन दिया और (दासं शुष्णं कुयवं नि अरंधयः) दास शुष्ण और कुयवका नाश ...किया ।

'दास' उनको कहते हैं कि जो (दस उपक्षये) नाश ...रता है, घात पात करता है, लोगोंको नष्ट भ्रष्ट करता है। ...समाजमें उपद्रव मचाता है । 'शुष्ण' वह है कि जो- लोगोंके ...नों भोगों और सुखोंका शोषण करता है, अपने सुखके लिये ...दूसरोंको चूसता है । 'कु-यव' वह है कि जो अपने बुरे सडे ...को अच्छे बताकर लोगोंको देता है । इससे खानेवालोंके ...आरोग्यका बिगाड होता है । इनका समाजके हितके लिये नाश ...करना चाहिये । समाजसे इनको दूर करना चाहिये ।

१ तन्वा शुश्रूषमाणः समर्ये कुत्सं आवः—स्वयं अपने प्रयत्नसे युद्धमें अपने अनुयायी कुत्सकी रक्षा की । अपने जो अनुयायी होंगे उनकी सुरक्षा करनी चाहिये ।

२ दासं शुष्णं कुयवं निरंधयः—घातपाती, शोषण कर्ता तथा बुरे रोगोत्पादक धान्यका व्यवहार करनेवालोंका नाश कर । इनको दूर कर ।

३ शिक्षन्—इनको उत्तम शिक्षा दो, उनपर शुभ संस्कार कर, जिससे ये वैसे घातपातके कर्म न कर सकें ऐसा कर ।

[३] (१७३) हे (धृष्णो) शत्रुधर्षक इन्द्र! तूने (धृषता वीतहव्यं सुदासं) अपने बलसे अन्नका दान करनेवाले सुदासका (विश्वाभिः ऊतिभिः प्र आवः) अनेक संरक्षणके साधनोंसे संरक्षण किया। (वृत्र हत्येषु क्षेत्र साता) वृत्रवध करनेके युद्धमें तथा क्षेत्रका बंटवारा करनेके समय (पौरुकुत्सिं त्रसदस्यु पुरुं च प्र आवः) पुरुकुत्सके पुत्र त्रसदस्यु तथा पुरुका संरक्षण किया।

१ धृषता विश्वाभिः ऊतिभिः प्रावः—शत्रुको उखाडनेके बलसे सब सुरक्षाके साधनों द्वारा प्रजाका संरक्षण करो । अर्थात् शत्रुको उखाड दो और संरक्षणके साधनोंसे प्रजाका संरक्षण करो ।

२ वृत्रहत्येषु क्षेत्रसाता पुरुं आवः—युद्धोंमें तथा भूमिका बटवारा करनेके समयमें झगडे होते हैं, उस समय नागरिकोंका संरक्षण करना चाहिये । भूमिका बटवारा करनेके समयमें भाई भाईयोंमें झगडे होते हैं, उस समय योग्य विभाग करके झगडेकी जड दूर करनी चाहिये ।

[४] (१७४) हे (नृ-मनः) मनुष्योंके मनोंको आकर्षित करनेवाले इन्द्र! अथवा जिसका मन मनुष्योंका हित करनेमें लगा है ऐसे इन्द्र! (देव-

५ तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरो नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीरहञ्च वृत्रं नमुचिमुताहन् १७

६ सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् १७

वीतौ त्वं नृभिः भूरीणि वृत्रा हंसि) युद्धमें तू अपने वीरोंके द्वारा बहुत शत्रुओंको मारता है। हे (हर्यश्व) हरिद्वर्णके घोडोंवाले इन्द्र! तूने (दभीतये सुहन्तु) दभीतिके लिये वज्रके द्वारा दस्यु चुमुरि और धुनिको (नि अस्वापयः)सुलाया, मारा।

' नृ-मनः '—मनुष्योंका, प्रजाजनोंका हित करनेमें जिसका मन तत्पर रहता है, इसलिये प्रजाओंका मन जिसपर लगा है, जिसने प्रजाओंका मन आकर्षित किया है । **' देव-वीती '**—देवोंका सत्कार जहां होता है, व्यवहार करनेवाले जहां एकत्रित होते हैं, वीर जहां एकत्रित होते हैं । यज्ञ, सभा अथवा युद्ध । **' हर्यश्व '**—हरित् वर्णके घोडे जिसके रथको जोते हैं । **' सु-हन्तु '** जिससे शत्रु अच्छी तरह काटे जाते है वह शस्त्र, तीक्ष्ण धारावाला शस्त्र । **' दस्युः '**—घातपात करनेवाला, **' चुमुरि '** (चु-मुरि)=चुभ चुभ कर, कष्ट दे देकर नाश करनेवाला, **' धुनिः '**-हिलानेवाला, भगानेवाला, जो अपने निवास स्थानमें सुखसे रहने नहीं देता, ये सब समाजके शत्रु हैं । इनको दूर करना चाहिये । **' द-भीतिः '**-दमनके कारण जो भयभीत हुआ है ।

१ नृ-मनः—मनुष्योंका हित करनेमें अपना मन लगा । प्रजाका हित करनेमें तत्पर हो । प्रजाके मनोंको आकर्षित करो।

२ देववीतौ नृभिः भूरीणि हंसि—युद्धोंमें अपने वीरों द्वारा बहुत शत्रुओंका नाश कर ।

३ दस्युं चुमुरिं धुनिं नि अस्वापयः—घातपाती, कष्टदायी और घबराहट करनेवाले शत्रुओंका वध कर। ये फिर न उठें ऐसा कर ।

४ दभीतये भूरीणि हंसि— दमनके कारण जो भयभीत हुआ है उसकी सुरक्षा करनेके लिये बहुत दुष्टोंका वध कर । प्रजापर कोई दमन न करे ऐसा कर ।

[५] (१७५) हे (वज्रहस्त) वज्रधारी इन्द्र! (तव चौत्न्यानि तानि) तेरे वे प्रसिद्ध बल हैं कि जो (यत् नव नवतिं च पुरः सद्यः) तूने शत्रुके नौ और नव्वे नगरोंका भेदन तत्काल ही किया था और (निवेशने शततमा अविवेषीः) अपने ठहरनेके लिये जब सौवी नगरीमें तूने प्रवेश किया उसी समय (वृत्रं च अहन्) वृत्रको तूने मारा और (उत नमुचिं अहन्) नमुचिको भी मारा।

मानवधर्म - शत्रुके कीलों और प्राकारों तथा नगरोंका नाश करना चाहिये और उनपर अपना स्वामित्व स्थापन करना चाहिये । तथा उनमें जो नाना रूपोंमें कष्ट देनेवाले शत्रु रहते हों उनका नाश करना चाहिये ।

' वज्रहस्त '—हाथमें वज्र, तीक्ष्ण धाराका शस्त्र, धारण करनेवाला वीर । यह वीर **' नव च नवतिं च पुरः '** शत्रुके निन्यानवे नगरियोंका भेदन करता है, नगरीके बाहेरके कीलोंका तथा उनके प्राकारोंका नाश करके विजयी होकर उन नगरियोंमें प्रवेश करता है । और स्वयं सौवी नगरीमें प्रवेश करके वहां रहता है । **' वृत्र '** (आवृणोति)—जो घेरकर हमला करता है वह वृत्र है और **' नमुचि '** (न मुञ्चति) जो प्रयत्न करनेपर भी जो छोडता नहीं, किसी न किसी रूपमें वहां रहता और कष्ट देता ही रहता है वह **' नमुचि '** है । ये सब शत्रु है । इनका नाश इन्द्र करता है ।

[६] (१७६) हे इन्द्र! (ते रातहव्याय दाशुषे सुदासे) तुझे हव्य देनेवाले दानी सुदासके लिये (ता भोजनानि सना) जो तू भोगके योग्य धन दिये, वे सदा टिकनेवाले थे। हे (पुरुशाक) बहु शक्तिमन् वीर! (वृष्णे ते) बलशाली ऐसे तुझे लानेके लिये रथको (वृषणा हरी युनज्मि) बलशाली घोडोंको जोतता हूं। (ब्रह्माणि वाजं व्यन्तु) स्तोत्र बलशाली ऐसे तेरे पास पहुंचें।

७ मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम १७७
८ प्रियास इत् ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् १७८

१ दाशुषे सना भोजनानि--दाताके लिये उपभोग लेने योग्य शाश्वत टिकनेवाले भोग दो ।

२ पुरु-शाकः—बहुत शक्तिवाला बन, बहुत सामर्थ्य अपनेमें बढाओ । ' **वृषा** '--बलवान्, बैल जैसा शक्तिमान् ।

३ वाजं ब्रह्माणि व्यन्तु—बलवान् वीरके पास प्रशंसाके वर्णन पहुंचे । बलवानकी ही प्रशंसा होती रहे ।

४ वृषणा हरी रथे युनज्मि—बलवान घोडेमें रथको जोतता हूं । रथमें बलवान घोडे जोतने चाहिये ।

[७] (१७७) हे (सहसावन् हरिवः) बलशाली और घोडोंवाले इन्द्र ! (तव अस्यां परिष्टौ) तेरी इस प्रशंसामें (परादै अघाय मा भूम) दूसरोंसे सहाय्य लेनेका पाप हमसे न हो । (नः अवृकेभिः वरूथैः त्रायस्व) बाधा न करनेवाले संरक्षक साधनोंसे हमें बचाओ । (सूरिषु तव प्रियासः स्याम) ज्ञानियोंमें हम तेरे अधिक प्रिय बनें ।

मानवधर्म - मनुष्य शक्तिशाली बनें । दूसरेकी सहायतासे ही सब करनेका पाप न करें, अपनी शक्तिसे अपने कार्य करें, स्वावलंबन शील बनें । क्रूरतारहित संरक्षक साधनोंसे प्रजाजनोंका बचाव होता रहे और ज्ञानियोंमें भी अधिक विद्वान बनकर प्रभुके प्यारे भक्त बनें ।

१ सहसावन्—परिश्रम सहन करनेकी शक्ति, शत्रुका पराभव करनेकी शक्ति ऐसे अनेक शक्तियोंसे युक्त, ' **हरिवः** ' –घोडे पास रखनेवाला वीर ।

२ परादै अघाय मा भूम—दूसरोंसे सहायता लेकर ही अपने कार्य करनेकी स्थिति (पर-आदा) यह अत्यंत निकृष्ट स्थिति है । अतः यह पापकी अवस्था है । ऐसी स्थितिमें हमें रहना न पडे । अर्थात् हम अपनी शक्तिसे ही हमारे सब कार्य करें, इतनी हमारी शक्ति बढी हो ।

३ अवृकेभिः वरूथैः त्रायस्व—वृक क्रूरताका रूप है । अवृकसे क्रूरतारहित वीरताका बोध होता है । वरूथ संरक्षणके साधनोंका नाम है । क्रूरतारहित रक्षासाधनोंसे हमारा तारण हो ।

४ सूरिषु तव प्रियासः स्याम--महा ज्ञानियोंमें हम अधिक ज्ञानवान् बनें और इस ज्ञानकी अधिकताके कारण हम प्रभुके प्यारे बनें ।

[८] (१७८) हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (ते अभिष्टौ) तेरी स्तुति करते हुए (नरः सखायः प्रियासः शरणे इत् मदेम) हम सब नेता समान कार्य करनेवाले तुम्हें प्रिय होकर अपने घरमें आनन्दसे रहें । (अतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन्) अतिथि सत्कार करनेवालेके लिये प्रशंसनीय सुखकी अवस्था निर्माण करके (तुर्वशं याद्वं नि नि शिशीहि) तुर्वश और याद्व इन शत्रुओंको अपने वशमें कर ।

मानवधर्म - धनवान बनो, क्योंकि धनसे सब कार्य होते हैं । अपने देशमें सुखसे रहो, अपने ही देशमें दुःख भोगनेका अवसर न आवे । अतिथिसत्कार करो । शत्रुओंको वशमें रखो, उनको बढने न दो ।

१ मघवान्—धनवान् बनना चाहिये, क्योंकि धनसे ही सब कार्य होते हैं । ' मघवान् ' (इन्द्र) ही ' शतक्रतु ' सैंकडों कार्य करनेवाला होता है ।

२ सखायः प्रियासः नरः शरणे मदेम—हम सब एक कार्य करनेवाले, परस्पर प्रीति करनेवाले नेता, अग्रगामी होकर कार्यको संपन्न करनेवाले होकर अपने स्थानमें आनंदसे रहें । दुःखमें न रहें । हमें अपने देशमें दुःख भोगना न पडे ।

३ अतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन्—अतिथि सत्कार करनेवालेका हित करो ।

९ सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान् वृणीष्व युज्याय तस्मै १७९

१० एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् १८०

११ नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान् मिमीह्युपस्तीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १८१

---

४ **तुर्वशं याद्वं निशिशीहि**--त्वरासे नशमें होनेवाले और क्रूरकर्मा शत्रुओंको दूर करो। याद्व (यादोवान्)-जलोंमें जिसका स्थान है, द्वीपमें रहनेवाला शत्रु ।

[९] (१७९) हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र! (ते नु अभिष्टौ उक्थशासः ये नरः सद्यः चित् उक्था शंसति) तेरी स्तुति करनेके कार्यमें स्तोत्र बोलनेवाले जो नेता तत्काल ही स्तोत्रोंको बोलते हैं। (ते हवेभिः पणीन् वि अदाशन्) उन्होंने अपने दानोंसे पण्य करनेवालोंको भी दान करनेवाले बना दिया है। (तस्मै युज्याय अस्मान् वृणीष्व) उस मित्रताके लिये हमारा स्वीकार कर।

'**पणी**' वे होते हैं कि जो पण्य करते हैं, वस्तुकी क्रय और विक्रय करते हैं। व्यापार व्यवहार करनेवाले ये हैं। ये अपना धन बढाना चाहते हैं। ऐसे लोगोंको भी (पणीन् वि अदाशन्) पण्यव्यवहारियोंको भी दाता बना दिया। यह परिणाम (हवेभिः) स्तुतिके काव्य पढनेसे हुआ। इसलिये इन्द्रकी स्तुति करनी चाहिये ।

[१०] (१८०) हे (नृतम इन्द्र) नेताओंमें अत्यंत श्रेष्ठ इन्द्र! (तुभ्यं एते स्तोमाः मघानि ददतः) तुम्हें ये संघ धन देते हुए (असद्र्यंचः) हमारी ओर आरहे हैं। (तेषां वृत्रहत्ये शिवः भूः) उनके लिये शत्रुका नाश करनेके युद्धमें तुम कल्याण करनेवाला हो, तथा उन (नृणां सखा च शूरः अविता च) मानवोंका मित्र और शूर संरक्षक हो।

मानवधर्म- मनुष्योंमें श्रेष्ठ बन। धनका दान कर। युद्धके समय मनुष्योंकी सहायता करके उनका कल्याण कर। मनुष्योंका संरक्षण कर और इसके लिये शूर बन और मनुष्योंके साथ मित्रवत् व्यवहार कर।

१ '**नृतमः**'--नेताओंमें श्रेष्ठ नेता बन।

२ **मघानि ददतः अस्मद्र्यंचः**--धन देते हुए ये नेता हमारी ओर आरहे हैं। हमें भी ये धन देंगे और उस धनका हम यज्ञ करेंगे।

३ **वृत्रहत्ये तेषां शिवः भूः**-- युद्धमें उन दाताओंका कल्याण हो ऐसा करो। युद्धमें उनका नाश न हो।

४ **नृणां सखा शूरः अविता च भूः**—मानवोंका मित्र और शूर संरक्षक हो।

[११] (१८१) हे शूर इन्द्र! (स्तवमानः (ब्रह्मजूतः) स्तुतिसे और ज्ञानसे प्रेरित होकर (तन्वा ऊती वावृधस्व) अपने शरीरसे और संरक्षणकी शक्तिसे बढता जा। (नः वाजान् उप मिमीहि) हमें अन्न और बल दो, (स्तीन् उप) हमें घर दो। (यूयं नः सदा स्वस्तिभि पात) आप हमें सदा कल्याणोंसे सुरक्षित करो।

मानवधर्म- मनुष्य शूर हों। देवता स्तुतिसे और ज्ञान विज्ञानसे उनको प्रशस्ततम कर्म करनेकी प्रेरणा मिलती रहे। शरीर स्वस्थ नीरोग और बलवान बने और उनमें संरक्षण करनेका सामर्थ्य बढे। अन्न ऐसे प्राप्त हों कि जिससे बल बढे। रहनेके लिये उत्तम घर हों। मानवोंका कल्याण होकर उनका संरक्षण भी हो।

१ **शूरः**—नेता शूर हो, भीरु न हो

२ **स्तवमान; ब्रह्मजूतः**—स्तुति और ज्ञानसे उसको प्रेरणा मिले। प्रशस्त कार्य करनेकी प्रेरणा उसको (स्तव) ईशस्तुतिसे मिले तथा ज्ञानसे मिले। ईशस्तुतिसे ईश्वर जैसा बनूंगा इस भावसे सत्कर्मकी प्रेरणा मिलती है और ज्ञानविज्ञानसे भी प्रशस्त कर्म करनेकी प्रेरणा मिलती है। वैसी प्रेरणा मिले।

(१०) १० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

१ उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावाञ्चक्रिरपो नर्यो यत् करिष्यन्।
जग्मिर्युवा नृषदनमवोभिस्त्राता न इन्द्र एनसो महश्चित् १८२

२ हन्ता वृत्रमिन्द्रः शूशुवानः प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत् १८३

---

३ तन्वा ऊती वावृधस्व—अपना शरीर और अपने अन्दरकी संरक्षण करनेकी शक्ति बढायी जाय। देवता स्तुति और ज्ञानसे अपने शरीरके संवर्धनके उपाय तथा संरक्षणकी शक्ति बढानेके उपाय विदित हो सकते हैं।

४ वाजान् नः उपामिमीहि—अन्न और बल हमें प्राप्त हों। उत्तम बल बढानेवाले अन्न हमें मिलें और अन्न मिलनेपर उससे हमारे बल बढें। अन्नका उपयोग ऐसा किया जावे कि जिससे शरीरका बल बढे पर कभी न घटे।

५ स्तीन् उपामिमीहि— रहनेके लिये घर हों। विना घरके जीवित रहना पडे ऐसा कभी न हो।

६ स्वस्तिभिः नः पात—कल्याण करनेवाले साधनोंसे हमारी सुरक्षा हो। ऐसा न हो कि हम सुरक्षित तो हों पर हमारी हानि ही हानि होती जाय। तात्पर्य हमारा कल्याण भी हो और उत्तम संरक्षण भी हो।

[१] (१८२) (स्वधावान् उग्रः इन्द्रः वीर्याय जज्ञे) अपनी धारणा शक्तिसे युक्त वीर इन्द्र पराक्रम करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है। (नर्यः यत् करिष्यन् अपः चक्रिः) मानवोंका हित करनेकी इच्छासे जो कर्म करना चाहता है वह कर्म वह करता ही है। (नृषदनं युवा अवोभिः जग्मिः) मनुष्योंके स्थानमें यह तरुण संरक्षणके साधनोंसे जाता है। और (महः चित् एनसः नः त्राता) बडे पापसे हमारा संरक्षण करनेवाला है।

मानवधर्म-मनुष्य अपनी आन्तरिक धारणा शक्ति बढावे, उग्रवीर बने, मानवोंका हित साधन करनेके अर्थ आवश्यक पराक्रम करनेके लिये ही अपना जीवन है ऐसा समझे। मानवोंका हित साधन करनेके लिये जो प्रशस्त कर्म करने आवश्यक हों, उनको उत्तम रीतिसे करे, उनके करनेमें असावधानी न होने दे। मानवी समाजमें यह तरुण वीर अपने संरक्षक साधनोंके साथ जावे और उनका हित करे, उनको पतनके मार्गसे गिरने न दे, उनको बचावे, पापसे बचावे और सब प्रकारसे उनका कल्याण करके उसका संरक्षण करे।

१ स्व-धा-वान् उग्रः वीर्याय जज्ञे—(स्व) अपनी (धा) धारक शक्तिसे (वान्) युक्त, जिसके अन्दर अपनी निज शक्ति है, जो (स्वधा) अच्छा अन्न खाकर अपनी धारक शक्ति बढाता है। ऐसा (उग्रः) उग्र शूरवीर धीर प्रभावी तरुण पराक्रम करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है। यह केवल सुख भोगनेके लिये ही नहीं उत्पन्न हुआ, परंतु यह (नर्यः) जनताका हित करनेके लिये उत्पन्न हुआ है।

२ नर्यः यत् करिष्यन् अपः चक्रिः—(नर्यः नरेभ्यः हितः) मानवोंका हित करनेकी इच्छासे जो कार्य वह करना चाहता है वह (अपः चक्रिः) व्यापक कर्म वह कर ही छोडता है। ' अपः ' आप्नोति व्याप्नोति इति अपः) जिसका परिणाम सब लोगोंतक पहुंचता है वह सार्वजनिक हितका कर्म ' अपः ' कहा जाता है। जैसा जल सर्वत्र फैलता है वैसा इस कर्मका परिणाम सब जनताका हित करता हुआ फैलता है।

३ युवा नृषदनं अवोभिः जग्मिः—यह तरुण वीर मनुष्य रहनेके स्थानके पास अपने सब संरक्षक साधनोंसे जाता है, और उनका उत्तम संरक्षण करता है। यह आदर्श तरुण है।

४ महः एनसः त्राता—बडे पापसे बचानेवाला यही है। जो ऐसे गुणोंसे युक्त तरुण होता है वही सच्चा संरक्षक है।

[२] (१८३) (इन्द्रः शूशुवानः वृत्रं हन्ता) इन्द्रः बढता हुआ वृत्रका वध करता है। (वीरः जरितारं नु ऊती प्र आवीत्) यह वीर स्तोताका संरक्षण अपने सुरक्षाके साधनसे करता है। (सुदासे लोकं कर्ता वै उ) सुदासके लिये लोगोंको,

३ युध्मो अनर्वा खजकृत् समद्वा शूरः सत्राषाड् जनुषेमषाळ्हः ।
व्यास इन्द्रः पृतनाः स्वोजा अधा विश्वं शत्रूयन्तं जघान १८४

४ उभे चिदिन्द्र रोदसी महित्वाऽऽपप्राथ तविषीभिस्तुविष्मः ।
नि वज्रमिन्द्रो हरिवान् मिमिक्षन् त्समन्धसा मदेषु वा उवोच १८५

नागरिकोंको, तैयार करता है। (दाशुषे अह वसु मुहुः दाता आ भूत्) दाताको धन वारंवार दे डालता है।

मनवधर्म - वीर सामर्थ्यसे बढे और शत्रुओंका नाश करें। वीर नागरिकोंका संरक्षण करें विशेष कर वीरकाव्योंके निर्माताओंको सुरक्षित रखें। राजाके लिये उत्तम नागरिक बना दें जिससे उनका राज्यशासन उत्तम रीतिसे चल सके। और जो उदार दाता हैं उनको वीर वारंवार धन देवे जिससे उनका दातृत्व खंडित न हो जावे।

१ शूशुवानः वृत्रं हन्ता—सामर्थ्यसे बढनेवाला वीर घेरनेवाले शत्रुका नाश करता है।

२ वीरः जरितारं ऊती प्रावीत्—वीर वीरोंके काव्यों-का गान करनेवालोंका अपनी रक्षासाधनोंसे संरक्षण करता है। वीरोंके काव्य सर्वत्र गाये जांय और उनके सुननेसे श्रोता लोग वीर बनें।

३ सुदासे लोकं कर्ता—उत्तम दान करनेवाले राजाके लिये उसके जनपदके नागरिकोंको शिक्षा और सुरक्षासे उत्तम नागरिक बनाता है।

४ दाशुषे मुहुः वसु दाता आभूत्—दाताके लिये वारंवार धनका दान करता है।

[३] (१८४) (युध्मः अनर्वा खजकृत्) योद्धा युद्धसे निवृत्त न होनेवाला युद्धमें कुशल (समद्वा शूरः जनुषा सत्राषाट्) युद्धमें जानेके लिये सिद्ध शूरवीर जन्मस्वभावसे ही शत्रुका पराभव करने-वाला (अषाळ्हः स्वोजाः ई इन्द्रः) स्वयं कभी पराभूत न होनेवाला उत्तम बलशाली यह इन्द्र (पृतनाः वि आसे) शत्रुकी सेनाको अस्तव्यस्त करता है। (अथ विश्वं शत्रुयन्तं जघान) और सब शत्रुके समान आचरण करनेवालोंका वध करता है।

मानवधर्म- वीर ऐसा हो कि जो (युध्मः) योद्धा हो, युद्ध करनेवाला हो, (अनर्वा) युद्धसे डरकर अथवा किसी अन्य कारण युद्धसे पीछे हटनेवाला न हो, (खज-कृत्) युद्ध करनेमें कुशल, (समत्-वा) युद्धमें जानेके लिये सदा सिद्ध, (शूरः) शूरवीर, (जनुषा सत्रा-साह) जन्मस्वभावसे शत्रुओंका पराभव करनेमें समर्थ, स्वभाव प्रवृत्तिसे ही युद्धमें साहस करनेवाला (अ-षाळ्हः) कभी पराभूत न होनेवाला, (स्वोजाः-सु ओजाः) उत्तम बलवान। ऐसा वीर ही शत्रुकी सेनाको तितर बितर कर देता है, उध्वस्त करता है। और शत्रुके समान दुष्ट व्यवहार करनेवालोंका नाश करता है।

अपने राष्ट्रमें ऐसे वीर निर्माण होने चाहिये। ऐसे वीर ही शत्रुका निःपात कर सकते हैं।

[४] (१८५) हे (तुवि-ष्मः इंद्र) बहुत धनसे युक्त इंद्र! (महित्वा तविषीभिः) अपने महत्त्वसे और अपने बलोंसे तू (उभे रोदसी आ पप्राथ) दोनों द्यावा=पृथिवीको भरपूर भर देता है। (हरिवान् इंद्रः वज्रं नि मिमिक्षन्) घोडोंवाला इंद्र अपने वज्रको शत्रुओंपर फेंकता है और (मदेषु वै अन्धसा सं उवोच) यज्ञोंमें अन्नको प्राप्त करता है।

१ '**तुवि-ष्म**' बहुत धन प्राप्त करना।

२ महित्वा तविषीभिः आ पप्राथ—अपने महत्त्वसे और शक्तिसे सर्वत्र व्यापता है, सर्वत्र प्रसिद्धिको प्राप्त होता है।

३ हरिवान् वज्रं नि मिमिक्षन्—उत्तम घोडोंको अपने पास रखनेवाला घुडसवार वीर शत्रुपर वज्रको फेंकता है।

४ अन्धसा मदेषु समुवोच—अन्नरसको आनन्दके समयमें प्राप्त करता है। रसपान करता है।

५ वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव ।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः ॥ १८६
६ नू चित् स भ्रेषते जनो न रेषन् मनो यो अस्य घोरमाविवासात् ।
यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत् स राय ऋतपा ऋतेजाः ॥ १८७

पुत्र कैसा हो

[५] (१८६) (वृषा वृषणं रणाय जजान) बलवान् पिताने बलवान् वीर पुत्रको युद्ध करनेके लिये उत्पन्न किया है, (नर्यं तं उ नारी चित् ससूव) मानवोंके हित करनेवाले उस पुत्रको स्त्रीने जन्म दिया। (अध यः नृभ्यः सेनानीः प्र अस्ति) और जो मानवोंका हित करनेवाला सेना नायक प्रभाव युक्त होता है वह (सः इनः) वह सबका स्वामी होता है वह (सत्वा) शत्रुनाशक (गवेषणः) गौओंको प्राप्त करनेवाला और (धृष्णुः) शत्रुओंका धर्षण करनेवाला है।

मानवधर्म- पिता बलवान बने और बलवान् योद्धा पुत्र उत्पन्न करे, माता भी मानवोंका हितकर्ता, सेनापति होने योग्य वीर, प्रभावी, राजा होने योग्य, शत्रुनाशक, शत्रुको भय दिखानेवाला, शत्रुसे धन वापस लानेवाला पुत्र हो ऐसी इच्छा धारण करे ।

१ **वृषा वृषणं रणाय जजान**—बलवान पिताने अपने बलवान् पुत्रको युद्ध करके शत्रुनाश करनेके लिये उत्पन्न किया है। घर घरमें पिता स्वयं बलवान बने और अपनी संतान बलवान बनानेका यत्न करे ।

२ **नारी नर्यं ससूव**—स्त्री भी मानवोंका हित करनेमें समर्थ बलवान पुत्र निर्माण करे। इस तरह जहां पिता और पत्नी ये दोनों बलवान् शूर और युद्ध कुशल पुत्र निर्माण करना चाहती है वहां वैसे ही पुत्र उत्पन्न होगें ।

३ **यः नृभ्यः सेनानीः प्र अस्ति**--जो पुत्र मानवोंका हित करनेवाला और सेना संचालन करनेमें कुशल तथा प्रभावी नेता है, ऐसा पुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छा माता पिता करें ।

४ **सः इनः सत्-वा गवेषणः धृष्णु**- वह पुत्र स्वामी, शत्रुका नाश कर्ता, गौओंको शत्रुओंसे वापस लानेवाला और शत्रुका धर्षण करनेवाला हो । ऐसा पुत्र उत्पन्न करनेका प्रयत्न मातापिताको करना चाहिये ।

[६] (१८७) (यः अस्य घोरं मनः) जो इस वीरके शूर मनको (यज्ञैः आ विवासत्) यज्ञों-द्वारा प्रसन्न करनेके लिये सेवा करता है (सः जनः नु चित् भ्रेजते) वह मनुष्य स्थानभ्रष्ट नहीं होता, और (न रेषत्) वह क्षीण भी नहीं होता। (यः इंद्रे दुवांसि दधते) जो इन्द्रके स्तोत्र धारण करता है, अपने पास रखता है, उसके लिये (सः ऋतपाः ऋते जाः) वह सत्यपालक और सत्यके लिये उत्पन्न हुआ इंद्र (राये क्षयत्) धन देता है।

मानवधर्म- मनुष्य वीरके वीरता युक्त मनको प्रसन्न करें और वह वीर मनुष्योंको सुरक्षित रखे, सुस्थिर रखे तथा वह वीर सत्य पक्षका संरक्षण करे और उनके धनको सुरक्षित रखे ।

१ **यः अस्य घोरं मनः आ विवासत्, स जनः नुचित् भ्रेजते, न रेषत्**— जो इस वीरके शूर मनको प्रसन्न करता है वह अपने स्थानपर सुरक्षित रहता है और क्षीण भी नहीं होता है । सुरक्षित संपन्न अवस्थामें अपने स्थानमें वह रहता है।

२ **यः इन्द्रे दुवांसि दधते, सः ऋतपाः ऋतेजा राये क्षयत्**—जो इस वीरके काव्य गाता है उसको वह सत्य पालक और सत्यके लिये जन्मा वीर धन देता है ।

'**ऋतपाः**'--वीरको सत्यका पालन करना चाहिये, सत्यका पक्ष लेना चाहिये । '**ऋतेजाः**'--सत्यको सुरक्षित रखनेके लिये ही अपना जन्म है ऐसा इस वीरने समझना चाहिये । '**अस्य घोरं मनः**' वीरका मन घोर, साहसी, प्रभावी होना चाहिये, दुर्बल और निर्बल नहीं होना चाहिये ।

९	एष स्तोमो अचिक्रदद्वृषा त उत स्तामुर्मघवन्नक्रपिष्ट ।	
	रायस्कामो जरितारं त आगन् त्वमङ्ग शक्र वस्व आ शको नः	१९०
१०	स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति ।	
	वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	१९१

(२१)　१० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१	असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।	
	बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा नः स्तोममन्धसो मदेषु	१९२
२	प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति बर्हिः सोममादो विदथे दुध्रवाचः ।	
	न्यु भ्रियन्ते यशसो गृभादा दूरउपब्दो वृषणो नृषाचः	१९३

---

[९] (१९०) हे (मघवन्) धनवान् इंद्र! (ते वृषा एषः स्तोमः अचिक्रदत्) तेरा बल बढानेवाला यह सोम शब्द करता है। (उत स्तामुः अक्रपिष्ट) और स्तुति करनेवाला स्तुति करता है। (ते जरितारं रायः कामः आ अगन्) तेरी स्तुति करनेवाले मेरे पास धनकी कामना आ गयी है। हे (अंग शक्र) प्रिय इन्द्र! (त्व वस्वः नः आशक) तू धन हमें शीघ्र दे।

हे इन्द्र! तेरे लिये यह सोमका रस निकाला जा रहा है और निचोडनेका यह शब्द हो रहा है। इस समय स्तोत्र गान हो रहा है। मैं स्तोत्रका पाठ कर रहा हूं और मुझे धनकी इच्छा हुई है। अतः मुझे पर्याप्त धन दो।

यह सोम यज्ञका वर्णन है। सोमरस निकाला जा रहा है, स्तोत्र पाठ हो रहा है, यज्ञ चल रहा है। यज्ञकर्ता यज्ञके लिये धनकी प्राप्तिकी इच्छा कर रहे हैं।

[१०] (१९१) हे इन्द्र! (सः) वह तू (त्वयतायाः इषे नः धाः) तूने दिये अन्नका भोग करनेकी शक्ति हममें रहे। हमारा धारण कर, हमें सुरक्षित रखो। (ये च मघवानः त्मना जुनन्ति) जो धनी लोग हविष्यान्न तुझे देते हैं उनको भी सुरक्षित रखो। (ते जरित्रे वस्वी सु शक्तिः अस्तु) तेरी स्तुति करनेवालेको निवास करनेकी उत्तम शक्ति रहे। (यूयं सदा स्वस्तिभिः नः पात) आप सब सदा कल्याण करनेवाले साधनोंसे हमें सुरक्षित रखो।

१ नः इषे धाः--हम सबको अन्नके लिये धारण कर, प्राप्त अन्नका भोग करनेके लिये हमें सुरक्षित रख।

२ वस्वी शक्तिः सु अस्तु--सुखसे निवास करनेकी उत्तम शक्ति हमारे अन्दर रहे। हम सुखसे निवास कर सकें ऐसी उत्तम शक्ति हमारे अन्दर रहे।

३ नः स्वस्तिभिः पात--हमारा कल्याण हो और हम सुरक्षित भी हों। सुरक्षाके साथ कल्याण हो।

[१] (१९२) (देवं गोऋजीकं अन्धः असावि) दिव्य गोदुग्धसे मिश्रित सोमरस निचोडा गया है। (ईं इंद्रः अस्मिन् जनुषा नि उवोच) यह इंद्र इस सोमरसमें जन्म स्वभावसे ही संगत होते हैं, प्रीति रखते हैं। हे (हर्यश्व-हरि+अश्व) हरिद्वर्णके घोडोंको जोतनेवाले वीर! हम (त्वा यज्ञैः बोधामसि) तुम्हें यज्ञोंसे जगाते हैं, उत्साहित करते हैं। यहां (अन्धसः मदेषु नः स्तोमं बोध) सोमपानके आनन्दमें हमारे स्तोत्र पाठका श्रवण कर।

सोमयागमें सोम औषधिका रस निकालते हैं। उसमें गौओंका दूध मिला देते हैं। इस दुग्धमिश्रित सोमका अर्पण इन्द्रादि देवोंको करते हैं, इस समय वेद मंत्रोंका गान होता है, और पश्चात् इस रसका पान करते हैं। यह विधि इस मन्त्रमें है।

[२] (१९३) (यज्ञं प्रयन्ति) लोग यज्ञके पास जाते हैं। यज्ञशालामें (बर्हिः विपयन्ति) आसन फैलाये जाते हैं। (विदथे सोममादः दुध्रवाचः) यज्ञमें सोमकूटनेके पत्थर कूटनेका कठोर शब्द

३ त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
त्वद् वावक्रे रथ्यो३ न धेना रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा ॥ १९४

४ भीमो विवेषायुधेभिरेषामपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान् ।
इन्द्रः पुरो जर्हृषाणो वि दूधोत् वि वज्रहस्तो महिना जघान ॥ १९५

करते हैं, सोम कूटा जाता है। (यशसः दूर-उपब्दः नृ-षाचः) यश देनेवाले, दूरसे जिनका शब्द सुनाई देता है, ऐसे मनुष्योंकी सेवा करने-वाले (वृषणः गृभात् नि भ्रियन्ते) बल बढाने-वाले सोम कूटनेके पत्थर घरमेंसे लिये जाते हैं।

इस तरह सोम कूटकर सोमका रस निकाला जाता है।

[३] (१९४) हे शूर इंद्र! (त्वं अहिना परि-ष्ठिता पूर्वीः अपः) तूने वृत्रके द्वारा आक्रान्त हो कर स्तब्ध हुए बहुतसे जल प्रवाह (स्रवितवा कः) प्रवाहित होनेवाले बना दिये। (धेना त्वत् रथ्यः न वावक्रे) नदियाँ तेरे कारण ही रथीवीरोंके समान चलने लगी। (विश्वा कृत्रिमाणि भीषा रेजन्ते) सब कृत्रिम भुवन तेरे भयसे कांपते हैं।

'**अहि**' (अ+हि) कम न होनेवाला शत्रु अ-हि कह-लाता है। जिस शत्रुका बल बढता ही जाता है, उसको अ-हि कहते हैं। यह शत्रु हमला करके जलस्थान, नदियाँ आदिपर अपना अधिकार स्थापित करता है, जिससे प्रजा जलसे वंचित रहती है। इन्द्र इस शत्रुको परास्त करता है, जलस्थानोंपर अपना अधिकार स्थापन करता है और जल प्रवाह सब लोगोंके लिये खुले करता है। इस भयंकर युद्धके कारण सब भुवन कांपने लगते हैं।

अहि, वृत्र आदि नाम मेघके अथवा बर्फके हैं। सर्दीके कारण तालाव नदियां बर्फ बनकर सख्त हो जाती हैं, पहाडोंके ऊपर बर्फ जम जाता है। बर्फ बननेके कारण जल बहता नहीं। जल जहांका वहां रुकजाता है। सर्दीका ऋतु समाप्त होते ही सूर्यका उदय होकर प्रखर ताप बढने लगता है। इस सूर्यके तापसे सर्दी दूर होती है और बर्फ पिघलनेके कारण नदियोंको महापूर आते हैं। यही अहि तथा वृत्रका मारा जाना है और नदियोंका चलने लगना है। इसका आलंकारिक वर्णन इन्द्र वृत्र युद्धके रूपमें वेदके मंत्रोंमें पाठक देख सकते हैं।

[४] (१९५) इन्द्र नर्याणि विश्वा अपांसि विद्वान् इन्द्र लोगोंके हितके लिये करने योग्य सब कर्मोंको जानता है। (आयुधेभिः) भीमः एषां विवेष) शस्त्रोंसे भयंकर हुआ इन्द्र इन शत्रुसेनाओंके अन्दर प्रविष्ट होता है। और (पुरः विदूधोत्) शत्रुओंके नगरोंको यह कंपाता है। (जर्हृषाणः महिना वज्र-हस्तः वि जघान) हर्षित होकर अपनी महिमासे वज्र हाथमें लेकर शत्रुका वध करता है।

मानवधर्म— सब मानवोंका हित करनेके लिये जो कर्म करने चाहिये उनको प्रथम जानना चाहिये। प्रचण्ड भयंकर शस्त्रोंको लेकर शत्रुसेनामें घुसना चाहिये और उनके नगरों और सेना शिबिरोंको मथना चाहिये। शत्रुपर वज्र प्रहार करके शत्रुका नाश करना चाहिये।

१ नर्याणि विश्वा अपांसि विद्वान्— मानवोंका हित करनेके लिये जो कर्म करना आवश्यक है वे कर्म अच्छी तरह इन्द्र जानता है। कौनसे कर्म मानवोंका हित करनेके लिये करने चाहिये, और उनको किस तरह करना चाहिये यह सब यह तरुण वीर जानता है।

२ भीमः आयुधेभिः एषां विवेश—यह प्रचण्ड भयं-कर वीर आयुधोंको लेकर शत्रुसेनामें घुसता है और '**पुरः विधुनोत्**'—उनके नगरोंको मथता है। शत्रुके सब लोग कांपने लगते हैं।

३ जर्हृषाणः वज्रहस्तः महिना जघान— प्रसन्न चित्तसे वज्र हाथमें पकडकर अपनी पूर्ण शक्तिसे शत्रुपर मारता है। और शत्रुको परास्त करता है।

५ न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ॥ १९६

६ अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन् न ते विव्यङ् महिमानं रजांसि ।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविदद्युधा ते ॥ १९७

---

[५] (१९६) हे इन्द्र! (यातवः नः न जुजुवुः) राक्षस हमारा घात पात न करें। हे (शविष्ठ) बलशाली वीर! (वंदना वेद्याभिः न) वंदन करके हमारे अन्दर रहनेवाले हमारे अन्तःशत्रु उनके जाननेके साधनोंसे हमारा नाश न कर सकें। (सः अर्यः विषुणस्य जन्तोः शर्धत्) वह आर्य इन्द्र विषम मनुष्य प्राणियोंपर भी अधिकार चलानेकी इच्छा करता है। (शिश्नदेवाः नः ऋतं अपि मा गुः) शिश्न पूजक, ब्रह्मचर्यका पालन न करनेवाले, हमारे यज्ञके पास न आजांय।

मानवधर्म- डाकू हमारे पास न आवें। गुप्तरीतिसे अपने आपको सज्जन बताकर, हमारे समाजमें रहकर, अन्दर ही अन्दरसे हमारा नाश करनेकी आयोजना करनेवालोंका नाश उनके व्यवहारोंको ठीक तरह जानकर किया जावे। हमारे अन्दरके श्रेष्ठ पुरुष दुष्टोंका ठीक तरह शासन करें और हमारे समाजमें शिश्न परायण लोग न रहें।

१ **यातवः नः न जुजुवुः**--डाकू लुटेरे हमारे पास न आवें और हमें कष्ट न देवें।

२ **वंदना वेद्याभिः नः न जुजुवुः**– प्रणाम करके हमारे अन्दर ही नम्रभावसे रहनेवाले हमारे शत्रु, हमारे अन्दर रहकर हमारा नाश करनेकी योजना करनेवाले हमारे अन्तःशत्रु हमें कष्ट न देवें। यह साध्य होनेके लिये '**वेद्याभिः**' उनको यथावत् जाननेके साधनोंसे उनको जानना चाहिये। उनके मनके गुप्तभाव जाननेको '**वेद्य**' कहते हैं। ऐसा जान कर उनको ऐसा रखना चाहिये कि वे गुप्त रीतिसे कुछ भी उपद्रव न कर सकें। जीवित जाति ऐसा उपाय करके अपना बचाव कर सकती है।

३ **सः अर्यः विषुणस्य जन्तोः शर्धत्**– वह आर्यश्रेष्ठ वीर विषम भाव रखनेवाले दुष्ट मानवोंका भी ठीक तरह प्रशासन कर सकता है।

४ **शिश्नदेवाः नः ऋतं मा गुः**—शिश्नपरायण भोगी लोग हमारे यज्ञमें न आवें।

विजयका मुख्य सूत्र

[६] (१९७) हे इन्द्र! (त्वं क्रत्वा ज्मन् अभिभूः) तू अपने पुरुषार्थसे पृथ्वीके ऊपरके सारे शत्रुभूत प्राणियोंका पराभव करता है (अध ते महिमानं रजांसि न विव्यक्) और तेरी महिमाको सारे लोक नहीं जानते। (स्वेन शवसा हि वृत्रं जघन्थ) अपने बलसे तू वृत्रका वध करता है। (शत्रुः युधा ते अन्तं न विविदत्) शत्रु युद्ध करके तेरा नाश नहीं कर करता।

मानवधर्म- अपने प्रयत्नसे शत्रुका पराभव करना परन्तु अपनी शक्तिका पता अपने शत्रुओंको न होने देना। अपनी शक्तिसे शत्रुका वध करना, परन्तु शत्रु कदापि अपना वध कर न सके ऐसी सुरक्षित स्थितिमें स्वयं रहना।

१ **क्रत्वा ज्मन् अभिभूः**--अपने पुरुषार्थ प्रयत्नसे अपने शत्रुओंका पूर्ण रीतिसे पराभव करना, परंतु—

२ **ते महिमानं रजांसि न विव्यक्**—तेरी शक्तिको रजोगुणी भोगी लोग अर्थात् तेरे शत्रु न जान सकें ऐसा प्रबंध करना योग्य है।

३ **स्वेन शवसा वृत्रं जघन्थ**--अपने निज बलसे घेरनेवाले अपने शत्रुका वध करना, परंतु—

४ **शत्रुः युधा ते अन्तं न विविदत्**--तेरा शत्रु युद्ध करके तेरा नाश न कर सके, तेरे वध करनेका उपाय शत्रुको विदित न हो सके, ऐसा अपनी सुरक्षाका प्रबंध करना।

इस मंत्रमें विजयका मुख्य सूत्र कहा है जो विजय चाहनेवाले वीरोंको कभी भूलना नहीं चाहिये।

७ देवाश्चित् ते असुर्याय पूर्वेऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि ।
इन्द्रो मघानि दयते विषह्येन्द्रं वाजस्य जोहुवन्त सातौ १९८
८ कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहावेशानमिन्द्र सौभगस्य भूरेः ।
अवो बभूथ शतमूते अस्मे अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता १९९
९ सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम नमोवृधासो महिना तरुत्र ।
वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीकेऽभीतिमर्यो वनुषां शवांसि २००

[७] (१९८) हे इन्द्र! (पूर्वे देवाः चित्) पूर्व देवों अर्थात् असुर लोगोंने (असुर्याय क्षत्राय) अपने बल और क्षात्र तेजको (ते सहांसि अनु-ममिरे) तेरे बलोंकी अपेक्षा हीन ही मान लिया था। यह (इन्द्रः विषह्य मघानि दयते) इन्द्र शत्रुका पराभव करके भक्तोंके लिये धनोंका दान करता है। और (वाजस्य सातौ इन्द्रं जोहुवन्त) धनकी प्राप्तिके लिये भक्त इन्द्रकी स्तुति करते हैं।

असुर लोग जो अपनी शक्तिकी घमेंडमें सदा रहते हैं, वे भी अपनी शक्तिको इन्द्रकी शक्तिसे न्यून ही अनुभव करते हैं। यह इन्द्र शत्रुका पराभव करके, उनसे धन प्राप्त करके, उस धनको अपने अनुयायियोंके लिये बांटता है। तथा धनकी आवश्यकता यज्ञके लिये हुई तो वे अनुयायी इन्द्रके पास ही आकर मांगते हैं।

राक्षस पहिले [पूर्व-देवाः) देव थे, अच्छे सत्पुरुष थे। पश्चात् वे स्वार्थसे बिगड गये, इसलिये वे राक्षस कहलाये गये। संरक्षक ही रात्रीके समय स्वार्थवश चोरी करने लगते हैं और दण्डनीय समझे जाते हैं, वैसा ही यह है। प्रजा उत्पन्न हुई, तब प्रजापतिने पूछा कि "तुम क्या कार्य करोगे ? तब कईयोंने कहा कि (यक्ष्यामः) हम यज्ञ करेंगे, उनको प्रजापतिने 'यक्ष' माना। और दूसरोंने कहा कि (रक्षामः) हम प्रजाका संरक्षण करेंगे, उनको प्रजापतिने 'राक्षस' माना। ये 'राक्षस' जनताका संरक्षण करनेवाले थे। ये देव थे। पश्चात् ये ही रक्षक जनताका संरक्षण न करते हुए उनका भक्षण करने लगे, नाना प्रकारसे सताने लगे। इसलिये उन 'रक्षकों' के ही राक्षस माने गये। जो पहिले 'देव' थे वे ही राक्षस हुए। 'पूर्वे देवाः' पदका यह भाव पाठक ध्यानमें धारण करें।

[८] (१९९) हे इन्द्र! (ईशानं त्वां कीरिः अवसे जुहाव हि) तुझ प्रभुकी प्रार्थना स्तोता अपने संरक्षणके लिये करता है। हे (शतं ऊते) सैंकडों साधनोंसे रक्षा करनेवाले इंद्र! (अस्मे भूरेः सौभगस्य अवः बभूथ) हमारे बहुतसे धनोंकी सुरक्षा तू कर। तथा (अभिक्षत्तुः त्वावतः वरूता) तेरे साथ स्पर्धा करनेवाले शत्रुका निवारण कर।

मानवधर्म— अपने राष्ट्रके कारीगरोंका संरक्षण करना चाहिये। अनेक रीतिसे शत्रु आक्रमण करते हैं, उतने सैंकडों आक्रमणोंके क्षेत्रोंमें बचाव करना चाहिये। प्रजाओं-के अनेक प्रकारके धनोंका संरक्षण होना चाहिये। स्पर्धा करनेवाले दुष्ट शत्रुओंका निवारण करना चाहिये।

१ **कीरिः अवसे ईशानं जुहाव**— कारीगर अपनी सुरक्षाके लिये राजाको बुलावें। राजा अथवा राजपुरुष अपने राष्ट्रके कारीगरोंका संरक्षण करें।

२ **शतं ऊतिः**— राजा अनेक साधनोंसे अपनी प्रजाका संरक्षण करें।

३ **भूरेः सौभगस्य अवः**— नागरिकोंके सभी धनों और सौभाग्योंका संरक्षण होना चाहिये। यह राजाका कर्तव्य है।

४ **त्वावतः अभिक्षत्तुः वरूता**— तेरे साथ चारों ओरसे हिंसा करनेमें स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका निवारण कर।

[९] (२००) हे इंद्र! (ते नमोवृधासः विश्वह सखायः स्याम) तेरे यशकी वृद्धि करनेवाले हम सब सदा तेरे मित्र होकर रहेंगे। हे (महिना तरुत्र) अपनी शक्तिसे तारण करनेवाले इंद्र! (ते अवसा) तेरे संरक्षणसे (समीके अर्यः अभीतिं) संग्राममें आर्य वीर अनार्य आक्रमकोंका तथा (वनुषां शवांसि वन्वन्तु) हिंसकोंके बलोंका नाश करें।

१० स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति ।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २०१

(११) ९ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । विराट्, ९ त्रिष्टुप् ।

१ पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा २०२

२ यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु २०३

३ बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व २०४

मानवधर्म- यज्ञ करनेवाले सदा मित्रभावसे आपसमें मिलजुल संघटित होकर रहें । अपनी शक्ति बढाकर लोगोंका तारण करें। युद्धमें आर्यदलके वीर अनार्य दलके आक्रमणकारियोंको तथा सभी हिंसक दुष्टोंको विनष्ट करें।

१ **नमो वृधासः विश्वहा सखायः स्याम**- अन्नकी वृद्धि करनेकी इच्छा करनेवाले सभी आपसमें सदा मित्रभावसे मिल जुलकर रहें ।

२ **महिना तरुत्रः**—अपनी शक्ति बढाकर जनताका संरक्षण करें ।

३ **अवसा समीके अर्यः अभीतिं वनुषां शवांसि वन्वन्तु**—अपने बलसे युद्धमें आर्यदलके वीर आक्रमणकारियोंका तथा हिंसकोंके सब प्रकारके बलोंका नाश करें ।

'**नमो-वृधासः**'-अन्नसे बढनेवाले, अन्नकी वृद्धि करनेवाले, शस्त्रसे बढनेवाले । '**नमः**'—अन्न, शस्त्र। 'तरुत्रः' (तरु-त्रः)- स्वयं तैरकर दूसरोंका संरक्षण करनेवाले । '**समीके**' (सं+ईके) सब ओरसे समूहके द्वारा जिसमें आक्रमण होता है, चारों ओरसे मारपीट होनेवाला युद्ध । '**अभीति**' (अभि+इति) चारोंओरसे जिसमें आक्रमण होता है ।

[१०] (२०१) यह मंत्र १९१ स्थानपर अर्थके लिये देखो ।।

[१] (२०२) हे इंद्र ! (सोमं पिब) सोमका यह रस पीओ । (त्वां मन्दतु) यह सोमरस तुझे आनंद देवे । हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंको जोतनेवाले वीर ! (ते सोतुः बाहुभ्यां, अर्वा न सुयतः, अद्रिः यं सुषाव) तेरे लिये यह सोमरस निचोडनेवालेके बाहुओंसे, रश्मियोंसे संयमित किये घोडेके समान, ये पत्थर इस रसको निकालते हैं ।

पत्थरोंसे कूटकर सोमरस निकालते हैं । दोनों हाथोंसे ये पत्थर पकडे जाते हैं, जिस तरह सारथी घोडोंको संभालता है, उस तरह ये पत्थर दोनों हाथोंसे संभाले जाते हैं । इस मंत्रमें (सुयतः अर्वा न) वशीभूत घोडेकी उपमा पत्थरको दी है । हाथसे ठीक तरह संभाल कर न पकडे गये तो वे पत्थर स्थानपर रहेंगे नहीं और कूटनेका कार्य ठीक तरह होगा भी नहीं ।

[२] (२०३) हे (हर्यश्व) हे घोडोंवाले इंद्र ! (ते यः युज्यः चारुः मदः) जो यह तेरे योग्य उत्तम आनंद देनेवाला सोम है । (येन वृत्राणि हंसि) जिसके पीनेसे तू वृत्रोंका वध करता है । हे (प्रभुवसो) बहुत धनवाले इंद्र ! (सः त्वां ममत्तु) वह तुम्हें आनन्द देवे ।

सोम पीनेसे उत्साह और शक्ति बढती है, जिसके पश्चात् वृत्रोंका वध इन्द्र करता है । यह सोम शक्तिवर्धक है ।

[३] (२०४) हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (ते प्रशस्तिं) तेरे प्रशंसारूप (यां इमां वाचं वसिष्ठः अर्चति) जिस स्तोत्रका पाठ वसिष्ठ कर रहा है (तां मे वाचं सु आबोध) उस मेरी वाणीको तू अच्छी तरह जान लो । और (इमा ब्रह्माणि सधमादे जुषस्व) इन स्तोत्रोंको यज्ञमें स्वीकृत करो ।

वैदिक सूक्तोंसे उपासना होती है ।

४ श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा २०५

५ न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान्
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि २०६

६ भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक् कः २०७

७ तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि २०८

८ नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः २०९

९ ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः ।
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २१०

---

[४] (२०५) हे इंद्र! (विपिपानस्य अद्रेः हवं श्रुधि) सोमरसका पान करनेवाले पत्थरकी इस प्रार्थनाका श्रवण कर। (अर्चतः विप्रस्य मनीषां बोध) पूजा करनेवाले इस ब्राह्मणकी मनकी इच्छाको जान लो। (इमा दुवांसि अन्तमा सचा कृष्व) इन सेवाओंको अन्तःकरणमें पहुंचनेवाली साथ साथ करो। ये प्रार्थनाएं तुम्हारे अन्तःकरणमें पहुंचे।

[५] (२०६) हे इंद्र! (ते असुर्यस्य विद्वान्) तेरे सामर्थ्यको जाननेवाला मैं (तुरस्यः गिरः अपि न मृष्ये) शत्रुका विनाश करनेवाले ऐसे तेरी प्रशंसाके भाषणोंको नहीं छोडूंगा और (न सुष्टुतिं) नहीं तुम्हारी स्तुति करना छोडूंगा। (स्वयशसः ते नाम सदा विवक्मि) उत्तम यशस्वी ऐसे तेरा नाम मैं सदा लेता ही रहूंगा।

इन्द्र शत्रुका नाश करता है इसलिये मैं उसका काव्य गाऊंगा और उसका यशस्वी नाम भी लेता रहूंगा।

[६] (२०७) हे (मघवन्) धनवान् इंद्र! (ते सवना मानुषेषु भूरि हि) तेरे लिये सोमरस निकालनेके सवन मनुष्योंमें बहुत हैं। (मनीषी त्वां इत् भूरि हवते) ज्ञानी स्तोता तेरा ही आह्वान करता है। (असत् आरे ज्योक् मा कः) हमसे दूर अपने आपको तू न कर।

इन्द्रके लिये मनुष्य सोमरस निकालते हैं, उसके स्तोत्र गाते हैं और उसको अपने पास चाहते हैं।

[७] (२०८) हे शूर! (तुभ्य इत् इमा विश्वा सवना) तुम्हारे लिये ही ये सब सोमके सवन हैं। (तुभ्यं वर्धना ब्रह्माणि कृणोमि) तुम्हारे लिये ही ये यश बढानेवाले स्तोत्र हैं। (त्वं नृभिः विश्वधा हव्यः असि) तू ही मनुष्यों द्वारा प्रार्थना करने योग्य है।

[८] (२०९) हे (दस्म) दर्शनीय वीर! (मन्यमानस्य ते महिमानं नू चित् उत् अश्नुवन्ति) सन्माननीय ऐसी तेरी महिमाका कोई पार नहीं लगा सकते। तेरी महिमा अपार है। हे (उग्र) शूर वीर! (ते राधः वीर्यं न उत् अश्नुवन्ति) तेरे धन और वीर्यका भी पार किसीको लगता नहीं है।

इन्द्रकी महिमा, धन और पराक्रम शक्ति अपार है।

[९] (२१०) हे इंद्र! (ये च पूर्वे ऋषयः) जो प्राचीन ऋषि थे (ये च नूत्नाः) और जो नवीन ऋषि हैं, जो (विप्राः ब्रह्माणि जनयन्त) ज्ञानी विद्वान् स्तोत्रोंको करते हैं (अस्मे ते सख्यानि शिवानि सन्तु) उनमें और हम सबमें तेरी मित्रताएँ कल्याण करनेवाली हों। (यूयं सदा नः) तुम सब हम सबको सदा (स्वस्तिभिः पात) कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित कीजिये।

(३३) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ २११

२ अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥ २१२

३ युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥ २१३

४ आपश्चित् पिप्युः स्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ २१४

---

[१] (२११) (श्रवस्या ब्रह्माणि उत् ऐरयत उ) यशकी इच्छासे स्तोत्रोंको इन्द्रकी प्रसन्नताके लिये प्रेरित करो। हे वसिष्ठ ! (समर्ये इंद्रं महय) यज्ञमें इंद्रके महत्त्वका वर्णन कर। (यः विश्वानि शवसा ततान) जो सब भुवनोंको अपने बलसे फैलाता है, (ईवतः मे वचांसि उपश्रोता) उपासना करनेवाले ऐसे मेरे स्तुतियोंको वही सुननेवाला है।

ईश्वर इन सब भुवनोंको यथायोग्य रीतिसे निर्माण करके यथास्थान रखता है, वही सबकी पुकार सुनता है उसीका यश गाओ और उसीको प्रसन्न करो।

[२] (२१२) (यत् शु-रुधः इरज्यन्त) जब शोकको रोकनेवाली कृतियां बढती हैं, तब हे इंद्र ! (विवाचि देवजामिः घोषः अयामि) हमारी स्तुतिका घोष देवताके पास मैं पहुंचाता हूँ। (जनेषु स्वं आयुः नहि चिकीते) लोगोंमें अपनी आयुको कोई नहीं जानता, जिससे आयु क्षीण होती है (तानि अंहांसि इत् अस्मान् अति पर्षि) उन सब पापोंसे हमें पार ले जाओ।

(शु-रुधः) शोक या दुःखको रोकनेके कार्य करने चाहियें। ईश्वरकी स्तुति शोकको दूर रख सकती है, इसलिये ईश्वर स्तुति करनी चाहिये। इससे शोकको दूर करनेका मार्ग मिल सकता है। अपनी आयु कहांतक होगी यह कोई मनुष्य नहीं जान सकता, परंतु मनुष्य पापसे तो अपने आपको बचा सकता है। उतना मनुष्य अवश्य करे।

[३] (२१३) (गवेषणं रथं हरिभ्यां युजे) गौवें प्राप्त करानेवाले इंद्रके रथको मैं दो घोडे जोतता हूं। (ब्रह्माणि जुजुषाणं उप अस्थुः) स्तोत्र हमारे सेवा करने योग्य इंद्रकी उपासना करते हैं। (स्यः इंद्रः महित्वा रोदसी वि बाधिष्ट) यह इंद्र अपनी महत्त्वसे द्यावापृथिवीको व्यापता है। (इन्द्रः वृत्राणि अप्रति जघन्वान्) इंद्र वृत्रोंको अतुलनीय रीतिसे मारता है।

१ **इन्द्रः महित्वा रोदसी विबाधिष्ट**—ईश्वर अपने महत्त्वसे द्यावा पृथिवीको व्यापता है।

२ **इन्द्रः वृत्राणि अप्रति जघन्वान्**—इन्द्र शत्रुओंको अप्रतिम रीतिसे नष्ट करता है।

[४] (२१४) हे इंद्र ! (आपः चित्, स्तर्यः गावः न पिप्युः)— जल प्रवाह, प्रसूत न हुई गाय की तरह, बढते जांय। (ते जरितारः ऋतं नक्षन्) तेरे स्तोतागण यज्ञको व्यापते रहें, यज्ञ करें। (नियुतः, वायुः न, नः अच्छ याहि) घोडा वायुके समान हमारे पास सीधा आजावे। अर्थात् इंद्र वेगसे आवे। (त्वं हि धीभिः वाजान् विदयसे) तूं बुद्धियोंके साथ अन्नों और बलोंको देता है।

५ ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व २१५

६ एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नः स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २१६

(२४) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः २१७

---

१ **स्तर्यः गावः न आपः चित् पिप्युः**—अप्रसूत गौवें अधिक पुष्ट होती हैं वैसे जलके स्रोत बढें ।

२ **ऋतं नक्षन्**—यज्ञ करते रहें । कोई यज्ञ करना छोड न देवे ।

३ **त्वं धीभिः वाजान् दयसे**— तू बुद्धियोंके साथ अन्नों और बलोंको देता है । बुद्धि देता है, अन्न देता है और बल भी देता है ।

[५] (२१५) **हे इंद्र! (त्वा ते मदाः मादयन्तु) तुझे ये सोमरस आनन्द देवें। (जरित्रे शुष्मिणं तुविराधसं) तेरे उपासकको बलवान् और अनेक सिद्धि जिसको प्राप्त है ऐसा पुत्र हो। (हि देवत्रा एकः मर्तान् दयसे) देवोंमें एक ही तू देव मानवोंपर दया करता है। (अस्मिन् सवने, हे शूर! मादयस्व) इस यज्ञमें, हे शूर! तू आनन्दित हो।**

१ **शुष्मिनं तुविराधसं (पुत्रं)**-- बलवान् और अनेक कला सिद्धियाँ जिसको प्राप्त हैं, अनेक प्रकारका धन जिसको प्राप्त होता है ऐसा पुत्र होना चाहिये । ' संसिद्धि ' का अर्थ ' राधः ' शब्दसे प्रकट होता है । जिसको अनेक सिद्धियां प्राप्त हैं ऐसा पुत्र हो । पुत्रको सुशिक्षासे अनेक सिद्धियां प्राप्त हों ।

२ **देवत्रा एकः मर्तान् दयसे**—देवोंमें एक ही मानवोंपर दया करनेवाला है । मानवोंपर दया करना योग्य है ।

[६] (२१६) **(वासिष्ठासः वज्रबाहुं वृषणं इंद्रं एव इत्) वासिष्ठ लोग वज्रके समान बाहुवाले बलवान् इंद्रको (अर्कैः अभि अर्चन्ति) स्तोत्रोंसे पूजते हैं। (सः स्तुतः वीरवत् गोमत् नः धातु) वह स्तुति करनेपर वीरोंसे और गौओंसे युक्त धन हमें देवे। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) आप कल्याण करनेके साधनोंसे सदा हमें सुरक्षित रखो।**

१ **वज्रबाहुं वृषणं अर्चन्ति**— वज्रके समान शक्तिशाली बाहुओंवाले बलवान् वीरकी सब पूजा करते हैं ।

२ **सः वीरवत् गोमत् नः धातु**—वह वीरोंसे युक्त भी तथा गौओंसे युक्त धन हमें देवे । हमें वीरपुत्र हों और हमारे घरमें गौवें रहें ।

[१] (२१७) **हे इन्द्र! (ते सदने योनिः अकारि) तेरे बैठनेके लिये यह स्थान बनाया है। हे (पुरुहूत) बहुतोंद्वारा सुपूजित इन्द्र! (तं नृभिः आ प्र याहि) उस स्थानके प्रति तू अपने साथी नेताओंके साथ जा। और (नः यथा अविता वृधे च असः) हमारा संरक्षक हो और हमारे संवर्धन करनेके लिये तू सिद्ध रह। (वसूनि च ददः) अनेक प्रकारके धन दे और (सोमैः ममदः च) हमने दिये सोमरससे आनन्दित हो।**

१ **सदने योनिः अकारि**—रहनेके लिये घर बनाओ,

२ **नृभिः आप्रयाहि**—नेताओंके साथ भ्रमण कर, श्रेष्ठोंके साथ घूमता रह ।

३ **अविता वृधे च असः**—संरक्षक और बढानेवाला हो,

४ **वसूनि ददः**— धनका दान कर ।

२	गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।	
	विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिरियमिन्द्रं जोहुवती मनीषा	२१८
३	आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्निदं बर्हिः सोमपेयाय याहि ।	
	वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्चमाङ्गूषमच्छा तवसं मदाय	२१९
४	आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि ।	
	वरीवृजत् स्थविरेभिः सुशिप्राऽस्मे दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्र	२२०
५	एष स्तोमो मह उग्राय वाहे धुरीवात्यो न वाजयन्नधायि ।	
	इन्द्र त्वायमर्क ईट्टे वसूनां दिवीव द्यामधि नः श्रोमतं धाः	२२१

---

[२] (२१८) हे इन्द्र! (द्विबर्हाः ते मनः गृभीतं) दोनों स्थूल और सूक्ष्म— स्थानोंमें रहनेवाले ऐसे तेरे मनको हमने अपनी ओर आकर्षित किया है। यहां (सोमः सुतः) सोमरस तैयार है। (मधूनि परिषिक्ता) शहद उसमें मिलाया है। (विसृष्टधेना इयं जोहुवती मनीषा सुवृक्तिः) मध्यम स्वरसे उच्चारी जानेवाली यह प्रार्थनामय मनन योग्य स्तुति (इन्द्रं भरते) इन्द्रके लिये उच्चारी जाती है।

(विसृष्टधेना मनीषा सुवृक्ती) जिह्वा जिसमें शनैः शनैः प्रयुक्त की जाती है, अर्थात मध्यम स्वरसे जिसका उच्चारण किया जाता है वह मननीय उत्तम वचनोंवाली ईश्वरस्तुति है। यही मानवोंकी तारक है।

सोमरस छाननेके बाद उसमें शहद मिलाया जाता और पश्चात् विधिपूर्वक पिया जाता है। देवताओंको अर्पण करके, यजन करके पश्चात् पीया जाता है।

[३] (२१९) हे (ऋजीषिन्) सोमपान करनेवाले इन्द्र! (नः इदं बर्हिः) यह हमारा आसन है, उसपर बैठकर (सोमपेयाय) सोमपान करनेके लिये (दिवः पृथिव्याः आ याहि) द्युलोकसे अथवा पृथिवीके ऊपरसे, जहां तुम होगे वहांसे, आओ। (तवसं मद्र्यंचं त्वा) बलवान और मेरी ओर आनेवाले ऐसे तुझे (हरयः आंगूषं अच्छ मदाय वहन्तु) घोडे स्तोत्र पाठके स्थानके पास आनन्द लेनेके लिये तुझे सीधा ले आवें।

[४] (२२०) हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंको जोतनेवाले (सुशिप्र) उत्तम शिरस्त्राणवाले इंद्र! (विश्वाभिः ऊतिभिः सजोषाः) संपूर्ण संरक्षणके साधनोंसे युक्त रहनेवाला तू (स्थविरेभिः वरीवृजत्) युद्धनिपुण श्रेष्ठ वीरोंके साथ रहकर शत्रुका नाश करता है। (अस्मे वृषणं शुष्मं दधत्) हमें बलवान सामर्थ्यशाली पुत्रको देता है। ऐसा तू (ब्रह्म जुषाणः नः आ याहि) स्तोत्रको सुननेके लिये हमारे पास आ।

१ **वृषणं शुष्मं वीरं दधत्**— बलवान और सामर्थ्यवान् पुत्र चाहिये। निर्बल और निस्तेज पुत्र न हो, परंतु सामर्थ्यवान् हो।

२ **हर्यश्वः सुशिप्रः**— शीघ्रगामी घोडे हो और वीरके लिये कवच हो।

३ **विश्वाभिः ऊतिभिः सजोषाः स्थविरेभिः वरीवृजत्**— संपूर्ण संरक्षणकी शक्तियोंके साथ अपना वीर रहे, और युद्ध कलामें जो वृद्ध अर्थात् निपुण वीर हैं, उनको अपने साथ रखकर शत्रुओंको दूर करे। यहां 'स्थविर' का प्रसिद्ध अर्थ 'जीर्ण वृद्ध बुड्ढा' नहीं है। विद्यामें वृद्ध अर्थात् अनुभवी वीर ऐसा अर्थ यहां इष्ट है।

[५] (२२१) (महे उग्राय वाहे) महान वीर विश्वके संचालक इन्द्रके लिये, (धुरि इव अत्यः न) रथकी धुरामें घोडे जोतनेके समान, (वाजयन् एष स्तोमः अधायि) बल प्रकट करनेवाला यह स्तोत्र किया है। हे इन्द्र! (त्वा अयं अर्कः

६ एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २२२

(२५) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत् समरन्त सेनाः ।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विष्वद्र्यग्वि चारीत् ॥ २२३

२ नि दुर्ग इन्द्र श्नथिह्यमित्राँ अभि ये नो मर्तासो अमन्ति ।
आरे तं शंसं कृणुहि निनित्सोरा नो भर संभरणं वसूनाम् ॥ २२४

वसूनां इट्टे) तेरे पास यह स्तोता धनोंको मांगता है। वह तूं (नः दिवि इव श्रोमतं अधि धाः) हमारे लिये द्युलोकमें भी यशस्वी धन या पुत्र दे।

१ मह उग्राय नाहे वाजयन् एषं स्तोमः अधायि—बडे उग्र वीरका प्रभाव वर्णन करनेवाला यह काव्य है। काव्यमें वीरका वर्णन किया जाता है।

२ धुरि अत्यः अधायि—रथ खींचनेके लिये दौडनेवाला घोडा जानते है। वैसा यह काव्य वीरका यश फैलानेवाला है।

३ अयं वसूनां इट्टे—यह धन मांगता है, चाहता है।

४ नः श्रोमतं अधिधाः—हमें धन कमानेवाला पुत्र हो। यशस्वी पुत्र हो।

[६] (२२२) हे इन्द्र ! (नः एव वार्यस्य पूर्धि) हमें संरक्षणीय धनसे परिपूर्ण कर। भरपूर धन दे डाल। (ते महीं सुमतिं प्र वेविदाम) तेरी महनीय सुमति हम सब प्राप्त करेंगे। (मघवद्भ्यः सुवीरां इषं पिन्व) हम धनवानोंके लिये वीर युक्त धन दे डाल। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) आप कल्याणोंके साथ सदा हमें सुरक्षित रखिये।

१ नः वार्यस्य पूर्धि—हमें संरक्षण करने योग्य धन भरपूर दे।

२ ते महीं सुमतिं प्रवेविदाम—तेरा बडा आशीर्वाद हमें मिले।

३ सुवीरां इषं पिन्व—उत्तम वीर जिसके साथ रहते हैं वह धन हमें मिले। वीर पुत्रोंके साथ रहनेवाला धन हमें प्राप्त हो।

[१] (२२३) हे उग्र इन्द्र ! (यत् समन्यवः सेनाः समरन्त) जब उत्साहयुक्त सेना युद्ध करती है तब (महः नर्यस्य ते बाह्वोः दिद्युत्) मानवोंका हित करनेवाले ऐसे तेरे बडे बाहुओंसे शस्त्र (ऊती पताति) हमारी सुरक्षा करनेके लिये शत्रु पर गिरे। तेरा (विष्वद्र्यक् मनः) सर्वत्रगामी मन (मा विचारीत्) इधर उधर न जाय, वह हमारे हितके कार्यमें ही लग जाय।

१ समन्यवः सेनाः समरन्त—उत्साही सेना युद्ध करती है। जिसमें उत्साह नहीं वह क्या करेगी ?

२ नर्यस्य महः बाह्वोः दिद्युत् ऊती पताति—मानवोंका हित करनेका यत्न करनेवाले महान वीरका तेजस्वी शस्त्र मानवोंका हित करनेके लिये ही शत्रुपर गिरे। अर्थात जो मानवोंके हितमें बिगाड करता है वही शत्रु है और उसीका नाश शस्त्रसे करना चाहिये।

३ विष्वद्र्यक् मनः मा विचारीत्—इधर उधर भटकने वाला वीरका मन मानवोंके हित करनेके कार्यको छोडकर इधर उधर न विचरे, इसी कर्तव्यमें दत्तचित और स्थिर रहे।

४ उग्रः—वीर पुरुष उग्र हो। मन्द न हो, शिथिल न हो, निर्बल निस्तेज न हो।

[२] (२२४) हे इन्द्र ! (दुर्गे ये मर्तासः अभि) युद्धमें जो शत्रुके मानव वीर हमारे सन्मुख खडे रहकर (नः अमन्ति) हमारा पराभव करना चाहते हैं, उन (अमित्रान् निश्नथिहि) शत्रुओंका नाश कर। तथा (निनित्सोः तं शंसं आरे कृणुहि) निंदा करनेवाले शत्रुके उस प्रलापको दूर कर और

३ शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु ।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्याऽस्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि ॥ २२५

४ त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्रँ ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः ॥ २२६

५ कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः
सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा वयं तरुत्राः सनुयाम वाजम् ॥ २२७

(नः वसूनां संभरणं आ भर) हमारे पास धनोंको भरपूर ले आओ ।

मानवधर्म - युद्धमें रहकर जो वीर हमारा नाश करना चाहते हैं वे शत्रु हैं, उनका नाश करना चाहिये । शत्रुओंके निंदाभरे शब्द सुनने नहीं चाहिये । अनेक प्रकारका भरपूर धन प्राप्त करना चाहिये ।

१ दुर्गे मर्तीनः नः अमान्ति, अमित्रान् नि श्नथिहि—युद्धमें अथवा कीलेमें रहकर जो शत्रुके वीर हमारा नाश करनेके इच्छुक हैं वे शत्रु हैं, उनका नाश करो । ये ही नाश करने योग्य हैं ।

२ निनित्सो शंसं आरे कृणुहि---निंदकोंके शब्द दूर करो अर्थात् उनको तुम न सुनो ।

३ वसूनां संभरणं नः आभर—धनोंका समूह हमारे पास ले आओ । बहुत प्रकारके धन हमें प्राप्त हों ।

[३] (२२५) हे (शिप्रिन्) शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्र ! (ते शतं ऊतयः सुदासे) तेरी सैकडों प्रकारकी संरक्षणकी साधनें हमारे जैसे तेरे उत्तम भक्तके संरक्षणके लिये रहें । तथा (सहस्रं शंसाः सन्तु) हजारों प्रशंसाएं हों । तथा (उत रातिः) वैसा दान भी हो । (वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि) हिंसक शत्रुके मनुष्यके वधकारी शस्त्रको विनष्ट कर । और (अस्मे द्युम्नं रत्नं च अधि धेहि) हमें तेजस्वी रत्न दो ।

मानवधर्म - जो मानवोंकी सेवा करते हैं उनको उत्तम संरक्षण मिलना चाहिये । उनको ही दान मिले । उनकी प्रशंसा हो । घातपात करनेवालोंको दूर करना चाहिये ।

१ सुदासे शतं ऊतयः---उत्तम दाता भक्तके संरक्षणके लिये सैकडों संरक्षणके साधन रहें । ऐसे सज्जनोंका संरक्षण हो । ' सु-दास ' वह है कि जो जनताकी सेवा करता है । यही सज्जनका लक्षण है ।

२ सुदासे सहस्रं शंसाः सन्तु---उत्तम दाता भक्तके संरक्षणके लिये हजारों प्रशंसा योग्य संरक्षक साधन सदा तैयार रहें ।

३ रातिः अस्तु—उक्त प्रकारके सज्जनको ही दान मिले, सुखसाधन प्राप्त हों ।

४ वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि—घातपात करनेवाले शत्रुके मनुष्यने हमारा वध करनेके लिये जो शस्त्रके प्रयोग किये हों, उनका नाश कर ।

५ अस्मे द्युम्नं रत्नं अधि धेहि---हमें तेजस्वी रत्न प्राप्त हों । तेजस्वी रत्नका तात्पर्य यह है कि रत्नोंपर उत्तम संस्कार करके उत्तम चमकनेवाले रत्न बनाये जाते हैं ऐसे संस्कार किये रत्न हमारे पास हों । ' द्युम्नं रत्नं ' इन शब्दोंसे रत्नोंपर चमक लानेकी विद्या थी ऐसा सिद्ध होता है ।

[४] (२२६) हे इन्द्र ! (त्वावतः क्रत्वे अस्मि हि) तेरे अनुकूल कर्ममें ही मैं दत्तचित्त रहता हूं । हे शूर ! (अवितुः त्वावतः रातौ) तेरे अनुकूल रहकर संरक्षण करनेवालेके दान मुझे मिलें । हे (तविषीवः उग्र) बलवान् उग्र वीर ! (विश्वा अहानि ओकः कृणुष्व) सब दिनोंमें हमारा घर अपना ही घर करो, हमारे पास रहो । हे (हरिवः) उत्तम घोडोंवाले वीर (न मर्धीः) हमारा नाश न कर ।

[५] (२२७) (एते वयं हर्यश्वाय शूषं कुत्साः) ये हम सब उत्तम घोडे पास रखनेवाले इन्द्रके लिये सूखकर स्तोत्र करते हैं । (इन्द्रे देवजूतं सहः

६ एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम ।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २२८

(२६) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ न सोम इन्द्रमसुतो ममाद नाब्रह्माणो मघवानं सुतासः ।
तस्मा उक्थं जनये यज्जुजोषन्नृवन्नवीयः शृणवद्यथा नः २२९

२ उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवानं सुतासः ।
यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवसे हवन्ते २३०

३ चकार ता कृणवन्नूनमन्या यानि ब्रुवन्ति वेधसः सुतेषु ।
जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वाः २३१

इयानाः) इन्द्रके पाससे देवोंद्वारा सेवित बल प्राप्त करनेकी इच्छा हम करते हैं। (तरुत्रा वाजं सनुयाम) दुःखसे पार होनेवाले हम बलको प्राप्त करेंगे। हे शूर ! (वृत्रा सत्रा सुहना कृधि) शत्रुओंको सदा सहज रीतिसे वधके योग्य करो। शत्रुओंका वध सहज ही हो जावे ऐसा कर।

मानवधर्म – उत्तम वीरके काव्य गान करो। प्रशंसनीय बल प्राप्त करो। दुःखसे दूर होनेका यत्न प्रथम करो और भोग पीछेसे करो। अपना बल बढाओ और शत्रु सहजहीसे विनष्ट हो सके ऐसा यत्न करो।

१ हर्यश्वाय शूषं कृताः—उत्तम घोडोंकी पालना करनेवाले शूरका ही काव्य हम करेंगे। जो वीर नहीं उनका काव्य कदापि नहीं करेंगे।

२ देवजूतं सहः इयानाः—देव भी जिसकी प्रशंसा करेंगे वैसा बल हमें प्राप्त हो। सज्जनों द्वारा प्रशंसा होने योग्य बल हमारे पास हो।

३ तरुत्रा वाजं सनुयाम— दुःखोंसे पार होकर हम बल अन्न तथा सुख प्राप्त करेंगे।

४ सत्रा वृत्रा सुहना कृधि—सदा शत्रु सहज ही से नाश करने योग्य हों, अर्थात् अपना बल इतना बढे कि शत्रुका नाश सहजहीसे हो सके।

[६] (२२८) इस मन्त्रकी व्याख्या ६ (२२२) के मन्त्रके स्थानपर देखो।

[१] (२२९) (मघवानं इन्द्रं असुतः सोमः न ममाद) धनवान इन्द्रके लिये जो सोमरस निचोडा नहीं वह सोम आनंद नहीं देता। (सुतासः अब्रह्माणः न) रस निकालनेपर जो स्तोत्र पाठ रहित होता है वह सोम भी आनंद नहीं देता। (नः यत् उक्थं) हमारा जो सूक्त इन्द्र (जुजोषत्) स्वीकार करेगा (यथा नृवत् शृणवत्) और मनुष्योंमें बैठकर सुनेगा वैसा (नवीयः उक्थं तस्मै जनये) नवीन स्तोत्र उस वीरके लिये मैं बनाता हूं।

सोमरस इन्द्रके लिये निकाला जाय, उसे अर्पण किया जाय, और स्तोत्र पाठसे जो पवित्र हुआ हो वही सोम सच्चा आनंद देता है। हम ऐसा स्तोत्र पाठ करते हैं कि जो इस वीरको प्रिय लगे और सभामें बैठकर वह इसे ध्यानसे सुनना भी चाहें।

[२] (२३०) (उक्थे उक्थे सोमः इंद्रं ममाद) प्रत्येक स्तोत्रमें सोम इंद्रको आनंद देता है। (सुतासः नीथे नीथे मघवानं) सोमरस प्रत्येक प्रार्थनाके मंत्रमें धनवान् इंद्रकी प्रशंसा गाते हैं, (पुत्राः पितरं न) पुत्र जैसे पिताको बुलाते हैं उस तरह (सबाधः समानदक्षाः ईं अवसे हवन्ते) इकट्ठे मिले समानतया दक्ष रहनेवाले लोग अपनी सुरक्षाके लिये इंद्रको बुलाते हैं।

[३] (२३१) (वेधसः सुतेषु यानि ब्रुवन्ति) स्तोत्र पाठ करनेवाले सोमरस निकालनेके समय जिन इंद्रके कर्मोंका वर्णन करते हैं, (ता नूनं चकार) वे कर्म निश्चय ही इंद्रने पूर्व समयमें किये थे, (कृणवत् अन्या) दूसरे कर्म वह अब भी करता है। वही इंद्र (सर्वाः पुरः) शत्रुके सब

४ एवा तमाहुरुत शृण्व इन्द्र एको विभक्ता तरणिर्मघानाम् ।
मिथस्तुर ऊतयो यस्य पूर्वीरस्मे भद्राणि सश्चत प्रियाणि ॥ २३२

५ एवा वसिष्ठ इन्द्रमूतये नॄन् कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति ।
सहस्रिण उप नो माहि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २३३

(२७) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत् पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥ २३४

नगरोंको (समानः एकः) समवृत्तिसे अकेला- दूसरेकी सहायता न लेता हुआ ही (पतिः जनीः इव) पति अपनी पत्नियोंको वश करता है वैसा ही वह इन्द्र (सु नि मामृजे) उनको अपने वशमें करता है ।

[४] (२३२) (यस्य मिथस्तुरः पूर्वीः ऊतयः) जिस इन्द्रके पास परस्पर मिले जुले अनेक अपूर्व रक्षासाधन हैं, (तं एव आहुः) उसीका सब वर्णन करते हैं, (उत शृण्वे) और सुनते हैं कि (एकः इन्द्रः मघानां विभक्ता तरणिः) वही एक इन्द्र धनोंका दाता है और सबका तारक भी है। उसकी कृपासे (अस्मे) हमें (प्रियाणि भद्राणि सश्चत) प्रिय कल्याण हमें प्राप्त हों ।

१ यस्य मिथस्तुरः ऊतयः—उसके रक्षा साधन ऐसे हैं कि जो परस्पर मिले जुले हैं और त्वरासे सुरक्षा करनेवाले भी हैं ।

२ एकः मघानां विभक्ता तरणिः—वह एक ही वीर ऐसा है कि जो धनोंका विभाग करके सबको यथा योग्य रीतिसे देता है और सबकी सुरक्षा भी करता है ।

३ अस्मे प्रियाणि भद्राणि सश्चत—हमें प्रिय कल्याण करनेवाले सुख मिलें ।

[५] (२३३) (वसिष्ठः नॄन् कृष्टीनां ऊतये) वसिष्ठ मानवोंकी सुरक्षा करनेके लिये (वृषभं इन्द्रं एव) बलवान् इन्द्रका ही (सुते गृणाति) यज्ञमें वर्णन करता है। स्तोत्र गाता है। हे इन्द्र ! (नः सहस्रिणः वाजान् उप माहि) हमें सहस्रों प्रकारके अन्न बल तथा धन दे डालो। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेवाले रक्षा साधनोंसे सुरक्षित करो ।

१ वृषभं इन्द्रं कृष्टीनां नॄन् ऊतये गृणाति—बलवान् इन्द्र वीरकी मानवोंकी तथा नेताओंकी सुरक्षा करनेके हेतुसे प्रशंसा गाते हैं ।

२ नः सहस्रिणः वाजान् उप माहि—वह सहस्रों प्रकारके धन बल अन्न हमें देवे । जो हमें धन अन्न और बल बढानेमें सहायक होता है उसकी हम प्रशंसा करें ।

[१] (२३४) (यत् ताः पार्याः धियः युनजते) जब संकटोंसे बचनेके लिये बुद्धि युक्त कर्म किये जाते हैं तब (नरः नेमधिता इन्द्रं हवन्ते) नेता लोग युद्धके समय इन्द्रको ही बुलाते हैं। वह (त्वं शूरः नृषाता) तू शूर और मनुष्योंको धन देनेवाला (शवसः चकानः) तथा बल चाहनेवाला (गोमति व्रजे त्वं नः आ भज) गौओंके स्थानमें तू हमें पहुंचाओ ।

१ नरः पार्याः धियः युनजते—नेता लोग संकटोंसे पार होनेके लिये बुद्धि पूर्वक प्रयत्न करते हैं, करने चाहिये ।

२ नेमधिता नरः इन्द्रं हवन्ते—युद्धमें नेता लोग वीर (इन्द्र) को ही सहायार्थ बुलाते हैं । युद्धके समय वीरोंको इकट्ठा करते हैं ।

३ शूरः नृषाता शवसः चकानः—शूर वीर मनुष्योंको उनकी योग्यतानुसार धनका बंटवारा करता है और उस

२ य इन्द्र शुष्मो मघवन् ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः ।
त्वं हि दृळहा मघवन् विचेता अपा वृधि परिवृतं न राधः ॥ २३५

३ इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥ २३६

समय बलको ही चाहता है, अर्थात् जिसका जैसा बल युद्धमें उपयोगी हुआ, उसको वैसा धन देता है ।

४ नः गोमति व्रजे त्वं आभज—हम सबको गौओं वाले गोस्थानमें, गोशालामें, व्रजमें, रखो, जहां बहुत गौवें हों वहाँ हमें रहनेके लिये स्थान हो ।

[ ] (२३५) हे (पुरुहूत मघवन् इंद्र) बहुतों-द्वारा प्रार्थित धनवान् इंद्र! (ते यः शुष्मः अस्ति) तेरा जो बल है उसको तू (सखिभ्यः नृभ्यः शिक्ष) एक विचारसे कार्य करनेवाले मनुष्योंको देओ। हे (मघवन्) धनवान् इंद्र! (त्वं हि दृळहा) तूं सुदृढ कीलोंको भी तोड देता है इसलिये वह तूं (विचेताः परिवृतं राधः) विशेष ज्ञानी गुप्त धनको भी (न अपवृधि) निःसंदेह हमारे लिये प्रकट कर।

१ यः ते शुष्मः अस्ति, सखिभ्यः नृभ्यः शिक्ष—जो तेरा सामर्थ्य है, उसको तू समान विचारके संघटित नेता-ओंको, संघटित मनुष्योंको सिखाओ । बल बढानेकी, बलका प्रयोग करनेकी विद्याको सुसंघटित मानवोंको सिखाओ ।

२ त्वं दृळहा—तूं शत्रुके सुदृढ कीलोंको तोड देता है ऐसी जो युद्धविद्या तुम्हारे पास है, उस विद्याकी हमारे वीरोंको शिक्षा दो ।

३ त्वं विचेताः परिवृतं राधः न अपवृधि--तूं विशेष ज्ञानी गुप्त धनको भी हमारे लिये प्रकट कर । तुम्हारे पास अपने जो गुप्त धन हैं, अथवा शत्रुके नगरों और कीलोंमें जो गुप्त धन होंगे, उन सबको हमारे लिये प्रकट कर दो ।

'राधः' वह धन है कि जो कर्मसिद्धि द्वारा प्राप्त होता है। कर्मकी कुशलतासे प्राप्त होता है । वह कुशलता हमें प्राप्त हो यह भाव यहां है ।

[३] (२३६) (जगतः चर्षणीनां इन्द्रः राजा) जंगम और मानव इन सबका इन्द्र ही एकमात्र राजा है। (अधि क्षमि यत् विषुरूपं अस्ति) इस पृथिवीपर जो नाना प्रकारके रूपोंवाला जो भी कुछ है, उसका भी वही राजा है। (ततः दाशुषे वसूनि ददाति) इसलिये वह दाताको धन देता है। वह (उपस्तुतः चित्) स्तुति करनेपर (राधः अर्वाक् चोदत्) धनको हमारे समीप प्रेरित करता है।

१ क्षमि अधि यत् विसुरूपं अस्ति तस्य जगतः चर्षणीनां इन्द्रः राजा--पृथ्वीपर जो (विरूपं सुरूपं) कुरूप अथवा सुरूप ऐसा जो भी कुछ है, उस (जगतः) जंगम पदार्थका तथा स्थावर पदार्थ मात्रका भी, इतना ही नहीं परंतु (चर्षणीनां) नाना प्रकारके व्यवसाय करनेवाले मानवों-का भी वही एकमात्र प्रभु है। सब स्थावर जंगमका एक ही प्रभु है ।

२ ततः दाशुषे वसूनि ददाति—वह दाताके लिये अनेक प्रकारके धन देता है । जो उदारचरित पुरुष हैं, जो मानवोंके हितके लिये यत्न करते हैं उनको वह प्रभु अनेक प्रका-रके धन देता है ।

३ उपस्तुतः चित् राधः अर्वाक् चोदत्--उसकी उपासना करनेपर वह अनेक प्रकारके धनोंको उपासकोंके समीप प्रेरित करता है ।

इस मंत्रमें स्थावर जंगम संपूर्ण विश्वका, कुरूपों और सुरू-पोंका, बलवानों और निर्बलोंका एक ही प्रभु है यह बात निः-संदेह रीतिसे कही है । वही सबका उपास्य है और वही सबको अनेक प्रकारके धन, जो सुखकी सिद्धिके लिये आवश्यक हैं, देता है । उसके काव्य गाने चाहिये और उसीके गुणोंको अपने अन्दर धारण करना चाहिये ।

४ नू चिन्न इन्द्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती ।
अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः २३७

५ नू इन्द्र राये वरिवस्कृधी न आ ते मनो ववृत्याम मघाय ।
गोमदश्वावद्रथवद्व्यन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः २३८

(१८) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ ब्रह्मा ण इन्द्रोप याहि विद्वानर्वाञ्चस्ते हरयः सन्तु युक्ताः ।
विश्वे चिद्धि त्वा विहवन्त मर्ता अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व २३९

राष्ट्रकी राज्यशासन संस्था भी राष्ट्रके सब स्थावर जंगम पदार्थों तथा मानवोंका शासन करनेमें समर्थ रहनी चाहिये। वही सब प्रजाजनोंको सब सुखसाधन देती रहे यह भाव यहां लेना योग्य है। परमेश्वरके गुण राजपुरुषोंमें होने चाहिये।

[४] (२३७) (**मघवा दानः इन्द्रः**) **धनवान् दाता इन्द्र** (**नः सहूती नः ऊती वाजं नूचित् नियमते**) **हमारे बुलानेपर हमारी सुरक्षाके लिये शीघ्र ही हमें बल देता रहे।** (**यस्य अनूना अभिवीता दक्षिणा**) **जिसका संपूर्ण प्राप्त दान** (**सखिभ्यः नृभ्यः वामं पीपाय**) **एक विचारसे कार्य करनेवाले नेताओंके लिये धन दुहता है, देता है।**

१ **दानः मघवा नः सहूती नः ऊती वाजं नियमते**--दाता धनपति हमारे कहनेपर हम सबकी सुरक्षा करनेके लिये हमे बल देवे। धनपति सबकी सुरक्षा करनेके लिये अपना धन देवे और धनसे बलवान वीर संगठित होकर सबकी सुरक्षा करें।

२ **यस्य अनूना दक्षिणा सखिभ्यः नृभ्यः वामं पीपाय**— जिसने दी हुई न्यूनतारहित धनकी पूंजी एक विचारसे कार्य करनेवाले नेता वीरोंके लिये आवश्यक धन दुहाती रहे।

'**दक्षिणा**'—दान, '**अ-नूना**'—जिसमें किसी तरह न्यून नहीं है। '**स-खिभ्यः नृभ्यः**'—समान ख्यानवाले सखा कहे जाते हैं। एक विचारसे कार्य करनेवाले '**नृ**' नेता, संचालक, वीर पुरुष। दाताओंका दान ऐसे वीरोंके लिये आवश्यक सहायता समयपर पहुंचानेमें समर्थ हो।

[५] (२३८) **हे इन्द्र!** (**नः राये नु वरिवः कृधि**) **हमारे ऐश्वर्यवृद्धिके लिये तू सत्वर ही धन दे, धन निर्माण कर! हम** (**ते मनः मघाय आ ववृत्याम**) **तेरे मनको धनके दानके लिये प्रवृत्त करते हैं।** (**गोमत् अश्ववत् रथवत् व्यन्तः**) **गौवों, घोडों और रथोंके साथ रहनेवाला धन तुम्हारे पास है, उसका तू दाता है।** (**स्वस्तिभिः यूयं सदा नः पात**) **अपने कल्याणकारक साधनोंसे तुम सदा हमारी सुरक्षा करो।**

१ **नः राये वरिवः कृधि** — हमारी ऐश्वर्यकी वृद्धि होनेके लिये श्रेष्ठ धन हमें चाहिये। श्रेष्ठ साधनोंसे प्राप्त हुआ धन (**वरिवः**) वरिष्ठ, श्रेष्ठ कहलाता है।

२ **ते मनः मघाय आववृत्याम** — तेरे मनको धन प्राप्ति करनेके लिये हम आकर्षित करते हैं। धनको प्राप्त करना और उसको सुरक्षित रखना, तथा उसका सत्कार्यमें अर्पण करना ऐसे कार्योंमें तेरा मन लगे।

३ **गोमत् अश्ववत् रथवत् व्यन्तः** – गौवों, घोडों और रथोंके साथ रहनेवाला धन है। घर, सेवक, इष्ट मित्र आदि भी धनके साथ रहनेवाले हैं। इनके साथ रहनेवाला धन हमें चाहिये।

[१] (२३९) **हे इन्द्र!** (**विद्वान् नः ब्रह्म उपयाहि**) **तुम सब जाननेवाला हमारे स्तोत्र पाठके पास आओ।** (**ते हरयः अर्वाञ्चः युक्ताः सन्तु**) **तेरे घोडे हमारी ओर आनेके लिये ही जोते हुए हों। हे** (**विश्वमिन्व**) **विश्वको संतोष देनेवाले वीर!** (**त्वा विश्वे मर्ताः चित् ह विहवन्त**) **तुम्हें सारे मनुष्य पृथक् पृथक् बुलाते रहते हैं। तथापि** (**अस्माकं इत् शृणुहि**) **हमारी प्रार्थना सुनो।**

२	इवं त इन्द्र महिमा व्यानड् ब्रह्म यत् पासि शवसिन्नृषीणाम् ।	
	आ यद् वज्रं दधिषे हस्त उग्र घोरः सन् क्रत्वा जनिष्ठा अषाळ्हः	२४०
३	तव प्रणीतीन्द्र जोहुवानान् त्सं यन्नॄन् न रोदसी निनेथ ।	
	महे क्षत्राय शवसे हि जज्ञेऽतूतुजिं चित् तूतुजिरशिश्नत्	२४१
४	एभिर्न इन्द्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवन्ते ।	
	प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी नः सात्	२४२

[२] (२४०) हे (शवसिन् इन्द्र) बलवान् इन्द्र! (यत् ऋषीणां ब्रह्म पासि) जब ऋषियोंका स्तोत्र तुम सुरक्षित रखते हो, तब (ते महिमा वि आनट्) तुम्हारी महिमा उसमें व्याप्त होती है। हे (उग्र) शूर वीर! (यत् हस्ते वज्रं आ दधिषे) जब तुम हाथमें वज्रका धारण करते हो, तब (घोरः सन् क्रत्वा अषाळ्हः जनिष्ठाः) तुम भयंकर शूर बनकर अपने युद्धरूप कर्मसे अपराजित होते हो।

मानवधर्म – वीर बलिष्ठ शूर और उग्र बने। जिन काव्योंमें वीरोंकी वीरताका वर्णन किया है वे ही काव्य सुरक्षित रहें। वीर हाथमें शस्त्र लेकर ऐसे पराक्रम करें कि वे शत्रुके लिये असह्य हों।

१ शवसिन् उग्र — वीर बलवान् हो और उग्र हो।

२ ते महिमा व्यानट्, ऋषिणां ब्रह्म पासि — वीरोंकी महिमा जिन काव्योंमें फैली है, गायी है, ऋषियोंके उन काव्योंकी सुरक्षा हो।

३ हस्ते वज्रं आदधिषे, घोरः सन् क्रत्वा अषाळ्ह जनिष्ठाः — जब तुम अपने हाथमें वज्र धारण करके युद्ध करता है, तब भयानक वीर बन कर अपने युद्ध कर्मसे शत्रुके लिये असह्य होता है।

[३] (२४१) हे इन्द्र! (यत् तव प्रणीती जोहुवानान्) जब तुम अपनी नेतृत्वकी पद्धतिके अनुसार स्तोत्र पाठ करनेवाले (नॄन् रोदसी सं निनेथ) मानवोंको द्युलोकसे पृथिवीतक सुप्रतिष्ठित करते हो, तब तुम (महे क्षत्राय शवसे जज्ञे) महान् क्षात्र कर्म तथा बलके कार्य करनेके लिये ही उत्पन्न हुए हो (हि) यह यह निःसंदेह ही है। (अतूतुजिं तूतुजिः चित् अशिश्नत) अदाताको दाता पराजित करता है।

मानवधर्म – उत्तम नीतिसे चलनेवाले वीरोंकी विश्वभरमें प्रतिष्ठा होती है। वीर पुरुष बलके और शौर्यके महान कार्य करनेके लिये उत्पन्न हुए होते हैं। नियम यह है कि दाता कंजूसको पीछे रखकर जगत्में प्रसिद्धि पाता है।

१ तव प्रणीती नॄन् रोदसी संनिनेथ — तुम अपनी पद्धतिके अनुसार नेता वीरोंको इस विश्वमें सुप्रतिष्ठित करते हो, वीर नेताकी प्रतिष्ठा इस विश्वमें होती है। वीरोंकी प्रतिष्ठा होना उचित है।

२ महे क्षत्राय शवसे जज्ञे — वीर बडे शौर्यके और बलके कार्य करनेके लिये उत्पन्न हुआ है। वीर कभी कुछ भी हीन कार्य न करे।

३ तूतुजिः अ-तूतुजिं चित् अशिश्नत् — उदार दाता कंजूसको पीछे रखता है। दाताका यश विश्वमें फैलता है।

[४] (२४२) हे इन्द्र! (दुर्मित्रासः क्षितयः पवन्ते) जो दुष्ट मनुष्य हम लोगोंपर हमला करते हैं, (एभिः अहभिः नः दशस्य) उनको इन अच्छे दिनोंके साथ हमारे अधीन करो। (अनेनाः मायी वरुणः) निष्पाप कुशल वरुण (यत् अनृतं प्रति चष्टे) जो असत्य हमारे अन्दर देखेगा वह (द्विता अव सात्) द्विधा होकर हमसे दूर हो जाय।

मानवधर्म – जब सज्जनोंपर दुष्ट लोग मित्ररूपसे रह कर आक्रमण करेंगे, तब उन दुष्टोंका नियंत्रण करना चाहिये और सज्जनोंको अच्छा अवसर देना चाहिये। इस नियमनका अधिकारी निष्पाप स्वकर्ममें प्रवीण और श्रेष्ठ हो। वह जो असत्य देखे, उसको वह दूर करे। किसी स्थानपर असत्य न रहने पावे।

५ वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद् ददन्नः
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २४३

(१९) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः ।
पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियानः ॥ २४४

२ ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम् ।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ॥ २४५

३ का ते अस्त्यरंकृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन् दाशेम ।
विश्वा मतीरा ततने त्वायाऽधा म इन्द्र शृणवो हवेमा ॥ २४६

---

१ दुर्मित्रासः क्षितयः पवन्ते, एभिः अहभिः नः [illegible] — जो दुष्ट लोग सज्जनोंपर निष्कारण आक्रमण करते [illegible] उनको हमारे अधीन रख, हमें अच्छे दिन प्राप्त हों और दुष्ट लोग दूर हों।

'दुर्मित्र' — मित्रता दिखाते हुए जो दुष्टता करते हैं, वे शत्रुही हैं। जब ऐसे दुष्ट सज्जनोंपर हमला करें, तब उनका निग्रह करना चाहिये और सज्जनोंको अच्छा समय प्राप्त हो ऐसा शासन करना चाहिये।

२ अनेनाः मायी वरुणः — वरुण शासक देव है, वह वरिष्ठ है, श्रेष्ठ है, पापरहित है, (मायी) काममें कुशल है, ज्ञानवान्, बुद्धिपूर्व कर्म करनेवाला है। शासन कर्ममें नियुक्त अधिकारी निष्पाप, बुद्धिमान, अपने कर्ममें कुशल तथा वरिष्ठ अर्थात् श्रेष्ठ होना चाहिये।

३ यत् अनृतं प्रति चष्टे द्विता अवसात् — जो पाप हममें दिखाई देगा वह द्विधा होकर दूर किया जावे। उसके टुकडे टुकडे होकर वह दूर हो। वह हममें किसी तरह न रहे।

[५] (२४३) (यत् महः राधसः रायः नः ददत्) जो बडे सिद्धिप्रद धनका हमें दान करता है (यः अर्चतः ब्रह्मकृतिं अविष्ठः) जो स्तोताके स्तोत्ररूप कृतिका संरक्षण करता है (एनं मघवानं इन्द्रं इत् वोचेम) उस धनवान् इन्द्रकी हम प्रशंसा करते हैं (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारी सुरक्षा उत्तम कल्याणोंके साथ करो।

१ महः राधसः रायः नः — बडी सिद्धि देनेवाले धन हमें चाहिये। जिससे उत्तम सिद्धि प्राप्त होती है वैसे धन हमें मिलें। हीनता उत्पन्न करनेवाले धन हमारे पास न आवें।

२ ब्रह्मकृतिं अविष्ठः — ज्ञान पूर्ण कृतिका रक्षण कर। जिससे ज्ञान बढे वैसी कृति सुरक्षित रहे।

[१] (२४४) हे इन्द्र! (तुभ्यं अयं सोमः सुन्वे) तुम्हारे लिये यह सोमरस निकालते हैं। हे (हरिवः) उत्तम घोडे रथको जोतनेवाले इन्द्र! (तदोकाः तु आ प्रयाहि) उस स्थानपर तुम सत्वर आओ। (अस्य सुसुतस्य चारोः तु पिब) इस उत्तम सुन्दर रसका पान करो। हे (मघवन्) धनवान्! (इयानः मघानि ददः) उपासना करनेपर धनोंका प्रदान कर।

[२] (२४५) हे (ब्रह्मन् वीर) ज्ञानी वीर! (ब्रह्मकृतिं जुषाणः) ज्ञानपूर्वक की हुई इस कृतिका-स्तुतिका सेवन करके (अर्वाचीनः हरिभिः तूयं याहि) हमारी ओर मुख करके घोडोंके साथ सत्वर हमारे पास आओ। (अस्मिन् सवने सु मादयस्व) इस सोमसवनसे आनंदित हो। (नः इमा ब्रह्माणि उप शृणवः) और हमारे ये स्तोत्र श्रवण कर।

[३] (२४६) (सूक्तैः ते अरंकृतिः का अस्ति) इन सूक्तोंसे तुम्हारी शोभा कैसी हो रही है।' हे

४ उतो घा ते पुरुष्या३ इदासन् येषां पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणाम् ।
अधाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव ॥ २४७

५ वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद् ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २४८

(३०) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

१ आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन् भवा वृध इन्द्र रायो अस्य ।
महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर ॥ २४९

(मघवन्) धनपते ! (कदा ते नूनं दाशेम) कब तुम्हें हम सचमुच प्रसन्न करें ? (त्वाया विश्वा मतीः आततने) तुम्हारे लिये ही ये स्तुतियां मैं करता हूं । हे इन्द्र ! (अध मे इमा हवा शृणवः) और मेरे ये स्तोत्र श्रवण करो ।

[४] (२४७) हे (मघवन्) धनपते ! (उत येषां पूर्वेषां ऋषीणां) और जिन प्राचीन ऋषियोंकी स्तुतियां (अशृणोः) तुमने सुनी थीं, (ते पुरुष्याः इत् आसन्) वे ऋषि मनुष्योंका हित करनेवाले थे । (अध अहं त्वा जोहवीमि) अतः मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं, हे इन्द्र ! (त्वं नः पिता इव प्रमतिः असि) तुम हमारे पिता जैसे उत्तम बुद्धि दाता हो ।

१ ते पुरुष्याः आसन्— वे ऋषि मानवोंका हित करनेवाले थे । मानवोंका हित साधन करना ऋषियोंका कर्तव्य था ।

२ त्वं नः पिता प्रमतिः असि — ईश्वर हम सबका पिता और शुभमतिका प्रदाता है ।

[५] (२४८) यह मंत्र २४३ पर है । वहीं उसका अर्थ देखिये ।

[१] (२४९) हे (देव शुष्मिन् इन्द्र) प्रकाशमान बलशाली इन्द्र ! (शवसा नः आयाहि) बलके साथ हमारे पास आओ । (अस्य रायः वृधः भव) इस धनको बढानेवाले बनो । हे (नृपते सुवज्र) मनुष्योंके पालनकर्ता उत्तम वज्रधारी इन्द्र ! (महे नृम्ण) बडे बलके बढानेवाले बनो । हे शूर ! (महि क्षत्राय पौंस्याय) बडे क्षात्र सामर्थ्य और विशाल पौरुषके बढानेवाले बनो ।

मानवधर्म – धन बढाओ, बल बढाओ, क्षात्र सामर्थ्य बढाओ और पौरुष बढाओ ।

१ देव शुष्मिन् सुवज्र शूर इन्द्र नृपते— प्रकाशमान् तेजस्वी, बलवान्, उत्तम शस्त्रधारी, शूर वीर, शत्रुनाशक ऐसा मनुष्योंका राजा हो । राजा और राजपुरुषोंमें ये गुण हों और ये गुण बढें । इन्द्रके वर्णनसे नृपति– राजा– का वर्णन यहां किया है ।

२ शवसा आयाहि — बलके साथ अपने कर्तव्यके स्थानपर आओ ।

३ अस्य रायः वृधे भव — इस राष्ट्रके ऐश्वर्यको बढाओ ।

४ अस्य महे नृम्णाय भव — इस राष्ट्रके महान सामर्थ्यको बढाओ ।

५ अस्य महि क्षत्राय पौंस्याय भव— इस राष्ट्रका क्षात्रबल और पौरुष बढाओ ।

इन्द्रके वर्णनके ये वचन राष्ट्रीय शिक्षाका भाव बता रहे हैं । इनका इस तरह मननपूर्वक विचार करना चाहिये ।

२ हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ ।
त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु ॥ २५०
३ अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान् दधो यत् केतुमुपमं समत्सु ।
न्य१ग्निः सीददसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ॥ २५१
४ वयं ते त इन्द्र ये च देव स्तवन्त शूर ददतो मघानि ।
यच्छा सूरिभ्य उपमं वरूथं स्वाभुवो जरणामश्नवन्त ॥ २५२

---

[२] (२५०) (हव्यं त्वा विवाचि ऊं हवन्ते) प्रार्थना करने योग्य ऐसे तुम्हारी प्रार्थना विवाद-युद्ध-में लोग करते हैं। (शूराः सूर्यस्य सातौ तनूषु) शूर लोग सूर्यकी प्राप्ति दीर्घ कालतक शरीरोंमें हो अर्थात् सूर्यसे शरीरमें दीर्घायु प्राप्त हो इसलिये तुम्हारी प्रार्थना करते हैं। (विश्वेषु जनेषु त्वं सेन्यः) सब लोगोंमें तुमही सेनाके लिये सुयोग्य संचालक हो। (त्वं सुहन्तु वृत्राणि रन्धय) तू उत्तम नाशक शस्त्रसे घेरनेवाले शत्रु-ओंका विनाश कर।

मानवधर्म– युद्धके समय शूर पुरुषोंकी सहायता प्राप्त करो। अपने शरीरका दीर्घ आयु सूर्य प्रकाशसे प्राप्त करो। जो शूर वीर तरुण होंगे, उनकी भरती सेनामें करो और सबसे विशेष वीर जो होगा वही सेनाका संचालन करे। अपने शस्त्र उत्तम तीक्ष्ण रखो और उनसे शत्रुओंका विनाश करो।

१ विवाचि हव्यं हवन्ते— युद्धके समय प्रशंसनीय वीर-को ही बुलाते हैं।

२ शूराः तनुषु सूर्यस्य सातौ— शूर पुरुष अपने शरीरोंका संरक्षण करनेके लिये सूर्यको प्राप्त करते हैं। सूर्यके किरणोंसे दीर्घ आयु प्राप्त करते हैं। दीर्घ जीवनके लिये सूर्यका साधन है। सूर्यसे विमुख होना मृत्यु प्राप्त करना है।

३ विश्वेषु जनेषु शूरः सेन्यः— सब मानवोंमें जो शूर वीर हो वही सेनामें भरती होने योग्य है तथा सेनाका संचालक होने योग्य है।

४ त्वं सुहन्तु वृत्राणि रन्धय— तुम उत्तम मारक शस्त्रसे शत्रुओंका नाश करो।

[३] (२५१) हे इन्द्र! (यत् अहा सुदिना व्युच्छात्) जब दिन अच्छे आयेंगे, (यत् समत्सु केतुं उपमं दधः) जब युद्धोंके संबंधका ज्ञान हमें तुम दोगे, हमें युद्धका कौशल प्राप्त होगा, तब (असुरः होता अग्निः) समर्थ और विबुधोंको बुलानेवाला अग्नि (सुभगाय) हमारे सौभाग्य वर्धनके लिये (देवान् हुवानः) विबुधोंको बुलाता हुआ, (अत्र नि सीदत्) यहां इस यज्ञमें प्रदीप्त होकर बैठे।

मानवधर्म– जब अच्छे दिन होंगे तब अच्छे कार्य करो, युद्धकी विद्याका ज्ञान प्राप्त करो। बलवान बनो और अग्नि समान तेजस्वी बनो। वीर होकर अपने राष्ट्रका भाग्य बढाओ।

१ अहा सुदिना व्युच्छात्— जब दिन अच्छे आयेंगे तब अच्छे ही कार्य करने चाहिये।

२ समत्सु केतुं उपमं दधः— युद्धोंके संबंधका ज्ञान प्राप्त करो। युद्ध करनेकी विद्या सीखनी चाहिये।

३ असु-रः अग्निः— बलवान वीर अग्निके समान तेज-स्वी होता है।

४ असुरः सुभगाय अत्र निषीदत्— बलवान् वीर भाग्यका संवर्धन करनेके लिये यहां हमारे अन्दर बैठे रहे। वीर हमारे अन्दर रहे और हमारा भाग्य बढावे।

[४] (२५२) हे शूर इन्द्र देव! (ते वयं) तुम्हारे ही हम हैं: (ये मघानि ददतः स्तवंतः) जो धनका दान करते और तुम्हारी स्तुति करते हैं उन (सूरिभ्यः उपमं वरूथं यच्छ) विद्वानोंके

५	वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद् ददन्नः ।	
	यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	२५३

(३१) १२ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। इन्द्रः। गायत्री, १०-११ विराट् ।

१	प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने	२५४
२	शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः । चकृमा सत्यराधसे	२५५
३	त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुर्वसो	२५६
४	वयमिन्द्र त्वायवो ऽभि प्र णोनुमो वृषन् । विद्धी त्व१स्य नो वसो	२५७
५	मा नो निदे च वक्तवे ऽर्यो रन्धीरराव्णे । त्वे अपि क्रतुर्मम	२५८

लिये श्रेष्ठ धन दे दो। वे (स्वाभुवः जरणां अश्नवंत) उत्तम ऐश्वर्यवाले होकर वृद्धावस्थाका भोग करें।

मानवधर्म- मनुष्य समझें कि हम प्रभुके ही निज पुत्र हैं। धनका दान करें, ईश्वरकी स्तुति करें। हे प्रभो! ज्ञानियोंको धन दो। वे ज्ञानी समृद्ध होकर अतिवृद्ध होने तक दीर्घ आयुको उपभोग लें।

१ मघानि ददतः— मनुष्य धनोंका दान सत्पात्रमें करें।

२ सूरिभ्यः उपमं वरूथं यच्छ — ज्ञानियोंकोही उत्तम धन दो, क्योंकि वे अपने ज्ञानसे ही उस धनका उपयोग अच्छा करेंगे। दानके लिये ज्ञानी ही सत्पात्र हैं।

३ स्वाभुवः जरणां अश्नवंत — ऐश्वर्यवान् होकर दीर्घ आयु प्राप्त करें। ऐश्वर्यका उपयोग दीर्घ आयु प्राप्त करनेके लिये करें।

[५] (२५३) यह मंत्र २४३ पर है वहीं इसकी व्याख्या देखो।

[१] (२५४) हे (सखायः) हे मित्रो! (वः हर्यश्वाय सोमपाव्ने) तुम उत्तम घोडोंवाले और सोम पीनेवाले (इन्द्राय मादनं प्र गायत) इन्द्रके लिये आनन्दकारक काव्य गाओ।

[२] (२५५) (उत) और (सुदानवे सत्यराधसे उक्थं) उत्तम दान देनेवाले और सत्य धन जिसका है ऐसे इन्द्रके लिये स्तोत्र (यथा नरः द्युक्षं) जैसे अन्य नेता तेजस्वी स्तोत्र गाते है, वैसा ही (शंस इत्) तुम भी कहो, और हम भी (चकृम) करेंगे।

' सु-दानवे '—उत्तम दान देनेवाला, ' सत्य-राधसे ' — सत्य मार्गसे जिसने धन प्राप्त किया है।

[३] (२५६) हे इन्द्र ! (त्वं नः वाजयुः) तुम हमारे लिये धनकी अभिलाषा करो! हमें धन देनेकी इच्छा कर। हे (शतक्रतो) सैकडों प्रशस्त कर्म करनेवाले! (त्वं गव्युः) तुम हमारे लिये गौओंकी कामना करो। हमें गौएं देनेकी इच्छा करो। हे (वसो) निवास कर्ता! (त्वं हिरण्ययुः) तू हमारे लिये सुवर्णकी कामना कर।

हमें अन्न, बल, गौवें, सुवर्ण आदि सब चाहिये।

[४] (२५७) हे (वृषन् इन्द्र) बलवान् इन्द्र! (त्वायवः वयं अभि प्रणोनुमः) तुम्हारी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम तुम्हारी स्तुति गाते हैं। हे (वसो) निवासकर्ता ! (अस्य नः विद्धि) इस हमारे स्तोत्रको तुम ध्यानसे सुनो।

[५] (२५८) (अर्यः वक्तवे निदे अराव्णे नः मा रन्धि) तुम हमारे स्वामी हो, हमको कठोर बोलनेवाले, निंदक, तथा कंजूसके अधीन मत रख। (मम क्रतुः त्वे अपि) मेरा यज्ञ तुम्हारे पास पहुंचे।

कठोर भाषण करनेवाले, निंदा करनेवाले, तथा कंजूस ऐसे दुष्टोंके आधीन हमें कदापि न रख।

६	त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा	२५९
७	महाँ उतासि यस्य तेऽनु स्वधावरी सहः । मम्नाते इन्द्र रोदसी	२६०
८	तं त्वा मरुत्वती परि भुवद् वाणी सयावरी । नक्षमाणा सह द्युभिः	२६१
९	ऊर्ध्वासस्त्वान्विन्दवो भुवन् दस्ममुप द्यवि । सं ते नमन्त कृष्टयः	२६२
१०	प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् । विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः	२६३
११	उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः । तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः	२६४
१२	इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै । हर्यश्वाय बर्हया समापीन्	२६५

[६] (२५९) हे (वृत्रहन्) शत्रुका नाश करनेवाले इन्द्र ! (त्वं वर्म असि) तुम हमारा कवच हो । (स प्रथः) तुम सर्वत्र संरक्षण करनेमें प्रसिद्ध हो । तुम (पुरो योधः च असि) सामनेसे युद्ध करनेवाले हो । (त्वया युजा प्रति ब्रुवे) तुम्हारी सहायतासे हम शत्रुको अच्छा उत्तर देंगे। उनका नाश कर सकेंगे ।

राजा शत्रुका नाश करे । प्रजाका संरक्षण करे । प्रजाके लिये कवचके समान हो । शत्रुसे युद्ध करे और प्रजाका संरक्षण करे ।

[७] (२६०) हे इन्द्र (महान् असि) तुम सबसे बडा हो, (यस्य ते सहः) तुम्हारे बलकी (स्वधावरी रोदसी अनु मम्नाते) अन्नवाली द्यावापृथिवी भी मान्यता करती है ।

[८] (२६१) (तं त्वा स-यावरी) तुम्हारे साथ जानेवाली (द्युभिः सह नक्षमाणा) तेजोंके साथ फैलनेवाली (मरुत्वती वाणी) वीरों द्वारा की स्तुति (परिभुवत्) तुम्हारा स्वीकार करे। तुम्हारी स्तुति सर्वत्र होती रहे ।

[९] (२६२) (उपद्यवि त्वा दस्म) द्युलोकके समीप तुझ दर्शनीय के लिये (ऊर्ध्वासः इन्दवः भुवन्) ऊपर ऊपर चढनेवाले सोम सिद्ध हो रहे हैं । (कृष्टयः ते सं नमन्ते) और प्रजाएं तुम्हें नमन करती हैं ।

[१०] (२६३) (वः महीवृधे महे प्रभरध्वं) तुम धनका संवर्धन करनेवाले महान वीर इन्द्रके लिये सोमरस भर दो । (प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं) विशेष ज्ञानवान इंद्रके लिये उत्तम स्तुति करो। (चर्षणिप्राः पूर्वीः विशः प्र चर) प्रजाओंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले तुम प्रजाओंमें संचार कर ।

१ महीवृधे महे प्रभरध्वं—धनका संवर्धन करनेवाले बडे वीरके लिये सोमरस दो और उसका सत्कार करो ।

२ प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं—विशेष ज्ञानी वीरकी प्रशंसा करो ।

३ चर्षणिप्राः पूर्वीः विशः प्रचर—प्रजाओंकी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेवाला तू प्रजाओंमें संचार करो । उनकी अवस्थाका विचार करो ।

[११] (२६४) (उरुव्यचसे महिने इन्द्राय सुवृक्तिं) चारों ओर यशसे फैले और बडे इन्द्रके लिये स्तुति और (ब्रह्म विप्राः जनयन्त) हविष्यान्न ज्ञानी लोग तैयार करते हैं । (तस्य व्रतानि धीराः न मिनन्ति) उसके संरक्षणादि व्रतोंका निषेध धीर पुरुष भी नहीं कर सकते ।

[१२] (२६५) (सत्रा राजानं अनुत्त-मन्युं) सब विश्वका राजा और जिसका उत्साह अप्रतिम है ऐसे (इन्द्रं वाणीः सहध्यै दधिरे) इन्द्रकी प्रशंसा अपना बल बढानेके लिये की जाती है । अतः (हर्यश्वाय आपीन् सं बर्हय) उत्तम घोडोंको जोतनेवाले इन्द्रकी स्तुति करनेके लिये अपने मित्रोंको उत्साहित कर ।

(३२) २७ (१-२१) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, २६ पूर्वार्धर्चस्य शक्तिर्वासिष्ठो वा (शाट्यायने ब्राह्मणे), २६-२७ शक्तिर्वासिष्ठो वा (ताण्डके ब्राह्मणे)। इन्द्रः । प्रगाथः- (बृहती, सतोबृहती), ३ द्विपदा विराट् ।

१ मो षु त्वा वाघतश्चनाऽऽरे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताच्चित् सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि २६६

२ इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः २६७

३ रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे २६८

४ इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ २६९

मानवधर्म- राजा सदा उत्साहयुक्त हो और कदापि दीन तथा निरुत्साही न हो। राजपुरुष भी ऐसे ही हों। इन्द्रकी स्तुतिका गान करो, इससे अपना बल बढानेके उपाय तुम्हें विदित होंगे। अपने मित्रोंको भी इन्द्रकी स्तुति करने की प्रेरणा करो, वे भी इससे अपना बल बढावें।

१ अनुत्तमन्युः राजा--राजा तथा राजपुरुष उत्साहसे युक्त हों। निरुत्साह न हों।

२ सहध्यै इन्द्रं वाणीः दधिरे—अपना बल बढानेके लिये इन्द्रकी स्तुति करो। इन्द्रके स्तोत्र पढनेसे अपना बल बढता है। जिसको अपना बल बढाना हो वह इन्द्रके काव्योंका गायन करे।

३ हर्यश्वाय आपीन् संबर्हय--इन्द्रके स्तोत्र गानेके लिये अपने मित्रोंको उत्साहित करो। इन स्तोत्रोंके पाठसे उनमें भी अपना बल बढानेकी प्रेरणा हो।

[१] (२६६) (त्वा वाघतः चन अस्मत् आरे) तुम्हें स्तुति करनेवाले ये स्तोता हमसे दूर (मो सु नि रीरमन्) न रमते रहें। (आरात्तात् चित् नः सधमादं आ गहि) दूरसे भी तुम हमारे यज्ञगृहमें आओ। (इह वा सन् उप श्रुधि) यहां रह कर हमारा स्तोत्रका श्रवण करो।

[२] (२६७) (ते सुते इमे ब्रह्मकृतः हि) तुम्हारे लिये सोमरस निकालनेका कार्य चलनेके समय ये स्तोत्र पाठकर्ता गण (मधौ मक्ष न) शहदमें मधुमक्खियाँ बैठनेके समान (सचा आसते) साथ साथ बैठते हैं। (वसूयवो जरितारः) धन चाहनेवाले स्तोत्र-पाठी (रथे न पादं) रथमें पांव रखने के समान (इन्द्रे कामं आदधुः) इन्द्रमें अपनी इच्छाको रखते हैं।

अपनी धन प्राप्तिकी इच्छा इन्द्रसे पूर्ण होगी ऐसी इच्छा धारण करते हैं।

[३] (२६८) (पुत्रः पितरं न) पुत्र पिताको पूछता है उस तरह (रायस्कामः) धनकी कामना करनेवाला मैं (वज्रहस्तं सुदक्षिणं हुवे) वज्रधारी उत्तम दाता इन्द्रकी प्रार्थना करता हूं।

इन्द्रसे धन चाहता हूं। पिताका धन पुत्रको प्राप्त होता है वैसा इन्द्रका धन मुझे मिलेगा। वह पिता है और मैं उसका पुत्र हूं।

[४] (२६९) हे (वज्रहस्त) वज्र हाथमें लेने-वाले इन्द्र ! (दध्याशिरः इमे सोमासः) दहीसे मिश्रित ये सोमरस (इन्द्राय सुन्विरे) इन्द्रके लिये तैयार हो रहे हैं। तुम्हारे लिये ही हो रहे हैं। (तान् मदाय पीतये) आनन्दके लिये उनको पीनेके लिये (ओकः हरिभ्यां आ याहि) यज्ञ स्थानपर घोडोंसे आओ।

५　श्रवच्छ्रुत्कर्ण ईयते वसूनां नू चिन्नो मर्धिषद् गिरः ।
　सद्यश्चिद् यः सहस्राणि शता ददन्नकिर्दित्सन्तमा मिनत् 　२७०
६　स वीरो अप्रतिष्कुत इन्द्रेण शूशुवे नृभिः ।
　यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन् त्सुनोत्या च धावति 　२७१
७　भवा वरूथं मघवन् मघोनां यत् समजासि शर्धतः ।
　वि त्वाहतस्य वेदनं भजेमह्या दूणाशो भरा गयम् 　२७२
८　सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
　पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित् पृणन्नित् पृणते मयः 　२७३
९　मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे ।
　तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे 　२७४

सोमरसमें दही मिलाते हैं और देवताको अर्पण करके पीते हैं। सोमपानसे आनन्द तथा उत्साह बढता है।

[५] (२७०] (श्रुत्कर्णः वसूनां ईयते) प्रार्थना सुननेके लिये तत्पर कर्णवाला इन्द्र है, उसके पास हम धनोंकी प्रार्थना करते हैं। (नः गिरः श्रवत्) वह हमारी प्रार्थना सुने। (नु चित् मर्धिषत्) कदापि हमें हिंसित न करे, हमारी प्रार्थना निष्फल न करे! (सद्यः चित् यः शता सहस्राणि ददत्) तत्कालही वह सैंकडों और हजारोंकी संख्यामें धनोंको देता है। (दित्सन्तं न किः आ मिनत्) देनेकी इच्छा करनेवाले उसको कोई रोक नहीं सकते।

[६] (२७१) हे (वृत्रहन्) वृत्रको मारनेवाले इन्द्र! (ते यः गभीरा सवनानि सुनोति) तुम्हारे लिये ये गम्भीर सोमके सवन जो करता है (आ धावति च) और तुम्हारे लिये शीघ्रता करता है (सः वीरः इन्द्रेण) वह वीर इन्द्रके द्वारा (अप्रतिष्कुतः) विरुद्ध भावसे प्रतिरोधित न होता हुआ (नृभिः शुशुवे) मानवोंके द्वारा संसेवित होता है। संमानित होता है।

[७] (२७२) हे (मघवन्) धनपते! (मघोनां वरूथं भव) धनवान् दाताओंका कवच जैसा संरक्षक बनो। (यत् शर्धतः समजासि) स्पर्धा करनेवाले शत्रुओंका निवारण करो। (त्वाहतस्य वेदनं विभजेमहि) तुम्हारे द्वारा मारे गये शत्रुके धनका हम सब बंटवारा करेंगे। (दुर्णशः गयं आभर) जिसका नाश नहीं होता ऐसा तुम हमें धन दो।

[८] (२७३) (वज्रिणे सोमपाव्ने इन्द्राय सोमं सुनोत) वज्रधारी सोमपान करनेवाले इन्द्रके लिये सोमरस निकालो। (अवसे पक्तीः पचत) अपनी सुरक्षाके लिये इन्द्रके प्रीतिके लिये पुरोडाशादि अन्न पकाओ (कृणुध्वं इत्) इन्द्रके लिये ये सब कर्म करो। (मयः पृणन् इत् पृणते) इन्द्र सुख देता हुआ इस यज्ञकर्मको पूर्ण संपन्न करता है।

[९] (२७४) (सोमिनः मा स्रेधत) सोमयागसे पीछे न हटो। (दक्षत) दक्षतासे कर्म करते रहो। (महे आतुजे) बडे तथा शत्रुके विनाशक इन्द्रके लिये तथा (राये कृणुध्वं) धन प्राप्तिके लिये यज्ञ करो। (तरणिः इत् जयति) त्वरासे कर्म करनेवाला निःसंदेह विजय करता है, (क्षेति पुष्यति) वह अपने घरमें निवास करता है, पुष्ट होता है, (कवत्नवे देवासः न) कुत्सित कर्म करनेवालेके सहायक देव नहीं होते।

१० नाकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत् ।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत् स गोमति व्रजे २७५

११ गमद् वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः ।
अस्माकं बोध्यविता रथानामस्माकं शूर नृणाम् २७६

१२ उदिन्न्वस्य रिच्यतेंऽशो धनं न जिग्युषः ।
य इन्द्रो हरिवान् न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि २७७

१३ मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् २७८

---

१ सोमिनः मा स्रेधत— यज्ञकर्मसे पीछे न हटो तथा दूसरोंको भी पीछे न हटाओ ।

२ महे आतुजे राये कृणुध्वं— बडे शत्रुनाशक वीरकी प्रसन्नता करनेके लिये तथा अपनेको धन प्राप्त करनेके लिये कर्म करते रहो । अपने वीर प्रसन्न हों और अपने पास धन आजाय, इस हेतुसे कर्म करने चाहियें ।

३ तरणिः इत् जयति—जो त्वरासे परंतु उत्तम रीतिसे कर्म करता है वही जीतता है, वही विजय प्राप्त करता है । सुस्त मनुष्यके लिये यहां विजय नहीं है ।

४ तरणिः इत् क्षेति—त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला ही अपने घरमें निवास करता है । ऐसे कुशल कर्मकर्ताका ही अपना घर होता है ।

५ तरणिः इत् पुष्यति—त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला ही पुष्ट होता है, पुत्रपौत्र, इष्टमित्र, सेवक, धनधान्य, पशु आदिसे युक्त होता है ।

६ कवत्नवे देवासः न— (कव्-अत्नवे) कुत्सिक कर्म करनेवालेकी सहायता देवता नहीं करते । देवोंसे सहाय्य उसको मिलता है कि जो शुभ कर्म उत्तम रीतिसे तथा शीघ्र करता है । सुस्त मनुष्यकी सहायता देवता नहीं करते ।

[१०] (२७५) (सुदासः रथं नकिः परि आस) उत्तम दाताके रथको कोई दूर नहीं रख सकता । (न रीरमत्) न उसको अन्यत्र रममाण कर सकता है । (यस्य रक्षिता इन्द्रः) जिसका रक्षक इन्द्र है और (यस्य मरुतः) जिसके रक्षक मरुत् हैं (सः गोमति व्रजे गमत्) वह गौओं-वाले वाडेमें जाता है, उसके पास गौओंके झुण्ड होते हैं ।

[११] (२७६) हे इन्द्र ! (त्वं यस्य अविता भुवः) तुम जिसके रक्षक होंगे, वह (मर्तः वाजयन् वाजं गमत्) मनुष्य तुम्हारा यश गाता हुआ अन्नको प्राप्त करता है । हे शूर ! (अस्माकं रथानां अविता बोधि) हमारे रथोंका रक्षक बनो । और (अस्माकं नृणां च) हमारे पुत्रपौत्रादिकोंका रक्षक होओ ।

[१२] (२७७) (यस्य अंशः रिच्यते) जिस इन्द्रका सोमरसका भाग अन्योंकी अपेक्षा अधिक होता है, (जिग्युषः धनं न) विजयी वीरके धनके समान (उत् इत् नु) निःसंदेह (यः हरिवान् इन्द्रः सोमिनि दक्षं दधाति) जो घोडोंवाला इन्द्र सोम याग करनेवालेमें बल धारण करता है (तं रिपः न दभन्ति) उसको शत्रु नहीं दबाते ।

सोमयागमें इन्द्रको सोमरसका भाग अधिक दिया जाता है, विजयी वीरको अधिक धन मिलता है, वैसा ही विजयी इन्द्रको सोमरस अधिक मिलता है । यह वीर इन्द्र सोमयाग कर्तामें बल धारण कराता है जिससे उसके सब शत्रु परास्त होते हैं ।

[१३] (२७८) (अखर्वं सुधितं सुपेशसं मंत्रं) बडा उत्तम बनाया सुन्दर मंत्रोंका स्तोत्र (यज्ञियेषु आदधात) यज्ञके योग्य देवोंमें इंद्रके लिये ही

१४ कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा इत् ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥ २७९

१५ मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥ २८०

१६ तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥ २८१

१७ त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः ।
तवायं विश्वः पुरुहूत पार्थिवोऽवस्युर्नाम भिक्षते ॥ २८२

१८ यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय ॥ २८३

अर्पण करो। (यः कर्मणा इंद्रे भुवत्) जो अपने स्तोत्रगानरूप कर्मसे इन्द्रके मनमें स्थान पाता है, (तं पूर्वीः प्रसितयः न तरंति चन) उसको कोई बंधन कष्ट नहीं देते।

[१४] (२७९) हे इन्द्र! (मर्त्यः) जो मनुष्य तुम्हारा प्रिय होता है (तं त्वा-वसुं कः आ दधर्षति) उस तुम्हारे भक्तको कौन भय दिखा सकता है? हे (मघवन्) धनपते! (ते इत् श्रद्धा) तुम्हारे ऊपर जो श्रद्धा रखता है वह (वाजी) बलवान् होता है, (पार्ये दिवि वाजं सिषासति) और पार होनेके दिनमें भी धन प्राप्त करता है।

[१५] (२८०) (मघोनः ये प्रिया वसु ददति) तुम जैसे धनीको जो प्रिय धन अर्पण करते हैं, उनको (वृत्र हत्येषु चोदय) वृत्रवधके समय उत्साहित करो। हे (हर्यश्व) उत्तम घोडों-वाले इन्द्र! (तव प्रणीती) तुम्हारी नीतिके द्वारा (सूरिभिः विश्वा दुरिता तरेम) ज्ञानियोंके साथ रहकर सब पापोंसे हम पार हो जांयगे।

उत्तम धर्म नियमोंमें रहनेसे सब पाप दूर हो सकते हैं। ज्ञानीजनोंके साथ रहनेसे तो निःसंदेह पापसे बच सकते हैं।

[१६] (२८१) हे इंद्र! (अवमं वसु तव इत्) पृथिवीपरका धन तुम्हारा ही है, (त्वं मध्यमं पुष्यसि) तू मध्यम धनको पुष्ट करता है। (विश्वस्य परमस्य राजसि) सब श्रेष्ठ धनपर भी तुम्हारा राज्य है यह (सत्रा) सत्य है। (त्वा गोषु न किः वृण्वते) तुम्हें गौओंमें रहनेसे कोई रोक नहीं सकता।

[१७] (२८२) (त्वं विश्वस्य धनदा श्रुतः असि) तुम सब धनोंके दाता प्रसिद्ध हो। (ये आजयः ईं भवन्ति) जो युद्ध होते हैं उनमें भी तुम प्रसिद्ध हो। हे (पुरुहूत) बहुतों द्वारा प्रशंसित वीर! (अयं विश्वः पार्थिवः) ये सब पृथ्वीपरके मनुष्य (अवस्युः नाम भिक्षते) अपनी सुरक्षाके लिये तुम्हारी ही प्रार्थना करते हैं।

[१८] (२८३) हे इन्द्र! (यत् यावतः त्वं) जितने धनका स्वामी तुम है (एतावत् अहं ईशीय) उतना सब धन मैं प्राप्त करना चाहता हूं। हे (रदावसो) धनके दाता! (स्तोतारं इत् दिधिषेय) स्तोताकी सुरक्षा हो ऐसी मेरी इच्छा है। (पापत्वाय न रासीय) पाप बढानेके लिये धनका दान मैं नहीं करूंगा।

१ एतावत् अहं ईशीय—यह सब धन मुझे प्राप्त हो।

२ स्तोतारं दिधिषेय—ज्ञानीकी मैं सुरक्षा करूंगा।

३ पापत्वाय न रासीय—पाप बढानेके लिये मैं धनका दान कदापि नहीं करूंगा।

१९	शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।	
	नहि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन	१८४
२०	तरणिरित् सिषासति वाजं पुरंध्या युजा ।	
	आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम्	१८५
२१	न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।	
	सुशक्तिरिन्मघवन् तुभ्यं मावते देष्णं यत् पार्ये दिवि	१८६

[१९] (१८४) (कुहचिद्विदे महयते) कहां भी रहनेवाले उपासना करनेवाले भक्तके लिये (दिवे दिवे रायः शिक्षेयं इत्) प्रतिदिन मैं धनका दान अवश्य करूंगा । हे (मघवन्) धनपते ! (नः आप्यं त्वत् अन्यत् नहि) तुमसे भिन्न हमारा कोई बंधु नहीं है । (वस्यः पिता चन अस्ति) न प्रशंसनीय पिता ही दूसरा है ।

इन्द्र कहता है— ' मैं प्रतिदिन उपासकको धन देता हूं । ' यह सुनकर ऋषि कहाता है— ' हे धनपते ! तुमसे भिन्न हमारा कोई दूसरा बन्धु नहीं है और ना ही दूसरा कोई पिता है । तुमही हमारा बन्धु, मित्र और पिता हो ।

[२०] (१८५) (तरणिः इत्) त्वरासे कर्म करनेवाला मनुष्य (पुरंध्या युजा वाजं सिषासति) बडी धारणावती बुद्धिके साथ युक्त होकर बल तथा अन्न प्राप्त करता है । (सुद्र्वं नेमिं त्वष्टा इव) उत्तम लकडीकी चक्रनेमिको तखाण नमाता है, उस तरह (गिरा वः पुरुहूतं इन्द्रं आ नमे) मैं अपनी स्तुतिसे आपके लिये बहुप्रशंसनीय इंद्रको मैं अपनी ओर आनेके लिये नवाता हूं ।

१ तरणिः पुरंध्या युजा वाजं सिषासति—कुशलतासे सत्वर और उत्तम कार्य सिद्ध करनेवाला कारीगर बडी धारणावती बुद्धिसे युक्त होनेके कारण अन्न और बलको प्राप्त करता है । कुशल कारीगर अपनी कर्मकुशलता और अपनी बुद्धिके कारण पर्याप्त धन प्राप्त करता है ।

२ त्वष्टा सु-द्र्वं नेमिं—सुतार-लकडीका कार्य करनेवाला उत्तम लकडीसे रथका चक्र तथा उसकी नेमी बनाता है ।

३ बहुस्तुतं गिरा आ नमे— बहुतों द्वारा बुलाया जानेपर भी मैं अपनी वाणीसे उस वीरको अपनी ओर ही आकृष्ट करता हूं । वाणीमें ऐसी शक्ति चाहिये जिससे दूसरोंपर प्रभाव पडे ।

[२१] (१८६) (मर्त्यः दुष्टुती वसु न विन्दते) मनुष्य बुरे स्तोत्रसे धन नहीं प्राप्त कर सकता । (स्रेधन्तं रयिः न नशत्) हिंसकको धन नहीं प्राप्त हो सकता । हे (मघवन्) धनपते ! (पार्ये दिवि) दुःखसे पार होनेके प्रयत्नसे युक्त दिनमें (मावते देष्णं) मेरे जैसे भक्तके लिये देनेयोग्य धन (तुभ्यं सुशक्तिः इत् विन्दते) तुमसे उत्तम शक्तिसे उत्तम कर्म करनेवाला ही प्राप्त करता है ।

मानवधर्म- मनुष्य धन प्राप्त करनेके लिये दुष्टकी प्रशंसा न करे । तथा हिंसा करके भी धन न कमावे । कुशलतासे कर्म करनेकी शक्ति प्राप्त करे और उस कौशल्यपूर्ण कर्मसे मनुष्य धन प्राप्त करे ।

१ दुः-स्तुती मर्त्यः वसुः न विन्दते—दुष्टकी प्रशंसा करनेसे धन प्राप्त नहीं होता । धन कमानेके लिये दुष्टकी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये ।

२ स्रेधन्तं रयिं न नशत्—हिंसक कर्म करनेवालेको धन नहीं घेरता, धन नहीं प्राप्त होता । धनके लिये हिंसा करना योग्य नहीं है ।

३ पार्ये दिवि सुशक्तिः इत् देष्णं विन्दते—दुःखसे पार होनेके लिये जिस समय कार्य किया जाता है, उस समय उत्तम कर्म करनेकी शक्ति जिसमें होती है वही धन कमाता है । उत्तम रीतिसे कर्म करनेकी शक्तिसे धन कमाया जाता है । अतः यह कौशल्य मनुष्यको प्राप्त करना योग्य है ।

२२	अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।	
	ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः	२८७
२३	न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।	
	अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे	२८८
२४	अभी षतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।	
	पुरूवसुर्हि मघवन् त्सनादसि भरेभरे च हव्यः	२८९

[२२] (२८७) हे शूर इंद्र! (अस्य जगतः ईशानं) इस जंगम वस्तुजातके स्वामी तथा (तस्थुषः ईशानं) स्थावर विश्वके स्वामी ऐसे (स्वर्दृशं त्वा) दिव्यदृष्टिवाले तुमको (अदुग्धाः इव धेनवः) न दुही हुई गौवें जिस तरह दोहन होनेके लिये उत्सुक होती हैं उस तरह हम (अभि नो नुमः) स्तवन करते हैं।

मानवधर्म-जो स्थावर जंगमका एक मात्र प्रभु है उसी की उपासना करना मनुष्योंके लिये योग्य है। मनुष्य उतनी आतुरतासे ईश्वरस्तुति करे कि जितनी आतुर न दुही गौवें दोहन करानेके लिये उत्सुक रहती है।

१ अस्य जगतः तस्थुषः ईशानं स्वर्दृशं अभि नोनुमः—इस संपूर्ण स्थावर जंगमके ईश्वरका, जो दिव्यदृष्टीसे सबको देख रहा है उस प्रभुका विनम्रभावसे स्तवन करते है। इस प्रभुकी स्तुति करना ही योग्य है ।

२ अदुग्धाः धेनवः इव अभि नोनुमः—न दोही हुई गौवें जैसे दुही जानेके लिये आतुर होती हैं, वैसे हम इस प्रभुकी स्तुति करनेके लिये अपने अन्तःकरणसे उत्सुक हैं।

[२३] (२८८) हे (मघवन् इंद्र) धनपते इंद्र ! (दिव्यः त्वावान् अन्यः न) द्युलोकमें तुम्हारे सदृश दूसरा कोई नहीं है । (न पार्थिवः जातः न जनिष्यते) पृथिवीपर भी न कोई तुम्हारे सदृश हुआ है और ना ही होगा। (अश्वायन्तः गव्यन्तः वाजिनः) हम घोडों, गौओं और अन्नोंको चाहनेवाले (त्वा हवामहे) तुम्हारी प्रार्थना करते हैं।

१ दिव्यः पार्थिवः त्वावान् अन्यः न जातः न जनिष्यते—द्युलोकमें, अन्तरिक्षमें तथा पृथिवीपर तुम्हारे समान समर्थ वीर कोई दूसरा भूतकालमें न हुआ था और न भविष्यमें होगा, न इस समय है। तीनों लोकोंमें और तीनों कालोंमें तुम्हारे जैसा दूसरा कोई नहीं है। अतः तुम ही अकेले हमारे लिये उपास्य हो ।

२ अश्वायन्तः गव्यन्तः वाजिनः त्वा हवामहे—हम घोडे गौवें और अन्न आदि धन चाहते हैं इसलिये तुम्हारे पास ही आते हैं ।

[२४] (२८९) हे (ज्यायः इंद्र) श्रेष्ठ इंद्र! (कनीयसः सतः तत् अभि आ भर) मैं तुम्हारा छोटा भाई हूं अतः मुझे वह धन तुम भरपूर दो। हे (मघवन्) धनपते! (सनात् पुरुवसुः हि असि) तुम सनातन कालसे बहुत धनवाला हो और (भरे भरे हव्यः च) प्रत्येक युद्धमें तथा यज्ञमें पूज्य हो।

मानवधर्म बडा भाई छोटे भाईको धन देवे, सहायता करे, उसका भाग उसको योग्य समयमें दे डाले। बडे भाई के पास पैतृक धन पहिले आता है। छोटे भाईको वह बडा होनेपर धन प्राप्त होना है। इसलिये उसका धन उसको देना योग्य है। युद्धके कठिन समय में तथा यज्ञके पुण्य समयमें बडे भाई छोटे भाईकी सहायता करे ।

१ ज्यायः कनीयसः तत् अभि आभर—बडा भाई अपने छोटे भाईके लिये धनकी सहायता करता है अथवा उसके हिस्सेका भाग उसको देता है।

२५ परा णुदस्व मघवन्नमित्रान् त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् २९०

२६ इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि २९१

यहां बडे भाईका कर्तव्य बताया है कि वह छोटे भाईके लिये धनादिकी सहायता करता है, विद्या पढवाता, बल बढाता, धन देता और उसको योग्य करता है। इस तरह भाई भाई आपसमें परस्पर सहायक हों। इस मंत्रभागसे यह भी सिद्ध होता है कि अपने पैत्रिक धनका भाग बडा भाई छोटे भाईको देता है, भाईयोंका अधिकार पैत्रिक धनपर समान होता है। इन्द्रके पास भक्त जो धन मांगते है वह इस भाईपनके अधिकारसे मांगते हैं। यह विशेष महत्त्वकी बात है।

किसी अन्य धर्मग्रन्थमें ईश्वरको भाई कहकर उसके धनमें अपना हिस्सा है ऐसा मानकर उस भागको मांगना नहीं दिखाई देता है। वेद ही ऐसा अधिकार भक्तको देता है।

२ सनात् पुरुवसुः असि— तू बडा भाई है और मेरे पहिलेसे ही तुम्हें धन प्राप्त हुआ है। इसलिये मैं अपना भाग मांगता हूं। यह याचना नहीं है पर अपने अधिकारकी ही बात मैं लेना चाहता हूं। मैं छोटा भाई हूं इसलिये पैत्रिक धन तुम्हारे पास है इस कारण तुमसे मैंने लेना है।

३ भरे भरे हव्यः--युद्धके अवसर पर तथा यज्ञके समय धनकी आवश्यकता रहती है। इसलिये ऐसे अवसर पर अपना धन मैं लेना चाहता हूं। वह मेरे विभागका धन मुझे भरपूर दे दो।

[२५] (२९०) हे (मघवन्) धनपते! (अमित्रान् परा नुदस्व) शत्रुओंको दूर करो। (नः वसु सुवेदा कृधि) हमारे लिये धन सुखसे प्राप्त होने योग्य करो। (महाधने सखीनां अविता बोधि) युद्धके समय मित्रोंका संरक्षण करनेवाला हो, (वृधः भव) धनको बढानेवाला हो।

मानवधर्म- शत्रुओंको दूर करो, धन प्राप्तिके व्यवहार सुखसे होते रहें ऐसा प्रबंध करो। युद्धके समय अपने मित्रोंकी सुरक्षा करो और अपने मित्रोंको बढाओ। मित्रोंकी संख्या बढाओ और मित्रोंकी शक्ति भी बढाओ।

१ अमित्रान् परा नुदस्व—शत्रुओंको दूर भगा दो। मित्रोंको पास करो।

२ नः वसु सुवेदा कृधि--हमें धन सुखसे प्राप्त हो ऐसा कर। धन प्राप्तिके व्यवहारमें हमें कष्ट न हों।

३ महाधने सखीनां अविता बोधि--युद्धके समय अपने मित्रोंकी सुरक्षा करो, यह कार्य तुम्हारा कर्तव्य है ऐसा जानो। और वैसा करो।

४ महाधने सखीनां वृधः भव—युद्धमें मित्रोंको बढाओ। मित्रोंकी सहायता करो।

[२६] (२९१) हे इंद्र! (नः क्रतुं आ भर) हमारे प्रज्ञानपूर्वक किये कर्मोंको पूर्ण करो। (यथा पिता पुत्रेभ्यः) जैसा पिता पुत्रोंको धन देता है वैसा तुम (नः शिक्ष) हमें दो। हे (पुरुहूत) बहुतोंद्वारा स्तवित हुए इंद्र! (अस्मिन् यामनि) इस यज्ञमें (जीवाः ज्योतिः अशीमहि) हम जीवित रहकर तेजको प्राप्त करें।

मानवधर्म- पिता अपने पुत्रोंको सुशिक्षा देवे, उनकी प्रज्ञा बढावे उनमें कर्मको कुशलतासे करनेकी शक्ति भी बढा देवे। पिताका यह कर्तव्य है। मनुष्य दीर्घजीवी हो और उनका जीवन तेजस्वी हो। अल्पायु और तेजोहीन कोई न हो।

१ यथा पिता पुत्रेभ्यः तथा त्वं नः क्रतुं शिक्ष, नः आ भर च--जैसा पिता अपने पुत्रोंको सुशिक्षा देता है, उनकी प्रज्ञा बनाता और कर्मशक्ति बढाता है, उस तरह तुम भी हमें सुशिक्षा दो, हमारी प्रज्ञा बढाओ और कर्मशक्ति भी बढाओ।

२ अस्मिन् यामनि जीवाः ज्योतिः अशीमहि— इस अवसर पर हम दीर्घ जीवन प्राप्त करना चाहते हैं और तेजस्वी जीवन चाहते हैं।

२७ मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि २९२

(३३) १४ (१-९) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, १०-१४ वसिष्ठपुत्राः । १-९ वसिष्ठपुत्राः इन्द्रो वा; १०-१४ वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

१ श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः ।
उत्तिष्ठन् वोचे परि बर्हिषो नॄन् न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः २९३

२ दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम् ।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात् सुतादिन्द्रोऽवृणीता वसिष्ठान् २९४

---

[२७] (२९२) (अज्ञाताः अशिवासः दुराध्यः वृजनाः नः मा मा अवक्रमुः) अज्ञात रीतिसे अशुभ दुष्ट घातक शत्रु हम पर आक्रमण न करें। हे शूर! (त्वया वयं प्रवतः शश्वतीः अपः अति तरामसि) तुम्हारेसे हम स्वसंरक्षणमें समर्थ होकर सब कर्मोंसे हम पार हो जांयगे ।

मानवधर्म-कोई शत्रु अज्ञात मार्गसे हमपर आक्रमण न कर सके, हमारे कल्याण होनेके मार्गमें बाधा न डाल सके, हमारा घातपात न कर सके, हमारा नाश न कर सके, हम सामर्थ्यवान होकर सदा अपनी उन्नतिके सब ही शुभ कर्मोंको करते रहें, उसमें विघ्न न आवे ऐसा सामर्थ्य हमें प्राप्त हो । शासन प्रबंध ऐसा हो ।

१ अज्ञाताः अशिवासः दुराध्यः वृजनाः नः मा अवक्रमुः--अज्ञात मार्गसे अशुभ दुष्ट हिंसक क्रूरकर्मा शत्रुजन हमपर आक्रमण न कर सकें, इतना सामर्थ्य हमें प्राप्त हो ।

२ वयं प्रवतः शश्वतीः अपः अतितराम--हम सब अपनी सुरक्षा करनेमें समर्थ हो कर सदा ही कर्मोंको निर्विघ्नतया कर सकें इतना सामर्थ्य हमें प्राप्त हो ।

[१] (२९३) इंद्र कहता है— (श्वित्यञ्चः धियंजिन्वासः) गौरवर्ण बुद्धिपूर्वक कर्म करनेवाले (दक्षिणतस्कपर्दाः) दक्षिणकी ओर शिखा रखनेवाले वसिष्ठ गोत्रके लोग (मा अभि प्रमन्दुः हि) मुझे अत्यन्त आनन्द देते रहे । (बर्हिषः परि उत्तिष्ठन् नॄन् वोचे) आसनसे ऊपर उठते हुए लोगोंसे मैंने कहा कि (मे दूरात् वसिष्ठाः अवितवे न) मुझसे दूर वसिष्ठके लोग न जांय ।

वसिष्ठ गोत्रियोंका वर्णन—(श्वित्यंचः श्वित्यं अञ्चति) श्वेतवर्ण जिनपर है ऐसे गौरवर्णके ये वसिष्ठ गोत्री पुरुष थे । (धियं-जिन्वासः)— बुद्धिपूर्वक, योजनापूर्वक, कर्म करनेवाले, पहिले विचारपूर्वक निर्णय करके उस योजनाके अनुसार कर्म करनेवाले, (दक्षिणतः-कपर्दाः)—दक्षिणकी ओर सिरके दक्षिण भागमें जिनकी शिखा होती है । वसिष्ठ ऋषि तथा उसके पुत्र गौरवर्ण तथा सिरमें दक्षिण विभागमें शिखा रखनेवाले थे । इन्द्र कहता है कि इन लोगोंने (मा अभि प्रमन्दुः) मुझे अत्यंत सन्तोष दिया है । यज्ञके आसनसे उठते समय इन्द्रने कहा कि (वसिष्ठाः मे दूरात् अवितवे न) वसिष्ठ गोत्री लोग मुझसे दूर न गमन करें ।

परमेश्वर भक्त पर संतुष्ट होकर कहता है कि भक्त मुझसे दूर न जाय ।

[२] (२९४) वसिष्ठ कहता है— (वैशन्तं पान्तं उग्रं इंद्रं) चमसमें स्थित सोमको पीनेवाले उग्र वीर इंद्रको (सुतेन अति तिरः) इस सोमरससे उस पानका तिरस्कार करवाले (दूरात् आनयन्) दूरसे भी ले आये थे । (इंद्रः वायतस्य पाशद्युम्नस्य सुतात् सोमात्) इंद्रने भी वयत् पुत्र पाशद्युम्नके तयार हुए सोमको छोडकर (वसिष्ठान् अवृणीत) वसिष्ठोंको ही वर लिया ।

वयत्पुत्र पाशद्युम्नके यज्ञमें इन्द्र सोमरसका पान कर रहा था । परंतु वसिष्ठोंने ऐसा सोमरस बनाया कि इन्द्रने उस सोमका

३	एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान ।	
	एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः	२९५
४	जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितॄणामक्षमव्ययं न किला रिषाथ ।	
	यच्छक्वरीषु बृहता रवेणेन्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः	२९६
५	उद् द्यामिवेत् तृष्णजो नाथितासोऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः ।	
	वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रोदुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम्	२९७

तिरस्कार करके वसिष्ठोंका सोमरस पीया । सोमरस तैयार करनेके कौशल्यका यह वर्णन है । वासिष्ठ लोग सोमरस तैयार करनेमें अत्यंत प्रवीण थे यह इसका भाव है । 'वसिष्ठ' वह होता है कि जो निवास करानेमें प्रवीण होता है । इन्द्र प्रभु है । लोगोंको निवास करनेके लिये जो सहायता करते है उनपर प्रभुकी कृपा होती है यह इसका तात्पर्य है ।

[३] (२९५) (एव इत् नु एभिः सिन्धुं कं ततार) इसी तरह इन्होंने सिन्धुको सुखसे पार किया। (एव इत् नु एभिः भेदं कं जघान) इसी तरह इन्होंने भेदका नाश सुखसे किया, आपसकी फूटको दूर किया। (एव इत् नु दाशराज्ञे सुदासं) इसी तरह दाशराज्ञ युद्धमें सुदासको हे (वसिष्ठाः) वसिष्ठो ! (वः ब्रह्मणा इन्द्रः प्रावत्) आपके स्तोत्रसे ही इन्द्रने सुरक्षित किया ।

सिन्धु नदीको पार किया, अपसकी फूटको दूर किया, आपसकी उत्तम संघटना की, दाशराज्ञ युद्धमें सुदासकी सुरक्षा की । यह इन्द्रने किया, पर यह वसिष्ठोंके स्तोत्रसे हुआ ।

मानवोंको नदीपार जानेके साधन निर्माण करने चाहिये। आपसके भेदका नाश करना चाहिये । युद्धमें स्वकीयोंका संरक्षण करना चाहिये ।

[४] (२९६) हे (नरः) नेता लोगो ! (वः ब्रह्मणा पितॄणां जुष्टी) आपके स्तोत्रसे पितरोंकी प्रीति होती है। (अक्षं अव्ययं) मैंने अपने रथके अक्षको चलाया है। मैं रथ अपने स्थानको जानेके लिये चलाता हूं। (न किल रिषाथ) तुम क्षीण न होओ। बलवान् बनो। हे (वसिष्ठाः) वसिष्ठ लोगो! (यत् शक्वरीषु बृहता रवेण) शक्वरी ऋचाओंमें बडे आलापोंके स्वरसे, सामगानसे— (इन्द्रे शुष्मं अदधात) इन्द्रमें बल धारण करो, बल बढाओ। इन्द्रका यश बढाओ ।

मानवधर्म— अपनी विद्वत्तासे अपने पितरोंको संतुष्ट करो। रथ चलाने आदिमें स्वाधीन रहो। कभी क्षीण न होओ। बडे स्वरसे वीरोंका काव्यगान करो और वीरोंकी उत्साह पूर्ण शक्ति बढाओ।

१ वः ब्रह्मणा पितॄणां जुष्टी—पुत्रोंके किये काव्यसे पितरोंकी प्रसन्नता होती है । पितर समझते हैं कि अपने पुत्र भी ज्ञानसंपन्न हुए है, ऐसा समझ कर वे प्रसन्न होते हैं । पुत्रोंको उचित है कि वे अपने ज्ञानसे अपने कुलका यश बढावें ।

२ अक्षं अव्ययम्—रथके अक्षको मैं चलाता हूं । अपने स्वामीको उचित है कि वह स्वयं अपने रथको चलावे, रथके अक्ष आदिको ठीक करे । सेवक पर हीं सदा अवलंबित न रहे । इन्द्र कहता है कि जैसा मैं रथ चलाता हूं वैसा तुम लोग भी किया करो । सेवक होने पर भी उनके अधीन होना उचित नहीं है । स्वामी स्वावलंबन करनेवाला हो ।

३ न रिषाथ—तुम क्षीण, निर्बल न बनो । अपनी शक्ति बढाओ । कोई आकर तुम्हारा नाश न कर सके इतने समर्थ बनो ।

४ शक्वरीषु बृहता रवेण इन्द्रे शुष्मं अदधात— बडे स्वरसे सामगान द्वारा अपने इन्द्रका--प्रभुका—नेताका यश गा कर उसका उत्साह बढाओ । उसकी शक्ति बढाओ ।

[५] (२९७) (तृष्णजः वृतासः नाथितासः) तृषित घेरे हुए उन्नति चाहनेवाले वसिष्ठोंने (द्यां इव दाशराज्ञे) द्युलोकके समान दाशराज्ञ युद्धमें (उत् अदीधयुः) इन्द्रकी प्रशंसा गायी। (स्तुवतः

६ दण्डा इवेद् गोअजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित् तृत्सूनां विशो अप्रथन्त २९८
७ त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतांस्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वाँ इत् ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः २९९

वसिष्ठस्य इन्द्रः अशृणोत्) स्तुति करनेवाले वसिष्ठ का स्तोत्र इन्द्रने सुना। और उसने (तृत्सुभ्यः उरुं लोकं अकृणोत्) तृत्सुओंके लिये विस्तृत प्रदेश करके दिया ।

मानवधर्म- भूखे प्यासे, शत्रुओंसे घिरे और अपनी उन्नति चाहनेवाले आतुर हुए भक्तोंने प्रार्थना की तो उसको प्रभु सुनते हैं। इसलिये भक्त अन्तःकरणसे प्रार्थना करे ।

१ **तृष्णजः वृतासः नाथितासः दाशराज्ञे उददीध्युः**—तृषित प्यासे शत्रुसे घेरे हुए उन्नति चाहनेवाले लोगोंने दाशराज्ञ युद्धमें इन्द्रकी प्रशंसा की, अपनी सहायतार्थ इन्द्रको बुलाया ।

२ **स्तुवतः वसिष्ठस्य इन्द्रः अशृणोत्**—वसिष्ठकी प्रार्थना इन्द्रने श्रवण की । और--

३ **तृत्सुभ्यः उरुं लोकं अकृणोत्**--तृत्सुओंके लिये विस्तृत प्रदेश उसने दिया ।

[६] (२९८) (**गो अजनासः दण्डा इव) गौओंको चलानेवाले डंडोंके समान (भरताः परिच्छिन्नाः अर्भकासः आसन्) भरत लोग छोटे और अल्प थे। (तृत्सूनां पुर एता वसिष्ठः अभवत्) उन तृत्सुओं—भरतों—का वसिष्ठ पुरोहित हुआ (आत् इत् तृत्सूनां विशः अप्रथन्त) तबसे भरतोंकी प्रजा बढने लगी ।**

१ **' गो-अजनासः दण्डाः '**– गौओंको चलानेके लिये डंडे छोटेसे, बारीकसे, निर्बलसे होते हैं, गौओंको बडे लठसे मारना नहीं चाहिये यह वेदका आदेश यहां दीखता है। कोमल पल्लवयुक्त बारीकसी सोटीसे गौओंको चलानेके लिये इशारा करना चाहिये । बडे लठसे मारना उचित नहीं है । गौओंको कितने प्रेमसे वेदके समयमें पाला जाता था उसका अनुभव इस मंत्रभागसे हो सकता है ।

२ **भरताः परिच्छिन्नाः अर्भकासः आसन्**— गौओंको चलानेकी काठी जैसी बारीकसी होती है वैसे ही भरत लोग परिछिन्न अल्पसे प्रदेशमें रहनेवाले और अर्भक बालक जैसे अप्रबुद्ध थे । निर्बल थे । अल्पशक्तिवाले या शक्ति हीन थे ।

३ **तृत्सूनां (भरतानां) पुर एता वसिष्ठः अभवत्**—इन भरतोंने वसिष्ठको अपना पुरोहित बनाया, नेता बनाया ।

४ **आत् इत् तृत्सूनां विशः अप्रथन्त**—तबसे भरत लोग बढने लगे, विजयी होने लगे, उनका राज्य बढने लगा ।

' तृत्सु, भरत ' ये नाम एकही के है । ' भरत ' जो भरण-पोषण होकर बढना चाहते हैं वे भरत हैं। ' तृत्सु ' जो (तृट् सु) तृषासे युक्त अर्थात् अपनी उन्नतिकी प्यास जिनको सदा लगी रहती है । अपनी उन्नतिके लिये जो सदा तृषितसे रहते है । ऐसे अपनी उन्नतिके लिये जो प्रयत्नशील होते हैं उनका अगुआ, नेता, पुरोहित जब ' वसिष्ठ ' होता है (वासयति इति वसिष्ठः) जो उत्तम रीतिसे प्रजाओंका निवास कराता है । प्रजाकी उन्नति करनेके लिये जो करना आवश्यक है वह ज्ञान जिसके पास है वह वसिष्ठ है । ऐसा पुरोहित भरत लोगोंने किया, तबसे वे (विशः अप्रथन्त) प्रजाजन, वे भारतीय लोग बढने लगे । फैलने लगे । जिनको ऐसा कुशल नेता मिलता है उनकी उन्नति होती है । वे फैलते है, बढते हैं, समृद्ध होते हैं । यहां (तृत्सु) प्यासे (भरतः) भरण करनेवाले और (वसिष्ठः) निवासक इन शब्दोंके श्लेष अर्थको जाननेसे मुख्य उपदेशका ज्ञान हो सकता है ।

[७] (२९९) (**भुवनेषु त्रयः रेतः कृण्वन्ति) भुवनोंमें तीन देव वीर्य निर्माण करते हैं। (ज्योतिरग्राः आर्याः तिस्रः प्रजाः) ज्योति जिनके सामने रहती है ऐसे आर्य तीन प्रकारकी प्रजारूप होते हैं। (त्रयः घर्मासः उषसं सचन्ते) ये तीन उष्णताएं उषाका सेवन करती हैं। (वसिष्ठाः तान् सर्वान् इत् अनु विदुः) वसिष्ठ इन सबको उत्तम रीतिसे जानते हैं।**

८ सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः ३००

९ त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति ।
यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ३०१

---

१ त्रयः भुवनेषु रेतः कृण्वन्ति—अग्नि, वायु और सूर्य ये तीन देव त्रिभुवनोंमें वीर्य अर्थात् शक्तिका निर्माण करते हैं। 'रेतः'—जल, वीर्य, बल।

२ ज्योतिरग्राः आर्याः तिस्रः प्रजाः—प्रकाशका मार्ग जिनके सामने हमेशा रहता है ऐसी तीन प्रकारकी प्रजाएँ आर्य कहलाती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य यह तीन प्रकारकी आर्य प्रजा है, इनके सामने सदा प्रकाशका मार्ग रहता है। यही देवमार्ग है।

३ त्रयः घर्मासः उषसं वयन्ति--तीन प्रकारकी अग्नि अर्थात् तीन यज्ञ उषः-कालमें शुरू होते है। उषः कालमें तीनों यज्ञोंके कलाप शुरू होते हैं।

४ वसिष्ठाः तान् सर्वान् अनुविदुः--वसिष्ठ इन सबको यथावत् जानते हैं। अथवा जो इन यज्ञोंको यथावत् जानते हैं उनको वसिष्ठ कहा जाता है।

विश्वका अखंड वस्त्र

[८] (३००) हे (वसिष्ठाः) वसिष्ठ पुत्रों! (एषां महिमा) आपकी महिमा (सूर्यस्य ज्योतिः इव वक्षथः) सूर्यके प्रकाशके समान फैली है और (समुद्रस्य इव गम्भीरः) समुद्रके समान गंभीर है। (वातस्य प्रजवः इव) वायुके वेगके समान (वः स्तोमः) आपका स्तोम (अन्येन अनु-एतवे न) किसी अन्यके द्वारा अनुकरण करने योग्य नहीं है। आपकी हि वह विशेषता है।

[९] (३०१) (ते वसिष्ठाः इत्) वे वासिष्ठगण (निण्यं शहस्रवल्शं) सहस्रों शाखोपशाखाओंसे युक्त इस जाननेके लिये कठिन विश्वमें (हृदयस्य प्रकेतैः अभि सं चरन्ति) अपने हृदयकी ज्ञानशक्तियोंसे चारों ओर संचार करते हैं। जानते तथा अनुभव लेते हैं। (यमेन ततं परिधिं वयन्तः वसिष्ठाः) नियामक प्रभुने फैलाये हुए इस वस्त्रको बुनते हुए ये वासिष्ठ गण (अप्सरसः उपसेदुः) अप्सराओंके पास जाकर बैठते हैं।

वसिष्ठ कौन हैं।

पूर्व अष्टम मन्त्रमें वासिष्ठोंके स्तोमकी महिमा वर्णन की है और इस नवम मन्त्रमें विश्वरचनामें भाग लेनेवाले ये वासिष्ठ गण वर्णन किये गये हैं। (**यमेन ततं परिधिं वयन्तः वसिष्ठाः अप्सरसः उपसेदुः**) यमने वस्त्रका ताना फैलाया था, उस वस्त्रको बुननेवाले ये वसिष्ठ अप्सराओंके पास बैठते हैं। यहां 'यम' शब्दसे सबका नियन्ता परमेश्वर ज्ञात होता है और उसका फैलाया हुआ (**ततं परिधिं**) ताना यह विश्वरूपी वस्त्र बुननेके लिये फैलाया हुआ है। यह संपूर्ण विश्व एक वस्त्र जैसा एक जीवनवाला है। ताने बानेके धागे अनेक होनेपर भी सब विश्व मिलकर एक ही वस्त्र है। यह निश्चित सिद्धान्त यहां है।

विश्वरूप एक वस्त्र है।

एक खुट्टी है, उसपर ताना फैलाया है। तानेके धागे यमने फैलाये है। कुछ वस्त्रका भाग बुना है और बाकी वस्त्र बुननेवाला है। यह बुननेका कार्य (**वयन्तः वसिष्ठाः**) करनेवाले, बुननेवाले ये वसिष्ठगण हैं। यमके द्वारा विश्वका वस्त्र बुननेकी जो आयोजना निश्चित हुई है उसमें वस्त्र बुननेका कार्य करनेवाले ये वसिष्ठगण है।

जो जीव विश्वकर्तृत्वका कार्य करनेमे समर्थ हैं जो ईश्वरकी आयोजनामें रहकर विश्वनिर्माणमें अपना कार्य करते हैं वे वसिष्ठ यहां वर्णे गये हैं।

ये वासिष्ठ (**अप्सरसः उपसेदुः**) अप्सराओंके पास आकर बैठे हैं।

वसिष्ठकी उत्पत्ति अप्सरा उर्वशीमें हुई यह कथा इस (**वसिष्ठाः अप्सरसः उपसेदुः**) वचनसे बढती गयी

१०	विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा । तत् ते जन्मोतैकं वसिष्ठाऽगस्त्यो यत् त्वा विश आजभार	३०२
११	उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः । द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त	३०३
१२	स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान् त्सहस्रदान उत वा सदानः । यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः	३०४

है। (अप्सरसः परिजज्ञे वसिष्ठः । मं० १२) अप्सरासे वसिष्ठ उत्पन्न हुआ ऐसा कहा है। इसका विवरण पाठक भूमिकामें स्वतंत्र प्रकरणमें देख सकते है।

[१०] (३०२) हे **वसिष्ठ! (यत् विद्युतः ज्योतिः परि संजिहानं त्वा) जब विद्युतके तेजका परित्याग करनेवाले तुझको (मित्रावरुणा अपश्यतां) मित्र और वरुणने देखा (तत् ते एकं जन्म) तब तुम्हारा वह एक जन्म हुआ था। (यत् त्वा अगस्त्यः विशः आजभार) तब तुझे अगस्त्यने प्रजाओंमेंसे बाहर लाया।**

अन्य देहका धारण

१ विद्युतः ज्योतिः परिसंजिहानं वसिष्ठं मित्रावरुणौ अपश्यतां--विद्युत्के समान अपने तेजकी ज्योतिका परित्याग करनेकी अवस्थामें वसिष्ठ हैं ऐसा मित्र और वरुणने देखा। यह प्रथम वारके देहका त्याग करनेकी अवस्थाका वर्णन है। जीवका स्वरूप विद्युत्की ज्योतिके समान है। योगी लोग उसको शरीरसे अपनी इच्छासे निकालते और अपनी इच्छासे दूसरे देहमें रखते हैं। इस रखनेका नाम ' काया-प्रवेश ' है। जीवात्मा अपना पहिला देह छोडता है और दूसरा देह धारण करता है इसका यह उत्तम तथा स्पष्ट वर्णन है।

२ मित्रावरुणौ— यहां प्राण तथा जीवनके वाचक हैं।

३ अगस्त्यः विशः आजभार—अगस्त्य विशः अर्थात् जीवके निवास स्थानसे, प्रजारूप मानवके पहिले देहसे वसिष्ठ अर्थात जीवात्माको निकालता है। शरीरसे पृथक् करता है।

[११] (३०३) **हे वसिष्ठ! (मैत्रावरुणः असि) मित्र और वरुणका तू पुत्र है। (उत) और हे (ब्रह्मन्) ब्राह्मण! तू (उर्वश्याः मनसः अधि-जातः) उर्वशीके मनसे उत्पन्न हुआ है। (द्रप्सं स्कन्नं) इस समय रेतका पतन हुआ। (दैव्येन ब्रह्मणा) दिव्य मंत्रोंके साथ (विश्वे देवाः त्वा पुष्करे अददन्त) विश्वे देवोंने तुझे पुष्करमें धारण किया।**

' वासिष्ठ ' को ' मैत्रावरुणिः ' कहते हैं। मित्र व वरुणका यह पुत्र है। यह ' ब्राह्मण ' है। ' उर्वशी ' में जन्मा है। मित्रावरुणोंका रेत गिर गया, उर्वशीके दर्शनसे ऐसा हुआ। जिससे वसिष्ठकी उत्पत्ति हुई, ऐसी जो कथा है उसका मूल इस मंत्रमें है। इसका संपूर्ण विवरण भूमिकामें पाठक देख सकते हैं।

[१२] (३०४) **(सः वसिष्ठः उभयस्य प्रविद्वान्) वह वसिष्ठ द्युलोक और भूलोकके सब विषयोंका ज्ञाता (सहस्रदानः उत वा सदानः) हजारों दानोंको देनेवाला अथवा सर्वस्वका दान करनेवाला है। (यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्) नियमाक प्रभुने फैलाये वस्त्रको बुननेवाला यह वसिष्ठ (अप्सरसः परिजज्ञे) अप्सरासे उत्पन्न हुआ।**

सब विद्याओंका ज्ञाता, उदार, विश्वकल्याणके लिये सर्वस्वका प्रदान करनेवाला प्रभुके विश्वरचनाके कार्यको करनेके लिये यह जन्मा है।

१३ सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम् ।
ततो ह मान उदियाय मध्यात् ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ३०५

१४ उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत् प्र वदात्यग्रे ।
उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वासिष्ठः ३०६

---

[१३] (३०५) (सत्रे ह जातौ) यज्ञमें दीक्षा लिये (नमोभिः इषिता) मन्त्रोंद्वारा प्रेरित हुए (कुंभे रेतः समानं सिसिचतुः) मित्रावरुणोंने कुंभमें अपना रेत एक ही समय गिराया। (ततः मध्यात् ह मानः उत् इयाय) उसके बीचमेंसे माननीय अगस्त्य प्रकट हुआ तथा (ततः वसिष्ठं ऋषिं जातं आहुः) उसीसे वसिष्ठ ऋषिको जन्मा कहते हैं।

मित्र और वरुण सत्र नामक बहुत दिन चलनेवाले यज्ञ करनेके लिये दीक्षित होकर यज्ञशालामें बैठे थे। अन्य ऋत्विज मंत्रगान कर रहे थे। इतनेमें इन दोनोंका रेत गिरा और वह कुंभमें इकट्ठा हुआ। उससे अगस्त्य ऋषि हुए जिनकी 'कुंभ योनि, कुंभज' ऐसे अनेक नामोंसे प्रशंसा करते है। उसीसे वासिष्ठ ऋषि भी उत्पन्न हुए ऐसा कहते है। बडा भाई अगस्त्य और छोटा वासिष्ठ है। इसका विवरण भूमिकामें देखिये वहां पूर्वापर संबंध बताकर सब बातोंका स्पष्टीकरण किया है।

[१४] (३०६) हे (प्रतृदः) भरत लोगों! (वः वसिष्ठः आगच्छति) आपके पास वसिष्ठ आरहे हैं। (सुमनस्यमानाः एनं आध्वं) उत्तम मनोभावनासे इनका सत्कार करो। यह वसिष्ठ आनेपर वह (अग्रे उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति) पहिलेसे ही नेता होकर उक्थ और साम गायकोंको धारण करेंगे, तथा (ग्रावाणं बिभ्रत्) सोमरस निकालनेवाले अध्वर्युका भी धारण करेंगे और उन सबको (प्रवदाति) सूना भी देंगे।

भरतके निवासियोंसे इन्द्रने यह वचन कहा है कि तुम ऐसे प्रभावी और बडे ज्ञानी वसिष्ठको अपना पुरोहित बनाओ। वह पुरोहित बनकर तुम्हारे सब अभ्युदयके कार्य वही करेंगे और तुम्हारी उन्नति होती रहेगी।

अच्छा पुरोहित सब राज्यप्रबंध करता है और राष्ट्रकी सब प्रकारकी उन्नति करता है। पुरोहित इस सब राष्ट्रीय कर्तव्योंके ज्ञाता होने चाहिये। वेदके यथावत् ज्ञानसे यह सब प्रबंधशक्ति आती है। वैदिक पढाईकी पूर्णताका ज्ञान इससे हो सकता है।

यहां इन्द्र प्रकरण समाप्त होता है। इस अन्तिम सूक्तमें इन्द्रका विशेष वर्णन नहीं है तथापि जो थोडा है, उस कारण इस सूक्तका पाठ इस प्रकरणमें हुआ है। इस सूक्तके ११ वे मंत्रमें 'विश्वे देवाः' पद है। इन्द्र वसिष्ठका विश्वे देवोंसे संबंध यहां दर्शाया है। अतः इसके आगे यही विश्वे देव प्रकरण है। '**विश्वे देवाः**' का अर्थ 'सब देव' हैं। जो सब देव हैं उनका मनुष्यकी उन्नतिके साथ क्या संबंध है उसका वर्णन अगले प्रकरणमें पाठक देख सकते है।

॥ यहां इन्द्र प्रकरण समाप्त ॥

अनुवाक तीसरा [अनुवाक ५३ वाँ]

[२] विश्वे-देव-प्रकरण

(३४) २५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। विश्वे देवाः, १६ अहिः, १७ अहिर्बुध्न्यः। द्विपदा विराट्, २२-२५ त्रिष्टुप्।

१	प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत् सुतष्टो रथो न वाजी	३०७
२	विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वन्त्यापो अध क्षरन्तीः	३०८
३	आपश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वीर्वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः	३०९
४	आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः	३१०

[१] (३०७) (शुक्रा मनीषा देवी) सामर्थ्य-वाली बुद्धिदेवी (सुतष्टः वाजी रथः न) उत्तम बनावटका घोडोंसे चलाया जानेवाला रथ जैसा शीघ्र आता है, वैसी (अस्मत् प्र एतु) हमारे पास आवे।

मानवधर्म - मनुष्योंको बलवती तेजस्विनी मननशक्ति अपने अन्दर बढानी चाहिये।

प्रभावी बुद्धि

हमें (मनीषा) बुद्धि चाहिये. जो (देवी) क्रीडा, विजयकी इच्छा, व्यवहार, तेजस्विता, स्तुति, आनन्द, हर्ष, प्रीति, स्वप्न (निद्रा), और प्रगतिके प्रयत्नोंमें हमारी सहायता करे और जो (शुक्रा) वीर्यवती हो, बलवती, सामर्थ्य-वती हो, प्रभावी हो। रथका चालक घोडा होता है, उस तरह यह मनीषा हमारे कार्योंका संचालन करे।

आप्-जल

[२] (३०८) (अध क्षरन्तीः आपः) बहनेवाले जलप्रवाह-जीवनप्रवाह- (दिवः पृथिव्याः जनित्रं विदुः) द्युलोक और पृथिवीकी उत्पत्तिको जानते हैं और (शृण्वन्ति) सुनते भी हैं।

जल जीवनका रस है। यह जल शान्ति देनेवाला है जल जीवन ही है। 'ज' -से 'ल' य पर्यंत जो उपयोगी होता है वह 'ज-ल' है। यही जीवन है। पृथ्वीसे लेकर आकाशतक जो पदार्थ हैं, उनकी विद्याको जानना चाहिये और इसी विद्याके व्याख्यान सुनने चाहिये। और इस ज्ञानसे अपना जविन युक्त करके अपने जीवनसे जलके समान शान्ति जगत्में स्थापन करनी चाहिये !

शूर वीर

[३] (३०९) (पृथ्वीः आपः चित्) पृथ्वीके ऊपर मिलनेवाला जल (अस्मै पिन्वन्त) इस इन्द्रकी पुष्टी करता है। (वृत्रेषु उग्राः शूराः मंसन्ते) शत्रुओंके उपद्रव होनेपर उग्र तथा शूर वीर इसी इन्द्रको बुलाते हैं।

[४] (३१०) (अस्मै धूर्षु अश्वान् आदधात) इस इन्द्रको यहां लानेके लिये रथकी धुरामें घोडोंको जोतो। (हिरण्यबाहुः वज्री इन्द्रः न) जिसके बाहूपर सुवर्णके आभूषण हैं ऐसा वज्रधारी इन्द्र जिस तरह घोडे जोतता है, वैसे ही तुम जोतो !

मानवधर्म - शत्रुओंका उपद्रव होनेपर शूर वीर योद्धा इकट्ठे हों और शत्रुको हटानेके लिये संघटित यत्न करें। अन्य लोग इनको जल आदि देकर सहायता करें। इन वीरोंके पोषणके लिये अन्न आदि देवें। इनको लानेके लिये रथके घोडे जोते जांय, रथ तैयार रहें। वीर शस्त्रास्त्र धारण करें, सुवर्ण-भूषणके गणवेश धारण करें। समय पर मुख्य सेनानी भी अपने घोडोंको जोते। वीर स्वावलंबी हों।

५	अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन् त्मना हिनोत	३११
६	त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम्	३१२
७	उदस्य शुष्माद् भानुर्नार्त बिभर्ति भारं पृथिवी न भूम	३१३
८	ह्वयामि देवाँ अयातुरग्ने साधन्नृतेन धियं दधामि	३१४

यज्ञमें जाओ

[५] (३११) (अह इव यज्ञं अभि प्र स्थात) **यज्ञके प्रति अवश्य जाओ। (त्मना याता इव) स्वयं ही अपनी इच्छासे जानेवालेके समान (पत्मन् हिनोत) मार्गसे वेगसे चलो।**

मानवधर्म – जहां यज्ञ चलता हो वहां अपनी इच्छासे ही शीघ्रतासे जाओ। अपने अन्तःकरणकी इच्छासे जानेके समान जाओ। मार्गसे सुस्तीसे न चलो। वेगसे जाओ।

१ यज्ञं अभि प्र स्थात–यज्ञ जहां चल रहा हो वहां अन्तःकरणकी प्रेरणासे जाओ। अवश्य जाओ और वहां जो कार्य हो सकता है वह अवश्य करो।

२ त्मना याता इव—अपनी स्फूर्तिसे जानेवाला जैसा वेगसे चलता है वैसा जल्दीसे जाओ। चलना हो तो वेगसे चलो।

३ पत्मन् हिनोत—मार्गमें चलना हो तो वेगसे चलो। यहां चलना वेगसे होना चाहिये ऐसा कहा है। वह मननीय है। 'जंघयोर्जवः' (अथर्व. १९।६०।१) जंघाओंमें वेग होना चाहिये ऐसा अथर्ववेदमें कहा है, वही इस मंत्रमें कहा है।

युद्धमें जाओ

[६] (३१२) (समत्सु त्मना हिनोत) **युद्धोंमें स्वयं जाओ। (वीरं हिनोत) वीरको युद्धमें जानेके लिये प्रेरित करो। (जनाय केतुं यज्ञं दधात) लोगोंके कल्याणके लिये ज्ञान बढानेवाले यज्ञका धारण करो।**

मानवधर्म – स्वयं प्रेरणासे युद्धोंमें जाओ। स्वयं प्रेरणासे युद्धोंमें लाभ लेनेके लिये दूसरे वीरोंका उत्साह बढाओ। तथा ज्ञानका प्रसार करो।

१ समत्सु त्मना हिनोत— युद्धोंमें स्वयंस्फूर्तिसे जाओ। युद्धके समय पीछे न रहो।

२ समत्सु त्मना वीरं हिनोत—युद्धोंमें स्वयं ही दूसरे वीरोंको जानेके लिये प्रेरित करो।

३ जनाय केतुं यज्ञं दधात—लोगोंके हितके लिये ज्ञान देनेका यत्न करते रहो। ज्ञानसे ही सबका हित होता है।

शक्तिसे सब होता है

[७] (३१३) (अस्य शुष्मात् भानुः उत् आर्त) **इस बलसे सूर्य उदयको प्राप्त होता है। तथा (भूम पृथिवी न भारं बिभर्ति) सब भूत और पृथिवी भार उठाती है।**

मानवधर्म – विश्वमें जो कार्य होता है वह बलसे होता है इसलिये बलको प्राप्त करना चाहिये।

१ अस्य शुष्मात् भानुः उदार्त—बलसे सूर्य उदय होता है, बलसे सूर्य प्रकाशता है।

२ शुष्मात् पृथिवी भारं बिभर्ति—बलसे ही पृथिवी सब भारको उठाती है।

३ भूम शुष्मात् भारं बिभर्ति—उत्पन्न हुए सब भूत अपना अपना कर्तव्यका भार इस बलसे ही धारण करते हैं। तात्पर्य बलसे सब कार्य सिद्ध होता है।

देव कुटिलता रहित हैं

[८] (३१४) हे अग्ने! (अयातुः ऋतेन) **अहिंसक यज्ञसे (साधन् देवान् ह्वयामि) साधना करता हुआ सहायार्थ देवोंको बुलाता हूं, (धियं दधामि च) बुद्धिपूर्वक किये जानेवाले कर्मका मैं धारण करता हूं।**

मानवधर्म – शुद्ध बुद्धिसे कुटिलता रहित कर्मोंको करना चाहिये।

९	अभि वो देवीं धियं दधिध्वं प्र वो देवत्रा वाचं कृणुध्वम्	३१५
१०	आ चष्ट आसां पाथो नदीनां वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः	३१६
११	राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु	३१७
१२	अविष्टो अस्मान् विश्वासु विक्ष्वद्युं कृणोत शंसं निनित्सोः	३१८
१३	व्येतु दिद्युद् द्विषामशेवा युयोत विष्वग्रपस्तनूनाम्	३१९

दिव्य वाणी, बुद्धि और कर्म

[९] (३१५) (वः अभि देवीं धियं दधिध्वं) आप दिव्य बुद्धिका धारण करो। (वः देवत्रा वाचं प्रकृणुध्वं) आप दिव्य विबुधोंके संबंधमें भाषण करते रहो।

मानवधर्म - दिव्य गुणोंसे युक्त बुद्धिसे श्रेष्ठ कर्म करो और दिव्य भावसे परिपूर्ण भाषण करो।

१ देवीं धियं अभि दधिध्वं— दिव्य गुणोंसे युक्त बुद्धिका धारण करो। अपनी बुद्धिको दिव्य गुणोंसे युक्त करो।

२ देवत्रा वाचं प्रकृणुध्वं— दिव्यवाणी अर्थात् दिव्य भावोंको प्रकट करनेवाली वाणी बोलो। ऐसा भाषण करो कि जिससे दिव्य भाव प्रकट हों।

[१०] (३१६) (सहस्रचक्षाः उग्रः वरुणः) सहस्र नेत्रवाला उग्र वीर वरुण (आसां नदीनां पाथः आचष्टे) इन नदियोंके जलको देखता है।

उग्र वरुण देव हमारे जीवन प्रवाहोंको देखता है जिस तरह कोई जल प्रवाहोंको देखे। इसलिये दक्ष रहना चाहिये। शुद्ध आचरण रखना योग्य है।

[११] (३१७) (राष्ट्रानां राजा) यह वरुण राष्ट्रोंका शासक, (नदीनां पेशः) नदियोंका रूप (अस्मै अनुत्तं क्षत्रं) इसका क्षात्र बल उत्तम (विश्वायु) संपूर्ण आयुतक टिकनेवाला है।

राष्ट्रोंका वीर राजा

१ राष्ट्राणां राजा, अस्मै अनुत्तं विश्वायु क्षत्रं— राष्ट्रोंका जो राजा होता है, उसके लिये संपूर्ण आयुतक टिकनेवाला श्रेष्ठ क्षात्र बल चाहिये। ऐसा वीर राजा होना चाहिये।

२ नदीनां पेशः—नदीयोंकी सुंदरता राष्ट्रोंमें हो और राजा यह बढावे।

राजा वरुण यह कार्य करता है इसलिये उसका शासन सब पर हो रहा है।

[१२] (३१८) (अस्मान् विश्वासु विक्षु अविष्टः) हमें सब प्रजाजनोंमें सुरक्षित करो और (निनित्सोः शंसं अ-द्युं कृणोत) निंदा करनेवालेके भाषणको निस्तेज करो।

मानवधर्म - सब प्रजाजनोंका उत्तम संरक्षण हो, हमारा उत्तम संरक्षण हो, निंदकोंकी निंदा प्रभावरहित सिद्ध हो।

१ विश्वासु विक्षु अस्मान् अविष्टः—सब प्रजाजनोंमें हमारी सुरक्षा हो। सब प्रजा सुरक्षित रहे और उसके साथ हम भी सुरक्षित हों।

२ निनित्सोः शंसं अ-द्युं कृणोत—निंदकोंकी निंदाको निस्तेज करो, प्रभावरहित करो, वह असत्य दीखे ऐसा करो।

[१३] (३१९) (द्विषां दिद्युत् अशेवा विष्वक् व्येतु) शत्रुओंका शस्त्र अपरिणामी होकर चारों ओरसे दूर जावे। (तनूनां रपः विष्वक् युयोत) हमारे शारीरिक पाप हमसे दूर हो जांय।

मानवधर्म- शत्रुके अस्त्रशस्त्रोंसे अपने आपको सुरक्षित रखो, शत्रुके शस्त्र प्रभावी न बनें ऐसा रक्षाका प्रबंध करो। काया वाचा मन बुद्धिसे निष्पाप रहो।

१ द्विषां दिद्युत् अशेवा विष्वक् व्येतु—शत्रु वीरोंके तीक्ष्ण शस्त्र भी हमारे पर परिणाम न करनेवाले होकर चारों दिशाओंमें व्यर्थ होते रहें।

२ तनूनां रपः विष्वक् वि युयोत--हमारे स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरोंसे जो भी पाप होनेवाले होंगे, उनको दूर करो। वे होने न पावें।

२२ ता नो रासन् रातिषाचो वसून्या रोदसी वरुणानी शृणोतु ।
वरूत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायः ॥ ३२८

२३ तन्नो रायः पर्वतास्तन्न आपस्तद्रातिषाच ओषधीरुत द्यौः ।
वनस्पतिभिः पृथिवी सजोषा उभे रोदसी परि पासतो नः ॥ ३२९

२४ अनु तदुर्वी रोदसी जिहातामनु द्युक्षो वरुण इन्द्रसखा ।
अनु विश्वे मरुतो ये सहासो रायः स्याम धरुणं धियध्यै ॥ ३३०

२५ तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन् त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३३१

---

[२२] (३२८) (ता वसूनि) वे हमारे लिये अभीष्ट धन (रातिषाचः नः रासन्) दान देनेवाली देवपत्नियां हमें देवें। (रोदसी वरुणानी आशृणोतु) द्यावापृथिवी और वरुणकी पत्नी हमारा स्तोत्र सुनें। (सुदत्रः त्वष्टा) उत्तम दान देनेवाला त्वष्टा— विश्वरचयिता— (वरूत्रीभिः नः सुशरणः) शत्रुनिवारक शक्तियोंके साथ हमारे लिये आश्रय करने योग्य (अस्तु) होकर (रायः वि दधातु) धन हमें देवें।

[२३] (३२९) (नः तत् रायः पर्वताः) हमारे इस धनका ये पर्वत संरक्षण करें। (नः तत् आपः) हमारे उस धनका जल संरक्षण करें, (रातिषाचः तत्) दान देनेवाली पत्नियां उस धनका संरक्षण करें। (ओषधीः उत द्यौः) औषधियां और द्यौ उसका रक्षण करें। (वनस्पतिभिः सजोषा पृथिवी) वनस्पतियोंके साथ रह पृथिवी उसका रक्षण करे। (उभे रोदसी नः तत् परि पासतः) आकाश और पृथिवी ये दो मिलकर हमारे उस धनका संरक्षण करें।

पर्वत, नदियां, जल प्रवाह, औषधियां, द्यौ, पृथिवी, ये सब हमारे सब प्रकारके धनका संरक्षण करें। पर्वतोंसे शत्रुकी गति रुकती है और राष्ट्रका संरक्षण होता है, नदियोंके जलप्रवाहोंसे अन्न उत्पन्न होकर संरक्षण होता है। औषधि वनस्पतियोंसे रोग दूर होकर संरक्षण होता है। पृथिवी और आकाश भी अपनी शक्तियोंसे सहायक होते है। इस तरह सब विश्व, सब जगत्, हमारी सहायता कर रहा है। इन शक्तियोंसे हम अपनी सुरक्षा करनी चाहिये।

[२४] (३३०) (उर्वी रोदसी तत् अनुजिहातां) ये विशाल द्यावापृथिवी इसका अनुमोदन करें। (द्युक्षः इन्द्रसखा वरुणः अनु) तेजस्वी इन्द्रका मित्र वरुण अनुमोदन करे। (ये सहासः विश्वे मरुतः अनु) जो शत्रुका पराभव करनेवाले मरुत् वीर हैं, वे अनुकूल हों। (धियध्यै रायः धरुणं स्याम) धारण करने योग्य धनके हम धारण करनेवाले बनें।

[२५] (३३१) (नः तत्) हमारा यह स्तोत्र इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि, आप्, ओषधियाँ (वनिनः जुषंत) वनमें रहनेवाले वृक्ष ये सब सेवन करें। हम (मरुतां उपस्थे शर्मन् स्याम) मरुत् वीरोंके समीप कल्याण रूप स्थानमें रहें। (सदा नः यूयं स्वस्तिभिः पात) सदा हमें आप कल्याणके साधनोंसे सुरक्षित रखो।

ये सब देव हमारी प्रार्थना सुनें, हमारी सहायता करें, हम सुरक्षित हों, धनसे युक्त हों और सुरक्षित हों।

(३५) १५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

१ शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ३३२

२ शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ३३३

३ शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ३३४

---

[१] (३३२) **(इन्द्राग्नी अवोभिः नः शं भवतां) इन्द्र और अग्नि अपने संरक्षणोंसे हमारे लिये शांति देनेवाले हों। (रातहव्या इन्द्रावरुणा नः शं) जिनको हवि दिया है ऐसे ये इन्द्र और वरुण हमें शांति देनेवाले हों। (इन्द्रासोमा नः शं शं सुविताय च) इन्द्र और सोम हमारे लिये शांति तथा कल्याण देनेवाले हों, और (इन्द्रापूषणा वाजसातौ नः शं योः) इन्द्र और पूषा युद्धमें हमारा कल्याण करनेवाले हों।**

वाजसाति— युद्ध, स्पर्धा, अन्नकी प्राप्तिकी स्पर्धा। बलसे होनेवाली स्पर्धा। '**शं**'— शान्ति, सुख। '**योः**'— योग, अप्राप्त वस्तुका लाभ।

'**इन्द्राग्नी, इन्द्रावरुणौ, इन्द्रासोमौ, इन्द्रापूषणौ**' इनमें प्रत्येकमें इन्द्र है। इन्द्र विद्युत् स्वरूप है, अग्नि उष्णता करनेवाला, वरुण जलदेव, सोम वनस्पति और पूषा अन्नाधिपति है। जल, वनस्पति, अन्नके साथ अग्नि पकाने आदिमें सहायक होता है। प्रत्येकके साथ इन्द्र है। विद्युत्–अग्नि, विद्युत्–जल, विद्युत्-वनस्पति और विद्युत्–अन्न ये हमारे अन्दर शान्ति स्थापन करें, विषमता दूर करें, हमारा कल्याण करें, स्पर्धामें हमारा रक्षण करें, हमारे पास जो धन है उसका उपभोग हम शान्तिसे ले सकें और जो धन हमारे पास नहीं है उसका हमें लाभ हो। यह सुख हमें मिलता रहे।

[२] (३३३) **(भगः नः शं अस्तु) भग हमें शांति देनेवाला हो, (शंसः नः शं उ) मनुष्यों-द्वारा प्रशंसित देव हमें शांति देनेवाला हो। (पुरंधिः नः शं) विशाल बुद्धि हमें शांति देवे और (रायः शं उ सन्तु) सब प्रकारके धन हमें शांति देवें। (सुयमस्य सत्यस्य शंसः नः शं) उत्तम नियमपूर्वक बोला जानेवाला सत्य वचन हमें शांति देनेवाला हो। (पुरुजातः अर्यमा नः शं अस्तु) बहुत प्रशंसित अर्यमा हमें शांति देनेवाला हो।**

(भग) ऐश्वर्य, (शंसः) प्रशंसा, (पुरंधिः) विशाल बुद्धि, (रायः) धन, (सत्यस्य शंसः) सत्य भाषण, (अर्यमा) श्रेष्ठत्वका निर्णय करनेवाला न्यायाधिपति ये सब हमारे अन्दर शान्ति स्थापन करनेवाले हों। यहां सर्वत्र 'नः' पद है उसका अर्थ 'हम सबमें' ऐसा है। हमारे समाजमें, हमारे राष्ट्रमें शान्ति और सुख सदा शाश्वत रहे।

[३] (३३४) **(धाता नः शं) आधार देनेवाला हमें शांति देनेवाला हो, (धर्ता नः शं उ अस्तु) धारणकर्ता हमें शांति देनेवाला हो। (उरूची स्वधाभिः नः शं भवतु) गति करनेवाली पृथिवी अन्नोंसे हमें शांति देनेवाली हो। (बृहती रोदसी नः शं) बडी द्यावापृथिवी हमें शांति देवे। (अद्रिः नः शं) पर्वत हमें शांति देवे। (देवानां सुहवानि नः शं सन्तु) देवोंकी स्तुतियां हमें शान्ति देनेवाली हों।**

सृष्टीकी रचना करनेवाला, सर्वाधार देव, यह पृथिवी, आकाश, पर्वत और उपासना ये सब हमें शान्ति देनेवाले हों।

अन्न देनेवाली पृथिवी शान्ति देनेवाली हो। उत्तम अन्न देनेवाली मातृभूमि पर शत्रु आक्रमण करते हैं और उस कारण अशान्ति उत्पन्न होती है। पर्वत भी इसी तरह शत्रुसे व्याप्त होते हैं। इनका निवारण करके ये सब शान्ति देनेवाले हों।

४ शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ३३५

५ शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ३३६

६ शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ३३७

७ शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्व१ः शम्वस्तु वेदिः ३३८

---

[४] (३३५) (ज्योतिरनीकः अग्निः नः शं अस्तु) तेज ही जिसकी सेना है ऐसा अग्नि हमारे लिये शांति देनेवाला हो। (मित्रावरुणा नः शं) मित्र और वरुण, सूर्य और चन्द्र हमारे लिये शांति देनेवाले हों। (अश्विना शं) अश्विदेव हमें शांति देनेवाले हों। (सुकृतां सुकृतानि नः शं सन्तु) सत्कर्म करनेवालोंके सत्कर्म हमारी शांति बढानेवाले हों। (इषिरः वातः नः शं अभि वातु) गतिशील वायु हमारे लिये कल्याण करनेवाला होकर बहता रहे।

सुकृत शान्ति देनेवाले हों

इस मंत्रमें तेजस्वी अग्नि, मित्र (सूर्य), वरुण (चन्द्रमा) अश्विनौ वायु ये सब हमें शान्ति दें ऐसा कहा है, परंतु '**सुकृतां सुकृतानि नः शं सन्तु**' अर्थात् पुण्य कर्म करनेवाले महा पुरुषोंके प्रशंसित कर्म हमारे लिये शान्ति बढानेवाले हों ऐसा जो कहा है वह बडा मननीय है। कभी कभी बडे बडे महात्माओंके उत्तम कृत्य भी घोर अनर्थ उत्पन्न करनेवाले सिद्ध होते हैं। इतिहासमें इसकी पर्याप्त साक्षी मिलती है। इसलिये यह सूचना बडी महत्त्व की। महात्मा पुण्य पुरुष भी इसका विचार अपने मनमें रखें और लोग भी इसका विचार करें। महात्माओंके विचार और कर्म अच्छे होंगे, पर वे शान्ति स्थापन करनेवाले होंगे ऐसा नहीं कहा जा सकता। कभी कभी महा पुरुषोंके शुभ कर्मसे भी राष्ट्रका राष्ट्र बडी विपत्तिमें पडनेकी संभावना हो सकती है। महा पुरुषकी सरलताका फायदा शत्रु उठाते हैं और उस कारण बडी आपत्ति राष्ट्रपर अथवा समाजपर आजाती है। इसलिये वेदकी यह सूचना बडी सावधानीकी है। वसिष्ठ ऋषिका यह वचन विशेष महत्त्वका है।

[५] (३३६) (पूर्वहूतौ द्यावापृथिवी नः शं) प्रथम प्रार्थना किये द्यावा-पृथिवी हमें शांति प्रदान करें। (अन्तरिक्षं नः दृशये शं अस्तु) अन्तरिक्ष हमारे दर्शनके लिये शांति देनेवाला हो। (वनिनः ओषधीः नः शं भवन्तु) वनमें उत्पन्न होनेवाले वृक्ष और औषधियाँ हमें शांति दें। (जिष्णुः रजसः पतिः नः शं अस्तु) विजयशाली लोकपति हमें शांति दें।

[६] (३३७) (देवः इन्द्रः वसुभिः नः शं अस्तु) इन्द्र देव अष्ट वसुओंके साथ हमें शांति दें। (सुशंसः वरुणः आदित्येभिः शं) प्रशंसनीय वरुण द्वादश आदित्योंके साथ हमें शांति दें। (जलाषः रुद्रः रुद्रेभिः नः शं) जल देनेवाला रुद्र एकादश रुद्रोंके साथ हमें शांति दें। (ग्नाभिः त्वष्टा इह नः शं शृणोतु) देवपत्नियोंके साथ त्वष्टा यहां शांतिसे हमारे स्तोत्र सुनें।

[७] (३३८) (सोमः नः शं भवतु) सोम हमें शांति दें। (ब्रह्म नः शं) ब्रह्म हमें शांति दें। (ग्रावाणः नः शं) पत्थर हमें शांति दें। (यज्ञाः नः शं उ सन्तु) यज्ञ हमें शांति दें। (स्वरूणां मितयः नः शं भवन्तु) यूपोंके प्रमाण हमें शांति दें। (प्रस्वः नः शं) औषधियां हमें शान्ति दें। (वेदिः नः शं उ अस्तु) वेदि हमें शांति दे।

८ शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥ ३३९

९ शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ३४०

१० शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः ॥ ३४१

११ शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥ ३४२

१२ शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥ ३४३

---

[८] (३३९) (उरुचक्षाः सूर्यः नः शं उदेतु) विशाल तेजवाला सूर्य हमारी शांतिके लिये उदित हो। (चतस्रः प्रदिशः नः शं भवन्तु) चारों दिशाएँ हमें शांति दें। (ध्रुवयः पर्वताः नः शं भवन्तु) स्थिर पर्वत हमें शांति दें। (सिन्धवः नः शं) समुद्र हमें शांति दें। (आपः नः शं उ सन्तु) जल हमें शांति दे।

[९] (३४०) (अदितिः व्रतेभिः नः शं भवतु) अदिति अपने व्रतोंसे हमें शांति दे। (स्वर्काः मरुतः नः शं भवन्तु) उत्तम तेजस्वी मरुत् वीर हमें शांति दें। (विष्णुः नः शं) विष्णु हमें शान्ति दें। (पूषा नः शं उ अस्तु) पूषा हमें शान्ति दें। (भवित्रं नः शं) भुवन हमें शान्ति दें। (वायुः शं उ अस्तु) वायु हमें शान्ति दें।

[१०] (३४१) (त्रायमाणः सविता देवः नः शं) संरक्षणकर्ता सविता देव हमें शान्ति दें। (विभातीः उषसः न शं भवन्तु) तेजस्वी उषाएं हमें शांति दें। (पर्जन्यः नः शं भवतु) पर्जन्य हमें शांति दें। (क्षेत्रस्य शंभुः पतिः नः प्रजाभ्यः शं अस्तु) देशका कल्याण करनेवाला अधिपति हमारी प्रजाके लिये शांति दें।

१ क्षेत्रस्य पतिः शंभुः--राष्ट्रका राजा कल्याण करनेवाला अर्थात् प्रजाका हित करनेवाला हो।

२ क्षेत्रस्य पतिः प्रजाभ्यः शं अस्तु—राष्ट्रका राजा प्रजाजनोंके लिये शान्ति देनेवाला हो। राजा प्रजाको शान्ति दे और प्रजाका कल्याण भी करे।

[११] (३४२) (विश्वदेवाः देवाः नः शं भवन्तु) सब प्रकाशमान देव हमें शांति दें। (सरस्वती धीभिः सह शं अस्तु) सरस्वती बुद्धियोंके साथ हमें शांति दें। (अभिषाचः शं) यज्ञकी सेवा करनेवाले हमें शांति दें। (रातिषाचः नः शं उ) दान देनेवाले हमें शांति दें! (दिव्याः पार्थिवाः अप्याः) द्युलोक, पृथिवी और जलमें उत्पन्न होनेवाले (नः शं) हमें शांति दें।

सरस्वती धीभिः नः शं अस्तु—सरस्वती विद्या देवी (धीभिः) अनेक प्रकारकी बुद्धियुक्त कर्म शक्तियोंके साथ हमें शान्ति दें। विद्यासे बुद्धियां संस्कार संपन्न होती हैं और उन बुद्धियोंसे नाना प्रकारके कर्म करनेकी शक्ति बढती है। यह सब विद्याक्षेत्र शान्ति स्थापन करनेवाला हो। विद्या तथा कर्म शक्तिके बढनेसे स्पर्धा बढकर अशान्ति ही न बढे, परंतु विद्या और कर्मशक्ति बढनेसे सर्वत्र शान्ति, सुख और आनन्द बढे। विद्यावृद्धिका परिणाम विपरीत न हो यह यहां सूचित किया है जो महत्त्वयुक्त है।

[१२] (३४३) (सत्यस्य पतयः नः शं भवन्तु) सत्यका पालन करनेवाले हमें शांति देनेवाले हों। (अर्वन्तः गावः नः शं सन्तु) घोडे और गौवें हमें

१३	शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।	
	शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा	३४४
१४	आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।	
	शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः	३४५
१५	ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।	
	ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	३४६

(३६) १. मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

१	प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः ।	
	वि सानुना पृथिवी सस्र उर्वी पृथु प्रतीकमध्येधे अग्निः	३४७

शांति दें। (सुकृतः सुहस्ताः ऋभवः नः शं) कुशलतासे कर्म करनेवाले उत्तम हाथवाले ऋभु हमें शांति दें। (हवेषु पितरः नः शं भवन्तु) यज्ञमें पितर हमें शांति देनेवाले हों।

सत्यस्य पतयः नः शं भवन्तु — सत्य पालनका व्रत लेनेवाले लोग हमें शान्ति देनेवाले हों। यह एक बडी सावधानीकी सूचना है। सत्य पालन करनेवाले अपने सत्य पालनका परिणाम क्या होगा इसका विचार नहीं करेंगे, तो उनके सत्य पालनके व्रतसे बडे कष्ट भी हो सकते हैं। इसलिये सावधानतासे ही सत्य पालन करना चाहिये।

[१३] (३४४) (**अजः एकपात् देवः नः शं अस्तु**) एक पाद् अज देव हमें कल्याण करनेवाला हो। (अहिः बुध्न्यः नः शं) अहिर्बुध्न्य हमें शांति दे। (समुद्रः शं) समुद्र शांति दे। (पेरुः अपां नपात् नः शं अस्तु) आपत्तियोंसे पार करनेवाला **अपां नपात् देव हमें शांति दे**। (देवगोपा पृश्निः नः शं भवतु) देवों द्वारा सुरक्षित गौ हमें शांति प्रदान करें।

' अजः एकपात् देवः ' — उदय पानेवाले सूर्यका एक अंश ऊपर आता है, वह एकपात् — एक अंश उदित सूर्य अज एकपात् है। ' बुध्न्यः अहिः ' — सबको आधार देनेवाला और कभी (अ-हि) नाशको प्राप्त न होनेवाला मूल आधार देव। **' अपां न-पात् '** — जलोंको न गिरानेवाला मेघस्थ अग्नि। अथवा जलसे पृथिवी और पृथिवी पर अग्नि, इस तरह जलका पौत्र अग्नि। ' देवगोपा पृश्निः ' — देव जिसकी सुरक्षा करते हैं वह माता गौ।

[१४] (३४५) (**नवीयः क्रियमाणं इदं ब्रह्म**) **नवीन किया जानेवाला यह स्तोत्र है, इसका आदित्य, वसु और रुद्र स्वीकार करें। (दिव्याः) द्युलोकमें उत्पन्न (पार्थिवासः) पृथिवीपर उत्पन्न (गोजाताः) स्वर्गमें उत्पन्न अथवा गौके हित करनेके लिये उत्पन्न (उत ये यज्ञियासः) और जो यज्ञके योग्य हैं वे सब (नः शृण्वन्तु) हमारी प्रार्थना सुनें।**

[१५] (३४६) (**ये यज्ञियानां देवानां यज्ञियाः**) **जो पूजनीय देवोंके लिये भी पूजनीय हैं, जो** (मनोः यजत्राः ते) **मनुके लिये भी पूज्य हैं वे** (ऋतज्ञाः अमृताः) **ऋत जाननेवाले अमर देव** (अद्य उरुगायं नः रासन्तां) **आज हमें विस्तृत प्रशंसनीय यश दें। विस्तृत यश प्राप्त करनेवाला पुत्र प्रदान करें। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप सदा हमें कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित रखो।**

हमें सुयश मिले और हमें पुत्र भी ऐसा मिले कि जो सुयश प्राप्त करनेवाला हो।

सूर्य, पृथिवी, अग्नि

[१] (३४७) (**ऋतस्य सदनात् ब्रह्म प्र एतु**) **सत्यके स्थानसे ज्ञान फैले। (सूर्यः रश्मिभिः गाः विससृजे) सूर्य अपने किरणोंसे वृष्टिके उदक**

२	इमां वां मित्रावरुणा सुवृक्तिमिषं न कृण्वे असुरा नवीयः ।	
	इनो वामन्यः पदवीरदब्धो जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः	३४८
३	आ वातस्य ध्रजतो रन्त इत्या अपीपयन्त धेनवो न सूदाः ।	
	महो दिवः सदने जायमानोऽचिक्रदद् वृषभः सस्मिन्नूधन्	३४९
४	गिरा य एता युनजद्धरी त इन्द्र प्रिया सुरथा शूर धायू ।	
	प्र यो मन्युं रिरिक्षतो मिनात्या सुक्रतुमर्यमणं ववृत्याम्	३५०

भेजता है। (उर्वी पृथिवी सानुना वि सस्रे) विशाल पृथिवी पर्वत शिखरोंसे युक्त बनी है। (अग्निः पृथु प्रतीकं अधि आ ईधे) अग्नि विस्तीर्ण पृथिवीके प्रतीक रूप वेदीपर प्रदीप्त होता है।

१ **ऋतस्य सद्मनात् ब्रह्म प्र एतु**—सत्यके केन्द्रसे सत्य ज्ञान फैलता है । यज्ञ स्थानसे ज्ञानके सूक्त प्रसृत हुए हैं ।

२ **सूर्यः रश्मिभिः गाः विससृजे**—सूर्य अपने किरणोंसे वृष्टिकी उत्पत्ति करता है । किरणोंसे बाष्प होता है, उससे मेघ और मेघोंसे वृष्टि होती है ।

३ **उर्वी पृथिवी सानुना विसस्रे**—यह विशाल पृथिवी पर्वत शिखरोंके साथ उस वृष्टिके जलको लेती है और धान्यकी उत्पत्ति करती है । इस अन्नका यज्ञ होता है ।

४ **अग्निः पृथु प्रतीकं अधि आ ईधे**—अग्नि वेदीपर प्रदीप्त होता है, उसमें उस धान्यका—अन्नका—हवन होता है और इस समय उक्त ज्ञानके सूक्त गाये जाते हैं ।

सत्य ज्ञानका प्रसार हो । वृष्टिसे धान्य उत्पन्न होकर उसका यज्ञ किया जाय और यज्ञ स्थान ज्ञान-प्रसारका केन्द्र हो ।

मित्र-वरुण

[२] (३४८) हे (असुरा मित्रावरुणा) बलशाली मित्र और वरुण ! (वां इषं न) आप दोनोंके लिये अन्नके समान (नवीयः इमां सुवृक्तिं कृण्वे) इस नवीन स्तोत्रको करता हूं। (वां अन्यः इनः अदब्धः) आपमेंसे एक वरुण प्रभु है और न दबनेवाला है और (पद-वीः) धर्माधर्मका निर्णय करके योग्य स्थान देनेवाला है और (ब्रुवाणः मित्रः च जनं यतति) प्रशंसित हुआ मित्र लोगोंको धर्म मार्गमें प्रेरित करता है।

मानवधर्म - मनुष्य प्रभावी सामर्थ्यसे युक्त बने । उत्तम शासक बनें, शत्रुसे न दबें, मानवोंकी योग्यताकी परीक्षा करके उनको योग्य स्थान दें । और मित्रवत् आचरण करके लोगोंको सत्कार्यमें प्रवृत्त करते जांय ।

१ **मित्रावरुणौ असुरौ**— मित्र तथा वरुण ये दो देव (असु-रौ) प्राणके बलसे युक्त हैं । बलवान् हैं । इस तरह मनुष्य बलवान बने, अपने अन्दर प्राणकी शक्ति बढावें ।

२ **अन्यः इनः अदब्धः पद-वीः**— एक शासक है, शत्रुसे न दबनेवाला अर्थात् विशेष प्रभावी है और योग्य मनुष्यकी धर्माधर्म विषयक परीक्षा करके उसको योग्य स्थान देनेवाला है । इसी तरह मनुष्य भी उत्तम शासक बने, शत्रुसे न दब जानेवाला हो और मनुष्योंकी योग्य परीक्षा करके योग्य स्थानपर योग्य मनुष्यको रखे ।

३ **मित्रः जनं यतति**—मित्र रूप रहकर दूसरा लोगोंको सत्कर्ममें प्रेरित करता है ।

वायु-पर्जन्य

[३] (३४९) (ध्रजतः वातस्य इत्या आ रन्ते) चलनेवाले वायुकी गति चारों ओर सुशोभित होती है। (सूदाः धेनवः न अपीपयन्त) दूध देनेवाली गौवें बढती हैं। तथा (महः दिवः सदने जायमानः) इस विशाल द्युलोकके स्थानमें उत्पन्न होनेवाला (वृषभः) वृष्टि करनेवाला मेघ (सस्मिन् ऊधन्) उस अन्तरिक्षमें (अचिक्रदत्) गर्जना करता है ।

वायु बहता है, मेघ आते हैं, वृष्टि होती है, घांस बढता है, उसको खाकर गौवें पुष्ट होती हैं और बहुत दूध देती हैं ।

इन्द्र-अर्यमा

[४] (३५०) हे शूर इन्द्र ! (ते प्रिया सुरथा धायू हरी) तेरे प्रिय रथको जोते जानेवाले बलवान घोडे हैं, (यः गिरा एता युनजत्) जो उत्तम

५ यजन्ते अस्य सख्यं वयश्च नमस्विनः स्व ऋतस्य धामन् ।
वि पृक्षो बाबधे नृभिः स्तवान इदं नमो रुद्राय प्रेष्ठम् ३५१

६ आ यत् साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता ।
याः सुष्वयन्त सुदुघाः सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः ३५२

७ उत त्ये नो मरुतो मन्दसाना धियं तोकं च वाजिनोऽवन्तु ।
मा नः परि ख्यदक्षरा चरन्त्यवीवृधन् युज्यं ते रयिं नः ३५३

८ प्र वो महीमरमतिं कृणुध्वं प्र पूषणं विदथ्यं१ न वीरम् ।
भगं धियोऽवितारं नो अस्याः सातौ वाजं रातिषाचं पुरंधिम् ३५४

शब्दोंके साथ इनको रथके साथ जोतता है वहां तुम जाते हैं। (यः रिरिक्षतः मन्युं प्र मिनाति) जो हिंसक शत्रुके क्रोधको दूर करता है, निष्फल बनाता है, उस (सुक्रतुं अर्यमणं आ ववृत्यां) उत्तम कर्म करनेवाले अर्यमाको मैं अपनी ओर लाता हूं।

हिंसक शत्रुके क्रोधको अथवा उसके विनाशक प्रयोगको निष्फल बनाने योग्य अपना सामर्थ्य बढाना चाहिये ।

रुद्र

[५] (३५१) (नमस्विनः ऋतस्य स्वे धामन्) अन्नवाले यज्ञके अपने स्थानमें रहकर (वयः अस्य सख्यं यजन्ते) प्रगतिशील लोग इस रुद्रकी मित्रता करनेके लिये यज्ञ करते हैं। (नृभिः स्तवानः पृक्षः वि बाबधे) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित होकर रुद्र उपासकोंको अन्न देता है। (रुद्राय प्रेष्ठं इदं नमः) इस रुद्रके लिये बडा प्रियकर यह स्तोत्र है।

सिन्धु-सरस्वती-सात नदीयाँ

[६] (३५२) (सिन्धुमाता सप्तथी सरस्वती) माताके समान सिन्धु नदी और सातवी सरस्वती नदी (सुधाराः सुदुघाः या सुष्वयन्त) उत्तम प्रवाहवाली और उत्तम दूध देनेवाली गौओंसे युक्त होकर बहती रहें। (स्वेन पयसा पीप्यानाः) अपने जलसे भरपूर होकर (याः यशसः वावशानाः) अन्न बढानेकी कामनासे (साकं अभि आ) साथ साथ बहती रहें।

सात नदियां हैं। इनमें सिन्धु नदी माता है और सातवी सरस्वती नदी है। इनके तीर पर दुधारू गौवें रहती हैं। अपने जलसे ये नदियां भूमिका उपजाऊ गुण बढाती हैं, पर्याप्त अन्न देती हैं। ये नदियां सदा बहती रहें और अन्न देती रहें।

वीर मरुत्, वाक्

[७] (३५३) (उत मन्दसानाः वाजिनः त्ये मरुतः) आनन्द बढानेवाले बलवान वे मरुत् वीर (नः तोकं धियं च अवन्तु) हमारे पुत्रोंको और बुद्धियुक्त कर्मोंको सुरक्षित रखें। (अक्षरा चरन्ती नः परि मा ख्यत्) अविनाशी चलनेवाली वाणी हमें छोडकर किसी अन्यको न देखे। हमारे पास ही रहे। (ते नः युज्यं रयिं अवीवृधन्) वे मरुद्वीर और वाणी हमारे योग्य धनको बढावें।

हमारे वालबच्चोंकी सुरक्षा हो। हमारी बुद्धि और कर्म शक्ति बढे। हमारी वाणी प्रशस्त हो। और इन सबकी सहायतासे हमारा धन योग्य मार्गसे बढे।

ते नः युज्यं रयिं अवीवृधन्—वे हमारे योग्य धनको सुयोग्य मार्गसे बढाते रहें। अयोग्य मार्गसे धन न बढे।

[८] (३५४) (वः महीं अरमतिं प्र कृणुध्वं) आप विशाल भूमिको मांगो। तथा (विदथ्यं पूषणं वीरं न) युद्धके योग्य वीर पूषाको मांगो। (नः अस्याः धियः अवितारं भगं) हमारे इस बुद्धियुक्त कर्मका संरक्षण करनेवाले भग देवके पास मांगो। तथा (पुरंधिं रातिषाचं वाजं सातौ) नगरकी धारणा करनेवाली जिसकी बुद्धि है और जो

९ अच्छायं वो मरुतः श्लोक एत्वच्छा विष्णुं निषिक्तपामवोभिः ।
उत प्रजायै गृणते वयो धुर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३५५

(३७) ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

१ आ वो वाहिष्ठो वहतु स्तवध्यै रथो वाजा ऋभुक्षणो अमृक्तः ।
अभि त्रिपृष्ठैः सवनेषु सोमैर्मदे सुशिप्रा महभिः पृणध्वम् ३५६

दानशील है उस बलवान् देवकी सहायता युद्धके समय मांगो ।

१ महीं अरमतिं प्र कृणुध्वं — इस पृथिवीके ऊपर अपने लिये विशाल कार्यक्षेत्र बनाओ ।

२ विदथ्यं पूषणं वीरं प्र कृणुध्वं — युद्धमें जाकर विजय प्राप्त करनेवाले पोषक वीर पुत्रको निर्माण करो । पुत्रको ऐसी शिक्षा दो कि जिससे युद्धके योग्य वे वीर हो सकेंगे ।

३ धियः अवितारं भगं प्र कृणुध्वं — बुद्धि पूर्वक किये कर्मका संरक्षण करनेवाले भाग्यवान पुत्रको निर्माण करो ।

४ सातौ पुरंधिं रातिषाचं वाजं प्र कृणुध्वं — युद्ध के समय नगरका संरक्षण करनेवाले, दान देनेमें कुशल, बलवान् वीर पुत्रको निर्माण करो ।

'**वीर**' = पुत्र, वीर, शूर संतान ।

[९] (३५५) हे (**मरुतः**) **मरुद्वीरो ! (वः अयं श्लोकः अच्छ एतु) आपका यह स्तोत्र आपके पास सीधा पहुंचे । (निषिक्तपां अवोभिः विष्णुं अच्छ) गर्भका संरक्षण अपनी संरक्षक शक्तियोंसे करनेवाले विष्णुके पास यह स्तोत्र पहुंचे । (उत प्रजायै गृणते वयः धुः) वे सन्तान और अन्न उपासकको दें। (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) आप हमें कल्याणके साधनोंसे सदा सुरक्षित रखो ।**

१ निषिक्तपां विष्णुं अवोभिः — अपने संरक्षणोंके साधनोंसे विष्णु गर्भका संरक्षण करता है । विष्णु जगत्का प्रशासन करनेवाला है । यहांका राजा भी राष्ट्रमें ऐसा प्रबंध करे कि जिससे गर्भोंका, बालकोंका उत्तम संरक्षण हो ।

२ प्रजायै वयः धुः — प्रजाके लिये अन्न दिया जाये । राष्ट्रमें जो अन्न होगा उसका उपयोग संतानोंकी पालनाके लिये प्रथम होना चाहिये । सब देव अन्नका धारण प्रजाके लिये ही करते है । वैसा मनुष्य भी किया करें ।

ऋभूः-कारीगर

[१] (३५६) (**ऋभुक्षणः वाजाः**) **हे तेजस्वी ऋभु देवो ! (वः वाहिष्ठः स्तवध्यै अमृक्तः रथः आ वहतु) आपको यह वाहक प्रशंसनीय और अहिंसित रथ यहां ले आवे । हे (सुशिप्राः) शोभन शिरस्त्राणवालो अथवा सुन्दर हनुवालो ! (सवनेषु मदे त्रिपृष्ठैः महोभिः सोमैः) हमारे यज्ञोंमें आनन्द करनेके लिये दूध-दहि-सत्तु मिश्रित महान सोमरसोंसे (आ पृणध्वं) अपने पेट भर दो ।**

१ ऋभुक्षणः वाजाः — विशेष तेजका निवास स्थान जैसे तथा अन्न बल और धन उत्पन्न करनेवाले ऋभु कारीगर है । प्रत्येक कुशल कारीगर अन्न, धन और बलका निर्माण करता है । ऐसे कारीगर राष्ट्रमें हों ।

२ सुशिप्राः — उत्तम हनुवाले, उत्तम शिरस्त्राणवाले, उत्तम कवचवाले ।

३ वाहिष्ठः अमृक्तः रथः — रथ उत्तम वहन करनेवाला हो, टूटनेवाला न हो, किसी शत्रुसे अभेद्य हो । ऐसा रथ हो ।

४ त्रिपृष्ठैः महाभिः सोमैः आ पृणध्वं — दूध, दही और सत्तु सोमरसमें मिला कर पीया जाय । ये पदार्थ सोममें इतने मिलने चाहिये कि जो सोमरस (पृष्ठ) के पृष्ठपर दीखते रहे । इससे मिलानेका प्रमाण स्पष्ट हो जाता है ।

२ यूयं ह रत्नं मघवत्सु धत्थ स्वर्दृश ऋभुक्षणो अमृक्तम्।
सं यज्ञेषु स्वधावन्तः पिबध्वं वि नो राधांसि मतिभिर्दयध्वम् ३५७

३ उवोचिथ हि मघवन् देष्णं महो अर्भस्य वसुनो विभागे।
उभा ते पूर्णा वसुना गभस्ती न सूनृता नि यमते वसव्या ३५८

४ त्वमिन्द्र स्वयशा ऋभुक्षा वाजो न साधुरस्तमेष्यृक्वा।
वयं नु ते दाश्वांसः स्याम ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः ३५९

---

[२] (३५७) हे (ऋभुक्षणः) तेजस्वी ऋभुओ ! (स्वर्दृशः यूयं) आत्मदर्शी आप लोग (मघवत्सु अमृक्तं रत्नं धत्थ) धनवान हम दाताओंके लिये अहिंसित रत्नोंका प्रदान करो। (स्वधावन्तः यज्ञेषु सं पिबध्वं) बलवान् तुम लोग हमारे यज्ञोंमें सोमरसका पान करो। तथा (मतिभिः राधांसि नः दयध्वं) अपनी बुद्धियोंके साथ सिद्धि देनेवाले धनोंको हमें दे दो।

१ ऋभुक्षणः स्वर्दृशः- तेजस्वी कारीगर आत्मदर्शी हों। स्वर्गकी ओर दृष्टि रखकर कार्य करनेवाले हों। परम सत्य सुखकी ओर दृष्टि रखनेवाले हों।

२ अमृक्तं रत्नं धत्थ — दुष्टोंद्वारा चुराया न जानेवाला धन हमें दो । अर्थात् हमारे पास संरक्षणकी शक्ति रहे और वैसा धन हमें प्राप्त हो ।

३ मतिभिः राधांसि नः दयध्वं — उत्तम सिद्धितक पहुंचानेवाली बुद्धियोंके साथ रहनेवाले धन हमें मिलें। धन ऐसे हो कि जो सिद्धितक पहुंचानेवाले हों और उनके साथ शुभ बुद्धियां भी रहें । सुबुद्धको ही धन मिले, बुद्धिहीनको धन न मिले। धनके साथ बुद्धि मिले और बुद्धिके साथ धन भी रहे।

इन्द्र देवता

[३] (३५८) हे (मघवन्) धनपते ! तुम (महः अर्भस्य वसुनः विभागे) बडे और अल्प धनके विभाग करनेके समय (देष्णं उवोचिथ हि) देने योग्य धनको तुम लेते हैं। (ते उभा गभस्ती) तुम्हारे दोनों बाहु (वसुना पूर्णा) धनसे भरपूर भरे हैं। (सूनृता वसव्या न नियमते) तुम्हारी उत्तम वाणी धनका प्रदान करनेके समय बाधक नहीं होती।

१ महः अर्भस्य वसुनः विभागे देष्णं उवोचिथ - बडे या अल्प धनके दान करनेके समय तुम देने योग्य धन देते हो। धनदानमें तुम्हारी कंजूसी वा कृपणता नहीं होती ।

२ ते उभा गभस्ती वसुना पूर्णा — तुम्हारे दोनों हाथ धनसे परिपूर्ण भरपूर भरे हैं। दानके लिये हाथोंमें जितना रह सकता है उतना धन तुमने लिया है। तुम्हारे हाथ दान करनेके लिये तैयार हैं।

३ सूनृता वसव्या न नियमते— तुम्हारी सत्य भाषण करनेवाली वाणी धनका दान करनेके समय किसीके द्वारा रोकी नहीं जाती अर्थात् तुम्हारी वाणी भी धनका दान करनेके ही वाक्य बोलती है।

धनिक लोग उदार चित्तसे अपने धनका दान करते रहें।

[४] (३५९) हे इन्द्र ! (स्वयशाः ऋभुक्षाः त्वं) अपने यशसे युक्त कारीगरोंका निवास करनेवाले तुम (साधुः वाजः न ऋक्वा) उत्तम साधक अन्नकी तरह पूजा योग्य (अस्तं एषि) हमारे घरके समीप आते हैं। हे (हरिवः) उत्तम घोडोंसे युक्त वीर। (वयं वसिष्ठाः ते दाश्वांसः स्याम) तब हम वसिष्ठ तुम्हें हवि अर्पण करनेके लिये सिद्ध हैं तथा (ते ब्रह्म कृण्वन्तः) तेरा स्तोत्र भी करते हैं।

१ इन्द्रः स्वयशाः ऋभुक्षाः -- इन्द्र अपने प्रयत्नसे यश कमाता है और कारीगरोंको अपने पास रखता है। राजा तथा वीर अपने प्रयत्नसे अपना यश बढावे और अपने आश्रयमें अनेक कारीगरोंको रखे । राजा तथा धनी लोग कारीगरोंको आश्रय देकर कारीगरीकी उन्नति करें।

२ साधुः वाजः -- अन्न तथा बल साधक हो अर्थात् सिद्धिको पहुंचानेवाला हो। साधन मार्गमें सहायक होनेवाला हो।

५ सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद् याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः ।
ववन्मा नु ते युज्याभिरूती कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ॥ ३६०

६ वासयसीव वेधसस्त्वं नः कदा न इन्द्र वचसो बुबोधः ।
अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी ॥ ३६१

७ अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षन्त इन्द्रं शरदः सुपृक्षः ।
उप त्रिबन्धुर्जरदष्टिमेत्यस्ववेशं यं कृणवन्त मर्ताः ॥ ३६२

८ आ नो राधांसि सवितः स्तवध्या आ रायो यन्तु पर्वतस्य रातौ ।
सदा नो दिव्यः पायुः सिषक्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ३६३

---

[५] (३६०) हे (हर्यश्व) उत्तम घोडोंको पास रखनेवाले ! तुम (याभिः धीभिः विवेषः) जिन बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंसे सर्वत्र व्यापते हो। ऐसे तुम (दाशुषे चित् प्रवतः सनिता असि) दाताके लिये उत्तम धनके दाता होते हैं। हे इन्द्र ! तुम (नः कदा रायः आ दशस्येः) हमें कब धनोंका प्रदान करोगे ! (नु ते युज्याभिः ऊती ववन्म) आज तुम्हारी योग्य सुरक्षासे हम सुरक्षित होंगे।

१ धीभिः विवेषः — बुद्धियोंसे, बुद्धिपूर्वक किये अपने पुरुषार्थोंसे चारों ओर व्याप्त होओ। योजनापूर्वक किये कर्मोंसे चारों ओर पहुंचना चाहिये।

२ प्रवतः सनिता असि — उत्तम रीतिसे सुरक्षा करनेवाले धनका प्रदान करो। उच्च धनका दान करो।

३ युज्याभिः ऊती ववन्म — योग्य संरक्षणोंसे हम सुरक्षित रहेंगे। योग्य संरक्षण प्राप्त करेंगे और हम सुरक्षित रहेंगे।

[६] (३६१) हे इन्द्र ! (नः वचसः कदा बुबोधः) तुम हमारा वचन कब समझोगे? कब हमारी प्रार्थना सुनोगे? (त्वं नः वेधसः वासयसि इव) तुम हमारा निवास करनेवाले हो। (वाजी अर्वा) तुम्हारा बलवान घोडा (तात्या धिया) हमारी विस्तृत वाणीसे प्रेरित होकर (सुवीरं रयिं) उत्तम वीर पुत्र युक्त धनको (पृक्षः) तथा अन्नको (नः अस्तं नि उहीत) हमारे घरमें ले आवे।

१ वेधसः वासयसि — ज्ञानियोंका सुखसे निवास करनेवाला (राजा) हो। राजाका कर्तव्य है कि वह ऐसा सुप्रबंध करे कि जिससे उत्तम उत्तम ज्ञानी लोग आकर उसके राज्यमें रहें। इन्द्र ऐसा करता है; वह राजाके लिये आदर्श है।

२ नः अस्तं सुवीरं रयिं पृक्षः — हमारे घर उत्तम वीर संतान हों, उत्तम अन्न भरपूर हो।

[७] (३६२) (देवी निर्ऋतिः चित् यं ईशे) देवी भूमि ईशान के लिये (यं अभि नक्षन्ते) जिसकी ओर देखती है। (सुपृक्षः शरदः यं इन्द्रं) उत्तम अन्नसे युक्त वर्ष जिसको देखते हैं। (मर्ताः यं अस्ववेशं कृणवन्तः) मनुष्य जिसको अपने घरमें ठहरने नहीं देते, (त्रिबन्धुः जरदष्टिं उप एति) वह तीनों लोकोंका भाई इन्द्र बहुत बडे बल से हमारे समीप आ जावे। हमें बडा बल देवे।

भूमि जिसको अपना अधिपति मानती है, संवत्सर काल अन्नसे युक्त होकर जिसके पास देखता है, मनुष्य प्रार्थना करते करते जिसको अपने स्थानमें बैठने नहीं देते, वह तीनों लोकोंका भाई प्रभु है वह हमें उत्तम बल प्रदान करे।

'जरदष्टिः' (जरत्-अष्टिः) (अष्टि) खाये अन्नका (जरत्) पाचन करनेका जो बल है वह अन्न पचानेका सामर्थ्य हमें मिले।

[८] (३६३) हे (सवितः) सबके प्रेरक देव ! (स्तवध्यै राधांसि) प्रशंसनीय धन (नः आ यन्तु) हमारे पास आ जांय। (पर्वतस्य रातौ

(३८) ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १-६ सविता, ६ उत्तरार्धस्य भगो वा, ७-८ वाजिनः । त्रिष्टुप् ।

१ उदु ष्य देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
नूनं भगो हव्यो मानुषेभिर्वि यो रत्ना पुरूवसुर्दधाति ॥ ३६४

२ उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्य१स्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य ।
व्यु१र्वीं पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवानः ॥ ३६५

३ अपि ष्टुतः सविता देवो अस्तु यमा चिद् विश्वे वसवो गृणन्ति ।
स नः स्तोमान् नमस्य१श्चनो धाद् विश्वेभिः पातु पायुभिर्नि सूरीन् ॥ ३६६

४ अभि यं देव्यदितिर्गृणाति सवं देवस्य सवितुर्जुषाणा ।
अभि सम्राजो वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषाः ॥ ३६७

…: आ) पर्वतके दानके समय धन हमारे पास आ जांय । (पायुः दिव्यः सदा नः सिषक्तु) पालन करनेवाला देव सदा हमारी सुरक्षा करे । (यूयं सदा स्वस्तिभिः नः पात) आप सदा संरक्षणोंसे हमारी सुरक्षा कीजिये ।

१ स्तवध्यै राधांसि नः आ यन्तु -- प्रशंसनीय धन हमारे पास आ जाय । प्रशंसनीय मार्गसे प्राप्त हुआ तथा जिसकी प्रशंसा होती है ऐसा धन हमारे पास हो ।

२ पर्वतस्य रातौ रायः नः आ यन्तु -- पर्वतसे प्राप्त होनेवाले धन हमें प्राप्त हो ।

३ पायुः दिव्यः सदा नः सिषक्तु — संरक्षक दिव्य वीर सदा हमारी सुरक्षा करे । हमारे संरक्षक उत्तम हों । दिव्य हों । हीन न हों ।

सविता ।

[१] (३६४) (स्यः सविता देवः) वह सविता देव (हिरण्ययीं यां अमतिं) जिस सुवर्णमयी प्रभाका (अशिश्रेत्) आश्रय करता है, उसका (उत् ययाम) उदय होता है । (नूनं भगः मनुष्येभिः हव्यः) निश्चयहीसे यह भग देव मनुष्यों द्वारा स्तुति करने योग्य है । (यः पुरूवसुः रत्ना वि दधाति) जो यह बहुत धनसे युक्त देव है वह अनेक रत्न भक्तोंको देता है ।

[२] (३६५) हे (सवितः) सबके प्रेरक देव ! तुम (उत् तिष्ठ) ऊपर आओ । उदित हो जाओ । हे (हिरण्यपाणे) सुवर्णके आभूषणोंसे सुशोभित हाथवाले ! तुम (ऋतस्य प्रभृतौ अस्य श्रुधि) यज्ञके चलनेपर इस स्तोत्रका श्रवण करो । (उर्वीं पृथ्वीं अमतिं वि सृजानः) तुम विस्तीर्ण और प्रसिद्ध प्रभाको फैलाते और (नृभ्यः मर्तभोजनं आ सुवानः) मानवोंके लिये भोगके योग्य धन, अन्न देते हो ।

[३] (३६६) (अपि सविता देवः स्तुतः अस्तु) सविता देव हमारे द्वारा प्रशंसित हो । (विश्वे वसवः यं चित् आ गृणन्ति) सब ही निवासक देव जिसकी स्तुति गाते हैं । (सः नमस्यः नः स्तोमान् चनः धात्) वह नमस्कार करने योग्य देव हमारे स्तोमोंका तथा अन्नका धारण करे । वह (विश्वेभिः पायुभिः सूरीन् नि पातु) सब संरक्षणके साधनोंसे हमारे ज्ञानियोंकी सुरक्षा करे ।

[४] (३६७) (यं देवी अदितिः अभि गृणाति) जिस सविताकी अदिति देवी स्तुति करती है । (सवितुः देवस्य सवं जुषाणा) वह सविता देवकी प्रेरणाका पालन करती है । (सम्राजः वरुणः अभि गृणन्ति) सम्राट वरुण देव जिसकी प्रशंसा करते हैं । तथा (सजोषाः मित्रासः अर्यमा अभि) समान प्रीतिवाला अर्यमा और मित्रादि देव इसकी स्तुति करते हैं ।

५ अभि ये मिथो वनुषः सपन्ते रातिं दिवो रातिषाचः पृथिव्याः ।
अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतु वरूत्र्येकधेनुभिर्नि पातु ३६८

६ अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः ।
भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम् ३६९

७ शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद् युयवन्नमीवाः ३७०

८ वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ३७१

---

[५] (३६८) (ये रातिषाचः वनुषः मिथः) **दानशील भक्त जन मिलकर (दिवः पृथिव्याः रातिं अभि सपन्ते) द्युलोक और पृथिवी लोकके मित्ररूप सविताकी उपासना करते हैं। (बुध्न्यः अहिः उत नः शृणोतु) मध्यस्थानमें रहनेवाला प्रगतिमान वह विद्युत् रूप अग्नि हमारा स्तोत्र सुने। (वरूत्री एकधेनुभिः नि पातु) वाग्देवी मुख्य गौओंके साथ हमारी सुरक्षा करें।**

[६] (३६९) (इयानः जास्पतिः) **प्रार्थना करनेपर सब प्रजाओंका पालक (सवितुः देवस्य तत् रत्नं) सविता देव अपने रत्नोंको, धनोंको, (नः अनुमंसीष्ट) हमारे लिये दें, देनेकी अनुमति प्रदान करें। (उग्रः भगं अवसे जोहवीति) उग्र वीर भग देवकी अपनी सुरक्षाके लिये प्रार्थना करता है। (अध अनुग्रः भगं रत्नं याति) पर जो उग्र वीर नहीं है वह भगके पास केवल रत्नोंको ही मांगता है।**

उग्र वीर संरक्षणकी शक्तिके साथ भगके पास धन मांगता है, पर जो वीर नहीं है वह केवल धन ही मांगता है। संरक्षणकी शक्ति चाहना योग्य है क्योंकि बिना शक्तिके प्राप्त धनका संरक्षण नहीं हो सकता। इसलिये संरक्षण करनेकी शक्ति प्राप्त करो, वह शक्ति रही तो धन भी प्राप्त किया जा सकेगा और प्राप्त होनेपर अपने पास रह सकेगा।

[७] (३७०) (मित द्रवः स्वर्काः वाजिनः) **अच्छी गतिवाले स्तुतिके योग्य ये बलवान देव (देवताता हवेषु) यज्ञमें प्रार्थनाके समय (नः शं भवन्तु) हमारे लिये सुख देनेवाले हों। ये (अहिं वृकं रक्षांसि जंभयन्तः) बढनेवाले क्रूर राक्षसोंका नाश करते हुए (सनेमि अमीवाः अस्मत् युयवन्) पुराने सब रोग हमसे दूर करें।**

(मित-द्रवः) जिनकी गति प्रमाणसे होती है (सु-अर्काः) उत्तम सूर्यके समान गुण धर्मवाले (वाजिनः) बल बढानेवाले ये सविताके किरण हैं। ये (नः शं भवन्तु) ये हमें सुख और शान्ति देते हैं। ये (सनेमि अमीवाः अस्मत युयवन्) पुरानेसे पुराने आमाशयके रोगोंको हमसे दूर करें, आमाशयमें अन्नका पाचन ठीक न होनेसे जो रोग होते हैं वे सूर्य किरणोंके प्रयोगसे दूर हों। तथा (अहिं, अ-हिं) कम न होनेवाले, बढते जानेवाले (वृकं) क्रूर कर्म करनेवाले हिंसक भेडिये समान मारक तथा (रक्षांसि) रोग बीजोंको सूर्य किरण (जंभयन्तः) नाश करते हैं। रोग बीजोंका नाश हो और हमें सुख प्राप्त हो।

'अहि, वृक, रक्षांसि' ये सब नाम रोगबीजोंके, रोग क्रिमियोंके हैं। (देखो- 'वेदमें रोग जन्तुशास्त्र' पुस्तक जो प्रकाशित हुई है)।

[८] (३७१) हे (वाजिनः) **बल देनेवाले देवो! (विप्राः अमृताः ऋतज्ञाः) ज्ञानी अमर और सत्य मार्गको जाननेवाले तुम सब (वाजे वाजे नः धनेषु अवत) प्रत्येक युद्धमें धनके लिये हमारा संरक्षण करो। (अस्य मध्वः पिबत) इस मधुर सोमरसका पान करो, (मादयध्वं) आनंद प्राप्त करो (तृप्ताः देवयानैः पथिभिः यात) तृप्त होकर देवयानके मार्गोंसे जाओ।**

❀

(३९) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। विश्वे देवाः। त्रिष्टुप्।

१ ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत् प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति ।
भेजाते अद्री रथ्येव पन्थामृतं होता न इषितो यजाति ३७२

२ प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते ।
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ३७३

३ ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः ।
अर्वाक् पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य ३७४

(वाजिन.) बलवान् बनना चाहिये, बलवान, अन्नवान्, सामर्थ्यवान् होना चाहिये, (अ-मृताः) अकालमें मरना नहीं चाहिये तथा ऋत-ज्ञा उन्नतिके सत्य मार्गको जानना चाहिये। (धनेषु वाजे वाजे न. अवत) धन प्राप्तिके निमित्त युद्ध होते है उनमें हमारा संरक्षण होना चाहिये।

विश्वे देवाः

[१] (३७२) (**ऊर्ध्वः अग्निः वस्वः सुमतिं अश्रेत्**) **जिसकी गति ऊपरकी ओर होती है ऐसा ऊर्ध्वगामी अग्नि निवासकी इच्छा करनेवाले भक्तकी की हुई स्तुतिको सुने। (प्रतीची जूर्णिः देवतातिं एति) पूर्व दिशामें होनेवाली, सबको जीर्ण करनेवाली उषा यज्ञमें जाती है। (अद्री रथ्या इव पन्थां भेजाते) आदरणीय दोनों प्रकारके लोग रथ चलानेवाले मार्गका अवलंब करते हैं उस प्रकार यज्ञ मार्गका सेवन करते हैं। (इषितः नः होता ऋतं यजाति) प्रेरित हुआ होता यज्ञको करता है।**

१ **ऊर्ध्वः अग्निः** — अग्निका ज्वलन ऊपरकी ओर होता है। अग्निकी ज्वाला उच्च गतिवाली होती है। मनुष्यको भी अपनी प्रगति उच्च मार्गसे ही करनी चाहिये।

२ **वस्वः सुमतिं अश्रेत्** — जिससे यहांका निवास सुखसे होता है, इस निवासका साधन करनेवाली उत्तम बुद्धिको प्राप्त करना चाहिये। जिसके पास उत्तम बुद्धि होगी, उसका निवास यहां सुखसे होगा। इसलिये इस तरह सुबुद्धिको प्राप्त करना चाहिये।

३ **रथ्या पंथां भेजाते** — सब कोई रथके मार्गपरसे ही जाय। मार्गको छोड कर कोई न जाय। कोई अपने अच्छे मार्गको न छोडे।

४ **ऋतं यजाति** — सत्य सरलतासे होनेवाले प्रशस्त कर्मको करना चाहिये।

[२] (३७३) (**एषां सुप्रयाः बर्हिः**) **इनका अन्नसे भरपूर भरा बर्हि यज्ञमें (प्र वावृजे) प्रयुक्त होता है। (विश्पती इव प्रजाओंके पालक दोनों (नियुत्वान्) घोडोंसे युक्त (वायुः पूषा) वायु और पूषा ये देव (विशां स्वस्तये) सब प्रजाओंके कल्याणके लिये (अक्तोः उषसः) रात्री और उषाके समयके (पूर्व-हूतौ) प्रथम करनेकी प्रार्थनाके समय (बिरीटे आ इयाते) अन्तरिक्षमें आ जावें।**

नियुत्वान् विश्पती इव विशां स्वस्तये बिरीटे आ इयाते — घोडे जोडकर, रथमें बैठकर, प्रजाका पालन करनेमें तत्पर राजा लोग जैसे प्रजाका कल्याण करनेके लिये ही गणसभामें आकर बैठते हैं। और वहां प्रजाके कल्याणका विचार करते हैं।

यहां बताया है कि प्रजाका पालन करनेका ही विचार राजा और राजपुरुष मनमें धारण करें और अपना कर्तव्य करें।

[३] (३७४) (**अत्र वसवः देवाः ज्मया रन्त**) **यहां वसुदेव भूमिके साथ रममाण हों। (उरौ अन्तरिक्षे शुभ्राः मर्जयन्त) विस्तीर्ण अन्तरिक्षमें तेजस्वी मरुद्वीर शुद्ध करते हैं। हे (उरु-ज्रयः) बहुत भ्रमण करनेवाले देवो! आपका (पथः अर्वाक् कृणुध्वं) मार्ग हमारी ओर करो, हमारी ओर आओ। (नः अस्य जग्मुषः दूतस्य श्रोत) हमारे इस तुम्हारे पास जानेवाले दूतका भाषण सुनो।**

४ ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः ।
ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरंधिम् ३७५

५ आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्या मित्रं वह वरुणमिन्द्रमग्निम् ।
आर्यमणमदितिं विष्णुमेषां सरस्वती मरुतो मादयन्ताम् ३७६

६ ररे हव्यं मतिभिर्यज्ञियानां नक्षत् कामं मर्त्यानामसिन्वन् ।
धाता रयिमविदस्यं सदासां सक्षीमहि युज्येभिर्नु देवैः ३७७

७ नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३७८

---

[४] (३७५) (यज्ञेषु ते यज्ञियासः ऊमाः) यज्ञोंमें वे पूजायोग्य और रक्षक (विश्वे देवाः सधस्थं अभि सन्ति) सबके सब देव वीर साथ साथ आते हैं। हे अग्ने! (उशतः तान् अध्वरे यक्षि) इच्छा करनेवाले उन देवोंके लिये यज्ञमें यजन करो। तथा (श्रुष्टी भगं नासत्या पुरंधिं) सत्वर भग, अश्विदेव और नगर रक्षक इन्द्रके लिये यजन करो।

१ ऊमाः यज्ञियासः — जो वीर संरक्षण करते है वे पूजाके योग्य हैं। उनका सत्कार करना चाहिये।

२ विश्वे देवाः सधस्थं अभि सन्ति — सब देव एक स्थानपर रहते है। एक स्थानपर संगठित होकर रहते हैं। वे बिखरे नहीं रहते। उनमें फूट नहीं होती।

[५] (३७६) हे अग्ने! (दिवः गिरः आ वह) द्युलोकसे स्तुति करने योग्य देवोंको ले आओ। (पृथिव्याः आ वह) पृथिवीके ऊपरसे भी ले आओ। मित्र, वरुण, इन्द्र, अग्नि, अर्यमा, अदिति, विष्णुको ले आओ। (एषां सरस्वती मरुतः मादयध्वं) इनमें सरस्वती और मरुत् आनन्दित होकर यहां आवें।

[६] (३७७) (यज्ञियानां मतिभिः हव्यं ररे) पूजा योग्य देवोंके लिये हम अपनी बुद्धिपूर्वककी स्तुतियोंके साथ हव्य अन्न अर्पण करते हैं। (मर्त्यानां कामं असिन्वन् नक्षत्) मानवोंकी उन्नतिकी कामनाओंका प्रतिबंध न करता हुआ अग्नि यज्ञको करता है। (अविदस्यं सदासां रयिं धात) अक्षय और सदा स्थायी रहनेवाले धनको हमें दो और (युज्येभिः देवैः सक्षीमहि) साथी देवोंके साथ हम आज मिलेंगे।

१ यज्ञियानां हव्यं मतिभिः ररे — पूजनीय वीरोंको बुद्धिपूर्वक आदर सत्कारपूर्वक सुपूजित करो।

२ मर्त्यानां कामं अ-सिन्वन् नक्षत् – मानवोंकी अभ्युदयकी इच्छाको प्रतिबंध न करो। उनकी सहायता करो।

३ अविदस्यं सदासां रयिं धातं — अक्षय तथा सदा टिकनेवाले धनको हमें दो।

४ युज्येभिः देवैः सक्षीमहि — योग्य बन्धु तथा साथी दिव्य विबुधोंके साथ हम मिलकर रहेंगे। एक विचारके सज्जनोंके साथ हम अपना संगठन करेंगे।

[७] (३७८) (नू वसिष्ठैः रोदसी अभिष्टुते) निःसंदेह आज वसिष्ठोंने द्युलोक और पृथिवी की स्तुति की है। (ऋतावानः) यज्ञके योग्य वरुण, मित्र, अग्नि ये देव भी प्रशंसित हुए हैं। (चन्द्राः नः उपमं अर्कं यच्छन्तु) आनंद बढानेवाले ये देव हमें सर्वोत्कृष्ट पूजा योग्य अन्न तथा धन प्रदान करें। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) आप सदा हमें कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित करो।

नः उपमं अर्कं यच्छन्तु – हमें उत्तमसे उत्तम धन मिले।

(४०) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। विश्वे देवाः। त्रिष्टुप्।

१	ओ श्रुष्टिर्विदथ्या३ समेतु प्रति स्तोमं दधीमहि तुराणाम्।	
	यदद्य देवः सविता सुवाति स्यामास्य रत्निनो विभागे	३७९
२	मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तमिन्द्रो अर्यमा ददातु।	
	दिदेष्टु देव्यदिती रेक्णो वायुश्च यन्नियुवैते भगश्च	३८०
३	सेदुग्रो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ।	
	उतेमग्निः सरस्वती जुनन्ति न तस्य रायः पर्येतास्ति	३८१
४	अयं हि नेता वरुण ऋतस्य मित्रो राजानो अर्यमापो धुः।	
	सुहवा देव्यदितिरनर्वा ते नो अंहो अति पर्षन्नरिष्टान्	३८२

विश्वे देवाः

[१] (३७९) (विदथ्या श्रुष्टिः ओ सं एतु) संघटनसे प्राप्त होनेवाला सुख हमें प्राप्त हो। (तुराणां स्तोमं प्रति दधीमहि) हम त्वराशील देवोंके लिये स्तोत्र करते हैं। (अद्य देवः सविता यत् सुवाति) आज सविता देव जिस धनको देता है। हम (अस्य रत्निनः विभागे स्याम) इस रत्नोंको पास रखनेवाले सविता देवके धनदानके समय रहें। हमें वे धन मिलें।

विदथ्या श्रुष्टिः सं एतुः — सभामें, संगठनमें वेगसे मिलनेवाला धन हमें मिले। 'श्रुष्टि' = वेगसे मिलनेवाला। **'विदथ्या'** – सभा, यज्ञ, संघ या सगठनका स्थान। संगठित होनेसे जो धन सत्वर मिलता है वह हमें मिले। अर्थात् हम संगठित हों, बलवान हो और धन भी प्राप्त करें।

[२] (३८०) मित्र, वरुण, (रोदसी) द्यावापृथिवी (तत् नः ददातु) उस धनको हमें दें। इन्द्र और अर्यमा हमें (द्युभक्तं ददातु) तेजस्वियों द्वारा सेवन करनेयोग्य धन दें। (अदितिः देवी रेक्णः दिदेष्टु) अदिति देवी वह धन हमें दे (वायुः भगः च) वायु और भग ये देव (नियुवैते) हमारे लिये जिसको प्रेरित करते हैं वह धन हमें प्राप्त हो।

द्युभक्तं रेक्णः दिदेष्टु -- तेजस्वी वीरोंके लिये जो प्रिय है वह धन हमें प्राप्त हो। उत्तमसे उत्तम धन हमें मिले।

[३] (३८१) हे (पृषदश्वाः) उत्तम घोडोंवाले मरुत् वीरो! (मर्त्यं यं अवाथ) जिस मनुष्यकी तुम सुरक्षा करते हो, (सः उग्रः, सः शुष्मी अस्तु) वह उग्र तथा बलवान् होता है। (अग्निः सरस्वती ईं उत जुनन्ति) अग्नि, सरस्वती आदि देव उसको सत्कर्ममें प्रवर्तित करते हैं। (तस्य रायः पर्येता न अस्ति) उसके धनका नाश करनेवाला कोई नहीं है।

१ **यं मर्त्यं अवाथ, सः उग्रः शुष्मी** – जिसका संरक्षण देव करते हैं वह शूर वीर तथा प्रभावी सामर्थ्यवान् होता है।

२ **सरस्वती ईं जुनति** — विद्या देवी उसको प्रशस्ततम कर्ममें प्रेरित करती है। विद्याके शुभ संस्कारोंसे वह संपन्न होता है जिससे उसकी प्रवृत्ती असत् कर्ममें नहीं होती।

३ **तस्य रायः पर्येता न अस्ति** — उसके धनको घेरनेवाला कोई नहीं होता, उसके धनको चुरानेवाला कोई नहीं होता। क्योंकि वह इतना बलवान होता हैं कि उससे उसका धन सुरक्षित होता है।

जो विद्यावान्, बलवान् उग्र शूर वीर होता है उसके धनका अपहरण कोई कर नहीं सकता। **'यः शुष्मी उग्रः तस्य रायः पर्येता न कः अस्ति'**—जो बलवान् और शूर वीर होता है उसके धनका अपहरण करनेवाला कोई नहीं होता। उग्र वीर बनोगे तो धन सुरक्षित रहेगा।

[४] (३८२) (अयं हि ऋतस्य नेता) यह सत्य मार्गका नेता है। मित्र, वरुण, अर्यमा, आदि (राजानः) राज्य शासक देव (अपः धुः)

५ अस्य देवस्य मीळ्हुषो वया विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः ।
विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ॥ ३८३

६ मात्र पूषन्नाघृण इरस्यो वरूत्री यद् रातिषाचश्च रासन् ।
मयोभुवो नो अर्वन्तो नि पान्तु वृष्टिं परिज्मा वातो ददातु ॥ ३८४

हमारे प्रशस्त कर्मोंका धारण करते हैं । (अनर्वा अदितिः देवी सुहवा) किसीके द्वारा प्रतिबंधित न होनेवाली अदिति देवी स्तुति करने योग्य है । (ते अरिष्टान् नः अंहः अति पर्षत्) वे सब देव बाधारहित ऐसे हम सबको पापसे बचावें ।

१ राजानः ऋतस्य नेतारः अपः धुः — राजा लोग और राजपुरुष सत्यके मार्गपरसे स्वयं चलकर जनताको चलानेवाले होकर लोगोंके उत्तम कर्मोंका धारण करें । उनके कर्मोंकी सुरक्षा करें । फल मिलनेतक किये कर्मोका नाश न होने दें । लोग कर्म करें, पर उनका फल उनको न मिले ऐसा कभी न होने दें । जो कर्म करेगा उसको उसका फल अवश्य मिले ऐसा प्रबंध करें ।

कर्म करनेवालेको उस कर्मके बदले फल अर्थात् वेतन या धन अवश्य मिलना चाहिये । कर्म करनेपर फल न मिले ऐसा कभी होना नहीं चाहिये । यह राज्य प्रबंध द्वारा सुरक्षितता होनी चाहिये।

२ अदितिः अनर्वा सुहवा — 'अदिति' का एक अर्थ (अत्ति इति अदितिः अदनात्) जो भोजन देती है । दूसरा 'अदिति' का अर्थ (अ-दितिः) स्वतंत्रता, प्रतिबंध-रहित अवस्था । अदितिके ये कार्य हैं। एक लोगोंके भोजनका उत्तम प्रबंध करना और जनताको प्रतिबंध रहित करना । अर्थात् अदिति देवी लोगोंको भोजन भरपूर देवे और स्वतंत्र करे।

३ नः अरिष्टान् — हम विनष्ट न हों । हमारा नाश घातपात या विनाश न हो ।

४ नः अंहः अतिपर्षत् — हमारी सब पापोंसे सुरक्षा हो । हमसे पाप कर्म न हों ऐसा राष्ट्रमें प्रबंध हो ।

एक विष्णु और उसके अंग अन्य देव

[५] (३८३) (प्रभृथे हविर्भिः एषस्य मीळ्हुषः विष्णोः अस्य देवस्य) यज्ञमें हविष्योंके द्वारा उपासनीय और इच्छाओंकी पूर्ति करनेवाले इस व्यापक विष्णु देवकी (वयाः) अन्य देव शाखाएं हैं । (रुद्रः रुद्रियं महित्वं विदे हि) रुद्रदेव अपना महत्त्व युक्त सामर्थ्य हमें प्रदान करे । हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (इरावत् वर्तिः यासिष्टं) हमारे अन्न युक्त घरके पास आओ । हमारे यज्ञमें आओ ।

१ विष्णो वयाः — व्यापक एक देव वृक्षके समान है और अन्य सब देव उसकी शाखाएं हैं । इस एक देवके आश्रयसे अन्य देव रहे हैं, वे पृथक् नहीं हैं, पर इसके ही अवयव हैं ।

जैसे शरीरमें हाथ, आदि अवयव, वृक्षमें शाखाएं अथवा सूर्यके किरण उस तरह विष्णुके ये अवयव हैं । संपूर्ण विश्वका नायक सर्वव्यापक परमेश्वर एक है यह इस मंत्र द्वारा स्पष्ट रीतिसे कहा है । अन्य सब देव उसके अवयव हैं, अंश हैं ।

२ रुद्रः रुद्रियं महत्त्वं विदे — रुद्र देव अपनी शत्रुनाशक शक्ति हमें प्रदान करे। हम इस शक्तिसे युक्त होकर अपने शत्रुओंका विनाश करें ।

[६] (३८४) हे (आ घृणे पूषन्) तेजस्वी पूषा देव ! (अत्र मा इरस्यः) इस कार्यमें विघात न करो । (वरूत्री) सबके द्वारा उपास्य सरस्वती (रातिषाचः) दान देनेवाली अन्य देवियाँ (यत् रासन्) जो धन हमें देती हैं, उसमें किसीकी रुकावट न हो । (मयोभुवः अर्वन्तः नः निपान्तु) सुख देनेवाले प्रगतिशील रक्षक देव हमें सुरक्षित रखें । (परिज्मा वातः वृष्टिं ददातु) चारों ओर जानेवाला गतिशील वायु हमें वृष्टि देवे ।

१ वरूत्री — सरस्वती विद्या देवी सबके द्वारा उपास्य है, विद्याकी आराधना सबको करनी चाहिये ।

२ रातिषाचः—दान देनेवाले सब हों । कोई कंजूस न हो।

३ मयोभुवः अर्वन्तः निपान्तु — संरक्षण कार्यमें नियुक्त हुए सब लोग सुख देनेवाले और उत्तम रक्षा करनेवाले हों । जो संरक्षणके कार्यमें नियुक्त हुए हों वे कभी लोगोंके सुखका घात करनेवाले न हों ।

७ नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
युच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३८५

(४१) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १ अग्नीन्द्रमित्रावरुणाश्विभगपूषब्रह्मणस्पतिसोमरुद्राः,
२-६ भगः, ७ उषसः । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

१ प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ३८६

२ प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद् राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह ३८७

३ भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ३८८

---

[७] (३८५) देखो [७] ३७८ वहां इस मंत्रकी व्याख्या है ।

[१] (३८६) हम (प्रातः) प्रातःकालके समय अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, अश्विदेव, भग, पूषा, ब्रह्मणस्पति, सोम और रुद्रकी (हुवे) स्तुति गाते हैं ।

प्रातःसमयमें ईश्वरकी स्तुति करना उचित है ।

[२] (३८७) (यः विधर्ता) जो देव विश्वका धारण करता है, उस (अदितेः पुत्रं उग्रं प्रातर्जितं भगं) अदितिके पुत्र उग्र वीर और विजयशील भग देवकी (वयं हुवेम) हम प्रातः समयमें प्रार्थना करते हैं । (आध्रः चित्) दरिद्री भी (यं मन्यमानः) जिसकी स्तुति गा कर तथा (तुरः चित्, राजा चित्) सत्वर धन प्राप्त करनेवाला राजा भी (यं भगं भक्षि इति आह) जिस भग देवको ' मुझे धन दे ' ऐसा कहता है ।

दरिद्री मनुष्य तथा बडा धनवान् राजा जिस भग देवके पास ' मुझे धन दो ' ऐसी प्रार्थना करते हैं, उस प्रभुकी मैं प्रातःकालः प्रार्थना करता हूं । दरिद्री और राजा जिसके सामने समान हैं ।

विधर्ता उग्रः जितः — वह वीर सबका धारण करता है, उग्र शूर वीर है और प्रत्येक युद्धमें विजय प्राप्त करनेवाला है । वीर ऐसे होने चाहिये ।

[३] (३८८) हे (भग) भाग्यवान् देव ! तू (प्रणेतः) सबका नेता संचालक है, तथा हे भग ! तुम (सत्यराधः) सत्य धनसे युक्त हो, तुम्हारा धन शाश्वत टिकनेवाला है । हे भग देव ! (ददत् नः इमां धियं उदव) तुम हमें धन देकर इस हमारे बुद्धि युक्त कर्मको सुरक्षित करो । हे भग ! (नः गोभिः अश्वैः प्रजनय) हमें गौओं और घोडोंके साथ उन्नत करो । हे भग ! हम (नृभिः नृवंतः प्र स्याम) वीरोंके साथ रहकर मनुष्य युक्त बनेंगे ।

१ प्रणेतः सत्यराधः भगः — उत्तम नेता और शाश्वत धनवाला ऐसा हमारा भाग्य विधाता हो । हमारे वीर ऐसे हों ।

२ ददत् धियं उत् अव - स्वयं दान देते हुए अन्योंके बुद्धिपूर्वक किये शुभ कर्मोंको सुरक्षित रखो । अर्थात् ऐसा प्रबंध करो कि किसीके किये कर्म विफल न हों । कर्म करनेवालोंको उनका फल अवश्य मिले ।

३ गोभिः अश्वैः नृभिः प्र जनय — गौवें, घोडे और नेता वीर हमारे साथ पर्याप्त हों । ऐसे वीरोंसे हम (**नृवंतः प्रस्याम**) हम परिवारवाले बनें । हमारे परिवारके सभी वीर नेता और उत्तम विजयी हों ।

४ उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन् त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम । ३८९

५ भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ३९०

६ समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ३९१

७ अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३९२

(४२) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

१ प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेतु ।
प्र धेनव उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः ३९३

---

[४] (३८९) (उत इदानीं भगवन्तः स्याम) हम सब इस समय भाग्यवान् हों। (उत प्रपित्वे, उत अह्नां मध्ये) प्रातः काल और दिवसके मध्य समयमें हम भाग्यसे युक्त हों। (उत सूर्यस्य उदिता) और सूर्य के उदयके समय हम भाग्यवान् हों। हे भगवन्! (वयं देवानां सुमतौ स्याम) हम सब देवोंकी उत्तम बुद्धिमें रहें अर्थात् हमारे विषयमें देवोंकी उत्तम बुद्धि रहे। हमारे विषयमें देवोंकी सद्भावना रहे।

[५] (३९०) हे (देवाः) देवो! (भगः एव भगवान् अस्तु) भग देव ही धनवान् हों। (तेन वयं भगवन्तः स्याम) उससे हम सब धनवान हों। हे भग! (तं त्वा सर्वः इत् जोहवीति) उस तुमको ही सब जनसमाज बुलाता है। हे भग देव! (सः नः इह पुरएता भव) तुम इस यज्ञमें हमारे नेता बनो।

[६] (३९१) (शुचये पदाय) शुद्ध स्थानमें बैठनेके लिये (दधिक्रावा इव) श्वेत घोडेकी तरह (उषसः अध्वराय सं नमन्त) उषा देवताएं यज्ञके लिये आ जांय। (वाजिनः अश्वाः रथं इव) वेगवान घोडे रथको खींचते हैं उस तरह (वसुविदं भगं नः अर्वाचीनं) धनवान भगको हमारे समीप (आ वहन्तु) ले आवें।

[७] (३९२) (भद्राः उषसः) कल्याण करनेवाली उषाएँ (अश्वावतीः गोमतीः) अश्वों और गौओंसे युक्त (वीरवतीः) वीरोंसे युक्त तथा (घृतं दुहानाः) घीका दोहन करनेवाली और (विश्वतः प्रपीताः) सब गुणोंसे युक्त होकर (नः सदं उच्छन्तु) हमारे घरोंको प्रकाशित करती रहें। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याणोंके साथ सुरक्षित रखो।

उषःकालमें हमारे घोडे और गौवें हमारे घरके पास जमा हों, हमारे बालबच्चे वहां खेलें, दूध दुहा जाय, कलके दूधके दहींसे मक्खन निकाल कर उसका घी बनाया जाय, इसके सेवनसे सब हृष्टपुष्ट हों और ऐसे आनंदमें हमारे घर उषःकालके प्रकाशसे प्रकाशित होते रहें।

वैदिक आदर्श घर यह है।

[१] (३९३) (ब्रह्माणः अंगिरसः प्र नक्षन्त) अंगिरस ब्रह्मा सर्वत्र व्याप्त हों। (क्रन्दनुः नभन्यस्य प्र वेतु) पर्जन्य स्तोत्रकी इच्छा करे। (धेनवः उदप्रुतः प्र नवंत) नदियां पानीसे भरपूर होकर बहती रहें। (अद्री अध्वरस्य पेशः युज्यन्तां)

२ सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युक्ष्वा सुते हरितो रोहितश्च ।
ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः ॥ ३९४

३ समु वो यज्ञं महयन् नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके ।
यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः ॥ ३९५

४ यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत् ।
सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमियत्यै ॥ ३९६

५ इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मरुत्स्विन्द्रे यशसं कृधी नः ।
आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासोशन्ता मित्रावरुणा यजेह ॥ ३९७

आदरणीय यजमान और पत्नी ये दोनों यज्ञकी सुंदरताको बढावें ।

अंगिरसोंके काव्य सब जगतमें फैलें । मेघोंपर उत्तम स्तोत्र गाये जांय । मेघसे पर्जन्य पडे और नदियां महापूरसे भरपूर होकर बहतीं रहें । पर्जन्यसे अन्न बढे और अन्नसे यज्ञ सफल हो जाय ।

[२] (३९४) हे अग्ने! (ते सन-वित्तः अध्वा सुगः) तुम्हारा बहुत समयसे प्राप्त मार्ग जानेके लिये सुगम हो। (हरितः रोहितः च) श्याम वर्ण तथा लाल वर्णके घोडे और (ये च सद्मन्) जो यज्ञ गृहमें (वीरवाहः अरुषः) वीरोंको ले जानेवाले तेजस्वी घोडे हैं (युक्ष्व) उनको तुम रथमें जोतो और इधर आओ। (सत्तः देवानां जनिमानि हुवे) मैं यज्ञमें बैठकर देवोंके जन्मोंके वृत्तान्तोंको स्तोत्ररूपमें गाता हूं ।

वीर घोडोंके शीघ्रगामी रथमें बैठें। मनुष्य वीरोंके काव्योंका गान करें और उनसे स्फूर्ति प्राप्त करें।

[३] (३९५) वे (वः यज्ञं नमोभिः सं महयन्) आपके यज्ञकी महिमाको नमस्कारोंसे बढाते हैं। (मन्द्रः उपाके होता प्र रिरिचे) प्रशंसनीय यज्ञ स्थानके समीप भागमें स्थित होता सर्वोत्तम समझा जाता है। तू (देवान् सु यजस्व) देवोंका उत्तम यजन कर। हे (पुरु-अनीक) बहु तेजस्वी अग्ने! तुम (यज्ञियां अरमतिं आ ववृत्यां) पूजा योग्य यज्ञ भूमिपर फैल जाओ। प्रदीप्त हो।

यज्ञस्थानमें अग्नि प्रदीप्त हो। उसमें देवोंके निमित्त उत्तम याजक यज्ञ करे। और स्तोत्रों और नमस्कारोंसे यज्ञका महत्त्व बढाया जाय।

[४] (३९६) (अतिथिः अग्निः यदा वीरस्य रेवतः) सबके आदरणीय अतिथिरूप अग्नि जिस समय वीर और धनीके (दुरोणे स्योनशीः अचिकेतत्) घरमें सुखसे प्रदीप्त रूपमें देखा जाता है। जिस समय वह (दमे सुधितः सुप्रीतः आ) यज्ञस्थानमें उत्तम रीतिसे स्थापित होकर प्रदीप्त होता है, तब (सः) वह अग्नि (इयत्यै विशे वार्यं दाति) समीपवर्तिनी प्रजाजनोंको श्रेष्ठ धन देता है।

यज्ञमें प्रदीप्त अग्नि यजमानको धन देता है। यज्ञसे धन प्राप्त होता है जिससे यज्ञ किया जाता है।

[५] (३९७) हे अग्ने! (नः इमं अध्वरं जुषस्व) हमारे इस यज्ञका सेवन करो। (मरुत्सु इन्द्रे नः यशसं कृधि) मरुत् वीरोंमें तथा इन्द्रमें हमें यशस्वी करो। (नक्ता उषसा) रात्रीमें तथा उषःकालमें (बर्हिः आ सदतां) आसनों पर बैठो। (उशता मित्रावरुणा इह यज) तुम्हारे यज्ञ सिद्धिकी इच्छा करनेवाले मित्र तथा वरुणका यहां यजन करो।

६ एवाग्निं सहस्यं१ वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत् ।
इषं रयिं पप्रथद् वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ३९८

(४३) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् ।

१ प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो अर्चन् द्यावा नमोभिः पृथिवी इषध्यै ।
येषां ब्रह्माण्यसमानि विप्रा विष्वग्वियन्ति वनिनो न शाखाः ३९९

२ प्र यज्ञ एतु हेत्वो न सप्तिरुद्यच्छध्वं समनसो घृताचीः ।
स्तृणीत बर्हिरध्वराय साधूर्ध्वा शोचींषि देवयून्यस्थुः ४००

३ आ पुत्रासो न मातरं विभृत्राः सानौ देवासो बर्हिषः सदन्तु ।
आ विश्वाची विदथ्यामनक्त्वग्ने मा नो देवताता मृधस्कः ४०१

---

[६] (३९८) (वासिष्ठः रायस्कामः एव) **वसिष्ठ धनकी इच्छा करके (सहस्यं अग्निं) बलवान् अग्निकी (विश्वप्स्न्यस्य स्तौत्) सब प्रकार के धनकी प्राप्तिके लिये स्तुति करने लगा। (अस्मे इषं रयिं वाजं पप्रथत्) हमें वह अन्न, धन और बल देवे। ऐसी प्रार्थना उसने की। हे देवो (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमे सदा कल्याणोंके साथ सुरक्षित रखो।**

हमें अन्न, धन, बल, (सहस्यं) शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य और (स्वस्ति) कल्याण चाहिये।

[१] (३९९) (देवयन्तः विप्राः यज्ञेषु) **देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी यज्ञोंमें (नमोभिः वः इषध्यै प्र अर्चयन्) अन्नों तथा नमस्कारों द्वारा आपकी प्राप्तिकी इच्छासे स्तोत्र पाठ करते हैं। और (द्यावा पृथिवी) द्युलोक और पृथिवी लोकका स्तोत्र गाते हैं। (येषां असमानि ब्रह्माणि) जिनके असीम स्तोत्र (वनिनः शाखा इव) वृक्षोंकी शाखाओंकी तरह (विष्वक् वियन्ति) चारों ओर फैलते हैं।**

देवत्वकी प्राप्तिका उपाय

देवयन्तः विप्राः — देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी जन देवोंकी स्तुति करते हैं। अर्थात् स्तुतीसे देवत्वके गुण स्तुती करनेवालोंमें आते हैं। इस तरह स्तोता लोग मनुष्योंके देव बनते हैं।

ब्रह्माणि — देवताकी स्तुतिरूप स्तोत्रोंको भी 'ब्रह्म' कहते हैं। इसका कारण यह है, कि देवताओंमें ब्रह्मभाव है ब्रह्मके ही रूप या अंश देवगण है। इसलिये उनके स्तोत्रों देवत्व प्राप्ति – अर्थात् ब्रह्मरूपता – होती है।

नरका नारायण होना यही है। इसका साधन भी यही है। 'ब्रह्म' - का अर्थ - पर ब्रह्म, ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, ज्ञान, स्तोत्र, स्तुति, कर्म आदि है।

[२] (४००) (यज्ञः प्र एतु) **हमारा यज्ञ देवोंकी ओर पहुंचे। (हेत्वः न सप्तिः) जैसे शीघ्रगामी घोडा दौडता है। (समनसः घृताचीः उत् यच्छध्वं) एक विचारसे घृतसे भरी स्रुवाको ऊपर उठाओ। (अध्वराय साधु बर्हिः स्तृणीत) यज्ञके लिये उत्तम आसन बिछाओ। (देवयूनि शोचींषि ऊर्ध्वा अस्थुः) देवोंकी ओर जानेवाली अग्निकी ज्वालाएं ऊर्ध्वगामी होकर फैलें।**

यज्ञशालामें देवताओंके लिये आसन बिछाओ। घीसे चमस भर कर आहुति दो। अग्निकी ज्वालाएं प्रदीप्त होकर ऊपर उठें। यह यज्ञ देवोंको प्राप्त हो।

[३] (४०१) (विभृत्राः पुत्रासः मातरं न) **जैसे भरण पोषण करनेयोग्य छोटे बालक माताकी गोदमें बैठते हैं, उस तरह (देवासः बर्हिषः सानौ आ सदन्तु) देव आसनोंके ऊपर बैठें। हे अग्ने! (विदथ्या विश्वाची आ अनक्तु) यज्ञमें चारों ओर घी सींचनेवाली जुहू तुम्हारे ऊपर सिंचन**

४ ते सीषपन्त जोषमा यजत्रा ऋतस्य धाराः सुदुघा दुहानाः ।
ज्येष्ठं वो अद्य मह आ वसूनामा गन्तन समनसो यति ष्ठ ४०२

५ एवा नो अग्ने विक्ष्वा दशस्य त्वया वयं सहसावन्नास्क्राः ।
राया युजा सधमादो अरिष्टा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४०३

(४४) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । दधिक्राः, १ दधिक्राश्व्युषोऽग्निभगेन्द्रविष्णुपूषब्रह्मणस्पत्यादित्य-द्यावापृथिव्यापः । त्रिष्टुप्, १ जगती ।

१ दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषसमग्निं समिद्धं भगमूतये हुवे ।
इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिमादित्यान् द्यावापृथिवी अपः स्वः ४०४

२ दधिक्रामु नमसा बोधयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
इळां देवीं बर्हिषि सादयन्तोऽश्विना विप्रा सुहवा हुवेम ४०५

करे। (देवताता नः मृधः मा कः) युद्धके समय हमारे हिंसक शत्रुओंकी सहायता न करना ।

देवताता नः मृधः मा कः — यज्ञमें तथा युद्धमें हमारे घातपात करनेवाले शत्रुओंकी सहायता न करो। कभी कोई ऐसा कार्य न करना कि जिससे शत्रुका बल बढे ।

[४] (४०२) (यजत्राः ते) यजनीय वे देव (घृतस्य सुदुघाः धाराः दुहानाः) जलकी दुहने योग्य जल धाराओंको बरसाते हुए (जोषं आ सीषपंत) हमारी सेवाका स्वीकार करें। (अद्य वसूनां ज्येष्ठं वः महः) आज धनोंमें जो श्रेष्ठ महत्त्व-पूर्ण धन है वह हमारे पास (आ गंतन) आवे तथा आप भी (समनसः यति स्थ) एक मन करके यहां यज्ञमें आओ।

वसूनां ज्येष्ठं महः आ गन्तन — धनोंमें जो श्रेष्ठ तथा महत्त्वपूर्ण धन होगा वही हमें प्राप्त हो। निकृष्ट धन हमारे पास ही न आवे।

समनसः यति स्थ — एक विचारसे यत्न करते रहो। संघटन करो और उन्नतिका यत्न करो।

[५] (४०३) हे अग्ने ! (एव विक्षु नः आ दशस्य) इस तरह प्रजाजनोंमें हमें धनका प्रदान करो ! हे (सहसावन्) बलवान् अग्ने ! (त्वया आस्क्राः वयं) तुम्हारे द्वारा वियुक्त न हुए हम सब (राया युजा) धनसे युक्त होकर (सधमादः) संगठित रहकर आनंदित होते हुए (अरिष्टाः) विनष्ट न हों। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याण करनेके साधनोंसे सदा हमारी सुरक्षा करो।

राया युजा — मनुष्य धनको प्राप्त करें।

सधमादः — सब एक स्थानमें साथ रहकर आनन्द करें। संगठित होकर प्रसन्नता प्राप्त करें।

अरिष्टाः — विनष्ट न हों।

सहसावन् -- बलसे युक्त हों। बल प्राप्त करें। उपास्य देव जैसा बलवान् है वैसे बलवान बनें। '**सहः**' का अर्थ शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य।

[१] (४०४) (वः ऊतये प्रथमं दधिक्रां हुवे) आप सबकी सुरक्षाके लिये मैं सबसे प्रथम दधिक्रा नामक घोडेकी प्रशंसा करता हूं। इसके पश्चात् अश्विदेव, उषा (समिद्धं अग्निं) प्रदीप्त अग्नि और भगकी प्रार्थना करता हूं। तथा इन्द्र, विष्णु, पूषा, (ब्रह्मणः पतिः) ब्रह्मणस्पति, आदित्य, द्यावा पृथिवी, (अपः) जल तथा (स्वः) सूर्यकी प्रार्थना करता हूं।

[२] (४०५) (दधिक्रां उ नमसा बोधयन्तः) दधिक्रा देव को नमस्कारों द्वारा संबोधित करके (उदीराणाः यज्ञ उपप्रयन्तः) तथा प्रेरित करके

३ दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निमुप ब्रुव उषसं सूर्यं गाम् ।
ब्रध्नं मंश्चतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद् दुरिता यावयन्तु ४०६
४ दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वाऽग्रे रथानां भवति प्रजानन् ।
संविदान उषसा सूर्येणाऽऽदित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ४०७
५ आ नो दधिक्राः पथ्यामनक्त्वृतस्य पन्थामन्वेतवा उ ।
शृणोतु नो दैव्यं शर्धो अग्निः शृण्वन्तु विश्वे महिषा अमूराः ४०८

(४१) ४ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सविता । त्रिष्टुप् ।

१ आ देवो यातु सविता सुरत्नोऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूम ४०९

यज्ञके समीप जाते हैं। (बर्हिषि इळां देवीं साद्यन्तः) यज्ञमें इळा देवीको स्थापन करके (सुहवा विप्रा अश्विना हुवेम) उत्तम प्रार्थना करने योग्य विशेष ज्ञानी दोनों अश्विदेवोंको बुलाते हैं।

[३] (४०६) (दधिक्रावाणं बुबुधानः) दधिक्रावाको संबोधित करता हुआ मैं (अग्निं उप ब्रुवे) अग्निकी स्तुति करता हूं। तथा उषा सूर्य और भूमि अथवा गौकी स्तुति करता हूं। (मंश्चतोः वरुणस्य ब्रध्नं बभ्रुं) घमंडी शत्रुओंके विनाश करनेवाले वरुणके बडे तथा भूरे वर्णके घोडेका स्तवन करता हूं। (ते अस्मत् विश्वा दुरिता यवयन्तु) ये सब हमसे सब पापोंको दूर करें।

[४] (४०७) (प्रथमः वाजी अर्वा दधिक्रावा) सबमें मुख्य वेगवान् शीघ्रगामी दधिक्रावा अश्व (प्रजानन् रथानां अग्रे भवति) जानता हुआ रथके अग्रभागमें स्वयं ही होता है। और यह उषा सूर्य आदित्य वसु और अंगिराओंके साथ (सं विदानः) सहमत रहता है।

उत्तम शिक्षित घोडा वेगवान् तथा चपल और शीघ्रतासे दौडनेवाला होता है। यह स्वयं कहां कैसा खडा रहना चाहिये यह जानता है और रथको जोडनेके समय रथके अग्रभागमें जहां खडा रहना चाहिये वहां स्वयं जाकर खडा होता है।

[५] (४०८) (दधिक्राः ऋतस्य पन्थां अनु एतवै) दधिका अश्व यज्ञके मार्गसे जानेके लिये (नः पथ्यां आ अनक्तु) हमारे मार्गको जलसे सिंचित करे। (दैव्यं शर्धः अग्निः) दिव्य बल रूप यह अग्नि (नः शृणोतु) हमारी प्रार्थनाका श्रवण करे तथा (विश्वे महिषाः अमूराः शृण्वन्तु) सब बलवान् ज्ञानी विबुध हमारी प्रार्थना सुनें।

सब लोग यज्ञ करें, सीधे मार्गसे जांय। दिव्य बल प्राप्त करें, ज्ञान प्राप्त करें, सामर्थ्य प्राप्त करें। देवताओंके गुण गाकर स्वयं देवता जैसे बनें।

सविता

[१] (४०९) (सुरत्नः अन्तरिक्षप्राः) उत्तम रत्नोंको धारण करनेवाला, अन्तरिक्षको अपने प्रकाशसे भर देनेवाला, (अश्वैः वहमानः) घोडों द्वारा जिसका रथ चलता है ऐसा (सविता देवः आ यातु) सविता देव आ जाये। (हस्ते पुरूणि नर्या दधानः) जिसके हाथमें मानवोंका हित करनेवाला धन बहुत है और जो (भूम निवेशयन् प्रसुवन् च) प्राणियोंका निवास करता और कर्ममें प्रेरित करता है।

१ सविता—सबको सत्कर्म करनेकी प्रेरणा देनेवाला। नेता, राजा, वा राजपुरुष लोगोंको सत्कर्ममें प्रेरित करे।

२ सुरत्नः—अपने पास धन भरपूर रखे। जिसका उपयोग लोगोंके हितार्थ वह करता रहे।

२ उद॑स्य बाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्ययां दिवो अन्ताँ अनष्टाम् ।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम् ४१०

३ स घा नो देवः सविता सहावा ऽऽ साविषद्वसुपतिर्वसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः ४११

---

३ अन्तरिक्षप्राः—(अन्तरि-क्ष-प्राः) अन्दरके निवास स्थानको अपने प्रकाशसे भरपूर भर देवे । जैसा सूर्य अपने प्रकाशसे सब विश्वको भर देता है वैसा राजा अपने राष्ट्रको प्रकाशमान करे । किसीको अन्धेरेमें रहने न दे। सबको ज्ञानका प्रकाश मिले ऐसा प्रबंध करे ।

४ नर्या पुरूणि हस्ते दधानः—मानवोंका हित करनेके लिये ही जो अपने हाथमें बहुतसे धन ले रखता है । धन भी ऐसे हों कि जो लोगोंका सच्चा हित करनेवाले हों । वे किसी स्थानपर बंद न रखे जांय, पर जनहित (नर्य) के लिये सदा प्राप्त होनेवाले हों । देर न लगते हुए जनहितके लिये वे लगाये जा सकें ऐसे धन हों ।

५ भूम निवेशयन् प्रसुवन्— यह नेता राजा मनुष्यादि प्राणियोंका उत्तम निवास करे, उनको (निवेशयन्) रहनेके लिये सुयोग्य स्थान प्राप्त हो, किसीके रहने सहनेका सुयोग्य प्रबंध नहीं हुआ है ऐसा न हो। (प्रसुवन्) सब लोगोंको सत्कर्ममें प्रेरित करे । ऐश्वर्य प्राप्ति सबकों हो ऐसे शुभ कर्म वे करें ऐसा प्रबंध हो ।

सूर्य आदर्श है मानवोंके लिये । राजा, राजपुरुष, वीर, नेता आदिका आदर्श सूर्य है ।

[२] (४१०) (शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया अस्य बाहू) प्रसारित बडे सुवर्णसे परिपूर्ण इस सविताके बाहू हैं (दिवः अन्तान् उत् अनष्टां) द्युलोकके अन्ततक वह व्यापता है । (नूनं अस्य सः महिमा पनिष्ट) निःसंदेह इसका वह महिमा गाया जाता है । (सूरः चित् अस्मै अपस्यां अनु दात्) यह सूर्य ही इस मनुष्यके लिये शुभ कर्मकी प्रेरणा अनुकूलतासे देवे ।

१ हरिण्यया बृहन्ता शिथिरा बाहू—सुवर्णसे भरे बडे विशाल और फैले बाहू । जिन हाथोंमें दान देनेके लिये पर्याप्त सुवर्ण लिया है ऐसे वीरके हाथ हों तथा ये हाथ दान देनेके उद्देश्यसे फैलायें हों । यहां का ' हिरण्य ' शब्द सुवर्णकी मुद्रा, जेवर अथवा क्रय विक्रयका साधनरूप धन ऐसा अर्थ बता रहा है । क्योंकि ' हिरण्य ' उसको कहते हैं कि जो एक हाथसे दूसरे हाथमें हर लिया जाता है । **' ह्रियते जनाज्जनमिति '** (निरुक्त० २।३।१०) व्यवहार करनेके समय जो एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्य तक जाता है, उसका नाम ' हिरण्य ' है । यह व्यवहारकी सुवर्ण मुद्रा है । अर्थात् ' हिरण्य ' का अर्थ केवल सुवर्ण नहीं, परंतु सुवर्ण मुद्रा, राजचिन्हांकित सुवर्ण मुद्रा । ऐसी सुवर्ण मुद्राएं हाथमें लेकर उनका दान करनेके लिये अपना हाथ यह देव फैला रहा है ।

२ सूरः चित् अपस्यां अनुदात्—सूर्यके समान कर्म की प्रेरणा करता है । सूर्य सबको जगाता और कर्म करनेके लिये मानवोंको प्रेरित करता है । दिन होते ही मनुष्य नाना प्रकारके कर्म करने लगते हैं । यहां कर्मके लिये ' अपस् ' अपस्या ' ये पद हैं । (व्याप्नोतीति अपः) जिस कर्मका परिणाम व्यापक होता है । राष्ट्रभरमें विश्वभरमें होता है, सार्वजनिक हितके जो कर्म होते हैं वे ही ' अपस् ' हैं । ऐसे शुभ कर्म करनेकी इच्छाका नाम ' अपस्या ' है । सूर्यके अस्त होते ही चोर, जार, डाकू, लुटेरे अपने कुकर्म करनेके लिये प्रवृत्त होते हैं । और सूर्यका उदय होते ही, संध्या, प्रार्थना, यज्ञ, याग, ईश्वर उपासना, ज्ञान यज्ञ आदि प्रशस्त कर्म शुरू होते हैं । चोरी जारी आदि कर्म ' अपस् ' नहीं कहे जाते, परंतु ' यज्ञ याग ही अपस् ' शब्दसे बोधित होते हैं । सूर्यका जैसा ऐसे हितकारी कर्मोंसे संबंध है वैसा ही राजा, नेता, वीर पुरुषका संबंध शुभ कर्मसे ही रहे ।

[३] (४११) (सहावा वसुपतिः सः सविता देवः) शक्तिमान और धनवान सविता देव (वसूनि नः आ साविषत्) हमें धन देवे । वह सविता देव (उरूचीं अमतिं विश्रयमाणः) विस्तृत तेजको धारण करके (अध नः मर्तभोजनं रासते) हमें मानवोंके लिये योग्य भोग्य धन दें ।

४ इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम् ।
चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४१२

(४६) ४ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । रुद्रः । जगती, ४ त्रिष्टुप् ।

१ इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने ।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः ४१३

---

१ सहावा वसुपतिः वसूनि नः आ साविषत्— सामर्थ्यवान् और धनवान् जो होगा वही हमें धन देगा। वही किसीको धन दे सकता है जिसके पास धन होता है। अतः प्रथम धन प्राप्त करो और पश्चात् उसका दान करो। '**सहा-वा**' = शत्रुको पराजित करनेकी सामर्थ्य, शत्रुके कितने भी आक्रमण हुए तो भी उनको सहकर अपने स्थानमें रहनेका सामर्थ्य। यह सामर्थ्य धनवानको प्राप्त करना चाहिये !

२ वसुपतिः सहा-वा— धनका स्वामी ऐसा हो कि जो शत्रुका पराभव करनेमें समर्थ हो और शत्रुके आक्रमण होनेपर भी वह स्वस्थानमें अचल रह सके। ऐसा वीर ही धनपति होनेका अधिकारी है।

३ वसुपतिः सहावा ऊर्ध्वी अमतिं विश्रयमाणः- धनपति सामर्थ्यवान होकर विस्तृत प्रगति करनेके कार्योंको आश्रय दे। प्रगतिके कार्य करे। '**अमतिः** (अमति गच्छति)= प्रगतिके कार्यको अमति कहते हैं। जो उन्नतिकी ओर ले जाते हैं, जो परिस्थितिका सुधार करते हैं। धनवान् और साम-र्थ्यवान् वीर प्रगति करनेवाले हों। संकुचित वृत्तीवाले न हों।

४ सहावा वसुपतिः मर्तभोजनं रासते— सामर्थ्य-वान धनपति मनुष्योंके भोगोंके लिये योग्य धन देवे। जिससे मनुष्य गिर जांयगे वैसे धन न दे। जिससे मनुष्य प्रगति करेंगे ऐसे धन देवे।

[४] (४१२) (इमा गिरः) ये वचन, ये स्तोत्र (सुजिह्वं पूर्णगभस्तिं) उत्तम जिह्वावाले संपूर्ण धन हाथमें लिये हुए (सुपाणिं सवितारं) उत्तम हाथवाले सविता देवके गुणोंका वर्णन करते हैं। वह (चित्रं बृहत् वयः) श्रेष्ठ तथा विशाल धन (अस्मे दधात्) हमें देवे। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित रखो।

'**सुजिह्वं**'—उत्तम जिह्वावाला, उत्तम भाषण करने-वाला, '**पूर्ण-गभस्ति**'-पूर्ण फैलाये हस्तवाला, धनका दान करनेके लिये जिसने अपना हाथ फैलाया है। जो दान करनेके लिये सिद्ध है। '**सु-पाणिं**' — जो उत्तम हृष्टपुष्ट हाथ-वाला है। '**सवितारं**'–सत्कर्ममें प्रेरणा करनेवाला।

'**चित्रं**'-प्राप्त करने, इच्छा करनेयोग्य, '**बृहत्**'— बडा विशाल, विस्तीर्ण, '**वयः**'-अन्न, यश, धन। '**स्वस्ति भिः पात**'–कल्याण करनेके साधनोंसे ही हमारी सुरक्षा हो। अन्तमें जिससे हमारा अकल्याण होगा, ऐसे उपायोंसे किसीकी भी सुरक्षा न हो। अन्तमें कल्याण होना चाहिये। सुरक्षाका ध्येय कल्याण है न कि विनाश।

रुद्रः

[१] (४१३) (इमाः गिरः) ये स्तोत्र (स्थिर धन्वने क्षिप्रेषवे) सुदृढ धनुष्यवाले, शीघ्रगामी बाण शत्रुपर छोडनेवाले (स्वधा-व्ने वेधसे) अपनी धारण शक्तिसे युक्त विधाता (अ-षाळ्हाय) जिसका आक्रमण असह्य है तथा (सहमानाय) शत्रुके आक्रमणको सहनेवाले (तिग्मायुधाय रुद्राय देवाय) तीक्ष्ण शस्त्र धारण करनेवाले रुद्र देव के लिये (भरत) भरो, करो, गाओ। वह (नः शृणोतु) हमारी प्रार्थना श्रवण करें।

यह वीर, महावीरका वर्णन है, रुद्रका नाम महावीर है। '**स्थिर-धन्वा**'-जिसका धनुष्य बलवान है, स्थिर रहता है। टूटनेवाला नहीं है। '**क्षिप्र-इषुः**'- अपने धनुष्यपरसे अतिशीघ्रतासे यह शत्रुपर बाणोंको छोडता है '**तिग्म-आयु-धः**'— तीक्ष्ण आयुधवाला, बाण, त्रिशूल, भाला, खड्ग, आदि जो जो शस्त्रास्त्र इसके पास हैं, वे सब अतितीक्ष्ण हैं। '**स्वधा-वान्**'-(स्व) अपनी (धा) धारक शक्तिसे (वान्) युक्त, अपनी निज शक्तिसे संपन्न, (स्वधा) अन्न

२ स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चराऽनमीवो रुद्र जासु नो भव ४१४

३ या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः ।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ४१५

अपने पास रखनेवाला, पर्याप्त अन्नसे युक्त, '**वेधाः**'— विधाता, कुशलतासे कर्म करनेवाला, निर्माण करनेवाला, कुशल। '**अ-षाळ्हः**'–जिसके आक्रमणको शत्रु सहन नहीं कर सकता, जिसके आक्रमणसे शत्रु स्थानभ्रष्ट होता है, पूर्ण तथा पराभूत होता है, '**सहमानः**'–शत्रुने इसपर आक्रमण किया तो यह अपने स्थानपर सुरक्षित रहता है, और अपने स्थानपर रहकर ही शत्रुसे लडता रहता है, अपना स्थान छोडता नहीं, इस कारण (रुद्रः) जो शत्रुको रुलाता है, जिसको शत्रु डरते हैं। (देवः) प्रकाशमान, तेजस्वी, व्यवहार चलानेवाला, प्रसन्नचित्त, विजयी जो है वह महावीर है। ऐसे वीरका यह काव्य है।

मनुष्योंमें ऐसे वीर हों।

[२] (४१४) (**सः हि क्षम्यस्य जन्मनः क्षयेण चेतति**) **वह रुद्र पृथिवीके ऊपर जन्मे मनुष्योंके निवास हेतुरूपी धनसे जाना जाता है। और (दिव्यस्य साम्राज्येन) दिव्य जीवनवाले मनुष्यके साम्राज्य ऐश्वर्यसे जाना जाता है। हे रुद्र! (नः अवंतीः अवन्) तुम हमारी अपनी सुरक्षा करनेवाली प्रजाका संरक्षण करके (नः दुरः उप चर) हमारे घरोंके पास आओ और (नः जासु अनमीवः भव) हमारे प्रजाजनोंमें नीरोगिता करनेवाला हो।**

मानवधर्म – पृथिवीपरके मानवोंका निवास सुखदायक होनेका प्रबंध किया जावे। दिव्य जीवनके साम्राज्यको बढाया जावे। प्रजाका संरक्षण हो। द्वारोंपर पहारा रखा जाय। प्रजाजनोंमें नीरोगिताकी स्थापना हो। राष्ट्रमें रोग ही न हों ऐसा आरोग्यका सुप्रबंध हो।

१ क्षम्यस्य जन्मनः क्षयेण सः चेतति—पृथिवीके ऊपर जन्मे मनुष्योंके निवास करनेके कारण उसका ज्ञान होता है। जिसने मनुष्योंका निवास सुखदायी किया है वह वीर यह है। वीर मनुष्योंका निवास सुखदायी करे।

२ दिव्यस्य जन्मनः साम्राज्येन सः चेतति— दिव्य जीवनवाले मनुष्योंके साम्राज्यके ऐश्वर्यसे उसके सामर्थ्यका ज्ञान होता है। एक दिव्य जीवनवाले मनुष्योंका साम्राज्य होता है, और दूसरा आसुरी जीवनवाले लोगोंका साम्राज्य होता है। रुद्र दिव्य जीवनवाले भद्र पुरुषोंके साम्राज्यका सहाय्यक है और आसुरी साम्राज्यका विघातक है।

३ सः अवन्तीः अवन्—जो प्रजा अपना रक्षण करनेका प्रयत्न करती है उस प्रजाकी सहायता यह महावीर करता है।

४ दुरः उपचर—द्वारोंपर संचार कर, द्वारोंका संरक्षण कर। संरक्षक द्वारोंपर पहारा करते हैं।

५ जासु अनमीवः भव– प्रजाजनोंमें नीरोगिता उत्पन्न करनेवाला हो। महावीर अपने सुप्रबंध द्वारा राष्ट्रमें रोग न हों ऐसा प्रबंध करे।

वीरोंको अपने राष्ट्रमें किस तरहका प्रबंध करना चाहिये इसका वर्णन इस मन्त्रमें है।

राष्ट्रकी शासन व्यवस्थासे राष्ट्रका शासन प्रबंध कैसा होना चाहिये वह इस मन्त्रमें कहा है।

[३] (४१५) **(ते या दिद्युत् दिवस्परि अवसृष्टा) तुम्हारी जो विद्युत् आकाशसे छोडी हुई (क्ष्मया चरति) पृथिवीके साथ विचरण करती है (सा नः परि वृणक्तु) वह हमें छोड देवे, हम पर न गिरे। हे (स्वपिवात) उत्तम वायुके समान बलवान् वीर! (ते सहस्रं भेषजा) तुम्हारे पास सहस्रों औषधियां हैं। (नः तनयेषु तोकेषु मा रीरिषः) हमारे बालबच्चों में क्षीणता न करो।**

४ मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य ।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४१६

(४७) ४ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आपः । त्रिष्टुप् ।

१ आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः ।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम ४१७

२ तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वाशुहेमा ।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य ४१८

३ शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः ।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत ४१९

---

१ दिवस्परि अवसृष्टा विद्युत् क्षमया चरति–द्युलोकसे चली हुई विद्युत् पृथिवीके साथ मिलती है। बिजली मेघोंसे चली पृथिवीमें जाती है, यह विज्ञानका तत्व यहां कहा है।

२ सहस्रं भिषजा—हजारों औषध है जो रोगोंको दूर करते हैं।

३ तनयेषु तोकेषु मा रीरिषः—बाल-बच्चोंमें क्षीणता न हो। बाल-बच्चोंका नाश न हो। बाल-बच्चे हृष्टपुष्ट हों।

[४] (४१६) हे रुद्र ! (नः मा वधीः) हमारा वध न कर। (मा परा दाः) हमारा त्याग न कर। (ते हीळितस्य प्रसितौ मा भूम) तुम्हारे क्रोधित होनेपर जो तुम बंधन करते हो वह हम पर न आवे। (जीवशंसे बर्हिषि) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित यज्ञमें (नः आ भज) हमें रख। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याणों द्वारा सुरक्षित रखो।

आपः।

[१] (४१७) (देवयन्तः आपः) हे देवत्व प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले जलो ! (वः इन्द्रपानं) आपने इन्द्रके लिये पीने योग्य रसमें (इळः ऊर्मिं यं प्रथमं अकृण्वत) भूमिसे उत्पन्न प्रवाह रूप उदक मिलाकर जो पहिले सोमपान तैयार किया था, (वः) आपके (तं शुचिं अरिप्रं) उस शुद्ध पापरहित (घृत-प्रुषं मधुमन्तं) वृष्टिजलसे मिश्रित मधुर रससे युक्त सोमरसको (वयं अद्य वनेम) हम सब आज प्राप्त करें, उसका हम आज सेवन करें।

सोमरसमें शुद्ध जल, मधु (शहद) मिलाकर पीने योग्य बनाया जाता है। जल उसमें न मिलाया जाय तो वह पीने योग्य नहीं होता। इसलिये जलका महत्त्व है।

[२] (४१८) हे (आपः) जलो ! (वः मधुमत्तमं तं ऊर्मिं) आपका वह अत्यंत मीठा प्रवाह सोमरसमें मिला है उसको (आशु-हेमा अपां-न-पात्) शीघ्र गतिवाला जलोंको न गिरानेवाला अग्निदेव सुरक्षित करे। (यस्मिन् इन्द्रः वसुभिः मादयाते) जिस पानसे इन्द्र वसुओंके साथ आनंदित होते हैं (तं वः अद्य) उस आपके द्वारा सिद्ध हुए सोमपानको आज (देवयन्तः अश्याम) देवत्वकी इच्छा करनेवाले हम प्राप्त करेंगे, उसका पान करेंगे।

[३] (४१९) (शतपवित्राः स्वधया मदन्तीः) सैंकडों प्रकारोंसे पवित्रता करनेवाले और अन्नके साथ आनंद देनेवाले (देवीः देवानां पाथः अपि यन्ति) दिव्य जल देवोंके यज्ञस्थानको प्राप्त होते हैं। (ताः इन्द्रस्य व्रतानि न मिनन्ति) वे जल प्रवाह इन्द्रके कार्योंका नाश नहीं करते हैं। प्रत्युत सहायक होते हैं। इसलिये आप (सिन्धुभ्यः घृतवत् हव्यं जुहोत) नदियोंके लिये घृत मिश्रित हव्यका हवन करो।

४ याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद् गातुमूर्मिम् ।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४२०

(४८) ४ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । ऋभवः, ४ विश्वे देवा वा । त्रिष्टुप् ।

१ ऋभुक्षणो वाजा मादयध्वमस्मे नरो मघवानः सुतस्य ।
आ वोऽर्वाचः क्रतवो न यातां विभ्वो रथं नर्यं वर्तयन्तु ॥ ४२१

२ ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि ।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसाताविन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् ॥ ४२२

जलसे (शत पवित्राः) सैकडों रीतिसे पवित्रता होती है, मल दूर होते है । (स्वधया मदन्तीः) जल अन्नसे युक्त होकर आनंद देता है ।

[४] (४२०) (सूर्यः याः रश्मिभिः आततान) सूर्य जिनको अपने किरणोंसे फैलाता है । (याभ्यः इन्द्रः ऊर्मिं गातुं अरदत्) जिन जलोंके लिये इन्द्रने प्रवाहित होनेका मार्ग खोदकर कर दिया है । हे (सिन्धवः) नदियोंके जल प्रवाहो ! (ते वरिवः नः धातन) वे जलप्रवाह श्रेष्ठ अन्न, धन आदि हमें दें । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) आप हमें सदा कल्याणोंसे सुरक्षित रखिये ।

ऋभवः ।

[१] (४२१) हे (ऋभुक्षणः वाजाः मघवानः नरः) कर्ममें कुशल पुरुषोंके निवासक, अन्नवान्, धनवान् नेताओ ! (अस्मे सुतस्य मादयध्वं) हमने बनाये इस सोमरससे आनन्दित हो जाओ । (यातां वः क्रतवः विभ्वः) जानेके लिये उत्सुक हुए तुम्हारे कर्मकर्ता समर्थ अश्व (अर्वाचः नर्यं रथं आवर्तयन्तु) हमारे समीप तुम्हारे मनुष्योंका हित करनेवाले रथको ले आवें । तुमको हमारे पास ले आवें ।

' **नरः** ' —नेता लोग कैसे हों ? उत्तरमें कहते हैं कि वे नेता लोग (**ऋभुक्षणः**) कारीगरोंको बसानेवाले हों, (**वाजाः**) बलवान हों, अन्नोंको अपने पास रखनेवाले हों, (**मघवानः**) धनवान हों, ऐसे पुरुष नेतृत्व करें । (**क्रतवः विभ्वः**) कर्म उत्तम रीतिसे करनेवाले हों, वैभवसंपन्न हों । उनका (नर्यं रथं) रथ मनुष्योंका हित करनेवाला हो अर्थात् वे मानवोंका हित करनेवाले हों ।

[२] (४२२) (वः ऋभुभिः ऋभुः अभि स्याम) आपके कुशल कारीगरोंके साथ रहकर हम कर्ममें कुशल हों । तथा (विभुभिः विभ्वः) तुम वैभव युक्तोंके साथ रहनेसे हम वैभव युक्त होंगे । (शवसा शवांसि) बलसे बल प्राप्त करेंगे । (वाजसातौ अस्मान् वाजः अवतु) युद्धके समय हमें अपना सामर्थ्य संरक्षण करे । (इन्द्रेण युजा वृत्रं तरुषेम) इन्द्रके साथ रहकर वृत्रका नाश करेंगे ।

१ **ऋभुभिः ऋभुः स्याम**—कारीगरोंके साथ रहकर हम कारीगर बनेंगे । कुशल पुरुषोंके साथ रहकर हम कुशल बनें ।

२ **विभुभिः विभ्वः स्याम**—वैभव युक्त पुरुषोंके साथ रहकर हम वैभव युक्त बनें ।

३ **शवसा शवांसि**—समर्थोंके साथ रहकर हम अनेक प्रकारके सामर्थ्य प्राप्त करेंगे ।

४ **वाजसातौ वाजः अस्मान् अवतु**—युद्धके समय इस तरह प्राप्त किया सामर्थ्य हमारा संरक्षण करे ।

५ **इन्द्रेण युजा वृत्रं तरुषेम**—वीरके साथ रहकर हम शत्रुका नाश करेंगे ।

कर्मकी कुशलता, धन, बल, युद्ध निपुणता आदि गुण प्राप्त करके हम शत्रुओंके साथ होनेवाले युद्धमें शत्रुका प्रत्येक युद्ध क्षेत्रमें सामना करके, शत्रुका पराभव करके हम विजयी होंगे । हमारा पराभव होनेकी अवस्था कदापि नहीं होगी ।

३ ते चिद्धि पूर्वीरभि सन्ति शासा विश्वाँ अर्य उपरताति वन्वन् ।
इन्द्रो विभ्वाँ ऋभुक्षा वाजो अर्यः शत्रोर्मिथत्या कृणवन् वि नृम्णम् ४२३

४ नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः ।
सम‍स्मे इषं वसवो ददीरन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४२४

(४९) ४ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आपः । त्रिष्टुप् ।

१ समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात् पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ४२५

---

[३] (४२३) (ते हि पूर्वीः शासा अभिसन्ति) **वे शूर शत्रुकी बहुतसी सेनाको उत्तम शस्त्रसे पराभूत करते हैं। (उपरताति विश्वान् अर्यः वन्वन्) युद्धमें सब शत्रुओंको मारते हैं। (विभ्वा ऋभुक्षाः वाजः अर्यः) वैभव युक्त, कारीगरोंके निवासक बलवान् शत्रुका पराभव करनेवाले वीर (इन्द्रः) इन्द्र और ऋभु ये सब (शत्रोः नृम्णं मिथत्या विकृण्वन्) शत्रुके बलको विनष्ट करते हैं।**

१ पूर्वीः शासा ते अभिसन्ति- बहुतसी शत्रुसेना होनेपर भी अपने उत्तम शस्त्रसे वह पराभूत हो सकती है। शत्रुसे (शासा) अपने शस्त्र अधिक तीक्ष्ण हों। कदापि कम न हों।

२ उपरताति विश्वान् अर्यः वन्वन्- अपने पास उत्तम शस्त्र रहे तो ही युद्धमें सब शत्रुओंका पराभव हो सकता है। **' उपर-ताति '**-(उपर, उपल) पत्थरोंसे (ताति) मार-पीट जिसमें होती है। शस्त्रोंसे जिसमें काटना होता है उसका नाम युद्ध है।

३ विभ्वाः ऋभुक्षाः वाजः अर्यः—(विभ्वाः) वैभव संपन्न, (ऋभुक्षाः) कारीगरोंको बसानेवाले, (वाजः) शक्तिमान (अर्यः) श्रेष्ठ आर्य वीर ये शत्रुका पराभव करते हैं।

इस एक ही मंत्रमें ' अर्यः ' पद विभिन्न अर्थोंमें आया है। ' अरि '-शत्रु, उसका बहुवचनी आर्ष प्रयोग ' अर्यः ' अनेक शत्रु इस अर्थमें प्रयुक्त होता है। दूसरा ' अर्य '-स्वामी, आर्य, श्रेष्ठ वीर अर्थका अर्य पद है। ये दोनों पद इसी एक मंत्रमें प्रयुक्त हुए हैं।

४ शत्रोः नृम्णं मिथत्या विकृण्वन्— शत्रुके बलका नाश करते है। नृम्णं-बल, मानवी संघटनासे प्राप्त होनेवाला बल। ' मिथत्या '—हिंसा, नाश।

[४] (४२४) हे (देवासः) देवो! (नू नः **वरिवः कर्तन) हमारे लिये धनका प्रदान करो। (विश्वे सजोषाः नः अवसे भूत) सब एक विचार-से रहनेवाले तुम वीर हमारी सुरक्षा करनेके लिये रहो। (वसवः अस्मे इषं सं ददीरन्) वसु हमें अन्नका प्रदान करें। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा सुरक्षाके कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित करो।**

हमे धन मिले, हम उत्तम प्रकारसे सुरक्षित रहें, हमें उत्तम अन्न मिले। अन्न, धन और संरक्षण चाहिये। जिससे मनुष्योंकी उन्नति हो सकती है।

आपः।

[१] (४२५) **(समुद्र ज्येष्ठाः) जिनमें समुद्र श्रेष्ठ है ऐसे जल (सलिलस्य मध्यात् यन्ति) जलके मध्य स्थानसे चलते हैं जो (पुनानाः अनि-विशमानाः) पवित्र करते हैं और कहीं भी ठहरते नहीं हैं। (वज्री वृषभः इन्द्रः या रराद) वज्रधारी बलवान् इन्द्रने जिनके लिये मार्ग बना दिया था (ता देवीः आप इह मां अवन्तु) वे दिव्य जल यहां मेरी सुरक्षा करें।**

२ या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः ।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ४२६

३ यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ४२७

४ यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति ।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ४२८

(५०) ४ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १ मित्रावरुणौ, २ अग्निः, ३ विश्वे देवाः, ४ नद्यः । जगती, ४ अतिजगती शक्करी वा ।

१ आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद् विश्वयन्मा न आ गन् ।
अजकावं दुर्दृशीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः ४२९

---

[२] (४२६) (याः आपः दिव्याः) जो जल आकाशसे प्राप्त होते हैं, और (उत वा स्रवन्ति) जो नदियोंमें बहते हैं, जो (खनित्रिमाः) खोद कर कूवेसे प्राप्त होते हैं, (उत वा याः स्वयंजाः) और जो स्वयं उत्पन्न होते हैं। (याः शुचयः पावकाः) जो शुद्धता और पवित्रता करनेवाले हैं, ये सब (समुद्रार्थाः) समुद्रकी ओर जानेवाले हैं (ताः देवीः आपः मां इह अवन्तु) वे दिव्य जल मेरी यहां सुरक्षा करें ।

जल चार प्रकारके हैं— (१) दिव्याः आपः—वृष्टिसे आकाशसे जो प्राप्त होते हैं, (२) स्रवन्ति—जो झरनोंसे स्रवते हैं । नदियोंमें बहते हैं, (३) खनित्रिमाः — खोदकर कूवेमेंसे प्राप्त होते हैं, (४) स्वयंजाः—स्वयं जो ऊपर आते हैं । ये सब जलप्रवाह किसी न किसी तरह समुद्र तक पहुंचते हैं । ये जल पवित्रता करनेवाले हैं, शुचिता और निर्दोषता करते हैं । इसलिये आरोग्य बढानेवाले हैं ।

[३] (४२७) (यासां वरुणः राजा मध्ये याति) जिनका राजा वरुण मध्य लोकमें जाता है और (जनानां सत्य-अनृते अवपश्यन्) लोगोंके सत्य और अनृतका निरीक्षण करता है । (याः आपः मधुश्चुतः) जो जल प्रवाह मधुररस देते हैं (याः शुचयः पावकाः) जो पवित्र और शुद्ध हैं (ताः आपः देवीः मां इह अवन्तु) वे दिव्य जल यहां हमारी सुरक्षा करें ।

[४] (४२८) (राजा वरुणः यासु) वरुण राजा जिन जलोंमें रहता है, (सोमः यासु) सोम जिनमें रहता है, (विश्वे देवाः यासु ऊर्जं मदन्ति) सब देव जिनमें अन्न प्राप्त करके आनंदित होते हैं । (वैश्वानरः अग्निः यासु प्रविष्टः) विश्व संचालक अग्नि जिनमें प्रविष्ट हुआ है । (ताः देवीः आपः इह मां अवन्तु) वे दिव्य जल यहां मुझे सुरक्षित रखें ।

मित्रावरुणौ । विषबाधाको दूर करना ।

[१] (४२९) हे मित्र और वरुण ! (इह मां आरक्षतं) यहां मेरी सुरक्षा करो ! (कुलायत् विश्वयत् नः मा आगन्) स्थानमें रहनेवाला अथवा फैलनेवाला विष हमारे पास न आवे । (अजकावं दुर्दृशीकं तिरः दधे) रोग और दृष्टि हीनता हमसे दूर हो । (त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्) सर्प पांवके शब्दसे मुझे न जाने । सांप मुझसे दूर रहे ।

' कुलाय '—स्थान, शरीर । ' कुलायत् '–स्थानमें रहनेवाला । जहां का वहां रहकर बाधा करनेवाला । ' विश्वयत् '—विशेष फैलनेवाला । ये सब विविध प्रकारके विष

२ यद् विजामन् परुषि वन्दनं भुवदष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देहत् ।
अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितो मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः ४३०

३ यच्छल्मलौ भवति यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परि जायते विषम् ।
विश्वे देवा निरितस्तत् सुवन्तु मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः ४३१

४ याः प्रवतो निवत उद्वत उदन्वतीरनुदकाश्च याः ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः शिवा देवीरशिपदा भवन्तु
सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु ४३२

है । 'अजकः'—यह एक रोग है । 'अजका'—यह नेत्र रोगका नाम है जो विशेष रक्त वहां इकट्ठा होनेसे होता है । 'दुः दृशीकः'—यह भी नेत्र रोग है जिसमें दृष्टि कम होती है ।

त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्—सांप पांवके शब्दसे मुझे न पहचाने । यहां शब्दसे सांप पहचानता है यह भाव है । कष्ट देनेवालेका शब्द सुनकर सर्प—नाग पहचानता और उसको काटता है । ऐसा लोगोंमें जो प्रवाद है वही यहां इस मन्त्र-भागमें है ।

अग्नि । विष दूरीकरण

[२] (४३०) (वंदनं- यत् विजामन्) वंदन नामक विष जो जन्मभर रहता है, (परुषि भुवत्) जो पर्वस्थानमें रहता है, जो (अष्ठीवन्तौ कुल्फौ परि च देहत्) जांघों और गुल्मग्रंथियोंमें फुलाता है । (अग्निः शोचन् इतः तत् अपबाधतां) अग्नि प्रकाशित होकर यहांसे उसे दूर करे । (त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्) पांवके शब्दसे सांप मुझे न पहचाने ।

अग्निकी ज्योतिसे जलाना अथवा लोहेकी शलाका अग्निवत् तपाकर दाग देना यह उपाय संधिके रोग तथा ग्रन्थिरोगको हटानेके लिये यहां बताया है ।

विश्वेदेवाः । विषनाश ।

[३] (४३१) (यत् शल्मलौ भवति) जो शाल्मली वृक्ष पर होता है । (यत् नदीषु) जो नदियोंके जलोंमें होता है, (यत् विषं ओषधिभ्यः परिजायते) जो विष औषधियोंसे उत्पन्न होता है । (विश्वे देवाः तत् इतः निः सुवन्तु) सब देव उस विषको यहांसे दूर करें । (त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्) सांप पांवके शब्दसे मुझे न पहचाने ।

वृक्षों, वनस्पतियों और नदी जलोंमें होनेवाला विष नाना प्रकारके दिव्य पदार्थों अर्थात् जल, अग्नि, वायु, औषधि, सूर्य प्रकाश आदिसे दूर किया जाय ।

नदियां । शिपद रोग दूरीकरण

[४] (४३२) (याः प्रवतः) जो नदियां प्रवण देशमें चलती है (याः निवतः उद्वतः) जो निम्न प्रदेशमें और जो उच्च प्रदेशमें चलती हैं, (याः उदन्वतीः अनुदकाः) जो उदकसे भरी रहती है और जिनमें थोडा जल रहता है, (ता पयसा पिन्वमाना) वे नदियां जलसे तृप्ति करती हुई (अस्मभ्यं शिवाः) हमारे लिये कल्याण करनेवाली होकर वे (देवीः अशिपदाः) दिव्य नदियां शिपद रोगको दूर करनेवाली हो । (सर्वा नद्यः अशिमिदाः भवन्तु) सब नदियां कल्याण करनेवाली हों ।

'शि-पद'—यह रोग पांवका रोग है जो पांवको बढाता है । 'श्लिपद' भी इसीका नाम होगा ।

(५१) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आदित्याः । त्रिष्टुप् ।

१ आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शंतमेन ।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः ४३३

२ आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः ।
अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य ४३४

३ आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्व ऋभवश्च विश्वे ।
इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४३५

(५२) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आदित्याः । त्रिष्टुप् ।

१ आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा ।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः ४३६

२ मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत् कर्म वसवो यच्चयध्वे ४३७

आदित्यः ।

[१] (४३३) (आदित्यानां नूतनेन अवसा) आदित्योंके नवीन संरक्षणसे (शंतमेन शर्मणा सक्षीमहि) अत्यन्त सुखदायी कल्याणसे हम युक्त हों । (तुरासः श्रोषमाणाः) त्वरासे कर्म करनेवाले और प्रार्थना सुननेवाले आदित्य (इमं यज्ञं) इस यज्ञको तथा इस याजकको (अनागास्त्वे अदितित्वे दधतु) निष्पाप और अदीन करें ।

' आदित्याः '—वर्षके बारह महिने, अर्थात उन महिनोंका सूर्य प्रकाश । प्रत्येक महिनेके सूर्य प्रकाशका गुण भिन्न भिन्न रहता है । और उसका मानवी शरीरपर परिणाम विभिन्न होता है । ' शर्म '—सुख, घर, संरक्षण, कवच । ' तुरासः '-त्वरा करनेवाले । ' अनागास्त्वे '-निष्पापपन, निर्दोषता । ' अदितित्वे '-अदीनता, अहीनता, अदरिद्रता, धनवान् होना ।

[२] (४३४) आदित्य, अदिति, मित्र, अर्यमा, वरुण ये (रजिष्ठाः) वेगवान देव (मादयन्तां) हर्षित हों । आनन्दित हों । (भुवनस्य गोपाः अस्माकं सन्तु) ये विश्वके संरक्षक देव हमारा हित करनेवाले हों । (अद्य नः अवसे सोमं पिबन्तु) आज हमारे संरक्षण करनेके लिये ये सोमरस पीवें ।

[३] (४३५) (विश्वे आदित्याः) सब ही बारह आदित्य (विश्वे मरुतः) सब ४९ मरुत् देव (विश्वे देवाः च) सब देव (विश्वे ऋभवः) सब ऋभुदेव और इन्द्र, अग्नि तथा अश्विदेव (तुष्टुवानाः) इन सबकी स्तुति की है । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सब सदा हमारी सुरक्षा कल्याणके साधनोंसे करो ।

[१] (४३६) हे (आदित्यासः) आदित्यो ! हम (अदितयः स्याम) अदीन हों । हे (वसवः) वसुदेवो ! (देवत्रा पूः) देवोंमें जो संरक्षक शक्ति है वह (मर्त्यत्रा) हम मानवोंकी सुरक्षाके लिये प्राप्त हो । हे मित्र और वरुण ! (सनन्तः सनेम) तुम्हारी सेवा करने पर हम धनको प्राप्त करेंगे । हे द्यावा-पृथिवी ! हम (भवन्तः भवेम) भाग्यवान् हों ।

हम दरिद्री अथवा दीन न हों । हमारा संरक्षण हो, हम धनवान और भाग्यवान हों ।

[२] (४३७) (मित्रः वरुणः तत् शर्म नः मामहन्त) मित्र और वरुण उस हमारे उत्तम सुखको

३ तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।
पिता च तन्नो महान् यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषन्त ४३८

(५३) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। द्यावापृथिवी। त्रिष्टुप्।

१ प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः सबाध ईळे बृहती यजत्रे ।
ते चिद्धि पूर्वे कवयो गृणन्तः पुरो मही दधिरे देवपुत्रे ४३९

२ प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य ।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम् ४४०

३ उतो हि वां रत्नधेयानि सन्ति पुरूणि द्यावापृथिवी सुदासे ।
अस्मे धत्तं यदसदस्कृधोयु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४४१

बढावें। (गोपाः तोकाय तनयाय) विश्वरक्षक देव हमारे बाल-बच्चोंके लिये उत्तम सुख दें। (वः अन्यजातं एनः मा भुजेम) आपके आत्मीय बने हम अन्यके किये पापका फल न भोगें। अन्यके पापका फल हमें भोगना न पडे। हे (वसवः) वसुदेवो! (यत् चयध्वे) जिस कारण आप नाश करते हैं (तत् कर्म मा) उस कर्मको हम न करें।

हमारा सुख बढे, बाल-बच्चे आनंद प्रसन्न हों, दूसरेका किया पाप हमपर न आ जाय। जिससे विनाश होता है ऐसा कर्म हमसे न हो।

अन्यजातं एनः मा भुजेम—दूसरेका किया पाप हमपर न आ जाय। समाजमें ऐसा होता है। एक मनुष्य पाप करता है और देशका देश परतंत्र बनता है। एक कुपथ्य करके बीमारी लाता है जो फैलती और ग्रामोंको उध्वस्त करती है। इसलिये दूसरेके किये पापोंको भोगना न पडे ऐसा यहां कहा है।

[३] (४३८) (तुरण्यवः अंगिरसः) त्वरासे कार्य करनेवाले अंगिरस (इयानाः) प्रार्थना करके (सवितुः देवस्य रत्नं नक्षन्त) सविता देवसे जिस रमणीय धनको प्राप्त करते रहे, (यजत्रः नः महान् पिता) यजन करनेवाला हमारा महान पिता तथा (विश्वे देवाः) सब देव (समनसः जुषन्त) एक मतसे (तत्) उस धनको हमारे लिये दे दें।

द्यावा पृथिवी

[१] (४३९) (यजत्ये बृहती द्यावा पृथिवी) पूजनीय बडे विशाल द्यावा पृथिवीकी (यज्ञैः नमोभिः) यज्ञों और अन्नोंके द्वारा (सबाधः ईळे) कष्टको दूर करनेके लिये प्रार्थना करता हूं। (ते चित् हि देवपुत्रे मही) वे द्यावा-पृथिवी जिनके पुत्र देव हैं तथा जो विशाल हैं उनको (पूर्वे गृणन्तः कवयः पुरः दधिरे) प्राचीन ज्ञानी स्तोता आगे रखते थे और स्तुति गाते थे।

[२] (४४०) (नव्यसीभि गीर्भिः) नवीन स्तोत्रोंसे (ऋतस्य सदने) यज्ञके स्थानमें (पूर्वजे पितरा द्यावा पृथिवी) पूर्व जन्ममें पितर द्यावा-पृथिवीको (प्र कृणुध्वं) सुपूजित करो। हे द्यावा-पृथिवी! तुम (दैव्येन जनेन नः आ यातं) दिव्य जनोंके साथ हमारे पास आओ। (वां वरूथं महि) आपका धन बहुत है।

[३] (४४१) हे द्यावा पृथिवी! (वां) आपके (सुदासे पुरूणि रत्न-धेयानि सन्ति) पास उत्तम दाताको देनेके लिये अनेक प्रकार के धन हैं। (यत् अ-स्कृयोधु असत्) जो बहुतसा धन होगा वह (अस्मे धत्तं) हमें प्रदान करो। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पातं) तुम कल्याणके साधनोंसे सदा हमारा पालन करो।

(५४) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वास्तोष्पतिः । त्रिष्टुप् ।

१ वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः ।
यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ४४२

२ वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो ।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व ४४३

३ वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४४४

वास्तोष्पति ।

[१] (४४२) हे वास्तोष्पते ! (अस्मान् प्रति जानीहि) तुम हमें अपने समझो । (नः स्वावेशः अनमीवः भव) हमारे घरको नीरोग करनेवाला हो । (यत् त्वा ईमहे तत् नः प्रति जुषस्व) जो धन हम तुम्हारे पास मागेंगे वह हमें दे दो । (नः द्विपदे चतुष्पदे शं भव) हमारे द्विपाद और चतुष्पादके लिये कल्याणकारी हो ।

वास्तोष्पतिः—वास्तुका पति । घरका स्वामी । घर और उसके चारों ओरका उद्यान मिलकर वास्तु कहलाती हैं । इसका विस्तार नगर, प्रांत, राष्ट्र तथा विश्वतक माना जा सकता है । इसका पालक, संरक्षक, स्वामी वास्तोष्पति कहलाता है ।

१ अस्मान् प्रतिजानीहि—वास्तुपति वास्तुमें रहनेवालोंको अपने आत्मीय समझे । राष्ट्रपति राष्ट्रमें रहनेवालोंको अपने समझे । यह एकात्मता निर्माण करना अत्यावश्यक है ।

घर नीरोग हों

२ स्वावेशः अनमीवः भवतु— (सु-आवेशः अन्-अमीवः) अपना रहनेका घर उत्तम हो तथा नीरोग हो । ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे अपने रहनेका स्थान उत्तम हो और रोग बीजोंसे सर्वथा मुक्त हो ।

३ द्विपदे चतुष्पदे शं- घरके द्विपाद और चतुष्पादोंका कल्याण हो, वे सब रोगरहित हों । हृष्टपुष्ट हों ।

४ यत् ईमहे, तत् नः प्रति जुषस्व—जो जिस समय हमें चाहिये वह उस समय प्राप्त हो । कोई वस्तु न मिली इस कारण हमें कष्ट न हो ।

[२] (४४३) हे (वास्तोष्पते) गृहके स्वामिन्! (नः प्रतरणः एधि) तुम हमारे तारक हो और (गय-स्फानः) धनके विस्तारकर्ता हो। हे (इन्दो) सोम ! (गोभिः अश्वेभिः) गौओं और घोडोंसे युक्त होकर (अजरासः स्याम) हम जरारहित हों । (ते सख्ये स्याम) तेरी मित्रतामें हम रहें । (पिता पुत्रान् इव) पिता जैसा पुत्रोंका पालन करता है उस तरह (नः जुषस्व) हमारा पालन कर ।

आदर्श घर

घर घरवालोंका संरक्षण करनेवाला हो, धनका विस्तार होता रहे, घरके साथ गौवें और घोडे रहें । घरमें रहनेवाले क्षीण, जीर्ण, निर्बल न हों, बलवान् नीरोग और हृष्टपुष्ट हों । पिता जैसा पुत्रोंका पालन करता है वैसा सब घरवालोंका उत्तम पालन हो । घरवाले प्रभुके मित्र हों, ईश्वर भक्त हो ।

[३] (४४४) हे (वास्तोष्पते) वास्तुके स्वामिन् ! (शग्मया रण्वया) सुखदायक और रमणीय (गातुमत्या ते संसदा सक्षीमहि) प्रगतिशील ऐसी तुम्हारी सभाको हम प्राप्त हों । ऐसा स्थान हमें मिले । हम ऐसे सभास्थानके सदस्य बनें । (क्षेमे उत योगे नः वरं पाहि) प्राप्त धनको तथा अप्राप्त धनकी प्राप्तिमें हमारे श्रेष्ठ धनको सुरक्षित रखो (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण साधनोंसे सुरक्षित रखो ।

आदर्श घर

१ शग्मया, रण्वया गातुमत्या संसदा सक्षीमहि–

(५५) ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वास्तोष्पतिः, २-८ इन्द्रः (१-८ प्रस्वापिनी उपनिषद्) ।
१ गायत्री, २-४ उपरिष्टाद्बृहती, ५-८ अनुष्टुप् ।

१ अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् । सखा सुशेव एधि नः ४४५

२ यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे ।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ४४६

३ स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनःसर ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान् दुच्छुनायसे नि षु स्वप ४४७

सुखदायक, रमणीय, प्रगतिसाधक और जहां मिलकर अनेक मनुष्य बैठ सकते हैं ऐसा घर हमारा हो। 'संसद्' अनेक मनुष्य जहां मिल जुलकर रह सकते हैं, ऐसा घर हो। घर छोटा न हो, जहां संसद (सभा) हो सकती है ऐसा बडा घर हो।

२ क्षेमे उत योगे नः वरं पाहि—जो धन है उसका संरक्षण करना चाहिये। इसका नाम 'क्षेम' है। जो धन इस समय प्राप्त नहीं है उसको प्राप्त करनेका नाम 'योग' है। प्राप्त धनका संरक्षण और अप्राप्त धनकी प्राप्ति इस विषयका उद्योग करना चाहिये। और जो धन हो वह 'वरं' श्रेष्ठ चाहिये। श्रेष्ठ साधनसे प्राप्त किया श्रेष्ठ धन हो। हीन रीतिसे, हीन मार्गसे धन प्राप्त न किया जावे।

वास्तोष्पति

[१] (४४५) हे **वास्तोष्पते ! तुम (अमीव-हा) रोगोंका नाश करो। (विश्वा रूपाणि आविशन्) अनेक रूपोंमें प्रविष्ट होकर (नः सुशेवः सखा एधि) हमारा सुखकर मित्र हो।**

घरका स्वामी घरके अन्दरसे तथा घरके बाहरके रोगबीज दूर करे और अपने घरमें आरामसे रहे। उसका स्वभाव सुखदायी मित्र जैसा हो और वह अनेक रूपोंको धारण करे। धर्मपत्नीके साथ पति, पुत्रोंके साथ पिता, भाईयों और बहिनोंके साथ बन्धु, मित्रोंके साथ मित्र, श्वशुरके साथ जामात, नगरमें नागरिक, युद्धके समय महावीर, ज्ञानियोंमें महाज्ञानी, शासनके समयमें शासन करनेमें चतुर, इस तरह एक ही मनुष्य विविध क्षेत्रोंमें विविध रूप धारण करके रहे। परमेश्वर भी सब रूप धारण करके तद्रूप होता है, उसी तरह घरके स्वामीको व्यवहारमें नाना रूप धारण करके वर्तना चाहिये। जिस समय जो रूप लिया जाय उस समय उत्तमसे उत्तम उस रूपका कार्य वह करे। उसमें कोई न्यूनता न रहे।

'विश्वा रूपाणि धारयन्' —यह बडे महत्त्वका उपदेश है। यदि कोई गृहपति अपने किसी रूपमें असमर्थ सिद्ध हो जाय, तो वह उतना निर्बल सिद्ध होगा और उतना उसका राष्ट्र भी निर्बल होगा। इस तरह विचार करके जान सकते हैं कि विविध रूपोंमें एक ही मनुष्य किस तरह कार्य कर सकता है। और इस कार्यकी राष्ट्र रक्षामें आवश्यकता भी होती है।

घरका रक्षक कुत्ता

[२] (४४६) हे **(अर्जुन सारमेय पिशंग) श्वेत सरमाके पुत्र पिंगल वर्णवाले कुत्ते ! (यत् दतः यच्छसे) जब तू दांत दिखाता है, तब (ऋष्टयः इव वि भ्राजन्ते) शस्त्रोंके समान वे चमकते हैं। तथा (स्रक्वेषु उप बप्सतः) होठोंमें तेरे दांत खानेके समय भी विशेष चमकते हैं। ऐसा तू अब (सु नि स्वप) अच्छी तरह सोजा।**

घरका संरक्षण करनेके लिये अपने घरमें कुत्ता रखना योग्य है। उसको प्रेमसे घरके परिवारके समान रखा जाय। (उप बप्सतः) अपने सामने उसको खिलाया जाय। उसके रहने और सोनेके लिये उत्तम प्रबंध हो। घरमें गायें, घोडे तथा कुत्ता भी हो। यह उत्तम संरक्षक है।

[३] (४४७) हे **(पुनःसर सारमेय) जिस स्थानमें एक बार जाते हैं, उसी स्थानमें पुनः पुनः जानेवाले सरमाके पुत्र ! (तस्करं स्तेनं वा राय) तू चोर वा डाकू पर दौड। (इन्द्रस्य स्तोतॄन् किं**

४ त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान् दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥ ४४८

५ सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ॥ ४४९

६ य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।
तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥ ४५०

७ सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान् त्स्वापयामसि ॥ ४५१

रायसि) इन्द्रके भक्तोंपर क्यों दौडता है ? इनको छोड दो । (अस्मान् किं दुच्छुनायसे) हमें क्यों बाधा करता है ? (सु नि स्वप) अब तुम अच्छी-तरह सोजा ।

पालित कुत्तेको सिखाना चाहिये। वह चोर और डाकूको ही काटे और सज्जनको न पकडे । इस तरहकी उत्तम शिक्षा उसको देनी चाहिये ।

[४] (४४८) (त्वं सूकरस्य दर्दृहि) तू सूवर का विदारण कर । कदाचित् (सूकरः तव दर्दर्तु) सूवर तुझे भी विदारित करेगा । तुम्हें फाडेगा, सावध रह । प्रभुके भक्तोंपर तू क्यों दौडता है ? हमें क्यों बाधा करता है, अब तुम अच्छी तरह सोजा ।

कुत्तेको सिखाना चाहिये कि सूवर पर आक्रमण कैसा करना चाहिये । सूवरको तो कुत्ता फाड, पर सूवर कुत्तेको न फाड सके।

सुरक्षित नगर

[५] (४४९) (सस्तु माता, सस्तु पिता) माता पिता सो जांय । (सस्तु श्वा, सस्तु विश्पतिः) कुत्ता सोवे और प्रजा पालक भी सो जावे (सर्व ज्ञातयः ससन्तु) सब बन्धुबांधव सो जांय । (अभितः अयं जनः सस्तु चारों ओरके ये सब लोग सो जांय ।

नगर पालनकी व्यवस्था इतनी उत्तम हो कि सब लोग आरामसे सो जांय । रक्षक (विश्पतिः) और श्वा कुत्ते भी आरामसे सो जांय । रातभर जागनेकी आवश्यकता न रहे । सुरक्षित नगरमें ही सब आरामसे सो सकते हैं । जहां चोर डाकू घातपाती लोगोंके उपद्रवकी संभावना बिलकुल नहीं होती वहां सब लोग और रक्षक तथा कुत्ते भी आरामसे सो सकते हैं ।

[६] (४५०) (यः आस्ते, यः च चरति) जो यहां ठहरता है और जो चलता है, (यः जनः नः पश्यति) जो मनुष्य हमें देखता है, (तेषां अक्षाणि सं हन्मः) उनके आंखोंको हम एक केंद्रमें लाते हैं, (यथा इदं हर्म्यं तथा) जैसा यह राज प्रासाद स्थिर है वैसे उनके आंख एक केन्द्रमें स्थिर हों ।

' संहन् '—का अर्थ ' संघ करना ' एक केन्द्रमें लाना, एकाग्र करना, मिलाना । जैसा (हर्म्यं) यह राज प्रासाद एक स्थानपर स्थिर है वैसे सबका लक्ष्य एक ही अपनी सुरक्षाके कार्यमें लगा रहे । जो बैठा है, जो चलता है, जो देखता है, वे अनेक कार्य करते रहनेपर भी अपनी सुरक्षा करनेमें सब एक हों । ऐसे संघटित प्रयत्नसे सबकी सुरक्षा होगी ।

[७] (४५१) (सहस्रशृंगः यः वृषभः) सहस्रों किरणोंवाला जो बलवान् तथा वृष्टि करनेवाला सूर्य है वह (समुद्रात् उत् आचरत्) समुद्रसे ऊपर आया है । (तेन सहस्येन) उस शत्रुका पराभव करनेवाले सूर्यके बलसे (वयं जनान् नि स्वापयामसि) हम सब लोगोंको सुला देते हैं ।

८ **प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः।**
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ४५२

सूर्य बलवान् तथा वृष्टि करनेवाला है। वह सहस्रों किरणोंसे उदयको प्राप्त होता है, समुद्रसे ऊपर उठता है। जब वह सूर्य उदयको प्राप्त होकर प्रकाशता है तब सब लोगोंको वह प्रशस्त कर्मकी प्रेरणा करता है और सबको कर्ममें लगाता है। ऐसा यह सूर्य अस्त होनेके पश्चात् सब लोग विश्राम लेते हैं और सोते हैं।

[८] (४५१) (याः प्रोष्ठे-शयाः) जो अंगनमें सोती हैं, (याः नारीः वह्ये-शयाः) जो स्त्रियां वाहनोंमें सोती हैं, (याः तल्प-शीवरीः) जो स्त्रियां बिस्तरों पर सोती हैं (याः पुण्यगन्धा स्त्रियः) जो उत्तम गन्धवाली स्त्रियां हैं, (ताः सर्वाः स्वापयामसि) उन सब स्त्रियोंको हम सुला देते हैं।

राष्ट्रमें स्त्रियां निर्भय हों

(**प्रोष्ठे शयाः**) स्त्रियां अंगनमें सोती हैं, यह प्रदेश उष्णदेश ही होगा। और सुरक्षित देश होगा जहां अंगनमें सोनेसे उनको किसी तरह धोखा होनेकी संभावना नहीं है। (**वह्ये-शयाः**) जो स्त्रियां वाहनोंमें सोती हैं। रात्रीके समय रास्तेसे वाहन चलते हैं और उनमें स्त्रियां आरामसे सोती हैं। देशकी सुरक्षाका प्रबंध कितना अच्छा होगा, इसकी कल्पना इससे हो सकती है। वाहन मार्गपर है, चल रहा है और उसमें स्त्रियां निर्भय होकर सो रही है। धन्य है वह देश कि जिसमें स्त्रियां ऐसी सो सकती हों। (**याः तल्प-शीवरीः**) घरमें बिस्तरों-पर अपने कमरोंमें जो स्त्रियां सोतीं हैं। ये स्त्रियां भी निर्भय है अतः शान्तिसे सोती हैं।

स्त्रियोंका आरोग्य

(**पुण्य-गन्धाः स्त्रियः**) जिन स्त्रियोंके शरीरमें तथा मुखमें उत्तम सुगंध आता है। शरीरमें पसीनेकी दुर्गन्धि जिनके शरीरमें नहीं है, परंतु पुण्यगन्ध जिनके शरीरसे आता है। जो स्त्रियां आरोग्य पूर्ण होती हैं उनके शरीरसे ही उत्तम गन्ध आता है, पुण्यगन्ध, सुगन्ध और सुवास यह परिपूर्ण आरोग्यसे ही होनेवाली बात है।

ये सब प्रकारकी स्त्रियां आरामसे निर्भय होकर गाढ निद्राका सुख प्राप्त करें। नगरमें, राष्ट्रमें इन स्त्रियोंपर अत्याचार होनेकी संभावना न होगी, तभी स्त्रिया आरामसे सो सकती है। इतनी सुरक्षा राष्ट्रमें तथा राष्ट्रके प्रत्येक नगरमें हो। यह आदर्श राष्ट्र है।

॥ यहां विश्वेदेव प्रकरण समाप्त हुआ ॥

अनुवाक चौथा [अनुवाक ५४ वाँ]

[३] मरुत्-प्रकरण

(५६) २१ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप्, १-११ द्विपदा विराट् ।

१	क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः	४५३
२	नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम्	४५४
३	अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृधन्	४५५
४	एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार	४५६
५	सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात् सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम्	४५७
६	यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्ला ओजोभिरुग्राः	४५८

[१] (४५३) (अध रुद्रस्य सनीळा मर्याः) महावीरके एक घरमें रहनेवाले (सु अश्वाः व्यक्ताः नरः) जिनके पास उत्तम घोडे हैं वे सबको परि-चित नेता वीर (ईं के) भला कौनसे हैं ?

' रुद्र '—शत्रुको रुलानेवाला महावीर, दिग्विजयी वीर। ' मर्याः '—मर्त्य, मरनेके लिये सिद्ध, मरनेतक लडनेवाले, मरणधर्मवाले। ' स—नीळाः, स—नीडाः '— एक घरमें रहनेवाले, जिनका निवास पृथक् पृथक् घरों नहीं होता, परंतु जो सब एक ही घरमें रहते है, रहना, सहना, खान, पान, सोना आदि जिनका एक घरमें रहता है । ' व्यक्ताः '- प्रकट, व्यक्त, परिचित, जिनकी खेल कूद खुले स्थानमें होती है।

[२] (४५४) (एषां जनूंषि न किः वेद) इन वीरोंके जन्मके वृत्तान्तको कोई नहीं जानता। (ते मिथः जनित्रं अंग विद्रे) वे वीर परस्परके जन्मके वृत्तान्तको सचमुच जानते हैं ।

[३] (४५५) वे वीर जब (स्व-पूभिः मिथः अभिवपन्त) अपने पवित्र साधनोंके साथ जब पर-स्पर मिलते हैं, तब (वातस्वनसः श्येनाः अस्पृ-धन्) पवनके तुल्य बडा शब्द करनेवाले बाज पक्षियोंकी तरह वेगमें स्पर्धा करते हैं ।

[४] (४५६) (धीरः एतानि निण्या चिकेत) बुद्धिमान पुरुष इन वीरोंके ये कार्यकलाप जानता है । (यत्) जिन वीरोंके लिये (मही पृश्निः ऊधः जभार) बडी गौने दुग्धाशयमें दूधका भार उठाया था ।

वीर गौका दूध पीयें । वीरोंको दूध पिलानेके लिये गौवें रखीं जाय ।

[५] (४५७) (सा विट्) वह प्रजा (मरुद्भिः सुवीरा) वीर मरुतोंके कारण अच्छे वीरोंसे युक्त होकर (सनात् सहन्ती) सदा शत्रुका पराभव करनेवाली तथा (नृम्णं पुष्यन्ती अस्तु) मनुष्योंके बलोंको बढानेवाली बने ।

जिस राष्ट्रकी प्रजामें अच्छे वीर होते हैं वही सदा विजयी होती है और उसका ही बल बढता है । अतः वीरोंका निर्माण करना चाहिये ।

[६] (४५८) वे वीर शत्रुपर (यामं येष्ठाः) आक्रमण करनेका यत्न करनेवाले, (शुभाः शोभिष्ठाः) अलंकारोंसे सुहानेवाले (श्रिया संमिश्लाः) शोभासे संयुक्त हुए तथा (ओजोभिः उग्राः) सामर्थ्यसे उग्र वीर प्रतीत होते हैं ।

१३	अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः ।	
	वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः	४६५
१४	प्र बुध्न्या व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।	
	सहस्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम्	४६६
१५	यदि स्तुतस्य मरुतो अधीथेत्था विप्रस्य वाजिनो हवीमन् ।	
	मक्षू रायः सुवीर्यस्य दात नू चिद् यमन्य आदभदरावा	४६७
१६	अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।	
	ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः	४६८

वीर शुद्धाचार करनेवाले हों, पवित्र अन्नका सेवन करें। सत्यका सेवन करें, स्वयं शुद्ध पवित्र और निष्पाप बनें। सत्यमय जीवनसे सत्यका व्यवहार करें, कभी तेढे व्यवहारमें न जांय।

[१३] (४६५) हे (मरुतः) मरुद्वीरो ! (वः अंसेषु खादयः आ) आपके कंधोंपर आभूषण हैं, (वक्षःसु रुक्माः) छातीयोंपर सुवर्ण मुद्राओंके हार (उप शिश्रियाणाः) लटक रहे हैं। (विद्युतः न रुचानाः) बिजलियोंकी तरह चमकनेवाले तुम (वृष्टिभिः आयुधैः) शत्रुपर आघातोंकी वर्षा करनेवाले अपने आयुधोंसे (स्वधां अनु यच्छमानाः) अपनी धारणा शक्तिको प्रकट करते हो।

वीरोंके शरीरोंपर आभूषण रहें और वे उनकी शोभाको बढावें। उनके शस्त्र विजलीकी तरह चमकनेवाले तीक्ष्ण हों, वे उन शस्त्रोंसे शत्रुपर आघातोंकी वृष्टि करें और अपनी शक्तिको प्रभावित रीतिसे दिखावें।

[१४] (४६६) हे (प्रयज्यवः मरुतः) पूजनीय वीर मरुतो ! (वः बुध्न्या महांसि) तुम्हारे मौलिक अपने सामर्थ्य (प्र ईरते) प्रकट हो रहे हैं। तुम अपने (नामानि प्रतिरध्वं) यशोंके साथ परले तट तक जाओ। शत्रुतक पहुंचो। (एनं सहस्रियं दम्यं) इस सहस्र गुणोंसे युक्त होनेके कारण हितकारी घरके (गृहमेधिनं भागं जुषध्वं) यज्ञके भागका स्वीकार करो।

वीरोंके सामर्थ्य बढते रहें, उनके यश भी बढते जांय। उनके घर सहस्रगुणित हित करनेवाले हों और वे यज्ञका भाग यज्ञमें आकर स्वीकारें।

[१५] (४६७) हे वीर मरुतो ! (वाजिनः विप्रस्य हवीमन्) बलशाली ज्ञानी पुरुषके यज्ञ करनेके समय की हुई (स्तुतस्य) स्तुतिको (यदि इत्था अधीथ) यदि इस तरह तुम जानते हो, तो (सुवीर्यस्य रायः मक्षु दात) उत्तम वीरतासे युक्त धनका दान तुरन्त ही करो। अन्यथा (अन्यः अरावा) दूसरा कोई कंजूस शत्रु (नु चित् यं आदभत्) उसको दबा देगा, विनष्ट कर देगा।

वीरता युक्त धनका दान यज्ञ करनेवालोंको कर दो, धन ऐसा हो कि जिसके साथ वीरता रहे। वीरता धनके साथ न रही, तो शत्रु उसको दबा देगा, लूट ले जायगा। इसलिये धनके साथ वीरता अवश्य चाहिये।

[१६] (४६८) हे वीर मरुतो ! (अत्यासः न) घुडदौडके घोडे की तरह (सु अञ्चः यक्ष-दृशः) उत्तम वेगवान् और यज्ञका दर्शन करनेके लिये आये (मर्याः न) मनुष्योंकी तरह जो (शुभयन्त) अपने आपको सुशोभित करते हैं (ते हर्म्येष्ठाः शिशवः न) वे राज प्रासादमें रहनेवाले बालकोंकी तरह (शुभ्राः) सुहानेवाले (पयोधाः वत्सासः न) दूध पीनेवाले बालकके समान (प्रक्रीडन्तः) खेलते रहते हैं।

१ यक्ष-दृशः मर्याः शुभयन्त— यज्ञ देखनेके लिये जानेवाले लोग सुशोभित होकर जाते हैं। यज्ञका दर्शन करनेके

१७ दृशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके ।
आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम् ४६९

१८ आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः ।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः ४७०

१९ इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आ नमन्ति ।
इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति ४७१

२० इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति भृमिं चिद् यथा वसवो जुषन्त ।
अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे ४७२

लिये जाना हो तो न्हा धोकर अच्छे वस्त्र पहनकर जाना चाहिये ।

२ हर्म्ये-ष्ठाः शिशवः शुभ्राः—राजप्रासादमें रहनेवाले बालक गौर वर्ण, स्वच्छ अथवा सुन्दर होते है । गरीबकी झोपडीमें रहनेवाले बालक गरीब होनेके कारण अस्वच्छ रहते होंगे। यहां वीरोंके लिये जो उपमा दी है वह प्रासादमें रहनेवाले बालकोंकी दी है ।

[१७] (४६९) शत्रुओंका (दृशस्यन्तः) नाश करनेवाले तथा (सुमेके रोदसी वरिवस्यन्तः) सुस्थिर द्यावा पृथिवीको आश्रय देनेवाले (मरुतः नः मृळयन्तु) वीर मरुत् हमें सुखी बना देवें। हे (वसवः) बसानेवाले वीरो ! (गोहा नृहा वः वधः) गौका घातक और मनुष्योंका घातक शस्त्र हमसे (आरे अस्तु) दूर रहे। तुम (सुम्नेभिः अस्मे नमध्वं) अपने अनेक सुखके साधनोंके साथ हमारे पास आनेके लिये चल पडो ।

वीर शत्रुका नाश करें और लोगोंको सुखी करें। गौका नाशकर्ता और मनुष्योंका वध करनेवाला समाजसे दूर किया जावे । और सुखसाधन अपने समीप रखे जांय ।

[१८] (४७०) हे (वृषणः मरुतः) बलवान् वीर मरुतो ! (सत्तः सत्राचीं रातिं गृणानः) यज्ञस्थानमें बैठकर तुम्हारे सर्वत्र फलनेवाले दानकी स्तुति करनेवाला (होता) याजक (वः आ जोहवीति) तुम्हें बुला रहा है । (यः ईवतः गोपाः अस्ति) जो प्रगतिशील संरक्षक वीर है, (सः अद्वयावी) वह अनन्यभावसे युक्त होकर (उक्थैः वः हवते) स्तोत्रोंसे तुम्हारी प्रार्थना करता है ।

१ वीर (वृषणः) बलवान्, वीर्यवान् पराक्रमी हों ।

२ वे (सत्रा-अर्ची रातिं) ऐसा दान दें कि जिसका परिणाम या लाभ सब लोगोंतक पहुंचे ।

३ **ईवतः गोपाः**—संरक्षण करनेवाला प्रगतिशीलोंका संरक्षण करे ।

[१९] (४७१) (इमे मरुतः तुरं रमयन्ति) ये वीर मरुत् त्वरासे कार्य करनेवालोंको आनन्द देते हैं । (इमे सहः सहसः आनमन्ति) ये वीर अपनी प्रभावी शक्तिके सहारे बलवान् शत्रुको विनम्र करते हैं । (इमे शंसं वनुष्यतः निपान्ति) ये वीर स्तोत्रोंका आदरसे पाठ करनेवालोंका संरक्षण करते हैं और (अररुषे गुरु द्वेषः दधन्ति) शत्रुओंपर बडाभारी द्वेष धारण करते हैं ।

१ **तुरं रमयन्ति**--त्वरासे कार्य करनेवाले उद्यमशीलको सुख देना चाहिये।

२ **सहः सहसः आनमन्ति**--अपनी शक्तिसे साहसी शत्रुको भी विनम्र करना चाहिये।

३ **शंसं वनुष्यतः निपान्ति**--प्रशंसनीय कार्य करनेवालोंका संरक्षण होना चाहिये।

४ **अररुषे गुरु द्वेषः दधन्ति**—शत्रुओंका द्वेष करना उचित है । द्वेष रखना हो तो शत्रुपर ही रखना जाय ।

[२०] (४७२) (इमे वसवः मरुतः) ये बसानेवाले वीर मरुत् (यथा रध्रं चित् जुनन्ति) जैसे समृद्धिवाले मनुष्यके पास जाते हैं, वैसे ही

२१	मा वो दात्रान्मरुतो निरराम मा पश्चाद् दघ्म रथ्यो विभागे ।	
	आ नः स्पार्हे भजतना वसव्ये यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति	४७३
२२	सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।	
	अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः	४७४
२३	भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित्	
	मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित् सनिता वाजमर्वा	४७५
२४	अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता ।	
	अपो येन सुक्षितये तरेमाऽध स्वमोको अभि वः स्याम	४७६

(भ्रमिं चित् जुषन्त) भीख मांगनेके लिये भटक-नेवालेके पास भी जाते हैं। हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! (तमांसि अप बाधध्वं) अन्धेरेको दूर हटा दो और (अस्मे विश्वं तनयं तोकं धत्त) हमारे पास बाल बच्चोंको सब प्रकारसे सुखमें रखो ।

वीर जैसा धनिकोंका संरक्षण करें वैसा गरीबोंका भी संरक्षण करें। वीर जहां जांय वहां अज्ञानान्धकार दूर करें और सब बाल बच्चोंको सुरक्षित रखें ।

[२१] (४७३) हे (रथ्यः मरुतः) रथपर बैठनेवाले वीर मरुतो ! (वः दात्रात् मा निः अराम) आपके दानसे हम दूर न रहें । (विभागे पश्चात् मा दध्म) धनको बांटनेके समय हम सबसे पीछे न रहें। हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! (वः सुजातं यत् ईं अस्ति) आपका उच्च कोटीका जो भी धन है उस (स्पार्हे वसव्ये) उस स्पृहणीय धनमें (नः आभजतन) हमें अंशभागी करो।

हमें धन मिले और धनमें हम अंशभागी हों ।

[२२] (४७४) हे (रुद्रियासः अर्यः मरुतः) महावीरके श्रेष्ठ वीरो ! (यत् शूराः जनासः) जब शूर लोग (यह्वीषु ओषधीषु विक्षु) नदियोंमें, अरण्यमें, प्रजाओंमें (मन्युभिः संहनन्त) उत्साहके साथ मिलकर शत्रुपर हमला करते हैं, (अध पृतनासु) तब ऐसे युद्धोंमें (नः त्रातारः भूत-स्म) हमारे संरक्षक बनो।

[२३] (४७५) हे वीर मरुतो ! तुम (पित्र्याणि भूरि उकथानि चक्र) पितरोंके संबंधमें बहुतसे स्तोत्र श्रवण कर चुके हो, (वः या पुरा चित् शस्यन्ते) तुम्हारे इन स्तोत्रोंकी पहिलेसे प्रशंसा होती आयी है। (उग्रः मरुद्भिः पृतनासु साळ्हा) उग्र शूर वीर मरुतोंकी सहायतासे युद्धोंमें शत्रुका पराभव करता है, (मरुद्भिः अर्वा वाजं सनिता) मरुतोंकी सहायतासे घोडा भी बलके कार्य करता है ।

[२४] (४७६) हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (यः असु-रः जनानां विधर्ता) जो अपना जीवन देकर लोगोंका विशेष रीतिसे धारण करता है वह (अस्मे वीरः शुष्मी अस्तु) हमारा वीर बलवान् बने। (येन सुक्षितये अपः तरेम) जिसकी सहा-यतासे हम उत्तम सुखपूर्वक निवास करनेके लिये दुःखके समुद्रको भी हम तैरकर पार हो जांयगे। और (वः स्वं ओकः अभिस्याम) तुम्हारे मित्र बनकर हम अपने स्वकीय घरमें आनन्दसे प्रसन्न रहेंगे ।

१ असु-रः जनानां विधर्ता- जो अपना जीवन दे कर सब लोगोंका संरक्षण करता है वह महावीर है ।

२ वीरः शुष्मी अस्तु-- वह वीर बलवान हो। जो बलवान होगा वही सब लोगोंका संरक्षण करेगा ।

३ सुक्षितये अपः तरेम-- हमारा सुखपूर्ण निवास करनेके लिये हम दुःखके महासागरको भी तैरकर पार हो जांयगे। प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा करके हम सुख प्राप्त करेंगे ।

४ स्वं ओकः अभि स्याम-- अपने घरमें हम आनंद प्रसन्न होकर रहें ।

२५ तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन् त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४७७

(५७) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप् ।

१ मध्वो वो नाम मारुतं यजत्राः प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति ।
ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वन्त्युत्सं यदयासुरुग्राः ४७८

२ निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं प्रणेतारो यजमानस्य मन्म ।
अस्माकमद्य विदथेषु बर्हिरा वीतये सदत पिप्रियाणाः ४७९

३ नैतावदन्ये मरुतो यथेमे भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः ।
आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः समानमञ्ज्यञ्जते शुभे कम् ४८०

[२५] (४७७) इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, आप, औषधी, वनके वृक्ष, (नः तत् जुषन्त) हमें वह सुख दें कि जिससे हम (मरुतां उपस्थे शर्मन् स्याम) वीरोंके समीप आनंदसे रहें। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याणके साधनोंसे सुरक्षित रखो।

[१] (४७८) हे (यजत्राः) पूज्य वीरो! (वः मारुतं नाम मध्वः) आप वीर मरुतोंका नाम मीठासका द्योतक है। ये वीर (युद्धेषु शवसा प्र मदन्ति) युद्धोंमें अपने बलके कारण आनन्दसे लडते हैं। (यत् उग्राः अयासुः) जब ये उग्र वीर शत्रुपर हमला करते हैं, तब (ये उर्वी चित् रोदसी रेजयन्ति) वे विस्तृत द्यावापृथिवीको कंपाते हैं ऐसा प्रतीत होता है। और वे (उत्सं पिन्वन्ति) जलप्रवाहको भरपूर बहा देते हैं। भर देते हैं।

१ युद्धेषु शवसा मदन्ति--युद्धोंमें वीर अपने बलसे ही आनन्दित होकर लडते हैं। वीरोंको युद्धसे आनंद होना चाहिये।

२ उग्राः अयासुः उर्वी रोदसी रेजयन्ति-उग्रवीर जब शत्रुपर आक्रमण करते हैं तब ये विस्तीर्ण द्यावापृथिवीको वे कंपाते हैं। ऐसा भयंकर आक्रमण करते हैं।

[२] (४७९) हे वीर मरुतो! तुम (गृणन्तं निचेतारः हि) काव्यका गान करनेवालोंको उत्साहित करते हो और (यजमानस्य मन्म प्र-नेतारः) यजमानके स्तोत्रके नेता बनते हो। (पिप्रियाणाः अद्य अस्माकं विदथेषु) प्रसन्न होकर आज हमारे यज्ञोंमें अथवा युद्धोंमें (वीतये बर्हिः आ सदत) अन्न सेवन करनेके लिये आसनोंपर आकर बैठो।

पिप्रियाणाः विदथेषु वीतये बर्हि आसदत-प्रसन्नतासे युद्धोंमें लडनेवाले वीर अन्नसेवन करनेके समय इकट्ठे आकर आसनोंपर बैठते है।

[३] (४८०) (इमे मरुतः) ये वीर मरुत् (रुक्मैः आयुधैः तनूभिः यथा भ्राजन्ते) सुवर्ण मुद्राओंसे, आयुधोंसे और अपने उत्तम शरीरोंसे जैसे प्रकाशते हैं वैसे (न एतावत् अन्ये) दूसरे कोई नहीं। (विश्वपिशः रोदसी पिशानाः) सबको तेजस्वी बनानेवाले ये वीर द्यावा-पृथिवीको भी तेजस्वी बनाते हैं। ये अपनी (शुभे) शोभाके लिये (समानं अञ्जि) समान गणवेशको (कं आ अञ्जते) सुखसे पहनते हैं। अपने शरीरोंको प्रकाशमान करते हैं।

१ इमे रुक्मैः आयुधैः तनूभिः भ्राजन्ते- ये वीर भूषणों और आयुधोंसे सजे अपने शरीरोंसे चमकते हैं।

२ न एतावत् अन्ये-ऐसे दूसरे कोई तेजस्वी नहीं दिखाई देते हैं।

४	ऋधक् सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यद् व आगः पुरुषता कराम ।	
	मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा	४८१
५	कृते चिदत्र मरुतो रणन्ताऽनवद्यासः शुचयः पावकाः ।	
	प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः	४८२
६	उत स्तुतासो मरुतो व्यन्तु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि ।	
	ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मघानि	४८३

३ विश्वपिशः रोदसी पिशानाः- ये अपने तेजसे मानो सब विश्वको ही तेजस्वी बनाते हैं।

४ शुभे समानं अंजि कं आ अञ्जते-अपनी शोभाके लिये सब एक जैसा गणवेश धारण करते हैं इसलिये सभी एक जैसे प्रकाशते हैं।

वीर एक जैसा गणवेश पहने, एक जैसे रहें, सब एक जैसे चमकदार आयुध धारण करे तो वह समता बडा प्रभाव उत्पन्न करती है।

[४] (४८१) हे (यजत्राः) पूजनीय वीरो ! (यत् वः आगः) जो आपके विषयमें पाप हमसे (पुरुषता कराम) पौरुष कर्म करनेके समय हुआ हो, (सा वः दिद्युत् ऋधक् अस्तु) तो भी वह आपकी तेजस्वी तलवार हमसे दूर ही रहे। (वः तस्यां अपि मा भूम) आपके उस शस्त्रके पास भी हम न रहें। (अस्मे वः चनिष्ठा सुमतिः अस्तु) हमारे पास आपकी अन्नदान करनेवाली बुद्धि रहे।

हमसे कुछ पाप पौरुषके कर्म करनेके समय भी हुआ हो, तो भी उस अपराधके लिये वीरोंका शस्त्र हमपर न आ जाय। हमारे पास भी उनका शस्त्र कभी न आवे। हमारे पास उनकी अन्नदानकी सुमति ही आ जाये।

[५] (४८२) (अनवद्यासः शुचयः पावकाः) अनिंदनीय शुद्ध और पवित्र (मरुतः) वीर मरुत् (अत्र कृते चित् रणन्त) यहां पर हमारे चलाये हुए यज्ञकर्ममें आकर प्रसन्न हों। हे (यजत्राः) पूजनीय वीरो ! (नः सुमतिभिः प्र अवत) हमारी सुरक्षा अपनी उत्तम बुद्धियोंसे करो। (नः वाजेभिः पुष्यसे प्र तिरत) हमें अन्नोंसे पुष्ट होनेके लिये संकटोंसे पार करो।

१ अनवद्यासः शुचयः पावकाः— वीर प्रशंसनीय शुद्ध और पवित्र आचरण करनेवाले हों।

२ कृते रणन्त— धर्मके कर्ममें वे आनन्दित हों। यज्ञादिक कर्मको देखकर वीर प्रसन्न होते रहे।

३ सुमतिभिः प्र अवत— सबका कल्याण करनेकी उत्तम भावनासे सबको सुरक्षित रखो।

४ वाजेभिः पुष्यसे प्र तिरत— अन्नोंसे पुष्ट करनेके लिये लोगोंको सुरक्षित रखो। लोग सुरक्षित होंगे तो वे अन्नका सेवन करके हृष्टपुष्ट हो जांयगे।

वीरोंके आचरण निर्दोष और पवित्र हों। वे दूसरे लोगोंके आचरण पवित्र करें। धर्म कर्मसे उनको आनन्द हो। सद्भावनासे वे लोगोंका संरक्षण करें और लोग अन्न सेवन करके हृष्टपुष्ट हों, इसलिये उनके संकटोंका निवारण भी ये वीर करें।

[६] (४८३) (उत विश्वेभिः नामभिः स्तुतासः) और अनेक नामोंसे प्रशंसित हुए ये (नरः मरुतः) नेता वीर मरुत् (हवींषि व्यन्तु) अन्नोंको सेवन करें। हे वीरो ! (नः प्रजायै अमृतस्य ददात) हमारी प्रजाको अमरपन दो और (सूनृता रायः मघानि जिगृत) सत्य मार्गसे प्राप्त होनेवाले विशाल धन दे दो।

१ नः प्रजायै अमृतस्य ददात— हमारी प्रजाको अपमृत्युसे दूर रखो, हमारी प्रजा दीर्घजीवी बने ऐसा करो।

२ सूनृता रायः मघानि जिगृत— सत्यभाषण, धन और वैभव हमें मिले। सत्यमार्गसे प्राप्त होनेवाले धन और वैभव हमें प्राप्त हो।

७ आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती अच्छा सूरीन् त्सर्वताता जिगात ।
ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ४८४

(५८) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप् ।

१ प्र साकमुक्षे अर्चता गणाय यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान् ।
उत क्षोदन्ति रोदसी महित्वा नक्षन्ते नाकं निर्ऋतेरवंशात् ४८५

२ जनूश्चिद् वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः ।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति विश्वो वो यामन् भयते स्वर्दृक् ४८६

---

[७] (४८४) हे (स्तुतासः मरुतः) प्रशंसनीय वीर मरुतो ! तुम (विश्वे) सभी वीर (सर्वताता सूरीन् अच्छ ऊती) सर्वत्र फैलनेवाले यज्ञमें ज्ञानियोंकी ओर अपने संरक्षणके साथ (आ जिगात) आओ। ज्ञानियोंको सुरक्षित रखो। (ये त्मना शतिनः नः वर्धयन्ति) ये वीर स्वयं ही हम जैसे सेकडों मानवोंको बढाते हैं। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित करो।

१ सर्वताता सूरीन् ऊती आजिगात-- सर्वहितकारी कर्ममें ज्ञानियोंके पास जाकर उनका संरक्षण अच्छी तरह करना वीरोंको योग्य है।

२ ये त्मना शतिनः वर्धयन्ति-- जो स्वयं अकेला अकेला सेकडों मानवोंको बढानेमें सहायता करता है। वह वीर है। ऐसे वीर हमारे सहायक हों।

[१] (४८५) (यः दैव्यस्य धाम्नः तुविष्मान्) वह वीर दिव्य स्थानको अपने बलसे प्राप्त करता है। (साकं-उक्षे गणाय प्र अर्चत) साथ साथ कार्य करनेवाले वीरोंके संघका सत्कार करो। (उत अवंशात् निर्ऋतेः क्षोदन्ति) और वे वीर वंशविनाश रूप आपत्तिका नाश करते हैं। और (महित्वा रोदसी नाकं नक्षन्ते) अपने महत्त्वसे द्यावापृथिवी को तथा सुखमय स्वर्गको प्राप्त करते हैं।

१ तुविष्मान् दैव्यस्य धाम्नः--जो शक्तिमान है वह दिव्य धामको अपने सामर्थ्यसे प्राप्त करता है।

२ साकं उक्षे गणाय प्र अर्चत-साथ साथ रहकर अपनी उन्नति करनेवाले वीरोंके संघका सत्कार करो।

३ अवंशात् निर्ऋतेः क्षोदन्ति-वंशका नाश करनेवाली आपत्तिका वीर ही नाश करते है।

४ महित्वा नाकं नक्षन्ते--वे वीर अपने निज महत्त्वसे स्वर्गधामको प्राप्त करते हैं।

[२] (४८६) हे (भीमासः तुविमन्यवः) भीषण रूपवाले अत्यन्त उत्साहसे पूर्ण (अयासः मरुतः) शत्रुपर आक्रमण करनेवाले वीर मरुतो ! (वः जनूः त्वेष्येण चित्) तुम्हारा जन्म तेजस्वितासे युक्त है। (उत ये महोभिः ओजसा प्रसन्ति) और जो अपने महत्त्वोंसे और बलसे प्रसिद्ध होते हैं, (वः यामन्) तुम वीरोंके शत्रुपर आक्रमण करनेके समय (स्वर्दृक् विश्वः भयते) आकाशकी ओर दृष्टी रखकर सभी लोग भयभीत होते हैं।

१ भीमासः तुविमन्यवः अयासः--वीर भीषण शरीरवाले, अत्यंत उत्साहसे कार्य करनेवाले और शत्रुपर वेगसे आक्रमण करनेवाले हों।

२ जनूः त्वेष्येण महोभिः ओजसा प्रसन्ति-- वीरोंके जन्म तेजस्विता, महत्ता और सामर्थ्यके लिये प्रसिद्ध होते हैं। इन गुणोंसे उनकी प्रसिद्धि होती है। जन्मस्वभावसे ये गुण उनमें होते हैं।

३ यामन् विश्वः भयते--इन वीरोंके आक्रमणको देखकर सभी भयभीत होते हैं और (स्वः-दृक्) वे आकाशकी ओर देखते ही रहते हैं।

३	बृहद् वयो मघवद्भ्यो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः ।	
	गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत	४८७
४	युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री ।	
	युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं प्र तद् वो अस्तु धूतयो देष्णम्	४८८
५	ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः ।	
	यत् सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरव तदेन ईमहे तुराणाम्	४८९
६	प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतो जुषन्त ।	
	आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	४९०

---

[३] (४८७) हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (मघवद्भ्यः बृहत् वयः दधात) धनी लोगोंके लिये बडी आयु दो । (नः सुष्टुतिं जुजोषन् इत्) हमारी स्तुतिका सेवन तुम करो । (गतः अध्वा जन्तुं न तिराति) जिस मार्गसे तुम जाते हो वह मार्ग प्राणिमात्रको विनष्ट करनेवाला नहीं होता है । उसी तरह (नः स्पार्हाभिः ऊतिभिः प्रतिरेत) हमारा संवर्धन स्पृहणीय संरक्षणके साधनोंसे तुम करते रहो ।

१ मघवद्भ्यः बृहत् वयः दधात--धनी लोगोंको बडी आयु दो। धनी लोग अल्प आयुमें मरते है, इसलिये उनको ऐसे मार्गसे चलाओ कि जिससे उनकी आयु अतिदीर्घ हो जाय । धनी लोगोंके पास उत्तम (वयः) अन्न होता है, उसके सेवनसे उनको (बृहत् वयः) बडी आयु प्राप्त होनी चाहिये । परंतु वे अल्पायु होते है, इसलिये वह दोष उनसे दूर हो ।

२ गतः अध्वा जन्तुं न तिराति—वीर जिस मार्गसे जाते है उस मार्गसे जानेसे किसीका भी नाश नहीं होता है ।

३ स्पार्हाभिः ऊतिभिः नः तिरेत—स्पृहणीय संरक्षक साधनोंसे हमारी-सबकी-सुरक्षा करो । किसीका नाश न हो, हानि न हो, रोगादि न बढें और सब लोग आनन्द प्रसन्न हों।

[४] (४८८) हे मरुत वीरो ! (युष्मा-ऊतः) तुम्हारेसे संरक्षित हुआ (विप्रः शतस्वी सहस्री) ज्ञानी सैकडों और सहस्रों धनोंसे युक्त होता है । (युष्मा-ऊतः अर्वा सहुरिः) तुम्हारे द्वारा संरक्षित हुआ थोडा भी शत्रुका पराजय करनेमें समर्थ होता है । (युष्मा-ऊतः सम्राट् वृत्रं हन्ति) तुम्हारेसे संरक्षित हुआ सम्राट् घेरनेवाले शत्रुका भी नाश करता है । हे (धूतयः) शत्रुको हिलानेवाले वीरो ! (वः तत् देष्णं प्र अस्तु) तुम्हारा वह दान हमारे लिये पर्याप्त हो ।

जिसको वीरोंका संरक्षण प्राप्त होता है वह सुरक्षित होता है और प्रभावी भी होता है ।

[५] (४८९) (मीळ्हुषः रुद्रस्य तान् आ विवासे) बलवान रुद्रके इन वीरोंकी मैं सेवा करता हूं । (मरुतः नः कुवित् पुनः नंसन्ते) वीर मरुत हमें अनेक प्रकारसे और बार बार सहायता देते हैं । हमारे साथ मिलकर कार्य करते हैं । (यत् सस्वर्ता) जिन गुप्त अथवा (यत् आविः) जिन प्रकट पापोंके कारण वे वीर (जिहीळिरे) हमपर क्रोध प्रकट करते आये हैं उन (तुराणां एनः अव ईमहे) शीघ्रता करनेवालोंसे हुआ पाप हम अपनेसे दूर करते हैं ।

जो भी पाप गुप्तरीतिसे अथवा प्रकटरीतिसे होता हो, उसको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये ।

[६] (४९०) (मघोनां सुस्तुतिः) धनाढ्य वीरोंकी यह सुन्दर स्तुति है । (सा वाचि प्र) वह हमारे मुखमें सदा रहे । (मरुतः इदं सूक्तं जुषन्त) वीर मरुत् इस सूक्तका सेवन करें । सुनें हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! हमारे (द्वेषः आरात् चित्) द्वेष्टाओंको हमसे दूर करो । और (युयोत)

(५९) १२ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १-११ मरुतः; १२ रुद्रः (मृत्युविमोचनी ऋक्)। प्रगाथ =(विषमा बृहती, समा सतोबृहती); ७-८ त्रिष्टुप्, ९-११ गायत्री, १२ अनुष्टुप्।

१ यं त्रायध्व इदमिदं देवासो यं च नयथ ।
तस्मा अग्ने वरुण मित्रार्यमन् मरुतः शर्म यच्छत ४९१

२ युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः ।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ४९२

३ नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते ।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः ४९३

४ नहि व ऊतिः पृतनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः ।
अभि व आवर्त सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषवः ४९४

उनको पृथक करो। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित करो।

वीर बलवान् बनें और वे जनसमाजके द्वेष्टा और शत्रुओंको दूर करें। समाजको सुरक्षित रखें।

[१] (४९१) हे (देवासः) देवो! (यं इदं इदं त्रायध्वे) जिसे तुम इस तरह सुरक्षित रखते हो। और (यं च नयथ) जिसे तुम अच्छे मार्गसे ले जाते हो, हे अग्ने! हे वरुण! हे मित्र! हे अर्यमन्! तथा हे (मरुतः) वीर मरुतो! (शर्म यच्छत) उसे सुख दे दो।

मनुष्यको संरक्षण चाहिये और सुख चाहिये।

[२] (४९२) हे देवो! (युष्माकं अवसा) तुम्हारे संरक्षणसे सुरक्षित होकर (प्रिये अहनि ईजानः) शुभ दिवसमें यज्ञ करनेवाला (द्विषः तरति) शत्रुओंको लांघ जाता है। शत्रुओंका पराभव करता है। (यः वः वराय) जो तुम्हारे श्रेष्ठ वीरके लिये (महीः इषः विदाशति) बहुतसा अन्न देता है, (सः क्षयं प्र तिरते) वह विनाशको लांघता है, वह सुरक्षित होता है।

जो वीरोंके द्वारा सुरक्षित होता है, उसके शत्रु दूर होते हैं और वह अपने घरबारको संरक्षित पाता है।

[३] (४९३) हे (मरुतः) वीर मरुतो! (वसिष्ठः वः चरमं चन) यह वसिष्ठ तुम्हारे अन्तिम वीरका भी (नहि परि मंसते) तिरस्कार नहीं करता। तुम सबका संमान करता है। (अद्य अस्माकं सुते) आज हमारे सोमयागमें सोमरस निकालनेपर तुम (कामिनः विश्वे सचा पिबत) अपनी इच्छाके अनुसार सब एक स्थानपर बैठकर उस रसका पान करो।

कोई भी किसी वीरका अपमान न करे। सबका समान रीतिसे संमान करे और सबको समान रीतिसे खानपान देवे।

[४] (४९४) हे (नरः) नेता वीरो! तुम (यस्मै अराध्वं) जिसको संरक्षण देते हैं, वह (वः ऊतिः पृतनासु नहि मर्धति) तुम्हारी संरक्षण करनेकी शक्तिको युद्धोंमें कम नहीं करता। वह उसके लिये पर्याप्त होती है। (वः नवीयसी सुमतिः) तुम्हारी नवीन सुमति (अभि अर्वत) हमारी ओर आवे। (पिपीषवः तूयं आयात) सोमपान करनेकी इच्छासे तुम हमारे पास आ जाओ। और यथेच्छ रसपान करो।

वीरोंकी शक्ति युद्धोंमें बढती है। युद्धोंके समय वीर लोगोंका उत्तम संरक्षण करते हैं।

५	ओ षु घृष्विराधसो यातनान्धांसि पीतये ।	
	इमा वो हव्या मरुतो ररे हि कं मो ष्व१न्यत्र गन्तन	४९५
६	आ च नो बर्हिः सदताविता च नः स्पार्हाणि दातवे वसु ।	
	अस्रेधन्तो मरुतः सोम्ये मधौ स्वाहेह मादयाध्वै	४९६
७	सस्वश्चिद्धि तन्व१ः शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ।	
	विश्वं शर्धो अभितो मा नि षेद नरो न रण्वाः सवने मदन्तः	४९७
८	यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।	
	द्रुहः पाशान् प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम्	४९८
९	सांतपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः	४९९

[५] (४९५) हे (धृष्वि-राधसः मरुतः) संघर्षमें सिद्धि पानेवाले वीरो ! (अन्धांसि पीतये सु ओ यातन) अन्नरसका सेवन करनेके लिये तुम मिलकर यहां आओ। (हि वः इमा हव्या ररे) क्योंकि तुम्हें ये अन्न मैं देता हूं । अतः तुम अन्यत्र (मो सु गन्तन) कहीं भी न जाओ ।

संघर्षमें सिद्धि पानेवाले वीर हों। युद्धोंमें वीर विजयी होनेवाले हों ।

[६] (४९६) (स्पार्हाणि वसु दातवे) स्पृहणीय धन देनेके लिये (नः अवित) हमारे पास आओ। (नः बर्हिः आ सीदत च) हमारे आसनों पर आकर बैठो। हे (अस्रेधन्तः मरुतः) अहिंसक वीरो ! (इह मधौ सोम्ये) यहां इस मधुर सोमरस पानमें (स्वाहा) अपना भाग स्वीकार करो और (मादयाध्वै) आनन्दित हो जाओ ।

वीर लोगोंको धनका दान करें और अन्नरसोका स्वीकार करें। उनका पान करके आनंदित हो जांय ।

[७] (४९७) (सस्वः चित् हि) गुप्त स्थानपर बैठकर भी अपने (तन्वः शुम्भमानाः) शरीरोंको सुशोभित करनेवाले ये वीर (नील पृष्ठाः हंसासः) नील पीठवाले हंसोंके समान (सवने मदन्तः) सवनमें सोमपान करके आनंदित होते हैं। (रण्वाः नरः न) रमणीय नेताओंकी तरह (आ अपप्तन्) हमारे पास ये आ जांय और आपका (विश्वं शर्धः) सब बल (मा अभितः नि सेद) मेरी चारों ओर रहे ।

वीर गणवेश धारण करके सुशोभित हो जांय। और वे सब लोगोंका संरक्षण करें। उनका बल इसी कार्यके लिये है। लोग उनको आदरसे उत्तम खानपान देकर उनका संमान करें। उसके सेवनसे वे आनंदित होते रहें ।

[८] (४९८) हे (वसवः मरुतः) बसानेवाले वीर मरुतो ! (दुर्हृणायुः तिरः) अतीव क्रोधी तथा तिरस्कारके योग्य (यः नः चित्तानि) जो हमारे चित्तोंका (अभि जिघांसति) चारों ओरसे नाश करना चाहता है, (सः द्रुहः पाशान्) उस द्रोहकारीके पाशोंसे (प्रति मुचीष्ट) हमें तुम मुक्त करो और द्रोहकारीको (तं तपिष्ठेन हन्मना) अति तप्त आयुधसे (हन्तन) मार डालो ।

जो शत्रु हमारे अन्तःकरणोंका नाश करना चाहता है, उसके पाशोंसे छूटना चाहिये, वे पाश शत्रुपर (प्रतिमुञ्च) उलटा देने चाहिये और उसी शत्रुका नाश करना चाहिये ।

[९] (४९९) हे (सान्तपनाः) शत्रुओंको ताप देनेवाले तथा (रिशादसः मरुतः) शत्रुका नाश करनेवाले वीर मरुतो ! तुम (इदं तद् हविः जुजुष्टन) इस हविष्यान्नका सेवन करो और (युष्माकं ऊती) तुम्हारी संरक्षणकी शक्ति बढाओ ।

१०	गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन । युष्माकोती सुदानवः	५००
११	इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुत आ वृणे	५०१
१२	त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।	
	उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्	५०२

वीर शत्रुको ताप देनेवाले तथा उनका नाश करनेवाले होने चाहिये । उनको अपनी शक्ति बढानी चाहिये ।

[१०] (५००) हे (गृहमेधासः) गृहस्थ-धर्मका पालन करनेवाले (सु-दानवः मरुतः) उत्तम दानी मरुत् वीरो ! तुम (युष्माकं ऊती आगत) अपनी संरक्षक शक्तियोंके साथ हमारे पास आओ और हमसे (मा अप भूतन) दूर न चले जाओ ।

वीरोंको गृहस्थधर्मका पालन करना चाहिये और दान भी देना चाहिये । इसी तरह अपने संरक्षणके सामर्थ्यसे सबकी सुरक्षा भी करनी चाहिये ।

[११] (५०१) (स्वतवसः) अपने स्वकीय बल-से युक्त (कवयः) ज्ञानी (सूर्यत्वचः) सूर्यके समान तेजस्वी (मरुतः) वीर मरुत् (इह इह यज्ञं वः) यहां यज्ञ करके तुम्हें मैं (आवृणे) वरण करता हूं, पास लाता हूं, सन्तुष्ट करता हूं ।

वीर अपने बलसे बढें, ज्ञानी हों, अनाडी न रहें, देश–काल–परिस्थितिका ज्ञान प्राप्त करें, सूर्यके समान तेजस्वी हों ।

[१२] (५०२) (सुगन्धिं) उत्तम यशस्वी (पुष्टिवर्धनं) पोषण साधनोंका संवर्धन करनेवाले (त्र्यंबकं) तीन प्रकारसे संरक्षण करनेवाले देवकी (यजामहे) हम उपासना करते हैं । यह देव (ऊर्वारुकं इव) ककडीको मुक्त करते हैं उस तरह (मृत्योः बन्धनात् मुक्षीय) मृत्युके बंधनसे हमें मुक्त करे, परंतु (अमृतात् मा) अमरत्व-से कभी न छुडावे, परंतु हमें अमरत्वसे संयुक्त करें ।

(त्रि-अंबकः) तीन प्रकारके भयोंसे संरक्षण होना चाहिये, अपने ही प्रमादोंका भय, राष्ट्रके दोषोंका भय और जागतिक नैसर्गिक विपत्तियोंका भय । इन तीन भयोंसे संरक्षण होना चाहिये ।

(पुष्टि-वर्धनः) जिनसे शरीरादिका पोषण होता है उन अन्नादि साधनोंका राष्ट्रमें संरक्षण करना चाहिये और संवर्धन भी करना चाहिये । ये पुष्टिके साधन सबको मिले ऐसा करना चाहिये ।

(सु-गन्धिः) अपना सुवास–अपने सत्कर्मका यश चारों ओर फैलना चाहिये । शत्रुका (गन्धनं) नाश करना चाहिये ।

मृत्योः बन्धनात् मुक्षीय—मृत्युके बंधनसे मुक्त होना चाहिये । अपमृत्युका भय दूर करना चाहिये । राष्ट्रके लोगोंकी औसद आयु बढानी चाहिये ।

मा अमृतात्—अमरपनसे अपने आपको कभी पृथक् नहीं करना चाहिये । ईश्वरभाव, ब्रह्मभाव प्राप्त करना चाहिये ।

उर्वारुकं इव—फल परिपक्व होनेके पश्चात् स्वयं छुट जाता है, बन्धनमें नहीं रहता, उस तरह स्वयं परिपक्व होकर बंधनसे छुटना चाहिये ।

व्यक्ति और राष्ट्रकी उन्नतिके उपदेश ये हैं । इनको आचरणमें ढालना चाहिये ।

यह मंत्र मृत्यु भय दूर करनेवाला है । इसलिये अपमृत्युका भय दूर करनेके लिये इसका पाठ या जप करते हैं ।

॥ यहां मरुत् प्रकरण समाप्त हुआ ॥

[४] मित्रावरुण-प्रकरण

(६०) १२ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। १ सूर्यः, २-१२ मित्रावरुणौ। त्रिष्टुप्।

१ यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन् मित्राय वरुणाय सत्यम्।
वयं देवत्रादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन् गृणन्तः ॥ ५०३

२ एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन्।
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥ ५०४

---

[१] (५०३) हे सूर्य ! (उद्यन् अद्य यत्) **उदय होते ही तुम आज हमें (अनागाः ब्रवः) निष्पाप करके घोषित करो। हे (अदिते) अदीन देव ! (वयं देवत्रा) हम देवोंके बीचमें (मित्राय वरुणाय सत्यं) मित्र और वरुणके लिये सच्चे रूपसे प्रिय (स्याम) हों। हे (अर्यमन्) आर्य मनवाले देव ! हम (गृणन्तः) स्तुति गाते हुए (तव प्रियासः स्याम) तुम्हारे लिये प्रिय हों।**

१ '**सूर्यः**' सूर्य देव सबको प्रेरणा देता है, कर्म करनेका उत्साह बढाता है। सूर्यका उदय होनेके पूर्व चोर, डाकू आदि कुकर्मकारी लोग उपद्रव मचाते है, और सूर्यका उदय होते ही यज्ञ आदि सत्कर्म शुरू होते हैं। अतः सूर्य सत्कर्मका प्रेरक है।

२ **सूर्य ! उद्यन् अद्य अन्-आगाः ब्रवः**—सूर्य ! तुम उदय होते ही हमें निष्पाप करके घोषित करो। हम निष्पाप हों, हम पाप कर्म कभी न करें।

३ **वयं देवत्रा सत्यं**-देवोंमें हम सत्य करके प्रसिद्ध हों। हम सत्यनिष्ठ हैं ऐसी सर्वत्र प्रसिद्धि हो, हम सचमुच सत्यका पालन करें।

४ **हे अर्यमन् ! तव प्रियासः स्याम**-आर्य मनवालोंको हम प्रिय हों। जो श्रेष्ठ मनवाले हैं उनको हम प्रिय हों, ऐसे हम श्रेष्ठ बन जांय।

हम आज ही निष्पाप बने। अच्छा कार्य करना हो तो हम आज ही शुरू करें। मनुष्योंको निष्पाप होना चाहिये। दीनता छोडनी चाहिये। '**सूर्य**' सबको सत्कर्ममें प्रेरित करता है, 'अ-दितिः' अदीन है, श्रेष्ठ है, सबका '**मित्र**' है, सबमें '**वरुणः**' वरिष्ठ है, श्रेष्ठ है, '**अर्य-मा**' आर्य मनवाला है, श्रेष्ठ मनवाला है, स्वामीभावसे युक्त मनवाला है, दासभावसे सदा दूर है। इस तरहके देवको हम प्रिय हों। यह तब हो सकता है कि जब हम "सत्कर्म प्रेरक, अदीन, मित्र, वरिष्ठ, आर्य मनवाले" होंगे। इसलिये उपासक इन गुणोंको अपने अन्दर धारण करें।

[२] (५०४) **हे मित्र और वरुण ! (एषः स्यः) यह है वह (नृचक्षाः सूर्यः) मानवोंके आचरणोंको देखनेवाला सूर्य (उभे अभि ज्मन् उदेति) दोनों द्यावापृथिवीके बीचके अन्तरिक्ष मार्गसे जानेवाला उदयको प्राप्त होता है। यह (विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपाः) सब स्थावर जंगम जगत्का संरक्षण करनेवाला है। यह (मर्त्येषु ऋतु वृजिना च पश्यन्) मानवोंके सुकृतों और दुष्कृतोंको देखता है।**

मानव धर्म- मनुष्योंके व्यवहारोंका निरीक्षण किया जाय, सब लोगोंका संरक्षण करनेका प्रबंध उत्तम प्रकारसे हो और अच्छे और बुरेकी परीक्षा करनेका प्रबंध हो। इस तरह व्यवस्था करनेसे मनुष्योंका कल्याण होगा।

जगत्में परमेश्वरद्वारा बनी हुई व्यवस्था कैसी वै वह देखिये—

१ **एषः नृ-चक्षाः सूर्यः उभे ज्मन् उदेति**—यह मनुष्योंके सत्य असत्य व्यवहारका निरीक्षण करनेवाला सूर्य है, वह द्यु और पृथिवीके बीचके मार्गसे चलता है और सबके

२ अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद् या ईं वहन्ति सूर्यं घृताचीः ।
धामानि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ५०५

व्यवहार देखता है । मानवोंके व्यवहारोंका निरीक्षण करनेवाला एक अधिकारी यहां विश्वमें नियुक्त किया गया है । राज्यशासनमें ऐसा एक अधिकारी रहे कि जो लोगोंके व्यवहारोंका निरीक्षण करे ।

२ विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपाः—यह सूर्य सब स्थावर जंगमका संरक्षक है । स्थावर जंगम, सत् असत् आदि सबका वह संरक्षण करता है । राज्यमें एक अधिकारी ऐसा रहे कि जो राष्ट्रके सब स्थावर जंगम पदार्थोंका तथा सब प्रजाजनोंका संरक्षण करे ।

३ मर्त्येषु ऋजु वृजिना च पश्यन्—मनुष्योंमें सरल कौन हैं और कुटिल कौन हैं, इसका निरीक्षण करनेवाला यह अधिकारी है । राष्ट्रके राज्यशासनमें ऐसा एक अधिकारी हो जो सरल व्यवहार करनेवाले और कुटिल व्यवहार करनेवाले लोगोंका निरीक्षण करे, और निश्चय करे कि ये लोग ऐसे सरल हैं और ये कुटिल, ठग या डाकू हैं । कई स्थान पर सत्य असत्य, ऋजु वृजिन, सुर असुर, देव राक्षस ऐसे शब्दोंद्वारा यही भाव बताया है । उन स्थानोंके मन्त्रोंका अनुसंधान करना यहां आवश्यक है ।

यहां राष्ट्रशासनके व्यवहारके लिये तीन अधिकारियोंकी नियुक्ति करनेके विषयमें कहा है, (१) सर्व साधारण निरीक्षक, (२) सबका संरक्षक, (३) लोगोंके सरल और कपटी व्यवहारोंकी जांच करनेवाला । राष्ट्रका शासन व्यवहार करनेके लिये जो अनेक अधिकारी आवश्यक होते हैं, उनमें इन तीन अधिकारियोंकी नियुक्तिकी सूचना इस मंत्रने दी है ।

विश्वशासनमें ईश्वरने क्या प्रबंध किया है, यह वर्णन मन्त्रमें है । उसको देखकर मनुष्य अपने राष्ट्रप्रबंधमें वैसी व्यवस्था करे। मन्त्रके अर्थसे यही प्रेरणा मनुष्यको मिलती है ।

[२] (५०५) हे **(मित्रावरुणा) मित्र और वरुण देवो ! (सधस्थात् सप्त हरितः अयुक्त) साथ साथ देवोंके रहनेके स्थानसे-अन्तरिक्षसे आनेके लिये-सात घोडियोंको सूर्यने अपने रथको जोता है। (याः घृताची ईं सूर्यं वहन्ति) जो जलको देती हुई सूर्यको ले चलती हैं । (यः युवाकुः धामानि जनिमानि) जो तुम दोनोंको संतुष्ट करनेकी इच्छा करनेवाला सब स्थानों और जन्मोंको (यूथा इव) गोपालकके समान (संचष्टे) सम्यक् रीतिसे देखता है ।**

' सध-स्थं ' (सह-स्थानं)—सब देवोंका मिलकर एक स्थान है, जहां वे रहते हैं । यह देवसभाका स्थान है । इसी तरह मनुष्योंका भी एक स्थान होना चाहिये, जहां सब लोग आकर मिलें, बातें करें, उन्नतिका विचार करें । प्रत्येकका रहनेका स्थान पृथक् पृथक् हो, परंतु सबका सभास्थान एक हो, वहां वे लोग समान अधिकारसे आयें, बैठें और विचार करें ।

१ ' सप्त हरितः अयुक्त '-सूर्यके रथको सात घोडे जोते जाते हैं । सूर्य किरणमें सात रंग हैं, वर्षके छः ऋतु और अधिक मासका सातवाँ ऋतु मिलकर वर्षके सात ऋतु हैं, ये भी सात घोडे माने हैं । आत्मा सूर्य है, उसका रथ शरीर है । इसको इन्द्रियोंके घोडे जोते हैं । दो आंखें, दो नाक, एक वाक् ये सात इंद्रियाँ ज्ञान रथके ज्ञानी घोडे है । दो हाथ, दो पांव, गुदा, शिश्न और भक्षण करनेका मुख ये सात कर्म रथके सात घोडे है । इस तरह सप्त अश्वकी कल्पना करते हैं ।

२ घृताचीः हरितः—जल देनेवाले घोडे । सूर्यके किरण ये घोडे है । किरणोंसे बाष्प, बाष्पके मेघ, मेघोंसे वृष्टी । इस तरह ये घोडे-किरण वृष्टी करते हैं । **'घृत—अचीः हरितः'** का अर्थ पसीनेसे तर हुए घोडे, ऐसा भी होता है । रथको जोते घोडे पसीना आनेसे तर हुए हैं और रथको खींच रहे हैं । वीरके रथके घोडे ऐसे वेगसे जांय, कि वे पसीनेसे तर हों ।

३ युवा—कुः— यह आपके साथ मित्रता करनेवाला वीर है । एक मित्रके साथ स्नेह संबंध रखता है और दूसरा वरुण-वरिष्ठके साथ स्नेह रखता है । मनुष्य भी अपना मित्रताका संबंध बढावे और श्रेष्ठोंके साथ संबंध जोडे ।

४ धामानि जनिमानि वेद—स्थानों और जन्मोंको जानता है । **' धाम '**— स्थान, घर, देश । इनको जानना चाहिये । **' जनिमानि '**-जन्म, उत्पत्ति, जीवन कैसा है

४ उद् वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ५०६

५ इमे चेतारो अनृतस्य भूरेर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति ।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ५०७

६ इमे मित्रो वरुणो दूळभासो ऽचेतसं चिच्चितयन्ति दक्षैः ।
अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्तस्तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति ५०८

यह भी जानना चाहिये । किस देशका और किस कुलका जन्म है यह भी विदित होना चाहिये । अपना जिनसे संबंध है उनके धाम और जन्म जानने चाहिये ।

५ **यूथा इव धामानि जानिमानि वेद**—गौओंके झुण्डका पालक जिस तरह गौके धाम और जन्म जानता है । यह गौ किस देशकी और किस वंशकी है यह गौका पालक जानता है और इस कारण प्रत्येक गौका वांशिक मूल्य जानता है । उस तरह राष्ट्रका शासक अथवा नेता अपने देशके वीरोंके धामों और स्थानोंको जाने । ' गौ ' भी ' **घृताची** '(घृत-अची) है । अधिक प्रमाणमें घी देनेवाली । जो अधिक दूध देती है और जिसके दूधमें अधिक मात्रामें घी रहता है ।)

[४](५०६) (वां पृक्षासः मधुमन्तः उत् अस्थुः) आपके लिये पुरोडाश आदि अन्न मीठे बनाये हैं । (सूर्यः शुक्रं अर्णः अरुहत्) सूर्य शुभ्र प्रकाशके साथ आकाशमें चढा है । (यस्मै आदित्याः अध्वनः रदन्ति) जिस सूर्यके लिये आदित्य मार्गको बनाते हैं । मित्र, वरुण, अर्यमा ये वे परस्पर प्रीति करने वाले आदित्य हैं ।

आदित्य बारह महिने हैं जिनके नाम मित्र, वरुण, अर्यमा आदि हैं । इन महिनोंमें दक्षिणायन उत्तरायणके अनुसार सूर्यका मार्ग बदलता रहता है, इसलिये कहा है कि ये आदित्य सूर्यका मार्ग बनाते हैं ।

[५] (५०७) (इमे भूरेः अनृतस्य चेतारः सन्ति) ये आदित्य असत्य मार्गके विनाशक हैं । (इमे मित्रः वरुणः अर्यमा ऋतस्य दुरोणे ववृधुः) ये मित्र वरुण अर्यमा आदि आदित्य सत्यके स्थान-में बढनेवाले हैं । ये (आदितेः पुत्राः अदब्धाः शग्मासः) आदितिके पुत्र किसीसे न दब जानेवाले और सुख बढानेवाले हैं ।

१ **भूरेः अनृतस्य चेतारः**-असन्मार्गके विनाशक वीर हों ।

२ **ऋतस्य दुरोणे ववृधुः**—सत्यके स्थानको बढानेवाले वीर हों । सत्यका पक्ष ले और असत्यके पक्षका त्याग करें ।

३ **अदितेः पुत्राः शग्मासः अदब्धाः**—अदीन वीर माताके वीर पुत्र सुख बढानेवाले और न दब जानेवाले हों । शत्रुके दबावसे न दबें और सुख बढानेके व्यवसाय करनेवाले तरुण वीर हों ।

[६] (५०८) (इमे मित्रः वरुणः) ये मित्र वरुण, अर्यमा आदि आदित्य स्वयं (दूळभासः) किसीसे दबाये जानेवाले नहीं हैं । (अचेतसं दक्षैः चित् चितयन्ति) अज्ञानीको भी अपने सामर्थ्यों-से ज्ञानी बनाते हैं । और (सुचेतसं क्रतुं अपि वतन्तः) उत्तम बुद्धिमान और महान पुरुषार्थ करनेवाले उद्यमी पुरुषको प्रगति संपन्न करते हैं, (अंहः चित् तिरः) पापीको पीछे गिराते और सुकर्म कर्ताको (सुपथा नयन्ति) उत्तम मार्गसे उन्नतिको पहुंचाते हैं ।

मानवधर्म- वीरोंको उचित है कि वे कदापि किसी **शत्रुके दबावसे न दबें । अज्ञानियोंको अनेक उपायों-से ज्ञान संपन्न बना दें और सुस्तोंको पुरुषार्थी और प्रयत्न-शील बना दें । पापियोंको पीछे ढकेल दें और पुण्य कर्म कर्ताको उत्तम मार्गसे उन्नतिके शिखरपर पहुंचावें ।**

१ **इमे दूळभा** (दुः-दभाः)-ये वीर माताके वीर पुत्र स्वयं किसी भी शत्रुसे न दबनेवाले हैं । किसी भी शत्रुके कैसे भी दबावसे न दबनेवाले वीर हों ।

२ **अ-चेतसं दक्षैः चितयन्ति**-ये वीर अज्ञानीको अपने बलोंसे ज्ञानवान बना देते हैं । अज्ञानीको अनेक प्रकारके ज्ञान देनेके साधन इनके पास हैं । वीर अपनी शक्तिका उपयोग करके अज्ञानियोंको ज्ञानी बना दें ।

७ **इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याश्चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति ।**
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ५०९

३ सु-चेतसं क्रतुं वतन्तः—उत्तम ज्ञानी कुशल कर्मकर्ताको प्रगति पथपर ले जाते हैं । उन्नति युक्त करते है । वीर ज्ञानी बनें और उत्तम कर्म करके अपनी प्रगति करें ।

४ अंहः चित् तिरः नयन्ति—पापियोंको पीछे ढकेल देते हैं । उनको प्रतिष्ठाके स्थानपर नहीं रखते । पापी लोगोंका तिरस्कार करते है ।

५ सुक्रतुं सुपथा नयन्ति—उत्तम पुण्य कर्म करनेवालेको उत्तम मार्गसे ले जाते हैं । उन्नतिको पहुंचाते हैं ।

राष्ट्र शासनसे इस तरहका प्रबंध होता रहे । राष्ट्र शत्रुके दबावसे न दबे । ज्ञान प्रसार द्वारा सब लोगोंको ज्ञान संपन्न तथा कर्म कुशल बना देवें । पापीको दण्ड मिले, पुण्यवानोंका प्रगतिका मार्ग खुला रहे । राष्ट्र शासनका प्रबंध इस तरह हो ।

[७] (५०९) (इमे दिवः पृथिव्याः) ये द्युलोक और पृथिवीको जाननेवाले वीर (अनिमिषा अचेतसं चिकित्वांसः) विलंब न करते हुए अज्ञानीको ज्ञानवान बनाते हैं और (नयंति) शुभ मार्गसे ले जाते हैं । शुभ कर्ममें प्रवृत्त करते हैं । (प्रव्राजे चित् नद्यः गाधं अस्ति) निम्न प्रदेशमें भी नदियां गहरी होती हैं । संकटके समयमें भी अधिक कष्ट होते हैं । अतः वे वीर (अस्य विष्पितस्य नः पारं पर्षन्) इस व्यापक कर्मके पार हमें ले जांय । इसकी उत्तम समाप्ति करनेमें हमारे सहायक हों ।

१ इमे दिवः पृथिव्याः अचेतसं अनिमिषा चिकित्वांसः नयन्ति—ये ज्ञानी वीर द्युलोक और पृथिवीको जाननेवाले अज्ञानीको अविलंबसे ज्ञानी बनाते हैं, और उन्नतिके मार्गसे चलाते हैं । अज्ञानीको ज्ञानसंपन्न बनाना चाहिये और उसको शुभ कर्म करनेमें प्रवृत्त करना चाहिये ।

जिससे द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवीके पदार्थोंकी विद्या जानी जाती है वह विद्या है । अध्यात्म, आधिभूत और आधिदैवत संबंधके जो कर्म करने होते हैं वह कर्म मार्ग है । ज्ञानसे इस कर्म मार्गमें मनुष्यकी प्रवृत्ती होती है । मनुष्यके ज्ञानमें इस त्रिलोकीके पदार्थोंकी विद्या समाविष्ट होती है । और कर्ममें व्यक्ति और समष्टिके संबंधके कर्तव्योंका समावेश होता है ।

अज्ञानी (अ-चेतः) वे हैं कि जो इस विद्याको नहीं जानते और ' **चिकित्वान्** ' वे हैं कि जो इस विद्याको जानते हैं । जो जानते हैं वे इस विद्याको जाननेवालोंको सिखा देवें और ज्ञान तथा कर्म मार्गोंमें प्रवीण बना देवें ।

२ अचेतसं चिकित्वांसः नयन्ति—अज्ञानीको ज्ञानी बनाकर शुभ मार्गसे ले जाते हैं । यह है जनताकी उन्नतिका क्रम । जो ज्ञान जिसके पास है वह दूसरोंको सिखाकर उनको ज्ञानी तथा कर्ममें कुशल बनाना उसका कर्तव्य है । राष्ट्रके शासन प्रबंधसे यह सब सुव्यवस्थित होना चाहिये ।

३ प्रव्राजे चित् नद्यः गाधं अस्ति—निम्न प्रदेशमें भी नदियां अधिक गहरी होती हैं । उनसे पार होना वहां भी कठिन होता है । संकटके समयमें भी अधिक कष्टोंके समय उपस्थित होते हैं । उनको डरना योग्य नहीं है । उनसे पार होनेका उपाय ढूंढना चाहिये ।

४ अस्य विष्पितस्य पारं नः पर्षन्—इस विशेष गहरी नदीके पार हमें ये वीर ले चलें । ' **वि-ष्पित** ' विशेष गहरी अथवा विशेष विस्तीर्ण । इसके पार पहुंचना चाहिये । ज्ञानी वीर इसके पार स्वयं जाते हैं और दूसरोंको भी पहुंचाते हैं । संकटोंके पार पहुंचना चाहिये ।

विस्तीर्ण और गहरी नदीके पार होना कठिन है । परंतु प्रयत्नसे वीर पुरुष नदीके पार होते ही हैं । इसी तरह दुःखके पार मनुष्य जाते हैं । यह सब प्रयत्नसे साध्य होनेवाला है ।

दिवः पृथिव्याः चिकित्वांसः—द्युलोकमें सूर्य, सूर्यकिरण, प्रकाश, तारागण आदि पदार्थ है, अन्तरिक्षमें वायु, विद्युत्, मेघ, वर्षा आदि पदार्थ हैं, पृथिवीपर भूमि, जल, औषधि, अन्न आदि पदार्थ हैं। इनके गुणधर्मोंके ज्ञानका नाम विद्या है। यह ज्ञान दुःख दूर करनेवाला है । त्रिलोकीमें सहस्रों पदार्थ हैं और इनके ज्ञानसे नाना प्रकारकी विद्याएँ सिद्ध होती हैं जो मानवोंकी उन्नति करनेवाली हैं । राष्ट्रके शिक्षा विभागके द्वारा इस ज्ञानका प्रसार राष्ट्रमें होना चाहिये ।

८ यद् गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासे ।
तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः ५१०

९ अव वेदिं होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद् वरुणध्रुतः सः ।
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तूरुं सुदासे वृषणा उ लोकम् ५११

१० सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषामपीच्येन सहसा सहन्ते ।
युष्मद् भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः ५१२

---

[८] (५१०) (यत् गोपावत् भद्रं शर्म) जो संरक्षण करनेवाला कल्याणपूर्ण सुख (अदितिः मित्रः वरुणः) अदीन मित्र, वरुण, आर्यमा आदि देव (सुदासे यच्छन्ति) उत्तम दान करनेवाले के लिये देते हैं, (तस्मिन्) उस कर्ममें (तोकं तनयं आदधानाः) बालबच्चोंको हम धारण करते हैं, हम उस कर्ममें पुत्रोंको प्रेरित करते हैं। हम (तुरासः) त्वरासे काम करनेके समय (देव-हेळनं मा कर्म) देवोंको क्रोध आने योग्य कर्म हम कभी न करें।

मानवधर्म- मनुष्य ऐसा सुख प्राप्त करनेका यत्न करें कि जिससे अपनी सुरक्षा हो, कल्याण हो, उन्नति हो। परंतु कभी विपरीत परिणाम न हो । ऐसे शुभ कर्मोंमें अपने बालबच्चोंको प्रवीण बना दें । शीघ्रतासे कार्य करनेसे ऐसा कोई कुकर्म अपने हाथसे होने न दें कि जिससे ज्ञानियोंको बुरा लगे ।

१ गोपावत् भद्रं शर्म सुदासे यच्छन्ति—संरक्षण करनेवाला, कल्याण करनेवाला और अधिक उच्च अवस्था देनेवाला सुख उसको प्राप्त होता है कि जो उत्तम दान सुपात्रमें देता है । जिससे अपना नाश होनेवाला हो, जो हानि करनेवाला हो, जिससे हीन अवस्था होती हो वैसा सुख मिलता हो तो भी उसको लेना योग्य नहीं है ।

२ तस्मिन् तोकं तनयं आदधानाः--उक्त प्रकारके श्रेष्ठ सुखदायक कर्ममें हम अपने बालबच्चोंको प्रवीण बनायेंगे । हम सुशिक्षा द्वारा अपने बालबच्चोंको उत्तम कर्मोंमें ही प्रवृत्त करेंगे।

३ तुरासः देव-हेळनं कर्म मा— हम सत्वर कर्म करनेकी गडबडमें देवोंको बुरा लगने योग्य कुकर्म कभी न करें । प्रत्युत देवोंको संतोष होने योग्य कर्म ही करते रहें ।

[९] (५११) (होत्राभिः वेदिं अव यजेत) जो वाणीसे वेदीपर बैठकर भी स्तुति न करे, यजन न करे, (सः) वह (वरुणध्रुतः काः रिपः चित्) वरुण देवसे हिंसित होकर किनकिन दुर्गतियोंको प्राप्त होता है ? अर्थात् उसकी बुरी अवस्था हो जाती है । (अर्यमा द्वेषोभिः परि वृणक्तु) अर्यमा शत्रु-ओंसे हमें दूर रखे । हे (वृषणौ) बलवान् मित्रा-वरुणो ! (सुदासे उरुं लोकं) उत्तम दान करने-वालेके लिये उत्तम स्थान दो । उसकी योग्यता उच्च कर दो ।

१ यः वेदिं अवयजेत सः रिपः चित्— जो यज्ञ नहीं करता, हवन या स्तुति प्रार्थना नहीं करता उसकी दुर्गति होती है । अतः मनुष्य ईश्वरकी उपासना अवश्य करे ।

२ अर्यमा द्वेषोभिः परि वृणक्तु— अर्यमा शत्रुओंको हमसे दूर रखे अथवा हमें शत्रुओंसे दूर रखे । शत्रुका आक्रमण हमपर न हो ।

३ सुदासे उरुं लोकं— उत्तम दान देनेवालेके लिये विस्तृत श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हो ।

[१०] (५१२) (एषां समृतिः सस्वर् चित् हि त्वेषी) इन वीरोंकी संगति गुप्त रहती है और तेजस्वी भी होती है । ये (अपीच्येन सहसा सहन्ते) गुप्त बलसे शत्रुको पराभूत करते हैं । हे (वृषणः) बलवान् वीरो ! (युष्मत् भिया रेजमानाः) तुम्हारे भयसे शत्रु कांपने लगते हैं। (दक्षस्य महिना चित् नः मृळत) अपने बलकी महिमासे हमें सुखी करो ।

११ यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ५१३

१२ इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५१४

(६१) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ उद् वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् ।
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत ५१५

---

१ एषां सभूतिः सस्य त्वेषी च— इन वीरोंके साथ होनेवाली मित्रता गुप्त रहती है, स्थायी होती है और तेजस्वी भी होती है। मित्रता, संगति, स्थायी, परस्परका संरक्षण करनेवाली और तेजस्वी होनी चाहिये ।

२ अपीच्येन सहसा सहन्ते— सुरक्षित बलसे वीर शत्रुका पराभव करते हैं । ऐसा बल चाहिये कि जिससे शत्रुका पराभव करना सहज हो जाय ।

३ युष्मत् भिया रेजमानाः— वीरोंके भयसे शत्रु कांपते रहे । भयभीत हो जांय ।

४ दक्षस्य महिना नः मृळत— अपने बलकी महिमासे वीर हम सबको सुखी करें । शक्तिका उपयोग अच्छी तरह किया तो उससे जो सुरक्षा होती है उससे सुख होता है ।

[११] (५१३) (वाजस्य सातौ) अन्नके दानके समय तथा (परमस्य रायः) श्रेष्ठ धनका दान करनेके समय (यः ब्रह्मणे सुमतिं आ यजाते) जो स्तोत्रपाठमें अपनी बुद्धिको लगाता है । उस (मन्युं) मननीय स्तोत्रका (अर्यः मघवानः) कर्म प्रेरक धनवान मित्रादि देवगण (सीक्षन्त) सेवन करते, श्रवण करते हैं । और उनके (उरु क्षयाय सुधातु चक्रिरे) विशाल निवासके लिये उत्तम स्थान बनाते हैं ।

जो लोग प्रभुकी उपासना करते हैं, उनकी बुद्धि शुभ कर्ममें प्रेरित होती है और उससे उसका निवास सुखमय होता है ।

[१२] (५१४) हे (देवा) मित्रावरुण देवो ! (इयं पुरोहितिः) यह उपासना (यज्ञेषु युवभ्यां अकारि) यज्ञोंमें आप दोनोंके लिये की है । (विश्वानि दुर्गा नः तिरः पिपृतं) सब आपत्तियोंको हमसे दूर करो । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) और तुम कल्याण साधनोंसे सदा हमें सुरक्षित करो ।

विश्वानि दुर्गा नः तिरः पिपृतं— सब विपत्तियोंको दूर करना चाहिये। **दुर्गं**— दुःखमय जीवन। यही दूर करने योग्य है।

[१] (५१५) हे (वरुणा) मित्र और वरुण ! (देवयोः वां चक्षुः) आप दोनों देवोंकी आंख जैसा यह (सूर्यः सुप्रतीकं ततन्वान्) सूर्य उत्तम प्रकाशको फैलाता हुआ (उत् एति) उदयको प्राप्त होता है । (यः विश्वा भुवनानि अभि चष्टे) जो सब भुवनोंको देखता है। (सः मर्त्येषु मन्युं आ चिकेत) वह मनुष्योंमें रहे मनके भावको जानता है।

१ यहां ' वरुणा ' यह एक ही देवका नाम सामान्य अर्थमें दोनोंके उद्देश्यसे प्रयुक्त किया गया है ।

२ मित्र और वरुणका आंख सूर्य है ऐसा यहां (**देवयोः वां चक्षुः सूर्यः**) कहा है । अर्थात् मित्र तथा वरुणसे यहां सूर्यको छोटा बताया है । मित्रावरुणोंकी आंख-एक इंद्रिय-सूर्य है ।

३ सूर्यः विश्वा भुवनानि अभिचष्टे— वह सूर्य सब भुवनोंका निरीक्षण करता है। यह विश्वका निरीक्षण करनेका अधिकारी है ।

४ सः मर्त्येषु मन्युं आ चिकेत— वह सूर्य मनुष्योंके अन्तःकरणमें जो भाव होता है उसको जानता है ।' **मन्युः**'- (मनसि भवः) मनका भाव, अन्तःकरणके विचार, उत्साह, स्तोत्र, मननीय विचार।

२ प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति ।
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत् क्रत्वा न शरदः पृणैथे ५१६

३ प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्वाद् बृहतः सुदानू ।
स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृधग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा ५१७

४ शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा ।
अयन् मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते ५१८

[२] (५१६) हे मित्रावरुणो ! (वां मन्मानि) आपके मननीय स्तोत्र (सः ऋतावा दीर्घश्रुत् विप्रः) वह सत्यनिष्ठ अति विद्वान् बहुश्रुत ज्ञानी (प्र इयर्ति) बोलता है। प्रेरित करता है। फैलाता है। (यस्य ब्रह्माणि) जिसके ज्ञानस्तोत्रोंकी (सुक्रतू अवाथः) उत्तम कर्म करनेवाले तुम दोनों सुरक्षा करते हो। तथा (यत्) जिन कर्मोंको (क्रत्वा) करके (शरदः आ पृणैथे) अनेक संवत्सरोंतक परिपूर्णता प्राप्त करते रहते हैं।

मानवधर्म- मनुष्य सत्यनिष्ठ, बहुश्रुत और विशेष ज्ञानसंपन्न बनें। उत्तम कर्म करें और अपने राष्ट्रीय महाकाव्योंका संरक्षण करें। इन काव्योंके अनुसार शुभ कर्म करके मनुष्य सैंकडों वर्षोंतक अपने आपको पूर्ण बनाते जांय।

१ **ऋतावा दीर्घश्रुत् विप्रः—** सत्यनिष्ठ, बहुश्रुत ज्ञानी '**मन्मानि प्र इयर्ति**'-मननीय काव्योंका प्रसार करता है। काव्य करके जगत्में उनको फैलाता है। लोग वे पढें और अपने आचरण सुधारें और श्रेष्ठ बनें।

२ **सुक्रतू ब्रह्माणि अवाथः—** उत्तम कर्म करनेवाले वीर इन स्तोत्रों-देव काव्यों-का संरक्षण करते हैं। इन वीरोंसे सुरक्षित हुए ये वीर काव्य राष्ट्रका तारण करते हैं।

३ **यत् क्रत्वा शरदः आ पृणैथे—** जिसके अनुसार कर्म करके अनेक वर्षोंतक मनुष्य पूर्णता प्राप्त करते रहते हैं।

[३] (५१७) हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण! तुम दोनों (उरोः पृथिव्याः) इस अति विस्तीर्ण पृथिवीके चारों ओर पहुंचे हो और (ऋष्वात् बृहतः दिवः प्र) अपनी गतिसे बडे द्युलोकतक भी पहुंचे हो, इससे तुम बडे हो। हे (सु-दानू) उत्तम दान देनेवाले वीर! तुम (ओषधीषु विक्षु स्पशः दधाते) औषधियों और प्रजाओंमें रूपका धारण करते हो, उनमें सौंदर्य रखते हो। और (ऋधक् यतः अनिमिषं रक्षमाणा) सत्य मार्गसे जानेवालोंकी आंखे बंद न करते हुए अर्थात् अविश्रांत रीतिसे सतत संरक्षण करते हो।

मित्र और वरुण इस विस्तीर्ण पृथिवीसे और बडे द्युलोकसे भी विशाल हैं, बडे हैं, सर्वत्र पहुंचे हैं।

'**सु-दानू**'-ये उत्तम दाता हैं, उदार हैं, विशाल अन्तः-करणवाले हैं।

ऋधक् यतः अनिमिषं रक्षमाणा— सत्यमार्गसे जो जाते हैं उनका सतत संरक्षण करते हैं। सदाचारियोंका संरक्षण करना चाहिये। राष्ट्रमें सदाचारियोंकी संख्या बढानी चाहिये और उनको संरक्षण मिलना चाहिये।

[४] (५१८) (मित्रस्य वरुणस्य धाम शंस) मित्र और वरुणके तेजस्वी स्थानका वर्णन करो। इनका (शुष्मः) बल (महित्वा रोदसी बद्बधे) अपने महत्वसे द्युलोक और पृथिवीको बांधता है, अपने स्थानमें रख देता है। (अयज्वनां मासाः अवीराः आयन्) यज्ञ न करनेवालोंके महिने पुत्र-रहित होकर चले जांय। (यज्ञ-मन्मा वृजनं प्र ति-राते) यज्ञ करनेमें जिनका मन लगा होता है वे अपने बलको विशेष बढाते रहते हैं।

१ **मित्रस्य वरुणस्य धाम शंस—** मित्र और वरुणके तेजस्वी धामका वर्णन करो। मित्रवत् व्यवहार करनेवाले और वरिष्ठ अर्थात् श्रेष्ठ व्यवहार करनेवालोंकी स्तुति गाओ। इनके काव्योंका गान करो।

५ अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम् ।
द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन् ५१९

६ समु वां यज्ञं महयं नमोभिर्हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः ।
प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ५२०

---

२ शुष्मः महित्वा रोदसी बद्बधे— इनका बल अपने महत्त्वसे आकाशसे पृथिवीतक फैलता है। इस विश्वमें उनका यश फैलता है कि जो मित्रभाव तथा वरिष्ठताका भाव बढाते हैं।

३ अयज्वनां मासाः अवीराः आयन्— यज्ञ न करनेवालोंके महिने अथवा वर्ष वीरता हीन अवस्थामें जांय। उनका संरक्षण करनेके लिये कोई वीर नहीं मिलेंगे। क्योंकि यज्ञसे वीर पूजा और संगठन होता है। इसलिये यज्ञकर्ताके पास वीर पूजे जाते हैं और संगठन भी अच्छा बढता है। इस-लिये यज्ञकर्ताका संरक्षण करनेके लिये उनके पास वीर बढते हैं। वे सुरक्षित होते हैं और उनको वीर पुत्र भी होते हैं। पर जो यज्ञ नहीं करते, जो स्वार्थी हैं उनकी अधोगति होती है।

४ यज्ञमन्मा वृजनं प्र तिराते— यज्ञ करनेमें जिनका मन लगा रहता है वे अपना बल बढाते हैं। उनके पास वीर होते हैं, वे सुरक्षित होकर उनको उत्तम वीर संतान भी होती है।

' वृजनं '—बल, जो शत्रुओंका वर्जन करता है, शत्रु-ओंको दूर रखता है। बल, धन, सामर्थ्य।

[५] (५१९) हे (अमूरा विश्वा वृषणौ) विशेष ज्ञानी व्यापक और बलवान देवो! (त्वां इमा) आपके ये स्तोत्र हैं, (यासु चित्रं न ददृशे) जिनमें आश्चर्य नहीं दीखता और (न यक्षं) न इनमें तुम्हारा सत्कार दीखता है। क्योंकि यह वर्णन यथार्थसे भी कम हो रहा है, तुम्हारी महिमा इससे बहुत अधिक है। (जनानां द्रुहः अनृता सचन्ते) जनोंके द्रोही शत्रुही असत्य प्रशंसा करते हैं। (त्वां निण्यानि अचिते न अभूवन्) आपके गुप्त पराक्रम भी अज्ञान बढानेवाले नहीं होते। वे भी ज्ञान बढाते हैं।

मानवधर्म- मनुष्य अपना ज्ञान बढावें, बल बढावें और सर्वत्र जाकर निरीक्षण करें, सुरक्षा करें और वहां ज्ञानका प्रचार करें। लोगोंने कितनी भी प्रशंसा और पूजा की तो वह इनके महत्त्वकी दृष्टीसे कम ही हुई है ऐसा प्रतीत होने योग्य अपना महत्त्व बढावें। इतने श्रेष्ठ बनें। जनताके वे शत्रु हैं कि जो असत्यकी प्रशंसा करते हैं। इसलिये कोई असत्य स्तुति न करे। असत्य प्रशंसा यह द्रोह है ऐसा मानें। कोई कार्य अज्ञान बढानेवाला न हो, प्रत्येक प्रयत्नसे ज्ञानकी वृद्धि होती रहे।

१ अमूरा विश्वा वृषणौ— ये मित्र और वरुण अमूढ हैं, सब स्थानमें जानेवाले हैं और सामर्थ्यवान हैं। इस तरह मनुष्योंको ज्ञानसंपन्न, सर्वत्र प्रवेश करनेवाले और बलवान होना चाहिये।

२ वां इमा यासु चित्रं न ददृशे न यक्षं— इनकी इस स्तुतिमें न विलक्षणता है और न इनकी विशेष पूजा ही है। क्योंकि इनका सामर्थ्य इतना महान है कि कितनी भी हम इनकी प्रशंसा करें वह न्यून ही होगी और हमसे इनका सत्कार कम ही होगा। मनुष्योंको उचित है कि वे अपना सामर्थ्य इतना बढावें कि लोगोंने की हुई प्रशंसा तथा पूजा कम ही प्रतीत हो।

३ जनानां द्रुहः अनृता सचन्ते— जनताके द्रोही जो होते हैं, वे ही असत्य स्तुति करते हैं। अपने लाभके लिये अयोग्यकी भी प्रशंसा करते हैं वे समाजके शत्रु हैं।

४ वां निण्यानि अचिते न अभूवन्— तुम्हारे किये गुप्त या छोटे कृत्य भी अज्ञान बढानेवाले नहीं होते, अर्थात् ज्ञान बढानेवाले होते हैं। यही आदेश है कि मनुष्य प्रयत्न करे और अपने प्रत्येक कृत्यसे, प्रत्येक कर्मसे ज्ञानकी वृद्धी हो ऐसा करे।

[६] (५२०) हे (मित्रावरुण) मित्र और वरुण! (त्वां यज्ञं नमोभिः सं महयं उ) आपके यज्ञका नमस्कारोंसे हम महत्त्व बढाते हैं। इसलिये (सबाधः वां हुवे) बाधित होकर आपको मैं

७ इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५२१

(६२) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १-३ सूर्यः; ४-६ मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ उत् सूर्यो बृहदर्चींष्यश्रेत् पुरु विश्वा जनिम मानुषाणाम् ।
समो दिवा ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ५२२

बुलाता हूँ । बाधा दूर करनेके लिये बुलाता हूं । (वां ऋचसे) अपनी प्रशंसा करनेके लिये (इमानि नवानि मन्मानि कृतानि) ये नवीन मननीय स्तोत्र किये हैं । ये (ब्रह्म जुजुषन्) स्तोत्र आपको प्रसन्न करें ।

मित्र और वरुण जो इस विश्व रचना और धारणाका महान यज्ञ कर रहे हैं, उसको जानना और लोगोंमें प्रकट करना चाहिये । और लोगोंको प्रेरित करना चाहिये कि वे उस तरहके यज्ञ करें और महत्त्वको प्राप्त करें जैसा महत्त्व इनको प्राप्त हुआ है ।

अपनी बाधा दूर करनेके लिये प्रभुकी उपासना करनी चाहिये । इस उपासनासे ही प्रभुकी प्रसन्नता होती है और लोगोंकी-उपासकोंकी भी उन्नति होती है ।

[७] (५२१) यह मंत्र ५१४ के स्थानपर है । वहीं पाठक इसका अर्थ देखें ।

[१] (५२२) (सूर्यः बृहत् पुरु अर्चींषि उत् अश्रेत्) यह सूर्य बडे विशाल तेजोंका, ऊपर होता हुआ, आश्रय करता है । (मानुषाणां विश्वा जनिम) मनुष्योंके सब जीवनोंको वह देखता है, । (दिवा रोचमानः समः ददृशे) दिनके समय प्रकाशता हुआ एक जैसा सबको दीखता है । वह सूर्य (क्रत्वा) सबका निर्माता (कृतः) परमात्माने स्वयं निर्माण किया है, वह (कर्तृभिः सुकृतः भूत्) यज्ञ कर्ताओंद्वारा सत्कारित हुआ है ।

मानवधर्म- मनुष्यका उदय होनेके बाद, उसका तेज बढता रहे, उसको श्रेष्ठ, कनिष्ठ मनुष्योंकी परीक्षा करनेकी शक्ति हो, उसका बर्ताव सबके साथ समान हो, तथा वह बडे बडे पुरुषार्थ करनेवाला बने और अनेक कुशल पुरुषोंके साथ रहकर बडे विशाल कर्म उत्तम प्रकार निभानेवाला बने ।

१ सूर्यः बृहत् पुरु अर्चींषि उत् अश्रेत्— सूर्य उदय होकर जैसा जैसा ऊपर चढता है, वैसा वैसा उसका तेज बढता जाता है । इसी तरह मनुष्य भी विद्या समाप्त करके जब जगत्के व्यवहारमें उदयको प्राप्त होता है, तब उसका भी प्रकाश बढता है । इस तरह मनुष्य ऊपर चढे और अधिक तेजस्वी होता जाय ।

२ सूर्यः मानुषाणां विश्वा जनिम— सूर्य मनुष्योंके सब प्रकारके जीवनोंको देखता है । इसी तरह राष्ट्रका निरीक्षण करनेवाला अधिकारी लोगोंके जीवन चारित्र्यका निरीक्षण करे ।

३ दिवा रोचमानः समः ददृशे— दिनके समय प्रकाशनेवाला सूर्य सबको समान रूपसे तेजस्वी दिखाई देता है । इसी तरह मनुष्य अधिकारपर चढा हुआ सबके साथ समान रूपसे बर्ते, पक्षपात न करे ।

४ क्रत्वा कृतः कर्तृभिः सुकृतः भूत्— यह सूर्य सबका निर्माण करनेवाला है, संस्कारोंसे प्रभुने इसको बनाया है, पश्चात् यह अनेक कर्ताओंको अपने साथ रखता है और उत्तम कर्म करनेवाला बनता है । इसी तरह मनुष्य भी अच्छे (क्रत्वा) कर्म करनेवाला हो, (कृतः) विद्याके तथा सदाचारके संस्कारोंसे सुसंस्कृत हुआ हो, पश्चात् (कर्तृभिः सुकृतः) अनेक कार्य-निपुण कर्ताओंके साथ शुभ कर्मोंको करनेवाला बने । इस तरह मनुष्यकी श्रेष्ठ अवस्था होती है ।

इस मन्त्रमें सूर्यका वर्णन है, उस वर्णनको मनुष्यके जीवनमें घटानेसे मनुष्यकी उन्नति किस तरह होती है इसका ज्ञान होता है ।

मनुष्य (क्रत्वा = कृतिवान्) कुशलतासे कर्म करनेमें समर्थ होना चाहिये । वह (कृतः) बनाया जाना चाहिये, राष्ट्रकी शिक्षा प्रणालीमें उत्तम संस्कारोंसे वह संपन्न होना चाहिये । और इसके पश्चात् उसने अपने साथ (कर्तृभिः सुकृतः) अनेक कर्म कुशल लोगोंको इकट्ठा करके अनेकानेक बडे बडे विशाल क्षेत्रके

२	स सूर्य प्रति पुरो न उद् गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः ।	
	प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च	५२३
३	वि नः सहस्रं शुरुधो रदन्त्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।	
	यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः	५२४
४	द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नो ये वां जज्ञुः सुजनिमान ऋष्वे ।	
	मा हेळे भूम वरुणस्य वायोर्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम्	५२५
५	प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।	
	आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा	५२६

कार्य करने चाहिये । जैसा जैसा उसका उदय होता जायगा वैसा वैसा उसका तेज बढता जाना चाहिये । उसको मनुष्योंकी परीक्षा करनेकी शक्ति चाहिये । उसका व्यवहार सबके साथ समान चाहिये । छल, कपट, पक्षपात आदिसे वह दूर रहना चाहिये ।

[२] (५२३) हे सूर्य ! (सः नः प्रति पुरः) **वह तुम हमारे सामने (एभिः स्तोमेभिः) इन स्तोत्रोंसे तथा (एतशेभिः एवैः) गमनशील अश्वोंसे (उत् गाः) ऊपर चढ और (नः) हमारे संबन्धमें मित्र, वरुण, अर्यमा तथा अग्निके पास (अनागसः प्र वोचः) निष्पाप भावकी घोषणा करो ।**

सूर्य उदय होकर देखे कि हम निष्पाप हैं, ऐसा देखकर हम निष्पाप हैं ऐसी घोषणा करे ।

[३] (५२४) (शु-रुधः ऋतावानः) शोकके **दुःखको दूर करनेवाले सत्यनिष्ठ वरुण मित्र और अग्नि ये देव (नः सहस्रं विरदन्तु) हमें सहस्रों प्रकारका धन दें । तथा (चन्द्राः नः उपमं अर्कं आयच्छन्तु) वे आल्हाददायक देव हमें स्तुत्य और प्रशंसनीय धन दें । तथा (स्तवानाः नः कामं पूपुरन्तु) स्तुति करनेपर हमारी कामनाओंको पूर्ण करें ।**

१ '**शु-रुधः**' —शोकके कारणको दूर करनेवाले, दुःखको दूर करनेवाले तथा '**ऋतावानः**' —सत्यनिष्ठ, सत्य मार्गसे जानेवाले ये देव हैं । मनुष्य उनके सदृश बनें अर्थात् वे शोक दुःख दूर करनेका कार्य करें और सत्यमार्गसे जांय । '**नः सहस्रं वि रदन्तु**' —हमें सहस्रों प्रकारका धन दें । जगत्में धन अनेक प्रकारका है, घर, पुत्र, मित्र, पैसा, सुख-साधन, शक्ति, संस्कारसंपन्न मन आदि अनेक प्रकारका धन है । वह हमें मिले ।

२ **चन्द्राः उपमं अर्कं नः आयच्छन्तु**— आनन्द देनेवाले हमें उत्तम पूजनीय धन दें । हमें धन चाहिये वह ऐसा हो कि जो प्रशंसनीय हो और सत्कार करने योग्य हो ।

३ **नः कामं पूपुरन्तु**—हमारी कामनाको पूर्ण करें । हमारी इच्छानुसार हमें सुख प्राप्त हों ।

[४] (५२५) हे (अदिते ऋष्वे द्यावाभूमी) **अखंडनीय और विशाल द्यु और भूलोको ! (नः त्रासीथां) हमारा संरक्षण करो । (ये सुजनिमानः वां जज्ञुः) जो उत्तम कुलीन हम हैं वे तुम्हें जानते हैं । हम (वरुणस्य हेळे मा भूम) वरुणके क्रोधमें न जांय तथा (वायोः मा) वायुके क्रोधमें न जांय और (नृणां) मनुष्योंके क्रोधमें भी हम न जांय, (प्रियतमस्य मित्रस्य मा) प्रिय मित्रके क्रोधमें न जांय । अर्थात् इनका क्रोध होनेयोग्य बुरा आचरण हमसे न हो ।**

[५] (५२६) हे मित्रवरुणो ! आप अपने **(बाहवा प्र सिसृतं) बाहुओंको फैलाओ । (नः जीवसे) हमारे दीर्घ जीवन के लिये (नः गव्यूतिं घृतेन आ उक्षतं) हमारी गायें जानेके मार्गको जलसे सिंचन करो । (नः जने आ श्रवयतं) हमें लोगोंमें कीर्तिमान बनाओ । हे (युवाना) तरुणो ! (मे इमा हवा श्रुतं) मेरे इन स्तोत्रोंको सुनो ।**

६ नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५२७

(६३) १ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १-४ सूर्यः, ५ सूर्य-मित्रावरुणाः, ६ मित्रावरुणौ अर्यमा च । त्रिष्टुप् ।

१ उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम् ।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक् तमांसि ॥ ५२८

२ उद्वेति प्रसवीता जनानां महान् केतुरर्णवः सूर्यस्य ।
समानं चक्रं पर्याविवृत्सन् यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ॥ ५२९

[illegible]- बहुत दान देते रहो। अपने दीर्घ जीवनके लिये गौको उत्तम जल और हरा घास दो, गौकी पालना करके गोदुग्ध और घृतका सेवन करो और ऐसा उत्तम आचरण करो कि जिससे जगत्में यश फैले ।

१ बाहवा प्र सिसृतं— तुम अपने बाहुओंको फैलाओ और बहुत दान दो ।

२ जीवसे गव्यूतिं घृतेन आ उक्षतं— दीर्घ जीवनके लिये गायोंके आनेजानेके मार्गोको जलसे सिंचन करो । गौओंको भरपूर शुद्ध जल तथा हरा घास मिले ऐसा करो। गौके दूध और घीके भरपूर मिलनेसे मनुष्यकी आयु बढती है । दही और छाछके पीनेसे भी आयु बढ जाती है ।

३ जने नः आश्रवयतं— लोगोंमें हमारी कीर्ति फैले ।

[६] (५२७) मित्र वरुण और अर्यमा ये तीनों देव (नु नः त्मने तोकाय वरिवः दधन्तु) हमारे पुत्र-पौत्रोंके लिये योग्य श्रेष्ठ धन दें। (नः विश्वा सुपथानि सुगा सन्तु) हमारे सब जानेके मार्ग हमारे लिये सुगम हों । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षित रखो।

१ **त्मने तोकाय वरिवः दधन्तु**— अपने पुत्र-पौत्रोंके लिये श्रेष्ठ धन रखो । स्वयं अपने धनका विनाश न करो, अपने बाल-बच्चोंकी पालनाके लिये भी उसे रखो। '**वरिवः**' - श्रेष्ठ धन, उत्तमोत्तम धन ।

२ **नः विश्वा सुपथानि सुगा सन्तु**— हमारे सब प्रगति करनेके मार्ग सुगम हों । हम सहजहीसे प्रगति कर सकें ऐसे वे मार्ग हमारे लिये सुगम हों ।

[१] (५२८) (सूर्यः सुभगः) यह सूर्य उत्तम भाग्यसे संपन्न है (विश्वचक्षाः) सबका निरीक्षण करनेवाला (मानुषाणां साधारणः) सब मनुष्योंके लिये समान (मित्रस्य वरुणस्य चक्षुः देवः) मित्र और वरुणकी आंख जैसा यह देव (यः चर्म इव तमांसि समविव्यक्) जो चमडोंकी तरह अन्धकारोंको समेटता है वह (उत् उ एति) उदय हो रहा है ।

सूर्य भाग्यवान्, ऐश्वर्यवान है, सब विश्वका निरीक्षक है, सब मनुष्योंके साथ समान रीतिसे बर्तनेवाला है, मित्र वरुणोंकी आंख जैसा है । यह सूर्य देव जैसे बिछानेके चमडे लपेट कर अलग रखते हैं, उस तरह सब अन्धकारको यह समेट लेता, हटा देता है । बिस्तरा लपेटनेकी, चमडे लपेटनेकी काव्यमय उपमा यहां अन्धकारका आवरण दूर करनेके लिये दी है ।

[२] (५२९) (जनानां प्रसविता) सब लोगोंका प्रेरक (महान् केतुः) बडे ध्वजके समान सबको ज्ञान देनेवाला (अर्णवः) जीवन दाता (सूर्यस्य) यह सूर्य (उत् उ एति) उदयको प्राप्त होता है । (समानं चक्रं परि आविवृत्सन्) सबके लिये एकही कालचक्रको घुमाता हुआ, (यत् धूर्षु युक्तः एतशः वहति) जिस चक्रको धुरामें जाता हुआ अश्व चलाता है ।

सूर्य (जनानां प्रसविता) सब लोगोंको सत्कर्ममें प्रेरित करता है । दिनका प्रकाश होते ही ईश्वरस्तुति, प्रार्थना, उपासना, यज्ञ, याग आदि अनेक विध सत्कर्म शुरू होते हैं । अन्यान्य विद्याध्ययन आदि भी सत्कर्म सूर्योदय होते ही शुरू होते हैं । जबतक रात्री रहती है तबतक निशाचर, चोर, डाकू आदि दुष्टोंके बुरे

३	विभ्राजमान उषसामुपस्थाद् रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः ।	
	एष मे देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम	५३०
४	दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः ।	
	नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि	५३१
५	यत्रा चक्रुरमृता गातुमस्मै श्येनो न दीयन्नन्वेति पाथः ।	
	प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः	५३२

कर्म चलते हैं। सूर्य उदय होते ही वे बंद होते और अच्छे कर्म शुरू होते हैं।

महान् भगवा ध्वज

इसलिये कहा है कि यह सत्कर्मका सूचक (महान् केतुः) बडा भारी ध्वज है। यह सूर्योदयके समयका सूर्य यदि ध्वज है तो यह निःसंदेह ही भगवा ध्वज है। सूर्योदयके सूर्यका रंग भगवा होता है।

यह ' **अर्णवः** ' जलनिधि है। जीवनका निधि ही यह सूर्य है। सब स्थिरचर जगत्का यह आत्मा है। यही सबका जीवन दाता है। यह ' **उदेति** ' उदयको प्राप्त होता है।

१ ' **समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्** ' —एक ही कालचक्र सबके लिये समान रूपसे वह चलाता है। इसलिये उसको ' एक चक्र रथ ' कहते हैं। सूर्यका कालचक्र सबके लिये एक जैसा है। इसका सूचक यह एक चक्र रथ है।

२ ' **धूर्षु युक्तः एतशः वहति** ' —धुरामें जोडा घोडा इसको ढोता है। यहां ' **धूर्षु** ' अनेक धुराओंमें ' **एतशः** ' एक घोडा जोता है ऐसा लिखा है। पर यह असंभव है। इसलिये अनेक घोडे जोते हैं ऐसा मानना युक्त है। ' **सप्ताश्व** ' इसका नाम है। सात घोडे सूर्यके रथको जोते हैं ऐसा वर्णन अन्यत्र है। कई स्थानोंपर एक घोडा जोता है ऐसा भी है।

सूर्यका आदर्श मनुष्यके सामने है। मनुष्य अन्य जनोंमें सत्कर्मकी प्रेरणा करे, शुभ कर्मका सूचक ध्वज जैसा उनके प्रमुख स्थानमें रहे, सबके लिये एक ही रूपसे रहे, छल, कपट न करे, पक्षपात न करे।

[३] (५३०) यह (विभ्राजमानः उषसां उपस्थात्) विशेष प्रकाशता हुआ सूर्य उषाओंके सामने (रेभैः अनुमद्यमानः उत् एति) स्तोत्र-पाठकोंके स्तोत्रोंसे आनन्द प्रसन्न होता हुआ उदयको प्राप्त होता है। (एषः देवः सविता मे चच्छन्द) यह सविता देव मेरी कामनाकी पूर्ति करता है। (यः समानं धाम न प्रमिनाति) जो अपने समान तेजस्वी स्थानको संकुचित नहीं करता।

सूर्य उदय होनेके समय उपासक लोग वैदिक स्तोत्र गाते हैं। उसके पश्चात् सूर्यका उदय होता है। इस उदयके समय गानेका यह स्तोत्र है। यह सविता देव सबको आनन्द प्रदान करता है। इसका (धाम समानं) स्थान सब मानवोंके लिये समान है। इस सूर्यमें किसीका पक्षपात नहीं है। यह अपना प्रकाश किसीके लिये अधिक और किसीके लिये कम नहीं करता, सब पर समानतया समान प्रकाश डालता है।

[४] (५३१) यह सूर्य (दिवः रुक्मः उरुचक्षाः) द्युलोकको शोभा देनेवाला, विशेष तेजस्वी (दूरे अर्थः) दूर विराजमान, (तरणिः भ्राजमानः) तारणकर्ता और तेजस्वी (उत् एति) उदित होता है। (नूनं) यह निःसंदेह है कि (सूर्येण प्रसूताः जनाः) सूर्यसे प्रेरित हुए लोग अपने प्राप्तव्य (अर्थानि अयन् अपांसि कृणवन्) अर्थोंको प्राप्त करके उनसे कर्मोंको करते हैं।

सूर्य जैसा द्युलोकका अलंकार है वैसा ही मनुष्य अपने समाजका अलंकार बने। यह दूर रहकर भी अर्थ सिद्ध करता है, तारण करता तेजस्वी होता है, इसी तरह मनुष्य योग्य मार्गसे अपने अर्थकी सिद्धि करे, अपने राष्ट्रका तारण करे और सबको प्रकाश देता रहे, मनुष्य सूर्यको देखकर उनके गुण अपने अन्दर ढाले और अर्थोंको प्राप्त करके ऐसे कर्म करे कि जिनका परिणाम सब लोगोंपर हो सकता है।

[५] (५३२) (यत्र अमृताः अस्मै गातुं चक्रुः) जिस स्थानमें देवोंने इस सूर्यके लिये मार्ग बनाया

६ नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५३३

(६४) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन् ।
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषन्त ॥ ५३४

२ आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् ।
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ॥ ५३५

है। वह (पाथः) मार्ग (श्येनः न दीयन्) शीघ्रगामी श्येनकी तरह अन्तरिक्षमेंसे (अनु एति) जाता है। हे मित्र और वरुण ! (सूरे उदिते सति) सूर्यका उदय होनेपर (वां) तुम्हारी (नमोभिः उत हव्यैः) नमस्कारों और हवन द्रव्योंसे (प्रति विधेम) हम परिचर्या करेंगे।

[६] (५३३) यह मंत्र ५२७ के स्थानपर है। पाठक इसे वहां देखें और अर्थ जानें।

[१] (५३४) (दिवि रजसः पृथिव्यां क्षयन्ता) तुम दोनों द्युलोकमें, अन्तरिक्षमें तथा पृथिवीमें रहते हो, (वां घृतस्य निर्णिजः प्र दीदरन्) तुम दोनों जलके रूपको बनाते हो। जल तुमने बनाया है। (नः हव्यं) हमारे हव्यका (मित्रः) मित्र (सुजातः अर्यमा) उत्तम कुलमें जन्मा अर्यमा और (सुक्षत्रः राजा वरुणः जुषन्त) उत्तम क्षात्र बलसे युक्त राजा वरुण सेवन करें।

ये मित्र तथा वरुण द्युलोक अन्तरिक्ष तथा पृथिवीपर रहते हैं, तीनो लोकोंमें व्यापते हैं। ये दोनों (**घृतस्य निर्णिजः प्रदीदरन्**) जलको रूपवान बनाते हैं। जल नेत्रसे दिखाई देता है यह इनके कारण है। जल पहिले वायु रूप था। मित्र और वरुण ये दो वायु हैं, वे अग्निके समक्ष मिलते है और जलको प्रकट करते हैं। वेदमें अन्यत्र भी कहा है—

मित्रं हुवे पूत दक्षं वरुणं च रिशादसं ।
धियं घृताचीं साधन्ता ॥ (ऋ० १।२।७)

" बलवान मित्र वायु और शत्रुनाशक वरुण वायुको (हुवे) मैं लेता हूं, परस्परका मेल करता हूं, ऐसा करनेसे ये दोनों (घृत-अचीं धियं साधन्ता) जल उत्पन्न करनेका कर्म सिद्ध करते है। "

इस तरह मित्र और वरुणोंका कर्म जल निर्माण करना है। विज्ञान शास्त्री इनको दो वायु कहते है। वरुण प्राण वायु और मित्र जलज वायु है। वैज्ञानिक इसका अधिक विचार करके निर्णय करें।

१ **सुजातः अर्यमा**— यहां अर्यमाको ' सुजात ' अर्थात् उत्तम कुलमें उत्पन्न कहा है। श्रेष्ठ कौन है और कनिष्ठ कौन है इसका निर्णय अर्यमा करता है। (अर्यं मिमीते इति अर्यमा) यह न्यायाधीशका कार्य है। न्यायाधीश होनेके लिये विद्या ज्ञानके साथ कुलीन होना भी आवश्यक है। ' सुजात ' ही न्यायाधीश बनें, कोई ' बद् जात ' न बने यह इसका आशय है।

२ **सुक्षत्र राजा वरुणः**—वरुण राजा उत्तम क्षात्र बलसे युक्त चाहिये। जो उत्तम क्षात्रबलशाली न होगा वह राजाके कर्तव्य ठीक तरह नही निभा सकेगा।

[२] (५३५) हे (महः ऋतस्य गोपा राजाना) बडे सत्यके पालक राजा (सिन्धुपती क्षत्रिया) नदियोंके पालनकर्ता और क्षत्रियो ! (अर्वाक् आयातं) हमारे समीप आओ। हे (जीरदानू मित्रावरुणा) शीघ्र दान देनेवाले मित्र वरुणो ! तुम (नः इळां) हमें अन्न दो (उत वृष्टिं) और वृष्टिको भी (दिवः अव इन्वतं) द्युलोकसे नीचे प्रेरित करो।

राजाके गुण इस मंत्रमें वर्णन किये हैं— (राजा ऋतस्य गोपा) राजा सत्यका रक्षक होना चाहिये, शुभ कर्मोंका संरक्षक राजा हो। (सिन्धुपती) नदियोंका पालक राजा हो। नदियोंके जलका वह संरक्षण करे और उस जलका उपयोग प्रजाजनोंको

३ मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु ।
ब्रवद् यथा न आदरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः ५३६

४ यो वां गर्तं मनसा तक्षदेतमूर्ध्वां धीतिं कृणवद् धारयच्च ।
उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम् ५३७

५ एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५३८

होता रहे ऐसा प्रबंध वह करे। (क्षत्रियः) क्षत्रिय हो, क्षात्र बलसे युक्त हो, शूर वीर हो, (क्षतात् त्रायते) प्रजाका दुःखसे संरक्षण करे। प्रजाको (इळां) पर्याप्त अन्न देवे। ये गुण राजाके हैं। उत्तम राजा इन गुणोंसे युक्त होना चाहिये।

[३] (५३६) मित्र वरुण और (अर्यः) अर्यमा ये तीनों देव (नः तत्) हमें वहां सुखके स्थानमें (साधिष्ठेभिः पथिभिः प्र नयन्तु) उत्तम साधनोंसे युक्त मार्गोंसे पहुंचा दें। तथा (नः सुदासे) हमारा उत्तम दाताके पास (तथा ब्रवत्) वैसा वर्णन करें कि (यथा आत् अरिः) जैसा श्रेष्ठ पुरुष करता है। (देव-गोपाः इषा सह मदेम) देवोंसे सुरक्षित हुए हम अन्नके द्वारा हम सब साथ साथ रहकर आनंदित होते रहेंगे।

१ साधिष्ठेभिः पथिभिः प्र नयन्तु— उत्तम साधन मार्ग हों, उन्नतिको पहुंचानेवाले मार्ग शुद्ध हों।

२ देवगोपाः इषा सह मदेम— देवोंसे सुरक्षित होकर अन्नसे हम सब साथ साथ रहकर आनंदित हों।

[४] (५३७) हे मित्र और वरुण! (यः वां एतं गर्तं मनसा तक्षत्) जो आपके इस रथको मनसे निर्माण करता है, वह (ऊर्ध्वां धृतिं कृणवत्) उच्च धारण शक्ति निर्माण करता और (धारयत् च) उसका धारण भी करता है। हे (राजाना) राजाओ! (घृतेन उक्षेथां) जलसे सिंचन करो (ता) वे आप दोनों (सुक्षितीः तर्पयेथां) सुन्दर रहनेके स्थान देकर सबको प्रसन्न करो।

१ मनसा गर्तं तक्षत्— पहिले मनसे रथ आदिकी निर्मितिका विचार करना होता है। मनमें उसका ढांचा कल्पनासे बनाया जाता है, पश्चात् वह कागजपर दर्शाया जाता है। पश्चात् वह लकडीसे बनाया जाता है।

२ ऊर्ध्वां धृतिं कृणवत् धारयत्— उच्च धैर्यकी स्थिति करना और उसका धारण करना। **धृति—** धैर्य, शौर्य, वीर्यकी कृति।

३ ता राजाना सुक्षितीः तर्पयेथां— राजाओंको प्रजाका निवास प्रथम उत्तम होनेयोग्य प्रबंध करना चाहिये और उनकी तृप्ति होनेयोग्य अन्न व्यवस्था भी करनी चाहिये।

[५] (५३८) हे मित्र वरुण! हे वायो! (तुभ्यं) आपके लिये (एषः शुक्रः सोमः न स्तोमः) यह बलवर्धक सोमरसके समान आनन्द बढानेवाला यह स्तोत्र (अयामि) किया है। (धियः अविष्टं) हमारी बुद्धियों तथा हमारे कर्मोंका संरक्षण करो, (पुरंधीः जिगृतं) नगर रक्षण करनेकी बुद्धिकी जागृति करो। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारी सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षा करो।

यहां 'वायु' पद 'अर्यमा' का बोध करता है। इस समय तक मित्र वरुणके साथ अर्यमा आया है। इस कारण यहां का वायु भी अर्यमाका बोधक होगा।

१ धियः अविष्टं— बुद्धियोंकी सुरक्षा करनी चाहिये। प्रजाओंकी बुद्धि सुरक्षित रहे, तथा उनके शुभ कर्म भी सुरक्षित रहें।

२ पुरंधीः जिगृतं— (पुरं धारयति) नगरका धारण करनेकी बुद्धिकी प्रशंसा गाओ। जिनके अन्दर नगरका धारण

(६५) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम् ।
ययोरसुर्य१मक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु ५३९

२ ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः ।
अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च ५४०

३ ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय ।
ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम ५४१

४ आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः ।
प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्नो दिव्यस्य चारोः ५४२

संरक्षण और उन्नयन करनेकी बुद्धि हो उनका वर्णन करना चाहिये ।

[१] (५३९) (सूरे उदिते) सूर्यका उदय होनेके समय (मित्रं पूतदक्षं वरुणं) मित्र तथा पवित्र बलवाले वरुणकी (वां सूक्तैः प्रति हुवे) आपके सूक्तोंसे उपासना करता हूं। (ययोः अक्षितं ज्येष्ठं असुर्यं) जिनका अक्षय और श्रेष्ठ बल (आचिता यामन्) प्राप्त होनेपर वह (विश्वस्य जिगत्नु) सबका विजय करनेवाला होता है।

१ '**अक्षितं ज्येष्ठं असुर्यं विश्वस्य जिगत्नु**'—अक्षय और श्रेष्ठ बल विश्वका विजय करता है। जिसके पास ऐसा बल होगा वह विश्व विजयी होगा।

२ '**पूत दक्षं**'—पवित्र बल प्राप्त करना चाहिये। जिस बलसे पवित्र कर्म किये जाते हैं वह बल पवित्र होता है।

[२] (५४०) (ता हि देवानां असुरा:) वे दोनों देवोंमें अधिक बलवाले हैं। (तौ अर्या) वे दोनों श्रेष्ठ हैं। (ता नः क्षिती ऊर्जयन्तीः करतं) वे दोनों हमारी प्रजाको बढाते हैं। हे मित्र और वरुण! (वयं वां अश्याम) हम आप दोनोंको प्राप्त करते हैं। (यत्र द्यावा च) जिससे द्यु और पृथिवी (अहा च) दिन रात (पीपयन्) हमारी वृद्धि करते रहें।

देवानां असुरा अर्या क्षितिः ऊर्जयन्ती करतं—देवोंमें अधिक बलवान् श्रेष्ठ वीर संतानोंको बलशाली निर्माण करते हैं। देव विजयी होते हैं, उनमें अधिक बलवान् वीर हों और स्वामी अधिकारी बनें तथा वे अपनी प्रजाको अधिक बलवान् बना दें।

[३] (५४१) (तौ भूरिपाशौ) वे दोनों वीर बहुत पाशोंसे शत्रुको बांधनेवाले हैं। (अनृतस्य सेतू) सेतु जैसे असत्यके पार करनेवाले हैं। वे (मर्त्याय रिपवे दुरत्येतू) मर्त्य शत्रुके लिये आक्रमण करनेके लिये अशक्य हैं। हे मित्रा वरुणो! हम (वां ऋतस्य पथा) आपके सत्य मार्गसे, (नावा अपः न) नौकासे नदियोंके पार होनेके समान (दुरिता तरेम) दुःखोंको पार करेंगे।

१ **भूरि पाशाः**—बहुत पाशोंसे शत्रुको बांधनेकी विद्या प्राप्त करनी चाहिये। अपने पास बहुत पाश रखने चाहिये।

२ **अनृतस्य सेतुः**—असत्यसे पार करनेवाला सेतु जैसा बनना उचित है। असत्यमें फंसना उचित नहीं है।

३ **मर्त्याय रिपवे दुरत्येतुः**—मरनेवाले शत्रुका आक्रमण रोकनेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये। शत्रुका आक्रमण ही न हो इतनी शक्ति अपने अन्दर बढानी चाहिये।

४ **ऋतस्य पथा दुरिता तरेम**—सत्यके मार्गसे हम पापोंसे बचें। सत्य मार्गसे जांय और पापोंसे बचें।

५ **नावा अपः न**—नौकासे जिस तरह नदियोंके प्रवाहोंके पार होते हैं उस तरह हम दुःखोंके पार हों।

[४] (५४२) हे मित्र और वरुण! (नः हव्यजुष्टिं आ) हमारे हवनके स्थानमें आओ। (इळाभिः

५	एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि । अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	५४३

(६६) १९ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ, ४-१३ आदित्याः, १४-१६ सूर्यः । गायत्री, १०-१५ प्रगाथः = (समा बृहती, विषमा सतोबृहती) १६ पुर उष्णिक् ।

१	प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूष्यः	। नमस्वान् तुविजातयोः	५४४
२	या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा	। असुर्याय प्रमहसा	५४५
३	ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितॄणाम्	। मित्र साधयतं धियः	५४६
४	यदद्य सूर उदिते ऽनागा मित्रो अर्यमा	। सुवाति सविता भगः	५४७
५	सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन् त्सुदानवः ।	ये नो अंहोऽतिपिप्रति	५४८

घृतैः गव्यूतिं उक्षतं) अन्नों और जलोंसे हमारी गौ चरनेवाली भूमिका सिंचन करो । (वां अत्र वरं प्रति आ) आपको यहीं श्रेष्ठ हवि मिलेगा । (दिव्यस्य चारोः उद्नः जनाय पृणीतं) स्वर्गीय रमणीय जल लोगोंके लिये भरपूर दो ।

[५] (५४३) यह मंत्र क्रमाङ्क ५३८ में है । वहीं पाठक इसका अर्थ देखें ।

[१] (५४४) (मित्रयोः वरुणयोः) मित्र और वरुण जो कि (तुवि-जातयोः) अनेक वार प्रकट होते हैं उनका (नमस्वान् शूष्यः स्तोमः) अन्नसे युक्त बल बढानेवाला स्तोत्र (नः प्र एतु) हमारे पास आ जावे ।

मित्र और वरुणका स्तोत्र बल बढानेवाला है और अन्न देनेवाला है । वह हमें मिले । हमारे कण्ठमें वह रहे जिससे हम अपना अन्न और बल बढावें ।

[२] (५४५) (देवाः) देव (सुदक्षा दक्ष-पितरा) उत्तम बलवान्, बलके संरक्षक (प्रमहसा) विशेष शक्तिवाले (असुर्याय धारयन्त) बल प्राप्त करनेके लिये धारण करते हैं । मित्र और वरुणका धारण करते हैं ।

१ सुदक्षा— उत्तम बल धारण करना चाहिये,

२ दक्षपितरा— अपने बलका संरक्षण करना चाहिये,

३ प्रमहसा — विशेष महत्त्व प्राप्त करना चाहिये,

४ असुर्याय धारयन्त — अपना बल बढानेका प्रयत्न करना चाहिये । (असुर्य) बल प्राप्त करनेके लिये देवत्वकी धारणा करनी चाहिये ।

[३] (५४६) (ता स्तिपाः तनूपाः) वे तुम दोनों घरोंके शरीरोंके रक्षक हो । हे मित्र और वरुण ! (नः जरितॄणां धियः साधयतं) हम सब स्तोताओंकी इच्छाओंको सफल बनाओ ।

शरीरों, घरों, नगरों तथा राष्ट्रका संरक्षण करना चाहिये । इस मंत्रमें शरीरों और घरोंका संरक्षण मित्र तथा वरुण करते हैं ऐसा कहा है । यह उपलक्षण है । इससे विशाल घर और विशाल शरीरकी पालना करनेकी सूचना मिलती है ।

'**धियः**' (धी) बुद्धि, योजना । बुद्धिपूर्वक किये कर्म सफल हों । कैसे भी किये कर्म सफल होंगे ऐसा नहीं है । योजनापूर्वक किये कर्म ही सफल होंगे ।

[४] (५४७) (यत् अद्य सूरे उदिते) जो धन आज सूर्यका उदय होनेके समय हमें अपेक्षित है वह (अनागाः) निष्पाप मित्र, अर्यमा, सविता, भग (सुवाति) हमें देवे ।

[५] (५४८) (सः क्षयः सुप्रावीः अस्तु) वह हमारा निवास स्थान उत्तम प्रकारसे सुरक्षित हो । हे (सुदानवः) उत्तम दान देनेवालो ! (नु यामन् प्र) आपका आगमन हमारा रक्षण करे । (ये नः अंहः अति पिप्रति) वे तुम हमें पापसे बचाओ ।

६	उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजान ईशते	५४९
७	प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशादसम्	५५०
८	राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये	५५१
९	ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि	५५२
१०	बहवः सूरचक्षसो ऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।	
	त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः	५५३

१ क्षयः सुप्रावीः अस्तु— हमारा निवास स्थान अत्यंत सुरक्षित हो। निवास स्थान, अपना घर, नगर, देश, राष्ट्र है। यह सब सुरक्षित होना चाहिये।

२ यामन् प्र आवीः अस्तु— आप वीरोंका आना ही हमारा संरक्षण करनेवाला है। जहां वीर होंगे वहां संरक्षण होगा।

३ नः अंहः अतिपिप्रति— आप वीरोंका आगमन हमारे पापोंको दूर करता है।

[६] (५४९) (ये अदितिः) जो मित्र आदि आदित्य और अदिति ये सब (अदब्धस्य व्रतस्य स्वराजः) न दबे व्रतके अधिष्ठाता हैं, वे (राजानः महः ईशते) अधिपति बडे धनके भी स्वामी हैं।

ये वीर ऐसे व्रतके प्रवर्तक हैं कि जो किसी शत्रुके द्वारा दबाया नहीं जा सकता। ये ही बडे धनके अधिपति हैं। जिन वीरोंके कर्म शत्रुसे मिटाये नहीं जाते वे ही वीर बडे ऐश्वर्यके स्वामी होते हैं। पर जिनके कर्म उनके शत्रु विनष्ट कर सकते हैं; उनको इस जगत्में ऐश्वर्य प्राप्त होना असंभव है।

[७] (५५०) (सूरे उदिते) सूर्यका उदय होनेके समय मित्र वरुण और (रिश-अदसं अर्यमणं वां) शत्रु नाशक अर्यमाकी (प्रति गृणीषे) प्रत्येककी स्तुति गाऊंगा।

[८] (५५१) (हिरण्यया राया) सुवर्णमय धनसे युक्त (इयं मतिः) यह मेरी बुद्धि (अवृकाय शवसे) अहिंसक बलके लिये हो। हे (विप्राः) ज्ञानियो! (इयं मेधसातये) यह मेरी बुद्धि यज्ञको सिद्ध करनेवाली हो।

१ हिरण्यया राया इयं मतिः अवृकाय शवसे— सुवर्ण आदि धन जिसके साथ पर्याप्त है, ऐसी यह हमारी बुद्धि हिंसारहित बलके कर्म करनेवाली हो। धन प्राप्त होनेपर कोई भी मनुष्य क्रूर कर्म न करे। घमंड करता हुआ दूसरोंका घात न करे।

२ इयं मतिः हिरण्यया राया मेधसातये— सुवर्ण आदि धनसे युक्त हुई हमारी बुद्धि यज्ञ करनेवाली बने, बुद्धि ज्ञानसे युक्त हुई, धन मिला, तो वह धन यज्ञके लिये अर्पण करना चाहिये।

[९] (५५२) हे देव मित्र तथा वरुण! (सूरिभिः सह ते स्याम) विद्वानोंके साथ हम आपके गुणगान करनेवाले हों। (इषं स्वः च धीमहि) हम अन्न और जल भी प्राप्त करेंगे।

मनुष्योंको उचित है कि वे सदा ज्ञानी विद्वानोंके साथ रहें, श्रेष्ठ वीरोंके काव्य गायें और खानपान प्राप्त करनेके कार्य करें।

[१०] (५५३) (बहवः सूरचक्षसः) बहुत सूर्यके सदृश तेजस्वी (अग्नि जिह्वाः ऋतावृधः) अग्नि जिनकी जिह्वा है ऐसे सत्य मार्गको बढाने-वाले मित्रादिक देव वीर (ये) जो (विश्वानि त्रीणि विदथानि) सब तीनों स्थानोंपर (परिभूतिभिः धीतिभिः येमुः) शत्रुका पराभव करनेके सामर्थ्यों-से नियमन करते हैं।

१ परिभूतिभिः धीतिभिः विश्वानि विदथानि येमुः— शत्रुका पराभव करनेके अनेक सामर्थ्योंसे वीर सब युद्ध स्थानोंपर नियमन करते हैं। वीर अपने शत्रुका पराभव करनेके सामर्थ्योंको बढाते हैं। और उनके द्वारा सब युद्धके स्थानोंपर अपना प्रभाव दिखाते हैं। जो वीर अपने अन्दर शत्रुका

११	वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम् । अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत	५५४
१२	तद् वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते । यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः	५५५
१३	ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः । तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः	५५६
१४	उदु त्यद् दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे । यदीमाशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम्	५५७

पराभव करनेका सामर्थ्य बढायेगा वही युद्धमें विजयी हो सकता है ।

१ **सूरचक्षसः अग्निजिह्वा ऋतावृधः**-- वीर सूर्यके समान तेजस्वी, अग्निज्वालाके समान जिव्हावाले उत्तम वक्ता और सत्यका संवर्धन करनेवाले हों, ऐसे वीर ही विजयी होंगे ।

[११] (५५४) (ये) जो (शरदं मासं) वर्ष, महिना, (आत् अहः) पश्चात् दिन (आत् अक्तुं यज्ञं च ऋचं) पश्चात् रात्रीको, यज्ञ और मन्त्रको (वि दधुः) धारण करते हैं । वे मित्र वरुण अर्यमा आदि वीर (राजानः) प्रकाशित होकर (अनाप्यं क्षत्रं आशत) अन्योंके लिये अप्राप्य बलको बढाते रहे ।

१ **' अनाप्यं क्षत्रं राजानः आशत '**--शत्रुके लिये प्राप्त होना कठीन ऐसा क्षात्र बल वीरोंको अपने अन्दर बढाना चाहिये ।

२ **शरदः, मासं, अहः, अक्तुं, ऋचं, यज्ञं विदधुः**- वर्ष महिना, दिन, रात्री, मंत्र और यज्ञ इनका धारण वीरोंको करना चाहिये । वीर समयानुसार कर्म करें, समयका पालन करें, मन्त्रोंको जानें और यज्ञ करें । ऐसे वीर बलवान होते हैं ।

[१२] (५५५) (सूरे उदिते सूक्तैः) सूर्यका उदय होनेके समय सूक्तोंसे (तत् अद्य मनामहे) उस धनकी आज हम प्रार्थना करेंगे (यत्) जिसको मित्र वरुण अर्यमा आदि (ऋतस्य रथ्यः यूयं) सत्यके पथ प्रदर्शक वीर (ओहते) धारण करते हैं ।

ऋतस्य रथ्यः यत् ओहते, तत् मनामहे- सत्यके पथ प्रदर्शक वीर जिसको धारण करते हैं उस धनको ही हम चाहेंगे ।

[१३] (५५६) (ऋतावानः ऋतजाताः) सत्यनिष्ठ सत्यके लिये प्रसिद्ध (ऋतावृधः अनृतद्विषः) सत्यको बढानेवाले और असत्यका द्वेष करनेवाले (घोरासः) बडे प्रभावी वीर आप हैं (तेषां वः) वैसे आपके (सुच्छर्दिष्टमे सुम्ने) उत्तम घरसे युक्त धनके अन्दर हम (सूरयः नरः स्याम) जो विद्वान तथा नेता हैं वे हों, वे हम रहें ।

सत्यनिष्ठ, सत्यके लिये जीवन देनेवाले, सत्यको बढानेवाले, असत्यका द्वेष करनेवाले, और शरीरसे घोर भयंकर ऐसे वीर हों । उनके द्वारा सुरक्षित घरमें हम रहें और उनके द्वारा सुरक्षित धन हमें मिले । हम भी ज्ञानी और नेता बने । उत्तम वीर नेताके ये विशेषण हैं ।

[१४] (५५७) (त्यत् दर्शतं वपुः) वह दर्शनीय शरीर-सूर्यमंडल (दिवः प्रतिह्वरे) द्युलोकके समीपके भागमें (उत् उ एति) उदित हो रहा है । (विश्वस्मै चक्षसे अरं) संपूर्ण विश्वके दर्शनके लिये समर्थ देवे इस सूर्यको (यत् ईं एतशः देवः आशु वहति) शीघ्रगामी अश्व चलाता है ।

१५	शीर्ष्णःशीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पतिं समया विश्वमा रजः । सप्त स्वसारः सुविताय सूर्यं वहन्ति हरितो रथे	५५८
१६	तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्	५५९
१७	काव्येभिरदाभ्या ऽऽ यातं वरुण द्युमत् । मित्रश्च सोमपीतये	५६०
१८	दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्रुहा । पिबतं सोममातुजी	५६१
१९	आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा । पातं सोममृतावृधा	५६२

[१५] (५५८) (शीर्ष्णः शीर्ष्णः) सबके मुख्य शिर स्थानीय (तस्थुषः जगतः पतिं) स्थावर जंगमके स्वामी (रथे सूर्यं) रथमें बैठे सूर्यको (सुविताय) विश्व कल्याणके लिये (विश्वं रजः समया) सब लोकोंके समीपसे (स्वसारः सप्त हरितः आ वहन्ति) बहिनें जैसी सात घोडियां चलाती हैं ।

यहां सात घोडियां सूर्यके रथको चलातीं हैं ऐसा कहा है । इससे पूर्व एक ही घोडा सूर्यके एक चक्र रथको चलाता है ऐसा कहा था (६३ सु. २ मं)।

[१६] (५५९) (तत् देवहितं शुक्रं चक्षुः) वह देवहित करनेवाला बलवान विश्वका आंख जैसा यह सूर्य (पुरस्तात् उत् चरत्) हमारे सामने उदित हो रहा है । (पश्येम शरदः शतं) उसे हम सौ वर्षतक देखते रहें, (शरदः शतं जीवेम) हम सौ वर्ष जीयें ।

सौ वर्ष जीयें और सौ वर्षतक हमारे आंख आदि इन्द्रिय कर्म करनेमें समर्थ रहें । यह सूर्य (देव-हितं) इन्द्रियोंका हित करनेवाला है । सूर्य प्रकाशसे सब इंद्रियाँ उत्तम अवस्थामें रहती हैं । इसी तरह पृथिवी, जल, वनस्पती, प्राणी, वायु आदि भी सूर्यके कारण उत्तम अवस्थामें रहते हैं । इसलिये सूर्यको देव हित कहते हैं ।

[१७] (५६०) हे (अदाभ्या) न दबनेवाले मित्र और वरुण देवो ! तुम (द्युमत्) तेजस्वी देव (सोमपीतये आयातं) सोमपान करनेके लिये आओ ।

(अदाभ्या) शत्रुसे न दबनेवाला और (द्युमत्) तेजस्वी ऐसे हमारे वीर हों ।

[१८] (५६१) हे (अद्रुहा) द्रोह न करनेवाले मित्र और वरुण ! और (ऋता वृधा) सत्यको बढानेवाले वीरो ! (दिवः धामभिः) द्युलोकके अपने स्थानोंसे (आ यातं) आओ और (आतुजी) शत्रुका नाश करते हुए (सोमं पिबतं) सोमरसका पान करो ।

वीर (अद्रुहः) द्रोह न करनेवाले हों । (ऋता वृधा) सत्यको बढानेवाले हो और (आतुजी) शत्रुका नाश करनेवाले हों ।

[१९] [५६२) हे (ऋतावृधा) सत्यको बढानेवाले (मित्रा वरुणा) मित्र और वरुणो ! हे (नरा) नेताओ ! (आहुतिं जुषाणो) आहुतिका स्वीकार करते हुए (आ यातं) आओ और (सोमं पातं) सोमरसका पान करो ।

वीर सत्यका पालन करें, (नरा) नेता हों, लोगोंको सन्मार्गसे ले जांय । ऐसे वीरोंका सत्कार करना योग्य है ।

॥ यहां मित्रावरुण प्रकरण समाप्त ॥

[६] आश्विनौ-प्रकरण

(६७) १० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ प्रति वां रथं नृपती जरध्यै हविष्मता मनसा यज्ञियेन ।
यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीगरच्छा सूनुर्न पितरा विवक्मि ५६३

२ अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे उपो अदृश्रन् तमसश्चिदन्ताः ।
अचेति केतुरुषसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ५६४

३ अभि वां नूनमाश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान् ।
पूर्वीभिर्यातं पथ्याभिरर्वाक् स्वर्विदा वसुमता रथेन ५६५

---

[१] (५६३) हे नृपती ! जनताके पालक (धिष्ण्यो) एवं बुद्धिमान अश्विदेवो ! (यज्ञियेन हविष्मता मनसा) पवित्र तथा अन्न दानमें रत ऐसे अपने मनसे (वां रथं प्रति जरध्यै) तुम्हारे रथका वर्णन मैं करूंगा। (यः वां दूतः न अजीगः) जो तुम्हें दूतके समान जगा चुका है, बुला चुका है (सूनुः पितरा न) पुत्र पिताके सामने जैसा बोलता है, उसी प्रकार (अच्छ विवक्मि) तुम्हारे सन्मुख वह मैं विशेष स्पष्ट रीतिसे अपना भाव बोलता हूं। अपना मनोगत प्रकट करता हूं।

१ नृपती धिष्ण्यौ—मनुष्योंका पालन करनेवाले अत्यंत (धी-सनौ) बुद्धिमान होने चाहिये। बुद्धिहीनोंसे राष्ट्रका पालन अच्छी तरह नहीं हो सकता।

२ यज्ञियेन हविष्मता मनसा अच्छ विवक्मि-पवित्र सत्कार करने योग्य तथा अन्न दानमें तत्पर मनसे, अर्थात् शुद्ध मनसे मैं बोलता हूं। शुद्ध मनसे मनुष्योंको वार्तालाप करना चाहिये।

३ सूनुः पितरा न विवक्मि-पुत्र पिताके सन्मुख जैसा बोलता है, वैसा ही मैं प्रभुके, राजाके या अधिकारियोंके सामने बोलता हूं। क्यों कि मेरा मन पवित्र है।

४ दूतः अजीगः—दूत जगाता है। दूतका कर्तव्य है कि वह स्वामीको योग्य कर्तव्यकी सूचना समय पर दे।

[२] (५६४) (अस्मे समिधानः अग्निः अशोचि) हमारे लिये प्रज्वलित हुआ अग्नि जगमगा रहा है। (तमसः अन्ताः चित् उप अदृश्रन्) अन्धकारका अन्तिम भाग दिखाई दे रहा है। अन्धकार समाप्त हो रहा है। (दिवः दुहितुः उषसः पुरस्तात्) द्युलोककी पुत्री उषाके सामने (जायमानः केतुः) प्रकट होनेवाला यह ध्वजरूपी सूर्य (श्रिये अचेति) शोभारूप प्रकाशके लिये प्रकट हो रहा है।

भगवा ध्वज

इस समय उदय कालका यह सूर्य आरक्त वर्ण होता है, इसको 'केतु' (ध्वज) कहा है। इससे ध्वज भगवा है यह सिद्ध होता है। यह ध्वज आकाशमें फहराया जा रहा है, इससे शत्रुरूप अन्धकार दूर होता है। भगवे ध्वजका यह प्रभाव है कि वह ऊपर फहरने लगते ही शत्रु दूर भागते हैं।

[३] (५६५) हे (नासत्या अश्विना) हे असत्यका कभी आश्रय न करनेवाले अश्विदेवो ! (विवक्वान् सुहोता) उत्तम रीतिसे बोलनेवाला उत्तम बुलानेवाला होता (वां अभि) आपके सामने (नूनं स्तोमैः सिषक्ति) निश्चयपूर्वक स्तोत्रोंसे आपकी सेवा करता है। (वसुमता स्वर्विदा रथेन) धनवाले प्रकाशमान रथसे (पूर्वीभिः पथ्याभिः यातं) प्रथम निश्चित हुए मार्गोंसे ही आगे बढो।

४ अवोर्वां नूनमश्विना युवाकुर्हुवे यद् वां सुते माध्वी वसूयुः ।
आ वां वहन्तु स्थविरासो अश्वाः पिबाथो अस्मे सुषुता मधूनि ५६६

५ प्राचीमु देवाश्विना धियं मे ऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुम् ।
विश्वा अविष्टं वाज आ पुरंधीस्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः ५६७

---

१ **नासत्या**— (न अ-सत्यौ) —असत्यका आश्रय कभी न करनेवाले । उन्नति चाहनेवाला असत्यका आश्रय कभी न करे ।

१ **विवक्वान् सु होता**—जो विशेष उत्तम वक्ता होगा वह बुलानेका कार्य करे । बडे लोगोंको बुलानेके कार्यके लिये उत्तम वक्ता नियुक्त किया जावे ।

३ **वसुमता स्वर्विदा रथेन पूर्वीभिः पथ्याभिः यातं**- रथमें धन हो, सुखके सब साधन हों, रथ चालकको मार्गका उत्तम पता हो, तथा सारथी उस मार्गसे रथ ले जावे कि जिसमें पहिले वह गया हो, अथवा अन्य रीतिसे उसको मार्गका पता हो । मार्गकी कठिनताका ठीक तरह ज्ञान न होनेकी अवस्थामें साहससे रथ न चलावे ।

[४] (५६६) हे (माध्वी अश्विना) मधुरभाषी अश्विदेवो ! (नूनं अवोः वां युवाकुः) निश्चय ही तुम रक्षण कर्ताओंके साथ सम्बन्ध रखनेवाला मैं (यत् वसूयुः) जब धनकी कामना करता हुआ (सुते वां हुवे) इस सोमयागमें तुम्हें बुलाता हूँ; तुम्हारे (स्थविरासः अश्वाः) वृद्ध घोडे (वां आवहन्तु) तुमको यहां ले आवें, और यहां आकर (अस्मे) हमारे बनाये (सुसुताः मधूनि पिबाथः) भली भान्ति निचोडे हुए मीठे सोमरसका पान करें ।

[५] (५६७) हे (शचीपती देवा अश्विना) शक्तिके अधिपति अश्विदेवो ! (मे वसूयुं) मेरी धनकी कामना करनेहारी (अ मृध्रां प्राचीं धियं) अहिंसित सरल बुद्धिको (सातये कृतं) धन प्राप्तिके लिये योग्य बना दो । (वाजे) युद्धमें (विश्वाः पुरन्धीः आविष्टं) सब प्रकारकी बुद्धियोंका पूर्णतया रक्षण करो, (ता) तुम दोनों (शचीभिः नः शक्तं) अपनी शक्तियोंसे हमें सामर्थ्यवान् बना दो।

१ **अश्विनौ**—अश्व जिनके पास होते हैं। जिनके पास अच्छे घोडे होते हैं। अश्वारूढ । ये दो देव हैं। इनका मुख्य कार्य रोग दूर करना और आरोग्य प्राप्त करा देना है। इनमें एक औषधि प्रयोग करनेवाला और दूसरा शस्त्र क्रिया करनेवाला है। ये दोनों चिकित्सा करते हैं। ये ' **शची पती** ' शक्तिके अधिपति हैं। रोग दूर करके आरोग्य और बल देनेकी शक्ति इनके पास सदा सिद्ध रहती है ।

२ **वसूयुं अ-मृध्रां प्राचीं धियं सातये कृतं**— धन प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाली हिंसा रहित सरल बुद्धिको धन प्राप्त करने योग्य बनाओ । **'वसु-यु'** -धनके साथ संयुक्त होना हरएक चाहता है। हरएक धनी बनना चाहता है। उसके साथ दो मार्ग आते हैं। एक दूसरेकी (मृध्रा) हिंसा करके, लूटमार करके दूसरोंको कष्ट देकर धन प्राप्त करनेका हिंसाका मार्ग । दूसरा मार्ग अहिंसाका है । सन्मार्ग तथा सद्व्यवहारसे धन प्राप्त करना । धनेच्छु मनुष्यके पास ये दो मार्ग आते हैं। हिंसाका मार्ग प्रलोभनीय है, जो उससे जाते हैं वे फंसते हैं। यह मंत्र कहता है कि (अ-मृध्रां प्राचीं धियं) हिंसा रहित सरलताके व्यवहारका सन्मार्ग आचरण करना चाहिये । अपनी बुद्धि और कर्मशक्तिको इस अहिंसामय सन्मार्गपरसे जानेके लिये प्रवृत्त करना चाहिये । इस मार्गसे जाकर (सातये कृतं) धन प्राप्ति करनेके लिये मनुष्यको प्रवृत्त करना चाहिये ।

३ **वाजे विश्वाः पुरन्धीः आविष्टं**—युद्धमें सब प्रकारकी नगर संरक्षण करनेकी बुद्धिका संरक्षण करो। **' पुरं धीः '**- नगरका संरक्षण करनेकी बुद्धि और तदनुकूल कर्म । आत्मसंरक्षक बुद्धिपूर्वक कर्म; इस बुद्धिका संरक्षण होना चाहिये ।

४ **शचीभिः नः शक्तं**— अपनी शक्तियोंसे हमें सामर्थ्यवान् बनाओ । हमारे अन्दर जो शक्तियां हैं वे बढें और उनसे हम महा सामर्थ्यवान बनें । क्योंकि सामर्थ्यवान् बननेसे ही धन आदिकी प्राप्ति हो सकती है ।

६	अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद् रेतो अह्वयं नो अस्तु ।	
	आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम	५६८
७	एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे ।	
	अहेळता मनसा यातमर्वागश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु	५६९
८	एकस्मिन् योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात् ।	
	न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहन्ति	५७०

[६] (५६८) हे अश्वि देवो! (आसु धीषु नः अविष्टं) इन बुद्धियों और कर्मोंमें हमें सुरक्षित रखो। (नः प्रजावत् रेतः अ-ह्वयं अस्तु) हमारा सुसन्तान उत्पन्न करनेवाला वीर्य क्षीण न हो। (वां तोके तनये तूतुजानाः) तुम्हें पुत्र पौत्रोंके सुख संवर्धनके लिये प्रवृत्त करते हुए (सुरत्नासः) उत्तम रत्नोंको धारण करके हम (देव वीतिं आ गमेम) देवोंकी पवित्रताको हम प्राप्त करें।

१ **धीषु नः अविष्टं**— हम बुद्धियुक्त कर्म, बुद्धिपूर्वक कर्म, बुद्धिसे नियोजनापूर्वक कर्म कर रहे हैं। इन कर्मोंको करनेके समय हमारी सुरक्षा होनी चाहिये। कर्म करनेके समय ही हमारा नाश नहीं होना चाहिये। कर्मोंका फल प्राप्त होना चाहिये। इसलिये हमारी सुरक्षा होनी चाहिये।

२ **नः प्रजावत् रेतः अह्वयं अस्तु**— हमारा सुप्रजा उत्पन्न करनेमें समर्थ, संस्कारोंसे शुभ संस्कार संपन्न, वीर्य कभी व्यर्थ विनष्ट न हो, कभी क्षीण न हो। वह सदा सुरक्षित रह कर सुप्रजा उत्पन्न करे।

३ **तोके तनये तूतुजानाः**— पुत्र पौत्रोंके सुख संवर्धनके लिये तुम्हें त्वराके साथ प्रवृत्त हम कर रहे है। यह कार्य राष्ट्रमें त्वरासे होना चाहिये इसलिये सबको प्रयत्नवान् होना चाहिये।

४ **सु-रत्नासः**— उत्तम रत्नोंको हम स्वयं धारण करेंगे और अन्योंको भी धारण करायेंगे।

५ **देववीतिं आगमेम**— देवोंकी पवित्रताको हम प्राप्त करेंगे, देवोंका सत्कार जहां होता है वहां हम जायगे। देवत्वकी प्राप्ति करेंगे।

[७] (५६९) हे (माध्वीः) मधुर भाषण कर्ता अश्विदेवो! (अस्मे रातः एषः स्यः निधिः) हमने दिया हुआ यह वह भण्डार (वां सख्ये) तुम्हारी मित्रताके लिये (पूर्व-गत्वा इव हितः) अग्रगामी वीरके समान तुम्हारे आगे रखा है। (मानुषीषु विक्षु) मानवी प्रजाओंमें (हव्यं अश्नन्ता) अन्नभागका सेवन करते हुए तुम (अहेळता मनसा) क्रोध रहित मनसे (अर्वाक् आ यातं) हमारे समीप आ जाओ।

[८] (५७०) हे (भुरणा) भरणपोषण करनेवाले अश्विदेवो! (एकस्मिन् समाने योगे) एक समान अवसरपर (वां रथः) तुम्हारा रथ (सप्त स्रवतः) सात बहनेवाले स्रोतोंके भी आगे (परि गात्) बढ जाता है। (ये तरणयः वां धूर्षु वहन्ति) जो तारण करनेवाले घोडे हैं वे (धुराओंमें तुम्हें) ढोते हैं। वे (सुभ्वः देवयुक्ताः) उत्कृष्ट ढंगसे उत्पन्न देवोंके द्वारा जोते होनेके कारण (न वायन्ति) नहीं थकते हैं।

अश्विदेवोंका रथ चिकित्साका कार्य करनेके लिये सप्त नदियोंके भी पार जाता है। यहां '**तरणयः**' पद है। इसका अर्थ घोडे ऐसा नहीं है। जलमें तैरनेवाले कोई प्राणी होंगे जो जलमें चलनेवाली नौकाको जोडते होंगे, अथवा ये प्राणी भी नहीं होंगे। कदाचित् ये दूसरे कोई साधन होंगे। अश्विदेवोंके रथको (रासभ) गधे जोते जाते हैं ऐसा अन्यत्र मंत्रमें कहा है। खच्चर भी जलमें तैरनेवाला नहीं है। इसलिये '**तरणयः**' पदसे घोडे और खच्चरसे विभिन्न कोई साधन लेने चाहिये। 'तरणयः' का अर्थ 'तैरनेके साधन' ऐसा है। ये (न वायन्ति) थकते नहीं ऐसा भी कहा है। न थकना तो यन्त्रके लिये ही हो सकता है। प्राणी कितना भी बलवान हुआ तो भी वह अधिक परिश्रमसे अवश्य-थकेगा ही। (**तरणयः सु-भ्वः**

९ असश्चता मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति ।
प्र ये बन्धुं सूनृताभिस्तिरन्ते गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या मघानि ५७१

१० नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५७२

(६८) ९ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । आश्विनौ । विराट्; ८-९त्रिष्टुप् ।

१ आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः ।
हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ५७३

२ प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुररं गन्तं हविषो वीतये मे ।
तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ५७४

देवयुक्ताः न वायन्ति) तैरनेके साधन अच्छे बने उत्तम कारीगरोंसे जोडे हैं इस लिये वे थकते नहीं । ये यंत्रके साधन ही होंगे, ऐसी हमारी संमति है ।

[९] **(५७१) (ये गव्याः अश्व्याः) जो गायों और घोडोंसे परिपूर्ण (मघानि पृञ्चन्तः) ऐश्वर्यों-का दान करते हुए— (बन्धुं सूनृताभिः प्रतिरन्ते) बन्धुको मधुर वाणीसे दान देते हैं, और (राया मघदेयं जुनन्ति) धनसे युक्त होकर धनका दान करनेके लिये प्रेरित करते हैं, ऐसे उन (मघवद्भ्यः) वैभवशाली लोगोंके लिये (असश्चता हि भूतं) दूसरी जगह न जानेवाले बनो । अर्थात् उनके घर जाओ ।**

१ गव्याः अश्वयाः मघानि पृञ्चन्तः)—गायों, घोडों और धनोंका बहुत दान करो ।

१ बन्धुं सूनृताभिः प्रतिरन्ते— अपने बान्धवोंके साथ मधुर भाषण करते जाओ । क्रुद्ध भाषण न करो ।

३ राया मघदेयं जुनन्ति मघवद्भ्यः असश्चता भूतं—जो धनसे युक्त हो कर धनका दान करते हैं, उन दानियोंको छोड कर दूसरी जगह न जाओ । उनके पास ही जाओ ।

[१०] **(५७२ हे) (युवाना अश्विनौ) तरुण अश्विदेवो ! (मे हवं आ शृणुतं) मेरी प्रार्थना सुनो । (इरावत् वर्तिः यासिष्टं) जिसमें अन्न है उसी घरमें जाओ । (रत्नानि धत्तं) रत्नोंको धारण करो । (सूरीन् जरतं) विद्वानोंकी सराहना करो । (स्वस्तिभिः यूयं सदा नः पातं) कल्याण करनेके साधनोंसे सदा हमारी सुरक्षा करो ।**

जहां पर्याप्त अन्न है और जहां दाता है वहीं जाओ । स्वयं रत्नोंका धारण करो । और दूसरोंको दे दो । सच्चे ज्ञानियोंकी प्रशंसा करो । कल्याण करनेके साधनोंसे अपनी सुरक्षा करो ।

[१] **(५७३) हे (शुभ्रा स्वश्वा दस्रा) श्वेत-वर्णवाले अच्छे घोडोंवाले शत्रुनाशक अश्विदेवो ! (युवाकोः गिरः जुजुषाणा) तुम्हारी सेवा करने-वालेको भाषणोंको आदर पूर्वक सुनते हुए (आयातं) यहां आओ ((नः प्रतिभृता) हमारे इकट्ठे किये हुए (हव्यानि वीतं) हविर्भागका सेवन करो ।**

[२] **(५७४) (वां मद्यानि अन्धांसि प्र अस्थुः) तुम्हारे लिये आनन्द वर्धक अन्न रखे गये हैं । (मे हविषः वीतये) मेरे हविष्यान्नके आस्वाद लेनेके लिये (अरं गन्त) सीधे यहां आओ । (अर्यः तिरः) शत्रुओंको दूर हटा दो (नः हवनानि श्रुतं) हमारे बुलावोंको सुन लो ।**

हर्षवर्धक अन्नका सेवन करो, उससे अपना बल बढाओ और शत्रुओंको दूर हटादो । शत्रुको दूर करना यह मुख्य कर्तव्य है, इसके लिये उद्यत रहना हरएकका आवश्यक कर्तव्य है ।

३ प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः ।
अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ५७५

४ अयं ह यद् वां देवया उ अद्रिरूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद् युवभ्याम् ।
आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः ५७६

५ चित्रं ह यद् वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम् ।
यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ५७७

६ उत त्यद् वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।
अधि यद् वर्प इतऊति धत्थः ५७८

७ उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः समुद्रे ।
निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः ५७९

---

[३] (५७५) हे (सूर्यावसू) सूर्यको बसानेवाले अश्विदेवो! (वां मनोजवाः रथः शतोतिः) आपका मनके समान वेगवान् रथ सैंकडों संरक्षणके साधनोंसे युक्त है। वह (अस्मभ्यं इयानः) हमारे पास आता है और (रजांसि तिरः प्र इयर्ति) धूलीके प्रदेशोंको दूर रखकर आता है।

रथका वेग अच्छा हो, शीघ्र गतिसे दौडे और उसमें सेकडों संरक्षणके साधन भरपूर रहें।

[४] (५७६) (अयं सोमसुत् अद्रिः ह) यह सोमका रस निचोडनेवाला पत्थर (यत् ऊर्ध्वः देवया) जब ऊंचे पदपर-सोमपर-आरूढ होकर देवोंकी ओर प्रवृत्त होता है तव (वां उ युवभ्यां विवक्ति) आप दोनोंकी ओर लक्ष्य देकर विशेष प्रकारका शब्द करता है, तब (विप्रः वल्गू) ज्ञानी याजक सुन्दर रूपवाले तुम्हें (हव्यैः आ ववृतीत) हवनीय अन्नोंसे अपनी ओर आकर्षित करता है।

यज्ञमें सोम कूटनेका पत्थर जब सोम कूटने लगता है तब उसका एक प्रकारका शब्द होता है। वह शब्द मानो देवोंको बुलानेके लिये ही होता है।

[५] (५७७) (यत् वां चित्रं भोजनं अस्ति) जो तुम दोनोंका विलक्षण अन्न रूप दान है, जो (अत्रये महिष्वन्तं नियुयोतं) अत्रिकी शक्ति बढानेके लिये तुमने दिया था। (यः प्रियः सन्) वह तुम्हारा प्रिय था इस लिये (वां ओमानं दधते) तुम्हारे सुखदायक आश्रयसे रहता है।

अत्रि ऋषि असुरोंके कारावासमें रहनेके कारण बहुत कृश हुआ था, उसको बलवान और पुष्ट बनानेके लिये अश्विदेवोंने एक प्रकारका विलक्षण पुष्टिकारक अन्न दिया था, जिससे अत्रि ऋषि फिरसे बलवान् बने और कार्य करनेमें समर्थ हुए। वैद्योंको ऐसे पौष्टिक अन्न बनाने चाहिये।

[६] (५७८) (उत अश्विना) और हे अश्विदेवो! (हविर्दे जुरते च्यवनाय) हवि देनेवाले वृद्ध च्यवन ऋषिके लिये (वां त्यत् प्रतीत्यं भूत) तुम्हारा वह उसके पास जाना हितकारक सिद्ध हुआ, (यत्) जो कि (इत ऊती वर्पः) इस मृत्युसे संरक्षण देनेवाला रूप तुमने उसे (अधि धत्थः) दे दिया।

च्यवन ऋषि अति वृद्ध हुआ था, उसके पास अश्विदेव गये, और उनको पौष्टिक अन्न, जो च्यवनप्राश नामसे आयुर्वेदमें प्रसिद्ध है, दिया और उसको पुनः तारुण्य दिया।

[७] (५७९) (उत अश्विना) और हे अश्विदेवो! (त्यं भुज्युं) उस भुज्युको (दुरेवासः सखायः) बुरी चालवाले उसके मित्र उसे (समुद्रे मध्ये जहुः) समुद्रके मध्यमें छोड चुके थे (यः युवाकुः अरावा) जो तुम्हारे पास सहायार्थ आने

८ वृकाय चिज्जसमानाय शक्तमुत श्रुतं शयवे हूयमाना ।
यावघ्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः ५८०

९ एष स्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे बुधान उषसां सुमन्मा ।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५८१

(६९) ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान् ५८२

लगा था, इतनेमें (ईं निः पर्षत्) उसे तुम पूर्णतया पार ले चलो और सुरक्षित स्थानपर तुमने उसे पहुंचा दिया था ।

राज पुत्र भुज्यु समुद्रमें डूब रहा था, उसको अश्विदेवोंने समुद्रसे उठाया और उसे समुद्रके पार उसके घर पहुंचा दिया ।

[८] (५८०) हे अश्विदेवो ! (जसमानाय वृकाय चित्) क्षीण होनेवाले वृकके हितके लिये तुम शक्तिका दान देनेमें (शक्तं) समर्थ हुए, (उत) और (हूयमाना शयवे श्रुतं) बुलानेपर शयुका हित करनेके लिये उसकी प्रार्थना तुमने सुनी थी । (यौ शचीभिः शक्ती) जो तुम दोनों अपनी शक्तियोंसे समर्थ होनेके कारण (स्तर्यं अघ्न्यां) वन्ध्या गायको भी (अपः न) जलके समान (अपिन्वतं) दूध देनेवाली दुधारू बना चुके ।

अश्विदेवोंने वृककी सहायता की, शयुकी प्रार्थना सुनी और वन्ध्या गौको दुधारू बना दिया ।

[९] (५८१) (स्यः एषः सुमन्मा कारूः) वह यह उत्तम मननशील कारीगर (उषसां अग्रे बुधानः) उषः कालके पहिले जागृत होकर (सूक्तैः जरते) सूक्तोंसे प्रार्थना करता है । (अघ्न्या पयोभिः इषा तं वर्धत्) गौ दूधसे और अन्नसे उसको बढाती है । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें कल्याणकारक साधनोंसे सदा सुरक्षित रखो ।

कारीगर उषः कालके पूर्व उठे और अपने इष्ट देवकी उपासना करे । जो क्षीण होते हैं उनको गौ अपने दूधसे पुष्ट करती है । इसलिये मनुष्य गौका दूध पीये ।

[१] (५८२) (वां हिरण्ययः) तुम्हारा सुवर्णमय (घृतवर्तनिः) घृतको मार्गमें देनेवाला, (पविभिः रुचानः) आरोंसे जगमगाता हुआ (इषां वोळ्हा) अन्नोंको पहुंचानेवाला, (वाजिनीवान् नृपतिः) सेनासे युक्त नरेश जैसा (रोदसी बद्बधानः) आकाश और पृथिवीको अपने शब्दसे निनादित करता हुआ (वृषभिः अश्वैः आ यातु) बलिष्ठ घोडोंसे चलाया जानेवाला इधर आ जाय ।

चिकित्सकका रथ सुवर्णसे सुशोभित हो, उत्तम वर्णवाला हो, घी तथा पौष्टिक अन्न उसमें भरपूर हो, जो रोगियोंको देनेसे उनकी पुष्टी हो सकती हो, ऐसा रथ शीघ्रगतिसे हमारे पास आजाय और हमें नीरोग करे ।

इस वर्णनसे ऐसा प्रतीत होता है कि अश्विदेवोंका रथ नाना प्रकारके औषधियोंसे मिश्रित घृत, तथा पौष्टिक अन्नोंसे तथा चिकित्साके साधनोंसे भरपूर भरा था । अश्विदेव इस रथमें बैठकर स्थान स्थानपर जाते थे और उनकी चिकित्सा करते थे और उनको पौष्टिक अन्न देते थे । रोगियोंको उनके दवाखानेमें आनेकी आवश्यकता नहीं थी । इनका रथ ही रोगीके स्थानपर जाता था । और रोगीकी चिकित्सा करता था । यह सुविधा थी । अश्विदेवोंका कार्यालय किसी स्थानपर होगा, पर उनके रथ जगतमें घूमते थे और रोगियोंको आरोग्य देते थे ।

(रोदसी बद्बधानः) उनका रथ बडा शब्द करता हुआ आकाशको भर देता था । यह शब्द इसलिये किया जाता था कि रोगियोंको मालुम हो कि चिकित्सकका रथ आरहा है । रोगी तैयार रहे और लाभ उठावे ।

२	स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः ।	
	विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चिद् याममश्विना दधाना	५८३
३	स्वश्वा यशसा यातमर्वाग् दस्रा निधिं मधुमन्तं पिबाथः ।	
	वि वां रथो वध्वा यादमानो ऽन्तान् दिवो बाधते वर्तनिभ्याम्	५८४
४	युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।	
	यद् देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात्	५८५
५	यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।	
	तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन्	५८६
६	नरा गौरेव विद्युतं तृषाणा ऽस्माकमद्य सवनोप यातम् ।	
	पुरुत्रा हि वां मतिभिर्हवन्ते मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः	५८७

[२] (५८३) हे अश्विदेवो ! (कुत्रचित् यामं दधाना) कहीं भी यात्राका आरंभ करते हुए (येन देवयन्तीः विशः गच्छथ) जिसपरसे तुम देवोंकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली प्रजाओंके समीप जाते हो, (सः त्रिवन्धुरः) वह तीन सुन्दर लट्टोंसे युक्त (पञ्च भूमा पप्रथानः) पांचोंको विस्तृत स्थान देनेवाला (मनसा युक्तः अभि यातु) मनके इशारेसे चलनेवाला तुम्हारा रथ तुम्हें लेकर यहां आ जावे ।

यह रथ पांच बैठनेवालोंको विस्तृत स्थान देता है। इसमें तीन बैठकें है, और मनके संकेतसे जहां चाहे वहां जाता है ।

[३] (५८४) हे (दस्रा) शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो! (स्वश्वा यशसा अर्वाक् आ यातं) उत्तम घोडोंको जोत कर यशके साथ हमारे समीप आओ । यहां आकर (मधुमन्तं निधिं पिबाथः) मीठा सोमरस पीओ । (वां रथः वध्वा यादमानः) आपका रथ वधुके साथ आगे बढता है और (वर्तनिभ्यां दिवः अन्तान् विबाधते) पहियोंसे आकाशके अन्तिम विभागोंको विशेष रूपसे आन्दोलित करता है ।

[४] (५८५) (सूरः दुहिता योषा) सूर्यकी पुत्री तरुणी उषा (परि तक्म्यायां) रात्रीके समय (युवोः श्रियं परि अवृणीत) तुम्हारी शोभाको बढानेवाले रथपर बैठ गयी। (यत् देवयन्तं शचीभिः अवथः) देवोंको चाहनेवालेको अपनी शक्तियोंसे तुम सुरक्षित रखते हैं ।

सूर्यकी पुत्री अश्विदेवोंके रथपर बैठती है ऐसा वर्णन वेदमें अन्यत्र भी है । विशेष कर विवाह सूक्तमें है। (ऋ. १०।८५)। 'देवयन्' स्वयं देव बननेकी इच्छावाला। देवके गुणोंको अपने अन्दर धारण करनेवाला । नरका नारायण बननेकी इच्छावाला । इस तरह अपनी उन्नति चाहनेवाले पुरुषकी अश्विदेव (शचीभिः अवथः) अपनी अनेक शक्तियोंसे सुरक्षा करते हैं । अर्थात् उन्नतिका प्रयत्न करनेवालेकी सुरक्षा होती है, वैसी उन्नत्यर्थ प्रयत्न न करनेवालेकी सुरक्षा नहीं होती ।

[५] (५८६) हे (रथिरा) रथमें बैठनेवाले वीरो ! (यः वां स्यः रथः) जो तुम्हारा वह रथ (युजानः वर्तिः परियाति) घोडोंके साथ जोतनेपर मार्गसे घरको पहुंचता है, (तेन) उस रथसे, हे अश्विदेवो ! (उषसः व्युष्टौ) उषाके प्रकट होनेपर (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (नः शं योः नि वहतं) हमारे लिये शान्तिकी प्राप्ति और दुःख वियोग कराओ।

हमें शान्ति सुख चाहिये और हमारे दुःख दूर होने चाहिये।

[६] (५८७) हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (अद्य अस्माकं सवना उपयातं) आज हमारे यज्ञके पास आ जाओ। (तृषाणा विद्युतं गौरा इव) और

७ युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्रिधानैः।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ५८८

८ नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत्।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५८९

(७०) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। अश्विनौ। त्रिष्टुप्।

१ आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत् स्थानमवाचि वां पृथिव्याम्।
अश्वो न वाजी शुनः पृष्ठो अस्थादा यत् सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम् ५९०

२ सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठा ऽतापि घर्मो मनुषो दुरोणे।
यो वां समुद्रान् त्सरितः पिपर्त्येतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः ५९१

प्यासे तुम दोनों चमकनेवाले सोमरसको गौर मृगके तुल्य जल्दी जल्दी पी जाओ। (वां पुरुत्रा हि) तुम दोनोंको सचमुच अनेक स्थानोंपर (मतिभिः हवन्ते) बुद्धिपूर्वक बुलाते हैं। (अन्ये देवयन्तः) दूसरे देव बननेकी इच्छा करनेवाले लोग (वां मा नियमन्) आपको वहीं न रोक रखें।

[७] (५८८) हे आश्विदेवो! (समुद्रे अवविद्धं भुज्युं) समुद्रमें गिरे हुए भुज्युको (युवं) तुम दोनों (अस्रिधानैः अश्रमैः अव्यथिभिः) क्षीण न होनेवाले, जिनमें श्रम नहीं होते और जिनमें बैठनेसे कष्ट नहीं होते ऐसे (पतत्रिभिः) पक्षीके समान उडनेवाले विमानोंसे और (दंसनाभिः पारयन्ता) क्रियाओंसे पार करनेवाले (अर्णसः उत् ऊहथुः) समुद्रके जलसे ऊपर उठाकर पहुंचा चुके।

भुज्यु समुद्रमें गिरा था, अश्विदेवोंने उसे समुद्रसे ऊपर उठाया, अपने पक्षी सदृश विमानोंमें उसे विठलाया और समुद्रके पार उसके घर पहुंचाया।

[८] (५८९) यह मंत्र ५७२ इस क्रमांकमें है वहीं उसका अर्थ पाठक देखें।

[१] (५९०) हे (विश्ववारा अश्विना) सबसे श्रेष्ठ अश्विदेवो! (पृथिव्यां वां तत् स्थानं) पृथिवी पर तुम दोनोंका वह स्थान (प्र अवाचि) बडा प्रशंसित हुआ है। वहांसे (नः आगतं) हमारे पास आओ, और (यत् ध्रुवसे योनिं न आ सेदथुः) इस आसनपर स्थिर बैठनेके लिये, अपने निज स्थानपर बैठनेके समान, तुम बैठो, वह स्थान (शुनः पृष्ठः वाजी अश्वः न) जिसकी पीठपर बैठना सुखदायी हो ऐसे बलिष्ठ घोडे के समान यहां (अस्थात्) रखा है। यहां बिछाया है।

[२] (५९१) (सा चनिष्ठा सुमतिः) वह वर्णनीय अच्छी बुद्धि (वां सिषक्ति) आपकी सेवा करती है। (मनुषः दुरोणे) मानवके घरमें (घर्मः अतापि) अग्नि प्रदीप्त हुआ है। (यः सुयुजा युजानः) जो उत्तम जोते जानेवाले (एतग्वा चित्) घोडेके समान (वां) तुम्हारे समीप जाता है और (समुद्रान् सरितः पिपर्ति) समुद्रों और नदियोंको पूर्ण करता है।

याजकोंकी उत्तम बुद्धि स्तोत्र पाठसे अश्विदेवोंकी सेवा कर रही है। अग्नि प्रदीप्त हुआ है, यज्ञ शुरू हुआ है। वह यज्ञ अश्विदेवोंके पास हवि पहुंचता है और वे संतुष्ट हुए देव वृष्टी द्वारा नदियोंको भर देते हैं जो नदियां समुद्रको मिलती हैं।

७ इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५९६

अनुवाक पांचवाँ [अनुवाक ५५ वाँ]

(७१) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम् ।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद् युयोतम् ॥ ५९७

२ उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन वाममश्विना वहन्ता ।
युयुतमस्मदनिराममीवां दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः ॥ ५९८

३ आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु ।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैराश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ॥ ५९९

[७] (५९६) (वृषणा) बलवान् अश्विदेवो ! (इयं मनीषा) यह हमारी इच्छा है, (इयं गीः) यह हमारी वाणी है, (इमां सुवृक्तिं जुषेथां) इस सुन्दर स्तुतिका तुम स्वीकार करो। क्योंकि (युवयूनि) तुम्हारी कामना पूर्ण करनेवाले (इमा ब्रह्माणि अग्मन्) ये स्तोत्र प्रचालित हुवे हैं। (नः सदा यूयं स्वस्तिभिः पातं) हमारा सदा तुम कल्याण करनेके साधनोंसे संरक्षण करो।

[१] (५९७) (नक्) रात्री (स्वसुः उषसः अपाजिहीते) अपनी बहन उषासे दूर हटती हैं। (अरुषाय) लाल रंगवाले सूर्यके लिये (कृष्णीः पन्थां रिणक्ति) काली रात्री मार्ग खुला कर देती है। (अश्वामघा गोमघा वां हुवेम) घोडों और गौओंके रूपमें वैभवको देनेवाले (वां हुवेम) आपको हम बुलाते हैं। (दिवा नक्तं शरूं अस्मत् युयोतं) दिन रात घातक शत्रुको हमसे दूर कर दो।

उषासे रात्री पृथक् होती है, रात्रीसे सूर्यके लिये मार्ग खुला किया जाता है और वह अन्धकारको दूर करके दिनको प्रवृत्त करता है, गौवों और घोडोंके रूपमें वैभव प्राप्त होकर निर्धनता दूर होती है, उस तरह हमारे शत्रु हमसे दूर हों और हम निर्भय होकर उन्नत होते रहें।

[२] (५९८) हे (माध्वी) मीठे स्वभाववाले अश्विदेवो ! (रथेन वामं वहन्ता) रथसे सुन्दर धन या अन्न लेकर (दाशुषे मर्त्याय उप आयातं) दानी मनुष्यके समीप आओ, (अस्मत् अनिरां- अन्+ इरां) हमसे अन्नके अभावको और (अमीवां युयुतं) रोगोंको दूर करो। (नः दिवा नक्तं त्रासीथां) हमारा दिन रात रक्षण करो।

अश्विदेव अपने रथपर उत्तम अन्न और धनको रख कर हमारे पास आजायं और हमारे अन्नके अकालको दूर करें और हमसे सब रोगोंको दूर करें। और हमारा संरक्षण करें।

[३] (५९९) (अवमस्यां व्युष्टौ) समीपकी उषाका उदय होनेपर (वृषणः सुम्नायवः) बलवान और सुखसे चलनेवाले घोडे (वां रथं) तुम्हारे रथको हमारे समीप (आवर्तयन्तु) ले आवें। हे अश्विदेवो ! (ऋत-युग्भिः अश्वैः) सरलतापूर्वक जोते जानेवाले घोडोंसे (स्यूमगभस्तिं वसुमन्तं) तेजस्वी तथा धनवाले रथको (आ वहेथां) इधर ले आओ।

उषःकालमें उठो, बलवान् और उत्तम घोडे रथको जोतो, और उस रथमें बैठकर जनताके स्थानपर आओ और धन, अन्न आदि उनको देकर उनको सुखी करो।

४ यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा ।
आ न एना नासत्योप यातमभि यद् वां विश्वप्स्न्यो जिगाति ६००

५ युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः ६०१

६ इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६०२

(७२) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ आ गोमता नासत्या रथेनाऽश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना ६०३

२ आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक् सजोषसा नासत्या रथेन ।
युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि समानो बन्धुरुत तस्य वित्तम् ६०४

---

[४] (६००) हे (नृपती नासत्या) मानवोंके रक्षक और पालक अश्विदेवो ! (वां यः रथः वसुमान्) तुम्हारा जो रथ धन युक्त और (उस्रयामा) प्रातः कालमें जानेवाला है तथा (त्रिवन्धुरः वोळ्हा अस्ति) तीन बन्धनोंवाला और स्थानपर शीघ्र पहुंचनेवाला है, (एना नः उपयातं) इससे हमारे पास तुम आओ, (यत् विश्वप्स्न्यः) जो सर्वत्र जानेवाला रथ (वां जिगाति) तुम्हें शीघ्र यहां लाता है।

अश्विदेव मनुष्योंके रक्षक हैं और सत्यके पालक हैं। उनके रथपर धन रहता है। सवेरे उनका तीन बैठकों वाला रथ चलता है, वह हमारे पास आजाय और हमारा संरक्षण करे।

[५] (६०१) तुमने (जरसः च्यवानं अमुमुक्तं) बुढापेसे चवन ऋषिको मुक्त किया, (युवं आशुं अश्वं) तुमने शीघ्रगामी घोडेको (पेदवे निरुहथुः) पेदु नरेशके पास पहुंचा दिया। (अत्रिं तमसः अंहसः निष्पर्तं) अत्रिको अन्धेरेसे और कष्टके स्थानसे दूर किया, और (जाहुषं शिथिरे अन्तः) जाहुष नरेशको भ्रष्ट हुए उसके राज्यपर पुनः (नि धातं) तुमने बिठला दिया।

वृद्ध च्यवन ऋषिको तरुण बना दिया, उत्तम घोडा पेदुको दिया, अत्रि ऋषिको अन्धकारपूर्ण तथा कष्टदायक कारावाससे मुक्त किया, जाहुषको उसके शिथिल हुए राज्यपर पुनः बिठला दिया। ये कार्य अश्विदेवोंने किये हैं।

[६] (६०२) यह मंत्र ५९६ क्रमांकपर है, वहां इसको पाठक देखें।

[१] (६०३) हे (नासत्या) सत्य पालक अश्विदेवो ! (गोमता अश्वावता) गायों और घोडोंसे युक्त (पुरुश्चन्द्रेण रथेन) तेजस्वी शोभासे युक्त रथसे (आ यातं) यहां आओ। (स्पार्हया श्रिया) स्पृहणीय शोभासे तथा (तन्वा शुभाना) उत्तम शरीरसे शोभायमान होते हुए (वां अभि) तुम्हारी (विश्वाः नियुतः सचन्ते) सब घोडे सेवा करते हैं।

अश्विदेव सत्यपक्षका रक्षण करते हैं। उनके पास बहुत गौवें और घोडे हैं। वे तेजस्वी रथसे आते हैं। उनका शरीर सुन्दर है और उत्तम धन उनके पास है। वे हमारा संरक्षण करें।

[२] (६०४) हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (देवेभिः सजोषसः) देवोंके साथ रहकर (नः अर्वाक्) हमारे पास (रथेन उप आयातं) रथसे आओ। (नः युवोः हि) हमारी तुम्हारे साथ (पित्र्याणि सख्या) पितृपरंपरासे

३ उदु स्तोमासो अश्विनोरबुध्रञ्जामि ब्रह्माण्युषसश्च देवीः ।
अविवासन् रोदसी धिष्ण्येमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति ६०५

४ वि चेदुच्छन्त्यश्विना उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् बृहदग्नयः समिधा जरन्ते ६०६

५ आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६०७

(७३) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

१ अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः ।
पुरुदंसा पुरुतमा पुराजाऽमर्त्या हवते अश्विना गीः ६०८

मित्रता है। (उत बन्धुः समानः) और तुम्हारा बन्धुभाव भी समान है, (तस्य वित्तं) उसको तुम जानते हैं।

'पित्र्याणि सख्यानि'—कुल परंपरासे सख्य होना उपकारक होता है। 'समानः बन्धुः'—भाईचारा भी समान होना चाहिये। ये संबंध मानवताकी ऊंचाई बढानेवाले हैं।

[३] (६०५) (अश्विनोः स्तोमासः) अश्विदेवोंके स्तोत्र (देवीः उषसः) तेजस्वी उषाओंके (जामि ब्रह्माणि च) बन्धुवत् स्तोत्रोंको भी (उत अबुध्रन्) जाग्रत कर चुके हैं। (इमे धिष्ण्ये रोदसी) ये बुद्धिमान द्यु और पृथिवि लोगोंकी (आविवासन् विप्रः) परिचर्या करता हुआ ज्ञानी ऋषि (नासत्या अच्छ विवक्ति) सत्यपालक अश्विदेवोंका उत्तम वर्णन करता है।

अश्विदेवोंके स्तोत्र उषः कालमें गाये जाते हैं, जिससे बन्धु बांधव जाग्रत होते हैं और पश्चात् यज्ञका प्रारंभ होता है।

[४] (६०६) हे अश्विदेवो! (उषासः वि उच्छन्ति चेत्) उषाएँ अन्धेरा हटा दें तब (वां ब्रह्माणि कारवः प्रभरन्ते) आपके स्तोत्र स्तुतिकर्ता भर देते हैं, गाते हैं। (देवः सविता ऊर्ध्वं भानुं अश्रेत्) सविता देव ऊंचे स्थानमें जाता हुआ प्रकाशका आश्रय करता है। तब (समिधा अग्नयः बृहत् जरन्ते) समिधासे अग्नि बहुत प्रशंसित—प्रदीप्त होते हैं।

सूर्य उदय होते ही अग्नि प्रज्वलित करते हैं और समिधा आदिका हवन शुरू हो जाता है।

[५] (६०७) हे (नासत्या) सत्यपालक अश्विदेवो! (अधरात् उदक्तात्) नीचेसे, ऊपरसे, (पश्चात् पुरस्तात्) पीछेसे अथवा आगेसे (आयातं) आओ। (पाञ्चन्येन राया) पञ्चजनोंका हित करनेवाले धनके साथ (विश्वतः आयातं) सब ओरसे आओ। (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम हमारा कल्याणकारक साधनोंसे सदा संरक्षण करो।

[१] (६०८) (देवयन्तः स्तोमं प्रतिदधानाः) देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करते हुए स्तोत्रका धारण करते हैं, (अस्य तमसः पारं अतारिष्म) इस अन्धेरेके पार हम चले गये हैं। (गीः) हमारी वाणी (पुरु-दंसरा पुरु-तमा) बहुत कार्य करनेवाले और बडे (पुरा-जा अमर्त्या अश्विना) पूर्वकालसे प्रसिद्ध अमर अश्विदेवोंको (हवते) बुलाती है। इनका वर्णन हमारी वाणी करती है।

हम देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं, इस तरह अन्धेरी रात्र समाप्त हुई है, अब उषः काल हुआ है और इस समय अश्विदेवोंकी स्तुति होती है।

२ न्यु प्रियो मनुषः सादि होता नासत्या यो यजते वन्दते च ।
अश्नीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान् ६०९

३ अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ६१०

४ उप त्या वह्नी गमतो विशं नो रक्षोहणा संभृता वीळुपाणी ।
समन्धांस्यग्मत मत्सराणि मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ६११

५ आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६१२

(७४) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

१ इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ६१३

---

[२](६०९) हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (यः यजते वन्दते च) जो यज्ञ करता है और प्रणाम करता है । ऐसा वह (होता मनुषः प्रियः नि सादि) होता मनुष्योंमें प्रिय होकर यज्ञ स्थानमें बैठ गया है । तुम दोनों (उपाके मध्वः अश्नीत) समीप जाकर मधुर सोम रस पीओ (विदथेषु प्रयस्वान्) यज्ञोंमें अन्न साथ लेकर मैं (वां आवोचे) आप दोनोकी स्तुति करता हूं ।

यज्ञ शुरू हुआ । मानवोंका हितकर्ता याजक यज्ञमें प्रवृत्त हुआ है । अश्विदेवोंको सोमरस दिया है और हविष्यान्न लेकर स्तोता लोग स्तोत्रपाठ पूर्वक यज्ञ करते हैं ।

[३](६१०) हे (वृषणा) बलवान् अश्विदेवो ! (इमां सुवृक्तिं जुषेथां) इस स्तुतिका सेवन करो । (त्वां प्रति प्रेषितः) तुम्हारी ओर भेजा हुआ (जरमानः वासिष्ठः) स्तुति करनेवाला वासिष्ठ ऋषि (श्रुष्टीवा इव) शीघ्रगामी दूतकी तरह तुम्हें (स्तोमैः अबोधि) स्तोत्रपाठोंसे जगा चुका है । (पथां उराणाः यज्ञं अहेम) मार्गोंका अनुसरण करनेवाले हम अब यज्ञको संपन्न करते हैं ।

एकाग्र मनसे स्तुति करनेवाला ऋषि स्तोत्र पाठ करता है । यज्ञकी क्रियाको साथ साथ करता है ।

[४] (६११) (त्या वह्नी वीळुपाणी) वे ढोनेवाले सुदृढ हाथोंसे युक्त (रक्षो-हणा संभृता) राक्षसोंका वध करनेवाले और धनको लानेवाले अश्विदेव (नः विशं उपगमतः) हमारी प्रजाकी ओर आते हैं । और अब (मत्सराणि अन्धांसि सं अग्मत) आनंद देनेवाले सोमरस मिलाये गये हैं इसलिये तुम (नः मा मर्धिष्टं) हमारा कष्ट न बढाओ और शीघ्र (शिवेन आ गतं) हितकारक ढंगसे इधर आओ । और सोमरस पीओ ।

[५] (६१२) यह मंत्र क्रमांक ६०७ के स्थानपर आया है । पाठ इसका अर्थ वहां देखें ।

[१] (६१३) हे (वाजिनी-वसू उस्रा) शक्ति-रूप धनसे युक्त और प्रकाशमान अश्वि देवो ! (इमाः दिविष्टयः) ये द्युलोकमें रहनेकी इच्छा करनेवाले भक्त (वां हवन्ते) तुम्हें बुलाते हैं । (अवसे अयं वां अह्वे) अपनी सुरक्षाके लिये यह मैं तुम्हे बुलाता हूं । क्योंकि (विशं विशं हि गच्छथः) तुम दोनों प्रत्येक प्रजाजनके पास जाते हो ।

शक्तिसे संपन्न बनो, शक्ति ही धन है । द्युलोकके योग्य बनो और सुरक्षाका प्रबंध करो । प्रत्येक प्रजाजनके पास जा-कर उनका संरक्षण करो ।

२ युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ६१४

३ आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ६१५

४ अश्वासो ये वामुप दाशुषो गृहं युवां दीयन्ति बिभ्रतः ।
मक्षूयुभिर्नरा हयेभिरश्विना ऽऽ देवा यातमस्मयू ६१६

५ अधा ह यन्तो अश्विना पृक्षः सचन्त सूरयः ।
ता यंसतो मघवद्भ्यो ध्रुवं यशश्छर्दिरस्मभ्यं नासत्या ६१७

---

[२] (६१४) हे (नरा) नेता अश्विदेवो! (युवं चित्रं भोजनं) तुम दोनों विलक्षण प्रकारका बलवर्धक भोजन (ददथुः) देते हैं। और उसे (सूनृतावते चोदेथां) सत्य भाषण करनेवाले मनुष्यको प्रेरित करो तथा (समनसा रथं अर्वाक् नियच्छतं) एक मनसे अपने रथको हमारे समीप रोककर रखो और यहां (सोम्यं मधु पिबतं) सोमका मधुर रस पीओ।

नेता अपने अनुयायियोंको विविध प्रकारका पौष्टिक अन्न दे और उनका बल बढावें तथा उनको सन्मार्गकी ओर प्रवृत्त करें।

[३] (६१५) हे (जेन्या-वसू वृषणा) धनोंको जीतनेवाले बलवान् अश्विदेवो! (आ यातं) इधर आओ, (उप भूषतं) अलंकृत होओ। (मध्वः पिबतं) मधुर रसका पान करो। (नः मा मर्धिष्टं) हमें कष्ट न दो, (आ गतं) आओ और (पयः दुग्धं) दूधका दोहन किया है, उसका सेवन करो।

अतिथिका आदर करनेकी यह रीति है।

[४] (६१६) (वां ये अश्वासः) आपके जो घोडे (बिभ्रतः युवां) रथका धारण करनेवाले तुम्हें (दाशुषः गृहं) दाताके घर तक (उप दीयन्ति) पहुंचा देते हैं। हे (नरा) नेता अश्वि देवो! तथा (देवा) देवतारूप तुम दोनो (अस्मयू) हमारी ओर आनेकी इच्छा करनेवाले होकर उन (मक्षूयुभिः हयेभिः) शीघ्र गामी घोडोंसे (आयातं) यहां आओ।

[५] (६१७) हे (नासत्या) सत्यपालक अश्वि देवो! (अधा सूरयः) अब विद्वान् लोग (यन्तः पृक्षः सचन्त) प्रयत्न करनेपर अन्न प्राप्त करते ही हैं। (मघवद्भ्यः अस्मभ्यं) धनिक बने हम लोगोंको (ता) वे तुम दोनों (छर्दिः) उत्तम घर और (ध्रुवं यशः) स्थिर यश (यंसतः) दे दो।

१ **यन्तः सूरयः पृक्षः सचन्त**—प्रयत्न करनेवाले ज्ञानी अन्न तथा भोग प्राप्त करते ही हैं। ज्ञानी बनना और यत्न करना चाहिये जिससे अन्न प्राप्त होता है।

२ **मघवद्भ्यः छर्दिः ध्रुवं यशः यंसतः**—धनी बने लोगोंको उत्तम घर और स्थायी यश मिलना चाहिये। मनुष्य (सूरयः) ज्ञान प्राप्त करे, (यन्तः) प्रयत्न करे, (पृक्षः सचन्त) धन अन्न आदि प्राप्त करे, (मघवद्भ्यः) धनवान होनेपर (छर्दिः) घर बनावे और (ध्रुवं यशः) स्थायी यश प्राप्त करे।

६ प्र ये ययुरवृकासो रथा इव नृपातारो जनानाम् ।
उत स्वेन शवसा शूशुवुर्नर उत क्षियन्ति सुक्षितिम् ६१८

[७] उषा-प्रकरण

(७५, १-८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१ व्युषा आवो दिविजा ऋतेनाऽऽविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमङ्गिरस्तमा पथ्या अजीगः ६१९

---

[६] (६१८) (**ये जनानां नृपातारः**) जो लोगोंके पालक हैं और (**अ-वृकासः**) क्रूर कर्म करनेवाले नहीं हैं, वे (**रथाः इव**) रथोंके समान (**प्र ययुः**) आगे बढते हैं। (**उत नरः**) तथा वे नेता (**स्वेन शवसा**) अपने निज बलसे (**शूशुवुः**) बढते और (**उत सुक्षितिं क्षियन्ति**) वैसे ही वे अच्छे निवास स्थानमें रहते हैं।

१ जनानां नृपातारः अवृकासः— लोगोंके लोकपालक क्रूर न हों। जो क्रूर नहीं हैं ऐसे लोगोंको ही प्रजापालनके कार्यपर नियुक्त करना चाहिये।

२ अवृकासः नृपातारः प्र ययुः— जो क्रूर नहीं है ऐसे मनुष्योंके रक्षक अधिकारी प्रगति करते हैं, वेही उन्नति प्राप्त करते हैं।

३ अवृकासः जनानां नृपातारः स्वेन शवसा शूशुवुः—जो क्रूर नहीं हैं ऐसे लोगोंके संरक्षक वीर अपने निजबलसे बढते जाते हैं। उनकी उन्नतिमें कोई भी रुकावटें खडीं नहीं कर सकता।

४ अवृकासः जनानां नृपातारः स्वेन शवसा सुक्षितिं क्षियन्ति—जो क्रूर नहीं हैं ऐसे लोगोंको पालक अपने निजबलसे अपने लिये उत्तम निवास स्थान प्राप्त करते और उसमें आनन्द प्रसन्न होकर निवास करते हैं।

॥ यहां अश्विदेव प्रकरण समाप्त ॥

यहांसे उषाका वर्णन प्रारंभ हो रहा है।

[१] (६१९) **यह (उषाः दिविजाः वि आवः) उषा अन्तरिक्षमें प्रकट होकर विशेष रीतिसे**

प्रकाशने लगी है। वह उषा (**ऋतेन महिमानं आविष्कृण्वाना**) तेजसे अपनी महिमाको प्रकट करती हुई (**आ अगात्**) आ रही है। वह (**द्रुहः अजुष्टं तमः अप आवः**) शत्रुओं और अप्रिय अन्धकारको दूर करती है और (**अंगिरस्तमा पथ्याः अजीगः**) चलनेके मार्गोंको प्रकाशित करती है।

१ दिविजाः ऋतेन महिमानं आविष्कृण्वानाः आ अगात्—दिव्य भाववाले, सहज स्वभावसे अपनी महिमाको प्रकट करते हुए आते हैं। जो सहज स्वभावसे महिमाको प्रकट करते हैं वे दिव्य कहे जाते हैं। सहज ही से श्रेष्ठोंकी महिमा प्रकट होती है।

२ द्रुहः अजुष्टं तमः अप आवः— वह (उषा) दुष्ट, चोर आदिको तथा अप्रिय अन्धकारको दूर करती है। अन्धकारके समय चोर, डाकू, दुष्ट आदिका उपद्रव होता है। प्रकाश आते ही वह उपद्रव दूर होता है।

३ अंगिरस्तमाः पथ्याः अजीगः—अपने प्रकाशसे उषा लोगोंके चलने फिरनेके मार्गोंको प्रकट करती है। उषः-कालमें लोग उठते हैं और मार्ग दीखनेके कारण चलने फिरने लगते हैं।

उषा दिव्य स्त्री है। दिव्य गुणोंके साथ वह प्रकट हुई है। वह उषा सहज स्वभावसे अपनी महिमाको प्रकट करती है, उस तरह स्त्रियां दिव्य गुण स्वभाववाली हों और उनके सहज स्वभावसे उनकी महिमा प्रकट होती रहे। वे स्त्रियां अपने प्रभावसे द्रोहियों, दुष्टों और अपकारियोंको दूर करें, अज्ञानान्धकारको दूर करें, प्रकाशका मार्ग दिखावें, जिससे लोग जांय और अपने प्राप्तव्य स्थानको प्राप्त करें।

२ महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौभगाय प्र यन्धि ।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम् ॥ ६२०

३ एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः ।
जनयन्तो दैव्यानि व्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थुः ॥ ६२१

यह मन्त्र मनुष्योंको सर्व साधारणतया उपदेश देता है कि वे मनुष्य दिव्य गुण कर्म स्वभावके द्वारा अपनी महिमाको प्रकट करें, समाजमें कुव्यवहार करनेवाले समाज-द्रोहियोंको दूर करें, समाजसे अज्ञानान्धकारको दूर करें और ज्ञानको चारों ओर फैलावें। सबको ज्ञानवान् बनानेमें अपने कर्तव्यका भाग स्वयं करें और सबको अपना योग्य मार्ग दीखे ऐसा करें। ज्ञानसे परिशुद्ध हुए मार्गसे ही सब मनुष्य जांय। अज्ञानसे द्रोहियोंके मार्गसे कोई न जावे।

यहां उषाके वर्णनके मिषसे स्त्रियों और पुरुषोंके कर्तव्योंका उपदेश किया है।

[२] (६२०) (अद्य नः महे सुविताय बोधि) आज हमारे बड़े सुखके लिये जागो। हे (उषः) उषा देवी! हमें (महे सौभगाय प्र यन्धि) बड़े सौभाग्यका प्रदान कर। तथा (चित्रं यशसं रयिं अस्मे धेहि) विशेष श्रेष्ठ यशसे युक्त धन हमें दे। हे (मानुषि देवि) मनुष्योंका हित करनेवाली देवी! (मर्तेषु श्रवस्युं) मनुष्योंको अन्न तथा यशवाले पुत्रको दो।

१ महे सुविताय बोधि— विशेष सुविधा, सुखमयी अवस्था उत्पन्न करनेके लिये जागती रहो, जागो और प्रयत्न करो। विशेष सुख प्राप्त करनेके लिये जागना और यत्न करना योग्य है।

२ महे सौभगाय प्र यन्धि—विशेष सौभाग्य प्राप्त करनेके लिये यत्नवान होना चाहिये। विशेष भाग्य प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये।

चित्रं यशसं रयिं धेहि—विलक्षण श्रेष्ठ यशस्वी धन प्राप्त होना चाहिये। जिससे यशकी हानि होती हो वह धन नहीं चाहिये।

४ हे मानुषि देवि! मर्तेषु श्रवस्युं धेहि—हे मानवोंका हित करनेवाली देवी! तू मनुष्योंको ऐसा पुत्र दे कि जो यशस्वी तथा अन्नवान् हो। अन्न प्राप्त करनेवाला हो।

ऐसा यत्न करना चाहिये कि जिससे मनुष्योंको हरएक प्रकारकी सुविधा होती जाय, सौभाग्य प्राप्त होता रहे, उनको यश और धन मिले तथा ऐसा पुत्र हो कि जो यश, धन और अन्न कमानेवाला हो। अयशस्वी निर्धन और अन्नहीन न हो।

स्त्रियोंकी योग्यता

'मानुषि देवि' (मानुषी देवी) ये पद यहां स्त्रियोंके विशेष कर्तव्यका बोध कराते हैं। स्त्रियां मानवोंका हित करनेवाली हों। स्त्रियोंमें इतनी योग्यता हो कि जिससे वे मानवोंका हित करनेमें समर्थ हों। वे ऐसा सुपुत्र निर्माण करें कि जो यशस्वी धनवान् और अन्न कमानेवाला हो।

[३] (६२१) (दर्शतायाः उषसः) दर्शनीय ऐसी इस उषाके (त्ये एते) वे ये (चित्राः अमृतासः भानवः) विलक्षण अमर प्रकाश किरणें (आ अगुः) फैल रहीं हैं। वे (दैव्यानि व्रतानि जनयन्तः) दिव्य व्रतोंको निर्माण कर रही हैं और (अन्तरिक्षा आपृणन्तः वि अस्थुः) अन्तरिक्षको भरपूर भर देती हैं और विशेष रीतिसे वहां रहती हैं।

१ उषासः दर्शतायाः भानवः आ अगुः—सुन्दर उषाके सुंदर किरण फैल रहे हैं। इसी तरह स्त्रियां सुन्दर हों, दर्शनीय हों, सुन्दर लाल, पीले वर्णोवाले कपडे पहनें और अधिक सुन्दर बनकर अपने सौंदर्यका प्रकाश फैलाएँ। उषाके समान स्त्रियाँ आकर्षक तथा रमणीय हों।

२ अमृतासः चित्राः भानवः आ अगुः—गतिमान चित्र विचित्र रंगोंवाले किरण उषःकालमें फैल रहे हैं। उषाके समान स्त्रियां चित्रविचित्र रंगोंवाले वस्त्र पहनें, आभूषण धारण करें और त्वरासे तथा स्फूर्तिसे अपने कार्यमें लगें। अपना तेज फैलाएं।

३ दैव्यानि व्रतानि जनयन्तः— दिव्य व्रतोंका पालन

४ एषा स्या युजाना पराकात् पञ्च क्षितीः परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ६२२

५ वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम् ।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ६२३

करें । उत्तम व्रतोंका आचरण करें । दिव्यभाव प्रकट करनेवाले कर्म करें । स्त्रियोंको दिव्य व्रतों नियमों और कर्मोंका पालन करना चाहिये । यह उपदेश स्त्रीपुरुषोंको समान है । दिव्य श्रेष्ठ भाव प्रकट होनेके लिये इसकी आवश्यकता है ।

४ **अन्तरिक्षा आ पृणन्तः वि तस्थुः**--अन्तरिक्षमें अपने तेजको भरपूर भर देती हैं ऐसी उषाएं हैं । स्त्रियोंको भी उचित है कि वे लोगोंके अन्तःकरणोंमें अपने विषयका पूज्य भाव स्थापन करें और विशेष नियमोंसे विशेष रीतिसे स्थिर रहें, (वि तस्थुः) विशेष स्थान प्राप्त करें और उसी स्थानमें स्थिर रहें, चञ्चल न हों । इधर उधर अयोग्य मार्गसे कदापि न जांय । दिव्य व्रतोंका धारण इसीलिये करना चाहिये कि जिससे उनमें श्रेष्ठता स्थिर रूपसे रहे और चञ्चलता दूर हो । सब लोगोंके अन्तःकरणोंमें अपनी श्रेष्ठताका प्रभाव भरपूर भर दें ताकि कोई उनका अपमान कदापि न कर सके ।

[४] (६२२) (एषा स्या) यह वह उषा (पराकात्) दूरसे भी (पञ्च क्षितीः युजाना सद्यः परि जिगाति) पांचों मानवोंको उद्यममें लगाती हुई उनके पास पहुंचती है। (जनानां वयुना अभिपश्यन्ती) लोगोंके कर्मोंको देखती हुई यह (दिवः दुहिता भुवनस्य पत्नी) द्युलोककी पुत्री भुवनोंकी पालना करती है ।

१ **पञ्च क्षितिः युजाना**—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद् इनको कार्यमें लगाती है । स्वयं (पराकात्) दूर रहती है, परंतु सब मानवोंको दूरसे ही कार्यमें प्रवृत्त करती है। इसी तरह स्वयं पृथक् द्रष्टारूप रहकर सब जनोंको सत्कर्ममें लगाना चाहिये ।

२ **सद्यः पञ्च क्षितीः परि जिगाति**—तत्काल वह स्वयं सब प्रकारके पांचों मानवोंके पास पहुंचती है और उनको सत्कर्मकी प्रेरणा देती है ।

*

३ **जनानां वयुना अभिपश्यन्ती**- लोगोंके सब कार्मोंको देखती है, सबोंके कर्मोंका निरीक्षण करती है । कौन अच्छा करता है और कौन बुरा करता है इसका निरीक्षण करती है ।

४ **दिवः दुहिता भुवनस्य पत्नी**—यह दिव्य लोककी पुत्री है और त्रिभुवनका पालन करनेवाली है । यहां भुवनका पालन करनेवाली उषा है ऐसा कहा है । यह उषा द्युलोककी दुहिता है । यह सबकी पालना करती है । पिता द्युलोकके समान तेजस्वी हो यह यहां सूचित होता है । तेजस्वी पिताकी यह पुत्री सुशिक्षासे संपन्न होकर त्रिभुवनके राज्यका पालन करती है ।

पुत्रीकी शिक्षा

पुत्रीकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये, इसका उत्तर इस मंत्रमें दिया है । प्रथम पुत्रीका पिता द्युलोकके समान तेजस्वी चाहिये। यह आनुवंशिक संस्कार है । पश्चात् वह पुत्री भी स्वयं उषाके समान तेजस्विनी चाहिये, नाना वस्त्रालंकारोंसे सुशोभित होकर, विद्यासे संपन्न होकर जनताको नाना कार्योंमें प्रवृत्त करे, उनके कर्मोंका निरीक्षण करे और सब राष्ट्रका पालन करे । इतनी चतुर तथा कर्तव्यदक्ष पुत्री होनी चाहिये । इस सूक्तका प्रत्येक शब्द और वाक्य कन्याओंकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये इसकी सूचना देता है । पाठक प्रथम मंत्रसे इस विषयका उपदेश देखें ।

[५] (६२३) (वाजिनीवती चित्रामघा) बल-वर्धक अन्नसे युक्त तथा विलक्षण धनसे युक्त (सूर्यस्य योषा) सूर्यकी पत्नी (वसूनां रायः ईशे) सब धनोंके ऐश्वर्यकी स्वामिनी है । (ऋषि-स्तुता) ऋषियोंद्वारा प्रशंसित (मघोनी) ऐश्वर्यवती (जरयन्ती) सबकी आयुका नाश करनेवाली (उषाः वह्निभिः गृणाना) उषा अग्नियोंके साथ प्रशंसित होकर (उच्छन्ती) प्रकाशित होती है ।

स्त्रीका अधिकार

१ यह उषा **(सूर्यस्य योषा)** सूर्यकी स्त्री है । (वाजि-

६ प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ॥ ६२४

७ सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजद् दृळ्हानि दददुस्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ॥ ६२५

नीवती चित्रामघा) अनेक प्रकारके अन्न तथा धन अपने पास रखती है, (वसूनां रायः ईशे) धनों और वैभवोंका ईशन करती है । स्वामिनी होकर उन सब ऐश्वर्योंका शासन करती है ।

स्त्री अबला नहीं है ।

२ ऐसी स्त्रीकी प्रशंसा (ऋषि स्तुता) ऋषि करते हैं । जो स्त्री अपने संपूर्ण ऐश्वर्यका योग्य रीतिसे प्रशासन करती है, उसकी प्रशंसा ऋषि करते हैं ।

स्त्री प्रशासिका है ।

३ राधोभि वसूनां ईशे— स्वयं अपने पास धन रखती है और सब प्रकारके धनोंपर स्वामित्व करती है । पूर्व मंत्रमें कहा ही है कि यह (भुवनस्य पत्नी) राष्ट्रका, भुवनका पालन करती है । जिस तरह पुरुषको राष्ट्रपति, भुवनपति कहते हैं, उसी तरह शासक स्त्री होने पर उसको ' राष्ट्रपत्नी, भुवन पत्नी ' कहा जाता है । यहां का ' पत्नी ' पद धर्मपत्नी वाचक नहीं है, प्रत्युत ' पालिका ' का भाव बतानेवाला है ।

४ उषाः वह्निभिः गृणाना उच्छन्ती— उषा अग्नियोंके साथ प्रशंसित होकर प्रकाशती है । इसी तरह स्त्री अग्निके समान तेजस्वी नेताओंके साथ प्रशासन कार्य करती हुई प्रकाशित होती है । स्वयं सूर्यकी पत्नी उषा अग्नियोंके साथ कार्य करती है । इसी तरह राष्ट्रका शासन करनेवाली राणी अन्यान्य अधिकारियोंके साथ राष्ट्रशासनका कार्य उत्तम रीतिसे करे और अपना तेज फैलाये ।

यहां सूचित किया है कि जैसा अग्नि सूर्यकी प्रभाका धर्षण नहीं कर सकते, उसी तरह यह सम्राज्ञी अन्यान्य कार्यकर्ताओंके साथ रह कर भी किसी तरह दूषित नहीं होती ।

[६] (६२४) (द्युतानां उषसं वहन्तः) तेजस्विनी उषाको ले जानेवाले (अरुषासः चित्राः अश्वाः प्रति अदृश्रन्) विलक्षण तेजस्वी घोडे दिखाई देते हैं । वह (शुभ्रा) गौरवर्ण उषा (विश्वपिशा रथेन याति) सब प्रकारसे सुन्दर रथसे जाती है । यह (विधते जनाय रत्नं दधाति) प्रयत्नशील मनुष्योंको रत्न अथवा धन देती है ।

स्त्री रथमें बैठकर जाती है ।

गोषा नहीं है ।

१ द्युतानां उषसं वहन्तः अरुषासः अश्वाः प्रत्यदृश्रन्— प्रकाशमान उषाके रथको तेजस्वी घोडे चला रहे है यह दृश्य दीख रहा है । सूर्यकिरणरूपी घोडे उषाके रथको चलाते हैं । यहां उषा रथमें बैठकर भ्रमण करनेके लिये जाती है । वह परमें गोषामें नहीं बैठती । वह विश्वमें भ्रमण करती है । स्त्रियां इस तरह भ्रमण करें, राष्ट्रमें ऐसा प्रबंध होना चाहिये जिससे स्त्रियां निर्भय होकर राष्ट्रमें संचार करें । दुष्ट उनका धर्षण करनेमें समर्थ न हों ।

२ अरुषासः चित्राः अश्वाः प्रत्यदृश्रन्— तेजस्वी घोडे दीखाई देते हैं । रथके घोडे उत्तम तेजस्वी, फूर्तिले और शीघ्रगामी हों ।

३ ऐसे सुंदर तेजस्वी रथमें बैठकर (शुभ्रा विश्वपिशा रथेन याति) गौरवर्ण स्त्री-राष्ट्रका प्रशासन करनेवाली रानी-राष्ट्रमें संचार करती है ।

४ विधते जनाय रत्नं दधाति— विशेष उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यको वह धन देती है । उत्तम कुशल कारीगरको वह धन देती है । राष्ट्रके उत्तम कारीगरोंको इस तरह उत्तेजना मिलनी चाहिये ।

[७] (६२५) (सत्या महती यजता देवी) सत्य बडी पूजनीय यह उषा देवी (सत्येभिः महद्भिः यजत्रैः देवेभिः) सत्य महान पूजनीय देवोंके साथ रहकर (दृळ्हानि रुजत्) घने अन्धकारका नाश करती है, (उस्रियाणां ददत्) गौओंके लिये प्रकाश देती है, इस कारण (गावः

८ नू नो गोमद् वीरवद् धेहि रत्नमुषो अश्वावत् पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६२६

(७६) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१ उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत् ।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविरकर्भुवनं विश्वमुषाः ॥ ६२७

उषसं प्रति वावशंत) गौवें उषाकी कामना करती हैं ।

१ देवी देवेभिः दृळहा रुजन्—देवी देवोंके साथ रहकर सुदृढ शत्रुओंका नाश करती हैं । यह मंत्र शक्तिका महात्म्य कह रहा है । शक्तिका महत्त्व यह है कि वह सुदृढ शत्रुओंका भी नाश करती है ।

२ सत्या सत्येभिः दृळहा रुजन्— सत्यपालन करनेवाली वीरा सत्यपालक वीरोंके साथ रहकर सुदृढ बने । वह असत्य व्यवहार करनेवालोंका नाश करती है ।

३ उस्रियाणां ददत्— गौओंको घास आदि देती है । इसलिये (**गावः उषसं वावशंत**) गौवें उषाको चाहती है । वैसी गौवें घास पानी समयपर देनेवाली स्त्रीको चाहती हैं ।

इस सूक्तमें ' दुहिता ' पद है । (दिवः दुहिता) यह उषा द्युलोककी दुहिता है । ' दुहिता ' का अर्थ (दोग्धी) गौका दूध निचोडनेवाली है । घरकी पुत्री सवेरे उठे, गौओंको घास पानी आदि देवे, गौओंका प्रेम संपादन करे और गौओंका दूध निकाले । गौओंका दोहन करना यह कार्य घरकी पुत्रीका है, स्त्रीका है ।

[८] (६२६) हे (उषः) उषा देवि ! (अस्मे) हमें, प्रत्येकके लिये (गोमत् अश्वावत् वीरवत् रत्नं) गौवों, अश्वों और वीर पुत्रोंसे युक्त धन और (पुरुभोजः धेहि) बहुत भोजन सामग्री दो। (नः बर्हिः पुरुषता निदे मा कः) हमारा यज्ञ मानवोंके समाजमें निन्दाके योग्य न होवे। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याण करनेके संरक्षक साधनोंसे सुरक्षित रखो ।

१ गोमत् अश्वावत् वीरवत् पुरुभोजः रत्नं धेहि— जिसके साथ गौवें, घोडे, वीर पुत्र और बहुत भोग सदा रहते हैं ऐसा धन हमें चाहिये । खानेके लिये गौका दूध, दही, मक्खन और घी जितना चाहिये उतना मिले, भ्रमण करने तथा रथ चलानेके लिये उत्तम घोडे हों, भोजनके लिये उत्तम अन्न मिले, पर्याप्त धन हो, इस सबका संरक्षण करनेके लिये वीर हों तथा घरमें वीर पुत्र हों । पुत्रिकाएं भी वीरा हों । यह वैभव हमें चाहिये ।

२ पुरुषता नः बर्हिः निदे मा कः—मानव समाजमें हमारे कर्मोंकी निंदा न हो । हमारे कर्मकी प्रशंसा ही सब करें । ऐसे शुभ कर्म सदा हमसे होते रहें । ' पुरुष-ता ' मानवताकी दृष्टिसे हमारे कर्म श्रेष्ठमें श्रेष्ठ हों । हमारे कर्मोंसे मानवताकी ऊंचाई बढे ।

[१] (६२७) (अमृतं विश्वजन्यं ज्योतिः) अमर और सबके हितकारी तेजका (विश्वानरः सविता देवः उत् अश्रेत्) विश्वके नेता सविता देवने आश्रय किया है । वह (देवानां चक्षुः क्रत्वा अजनिष्ट) देवोंका आंख सूर्य शुभ कर्मके साथ उदय हुआ है । और (उषाः विश्वं भुवनं आविः अकः) उषाने सब भुवनोंको प्रकाशित किया है ।

१ विश्वानरः सविता देवः विश्वजन्यं अमृतं ज्योतिः उत् अश्रेत्—विश्वका नेता, सबको चलानेवाला, प्रेरक देव सर्व जनहितकारी अमर तेजका आश्रय करता है । जो (विश्वा-नरः) सबका नेता, सब जनताको चलानेवाला है, वह (सविता) सबका प्रेरक बने, सबको शुभ कर्मकी प्रेरणा करे, (देवः) प्रकाशमान हो, विजिगीषु हो, कर्तव्य दक्ष हो, और (विश्व-जन्यं) सर्व जनोंके हित करनेवाले अमर तेजका धारण करे ।

सविता सूर्य देवका (ज्योतिः) प्रकाश (विश्व-जन्यं अमृतं) सब प्राणियों, सब वृक्षादिकोंका हित करनेवाला है ।

२ प्र मे पन्था देवयाना अदृश्रन्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः ।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात् प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः ॥ ६२८

तथा मरणको दूर करनेवाला है । सूर्य प्रकाश रोग बीजोंको दूर करता है, आरोग्य बढता है, अपमृत्युको दूर करता है । सूर्य स्थावर जंगमका आत्मा है (सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च । ऋ० १।११५।१) ऐसा इसीलिये वेदमें अन्यत्र कहा है । इस तरह सूर्य प्रकाश सर्व जनोंका हितकारी है ।

२ देवानां चक्षुः क्रत्वा अजनिष्ट—यह सूर्य देव सबका आंख है, सब विश्वका चक्षु है । सूर्यके प्रकाशसे ही सब कुछ प्रकाशित होता है । सूर्यके प्रकाशसे सबके आंख कार्य करते हैं । इसलिये इसको (**चक्षुषः चक्षुः** । केन उ०) सबकी आंखका आंख कहते है । यह (क्रत्वा) कर्मके साथ उदय होता है । अर्थात् सूर्यका उदय होनेपर ही यज्ञ, याग आदि शुभ कर्म किये जाते हैं इसलिये इसको सत्कर्मके साथ जन्मा है ऐसा कहा है । मनुष्यको उचित है कि वह जन्मसे ही सत्कर्म करे और दूसरोंको भी सत्कर्ममें प्रेरित करे ।

३ उषाः विश्वं भुवनं आविः अकः—उषाने सब भुवनोंको प्रकाशित किया । उषाके प्रकाशसे सब विश्व दिखने लगा है । इसी तरह स्त्रियां भी स्वयं ज्ञान-तेजसे तेजस्विनी बनें और अपने ज्ञानसे सबको ज्ञानवान् बनावें तथा सबको प्रकाशित करनेका श्रेय लें ।

सूर्य और उषा ये दोनों स्वयं तेजस्वी होती हैं और सब विश्वको तेजस्वी बनाती और प्रकाशित करती हैं । मनुष्योंको भी ऐसा ही करना चाहिये । सूर्य मनुष्योंका आदर्श है और उषा सब स्त्रियोंका आदर्श है । अपने आदर्शके समान सबको बनना उचित है ।

[२] (६२८) (अमर्धन्तः वसुभिः इष्कृतासः) हिंसा न करनेवाले और निवासक तेजोंसे सुसंस्कृत हुए (देवयानाः पन्थाः) देवोंके जाने आनेके मार्ग (मे प्र अदृश्रन्) मैंने देखे हैं । मुझे दिखाई दे रहे हैं । (पुरस्तात् उषसः केतुः अभूत् उ) पूर्व दिशामें उषाका ध्वज-प्रकाश-फहरने लगा है । और (प्रतीची) पूर्व दिशामें उषा (हर्म्येभ्यः अधि आ अगात्) बडे प्रासादोंके ऊपर प्रकाशित हो रही है ।

१ देवयानाः पन्थाः अमर्धन्त—दिव्य मार्ग हिंसासे रहित हुए हैं । उषा आनेके पूर्व चारों ओर अन्धेरा था, इस लिये चोर, डाकू, लुटेरे घात पात करते थे, अब उषा आ गयी, प्रकाश हुआ, इसलिये वे हिंसक भाग गये और सब मार्ग निष्कंटक हुए ।

२ देवयानाः पन्थाः वसुभिः इष्कृतासः—देवोंके जाने आनेके मार्ग, श्रेष्ठ मार्ग धनोंसे भरपूर हुए हैं । क्योंकि अब प्रकाश हुआ, चोरोंका भय रहा नहीं, इसलिये उद्यमी लोग धन लेकर अपने व्यवहार करनेके लिये जा रहे है । अतः उषा आनेके पश्चात् सब मार्ग धन-संपन्न हुए हैं जो उषाके पहिले धन शून्य थे ।

३ देवयानाः पन्थाः प्र अदृश्रन्—दिव्य मार्ग उषाके प्रकाशसे दीखने लगे हैं । जो उषाके पूर्व अन्धेरेसे व्याप्त थे ।

भगवा ध्वज

४ पुरस्तात् उषसः केतुः अभूत्—पूर्व दिशामें उषाका ध्वज फहरने लगा है । उषाका ध्वज उषःप्रकाश है । यह ध्वज भगवा है, गेरुवा है । उषाका प्रकाश ही यह ध्वज है । इस ध्वजसे पता लगता है कि सूर्य आ रहा है ।

५ प्रतीची हर्म्येभ्यः अधि आ अगात्—पूर्व दिशासे उगनेवाली उषा बडे बडे प्रासादोंके ऊपर अपना तेज डालती हुई आ रही है । उषाका प्रकाश सबसे प्रथम ऊंचे स्थानोंपर चमकता है, पहाडोंके शिखर, ऊंचे मकानोंके ऊपरके भाग, ऊंचे वृक्षोंके ऊपरके भाग सबसे प्रथम प्रकाशित होते हैं ।

राज-प्रासाद

यहां ' **हर्म्य** ' शब्द है, यह राजमहलका वाचक है । जो घर पांच पांच सात सात मंजलोंके होते हैं उनका नाम हर्म्य होता है । राजाओं तथा धनिकोंके घर ऐसे बडे होते हैं । और उनके शिखर सबसे प्रथम उषाके प्रकाशसे प्रकाशित होते हैं । जिनका विचार यह है कि वेदके समय झोंपडियां ही रहनेके लिये होती थीं, उनके अशुद्ध मतका निराकरण यह ' हर्म्य ' शब्द कर रहा है और यह शब्द बता रहा है कि उस सभ्यताके समय बडे बडे प्रासाद होते थे जिनमें राजा, राजपुरुष तथा धनी लोग रहते थे ।

३ तानीदहानि बहुलान्यासन् या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य ।
यतः परि जार इवाचरन्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव ६२९

४ त इद् देवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः ।
गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन् त्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम् ६३०

[३] (६२९) हे (उषः) उषा देवी! (तानि इत् बहुलानि अहानि आसन्) वे बहुत दिन थे कि (सूर्यस्य उदिता प्राचीना) जो सूर्यके उदयके पूर्व प्रकाशित होते थे। अर्थात् सूर्य उदयके पूर्व उषा बहुत दिन प्रकाशती रहती है। (यतः जारः इव परि आचरन्ती) क्योंकि तू पतिकी सेवा जैसी सती स्त्री करती है वैसी सेवा करती है, परन्तु (पुनः यती इव न) संन्यासिनी स्त्रीके समान पतिसे विमुख कभी तू नहीं होती।

सूर्योदयके पूर्व उषाके बहुत दिन

१ सूर्यस्य प्राचीना उदिता बहुलानि अहानि आसन्—सूर्यके उदयके पूर्व प्रकाशित हुए बहुत दिन हैं। प्रथम बहुत दिन उषा प्रकाशित होती है और पश्चात् सूर्यका उदय होता है। सूर्य उदय होने पूर्व उषाके कई दिन जाते हैं। ये दिन उषाके न्यूनाधिक प्रकाशसे समझे जाते हैं। (बहुलानि अहानि) बहुत दिन उषा प्रकाश रही है, और पश्चात् सूर्यका उदय हुआ है, ऐसी परिस्थिति भारत वर्षमें कदापि नहीं होती है। उत्तरीय ध्रुवके भागमें तीस दिन तक उषा प्रकाशती है और पश्चात् सूर्यका उदय होता है। यह परिस्थिति वहां है। भारत वर्षका कोई कवि सूर्योदयके पूर्व उषाके बहुत दिन गये ऐसा वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि वैसा दृश्य यहां नहीं है। हां जो कवि भारत वर्ष तथा उत्तरीय ध्रुवकी परिस्थिति स्वयं जानता हो वही अपने काव्यमें ऐसा कह सकता है कि इस स्थानमें सूर्य उदयके पूर्व उषा देवी बहुत दीन (बहुलानि अहानि) प्रकाशित होती है। इस मंत्रका विचार पाठक करें और जाने कि सूर्योदयके पूर्व उषाके बहुत दिन प्रकाशित होनेका आशय क्या है।

२ उषा जारः इव पर्याचरन्ती--उषा जारकी सेवा करनेके समान सूर्य-पतिकी सेवा करती है। यहां के 'जार' का अर्थ 'पति' ऐसा सबने किया है, क्योंकि सूर्य उषाका पति है। इसमें संदेह नहीं है। यह भी पतित्व आलंकारिक है। पर हमारे विचारसे यहांका 'जार' पद 'जार' का ही वाचक है। क्योंकि (१) '**साध्वी स्त्री**' पतिकी सेवा करती है, (२) '**जारिणी स्त्री**' जारकी सेवा करती है और (३) '**यती संन्यासिनी**' विरक्त संसारसे उदास बनी स्त्री पतिसेवासे विमुख होती है। इन तीन स्त्रियोंमें जारिणि स्त्री की आतुरता अधिक होती है, तथा वह अधिक तत्परतासे जारकी सेवा करती है। यहां उषा अधिक तत्पर है यह बताया है, इसलिये 'जार' शब्दका प्रयोग यहां किया है। इसलिये इसका यह अर्थ करना योग्य है। तथापि सब भाष्यकारोंने इसका अर्थ साध्वी स्त्री पतिकी सेवा करती है वैसी उषा है ऐसा अर्थ किया है। हम भी इसका खंडन करना नहीं चाहते।

३ यती इव न—'यती' का अर्थ संयमशील संन्यासिनी है। संसारसे विरक्त हुई स्त्री संसारमें रही तो भी वह संसारके कार्योंमें तत्पर नहीं रहती। वैसी उषा नहीं है, उषा अत्यंत तत्परतासे पति सेवा करती है। सब स्त्रियां तत्परतासे पति सेवा करें यह उपदेश यहां है। कोई स्त्री संन्यासिनी न बने, संसारमें रहकर तत्परतासे पति सेवा करे, दक्षतासे संसारके कर्म करती रहे।

[४] (६३०) जो (ऋतावानः पूर्व्यासः कवयः) सत्यके पालनकर्ता प्राचीन ज्ञानी और (सत्य-मन्त्राः पितरः) जिनके मन्त्र सिद्ध किये होते थे, जो सबके पिता जैसे पालक थे, (ते इत् देवानां सधमादः आसन्) वे देवोंके साथ बैठकर सोम-रसका आस्वाद लेनेवाले थे, जिन्होंने (गूळ्हं ज्योतिः अनु अविंदन्) गुप्त सूर्यकी ज्योतीको प्राप्त किया और जिन्होंने (उषसं अजनयन्) उषाको प्रकट किया।

यह प्राचीन ऋषियोंका वर्णन है। (पूर्व्यासः) पूर्व समयके (कवयः) कवि (ऋतावानः) सत्यका पालन करते थे, वे

५　समान ऊर्वे अधि संगतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्ते ।
　ते देवानां न मिनन्ति व्रतान्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः　६३१

६　प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।
　गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व　६३२

(सत्य-मन्त्राः) मन्त्रोंका साक्षात्कार करते थे तथा (पितरः) सबके पूर्वज तथा पालक थे, (देवानां सधमादः) देवोंके साथ साथ बैठकर सोमरस पीकर आनंदित होनेवाले थे, अर्थात् देवोंकी पंक्तिमें बैठनेका जिनका अधिकार था ऐसे अंगिरस ऋषि थे। इन ऋषियोंने (गूळ्हं ज्योतिः) अन्धेरेमें गुप्त हुआ सूर्यका प्रकाश फलाने स्थानसे प्रकट होगा, ऐसा ज्योतिर्विद्यासे कहा और वैसा ही हुआ। उनके कहनेके अनुसार उषा प्रकट हुई और पश्चात् सूर्य भी प्रकट हुआ। ये प्राचीन ऋषि अंगिरस थे, अत्रि कुलके भी थे। ज्योतिष विद्यासे वे जान सकते थे कि दीर्घ कालके पश्चात् फलाने दिन प्रथम उषाका प्रादुर्भाव होगा और उसके पश्चात् उस दिन सूर्य प्रकट होगा। जैसा वे कहते थे वैसा ही होता था।

यह मंत्र वसिष्ठ ऋषिका देखा है और इसमें इनको 'पूर्व्यासः पितरः' कहा है।

[५] (६३१) (समाने ऊर्वे) एक महत्कार्यके अन्दर वे (अधि सं-गतासः) एक होते हैं, संघटित होते हैं, और (सं जानते) अपना एक विचार करते हैं, तथा (ते मिथः न यतन्ते) वे कभी आपसमें कलह नहीं करते, (ते देवानां व्रतानि न मिनन्ति) वे देवोंके अनुशासनोंका भंग कभी नहीं करते और (अमर्धन्तः) हिंसा न करते हुए (वसुभिः यादमानाः) धनोंके साथ संगत होते हैं।

यहां उन्नतिके छः नियम बताये हैं, जो वे प्राचीन कालके पूर्वज अंगिरस आदि ज्ञानी पालते थे, वे नियम ये हैं—

१ समाने ऊर्वे अधि संगतासः—एक महत्कार्य करनेके लिये आपसकी संघटना करना, आपसका विद्वेष हटाना और एक होना, एक अनुशासनमें रहना।

२ सं जानते—सबका एक विचार, एक संस्कार, एक मत करना, आपसमें मतभेद न रखना,

३ ते मिथः न यतन्ते—आपसमें विद्वेष बढे ऐसा यत्न कभी न करना, अपना संघटन टूट जाय ऐसा यत्न कभी न करना, परस्परका संघर्ष बढने न देना,

४ ते देवानां व्रतानि न मिनन्ति—देवोंके अनुशासनोंको वे कभी तोडते नहीं, स्थायी नियमोंको वे कभी तोडते नहीं। अनुशासनोंका उत्तम पालन करना,

५ अमर्धन्तः—किसीकी हिंसा नहीं करना, दूसरोंको कष्ट न देना, ऐसा व्यवहार करना कि जिससे किसी दूसरेको कष्ट न पहुंचे,

६ वसुभिः यादमानाः—धनोंको प्राप्त करना, ये छः नियम हैं, इनको जो पालन करेंगे वे निःसंदेह अभ्युदयको प्राप्त कर सकते हैं। ये नियम अभ्युदय चाहनेवालोंको अपने ध्यानमें रखना उचित है।

[६] (६३२) हे (सुभगे उषः) उत्तम भाग्यवती उषा देवी! (उषर्बुधः तुष्टुवांसः वसिष्ठाः) उषःकालमें जागनेवाले, स्तुति करनेकी इच्छा करनेवाले वसिष्ठ लोग (त्वा स्तोमैः ईळते) तुम्हारी स्तुति स्तोत्रोंसे करते हैं। (गवां नेत्री वाजपत्नी) गौओंको प्राप्त करनेवाली और अन्नका संरक्षण करनेवाली होकर (नः उच्छ) हमारे लिये प्रकाशित हो। हे (सुजाते) उत्तम जन्मवाली उषा! (प्रथमा जरस्व) सब देवोंमें पहिली होकर प्रशंसित हो।

१ उषर्बुधः तुष्टुवांसः वसिष्ठाः स्तोमैः ईळते—प्रातःकाल उठकर स्तोत्रोंसे ईश्वरकी स्तुति करनी चाहिये। जो (वसिष्ठाः) निवास करनेवाले हैं, जो एकत्र निवास करते हैं, वे इकट्ठे होकर स्तोत्र पाठ करें और ईश्वरकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करें।

२ गवां नेत्री वाज-पत्नी—गौओंको चलानेवाली और अन्नका पालन करनेवाली उषा है। उषःकालमें गौओंको

७ एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः ।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६३३

(७७) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१ उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै ।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि ६३४

चलाया जाता है और अन्नकी देखभाल की जाती है। उषा स्त्री है। अतः गौओंका संचालन और घरमें आये अन्नका रक्षण करना ये कार्य स्त्रियोंके हैं ऐसा मानना उचित है।

६ सुजाते ! प्रथमा जरस्व—हे कुलीन स्त्री ! तू सबसे प्रथम ईश्वरकी स्तुति कर, प्रथम उठकर, प्रथम आगे हो और ईश्वरकी स्तुति कर। स्त्रियां भी स्तुति प्रार्थना करें।

[७] (६३३) (एषा उषाः राधसः सूनृतानां नेत्री) यह उषा स्तुति करनेवालेके सद्वचनोंको प्रेरित करनेवाली है। (उच्छन्ती वसिष्ठैः रिभ्यते) यह उषा अन्धकारको दूर करती है और वसिष्ठों द्वारा प्रशंसित होती है। (दीर्घश्रुतं रयिं अस्मे दधाना) बहुत प्रशंसा योग्य धन हमें देती है। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारा सदा उत्तम संरक्षक साधनोंसे संरक्षण करो।

उषःकाल इतना रमणीय होता है कि उसको देखकर कवियोंको काव्यगानका स्फुरण होता है। यह उषा अन्धकारको दूर करती है, प्रकाश देती है। इसलिये उषा प्रशंसाके योग्य है। जो एकत्र रहते हैं, एकत्र निवास करते है वे मिलकर उषाकी स्तुति करें।

दीर्घश्रुतं रयिं अस्मे दधाना— अत्यंत प्रशंसित धन हमें देवे। हमें ऐसा धन चाहिये कि जो बहुत प्रशंसाके योग्य है। जिसकी निंदा होती है ऐसा धन हमें नहीं चाहिये।

[१] (६३४) (युवतिः योषा न) तरुणी स्त्रीके समान यह उषा (उपो रुरुचे) सूर्य पहिले प्रकाशित हो रही है। यह (विश्वं जीवं चरायै प्रसुवती) सब जीवोंको सर्वत्र संचार करनेके लिये प्रेरित करती है। (अग्निः मानुषाणां समिन्धे अभूत्) अब उषःकालमें अग्नि मनुष्योंको प्रदीप्त करना योग्य है। वह प्रदीप्त होकर (तमांसि बाधमाना ज्योतिः अकः) अन्धकारको दूर करनेवाली ज्योतिको प्रकट करता है।

१ युवतिः योषा न उपो रुरुचे—तरुणी स्त्री वस्त्रालंकारोंसे सुशोभित होकर अपने तरुण पतिके सामने चमकती है, उस तरह यह उषा अपने सूर्य पतिके पहिले उठकर उसके पहिले ही अपना अन्धकार दूर करनेका कार्य करने लगी है। इसी तरह पतिके पूर्व स्त्री उठे और अपना कार्य करे यह स्त्रीके लिये उत्तम आदेश है। स्त्री कभी पति उठनेके पश्चात् भी सोती न रहे।

२ विश्वं जीवं चरायै प्रसुवंती— उषा सब जीवोंको विचरनेके लिये प्रेरित करती है, इसी तरह घरकी स्त्री पतिके पूर्व उठे और अपने घरके गौ आदि जीवोंकी उत्तम व्यवस्था करे। आलस्यमें न रहे।

३ मानुषाणां अग्निः समिन्धे अभूत्—मानवोंके घरोंमें अग्नि प्रज्वलित करना योग्य है। उषःकालमें अग्नि प्रदीप्त करें।

४ तमांसि बाधमाना ज्योतिः अकः— अन्धकारको दूर करनेवाली ज्योति प्रकाशित करो। दीप जलाकर अथवा अग्नि प्रदीप्त करके उसकी ज्योति जले जिससे घरका अन्धकार दूर हो।

स्त्रीके लिये आदेश

स्त्री पतिके पूर्व उषःकालमें उठे। अपने वस्त्र संभाल कर कार्य करनेके लिये तत्पर हो जाय। गौ आदि पशुओंकी देख भाल करे। अग्नि प्रदीप्त करे और दीप जला कर अथवा अग्निकी ज्वालासे अन्धकारको दूर करे।

२ विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद् रुशद् वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत् ।
हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृग् गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ६३५

३ देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम् ।
उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता ६३६

[२] (६३५) (विश्वं प्रतीची सप्रथाः उदस्थात्) सब जगतके सन्मुख अत्यंत प्रसिद्ध यह उषा उदित हुई है। और वह (रुशत् शुक्रं वासः बिभ्रती अश्वैत्) तेजस्वी शुभ्र वस्त्र पहन कर बढ रही है। वह (हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृक्) सुवर्णके समान वर्णवाली तथा सुन्दर दर्शनीय तेजवाली (गवां माता) गौओंकी माताके समान हित करनेवाली और (अह्नां नेत्री) दिनोंका संचलन करनेवाली (अरोचि) प्रकाशित हो रही है।

१ विश्वं प्रतीची सप्रथाः उदस्थात्—सबसे प्रथम यह प्रसिद्ध (उषा स्त्री) उठी है। इस तरह स्त्री सबसे प्रथम उठे।

२ रुशत् शुक्रं वासः बिभ्रती अश्वैत्—तेजस्वी चमकीला वस्त्र पहन कर कार्य करनेके लिये आगे बढे। स्त्री उठनेके पश्चात् अच्छे वस्त्र पहने और कार्यमें प्रवृत्त हो।

३ हिरण्यवर्णा सुदृशीक-संदृक्— स्त्री सुवर्णके समान वर्णवाली और सुंदर दर्शनीय बने। स्त्रीको सजकर अपनी सुन्दरता बढानी चाहिये।

४ गवां माता—स्त्री घरकी गौओंका माताके समान पालन करे।

५ अह्नां नेत्री अरोचि—दिनमें जो घरके कार्य करने होंगे उनका नेतृत्व करे। प्रकाशित होकर घरका नेतृत्व करे। जैसी उषा अपने विश्वरूप घरका नेतृत्व करती है।

इस मंत्रमें उषाके वर्णनसे स्त्रियोंके कर्तव्य बताये हैं।

[३] (६३६) (देवानां चक्षुः वहन्ती) देवोंके तेजको धारण करनेवाली (सुभगा) उत्तम भाग्य वाली (सुदृशीकं श्वेतं अश्वं नयन्ती) सुन्दर श्वेत किरणोंको- सूर्यके अश्वोंको चलानेवाली (उषा रश्मिभिः व्यक्ता अदर्शि) उषा किरणोंसे व्यक्त रूपमें दीखने लगी है। यह उषा (चित्रामघा विश्वं अनु प्रभूता) विलक्षण धनवाली संपूर्ण विश्वके सन्मुख बढ रही है।

१ सुभगा देवानां चक्षुः वहन्ती— यह भाग्यवती उषा देवोंके मध्यमें प्रकाशको फैलाती है। इस तरह सौभाग्यवती स्त्री अपने घरमें प्रकाश करे, तेजस्विनी होकर रहे।

२ सुदृशीकं श्वेतं अश्वं नयन्ती—सुंदर श्वेत अश्वको चलाती है। अश्व संचालनकी विद्या जानती है। इस तरह स्त्री अश्व संचालनकी विद्यामें प्रवीण हो। घोडोंको सुन्दर दर्शनीय स्थितिमें रखे। भगवान् श्रीकृष्ण अश्वविद्यामें निपुण थे और अर्जुनके रथके घोडोंका संचालन करते थे। इसमें कोई मान हानि नहीं है। राजा नल, नकुल ये अश्व विद्यामें निपुण थे। स्त्रियां भी अश्व संचालनमें कुशल हों।

३ उषा रश्मिभिः व्यक्ता अदर्शि—उषा किरणोंसे प्रकट होकर सुंदर दिखती है। इस तरह स्त्रियां सुशोभित होकर बाहर आ जांय।

४ चित्रामघा विश्वं अनु प्रभूता—अनेक प्रकारके श्रेष्ठ धनोंसे युक्त होकर विश्वके सन्मुख उषा बढती है। इसी तरह स्त्री भी अनेक वस्त्रों और अलंकारोंसे सजकर, सुशोभित होकर घरके बाहर आकर विराजे। स्त्रीके वस्त्र मलिन न हों, वह स्त्री आभूषण रहित न हो, जो उसके पास हो उससे जितना अधिक सुशोभित होनेकी संभावना हो उतना सौंदर्य बढावे।

४ अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः ।
यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ६३७

५ अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्युषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः ।
इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद् रथवच्च राधः ६३८

६ यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।
सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६३९

(७८) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१ प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते ।
उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि ६४०

---

[४] (६३७) (अन्तिवामा) हमारे समीप धनको लानेवाली तू (अमित्रं दूरे उच्छ) हमारे शत्रुको दूर करके प्रकाशित हो। तथा (ऊर्वीं गव्यूतिं नः अभयं कृधि) विस्तृत भूमिको हमारे लिये निर्भय बनाओ। (द्वेषः यवय) शत्रुओंको दूर करो, (वसूनि आभर) धनोंको ला दो। हे (मघोनि) धनयुक्त उषा ! (गृणते राधः चोदय) स्तुति करनेवालेके लिये धन भेजो।

धनको पास लाना, शत्रुको दूर करना, प्रदेशको निर्भय करना, द्वेष कर्ताओंको दूर भगाना, धनसे घर भर देना, भक्तोंको धन देना ये मनुष्यके कर्तव्य हैं ।

१ **अन्तिवामा**-- अपने पास धनको लाना,

२ **अमित्रं दूरे उच्छ**--शत्रुको दूर भगा देना,

३ **ऊर्वीं गव्यूतिं नः अभयं कृधि**--विस्तृत भूप्रदेशको निर्भय करना,

४ **द्वेषः यवय**—द्वेष बढानेवालोंको दूर करना,

५ **वसूनि आ भर**—धनसे घरको भर देना,

५ **गृणते राधः चोदय**—भक्तके लिये धनका प्रदान करना।

ये कार्य उषा करती है, ये कार्य स्त्रियां करें तथा ये कार्य पुरुषोंको भी करना उचित है ।

[५] (६३८) हे (उषः देवि) उषा देवी ! (अस्मै श्रेष्ठेभिः भानुभिः वि भाहि) हमारे हितके लिये श्रेष्ठ किरणोंके साथ प्रकाशित हो । (नः आयुः प्रतरन्ती) हमारी आयुको बढाओ । हे (विश्ववारे) सबके द्वारा स्वीकार करने योग्य उषा देवी ! (नः इषं च) हमारे लिये अन्न (गोमत् अश्ववत् रथवत् च राधः दधती) गौओं, घोडों और रथोंके साथ रहनेवाला धन दे दो ।

१ **नः आयुः प्रतरन्ती**—हमारी आयु बढाओ,

२ **गोमत् अश्ववत् रथवत् इषं राधः नः दधती**—जिस धनके साथ गौएं, घोडे, रथ, अन्न तथा कार्य सिद्धि रहती है ऐसा धन हमें दे दो।

[६] (६३९) हे (दिवः दुहितः सुजाते उषः) द्युलोककी दुहिता रूप उत्तम कुलीन उषा देवि ! (यां त्वा वसिष्ठाः मतिभिः वर्धयन्ति) वसिष्ठ लोग स्तोत्रोंसे तुम्हारी स्तुति गाते हैं । (सा अस्मासु बृहन्तं ऋष्वं रयिं धाः) वह तू हमारे पास बडा तेजस्वी धन धारण कर । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण साधक साधनोंसे सुरक्षित रखो ।

१ **अस्मासु बृहन्तं ऋष्वं रयिं धाः**--हमें बडा विशाल तेजस्वी धन चाहिये ।

[१] (६४०) (अस्याः प्रथमाः केतवः प्रति अदृश्रन्) इस उषाके पहिले किरण दीख रहे हैं । (अस्याः अंजयः ऊर्ध्वाः वि श्रयन्ते) इसके गतिशील किरण ऊर्ध्व भागमें आश्रय ले रहे हैं ।

२ प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणन्तः ।
उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताप देवी ६४१

३ एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन् पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः ।
अजीजनन् त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ६४२

४ अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम् ।
आस्थाद् रथं स्वधया युज्यमानमा यमश्वासः सुयुजो वहन्ति ६४३

५ प्रति त्वाद्य सुमनसो बुधन्ताऽस्माकासो मघवानो वयं च ।
तिल्विलायध्वमुषसो विभातीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६४४

(७९) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१ व्यु१षा आवः पथ्या३ जनानां पञ्च क्षितीर्मानुषीर्बोधयन्ती ।
सुसंदृग्भिरुक्षभिर्भानुमश्रेद् वि सूर्यो रोदसी चक्षसावः ६४५

हे (उषः) उषा देवि ! (अर्वाचा बृहता ज्योतिष्मता रथेन) हमारी ओर आनेवाले बडे तेजस्वी रथसे (अस्मभ्यं वामं वक्षि) हमें उत्तम धन दे ।

[२] (६४१) (समिद्धः अग्निः सीं प्रति जरते) प्रदीप्त हुआ अग्नि बढ रहा है । (विप्रासः मतिभिः गृणन्तः प्रति जरन्ते) ज्ञानी लोग स्तोत्रोंसे स्तुति गाते हुए अपने कर्ममें बढ रहे हैं । (उषा देवी) उषा देवी (विश्वा तमांसि दुरिता) सब अन्धकारों और पापोंको (ज्योतिषा अपबाधमाना याति) अपने तेजसे दूर करती हुई जाती हैं ।

[३] (६४२) (एताः त्याः उषसः) ये वे उषायें (विभातीः ज्योतिः यच्छन्तीः) प्रकाशती और तेजको देती हुई (पुरस्तात् प्रति अदृश्रन्) हमारे सामने दीख रही हैं । (सूर्यं अग्निं यज्ञं अजीजनन्) सूर्य, अग्नि और यज्ञको प्रकट किया है । (अजुष्टं तमः अपाचीनं अगात्) अप्रिय अन्धकारको दूर किया है ।

इस मंत्रमें तथा कई अन्य मंत्रोंमें भी अनेक वचनमें उषाका प्रयोग हुआ है । सूर्य उदयके पूर्व अनेक उषाओंका होना इससे सिद्ध होता है । अनेक उषायें सूर्यको प्रकट करती हैं इसका स्पष्ट अर्थ यह है । प्रथम अनेक दिन उषःकाल ही होता है और पश्चात् सूर्यका उदय होता है ।

[४] (६४३) (दिवः दुहिता मघोनी अचेति) द्युलोककी पुत्री धनवाली होकर आती है । (विश्वे विभातीं उषसं पश्यन्ति) सब प्रकाशित होनेवाली उषाको देखते हैं । यह उषा (स्वधया युज्यमानं रथं आ अस्थात्) अन्नसे भरे रथपर चढती है । (यं सुयुजः अश्वासः आ वहन्ति) जिसको उत्तम शिक्षित घोडे इष्ट स्थानतक पहुंचाते हैं ।

[५] (६४४) (त्वा अद्य) तुझे आज (अस्माकासः मघवानः सुमनसः) हमारे धनी और बुद्धिमान पुरुष तथा (वयं च) हम सब (प्रतिबुधंत) जानते हैं, तेरा वर्णन करते हैं । हे (उषसः) उषाओ ! (विभातीः तिल्विलायध्वं) तुम प्रकाशित होकर जगत्को स्नेहयुक्त करो । (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सब सदा हमको कल्याणपूर्ण साधनोंसे सुरक्षित करो ।

विभातीः तिल्विलायध्वं-- स्वयं तेजस्वी बनो और विश्वको स्नेहसे भरपूर भर दो । जगत्से द्वेषभावको समूल दूर करो ।

[१] (६४५) (जनानां पथ्या उषाः वि आवः) लोगोंके लिये हितकारिणी उषा विशेष रीतिसे प्रकट हुई है । वह (मानुषीः पञ्च क्षितीः बोधयन्ती)

२ व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून् विशो न युक्ता उषसो यतन्ते ।
सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू ६४६

३ अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत् सुविताय श्रवांसि ।
वि दिवो देवी दुहिता दधात्यङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि ६४७

मानवोंके पांचों लोगोंको जगाती है। वह (सुसं-दृग्भिः उक्षभिः भानुं अश्रेत्) सुन्दर गौओंके साथ तेजका आश्रय करती है। (सूर्यः रोदसी चक्षसा वि आवः) सूर्य भी अपने तेजसे द्यावा पृथिवीको भर देता है।

१ जनानां पथ्याः — लोगोंके हितके कर्म करने चाहिये ।

२ मानुषी पञ्च क्षितीः बोधयन्ती—मनुष्योंके ज्ञानी, शूर, व्यापारी, कर्मचारी और अन्य लोगोंको अर्थात् सब मानवोंको ज्ञान देना चाहिये ।

३ भानुं अश्रेत्—प्रकाशका आश्रय करना चाहिये ।

४ सूर्यः रोदसी चक्षसा वि आवः--सूर्य अपने प्रकाशसे द्यावा पृथिवीको भर देता है । मनुष्य तेजस्वी बने और अपना प्रकाश चारों दिशाओंमें फैला देवे ।

[२] (६४६) (उषसः अक्तून् दिवः अन्तेषु व्यञ्जते) उषाएं अपने तेजोंको द्युलोकके अन्तिम प्रदेशतक फैलाती हैं। (युक्ताः विशः न यतन्ते) संघटित प्रजाजनोंकी तरह वे उषाएं अन्धकारके नाश करनेके लिये यत्न करती हैं। हे (उषः) उषा देवी! (ते गावः तमः सं आ वर्तयन्ति) तेरी किरणें अन्धकारका नाश करती हैं। (सूर्यः इव बाहू ज्योतिः यच्छन्ति) सूर्य अपनी बाहुओं किरणोंको जिस तरह फैलाता है, उस तरह उषाएं अपने तेजको फैलाती हैं।

१ उषसः अक्तून् दिवः अन्तेषु व्यञ्जते--उषाएं अपने प्रकाशको द्युलोकके अन्तिम प्रदेशतक फैलाती हैं। वैसी स्त्रियां अपने राष्ट्रके कोने कोनेतक ज्ञानका प्रकाश फैलाएं।

२ युक्ताः विशः न उषासः यतन्ते-संघटित प्रजाजनोंके समान उषायें अन्धकारके नाशके लिये यत्न करती हैं। इसी तरह प्रजाजन संघटित होकर, नाना संस्थाएं स्थापन करके ज्ञानके द्वारा प्रजाओंके अज्ञानको दूर करें ।

३ ते गावः तमः समावर्तयन्ति- उषाकी किरणें अन्धकारको समेट लेती है । और

४ सूर्यः इव बाहू ज्योतिः यच्छन्ति— जैसे सूर्य अपने किरणोंको फैलाता है वैसे उषा अपने प्रकाशको फैलाती है ।

जिस तरह सूर्य और उषा अपने प्रकाशसे जगत्के अन्धकरका नाश करते हैं, उस तरह पुरुष और स्त्री आलस्य छोडकर अपने ज्ञान द्वारा लोगोंके अज्ञानको दूर करें । ज्ञानका प्रकाश करें ।

[३] (६४७) (इन्द्रतमा मघोनी उषा अभूत्) श्रेष्ठ स्वामिनी ऐश्वर्यवाली उषा प्रकट हुई है। (सुविताय श्रवांसि अजीजनत्) सबके कल्याणके लिये उसने अन्नोंका निर्माण किया है। (दिवः दुहिता देवी) द्युलोककी पुत्री उषा देवी (अंगिरस्तमा) अंगारके समान तेजस्विनी होकर (सुकृते वसूनि वि दधाति) सत्कर्म करनेवालेके लिये धनोंका प्रदान करती है।

१ इन्द्रतमा मघोनी उषा अभूत्— उत्तम शासकको इन्द्र कहते हैं । यह उषा उत्तम रीतिसे शासन करती है इसलिये उसको ' इन्द्र-तमा ' कहा है । उत्तमसे उत्तम शासनका प्रबंध करनेवाली उषा प्रकट हुई है । इस तरह स्त्रियां घरका शासन प्रबंध उत्तमसे उत्तम रीतिसे करनेवाली हों । नगरका शासन करनेकी योग्यता (पुरं-धी) धारण करें । ऐसी स्त्रियां हों । स्त्रियां ' इन्द्र ' ही नहीं, परन्तु ' इन्द्र-तमा ' हों। उत्तमसे उत्तम शासन प्रबंध करनेकी शक्ति स्त्रियोंमें हो । **स्त्री-शिक्षा** ऐसी होनी चाहिये जिसे स्त्रियां कर्तव्यदक्ष हों और शासन प्रबंध करनेमें अत्यंत प्रवीण हों ।

२ सुविताय श्रवांसि अजीजनत्— लोगोंके कल्याणके लिये अन्नोंको सिद्ध करें । अन्न पकानेका कार्य स्त्रियोंके

४ तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत् स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना ।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः ॥ ६४८

५ देवंदेवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक् सूनृता ईरयन्ती ।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६४९

(८०) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । त्रिष्टुप् ।

१ प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् ।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा ॥ ६५०

अधीन हो । उनकी निग्रानीमें अर्थोंकी सिद्धता हो ।

३ **सुकृते वसूनि वि दधाति**— उषा सत्कर्म करनेवालेके लिये धन देती है । कर्म करनेवालेके कामको स्त्री देखे और उसके कर्मके अनुसार उसे धन देवे । कर्मचारीसे काम लेवे और उसको योग्य धन देवे । शासन प्रबंधका यह एक कार्य है ।

[४] (६४८) हे (उषः) उषा देवी ! (यावत् राधः स्तोतृभ्यः अरदः) जितना धन तुमने स्तोताओंको पूर्व समयमें दिया था, (तावत् राधः गृणाना अस्मभ्यं रास्व) उतना धन प्रशंसित होकर हमें दे दो । (वृषभस्य रवेण यां त्वा जज्ञुः) बैलके शब्दसे तुम्हें सब जानते हैं, उषाके उदयमें बैल तथा गौवें शब्द करती हैं जिससे पता लगता है कि उष:काल हुआ है । और (दृळ्हस्य अद्रेः दुरः वि और्णोः) सुदृढ पर्वतके कीलेका द्वार खोल दिया है और गौओंको बाहर निकाला है ।

उषःकाल होते ही गायें और बैल शब्द करने लगते हैं । तब गोशालाका सुदृढ द्वार खोला जाता है और गौवें तथा बैल बाहर निकाले जाते हैं । चरनेके लिये उनको खुला छोडा जाता है । ' सुदृढ कीलेका द्वार ' (दृळ्हस्य अद्रेः दुरः) ये शब्द बता रहे हैं कि गोशालाएं कैसी सुदृढ हुआ करती हैं ।

[५] (६४९) (देवंदेवं राधसे चोदयन्ती) प्रत्येक सत्कर्म कर्ताको ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये प्रेरित करती है, (अस्मद्र्यक् सूनृताः ईरयन्ती) हमारे सन्मुख सत्य भाषणको प्रेरित करती है । (व्युच्छन्ती नः सनये धियः धाः) अन्धकारको दूर करती हुई हमें धन देनेकी बुद्धिका धारण कर । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याणमय साधनोंसे सुरक्षित रख ।

१ **देवंदेवं राधसे चोदयन्ती**— प्रत्येक सत्कर्म कर्ताको सिद्धि प्राप्त करनेके मार्गसे जानेके लिये प्रेरित करो ।

२ **सूनृता ईरयन्ती**— उत्तम सत्य भाषण स्वयं करो और दूसरोंको भी उत्तम सत्य भाषण करनेकी प्रेरणा करो ।

३ **सनये धियः धाः**— दान देनेके लिये अपनी बुद्धिको प्रेरित करो ।

प्रत्येक कर्मकर्ता धन प्राप्त करनेके लिये, सिद्धि प्राप्त होनेतक प्रयत्न करे । सत्य तथा सरल भाषण करे और दान देनेकी बुद्धिको अपने अन्तःकरणमें रखे । यह मानवधर्म है ।

[१] (६५०) (विप्रासः वसिष्ठाः) ज्ञानी वसिष्ठ गोत्रके ऋषि (प्रथमाः स्तोमेभिः) सबसे प्रथम स्तोत्रोंसे और (गीर्भिः) वाणियोंसे (उषसं प्रति अबुध्रन्) उषाको जगाते हैं । उषाके समय जागते हैं । यह उषा (समन्ते रजसी विवर्तयन्ती) समान अन्तवाली, द्यावा पृथिवीको घुमानेवाली, (विश्वा भुवना आविः कृण्वन्ती) सब भुवनोंको प्रकाशित करती है ।

' **प्रथमाः विप्रासः वसिष्ठाः** '– ऐसा वसिष्ठोंका वर्णन यहां है । वसिष्ठ गोत्री विप्र पहिले थे । अन्य ऋषियोंके पूर्व समयके ये ज्ञानी थे । सबसे प्राचीन ऋषि ये थे । ये उषःकालमें उठते और उषाके स्तोत्र गाते थे ।

' **समन्ते रजसी विवर्तयन्ती** '— द्युलोक और

२ एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि ।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत् सूर्यं यज्ञमग्निम् ६५१

३ अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६५२

पृथिवी लोक, इनका आपसमें (सं-अन्ते) अन्त भाग जोडा है, एक दूसरेसे संबंध जुडा है ऐसा दीखता है। ये दोनों लोगोंको (विवर्तयन्ती) घुमानेवाली उषा है। ये दोनों लोग समान रीतिसे जैसे भ्रमण हो रहे हैं ऐसा दीखनेवाला इस भूमंडलपर एक ही स्थान है और वह है उत्तरीय ध्रुव प्रदेश। इस प्रदेशमें रहनेवाला मनुष्य देख सकता है कि भूमि और द्युलोक परस्पर लगे हैं और वे (विवर्तयन्ती) वर्तुल गतिसे घूम रहे हैं। प्रदक्षिणा कर रहे हैं। अपने चारों ओर इनका भ्रमण हो रहा है। उषा इन लोगोंको घुमा रही है यह आलंकारिक वर्णन है।

[२] (६५१) **(एषा स्या उषा नव्यं आयुः दधाना) यह वह उषा नवीन तारुण्यकी आयु धारण करती है, (गूढ्वी तमः ज्योतिषा) और गाढ अन्धकारको अपने तेजसे निवारण करती हुई (अबोधि) जागती हैं। (अग्रे) प्रारंभमें (अह्रयमाणा युवतिः एति) लज्जा न करनेवाली तरुण स्त्रीके समान यह सूर्यके पूर्व चलने लगती है। तथा (सूर्यं अग्निं यज्ञं प्र अचिकितत्) सूर्य, अग्नि और यज्ञको बतलाती है।**

१ एषा नव्यं आयुः दधाना उषा ज्योतिषा गूढ्वी तमः अबोधि— यह तरुण आयुवाली उषा अपने तेजसे अन्धकार दूर करती हुई पतिके पूर्व जाग उठी है। इसी तरह स्त्री पतिके पूर्व उठे, अपने कर्तव्य कर्मको करे, प्रकाश करके अन्धकारको दूर करे।

२ अह्रयमाणा युवतिः अग्रे एति अग्निं यज्ञं आचिकितत्— लज्जा न करनेवाली तरुण स्त्री पतिके पहिले उठती है और अग्नि प्रदीप्त करके यज्ञको करती है।

पतिके पूर्व स्त्री उठे, अपने कर्तव्य कर्म करे, जिससे पतिका प्रेम वैसी तरुणीपर जमता है। परंतु जो सुस्त स्त्री होती है, वह पतिके लिये उतनी प्रिय नहीं होती। स्त्री पहिले उठे ऐसा कहनेका तात्पर्य यह नहीं है कि पति बहुत देरी करके उठे। '**उपर्बुध्**' उषःकालमें उठनेवाले पुरुषोंका वर्णन अन्यान्य मंत्रोंमें किया ही है।

[३] (६५२) **(अश्वावतीः गोमतीः वीरवतीः) घोडे, गौवें और वीर पुरुष-वीरपुत्र जिसके साथ हैं ऐसी (भद्राः उषासः नः सदं उच्छन्तु) कल्याण करनेवाली उषाएं हमारे घरको प्रकाशित करें। ये उषाएं (घृतं दुहानाः) घी अथवा जलको दुहकर देनेवाली और (विश्वतः प्रपीताः) सब ओरसे परिपुष्ट हुई हों। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याणमय साधनोंसे सुरक्षित रखो।**

उषःकालमें घोडे, गौवें और वीर पुत्र घरसे बाहर आते हैं, घर इनसे शोभावाला होता है। गौके दूधका घी पर्याप्त तैयार होता है। कल दोहे दूधका रात्रीमें दही बनाकर सवेरे मख्खन निकाल कर उसका घी बनाना। इस घीका नाम 'हैयंगवीन' है। यह घी सवेरे ही तैयार होता है इसलिये ऐसे घीको उषा देती है ऐसा कहा है।

इस मंत्रमें '**उषासः**' अनेक उषाएं ऐसा कहा है। सूर्य उदयके पहिले अनेक उषाएं इस तरह वैभव संपन्न आती हैं। पश्चात् सूर्य देव, उषाके पति देव आते है। **(उषासः नः सदं उच्छन्तु)** ऐसी भाग्ययुक्त उषाएं हमारे घरको उज्वल बनावें। सूर्योदयके पूर्व अधिक उषाएं आयें और वे हमारे घरको तेजस्वी बनावें।

(८१) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषसः । प्रगाथः=(विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

१ प्रत्यु अदर्श्यायत्यु१च्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो महि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ६५३

२ उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ६५४

३ प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि ।
या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ६५५

४ उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम सूनवः ६५६

---

[१] (६५३) (आयती उच्छन्ती दिवः दुहिता) आनेवाली अन्धकारको दूर करनेवाली द्युलोककी दुहिता उषा (प्रति अदर्शि उ) दिखाई देती है। (महि तमः अप उ व्ययति) बडे अन्धकारको दूर करती है। और (सूनरी चक्षसे ज्योतिः कृणोति) उत्तम नेतृत्व करनेवाली यह उषा देखनेके लिये प्रकाशको करती है। फैलाती है।

द्युलोककी पुत्री उषा आती है, लोगोंको मार्ग दिखानेके लिये अन्धकार दूर करती है और प्रकाशको फैलाती है । इसी तरह घरकी गृहिणी अपने घरमें प्रकाश करे और अन्धेरा दूर करे। और घरका प्रबंध उत्तम करे ।

[२] (६५४) (सूर्यः उस्रियाः सचा उत् सृजते) सूर्य किरणोंको साथ साथ ऊपर फेंकता है। तथा (उद्यत् नक्षत्रं आर्चिमत्) सूर्य उदय होनेके पहले नक्षत्रोंको तेजस्वी बनाता है। हे उषा देवी ! (तव इत् सूर्यस्य च व्युषि) तेरे तथा सूर्यके प्रकाशित होनेपर (भक्तेन संगमेमहि) अन्नके साथ मिलेंगे, अन्नको प्राप्त होंगे।

सूर्य जबतक पृथ्वीके नीचे रहता है, तबतक वह अपने किरणोंको ऊपर फेंकता है जिससे चन्द्रादि प्रकाशित होते हैं। यहां ' नक्षत्र ' शब्दका अर्थ चन्द्र, बुध, शुक्र, आदि ग्रह ही हैं। क्योंकि नक्षत्रका स्वयं प्रकाश है और वहांतक हमारे सूर्यका प्रकाश पहुंच नहीं सकता। ' सूर्यरश्मिः चन्द्रमाः ।' वा० य० १८ । ४० ऐसे मंत्रोंमें सूर्यके रश्मि चन्द्रमाको प्रकाशित करते हैं ऐसा कहा है । इन मंत्रोंके साथ इस मन्त्रका विचार करनेसे यहांका ' नक्षत्र ' पद चन्द्रादि ग्रहोंका वाचक दीखता है । सूर्य तथा उषाका उदय होनेपर चावल पकाते हैं, उसका हवन होता है और फिर वह सब खाते हैं ।

[३] (६५५) हे (दिवः दुहितः उषः) द्युलोककी पुत्री उषा देवी ! (जीराः त्वा प्रति अभुत्स्महि) हम शीघ्र कर्म करनेवाले तुझे जगावेंगे । हे (वनन्वति) धनवाली उषा ! (या पुरु स्पार्हं वहसि) जो तू बहुत स्पृहणीय धनको लाती है और (दाशुषे मयः रत्नं न) दाताके लिये सुख और धन देनेके समान तू सबको सुख और धन देती है ।

हम सब प्रभात समयमें उठते हैं, (जीराः) अपने कर्तव्य कर्म अतिशीघ्र तथा अत्यंत उत्तम रीतिसे करते हैं इसलिये हम स्पृहणीय धन तथा उत्तम सुख प्राप्त करते हैं। जो इस तरह प्रातः उठकर अपने कर्तव्य करेगा वह भी उत्तम धन प्राप्त करेगा ।

[४] (६५६) हे (महि देवि) महति उषा देवते ! तू (व्युच्छन्ती मंहना) अन्धकार दूर करती और अपने महत्त्वको प्रकट करती है, (या स्वः दृशे प्रख्ये कृणोषि) और जो तू विश्वके दर्शन और प्रबोधनके लिये प्रकाश करती है। (तस्याः ते रत्नभाजः ईमहे) इस तरह तुझ रत्नोंका सेवन

५ तच्चित्रं राध आ भरोषो यद् दीर्घश्रुत्तमम् ।
यत् ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद् रास्व भुनजामहै ६५७

६ श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः ।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः । ६५८

[८२] इंद्रावरुण प्रकरण

(८२) १० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रावरुणौ । जगती ।

१ इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।
दीर्घप्रयुज्यमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः ६५९

करनेवालीसे हम प्रार्थना करते हैं कि (वयं मातुः सूनवः न स्याम) हम माताके जैसे पुत्र होते हैं वैसे हम तेरे पुत्र बनें।

उषा प्रकाशती है, उससे सब लोग जागते हैं और मार्ग देखते है। यह उषा रत्नोंवाली माता जैसी है। उसके हम पुत्र जैसे हों और वह हमारी माता जैसी हो। माता जैसी पुत्रोंको प्रेमसे अन्न धन देती है वैसी उषा हमें अन्न धन और सुख देवे।

[५] (६५७) हे उषा देवी! (यत् दीर्घश्रुत्तमं चित्रं राधः) जो अत्यंत यशस्वी विलक्षण धन है (तत् आ भर) वह हमें भर दो। हे दिवः दुहितः) द्युलोककी पुत्री उषा देवी! (यत् ते मर्तभोजनं) जो तुम्हारे पास मनुष्योंके योग्य भोजन है, (तत् रास्व) वह भोजन हमें दो, हम (भुनजामहै) भोजन करेंगे।

हमें यशस्वी धन और मानवोंके योग्य अन्न मिले।

[६] (६५८) हे उषा देवी! (सूरिभ्यः अस्मभ्यं अमृतं वसुत्वनं श्रवः) हम ज्ञानियोंके लिये अमर धन और यश तथा (गोमतः वाजान्) गौओंसे युक्त अन्न दे दो। (मघोनः चोदयित्री सूनृतावती उषाः) धनवानोंको यज्ञ करनेकी प्रेरणा करनेवाली और सत्य भाषणकी प्रेरणा करनेवाली उषा (स्रिधः अप उच्छत्) शत्रुओंका नाश करती है।

ज्ञानियोंको अमर धन युक्त यश मिले, उनको गौवें मिलें, अन्न पर्याप्त प्रमाणमें प्राप्त हों, उससे वे यज्ञ करें, सत्य व्यवहारको बढा देवें और मानवताके शत्रुओंका नाश करें और सज्जनोंकी उन्नति करें।

॥ यहां उषा प्रकरण समाप्त ॥

[१] (६५९) हे इन्द्र और वरुण! (युवं नः विशे जनाय) तुम दोनों हमारे प्रजा जनोंके लिये (अध्वराय) हिंसारहित सत्कर्म करनेके लिये (महि शर्म यच्छतं) बड़ा सुख, घर आदि दे दो। तथा (दीर्घ-प्रयुज्यं यः अति वनुष्यति) बड़े यज्ञ करनेवाले सत्कर्मकर्ताको जो अत्यंत कष्ट देता है, और जो (पृतनासु दुः ढ्यः) युद्धोंमें पराजित होना कठिन है उस शत्रुपर (वयं जयेम) हम विजय करेंगे।

सज्जनोंकी सुरक्षा

१ **विशे जनाय अध्वराय महि शर्म यच्छतं—** प्रजा जनोंको हिंसा कुटिलता रहित प्रशंसित कर्म करनेके लिये बडा सुख, बडा संरक्षण, बडा घर या स्थान दे डालो। जहां वह रहे और सुखसे अपने प्रशंसित कर्म करे और जनताको सुखी करे।

दुष्टोंको दण्ड

१ **यः पृतनासु दूढ्यः दीर्घ प्रयुज्यं अति वनुष्यति—** जो युद्धोंमें पराजित होना कठिन है, ऐसा प्रबल

२ सम्राळन्यः स्वराळन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू ।
विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः ६६०

३ अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम् ।
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ६६१

शत्रु, सत्कर्म करनेमें सदा दक्ष रहनेवाले सज्जनको अत्यंत कष्ट देता है, उसीको (वयं जयेम-) हम पराजित करेंगे । इस को पराजित करनेसे सब प्रजाजन सुखी होंगे और सज्जन अपना प्रशंसित कर्म करते रहेंगे जिससे जनता सुखी होगी ।

दुष्टोंका नाश और सज्जनोंकी सुरक्षा करना ही कर्तव्य है । यह इस मंत्रमें बताया है । दुष्ट प्रबल शत्रुका पूर्ण नाश करनेका सामर्थ्य प्राप्त करना चाहिये ।

[२] (६६०) **हे इन्द्र और वरुण ! (वां) तुममेंसे (अन्यः संराट्) एक वरुण सम्राट है और (अन्यः स्वराट्) दूसरा स्वराट् है (उच्यते) ऐसा कहा जाता है । आप दोनों (महान्तौ महावसू) बडे हैं और बडे धनवाले हैं । हे (वृषणा) सामर्थ्यवानो ! (परमे व्योमनि विश्वे देवासः) परम उच्च आकाशमें सब देवोंने (वां) तुम दोनोंके लिये (ओजः बलं च सं दधुः) ओज और बल धारण किया है ।**

राजाका बडा धनकोश ।

इन्द्र और वरुण ये दो बडे देव हैं । इनमें वरुण सम्राट् है, और इन्द्र स्वराट् है । सम्राट् वह होता है कि जो अनेक राज्यों-पर अपना शासन चलाता है और स्वराट् वह है कि जो केवल अपने ही सामर्थ्यसे अपने सब कर्म निभाता है । दूसरेकी सहा-यता जिसको नहीं लेनी पडती । इस तरह ये दोनों बडे शासक हैं । ये (महान्तौ महावसू) ये स्वयं बडे हैं और अपने पास बहुत धन रखनेवाले हैं । राष्ट्रके शासकोंको अपने पास बहुत धन रखना चाहिये । राजाका कोश बडा होना चाहिये । कोशहीन राजा निर्बल होता है । राजाको बडे धनकोशकी अत्यंत आव-श्यकता है यह यहां बताया है ।

राजा अथवा शासक (वृषणा) बलवान् चाहिये । सामर्थ्य-वान् चाहिये । निर्बल और निर्धन नहीं होना चाहिये ।

विश्वे देवासः परमे व्योमनि ओजः बलं संदधुः- सब देव वीर परम सुरक्षित स्थानमें इस सम्राट्के लिये बल और ओजका धारण करते हैं । **' परमे व्योमनि '** (परतमे वि-ओमनि) ओम्का अर्थ संरक्षण है (अवति इति ओम्) जो रक्षक है वही ओम् है । ' वि-ओम् ' का अर्थ विशेष संरक्षण । **' परमे व्योमनि '** श्रेष्ठतम विशेष संरक्षणके स्थानमें उसको रखते हैं । सम्राट्, स्वराट् तथा उनकी प्रजा उत्तम सुरक्षित रखनी चाहिये । देव उनको कहते हैं कि जो व्यवहार करनेवाले विबुध होते हैं । ये राष्ट्रका व्यवहार उत्तम करनेवाले विबुध इन शासकोंके लिये ओज और बल धारण करें और बढावें ।

राष्ट्रमें ऐसी व्यवस्था हो कि जिससे सब राष्ट्र सुरक्षित हो और सब व्यवहार करनेवाले विबुध उसका बल बढाते हों । देव शरीरमें इन्द्रियगण हैं, राष्ट्रमें अधिकारी तथा ज्ञानी और विश्वमें सूर्यादि देवगण हैं । राष्ट्रका बल वे ही बढा सकते हैं कि जो राष्ट्रके सुप्रबंधसे सुरक्षित होते हैं और अपना कर्तव्य उत्तम रीतिसे कर सकते हैं ।

[३] (६६१) **हे इन्द्रावरुणो ! (अपां खानि ओजसा अनु अतृन्तं) जलोंके द्वार अपने बलसे तुमने खोल दिये, (सूर्यं दिवि प्रभुं आ ऐरयतं) तुमने सूर्यको द्युलोकका प्रभु बनाकर प्रेरित किया । (अस्य मायिनः मदे अपितः अपिन्वतं) इस शक्तिशाली सोमके पानसे आनंदित होकर जल-रहित नदियोंको तुमने भरपूर भर दिया । और (धियः पिन्वतं) हमारे बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंको पूर्ण किया ।**

इन्द्रने तथा वरुणने जलोंके द्वार खोल दिये जिनसे जलोंके प्रवाह बहने लगे, जल रहित नदियां भी जलसे परिपूर्ण हो गयी । सूर्य आकाशमें प्रकाशने लगा और यज्ञ कर्म शुरू हुए । बडे अन्धकारके दूर होनेपर यह हुआ । अन्धकारके समय जल प्रवाहोंका बंद होना और सूर्य प्रकाश होनेपर जल प्रवाहोंका खुल जाना यह उत्तरीय प्रदेशोंमें, हिम प्रदेशोंमें ही होनेवाली बात है ।

४ युवामिद् युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रावरुणा सुहवा हवामहे ६६२

५ इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथुर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना ।
क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते ६६३

---

[४] (६६२) हे इन्द्र और वरुणो ! (वह्नयः युत्सु पृतनासु युवां इत्) अग्निवत् तेजस्वी वीर युद्धोंमें शत्रुसेनाओंमें तुम्हें ही बुलाते हैं। (मितज्ञवः क्षेमस्य प्रसवे युवां) संकुचित जानुवाले रक्षणके समय तुम्हें बुलाते हैं। (कारवः उभयस्य वस्वः ईशाना) हम कारीगर लोग भूलोक और द्युलोकके स्वामी (सुहवा हवामहे) सहजहीसे बुलाने योग्य आप दोनोंको हम सहाय्यार्थ बुलाते हैं।

युद्धमें लडनेवाले वीर, आसन लगाकर बैठनेवाले ध्यानस्थ ज्ञानी और कारीगर लोग काठिन समयमें सहायार्थ इनको बुलाते हैं। ऐसा बल सबको प्राप्त करना चाहिये।

१ मितज्ञवः क्षेमस्य प्रसवे युवां हवन्ते—घुटने जोडकर आसन लगाकर बैठनेवाले आत्मिक क्षेमकी प्राप्तिके लिये तुम्हें बुलाते हैं। यह योग साधन करनेवाले ज्ञानियोंकी पुकार है।

२ वह्नयः युत्सु पृतनासु युवां इत् हवन्ते-अग्निके समान तेजस्वी क्षत्रिय युद्धोंमें लडनेके लिये आयी शत्रुसेनाओंके साथ लडनेके समय सहायार्थ तुम्हें बुलाते हैं। यह क्षत्रियोंकी पुकार है।

३ कारवः उभयस्य वस्वः ईशाना हवन्ते— कारीगर लोग दोनों प्रकारके धनोंके स्वामी ऐसे जो तुम दोनों, उनको बुलाते हो। यह वैश्यों और शूद्रोंकी पुकार है।

इस तरह चारों वर्णोंके लोग इन्द्र और वरुणको बुलाते हैं। ऐसे शक्तिशाली ये इन्द्र और वरुण हैं। इस तरह शक्ति प्राप्त करनी चाहिये और चारों वर्णोंके लोगोंको सहायता पहुंचानी चाहिये।

[५] (६६३) हे इन्द्र और वरुण ! (यत् भुवनस्य इमानि विश्वा जातानि मज्मना चक्रथुः) जो तुमने इस भुवनके अन्दरके इन सभी प्राणियोंको अपने बलसे निर्माण किया है, उस कारण (मित्रः क्षेमेण वरुणं दुवस्यति) मित्र सबके कल्याण करनेके हेतुसे वरुणकी सेवा करता है और (अन्यः मरुद्भिः उग्रः शुभं ईयते) दूसरा इन्द्र मरुतोंके साथ रहनेसे उग्र वीर बनकर सबका शुभ करता है।

१ भुवनस्य विश्वा जातानि मज्मना चक्रथुः— इस भुवनमें जो नाना प्रकारके पदार्थ है उनको तुम दोनों अपनी निज शक्तिसे निर्माण करते हो।

२ क्षेमेण मित्रः वरुणं दुवस्यति— सबका क्षेम साधन करनेके लिये मित्र वरुणकी सहायता करता है। मित्र और वरुण सबका क्षेम करते हैं। जो पदार्थ हैं उनके उपयोगसे जो सुख मिलता है उसका नाम क्षेम है। यह सुख 'मित्र तथा वरुण' देते हैं। मित्र भावसे रहना और वरिष्ठ श्रेष्ठ उच्च विचारोंके साथ जीना यह मित्र वरुणोंका स्वभाव है। इससे वे विश्वका कल्याण करते हैं।

३ अन्यः इन्द्रः उग्रः मरुद्भिः शुभं ईयते— दूसरा इन्द्र बडा शूरवीर है। वह मरनेतक लडनेवाले सैनिकोंको साथ लेकर सबकी सुरक्षा करता है। और सुरक्षा करके सबका कल्याण करता है।

राज्यशासनके दो कर्तव्य

यहां राज्य शासनके दो कर्तव्य बताये हैं। शूर सेनापति (उग्रः) उग्र भावसे अपने सैनिकोंके द्वारा अन्तर्बाह्य शत्रुओंका निर्मूलन करके प्रजाका शुभ करे। और दूसरा मित्र भाव नागरिकोंमें बढाकर सब प्रजाजनोंका क्षेम साधन करे। इन्द्र वरुणोंके वर्णनसे राज्य शासकके ये दो कर्तव्य यहां बताये हैं।

६ महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष ओजो मिमाते ध्रुवमस्य यत् स्वम् ।
अजामिमन्यः श्नथयन्तमातिरद् दभ्रेभिरन्यः प्र वृणोति भूयसः ६६४

७ न तमंहो न दुरितानि मर्त्यमिन्द्रावरुणा न तपः कुतश्चन ।
यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिह्वृतिः ६६५

८ अर्वाङ्नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः ।
युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम् ६६६

[६] (६६४) (वरुणस्य त्विषे ओजः मिमाते) मित्र और वरुणका तेज बढानेके लिये बलको बढाते हैं। (महे शुल्काय) विशेष धनकी प्राप्ति हो इसलिये तथा (अस्य यत् ध्रुवं स्वं) इसका जो स्थायी निज बल है उसको बढानेके लिये यह किया जाता है। (अन्यः श्नथयन्तं अजामिं आ आतिरत्) इनमेंसे एक वरुण हिंसक शत्रुके पार हो जाता है, और (अन्यः दभ्रेभिः भूयसः प्र वृणोति) दूसरा इन्द्र अल्प साधनोंसे ही महान् शत्रुओंको घेरता है।

राज्यशासकके पांच कर्तव्य

१ अन्यः श्नथयन्त अ-जामिं आ आतिरत्— एक अधिकारी बन्धुभाव न रखनेवाले हिंसक दुष्टको दूर करे अर्थात् इस गुण्डेके कष्टोंसे नागरिकोंको बचावे। नागरिकोंमें जो भाईके समान परस्पर व्यवहार करते हैं उनकी सुरक्षा होनी चाहिये, परंतु बन्धुवत् व्यवहार न करके जो गुण्डापन करेंगे उनको दण्ड देना चाहिये। यह दण्ड देनेका कार्य यहां वरुण करता है। यह न्यायाधीशका कार्य है। नागरिकोंके अन्दर शान्ति इससे रखी जाती है।

२ अन्यः दभ्रेभिः भूयसः प्र वृणोति— दूसरा अधिकारी अपने थोडेसे सैनिकों द्वारा बहुतसे शत्रुओंको घेरता है और प्रजाको सुरक्षित रखता है। यह इन्द्रका कार्य है। शत्रुओंको दबाना और राष्ट्रकी सुरक्षा करना यह एक महत्त्वका कार्य है। यह सैनिकीय कार्य है।

३ त्विषे ओजः मिमाते— तेज बढानेके लिये बलको निर्माण करते हैं और बढाते हैं। राष्ट्रमें जितना बल होगा, उतना उसका तेज बढ सकता है।

४ महे शुल्काय— बडा धन प्राप्त करनेके लिये, धनकी वृद्धि करनेके लिये प्रयत्न करते हैं और—

५ यत् ध्रुवं स्वं— जो स्थायी निजधन है उसकी सुरक्षाके लिये प्रयत्न करते हैं।

राष्ट्रमें बल और तेज बढाना चाहिये, धन बढाना चाहिये, और जो स्थायी निजधन व्यक्तिके पास है वह भी सुरक्षित करना चाहिये। राज्यशासनके ये पांच तत्त्व इन्द्र वरुणके वर्णनके द्वारा बताये हैं

[७] (६६५) हे इन्द्र और वरुणो! (तं मर्तं अंहः न नशते) उस मानवका नाश पाप नहीं कर सकता। (न दुरितानि) न दुष्ट कर्म उसके पास जाते हैं, (कुतः च न तपः न) न किसी तरह संताप उसके पास जाता है। वह इन कष्टोंसे दूर रहता है। हे (देवा) देवो! तुम (यस्य अध्वरं गच्छथः) जिसके यज्ञके पास जाते हो, (वीथः) जिसका हित तुम चाहते हो, (तं मर्तस्य परिह्वृतिः न नशते) उसके पास मानवोंका विनाश नहीं पहुंच सकता।

इन्द्र तथा वरुण जिसका रक्षण करते हैं उसके पास पाप, दुःख, दुष्कर्म, पीडा, बाधा अथवा अन्य प्रकारके कष्ट पहुंच ही, नहीं सकते।

[८] (६६६) हे (नरा) नेता इन्द्रवरुणो! (दैव्येन अवसा) दिव्य रक्षणके साथ (अर्वाक् आगतं) हमारे पास आओ। (हवं शृणुतं) मेरी प्रार्थना श्रवण करो। (यदि मे जुजोषथः) यदि मुझपर तुम्हारी प्रीति है तो ऐसा करो। हे मित्र और वरुणो! (युवयोः सख्यं) तुम्हारी मित्रता,

९ अस्माकमिन्द्रावरुणा भरेभरे पुरोयोधा भवतं कृष्ट्योजसा ।
यद् वां हवन्त उभये अध स्पृधि नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु ६६७

१० अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ६६८

(उत वा यत् आप्यं) जो बन्धुता है और जो तुम्हारा (मार्डीकं) सुख देनेका साधन है वह हमें (नि यच्छतं) दे दो।

सुरक्षा, मित्रभाव, बन्धुभाव और सुख

१ दैव्येन अवसा अर्वाक् आगतं— सुरक्षाके दिव्य साधनके साथ हमारे पास आओ । अर्थात् हमारे पास आओ और उत्तम साधनोंसे हमारी सुरक्षा करो ।

२ युवयोः सख्यं आप्यं मार्डीकं नियच्छतं- तुम्हारी मित्रता, बन्धुता और सुखदायिता हमें प्राप्त हो ।

सुरक्षाके दिव्य साधनोंसे हम सब प्रजाजनोंकी सुरक्षा करो । और मित्रता, बन्धुता और सुखदायिताकी प्राप्ति सबको हो। जनता सुरक्षित हो और मित्रभाव, बन्धुभाव तथा सुखसे वह युक्त हो ।

[९] (६६७) हे (कृष्टयोजसा) शत्रुको खींचनेवाले बलसे युक्त इन्द्रवरुणो ! (भरे भरे पुरोयोधा भवतं) प्रत्येक युद्धमें हमारे पक्षमें रहकर अग्र भागमें रहकर युद्ध करनेवाले बनो। (यत् उभये नरः स्पृधि वां हवन्ते) दोनों प्रकारके मनुष्य स्पर्धा करनेके समय तुम्हें बुलाते हैं (अध तोकस्य तनयस्य सातिषु) और बाल बच्चोंकी सेवाके समय भी तुम्हें बुलाते हैं ।

प्रभावी सामर्थ्य

१ कृष्टि-ओजस्— (कृष्टि) शत्रुको अपनी ओर आकर्षित करनेवाली (ओजस्) शक्ति जिसमें है। जिसकी शक्ति इतनी है कि शत्रु स्वयं उनके पास खींचे जाते हैं और विनष्ट होते हैं । स्वयं शत्रु पर आक्रमण करके उनका नाश करना यह शक्ति एक प्रकारकी है । पर यहां जिस शक्तिका वर्णन किया है वह शक्ति ऐसी है कि जिससे शत्रु स्वयं इसके पास आकर्षित होता है और बांधा जाकर विनष्ट होता है । शत्रु इसके जालमें स्वयं फंसता है और विनष्ट होता है ।

२ भरे भरे पुरोयोधा भवत— पूर्वोक्त प्रकारके शक्तिशाली वीर प्रत्येक युद्धमें अग्र भागमें रहकर युद्ध करनेवाले हों । अग्र भागमें रहकर युद्ध करनेवाले वीर बडे प्रबल होने चाहिये ।

३ उभये नरः स्पृधि हवन्ते-- दोनों प्रकारके लोग, धनी-निर्धन, ज्ञानी-अज्ञानी, शूर-भीरु, स्त्री-पुरुष ये दो प्रकारके लोग सर्वत्र होते हैं । ये दोनों प्रकारके लोग स्पर्धाके समय पूर्वोक्त प्रकारके शक्तिवाले वीरोंको ही अपनी सहायार्थ बुलाते हैं ।

४ तोकस्य तनयस्य सातिषु हवन्ते— बाल बच्चोंकी उन्नति के कार्य करनेके समय पूर्वोक्त प्रकारके बलवान् वीरोंको ही लोग बुलाते है ।

इस मंत्रमें कहा बल प्राप्त करना वीरोंके लिये उचित है ।

[१०] (६६८) इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा ये देव (अस्मे) हमें (सप्रथः महि द्युम्नं शर्म यच्छन्तु) विशेष विस्तृत महान तेजस्वी घर, धन या सुख प्रदान करें। (ऋतावृधः अदिते ज्योतिः अवध्रं) सत्य मार्गका संवर्धन करनेवाली अदितिका तेज हमारे लिये विनाशक न बने। हम (सवितुः देवस्य श्लोकं मनामहे) सविता देवकी स्तुति करेंगे ।

अस्मे महि द्युम्नं सप्रथः शर्म यच्छन्तु— हमें बडा तेजस्वी अति विस्तृत घर प्राप्त हो । हमारा घर ऐसा सुन्दर और बडा विस्तृत हो । शर्म-संरक्षण, घर, सुख, धन ।

(८३) १० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रावरुणौ । जगती ।

१ युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् ॥ ६६९

२ यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किं चन प्रियम् ।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ॥ ६७०

---

[१] (६६९) हे (नरा मित्रावरुणा) नेता मित्र तथा वरुण! (युवां आप्यं पश्यमानासः) तुम्हारे बन्धुभावकी ओर देखनेवाले (गव्यन्तः पृथुपर्शवः) गौओंकी प्राप्ति की इच्छा करनेवाले और बडे परशुको धारण करनेवाले (प्राचा ययुः) पूर्वकी ओर चले। तुम (दासा च वृत्रा आर्याणि च हतं) विनाशक, घेरनेवाले शत्रु और जो क्षुद्र आर्य भी शत्रुसे मिले हैं उनको भी मारो। (सुदासं अवसा अवतं) अपने सुदासको अपनी शक्तिसे सुरक्षित रखो।

'पृथुपर्शवः = बडे परशु धारण करनेवाले। दर्भ तथा समिधा काटनेके लिये परशु अपने पास रखनेवाले।

'दासा, वृत्रा, आर्याणि' = (दासानि, वृत्राणि, आर्याणि) ये नपूंसक लिंगी प्रयोग क्षुद्र शत्रुका अर्थ बता रहे हैं। इनमें 'आर्य' पद भी नपूंसक लिंगमें हैं। वास्तवमें आर्य शब्द पुल्लिंग है, परंतु यहां नपूंसक लिंगमें उसका प्रयोग किया है। यह शत्रुभाव बतानेके लिये है। (दासानि) विनाश घात पात करनेवाले शत्रु, (वृत्राणि) घेरकर नाश करनेवाले शत्रु, (आर्याणि) आर्योंके समान दीखनेवाले परंतु शत्रुके साथ मिले हुए शत्रु ये सब शत्रु ही हैं। अपने आर्य भाई जिस समय शत्रुके साथ मिलते हैं, और शत्रुका बल बढाकर अपना नाश करना चाहते हैं, तब तो वे बडे शत्रु जैसे ही वध्य होते हैं। नपूंसक लिंगमें 'आर्य' पदका प्रयोग शत्रुभावका दर्शक है। जहां पुल्लिंगमें 'आर्य' शब्दका प्रयोग होगा वहां उसका अर्थ 'श्रेष्ठ, सज्जन, सत्पुरुष' ऐसा होगा। यह पुल्लिंग और नपूंसक लिंग प्रयोगका भाव पाठक ध्यानमें धारण करें।

कई अनुवादकोंने यहांके 'आर्याणि' पदका अर्थ 'आर्य, श्रेष्ठ' ऐसा अर्थ करके सुदासके साथ उनकी रक्षा करो ऐसा भाव बताया है, परंतु वह भाव अशुद्ध है। वैसा अर्थ यहां आर्य पदका होता तो वह पद पुल्लिंगमें रहता।

'दासानि तथा सुदासं' ये दो पद यहां है। पहिला नपूंसक लिंग है, अतः शत्रुभाव बताता है और दूसरा पुल्लिंगमें तथा उसके पूर्व 'सु' लगा है इसलिये उसका अर्थ अच्छा है। दास शब्द पुल्लिंग होनेपर भी उसका अर्थ दुष्ट ऐसा ही है, पर नपुंसक लिंगमें प्रयोग होनेसे वह सर्वथा निंदनीय समझना योग्य है। इसलिये इस मंत्रमें 'सुदास' की सुरक्षा और 'दासानि' का विनाश करनेकी सूचना यहां दी है।

[२] (६७०) (यत्र कृतध्वजः नरः समयन्ते) जहां मनुष्य अपने ध्वज उठाकर युद्धके लिये एकत्रित होते हैं, (यस्मिन् आजौ किंचन प्रियं भवति) जिस युद्धमें कुछ भी हित नहीं होता है। (यत्र स्वर्दृशः भुवना भयन्ते) जिस युद्धमें स्वर्गदर्शी लोग भयभीत होते हैं, हे इंद्र और वरुण! (तत्र नः अधि वोचतं) वहां हमारे अनुकूल बात करो।

१ कृतध्वजः नरः समयन्ते— अपने अपने ध्वज ऊपर उठाकर युद्धके लिये मनुष्य इकट्ठे होते हैं। यहां ध्वजको ऊपर उठाना यह एक विशेष उत्साहका चिन्ह बताया है।

युद्धका परिणाम अच्छा नहीं है

२ आजौ किंच प्रियं न भवति— युद्धमें कुच्छ भी प्रिय अथवा हितकारक नहीं होता। युद्धका परिणाम अच्छा नहीं होता। इसलिये युद्ध टालनेका यत्न करना योग्य है। युद्ध अपरिहार्य हुआ तो ही करना, यह आर्योंकी नीति यहां दीखती है। भगवान् श्रीकृष्णने पांच गांव मिलनेपर युद्ध न करनेका पांडवोंका निश्चय घोषित किया था। आधे राज्यके स्वामी पांच गांव लेकर चुप होना चाहते हैं यह आर्यनीति है। युद्ध जहांतक हो सके वहां तक न करना यह आर्योंकी इच्छा रहती है। क्योंकि युद्धका परिणाम ठीक नहीं होता। इसलिये युद्ध टालना योग्य है। पर युद्धकी तैयारी रखनी चाहिये। पांच गांव भी नहीं मिले, सूईके अग्र भाग पर रहनेवाली मिट्टी भी विना

३ सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षतेन्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत् ।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागवसा हवनश्रुता गतम् ६७१

४ इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावतम् ।
ब्रह्माण्येषां शृणुतं हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत् पुरोहितिः ६७२

युद्धके प्राप्त होनेकी संभावना न रही तो युद्ध अपरिहार्य होगा और वह करना ही पडेगा । ऐसे युद्ध आर्य करते ही थे। इसलिये आर्य युद्ध टालनेकी इच्छा करते हुए भी युद्धके लिये सदा सिद्ध करते थे । अर्थात् नियम यह हुआ कि युद्ध टालनेका प्रयत्न करना, पर सदा युद्धके लिये पूर्ण रीतिसे सुसज्य रहना चाहिये ।

३ यत्र स्वर्दृशः भुवना भयन्ते--युद्धके लिये आत्मज्ञानी मनुष्य भयभीत होते हैं । ज्ञानी मनुष्योंको युद्धका विशेष भय होता है । क्योंकि युद्धमें सभ्यताका नाश होता है । और उस सभ्यताका निर्माण करना बडे समयका कार्य होता है ।

४ तत्र नः अधिवोचत— उस युद्धमें हमारे पक्षका समर्थन करो । अपना पक्ष निर्दोष है ऐसा बताओ । इतना तो अवश्य ही करना चाहिये । अपना पक्ष समर्थनीय है ऐसा बतानेकी शक्यता अपने पक्षके पास होनी चाहिये । अपना पक्ष आक्रमक नहीं है, युद्ध टालनेका यत्न पूर्ण रूपसे हमारे पक्षने किया, शत्रुपक्ष आक्रमणकारी है, उसने हमारे ऊपर हमला किया, तत्पश्चात् हमें अपने बचाव करनेके लिये युद्धमें उतरना पडा । ऐसा बताना चाहिये । इससे अपने पक्षकी निर्दोषता सिद्ध होगी।

युद्धकी नीति कैसी होनी चाहिये, इस विषयमें यह मंत्र बडे उत्तम निर्देश देता है । युद्ध टालनेका यत्न करना चाहिये, अपने पक्षकी निर्दोषता सिद्ध होनी चाहिये, त्याग करके भी हमने युद्ध टालनेका यत्न किया था, इतना स्पष्ट होना चाहिये।

युद्धका भयानक परिणाम

१ भूम्याः अन्ताः ध्वसिराः सं अदृक्षत— भूमीके ऊपरके प्रदेश उध्वस्त हो जाते हैं। नगर, उपनगर, खेत, उद्यान विनष्ट होते है । महल, मंदिर और सभ्यताके केन्द्र विनष्ट हो जाते हैं । यह युद्धका भयानक परिणाम है ।

२ दिवि घोषः आरुहत्— दोनों ओरके सैनिकोंका शब्द आकाशमें फैलता है । इसी तरह लोगोंका आर्तनाद भी आकाशमें भर जाता है । असहाय्य जनताका दुःख भरा शब्द आकाशमें भर जाता है । सर्वत्र यही आर्तनाद सुनाई देता है ।

३ जनानां अरातयः मां उपतस्थुः-- जनताके ये शत्रु मेरे सामने युद्ध करनेकी ईर्ष्यासे खडे हुए हैं । इनके आक्रमण होनेके कारण अब हम युद्धको टाल नहीं सकते । युद्ध टालनेके लिये हमने बडा यत्न किया । पर ये मानवताके शत्रु युद्ध करनेके लिये ही यहां मेरे सन्मुख तैयार होकर आगये हैं और हमला कर रहे हैं । ऐसी अवस्थामें युद्ध अनिवार्य हुआ है। हमारी इच्छा न होते हुए भी अब हमें युद्ध करना ही पडेगा ।

४ अवसा अर्वाक् आगतं— संरक्षक साधनोंके साथ अब शत्रुके सामने आजाओ । अपने पास संरक्षण करनेके उत्तम साधन हैं, हमारे शस्त्रास्त्र उत्तम हैं। इनको लेकर अब हमें युद्ध ही करना है । अतः हे वीरो ! अब आगे बढो । शत्रुपर धावा बोलो ।

[३] (६७१) हे इंद्र और वरुण ! (भूम्याः अन्ताः ध्वसिराः सं अदृक्षत) भूमिके सारे प्रदेश उध्वस्त हुएसे दीख रहे हैं। (दिवि घोषः आरुहत्) आकाशमें सैनिकोंके आक्रमणका कोलाहल फैल गया है। (जनानां अरातयः मां उप अस्थुः) लोगोंके शत्रु मेरे सन्मुख युद्ध करनेके लिये खडे हुए हैं। हे (हवन श्रुता) आह्वानको सुननेवाले वीरो ! (अवसा अर्वाक् आगतं) संरक्षणकी शक्तिके साथ हमारे पास आओ।

[४] (६७२) हे इंद्र और वरुण ! (वधनाभिः अप्रति भेदं वन्वन्ता) तुमने अपने वध करनेके साधनोंसे न बढे हुए आपसके भेदका— आपसकी फूटका— नाश किया। भेद रूप शत्रुका नाश किया। और (सुदासं प्र आवतं) सुदासका संरक्षण किया। और (एषां हवीमनि ब्रह्माणि शृणुतं) इनके संग्राममें तुमने स्तोत्र सुने। तथा इस कारण (तृत्सूनां पुरोहितिः सत्या अभवत्) तृत्सु लोगोंका पौरोहित्य सफल हुआ।

५ इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति माघान्यर्यो वनुषामरातयः ।
युवं हि वस्व उभयस्य राजथोऽध स्मा नोऽवतं पार्ये दिवि ६७३

६ युवां हवन्त उभयास आजिष्विन्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये ।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ६७४

आपसकी फूट बढानेवालोंका वध

१ अप्रति भेदं वधनाभिः वन्वन्ता— अप्राप्त भेदका वध करनेके साधनोंसे नाश किया। 'भेद' यह शत्रु है। आपसकी फूटको भेद कहते है। यह बडा भारी राष्ट्रीय शत्रु है। इसको (अ-प्रति) अप्राप्त अवस्थामें ही-न बहुत बढनेकी अवस्थामें ही नाश करना चाहिये। आपसकी फूट बहुत बढ गयी तो वह सबका नाश करेगी। यह आपसकी फूट (वधनाभिः) वध करनेसे नाश होती है। जो फूट बढानेवाले हैं उनका वध करना चाहिये। आपसकी फूट बढाकर अपना लाभ करनेवालोंका वध करना यही एक इसका उपाय है। पर समाजका संरक्षण करनेके लिये आपसकी फूट बढानेवालोंका वध करना चाहिये।

२ सुदासं प्र आवतं— सज्जनोंका संरक्षण करो।

३ हवीमनि ब्रह्माणि श्रृणुतं— संग्राममें अथवा यज्ञमें अच्छे वचनोंका श्रवण करो। संग्राममें भी बुरे शब्द न सुनो।

४ तृत्सूनां पुरोहितिः सत्या अभवत्— लोगोंका पौरोहित्य सफल करके दिखाना चाहिये। पुरोहितका कार्य जिसका लिया उसका यश बढाना चाहिये। 'तृत्सु' उनका नाम है कि जो अपने अभ्युदयकी तृषासे तृषित हुए होते हैं। अपने अभ्युदयके लिये प्रयत्नशील लोगोंका नेतृत्व स्वीकार किया तो अनेक उपायोंसे उनकी उन्नति सिद्ध करके दिखानी चाहिये।

[५] (६७३) हे इंद्र और वरुण! (अर्यः अघानि मा अभि आ तपन्ति) शत्रुके पाप- शस्त्र- मुझे बहुत ताप दे रहे हैं। और (वनुषां अरातयः) हिंसकोंके मध्यमें जो शत्रु हैं वे भी मुझे कष्ट दे रहे हैं। (यूयं हि उभयस्य वस्वः राजथः) तुम दोनों प्रकारके- ऐहिक और पारलौकिक धनके स्वामी हो। इसलिये (अध पार्ये दिवि नः अवतं स्म) स्पर्धाके दिनोंमें हमारी सुरक्षा करो।

१ अर्यः अघानि मा अभि आ तपान्ति— शत्रुके पाप बुरे कार्य, घातक योजनाएं मुझे ताप दे रहे हैं। चारों ओरसे शत्रुने बहुत बुरी परिस्थिति निर्माण की है। इससे मुझे बडे कष्ट हो रहे हैं। इनको दूर करना चाहिये।

२ वनुषां अरातयः मा अभि आ तपन्ति— घात पात करनेवालोंके बीचमें जो हमारे शत्रु हैं वे चारों ओरसे हमें कष्ट दे रहे हैं, उनका नाश करना चाहिये।

३ उभयस्य वस्वः यूयं राजथः— ऐहिक तथा पारमार्थिक धनके तुम अधिपति हो। ये दोनों प्रकारके धन मनुष्यको प्राप्त करने चाहिये।

४ पार्ये दिवि नः अवतं— जिससे पार होना चाहिये उस संकटके समय हमें सुरक्षित रखो। संकटका समय हमसे दूर हो।

[६] (६७४) (उभयासः वस्वः सातये) दोनों लोग धनको जीतनेके लिये (युवां इंद्रं वरुणं च) तुम दोनों इंद्र और वरुणको (आजिषु हवन्ते) युद्धोंमें बुलाते हैं। (यत्र तृत्सुभिः सह) जहां तृत्सुओंके साथ रहनेवाले और (दशभिः राजभिः निबाधितं) दस राजाओंके द्वारा कष्ट पहुंचाये (सुदासं प्र आवतं) सुदास राजाकी तुमने सुरक्षा की।

१ उभयस्य वस्वः सातये— ऐहिक और पारलौकिक धनकी प्राप्ति करनेकी इच्छा लोग करते हैं। वे-

२ आजिषु हवन्ते--युद्धोंके समय तुम वीरोंको अपने सहायार्थ बुलाते हैं।

३ दशभिः राजभिः निबाधितं तृत्सुभिः सह सुदासं प्रावतं- दश राजाओंने जिसपर आक्रमण किया ऐसे सुदास राजाकी, जिनके साथ सहायार्थ तृत्सु भी आये थे, तुमनें सुरक्षा की।

सुदास राजा था, जिनके पुरोहित वसिष्ठ थे और उनके सहायक तृत्सु थे। सुदास राजा उनके सहायक तृत्सु और इनके

७	दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः ।	
	सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन् देवहूतिषु	६७५
८	दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।	
	श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः	६७६
९	वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।	
	हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम्	६७७

पुरोहित वसिष्ठ थे । इनपर दस राजाओंका आक्रमण हुआ। ऐसे समयमें इन्द्र और वरुणोंने सुदासकी सहायता की और दसों आक्रमणकारियोंका पराभव किया । इसी तरह करना चाहिये यह इसका तात्पर्य है ।

[७] (६७५) **हे इंद्र और वरुणो! (अयज्यवः दश राजानः समिताः) यज्ञ न करनेवाले दस राजे इकट्ठे हुए तथापि तुम्हारी सहायता होनेसे वे (सुदासं न युयुधुः) सुदास राजाके साथ युद्ध न कर सके। (अन्नसदां नृणां उपस्तुतिः सत्या) अन्नदान करनेके लिये बैठे लोगोंकी प्रार्थना सफल हुई और (एषां देवहूतिषु देवाः अभवन्) इनके यज्ञोंमें सब देव उपस्थित थे।**

दस राजाओंका संघ

१ अयज्यवः दश राजानः समिताः— अयाजक दस राजाओंका एक संघ बना था। अयाजक, यज्ञ न करनेवाले, अनार्य शत्रु राजाओंका संघ बना था । पर ये दस मिलकर भी-

यज्ञ करनेवालोंका बल बढता है

२ सुदास न युयुधुः— सुदासके साथ युद्ध नहीं कर सके । क्योंकि सुदास आर्य राजा था और यज्ञ करनेवाला था । जिसका पुरोहित वसिष्ठ था । यज्ञ करनेसे शक्ति बढती है और यज्ञ न करनेसे शक्ति घटती है यह यहां दर्शाया है। यज्ञ न करनेवाले दस अनार्य राजाओंका संघ परास्त होता है और यज्ञ करनेवाला एक राजा विजयी होता है । यह यज्ञका बल है।

३ अन्नसदां नृणां उपस्तुतिः सत्या— अन्नदान अर्थात् यज्ञ करनेवालोंकी आकांक्षाएँ-प्रार्थनाएं-सफल होती हैं। यज्ञ न करनेवाले इस जगत्में परास्त होते हैं। यज्ञसे जो संघटना होती है वह अपूर्व बल देनेवाली होती है ।

४ एषां देवहूतिषु देवाः अभवन्— इनके यज्ञोंमें स्वयं देव उपस्थित रहते है । इसलिये यज्ञ करनेवालोंका बल बढता है ।

[८] (६७६) **हे इंद्र और वरुण! (दाश राज्ञे विश्वतः परियत्ताय) दस राजाओंके संघ द्वारा चारों ओरसे घेरे गये (सुदासे शिक्षतं) सुदास राजाको तुमने बल दिया। क्योंकि (यत्र श्वित्यंचः कपर्दिनः) जहां निर्मल जटाधारी (धीवन्त तृत्सवः) बुद्धिमान तृत्सु लोग (नमसा धिया असपन्त) नमस्कार पूर्वक किये शुभ कर्मसे परिचर्या करते थे।**

(श्विति- अञ्चः) अन्तर्बाह्य पवित्र रहनेवाले जटाधारी बुद्धिमान तृत्सु लोग नमस्कारपूर्वक किये शुभ कर्मोको जहां करते रहते है, वहांका बल बढता है । सुदासके साथ ऐसे लोग थे इसलिये सुदासका बल बढ गया और वह विजयी हुआ। तथा दस राजा यज्ञ न करनेवाले होनेसे उनका बल घट गया और वे परास्त हुए। वसिष्ठके पौरोहित्यमें जटाधारी पवित्र तृत्सु याजक थे । ये सुदासका बल बढाते थे। दस राजाओंके संघके पास ऐसी यज्ञकी शक्ति नहीं थी । इस कारण वे पराभूत हुए । पवित्र रहकर ज्ञानपूर्वक किये यज्ञसे शक्ति बढती है, यह इसका आशय है ।

[९] (६७७) **हे इन्द्र और वरुण! तुममेंसे (अन्यः समिथेषु वृत्राणि जिघ्नते) एक इंद्र युद्धके समय शत्रुओंका नाश करता है। (अन्यः सदा व्रतानि अभि रक्षते) दूसरा वरुण सदा सत्कर्मोंकी सुरक्षा करता है। हे (वृषणा) बलवान् वीरो! (वां सुवृक्तिभिः हवामहे) तुम्हारी स्तुति हम अच्छे स्तोत्रों-**

१० अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ६७८

(८४) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः इन्द्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति ६७९

२ युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौर्यौ सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः ।
परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् ६८०

... करते हैं। इसलिये (अस्मे शर्म यच्छतं) हमें सुखका प्रदान करो।

बाह्य शत्रुका नाश करो

१ अन्यः समिथेषु वृत्राणि जिघ्नते— एक वीर युद्ध करता है और घेरनेवाले बाह्य शत्रुओंका नाश करता है। राष्ट्रके बाह्य शत्रुका नाश करना यह एक महत्त्वका कार्य है।

अन्दरके व्यवहारोंकी सुरक्षा

२ अन्यः व्रतानि सदा अभि रक्षते— दूसरा वीर लोगोंके सत्कर्मोंको सुरक्षित रखता है। यह अन्दरकी सुरक्षितता है। राष्ट्रके अन्दरके सब लोगोंके परिशुद्ध व्यवहारोंकी सुरक्षा करनी चाहिये।

राष्ट्रकी सुस्थितिके लिये बाह्य शत्रुओंका नाश करना चाहिये और अन्दरके सब लोगोंके कार्य व्यवहार सुरक्षित रीतिसे चलते रहने चाहिये। यहांका ' वृत्र ' शब्द घेरनेवाले बाह्य शत्रुका दर्शक है।

३ अस्मे शर्म यच्छतं— हमें सुख चाहिये। शर्मका अर्थ सुख, घर, संरक्षण, धन है। जब बाह्य शत्रुका निर्दालन होगा और अन्दरके सब व्यवहार सुरक्षित रीतिसे होते रहेंगे, तभी सुख मिल सकता है।

[१०] (६७८) देखो ६६८ वाँ मंत्र। इसकी व्याख्या वहां हो चुकी है।

[१] (६७९) हे (राजानौ इन्द्रावरुणौ) राजा इंद्र और वरुण! (अध्वरे वां हव्येभिः नमोभिः आ ववृत्यां) हिंसारहित इस यज्ञमें तुम्हें हवनों और नमनोंद्वारा इधर बुलाता हूं। (बाह्वोः दधाना विषुरूपा घृताची) विविध रूपोंवाली घीकी आहुती डालनेवाली जुहू (त्मना वां परि प्र जिगाति) स्वयं ही तुम्हारे पास जाती है। तुम्हारे लिये आहुती देती है।

इन्द्रा वरुणौ राजानौ— इन्द्र तथा वरुण ये राजा हैं। स्वामी हैं। अधिपति या अधिकारी है। इस दृष्टिसे इनके मंत्रोंका अर्थ करना चाहिये।

[२] (६८०) (युवोः बृहत् राष्ट्रं द्यौः इन्वति) तुम दोनोंका बडा विशाल द्युलोक रूपी राष्ट्र सबको प्रसन्नता देता है। (यौ सेतृभिः अरज्जुभिः सिनीथः) जो तुम दोनों बंधन करनेके रज्जुरहित रोगादि साधनोंसे पापीयोंको बांध देते हैं। (वरुणस्य हेळः नः परि वृज्याः) वरुणका क्रोध हमें छोडकर दूसरे स्थानपर जावे। (इन्द्रः नः उरुं लोकं कृणवत्) इन्द्र हमारे लिये विस्तृत कार्यक्षेत्र निर्माण करके देवे।

१ युवोः बृहत् राष्ट्रं द्यौः इन्वति— तुम दोनोंका बडा विशाल द्युलोक रूपी राष्ट्र है वह सब लोगोंको प्रसन्न करता है। इस तरह पृथ्वीपरका राजा अपनी प्रजाको प्रसन्न करे, प्रजाकी प्रगति करे, प्रजाका अभ्युदय करे।

२ यौ अरज्जुभिः सेतृभिः सिनीथः— तुम दोनों रज्जुरहित बंधनोंसे पापीयोंको बांधते हो। रोगादि क्लेश होते हैं वे इनके बंधन हैं। आधि- व्याधि ये इनके बंधन हैं। राजा भी अपने राष्ट्रमें जो पापी, दुष्कर्मी, डाकू, चोर आदि हों, उनको

३ कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता ।
उपो रयिर्देवजूतो न एतु प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतम् (६८१)

४ अस्मे इन्द्रावरुणा विश्ववारं रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
प्र य आदित्यो अनृता मिनात्यमिता शूरो दयते वसूनि (६८२)

५ इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत् तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः (६८३)

दण्ड देवे, बंधनमें डाले । प्रतिबंधनोंमें रखे जिससे वे दुष्टता कर न सकें ।

३ वरुणस्य हेळः नः परिवृज्याः— वरुणका क्रोध हमपर न आवे । हमसे ऐसा आचरण न हो कि जिससे वरुणका क्रोध हमपर आ जाय । वरुण निःपक्ष शासक है । वह किसीका पक्षपात नहीं करता । वैसा हमारा राजा निःपक्ष शासन करे और दण्डनीयोंको ही दण्ड देवे ।

४ इन्द्रः नः उरुं लोकं कृणवत्— इन्द्र हमारे लिये विस्तृत कार्यक्षेत्र निर्माण करके देवे । प्रजाजनोंके लिये विस्तृत कार्यक्षेत्र मिले ऐसा राज्यप्रबंध हो । प्रजा अनेक विस्तृत कार्यक्षेत्रोंमें कर्तव्य करे और अधिकाधिक सुखको प्राप्त करती जाय । राज्य शासनका यह कर्तव्य है कि जिससे प्रजाको विस्तृत कार्यक्षेत्र मिलता रहे ।

[३] (६८१) (नः विदथेषु यज्ञं चारुं कृतं) **हमारे युद्धोंमें अथवा सभागृहोंमें यज्ञको सुन्दर बनाओ। तथा (सूरिषु ब्रह्माणि प्रशस्ता कृतं) विद्वानोंके स्तोत्रोंको प्रशंसित बनाओ। (देवजूतः रयिः नः उपो एतु) देवों द्वारा प्रेरित धन हमें प्राप्त हो! (स्पार्हाभिः ऊतिभिः नः प्र तिरेतं) प्रशंसा योग्य संरक्षणोंसे हमें संवर्धित करो ।**

१ विदथेषु नः यज्ञं चारुं कृतं— युद्धों, सभाओं और यज्ञस्थानोंमें हम जिस यज्ञको करना चाहते हैं, वह यज्ञ उत्तमसे उत्तम तथा निर्दोष बने । मनुष्य जीवन एक यज्ञ ही है, फिर वह मनुष्य किसी स्थान पर रहे । जिस स्थानपर मनुष्य रहे वहां उसने जो भी जीवनका यज्ञ बनाना है वह सर्वांग-सुन्दर हो, उसमें त्रुटि न हो । मनुष्य सत्कर्म करे और वह निर्दोष करे ।

२ सूरिषु ब्रह्माणि प्रशस्ता कृतं— विद्वान् जो स्तोत्र करें वे प्रशंसा योग्य स्तोत्र हों । विद्वानोंके ज्ञानवचन [illegible] प्रशंसाके योग्य हों ।

३ देवजूतः रयिः नः उपो एतु— जो धन देव हमें देना चाहते हैं वह हमें सत्वर प्राप्त हो । देवोंके सेवन करने योग्य धन हमें प्राप्त हो । असुरोंके सेवन योग्य धन हमें न मिले ।

४ स्पार्हाभिः ऊतिभिः नः प्र तिरेतं— प्रशंसित संरक्षणोंसे हमारा अभ्युदय होता और बढता रहे ।

[४] (६८२) **हे इन्द्र और वरुण!** (अस्मे) **हमारे लिये (विश्ववारं वसुमन्तं पुरुक्षुं रयिं धत्तं) सबके सेवनके योग्य ऐश्वर्य युक्त और बहुत अन्न-वाला धन दो। (यः आदित्यः अनृता प्र मिनाति) जो आदित्य असत्य आचरण करनेवालोंका नाश करता है, (शूरः अमिता वसूनि दयते) शूरवीर शूर अपरिमित धनोंको देता है ।**

धन कैसा हो ?

१ (विश्ववारं) सब लोग जिसको स्वीकार करते हैं, सब जिसकी प्राप्तीकी इच्छा करते हैं, (वसुमन्तं) मानवोंका निवास करनेमें सहायक होनेवाला, (पुरुक्षुं) जिसके साथ अनेक प्रकारका अन्न रहता है, तथा जो अनेकों द्वारा प्रशंसित होता है ऐसा (रयिं धत्तं) धन हमें चाहिये ।

२ यः अनृता प्र मिनाति— जो असत्य कार्य करने-वालोंको रोकता है, उनको बुरे कार्य करने नहीं देता,

३ शूरः अमिता वसूनि दयते— शूर वीर अपरिमित धन देता है । जो ऐसा उदार होता है वह शूर ही प्रशंसाके योग्य है ।

[५] (६८३) (मे इयं गीः) **मेरी यह स्तुति (इंद्रं वरुणं अष्ट) इंद्र और वरुणको प्राप्त हो।** मेरी

(८५) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः इन्द्रावरुणौ । त्रिष्टुप् ।

१ पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत् ।
घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुष्यतामभीके ६८४

२ स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति ।
युवं ताँ इन्द्रावरुणावमित्रान् हतं पराचः शर्वा विषूचः ६८५

३ आपश्चिद्धि स्वयशसः सदःसु देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः ।
कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता वृत्राण्यन्यो अप्रतीनि हन्ति ६८६

स्तुति (तूतुजाना तोके तनये प्र आवत्) देवोंके पास जाकर हमारे बाल-बच्चोंकी सुरक्षा करे। हम (सुरत्नासः देववीतिं गमेम) उत्तम रत्नोंसे सुशोभित होकर देवोंके यज्ञमें जायेंगे (यूयं सदा नः स्वस्तिभि पात) तुम सदा हमारा कल्याणके साधनोंसे संरक्षण करो।

देवताओंकी स्तुति पुत्र-पौत्रोंका संरक्षण करती है। देवता वर्णन सुननेसे वैसा आचरण करनेकी स्फूर्ति मनमें उत्पन्न होती है, पश्चात् वैसा देवतावत् आचरण करनेसे मनुष्योंकी सुरक्षा होती है।

सुरत्नासः देववीतिं गमेम— उत्तम रत्न धारण करके, उत्तम वस्त्रों और अलंकारोंको धारण करके हम जहां यज्ञ होता हो वहां जांयगे। यज्ञस्थानमें जानेकी इच्छा धारण करनी चाहिये।

[१] (६८४) (वां अरक्षसं मनीषां पुनीषे) आप दोनोंकी राक्षस-भाव-रहित प्रशंसाको मैं पवित्र करता हूं। (इन्द्राय वरुणाय सोमं जुह्वत्) इन्द्र और वरुणके उद्देश्यसे सोमका हवन करता हूं। (देवीं उषसं न घृतप्रतीकां) उषा देवी की तरह तेजस्वी अवयवोंवाली हमारी यह स्तुति है। (ता) वे इन्द्र और वरुण (अभीके यामन् नः उरुष्यतां) युद्ध उपस्थित होनेपर शत्रुपर आक्रमण करनेके समय हमारा संरक्षण करें।

१ अरक्षसं मनीषां पुनीषे— इच्छा आसुरभावसे रहित हो और वह शुद्ध हो।

२ उषसं देवीं न घृतप्रतीकां— उषा देवीके समान बुद्धि तेजस्विनी हो।

३ अभीके यामन् नः उरुष्यतां— युद्धमें शत्रुपर आक्रमण करनेके समय हमारे सब वीरोंका उत्तम संरक्षण हो।

[२] (६८५) (अत्र देवहूये स्पर्धन्ते वै) इस संग्राममें शत्रुके और हमारे वीर परस्पर स्पर्धा करते हैं। (येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति) जिन युद्धोंमें ध्वजोंपर शस्त्र गिरते हैं। हे इन्द्र और वरुण! (युवं तान् अमित्रान् हतं) तुम दोनों उन शत्रुओंको मारो और (शर्वा (विषूचः पराचः) हिंसक शस्त्रसे चारों ओर और विरुद्ध दिशासे शत्रुओंको भगा दो।

१ देवहूये स्पर्धन्ते— (देवाः विजिगीषव वीराः) विजयकी इच्छा करनेवाले वीर जहां स्पर्धा करते है वह संग्राम है। मनुष्य इस तरहके संग्राममें खडा है।

२ येषु दिद्यवः ध्वजेषु पतन्ति— इन संग्रामोंमें तीक्ष्ण शस्त्र ध्वजोंपर गिरते हैं। ध्वजोंको देखकर शत्रुके शस्त्र एक दूसरे पर फेंकतें हैं।

३ युवं तान् अमित्रान् हतं— तुम वीरोंको उचित है कि तुम उनका वध करो। वीर शत्रुके वीरोंका वध करे।

४ शर्वा विषूचः पराचः— घातक अस्त्रशस्त्रसे सब शत्रु चारों ओर भ्रांत होकर भागें, इतस्ततः दौडें और पराङ्मुख होकर भागें ऐसा करो। शत्रुको ऐसा तितर बितर करना चाहिये।

[३] (६८६) (आपः चित् स्व यशसः देवीः) जल मिश्रित अपने निज यशवाले दिव्य सोमरस (सदः सु इन्द्रं वरुणं देवता धुः) यज्ञके स्थानोंमें इन्द्र वरुण आदि देवताओंको धारण करते हैं। उनमेंसे (अन्यः प्रावक्ताः कृष्टीः धारयति) एक वरुण

४ स सुक्रतुर्ऋतचिदस्तु होता य आदित्य शवसा वां नमस्वान् ।
आववर्तदवसे वां हविष्मानसदित् स सुवितायं प्रयस्वान् ६८७

५ इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत् तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६८८

(८६) ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वरुणः । त्रिष्टुप् ।

१ धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी ।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ६८९

२ उत स्वया तन्वा३ सं वदे तत् कदा न्व१न्तर्वरुणे भुवानि ।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ६९०

पृथक् पृथक् प्रजाओंका धारण करता है, (अन्य अप्रतीनि वृत्राणि हन्ति) दूसरा इन्द्र अप्रतिम शत्रुओंका भी विनाश करता है।

१ अन्यः प्रविक्ताः कृष्टीः धारयति— एक अधिकारी प्रत्येक प्रजाजनका पृथक् पृथक् धारण पोषण करता है। यह वरुण देव है। प्रत्येक प्रजाजनका पृथक् पृथक् निरीक्षण करना और उनका पालन करना यह इसका कर्तव्य है। राष्ट्रमें ऐसा एक अधिकारी हो कि जो व्यक्तिशः प्रत्येकका हित देखता रहे।

२ अन्यः अप्रतीनि वृत्राणि हन्ति— दूसरा इन्द्र प्रबल घेरनेवाले बाह्य शत्रुओंका नाश करता है। ऐसा एक अधिकारी सेनापति जैसा हो कि जो राष्ट्रको बाहरके शत्रुओंसे बचावे, बाहरसे आक्रमण करनेवाले शत्रुओंसे राष्ट्रको बचावे, इतना ही नहीं परंतु अपने राष्ट्रको घेर कर अपने ऊपर आक्रमण करनेवाले शत्रुओंका संपूर्णतया वध करे। शत्रुका निःशेष विनाश करे।

[४] (६८७) **(सुक्रतुः होता ऋतचित् अस्तु) उत्तम कर्म करनेवाला होता यज्ञके विधिका ज्ञाता हो। हे आदित्यो! (यः शवसा नमस्वान् वां) जो बलसे युक्त और अन्नसे युक्त ऐसे तुम दोनोंकी सेवा करता है, तथा (यः हविष्मान् अवसे वां आवर्तयत्) जो अन्नका यज्ञ करनेवाला अपनी सुरक्षाके लिये आपको अपने पास लाता है, (सः प्रयस्वान् सुविताय असत् इत्) अन्नवान् होकर उत्तम फल प्राप्त करनेके लिये योग्य होता है।**

जो यज्ञ करनेवाला है उसको यज्ञकी विधि अच्छी तरहसे विदित होनी चाहिये। यज्ञ करनेवालेके पास पर्याप्त अन्न हो, अन्नका दान करनेकी इच्छा हो, उस यज्ञ करनेवालेका संरक्षण हो, यज्ञस्थान सुरक्षित हो। इस तरह किया यज्ञ सफल होगा।

[५] (६८८) यह मंत्र ६८३ इस स्थानपर अनुवाद सहित है।

वरुण देवता

[१] (६८९) **(अस्य जनूंषि महिना धीरा) इस वरुणके जीवन उनकी निज महिमासे धैर्यवाले कर्मोंसे युक्त हैं। (यः उर्वी रोदसी चित् वि तस्तंभ) जो वरुण विस्तीर्ण द्युलोक और भूलोकको स्थिर करता है। (बृहन्तं नाकं) बडे विशाल सूर्यको और (ऋष्वं नक्षत्रं द्विता प्र नुनुदे) तेजस्वी नक्षत्रोंको दो समयोंमें जो प्रेरित करता है। दिनमें सूर्य और रात्रीके समय नक्षत्रोंको प्रेरित करता है तथा (भूम पप्रथत् च) भूमिको विस्तृत किया है।**

वरुणका कर्तृत्व बडा प्रभावशाली है, उसके कर्म बडे प्रभावशाली हैं, वह द्युलोक और भूलोकको यथास्थान सुस्थिर रखता है। सूर्यको प्रकाशित करके दिन बनाता है और अन्धकारके समय नक्षत्रोंको प्रकाशित करता है। उसीने भूमिको ऐसी विशाल बनाया है। यह वरुण ईश्वर ही है जो यह सब करता है।

भक्तके विचार

[२] (६९०) **(उत स्वया तन्वा सं वदे) क्या मैं अपने इस शरीरसे वरुणके साथ बोलूं? और**

३ पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ६९१

४ किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत् स्तोता जिघांससि सखायम् ।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावो ऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ६९२

५ अव द्रुग्धानि पित्र्या सृजा नो ऽव या वयं चकृमा तनूभिः ।
अव राजन् पशुतृपं न तायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम् ६९३

(कदा तत् वरुणे अन्तः भुवानि) कब मैं वरुणके अन्दर हो जाऊं ? (मे हव्यं अहृणानः जुषेत किं) मेरा क्या हवनीय द्रव्य क्रोध रहित होकर वरुण स्वीकार करेगा ? (कदा सुमनाः मृळीकं अभिख्यं) कब मैं उत्तम विचारवाला होकर सुखदायी वरुणको देख सकूं ?

" क्या मैं परमेश्वरके साथ बोल सकूंगा ? मैं कब प्रभुके अन्दर पहुंचूंगा ? मेरा अर्पण किया हुआ क्या प्रभु स्वीकार करेगा ? और मैं प्रभुका साक्षात्कार कब कर सकूंगा ? " ऐसे विचार भक्तके मनके अन्दर उठते हैं ।

वास्तवमें हरएक मनुष्यकी प्रार्थना परमेश्वर सुनता है, प्रत्येक व्यक्ति प्रभुके अन्दर ही है, भक्त जो अर्पण करता है उसका स्वीकार प्रभु करता है । भक्तका अन्तःकरण निर्मल होनेपर प्रभुका साक्षात्कार होता है ।

भक्तकी चिन्ता

[३] (६९१) हे वरुण ! (दिदृक्षु तत् एनः पृच्छे) जाननेकी इच्छा करके मैं उस अपने पापके विषयमें उससे पूछता हूं । (विपृच्छं चिकितुषः उपो एमि) मैं पूछनेकी इच्छासे विद्वानोंके पास भी गया हूं, उन (कवयः चित् मे समानं इत् आहुः) ज्ञानियोंने मुझे एक ही उत्तर दिया है कि (अयं वरुणः तुभ्यं हृणीते ह) निश्चयसे यह वरुण तुम्हारे ऊपर क्रोधित हुआ है ।

मैं अपने पापके विषयमें सच सच बात जानना चाहता हूं कि मैंने कौनसा पाप किया है जिसके कारण मुझे ये कष्ट हो रहे हैं । मैंने विद्वानोंसे भी पूछा, सभी विद्वानोंने एक स्वरसे कहा कि तुम्हारे ऊपर प्रभुका क्रोध हुआ है ।

निष्पाप बननेका निश्चय

[४] (६९२) हे वरुण ! (किं ज्येष्ठं आगः आस) क्या मेरा ऐसा कोई बडा भारी अपराध हुआ है ? (यत् सखायं स्तोतारं जिघांससि) जो तू अपने भक्त स्तोत्र पाठक मुझ जैसेको भी मारता है ? हे (दूळभ स्वधावः) न दबनेवाले तेजस्वी वरुण देव ! यदि (तत् मे प्रवोचः) वह मेरा पाप है तो मुझे कह दो जिससे मैं (अनेनाः तुरः नमसा त्वा अव इयां) निष्पाप बनकर सत्वर नम्रतापूर्वक तुम्हारे पास प्राप्त होऊं ।

भक्त कहता है कि- ' यदि मेरा ऐसा बडा पाप है जिससे कि मुझे इतने कष्ट हो रहे हैं, तो मुझे बताओ । जिससे मैं निष्पाप बननेका यत्न करूं और तुम्हारे पास आजाऊं ।

पापसे छुटकारा

[५] (६९३) हे वरुण ! (पित्र्या नः द्रुग्धानि अवसृज) हमारे पिता आदिसे हुए द्रोहको दूर करो । (वयं तनूभिः या चकृम अवसृज) हमने अपने शरीरोंसे किये जो पाप होंगे उनको भी दूर करो । हे राजन् वरुण ! (पशुतृपं तायुं न अवसृज) पशुकी चोरी करके उस पशुको तृप्त करनेवाले चोरको जैसे दूर करते हैं वैसे मेरे पाप दूर करो । (दाम्नः वत्सं न वसिष्ठं अवसृज) रस्सीसे बच्छडेको छोडनेके समान इस वसिष्ठको पापसे छुडाओ ।

१ आनुवंशिक द्रोह-पाप-(नः पित्र्या द्रुग्धानि)- पिता पितामहसे जो पाप हुए हों, उनका संस्कार हमारे शरीर पर होता है, बीजरूपसे वे सब दोष हमारे अन्दर आते हैं उनसे छुटकारा प्राप्त करना चाहिये ।

६ न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः ।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ६९४
७ अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः ।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ६९५

---

२ अपने पाप- (वयं तनूभिः चकृम) -जो पाप हम अपने निज शरीरसे करते हैं, उनसे छुटकारा प्राप्त करना चाहिये ।

३ पापीका पुण्य— (पशुतृपं तायुं) — पशुओंकी चोरी करनेवाला चोर चुराकर लाये पशुओंको घास और पानी देता ही है । यहां चोरीका पाप करके उनको घास-पानी देकर तृप्त करनेका पुण्य है । ऐसे लोगोंको तथा ऐसे भावोंको भी दूर करना चाहिये ।

४ दाम्नः वत्सं न वसिष्ठं अवसृज--रस्सीसे वछडेको छोड देते हैं वैसा मुझ वसिष्ठको पापकी पूर्वोक्त रस्सीसे छोड दो। ' वासिष्ठ ' का अर्थ यहां सुखसे वसनेकी इच्छा करनेवाला । पूर्वोक्त पापोंसे छुटकारा प्राप्त करनेसे ही यहां उत्तम निवास हो सकता है ।

पापके सात कारण

[१] (६९४) हे वरुण ! (स्वः स्वः दक्षः न) **वह अपना निज बल पापके लिये कारण नहीं होता । (ध्रुतिः) प्रगतिमें रुकावट होनेसे पापमें प्रवृत्ति होती है, (सुरा) मद्य, शराब, (मन्युः) क्रोध, (विभीदकः) द्यूत, जूआ, (अचित्तिः) अज्ञान, चित्त लगाकर कार्य न करनेकी वृत्ति ये पापमें प्रवृत्त करनेवाली प्रवृत्तियां हैं । (कनीयसः ज्यायान् उपारे अस्ति) हीन पुरुषको श्रेष्ठ पुरुष पास रहकर पापमें प्रवृत्त करता है तथा (स्वप्नः चन अनृतस्य प्रयोता इत्) निद्रा या सुस्ती भी अनृत या पापमें प्रवृत्त करनेवाली है ।**

१ ध्रुतिः (ध्रु गतिस्थैर्ययोः) —अपनी प्रगतिमें रुकावट हुई तो मनुष्य पाप करने लगता है । गतिमें स्थिरता होना गतिमें प्रतिबंध होना पाप प्रवृत्ति उत्पन्न करता है ।

२ सुरा— मद्य, मदिरा, आसव, सुरा ये जो मादक पदार्थ हैं, इनके सेवनसे मनुष्य पाप करनेमें प्रवृत्त होता है । मद्यपान छोडना चाहिये ।

३ मन्युः— क्रोध मनुष्यको पाप कर्म कराता है ।

४ विभीदकः—जुआ, द्यूतक्रीडा पापकारी है ।

५ अचित्तिः— अज्ञानसे पाप होता है, चित्त लगाकर काम न करनेसे पाप होता है ।

६ कनीयसः ज्यायान् उपारे अस्ति— छोटेको बडा मनुष्य समीप रहकर पापमें प्रवृत्त करता है । धनी निर्धनको, बलवान् निर्बलको, ज्ञानी अज्ञानीको पापमें प्रवृत्त करता है । निर्बलको बलिष्ठके भयसे वह पाप करना पडता है ।

७ स्वप्नः अनृतस्य प्रयोता —निद्रा, सुस्ती, आलस्य ये पापके प्रवर्तक दुर्गुण हैं ।

इनसे पाप होता है । मनुष्य इन पाप प्रवृत्तियोंसे अपने आपको बचावे ।

[७] (६९५) (मीळ्हुषे भूर्णये) **इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले और भरण पोषण करनेवाले (देवाय) ईश्वरके लिये- वरुण देवकी (अनागाः) निष्पाप होकर (अहं) मैं (अरं कराणि) सेवा करता हूं । (दासः न) सेवकके समान मैं ईश्वरकी सेवा करूंगा । (अर्यः देवः अचितः अचेतयत्) वह श्रेष्ठ देव हम अज्ञानियोंको प्रेरित करता है । (कवितरः गृत्सं राये जुनाति) वह अधिक ज्ञानी ईश्वर स्तोताको धनकी ओर प्रेरित करता है ।**

१ **मीळ्हुषे भूर्णये देवाय अनागाः अहं अरं कराणि**- भक्तकी सदिच्छाओंको पूर्ण करनेवाले, सबका भरण पोषण करनेवाले ईश्वरकी सेवा निष्पाप बनकर मैं करता हूं । निष्पाप बननेके लिये मैं प्रभुकी सेवा करता हूं । परमेश्वर सबका पालक है और सबको निष्पाप बनानेवाला है, इसलिये उसकी सेवा करनेसे मनुष्य निष्पाप बनता है । यहां (देवाय अलंकराणि) देवको अलंकार डालता हूं, सुशोभित करता हूं, सेवा करता हूं यह भाव है । (अरं कराणि) पर्याप्त सेवा करता हूं ऐसा भी इसका भाव है ।

८ अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६९६

(८७) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वरुणः । त्रिष्टुप् ।

१ रदत् पथो वरुणः सूर्याय प्रार्णांसि समुद्रिया नदीनाम् ।
सर्गो न सृष्टो अर्वतीर्ऋतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः ६९७

२ आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत् पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान् ।
अन्तर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ६९८

---

२ अर्यः देवः अचितः अचेतयत्— श्रेष्ठ देव अज्ञानियोंको ज्ञान देकर सत्कर्ममें प्रेरित करता है ।

३ कवितरः देवः गृत्सं राये जुनाति— अधिक ज्ञानी देव भक्त उपासकको धनकी प्राप्तिकी ओर प्रेरित करता है । प्रभु भक्तका ऐहिक अभ्युदय करनेके लिये उसे पर्याप्त धन देता है ।

[८] (६९६) हे (स्वधावः वरुण) अन्न पास रखनेवाले वरुण ! (तुभ्यं अयं स्तोमः) तुम्हारे लिये यह स्तोत्र (हृदिचित् सु उपश्रितः अस्तु) हृदयमें उत्तम रीतिसे रहनेवाला हो । तुम्हारे लिये यह हृदयंगम हो । (नः क्षेमे शं) हमारे क्षेममें कल्याण हो और (नः योगे शं अस्तु) हमारे लाभमें भी कल्याण हो । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारा सदा कल्याणके साधनोंसे संरक्षण करो ।

१ नः क्षेमे शं अस्तु— हमारे क्षेममें भी हमारा सच्चा कल्याण हो । प्राप्त हुई वस्तुओंका रक्षण होनेका नाम क्षेम है । वह क्षेम हमारे लिये कल्याण करनेवाला हो ।

२ नः योगे शं अस्तु— अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिका नाम योग है । अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति करनेके समय जो प्रयत्न हम करेंगे उनमें हमारा कल्याण हो ।

३ हमारी सेवा प्रभुके लिये प्रसन्नता देनेवाली हो (हृदि उपश्रितः अस्तु) ।

[१] (६९७) यह (वरुणः देवः सूर्याय पथः प्र रदत्) वरुण देवने सूर्यके लिये मार्ग नियत कर दिया है । (नदीनां अर्णांसि समुद्रिया प्र) नदियोंके जल प्रवाह समुद्रके बन चुके हैं । (सर्गः अर्वतीः सृष्टः न) घोडा जैसा घोडियोंके पास दौडता है, उस तरह (ऋतायन् महीः अवनीः अहभ्यः चकार) शीघ्र जानेवाले सूर्यने बडी रात्रियोंको दिनोंसे पृथक् निर्माण किया है । पर वे परस्पर जुडे हैं । एकके पीछे दूसरा लगा है ।

सूर्यका मार्ग नियत हुआ है । वृष्टिका जल नदियोंद्वारा समुद्रमें जाता है और समुद्र रूप हो जाता है । घोडा घोडीके पास दौडता है उस तरह सूर्य दौडता है और उस कारण दिन और रात्री पृथक् होती है ।

सूर्य जैसा अपना मार्ग नहीं छोडता वैसा सज्जनोंको अपना मार्ग छोडना नहीं चाहिये । वृष्टिका जल जैसा समुद्रमें जाकर एक जीवन होता है वैसा सबका जीवन आत्माके समुद्रमें जाकर एक रूप होना चाहिये । घोडा निसर्ग नियमसे घोडीके पास आकर्षित होता है, उस तरह स्त्रीपुरुषोंको इस गृहस्थ धर्ममें परस्पर प्रेमपूर्वक रहना चाहिये । जिस तरह दिन और रात्री परस्पर संगत हुई है । दिनके पीछे रात्री और रात्रीके पीछे दिन लगे हैं । इस तरह स्त्री-पुरुषको परस्पर प्रेमपूर्वक रहना चाहिये ।

अपना सन्मार्ग नहीं छोडना, सबका समान जीवन बनाना, राष्ट्रके जीवनमें विषमता नहीं रखना, स्त्रीपुरुषोंका परस्पर प्रेम पूर्वक बर्ताव होना ये तीन उपदेश यहां हैं ।

[२] (६९८) (ते वातः आत्मा) तेरा आत्मा वायु है । वह वायु (रजः आ नवीनोत्) धूलिको चारों ओर उडाता है । (पशुः न यवसे ससवान्) पशु जैसा घाससे अन्नवान् होता है, उस तरह

६ अव सिन्धुं वरुणो द्यौरिव स्थाद् द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान् ।
गम्भीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा ७०२

७ यो मृळयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः ।
अनु व्रतान्यदितेर्ऋधन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७०३

(८८) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वरुणः, (७ पाशविमोचनी) । त्रिष्टुप् ।

१ प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं वसिष्ठ मीळ्हुषे भरस्व ।
य ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम् ७०४

उनमें छः विभाग छः ऋतुओंके कारण हुए हैं। (पृत्सः राजा वरुणः) प्रशंसनीय राजा वरुणने (एतं हिरण्यं कं प्रेंखं) इस सुवर्ण जैसे सुखदायी प्रेक्षणीय सूर्यको (दिवि शुभे चक्रे) द्युलोकमें सब लोकोंका हित करनेवाले सूर्यको किया है।

तीन द्युलोक— द्युलोकके तीन विभाग । भूमिके पासका, मध्यका तथा इनके बीचका ऐसा आकाशके तीन विभाग हैं ।

तीन भूमियाँ— समुद्र तीर परकी भूमि, हिमालय जैसे पर्वत शिखरोंपर जो भूमि है वह एक, और इनके बीचकी जो भूमि है वह तीन प्रकारकी भूमि है । इस भूमिके छः ऋतुओंके अनुसार (षड्विधाः उपराः) छः उपविभाग होते हैं ।

राजा वरुणः— इन सबका राजा परमेश्वर है जिसका वर्णन वरुण करके यहां किया है ।

इस वरुणने सबका कल्याण करनेके लिये आकाशमें सूर्यको स्थापन किया है ।

[६] (७०२) (वरुणः द्यौः इव सिन्धुं अव-स्थात्) वरुणने आकाशके समान ही समुद्रकी स्थापना की है। यह वरुण (द्रप्सः न श्वेतः) सोमरसके समान गौरवर्ण है, (मृगः तुविष्मान्) गौरमृगके समान बलवान् है। (गंभीरशंसः रजसः विमानः) विशाल प्रशंसावाला और अन्तरिक्षका निर्माण करनेवाला (सुपारदक्षः अस्य सतः राजा) उत्तम रीतिसे दुःखसे पार करनेवाला जिसका बल है और यह इस जगतका एकमात्र राजा है।

परमेश्वरने जैसा आकाश स्थापन करके ऊपर रखा है वैसा ही समुद्र भी उसके योग्य स्थानपर रखा है । यह प्रभु निष्कलंक है, बलवान् है, प्रशंसनीय है, अन्तरिक्षका निर्माता है, दुःखसे पार करनेवाला इसका सामर्थ्य है और यह सब जगत्का राजा है । सबका एक मात्र प्रभु है ।

[७] (७०३) (यः आगः चक्रुषे चित् मृळयाति) जो पाप करनेवालेको भी सुख देता है। उस (वरुणे वयं अनागाः स्याम) वरुणमें हम निष्पाप होकर रहेंगे, निवास करेंगे । (अदितेः व्रतानि अनु ऋधन्तः) अदीन वरुणके व्रतोंका हम संवर्धन करेंगे। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारी सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षा करो।

परमेश्वर दयालु है अतः वह पाप करनेवालेको भी सुख देता है । हम निष्पाप बनकर वरुणमें रहेंगे । परमेश्वरके नियमोंका हम पालन करेंगे । और इस कारण हम सुखी हो जांयगे ।

[१] (७०४) हे वसिष्ठ ! (मीळ्हुषे वरुणाय) कामनापूरक वरुण देवके लिये (शुन्ध्युवं प्रेष्ठां मतिं प्र भरस्व) शुद्ध करनेवाली प्रिय स्तुति करो। (यः) जो वरुण (यजत्रं सहस्रामघं बृहन्तं वृषणं ईं) यजनीय, सहस्रों प्रकारके धनसे युक्त बडे बलवान इस सूर्यको (अर्वाञ्चं करते) हमारे सन्मुख करता है।

१ शुन्ध्युवं प्रेष्ठां मतिं— प्रभुकी स्तुति भक्तकी शुद्धि करनेवाली और बुद्धिको प्रेमयुक्त बनानेवाली होती है ।

सूर्यको जो ईश्वर हमारे सामने लाता है वह बडा सामर्थ्य वाला है इसलिये वही स्तुतिके योग्य है ।

२ अधा न्वस्य संदृशं जगन्वानग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि ।
स्व१र्यदश्मन्नधिपा उ अन्धोऽभि मा वपुर्दृशये निनीयात् ७०५

३ आ यद् रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत् समुद्रमीरयाव मध्यम् ।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम् ७०६

४ वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा अहोभिः ।
स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन् यादुषासः ७०७

---

[२] (७०१) (अध अस्य वरुणस्य संदृशं जगन्वान्) अब मैं इस वरुणके सुंदर दर्शनको प्राप्त कर चुका हूं और (अग्नेः अनीकं मंसि) अग्निकी ज्वालाओंका वर्णन करता हूं (यत् स्वः अश्मन् अन्धः अधिपाः) जब सुखकर पत्थरपर सोमका रस निकाल कर वरुण अधिक प्रमाणमें पान करते हैं, तब (मा दृशये वपुः अभि निनीयात् उ) मुझे अपने दर्शनीय सुंदर रूपको दर्शाते हैं।

यज्ञ स्थानमें अग्नि प्रदीप्त किया जाता है, सोमका रस निकाला जाता है, वरुण देवको वह दिया जाता है, तब उसका रूप अधिक सुन्दर दीखता है। यह यज्ञका वर्णन है।

भवसमुद्रकी नौका

[३] (७०६) मैं और (वरुणः च) वरुण देव ये दोनों (नावं आ रुहाव) नौकापर आरूढ होते हैं और (समुद्रं मध्ये प्र ईरयाव) समुद्रमें नौकाको हम चलाते हैं, (यत् अपां स्नुभिः) जब हम जलोंके मध्यमें अन्य नौकाओंके साथ (अधि चराव) विचरते हैं तब (शुभे कं प्रेंखं प्र ईखयावहै) कल्याणके लिये झूलेपर हम खेलते जैसे होते हैं।

मैं भक्त और वरुण देव ये दोनों हम नौकापर चढते हैं, उस नौकाको समुद्रमें ले जाते और जलके तरंगोंके ऊपर अन्य नौकाओंके साथ हम अपनी नौकाको जब चलाते हैं तब हमारी नौका जल तरंगोंकी गतिके अनुसार नीचे ऊपर हो जाती है, जैसा झूला आगे पीछे होता है वैसी हमारी नौका आगे पीछे होती है। इस गतिमें आनंद और कल्याणकी प्राप्ति है।

जब जीव इस शरीर रूपी नौकामें आता है, उसी नौकामें परमेश्वर भी चलानेवाला बैठता है। यह नौका भव समुद्रमें चलायी जाती है जिसमें ऐसी ही अन्य नौकाएं भी रहती हैं। भव समुद्रके तरंगके कारण हमारी नौका कभी ऊपर कभी नीचे होती है, कभी अन्य नौकाओंके साथ मिलती कभी दूर होती है। इस तरह हमारी नौका (शुभे कं) कल्याण और सुखको प्राप्त करती है।

यह शरीर ही भव समुद्रकी नौका है। इसमें जीव बैठा है। कल्याणके स्थानको इसने पहुंचना है। नौका चलानेवाला प्रभु है। कभी ऊँचा कभी नीचा होकर अन्तमें यह प्राप्तव्य आनन्द धामको प्राप्त करता है। यह वर्णन कितना हृदयंगम है। पाठक इस मंत्रका जितना अधिक विचार करेंगे उतना अधिक गहरा अर्थ उनको प्रतीत होगा।

अर्जुनके रथपर भगवान् सारथ्य कर रहे हैं और वह रथ युद्धमें खडा है, अर्जुन युद्ध करके विजय प्राप्त कर रहा है। वही वर्णन इस मंत्रमें नौकाके रूपमें वर्णन किया है। वहां युद्ध वर्णन है, यहाँ गहरा जल है। पाठक विचार करें और अर्थकी गहराईको जाने।

[४] (७०७) (वसिष्ठं ह वरुणः) वसिष्ठको वरुणने अपनी (नावि आ अधात्) नौकापर चढाया और (सु-अपाः महोभिः ऋषिं चकार) उसको उत्तम कर्म करनेवाला ऋषि अपने सामर्थ्योंसे बनाया। (विप्रः स्तोतारं अह्नां सुदिनत्वे यात्) ज्ञानी वरुणने स्तोत्रपाठक वसिष्ठको दिनोंमेंसे उत्तम शुभ दिनमें सफल कर्मकर्ता बनाया। और (द्यावः यात् उषसः यात्) दिन और उषा रात्रियोंको गतिमान बनाकर (ततनन्) फैला दिया। कालको निर्माण किया, इसमें यह साधक प्राप्तव्यको प्राप्त करे ऐसी योजना वरुणने बनायी।

५ क्व१ त्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहे यदवृकं पुरा चित् ।
बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते ७०८

६ य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन् त्वामागांसि कृणवत् सखा ते ।
मा त एनस्वन्तो यक्षिन् भुजेम यन्धि ष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम् ७०९

७ ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्यस्मत् पाशं वरुणो मुमोचत् ।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७१०

यह शरीर रूपी नौका ईश्वरने बनायी, उस नौकापर इस साधकको बिठलाया, उसको ज्ञानी तथा कर्म कर्ता बनाया । इधर कालको निर्माण करके शुभ दिन बनाये और शुभ दिनोंमें कर्मोंको करके इसको आनंदके स्थानपर पहुंचा दिया ।

इधर अर्जुनको रथपर चढाया, युद्ध करना नाहीं चाहता था उसको युद्ध करनेके लिये प्रेरित किया, उससे युद्ध करवाया, उसका रथ चलाया, उसके घोडोंको धोया, अच्छी अवस्थामें रखा और अन्तमें विजय भी प्राप्त करके दिया ।

यद्यपि अर्जुन इतिहासिक पुरुष हैं तथापि उसका वर्णन आध्यात्मिक बातोंका दर्शक होने योग्य किया है । इस मंत्रका वर्णन आध्यात्मिक है, पर वह वसिष्ठ अपना ही वर्णन करनेके समान यहां करता है । पर यह वर्णन सनातन वर्णन है और जो यहां वसनेका इच्छुक है उसका ऐसा ही वर्णन हो सकता है । अतः यह वासिष्ठका होते हुए भी सनातन ही है ।

[५] (७०८) **हे वरुण ! (तानि नौ सख्या क्व बभूव) वे हमारे मित्रभाव भला कहां बने थे ? (पुरा चित् यत् अवृकं तत् सचावहे) प्राचीन कालका हिंसारहित जो सख्य है, वह हम चाहते हैं । हे (स्वधावः) अपनी निज धारण शक्तिसे युक्त वरुण देव ! (ते बृहन्तं मानं) मैं तेरे वडे परिमाणवाले (सहस्रद्वारं गृहं जगम) सहस्रों द्वारोंवाले घरको जाना चाहता हूं ।**

हमारे सख्य प्राचीन है, सनातन हैं । वे कब बने किसको भी पता नहीं है । इस हमारे सख्यमें निष्कपटता है, अहिंसा है । यह मित्रता स्थिर रहे ऐसा हम चाहते हैं । प्रभुके विशाल घरमें जाकर रहनेकी इच्छा है । हम उधर ही चल रहे हैं । जीवका यह आध्यात्मिक और आलंकारिक प्रवास है । जीव तो ईश्वरके विशाल घरमें ही रहता है, पर यहां यह ज्ञानका प्रवास है, स्थलका प्रवास नहीं है ।

[६] (७०९) **हे वरुण ! (यः नित्यः आपिः) जो यह वसिष्ठ तुम्हारा नित्य बन्धु और (ते सखा प्रियः सन्) तुम्हारा प्रिय मित्र होता हुआ अब (त्वां आगांसि कृणवत्) तुम्हारे संबंधमें थोडेसे अपराध करनेवाला हुआ है । हे (यक्षिन्) पूजनीय देव ! (ते एनस्वन्तः मा भुजेम) हम तुम्हारे हैं, इसलिये हमसे पाप होनेपर भी उसका भोग हमें करना न पडे ऐसी कृपा करो । (विप्रः स्तुवते वरूथं यंधि स्म) तुम ज्ञानी हो इसलिये मुझ जैसे तुम्हारे भक्तके लिये उत्तम सुखदायी घर दे दो ।**

हे प्रभो ! मैं तुम्हारा सनातन बंधु हूं, तुम्हारा प्रिय मित्र हूं । अब मुझसे थोडेसे अपराध हुए तो क्या तुम मुझे उसके लिये दण्ड दोगे ? तुम्हारा मैं भक्त हूं, तुम्हारी भक्ति अब भी कर रहा हूं, इसलिये थोडेसे पाप होनेपर भी मैं तुम्हारा ही मित्र बनकर रहूं ऐसा करो ।

यह भक्तका कहना है । पुत्र पिताके पास, मित्र मित्रके पास और भक्त प्रभुके पास ऐसा ही अन्तःकरणसे कहता है ।

[७] (७१०) **(ध्रुवासु आसु क्षितिषु क्षियन्तः) इन स्थायी भूप्रदेशोंमें रहनेवाले हम (त्वा) तुम्हारी भक्ति करते हैं । वह (वरुणः अस्मत् पाशं वि मुमोचत्) वरुण हमें अपने पाशसे छुडावे । (अदितेः उपस्थात् अवः वन्वानाः) अदीन वरुणसे हम अपना संरक्षण प्राप्त करते हैं । (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम हमें कल्याणके साधनोंसे सदा सुरक्षित करो ।**

(८९) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वरुणः । गायत्री, ५ जगती ।

१	मो षु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम्	मृळा सुक्षत्र मृळय	७११
२	यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः	मृळा सुक्षत्र मृळय	७१२
३	क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे	मृळा सुक्षत्र मृळय	७१३
४	अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम्	मृळा सुक्षत्र मृळय	७१४
५	यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्याश्चरामसि ।		
	अचित्ती यत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः		७१५

ईश्वरकी भक्ति करो, वही तुम्हारे बंधन दूर करेगा और तुम्हें मुक्त करेगा।

मुझे मिट्टीका घर नहीं चाहिये

[१] (७११) हे वरुण राजन् ! (अहं मृन्मयं गृहं मो गमं) मैं मिट्टीके घरमें रहना नहीं चाहता, परंतु (सु) सुंदर घर रहनेके लिये चाहता हूं। हे (सुक्षत्र) उत्तम क्षात्रबलवाले प्रभो ! (मृळय) मुझे सुखी कर. (मृळ) आनंदित कर।

मिट्टीकी झोंपडीमें मै रहना नहीं चाहता। मै तुम्हारा मित्र हूं, इसलिये तुम्हारे जैसा सुंदर घर मुझे चाहिये। जिसके अन्दर क्षात्र बल होता है वही दूसरोंको सुखी कर सकता है, इसलिये मैं तुम्हारी सहायता चाहता हूं।

दुःखसे पार होनेका मार्ग

[२] (७१२) हे (अद्रिवः) पर्वतके किलेमें रहनेवाले ! (यत् ध्मातः दृतिः न) जब वायुसे भरपूर भरी चमडेकी थैलीके समान मैं (प्रस्फुरन् एमि) स्फुरण प्राप्त करके चलता हूं तब हे उत्तम क्षात्र तेजवाले ! (मृळ मृळय) मुझे सुखी करो, मुझे आनंदित करो।

१ अद्रिवः सुक्षत्र— उत्तम बलवान् वीर पर्वतके किलेमें रहता है जिससे वह अधिक सामर्थ्यवान् होता है।

२ ध्मातः दृतिः— वायुसे भरपूर भरी चमडेकी थैली नदी पार करनेमें सहायक होती है, वह स्वयं तरती है और दूसरोंको तराती है। उस तरह साधकोंको बनना चाहिये। वे ऐसे समर्थ बनें कि वे स्वयं दुःखके पार हों और दूसरोंको दुःखके पार करें।

३ प्रस्फुरन् एमि— स्फूर्ति प्राप्त करके प्रगति करता हूं। जिसके पास स्फूर्ति होती है वही उन्नति प्राप्त कर सकता है।

किले जैसे सुरक्षित स्थानमें रहो, तो शत्रुसे बचोगे, वायुसे भरी थैली जैसे बनो तो डूबनेका भय नहीं रहेगा। यहां आत्मशक्तिका वायु अपने अन्दर भरना है। जिसमें स्फुरण है, उत्साह होता है वही प्रयत्न करके उन्नति प्राप्त करता है। दुःखसे पार होनेके ये तीन साधन है, सुरक्षित स्थान, आत्मिक बल और उत्साह।

[३] (७१३) हे (समह शुचे) धनवान् और पवित्र ! (क्रत्वः दीनता प्रतीपं जगम) कर्म करनेकी दीनताके कारण मैं प्रतिकूल परिस्थितिको प्राप्त हुआ हूं। इसलिये मुझे सुखी करो, आनंदित करो।

प्रशस्त कर्म करनेकी शिथिलता ही मनुष्यकी अवनति करती है। इसलिये इस तरहकी दीनताको कोई मनुष्य अपने पास आने न दे।

[४] (७१४) (अपां मध्ये तस्थिवांसं) जल प्रवाहोंके मध्यमें मैं हूं तो भी मुझ जैसे (जरितारं तृष्णा अविदत्) स्तोता भक्तको प्यास लग रही है। इसलिये मुझे सुखी करो, आनंदित करो।

पानीमें रहनेवाला प्याससे तडफ रहा है। वैसी मेरी अवस्था हुई है। आनन्द सागरमें डूबता हुआ मैं दुःखी हो रहा हूं। हे प्रभो मुझे आनंदका भागी बनाओ।

यह प्रार्थना अत्यंत ही हृदयस्पर्शी है।

[५] (७१५) हे वरुण ! (दैव्ये जने यत् किं च) दिव्य जनोंके संबंधमें जो भी कुछ (मनुष्याः अभिद्रोहं चरामसि) हम मनुष्य द्रोह कर रहे हैं

अनुवाक ६ वाँ [अनुवाक ५५ वाँ]

(९०) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। वायुः; ५-७ इन्द्रवायू। त्रिष्टुप्।

१ प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ७१६

२ ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट् शुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो।
कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं जातोजातो जायते वाज्यस्य ७१७

३ राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम्।
अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ७१८

४ उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः ७१९

तथा (अचित्ती तव यत् धर्म युयोपिम) अज्ञानी अवस्थामें तेरे कर्तव्यका जो हम लोप करते हैं, हे देव! (तस्मात् एनसः नः मा रीरिषः) उस पापसे तुम हमारा नाश न कर।

इस मंत्रमें मनुष्यसे होनेवाले प्रमादका वर्णन है। ये प्रमाद मनुष्य न करे।

वायु देवता

[१] (७१६) हे वायो! (वीरया वां अध्वर्युभिः शुचयः मधुमन्तः सुतासः) तुम वीरके लिये अध्वर्युओं द्वारा शुद्ध मधुर सोमरस (प्र दद्रिरे) दिये जाते हैं। अतः हे वायु! (नियुतः वह) घोडियोंको जोतो, (अच्छ याहि) हमारे पास आओ। और (मदाय सुतस्य अन्धसः पिब) आनंदके लिये सोमरस रूप अन्नरसका पान करो।

[२] (७१७) हे वायो! (ईशानाय ते प्रहुतिं यः आनट्) ईश्वर रूप तुमको आहुति जो देता है। हे (शुचिपाः) शुद्ध रसका पान करनेवाले! (तुभ्यं शुचिं सोमं) तुम्हारे लिये जो शुद्ध सोमरस देता है (तं मर्त्येषु प्रशस्तं कृणोषि) उसको तुम मर्त्योंमें प्रशंसनीय बना देता है, और वह (जातः जातः) सर्वत्र प्रसिद्ध होकर (अस्य वाजी जायते) इस धनको प्राप्त करनेवाला होता है।

[३] (७१८) (इमे रोदसी यं राये जज्ञतुः) इन द्यावा पृथिवीने जिस वायुको ऐश्वर्यके लिये निर्माण किया, उस (देवं धिषणा देवी राये धाति) देवको तेजस्वी बुद्धि धनके लिये धारण करती है। (अध स्वाः नियुतः वायुं सश्चत) अपनी घोडियां उस वायुकी सेवा करती हैं। (उत श्वेतं वसुधितिं निरेके) और वे उस तेजस्वी धनका धारण करनेवालेको दरिद्रके पास पहुंचाती हैं। [तब वह उसको धन देकर धनी बना देता है।]

[४] (७१९) उनके लिये (अरिप्राः सुदिनाः उषसः उच्छन्) निष्पाप दिनोंकी उषायें प्रकाशित हो गयी हैं। वे दिन (दीध्यानाः उरु ज्योतिः विविदुः) प्रकाशित होकर विशेष प्रकाशको प्राप्त हुए। उन्होंने (उशिजः गव्यं ऊर्वं वि वव्रुः) इच्छा करके गौओंके समूहको प्राप्त किया। (तेषां प्रदिवः आपः अनुसस्रुः) उनका द्युलोकसे आये जल प्रवाहोंने अनुसरण किया। जल प्रवाह बहने लगे।

५ ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति ।
इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वामीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते ७२०

६ ईशानासो ये दधते स्वर्णो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः ।
इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुरर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः ७२१

७ अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७२२

(९१) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १, ३ वायुः; २, ४-७ इन्द्रवायू । त्रिष्टुप् ।

१ कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन् ।
ते वायवे मनवे बाधितायाऽवासयन्नुषसं सूर्येण ७२३

२ उशन्ता दूता न दभाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः ।
इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना मार्डीकमीट्टे सुवितं च नव्यम् ७२४

---

[५] (७२०) (ते सत्येन मनसा दीध्यानाः) वे सत्यनिष्ठ मनसे प्रकाशित होनेवाले (स्वेन क्रतुना युक्तासः वहन्ति) अपने यज्ञके साथ संयुक्त होनेके लिये अपने रथको चलाते हैं। हे इन्द्र और हे वायो ! (वां ईशानयोः वीरवाहं रथं) आप स्वामी जैसोंके वीर बैठनेवाले रथको वे वहां ले चलते हैं जहां (पृक्षः अभि सचन्ते) अन्नका प्रदान होता है।

[६] (७२१) हे इन्द्र और वायो ! (ये ईशानासः) जो स्वामी (गोभिः अश्वैः वसुभिः हिरण्यैः) गौओं, घोडों, धनों और सुवर्णोंसे युक्त (स्वः नः दधते) सुख हमें देते हैं, वे (सूरयः) ज्ञानी लोग अपने (विश्वं आयुः) संपूर्ण जीवनको (अर्वद्भिः वीरैः पृतनासु सह्युः) अश्वारोही वीरोंके द्वारा शत्रु सैनिकोंके मध्यमें युद्धोंमें शत्रुका पराभव करके विजयी बनाते हैं।

[७] (७२२) (अर्वन्तः न) घोडोंके समान श्रवसः भिक्षमाणाः) अन्नको लेजानेवाले (वाजयन्तः वसिष्ठाः) और अन्नसे अपना बल बढानेकी इच्छा करनेवाले वसिष्ठ ऋषि (सुष्टुतिभिः सु अवसे) उत्तम स्तोत्रोंके द्वारा हमारे उत्तम संरक्षणके लिये इन्द्र और वायुको (हुवेम) बुलाते हैं। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारा सदा कल्याणके साधनोंसे संरक्षण करो।

[१] (७२३) (पुरा ये वृधासः देवाः) प्राचीन समयके जो वृद्ध स्तोतागण (कुवित् अंग नमसा) बहुत बार प्रिय स्तोत्रोंके कारण (अनवद्यासः आसन्) प्रशंसित हुए थे वे (बाधिताय मनवे) दुःखी मानवोंके हितके लिये (वायवे) वायुको हवि देनेके समय (सूर्येण उषसं अवासयन्) सूर्यके साथ उषाकी स्तुति करते रहे।

[२] (७२४) हे इन्द्र वायु ! (उशंता दूता गोपा दभाय न) तुम हितकी इच्छा करनेवाले दूत हमारा संरक्षण करते हो, परंतु कदापि हिंसाके लिये तुम्हारी प्रवृत्ति नहीं होती। तुम (मासः पूर्वीः शरदः च पाथः) महिनों और पूर्ण वर्षोंमें हमारी सुरक्षा करते आये हो। तुम हमारी की हुई (सुष्टुतीः इयाना) उत्तम स्तुतिको सुनो। मैं (मार्डीकं नव्यं सुवितं च ईट्टे) सुखदायक नवीन सुविधाजनक धनकी प्रशंसा करता हूं। वैसा धन मुझे चाहिये।

३ पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः ।
ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ७२५

४ यावत् तरस्तन्वो३ यावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः ।
शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इन्द्रवायू सदतं बर्हिरेदम् ७२६

५ नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक् ।
इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्रमध प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे ७२७

सुप्रजाका निर्माण

[३] (७२५) (पीवो अन्नान् रयिवृधः) बहुत अन्नवाले और धनसे समृद्ध जनोंकी (सुमेधाः नियुतां अभिश्रीः श्वेतः) उत्तम मेधावाला घोडोंकी शोभा बढानेवाला श्वेतवर्ण वायु (सिषक्ति) सेवा करता है। (ते नरः) वे नेता लोग (समनसः वायवे वि तस्थुः) समान विचारवाले होकर वायु-की उपासना करते हैं। उन लोगोंने (विश्वा सु अपत्यानि चक्रुः) सब सुप्रजा निर्माण करनेके कार्य उत्तम रीतिसे किये।

पर्याप्त अन्न और धनवाले लोग उत्तम वायुका सेवन करते हैं और समान विचारवाले होकर सुप्रजा निर्माण करनेका कार्य करते है।

१ **सु अपत्यानि चक्रुः**— वे नेता सुप्रजाका निर्माण करते रहे। सुप्रजा निर्माण करनेके लिये ये साधन यहां कहे हैं—

पीवो अन्नाः— पुष्टि कारक अन्नका सेवन करना, इससे शरीर पुष्ट होता है,

रयिवृधः— धनका संवर्धन करना, धनसे अनेक प्रकारकी सहायता प्राप्त होती है। उद्योग वृद्धी करनी जिससे कर्म करने-वालोंको काम मिलता है जिसके करनेसे वे धन लाभ करते हैं।

सुमेधाः— अपनी मेधा उत्तम करना, धारणावती बुद्धिको बढाना,

अभि श्रीः— अपनी शोभाका संवर्धन करना,

समनसः— समाजके लोगोंको समान विचारोंसे युक्त करना, माता पितामें ये गुण बढनेसे उनको जो अपत्य होंगे वे

'**विश्वा सु अपत्यानि चक्रुः**'— सबके सब सुप्रजा कहने योग्य होंगे। माता पिताओंमें पुष्टी, समृद्धि, उत्तम मेधा, उत्तम कान्ति, उत्तम विचार रहेंगे, तो उनकी प्रजा उत्तम होती है। वह सुप्रजा कहलाती है। यहां सुप्रजा निर्माण करनेका पक्का कार्यक्रम बताया है। यह जैसा वैयक्तिक है वैसा ही राष्ट्रीय भी है। पाठक इसका बहुत विचार करें और सुप्रजा उत्पन्न करनेका अनुष्ठान करें।

[४] (७२६) हे इन्द्रवायू ! (यावत् तन्वः तरः) तुम्हारे शरीरका जितना वेग है, (यावत् ओजः) जितना बल है, (यावत् नरः चक्षसा दीध्यानाः) जितने मनुष्य ज्ञानसे तेजस्वी होते हैं, उस प्रमाण-से (शुचिपा अस्मे शुचिं सोमं पातं) शुद्ध सोम-रसको पीनेवाले देव हमारे इस शुद्ध सोमरसको पीयें। (इदं बर्हिः आ सदतं) इस आसनपर आकर बैठें।

जितना शरीरमें बल और सामर्थ्य है, जितनी दृष्टी जाती है वहां तक शुद्धता और पवित्रतासे प्रयत्न करना चाहिये।

[५] (७२७) हे इन्द्रवायू ! (स्पार्हवीरा) स्पृहणीय वीर ऐसे (नियुतः) घोडोंको अपने (सरथं नियुवाना) एक ही रथमें जोतनेवाले तुम (अर्वाक् यातं) हमारे पास आओ। (इदं मध्वः अग्रं वां प्रभृतं) यह मधुर सोमका मुख्य भाग तुम्हारे लिये भरा रखा है। (अध प्रीणाना अस्मे वि मुमुक्तं) अब इससे संतुष्ट होकर तुम हमें पापसे मुक्त करो।

६ या वां शतं नियुतो याः सहस्रमिन्द्रवायू विश्ववाराः सचन्ते ।
आभिर्यातं सुविदत्राभिरर्वाक् पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ७२८

७ अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७२९

(९१) ५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वायुः, १, ४ इन्द्रवायू । त्रिष्टुप् ।

१ आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ७३०

२ प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात् सोममिन्द्राय वायवे पिबध्यै ।
प्र यद् वां मध्वो अग्रियं भरन्त्यध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः ७३१

३ प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।
नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ७३२

४ ये वायव इन्द्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः ।
घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ७३३

---

[६] (७२८) हे इन्द्र वायू! (याः नियुतः शतं वां) जो सौ घोडे तथा (याः विश्ववाराः सहस्रं सचन्ते) जो सबको वरणीय सहस्र घोडे तुम्हारी सेवा करते हैं, (आभिः सुविदत्राभिः अर्वाक् आ यातं) इन उत्तम धन देनेवाले घोडोंके साथ हमारे समीप आओ। हे (नरा) नेता लोगो! (प्रतिभृतस्य मध्वः पातं) इस भरे रखे सोमरसका पान करो।

[७] (७२९) इसकी व्याख्या ७२२ स्थानपर हुई है।

[१] (७३०) हे (शुचिपाः वायो) शुद्ध सोमरसका पान करनेवाले वायो! (नः उप आ भूष) हमारे समीप आओ। हे (विश्ववार) सबके सेवनीय! (ते सहस्रं नियुतः) तेरी घोडियां सहस्रों हैं। (ते मद्यं अन्धः उपो अयामि) तुम्हारे लिये यह आनन्ददायक सोमरस पात्रमें भरकर लाता हूं। हे देव! (यस्य पूर्वपेयं दधिषे) जिस रसका तुम प्रथम पान करते हो।

[२] (७३१) (जीरः सोता) सत्वर कर्म करनेवाले रस निकालनेवालेने (इन्द्राय वायवे च पिबध्यै) इन्द्र और वायुके पानके लिये (अध्वरेषु सोमं प्र अस्थात्) यज्ञोंमें सोमको रखा है। हे इन्द्रवायो! (देवयन्तः अध्वर्यवः शचीभिः) देवत्व प्राप्तीकी कामना करनेवाले अध्वर्युगण अपनी शक्तियोंसे (यत् वां मध्वः अग्रियं प्रभरन्ति) इस सोमके प्रथम भागको आपके लिये भर रखते हैं।

[३] (७३२) हे वायो! (दुरोणे इष्टये) यज्ञ स्थानमें इष्टिके लिये (दाश्वांसं याभिः नियुद्भिः अच्छ प्रयासि) दाताके पास जिन घोडियोंसे तुम जाते हो, वैसे हमारे पास आओ और (नः सुभोजसं रयिं) हमें उत्तम अन्नवाले धनको तथा (वीरं गव्यं अश्व्यं च राधः) वीर पुत्र गौ घोडे आदि वैभव (नि युवस्व) देदो।

[४] (७३३) (ये इन्द्र-मादनासः) जो इंद्रको आनंद देनेवाले तथा (वायवे) वायुको प्रसन्न करनेवाले हैं तथा (ये आ देवासः) वे देवके भक्त (अर्यः नितोशनासः) शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं, वैसे हम सब (सूरिभिः वृत्राणि घ्नन्तः स्याम)

५ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
वायो अस्मिन् त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७३४

(९३) ८ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्राग्नी । त्रिष्टुप् ।

१ शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्येन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा ७३५

२ ता सानसी शवसाना हि भूतं साकंवृधा शवसा शूशुवांसा ।
क्षयन्तौ रायो यवसस्य भूरेः पृङ्क्तं वाजस्य स्थविरस्य घृष्वेः ७३६

विद्वान् वीरोंके साथ रहकर शत्रुओंका नाश करनेवाले तथा (युधा अमित्रान् नृभिः ससह्वांसः) युद्धमें शत्रुओंका वीरोंसे पराभव करनेवाले हों।

१ अर्यः नितोशनासः— शत्रुका नाश करनेवाले हम हों।

२ सूरिभिः वृत्राणि घ्नन्तः— विद्वान् वीरोंके द्वारा शत्रुओंका नाश करनेवाले हम हों,

३ नृभिः युधा अमित्रान ससह्वांसः— वीरोंके द्वारा युद्धमें शत्रुओंका पराभव करनेवाले हम हों।

हमारे वीर ऐसे शूर और प्रभावी हों।

[५] (७३४) हे वायो! (नः अध्वरं यज्ञं) हमारे हिंसा रहित यज्ञके पास तुम (शतनीभिः सहस्रणीभिः नियुद्भिः उप आ याहि) सौ अथवा सहस्र घोडियोंके साथ आओ (अस्मिन् सवने मादयस्व) इस सवनमें रस पीकर आनन्दित हो (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमारी सदा कल्याण करनेके साधनोंसे सुरक्षा करो।

प्रातः सवनमें सोमरस निचोडा जाता है और उसी समय पीया जाता है इसलिये इसमें मूर्छा आनेवाली ' **मादकता नहीं होती।** '

इन्द्र-अग्नी।

[१] (७३५) हे (वृत्रहणा इन्द्राग्नी) शत्रुका नाश करनेवाले इन्द्र और अग्नि! (शुचिं नवजातं स्तोमं अद्य जुषेथां) शुद्ध नवीन स्तोत्रका तुम अब सेवन करो। (सुहवा उभा हि वां जोहवीमि) उत्तम प्रशंसा योग्य तुम दोनोंको मैं बुलाता हूँ। (ता उशते वाजं धेष्ठा) वे तुम दोनों उन्नतिकी इच्छा करनेवालेके लिये अन्न बल वा सामर्थ्य धारण करनेवाले बनो।

१ वृत्रहणौ— (वृत्र) आवरक घेरनेवाले शत्रुका नाश करनेवाले बनो। इन्द्र और अग्नि ऐसे हैं।

२ नवजातं स्तोमं जुषेथां— नवीन उत्पन्न स्तोमका सेवन करो। नवीन उत्पन्न हुआ स्तोत्र अथवा यज्ञ करो।

३ उशते वाजं धेष्ठा— उन्नतिकी इच्छा करनेवालेके लिये अन्न बल और सामर्थ्य दे दो। उनका सामर्थ्य बढाओ।

[२] (७३६) हे इन्द्र और अग्नि! (ता सानसी शवसाना भूतं) वे आप दोनो सेवाके योग्य और बलवान हो। तथा (साकं वृधा शूशुवांसा) साथ साथ बढनेवाले तथा प्रभावी बनो। और (रायः भूरेः यवसस्यं क्षयन्तौ) धन और बहुत अन्नको अपने पास रखनेवाले बनो। और (स्थविरस्य वाजस्य घृष्वेः पृक्तं) बहुत अन्न और शत्रुनाशक बल हमें दे दो।

१ शवसानौ— बलके कारण सेवाके योग्य,

२ साकं वृधौ— साथ साथ बढनेवाले बनो। एक बढे और दूसरेको प्रतिबंध हो ऐसा न हो। समाजके दोनों घटक साथ साथ बढते रहें।

३ भूरेः रायः यवसस्य क्षयन्तौ— बहुत धन और बहुत अन्न अपने पास रखनेवाले बनो। यह अन्न और धन यज्ञके लिये रखना चाहिये। यज्ञसे सब लोगोंका कल्याण होता है। इसलिये ऐसे संग्रह दोष उत्पन्न नहीं करते। पर जो अन्न

३	उपो ह यद् विदथं वाजिनो गुर्धीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः ।	
	अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते	७३७
४	गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।	
	इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः	७३८
५	सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने तनूरुचा शूरसाता यतैते ।	
	अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्रा हतं सोमसुता जनेन	७३९

और धनके संग्रह स्वकीय भोग बढानेके लिये किये जाते हैं वे समाजमें विद्वेष निर्माण करते हैं। इसलिये ' अपरिग्रह ' वृत्तिका उपदेश आगेके ग्रन्थ करते हैं। यज्ञ भावसे वही सिद्ध होता है। यज्ञके लिये होनेवाला संग्रह दोष उत्पन्न नहीं करता।

४ **स्थविरस्य घृष्वेः वाजस्य पृक्तं—** बहुत शत्रु नाशक बल हमें चाहिये। वैसा हमें मिले। यहां शत्रु नाशके लिये बल बढानेका उपदेश है। शत्रुका नाश होना चाहिये। अथवा वह शत्रुता करना छोड देवे। यदि वह शत्रुता करता है तब तो वह विनाश करने ही योग्य है। अपने पास अन्न तथा धन इसलिये रखना है कि उससे अपना बल बढे और शत्रुका नाश करनेका सामर्थ्य बढ जाय।

[३] (७३७) **(वाजिनः विप्राः प्रमतिं इच्छमानाः) बलवान ज्ञानी उत्तम बुद्धिकी इच्छा करनेवाले (यत् विदथं उपो गुः) यज्ञके पास जाते हैं, यज्ञमें भाग लेते हैं। वैसे (ते नरः) वे नेता लोग (अर्वन्तः न काष्ठां) घोडे युद्ध भूमिमें जानेके समान (नक्षमाणाः इन्द्राग्नी जोहुवन्त) जाते हुए इन्द्र और अग्निको बुलाते हैं।**

बुद्धि बढानेकी स्पर्धा

१ **वाजिनः विप्राः प्रमतिं इच्छमानाः विदथं उपोगुः**-- बलवान् ज्ञानी अपनी बुद्धिका प्रकर्ष करनेकी इच्छासे स्पर्धा क्षेत्रमें जाते हैं और वहां अपनी बुद्धिको प्रकट करते हैं। विदथ= यज्ञ, स्पर्धा, युद्ध। स्पर्धासे बुद्धि बढती है।

२ **अर्वन्तः काष्ठां न नरः नक्षमाणाः—** घोडे जैसे अपनी गतिसे पराकाष्ठाको पहुंचते हैं वैसे नेता लोग अपनी प्रगति करनेकी इच्छा करें।

[४] (७३८) **हे इन्द्र और अग्नि! (प्रमतिं इच्छमानः विप्रः) विशेष बुद्धिकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला ज्ञानी (यशसं पूर्वभाजं रयिं ईट्टे) यशस्वी और प्रथम उपभोग लेने योग्य धनकी प्रशंसा गाता है। हे (वृत्रहणा सुवज्रा इन्द्राग्नी) वृत्रका वध करनेवाले उत्तम वज्रधारी इन्द्र और अग्नि! (नव्येभिः देष्णैः नः प्रतिरतं) नवीन तथा देने योग्य धनोंसे हमें संवर्धित करो।**

१ **प्रमतिं इच्छमानः विप्रः पूर्वभाजं यशसं रयिं ईट्टे—** विशेष बुद्धिके प्रकर्षकी इच्छा करनेवाला ज्ञानी पुरुष प्रथम उपभोग लेने योग्य यशस्वी धनका ही गुण गान करता है। यशकी वृद्धि करनेवाला धन ही प्राप्त करने योग्य है।

२ **सुवज्रा वृत्रहणा—** जिनके पास उत्तम शस्त्र रहते हैं वे ही घेरनेवाले शत्रुका नाश कर सकते हैं।

३ **नव्येभिः देष्णैः नः प्रतिरतं**-- नये तथा देने योग्य धनोंसे हमें दुःखोंसे पार करो। नये नये धन उत्पन्न करो और वे धन ऐसे हों कि जो दुःखोंसे पार कर सकते हैं।

[५] (७३९) **(मही मिथती) विशाल और परस्पर स्पर्धा करनेवाली (शूरसाता तनूरुचा सं यतैते) शूरोंके लिये भाग लेने योग्य शत्रुसेनाओंके मध्यमें वीर अपने शरीरके तेजसे मिलकर यशके लिये यत्न करते हैं, वहां (सोमसुता जनेन सत्रा) यज्ञ करनेवाले मनुष्यके साथ रहकर तथा (देवयुभिः) देव भक्तोंके साथ रहकर वीर (अदेवयुं विदथे हतं) देव विरोधी शत्रुका नाश करें।**

१ **मही मिथती शूरसाता तनूरुचा सं यतैते-** बडी विशाल लडनेवाली शूरों द्वारा भाग लेने योग्य शत्रु सेनाओंके

६ इमामु षु सोमसुतिमुप न इन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।
नू चिद्धि परिमम्नाथे अस्माना वां शश्वद्भिर्ववृतीय वाजैः ॥ ७४०

७ सो अग्न एना नमसा समिद्धोऽच्छा मित्रं वरुणमिन्द्रं वोचेः ।
यत् सीमागश्चकृमा तत् सु मृळ तदर्यमादितिः शिश्रथन्तु ॥ ७४१

८ एता अग्न आशुषाणास इष्टीर्युवोः सचाभ्यश्याम वाजान् ।
मेन्द्रो नो विष्णुर्मरुतः परि ख्यन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७४२

(९४) १२ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्राग्नी । गायत्री, १२ अनुष्टुप् ।

१ इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः । अभ्राद् वृष्टिरिवाजनि ॥ ७४३

२ शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः । ईशाना पिप्यतं धियः ॥ ७४४

युद्धके समय जिन वीरोंमें अपना तेज है वे ही वीर मिलकर विजयके लिये प्रयत्न करते हैं। वीरोंको मिलकर विजयके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

२ देवयुभिः सोमसुता जनेन सत्रा अदेवयुं विदथे हतं— देव भक्तोंके साथ तथा यज्ञकर्ताके साथ रहकर देव द्वेष्टा शत्रुका नाश करो। देव भक्तकी सहायता और देव द्वेष्टाका विनाश करो।

[६] (७४०) हे इन्द्र और अग्नि! (इमां नः सोमसुतिं) इस हमारे सोमयागके पास (सौमनसाय सु आयातं) उत्तम मनके भावको बढानेके लिये आओ। (अस्मान् नूचित् परि मम्नाथे) हमारा त्याग करनेका विचार भी तुम कदापि नहीं करते हो। (वां शश्वद्भिः वाजैः आ ववृतीय) इसलिये तुम्हें वार वार अन्नोंसे इधर बुलाता हूं। हमारी ओर आनेके लिये प्रवर्तित करता हूं।

सौमनसाय सोमसुतिं सु आयातं— मनको उत्तम विचारोंसे युक्त करनेके लिये सोम यज्ञके स्थानमें जाओ। वहांके सुविचारोंसे मनमें शुभ भावोंका धारण करो।

[७] (७४१) हे अग्ने! (सः एना मनसा समिद्धः) वह तू उत्तम मनसे प्रदीप्त होकर (मित्रं इन्द्रं वरुणं च वोचेः) मित्र इन्द्र और वरुणके पास जाकर कह कि हमने (यत् आगः सीं चकृम) जो अपराध किया है, (तत् सु मृळ) उससे हमें बचा कर सुखी करो तथा (तत् अर्यमा अदितिः शिश्रथन्तु) उसको अर्यमा अदिति हमसे पृथक् करें। उस अपराधको हमसे दूर करें। हम निर्दोष हों।

[८] (७४२) हे अग्ने! (एताः इष्टीः आशुषाणासः) इन इष्टियोंका शीघ्र सेवन करनेवाले हम (युवोः वाजान् सचा अभि अश्याम) तुम्हारे अन्नोंका हम साथ साथ प्राप्त करेंगे। इन्द्र, विष्णु और मरुत् (नः मा परिख्यन्) हमारा त्याग न करें। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याणके साधनोंसे सदा हमारा संरक्षण करो।

[१] (७४३) हे इन्द्र और अग्नि! (इयं पूर्व्य स्तुतिः) यह पहिली स्तुति (अस्य मन्मनः) इस मननशील ऋषिसे (वां अभ्रात् वृष्टिः इव अजनि) आप दोनोंके लिये मेघसे वृष्टि होनेके समान हुई है, उसका श्रवण करो।

[२] (७४४) हे इन्द्र और अग्नि! (जरितुः हवं शृणुतं) स्तोताकी प्रार्थना सुनो! (गिरः वनतं) उनके वचन श्रवण करो। और (ईशाना धियः पिप्यतं) तुम स्वामी हो इसलिये हमारी बुद्धि पूर्वक किये कर्मोंको सफल बनाओ।

३	मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये ।	मा नो रीरधतं निदे	७४५
४	इन्द्रे अग्ना नमो बृहत् सुवृक्तिमेरयामहे ।	धिया धेना अवस्यवः	७४६
५	ता हि शश्वन्त ईळत इत्था विप्रास ऊतये ।	सबाधो वाजसातये	७४७
६	ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे ।	मेधसाता सनिष्यवः	७४८
७	इन्द्राग्नी अवसा गतमस्मभ्यं चर्षणीसहा ।	मा नो दुःशंस ईशत	७४९
८	मा कस्य नो अररुषो धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य ।	इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम्	७५०
९	गोमद्धिरण्यवद् वसु यद् वामश्वावदीमहे ।	इन्द्राग्नी तद् वनेमहि	७५१

[३] (७४५) हे (नरा इन्द्राग्नी) नेता इन्द्र और अग्नि! (नः पापत्वाय) हमारे पापके लिये (अभिशस्तये) पराभवके कारण, शत्रुकृत हीन-भाव प्रदर्शनके लिये, तथा (नः निदे) हमारी निंदा हो रही तो उसके कारण (मा मा मा रीरधतं) हमें परवश न करो। हम किसी भी कारण पराधीन होना नहीं चाहते। हमारा विनाश न हो।

[४] (७४६) (अवस्यवः इन्द्रे अग्ना) सुरक्षाकी इच्छा करनेवाले हम इन्द्र और अग्निके पास (बृहत् नमः) बहुत अन्न, (सु वृक्तिं) उत्तम स्तुति और (धिया धेनाः) बुद्धि पूर्वक बोले वचनोंको (आ ईरयामः) प्रेरित करते हैं। उनकी स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं।

[५] (७४७) (ता हि) उन इन्द्र और अग्निकी सचमुच (शश्वंतः विप्रासः) बहुत ही ज्ञानी जन (ऊतये इत्था ईळते) अपने संरक्षणके लिये इस तरह स्तुति गाते हैं। तथा (सबाधः वाजसातये) समान पीडासे युक्त हुए लोग अन्न प्राप्तिके लिये उन्हींकी प्रशंसा करते हैं।

समान पीडासे संगठन

सबाधः विप्राः वाजसातये ईळते— समान रीतिसे पीडित हुए ज्ञानी लोग अपनी पीडा दूर करनेके लिये संगठित होते हैं और सुख साधन बढानेके लिये मिलकर उनके काव्य गाते हैं।

[६] (७४८) (विपन्यवः प्रयस्वन्तः) विशेष ज्ञानी और प्रयत्नशील (सनिष्यवः) धन प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले हम लोग (मेधसाता) यज्ञमें (ता वां गीर्भिः हवामहे) तुम दोनोंको अपनी स्तुति प्रार्थनाके वचनोंसे बुलाते हैं।

[७] (७४९) हे (चर्षणीसहा इंद्राग्नी) शत्रु-सेनाका पराभव करनेवाले इन्द्र और अग्नि! (अस्मभ्यं अवसा आ गतं) हमारे पास अपने संरक्षणके साधनोंके साथ आओ। (दुःशंसः नः मा ईशते) दुष्टोंका शासन हमपर न हो।

दुष्टोंका राज्य न हो।

१ **दुःशंसः नः मा ईशत**— दुष्टका राज्यशासन हमपर न हो। दुष्टके अधीन हम न हों।

२ **चर्षणी- सहा अस्मभ्यं अवसा आगतं**--शत्रुका पराभव करनेवाले वीर हमारे पास रक्षण करनेके साधनोंसे आजाय और वे हमारे पास रहें।

[८] (७५०) हे इन्द्र और अग्नि! (कस्य अररुषः मर्त्यस्य) किसी भी शत्रुरूप मानवकी (धूर्तिः नः मा प्रणक्) धूर्तता या हिंसा हमारा नाश न करे। हमें (शर्म यच्छतं) सुख दो, हमें सुखी करो।

[९] (७५१) हे इंद्र और अग्नि! (गोमत् हिरण्यवत् अश्ववत् वसु) गौओं, सुवर्ण और घोडोंसे युक्त धन (यत् वां ईमहे) जो तुम्हारे पास हम मांगते हैं (तत् वनेमहि) वह हमें प्राप्त हो।

हमें धन, रत्न, सुवर्ण, गौवें, घोडे पर्याप्त प्रमाणमें प्राप्त हों।

१०	यत् सोम आ सुते नर इन्द्राग्नी अजोहवुः । सप्तीवन्ता सपर्यवः	७५२
११	उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा । आङ्गूषैराविवासतः	७५३
१२	ताविद् दुःशंसं मर्त्यं दुर्विद्वांसं रक्षस्विनम् । आभोगं हन्मना हतमुदधिं हन्मना हतम्	७५४

(९५) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । सरस्वती, ३ सरस्वान् । त्रिष्टुप् ।

१	प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः । प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः	७५५
२	एकाचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् । रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय	७५६

---

[१०] (७५२) (सोमे सुते) सोमका रस निकालनेपर (सपर्यवः नरः) पूजा करनेवाले मनुष्य (सप्तीवन्ता इंद्राग्नी) प्रशंसित घोडोंवाले इंद्र और अग्निको (आ अजोहवुः) बुलाते हैं ।

[११] (७५३) (वृत्रहन्तमा मंदाना या) शत्रुका हनन करनेवाले और आनंदित होनेवाले इन्द्र और अग्निकी (उक्थेभिः गिरा आंगूषैः आ आविवासतः) स्तोत्रों, वचनों और काव्योंके गानसे प्रशंसा करते हैं।

शत्रुका नाश करो ।

[१२] (७५४) हे इंद्र और अग्नि! (ता) वे तुम दोनों (दुःशंसं दुर्विद्वांसं) दुष्ट और दुष्ट विद्वान (आ भोगं रक्षस्विनं) अपहरणशील राक्षसरूप शत्रुका (हन्मना हतं) घातक शस्त्रसे नाश करो । (उदधिं हन्मना हतं) पानीसे भरे घडेका जैसा विनाशक साधनसे नाश करते हैं वैसा शत्रुका नाश करो ।

सरस्वती

[१] (७५५) (एषा सरस्वती) यह सरस्वती नदी (आयसी पूः) लोहेके प्राकारवाली नगरीके समान (धरुणं) सबकी सुरक्षाका धारण करती है । यह अपने (धायसा क्षोदसा प्र सस्रे) धारक जलके साथ दौड रही है । यह (सिन्धुः) नदी अपनी (महिना) महिमासे (विश्वाः अन्याः अपः) दूसरे सब जलोंको (रथ्या इव प्रबाबधाना) रथ चलानेवाले सारथी की तरह बाधा पहुंचाती हुई (याति) जाती है ।

सरस्वती नदी है, इसका अखंड प्रवाह है । यह पत्थरों और लोहेसे बने हुए किलेके समान शत्रुसे प्रजाका संरक्षण करती है। जिस तरह किला प्रजाका संरक्षण करता है वैसी नदी भी प्रजाका संरक्षण करती है । नदी अन्न उत्पन्न करके, शत्रुको दूर रखके ऐसे अनेक प्रकारसे संरक्षण करती है । यह दूसरे जल प्रवाहोंको अपने अन्दर लेकर उनका नाम निशान मिटा देती है और उनसे स्वयं बढती रहती है, अपनी महिमाको बढाती है । रथ चलानेवाला उत्तम सारथी जिस तरह मार्गके पत्थरों और गढोंको दूर रखकर अपने सरल मार्गसे रथको ले जाता है उस तरह यह सरस्वती नदी अपने प्रवाहके वेगसे मार्गको काटती हुई और बीचके विघ्नोंको दूर करती हुई जाती है । मनुष्यको इस तरह विघ्नोंको दूर करते हुए बढना चाहिये । यह उपदेश मनुष्यके लिये इससे मिलता है ।

[२] (७५६) (नदीनां शुचिः) नदियोंमें शुद्ध (गिरिभ्यः आ समुद्रात् यती) पहाडोंसे समुद्र पर्यंत जानेवाली (एका सरस्वती अचेतत्) यह एक ही सरस्वती नदी चेतनायुक्त सी चल रही है । (भुवनस्य भूरेः रायः चेतंती) इस पृथ्वीपरके बहुत धनोंको बताती है और (नाहुषाय पयः घृतं दुदुहे) नहुषके लिये दूध और घी देती रही ।

३ स वावृधे नर्यो योषणासु वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु ।
स वाजिनं मघवद्भ्यो दधाति वि सातये तन्वं मामृजीत ६५७

४ उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत् सुभगा यज्ञे अस्मिन् ।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ७५८

५ इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।
तव शर्मन् प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ७५९

सरस्वती नदी सब नदियोंमें अधिक शुद्ध है। यह नदी पर्वतोंसे चलकर समुद्रको मिलती है। जैसी कोई चेतनावाली हो वैसी यह दौड रही है। पृथ्वीमें उत्पन्न होनेवाले सब धान्य आदि धनोंको यह देती है और इस नदीके तीरपर रहनेवालोंको पर्याप्त दूध और घी देती है।

[३] (७५७) (नर्यः वृषा) मानवोंके लिये हितकारी बलवान् (सः शिशुः वृषभः) वह बछडे बैलके समान तरुण (यज्ञियासु योषणासु) यज्ञके लिये रखी स्त्रियोंमें गौओंमें (ववृधे) बढता है। (सः मघवद्भ्यः वाजिनं दधाति) वह यज्ञकर्ताओंके लिये बलवान् पुत्र प्रदान करता है। और (सातये तन्वं वि ममृजीत) लाभ करनेके लिये शरीरकी विशेष प्रकारसे शुद्धता करता है।

तरुण कैसा हो ?

(नर्यः) सब मानवोंका कल्याण करनेमें तत्पर (वृषा) बलवान् बैल जैसा पुष्ट (वृषभः शिशुः) तरुण बैल जैसा सामर्थ्यवान् (यज्ञियासु योषणासु) पूजनीय पवित्र स्त्रीके साथ रहता है। और सब प्रकारसे पुष्ट होता है वह (वाजिनं दधाति) वह उत्तम बलवान वीर पुत्र उत्पन्न करता है; ऐसे तरुणसे बलवान संतान उत्पन्न होती है। यह तरुण अधिक (सातये) लाभ प्राप्त करनेके लिये (तन्वं विममृजीत) अपने शरीरको मलीनता रहित निर्दोष रखता है और अन्तर्बाह्य शुद्ध रहता है। इस कारण वह नीरोग और पुष्ट रहता है और संतान भी सुदृढ निर्माण कर सकता है।

राष्ट्रमें ऐसे तरुण हों और वे परिशुद्ध रहकर उत्तम संतान उत्पन्न करें।

[४] (७५८) (उत जुषाणा सुभगा स्या सरस्वती) और प्रसन्न हुई वह भाग्यवाली सरस्वती (नः अस्मिन् यज्ञे उप श्रवत्) हमारे इस यज्ञमें हमारी की हुई स्तुति सुने। (मितज्ञुभिः नमस्यैः इयाना) घुटने टेककर नमन करनेवाले उपासक उस नदीके पास जाते हैं। (युजा राया चित्) वह नदी योग्य धनसे युक्त है और (सखिभ्यः उत्तरा) मित्रभावसे रहनेवालोंके लिये उच्चतर अवस्था देती है।

घुटने टेककर प्रार्थना

१ सरस्वती मित-ज्ञुभिः नमस्यैः इयाना— सरस्वती नदीके तीर पर उपासना करनेवाले घुटने टेककर नमस्कार करते हुए स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते हैं। दोनों घुटने जोडकर टेककर नमन करना आज कल यवनोंमें है। वैदिक कर्म करनेके समय भी किसी समय घुटने टेकने होते हैं। पर यह प्रथा इस समय आर्योंमें सर्वत्र प्रचलित नहीं है। यवनोंमें तथा ईसाइयोंमें दीखती है।

२ सुभगा सरस्वती— उत्तम भाग्य देनेवाली सरस्वती नदी है। वह जलसे धान्य देती है, गौओंमें दूध और दूधसे घृत देती है। सरस्वती नदीपर ऋषि रहते थे जो सारस्वत कहलाते हैं, इसलिये वह विद्याका स्थान है। ऐसी उत्तम सरस्वती नदी है।

३ युजा राया सखिभ्यः उत्तरा सरस्वती— योग्य धन धान्य होनेसे परस्पर प्रेम भावसे रहनेवालोंके लिये उच्चतर अवस्था देनेवाली यह नदी है।

[५] (७५९) हे सरस्वती नदी! (इमा जुह्वाना) इन अन्नोंका यज्ञ करनेवाले हम (नमोभिः युष्मत्

६ अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः ।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७६०

(९६) १ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। सरस्वती, ४-६ सरस्वान् । १-२ प्रगाथः = (१ बृहती, २ सतो बृहती), ३ प्रस्तारपङ्क्तिः, ४-६ गायत्री ।

१ बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम् ।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥ ७६१

२ उभे यत् ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः ।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम् ॥ ७६२

आ) नमस्कार पूर्वक तुमसे अधिक अन्न प्राप्त करते हैं। (स्तोमं प्रति जुषस्व) हमारे स्तोत्रका श्रवण कर। हम अपने आपको (तव प्रियतमे शर्मन् दधानाः) तुम्हारे अत्यंत प्रिय सुखमें धारण करते हैं, (शरणं न वृक्षं उप स्थेयां) और आश्रय भूत वृक्षकी तरह तुम्हारे साथ रहेंगे। जैसे पक्षी वृक्षके आश्रयसे रहते हैं वैसे हम तुम्हारे आश्रयसे रहेंगे।

[६] (७६०) हे (सुभगे सरस्वति) उत्तम भाग्यशाली सरस्वती नदी ! (अयं वसिष्ठः) यह वसिष्ठ ऋषि (ते ऋतस्य द्वारौ वि आवः) तुम्हारे लिये यज्ञके दोनों द्वार खोलता है। हे (शुभ्रे ! स्तुवते वर्ध) शुभ्रवर्णवाली देवि ! स्तोताके हित करनेके लिये बढो तथा (वाजान् रासि) उसको अन्न दो। (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात) तुम कल्याणके साधनोंसे हमारी सदा सुरक्षा करो।

[१] (७६१) हे वसिष्ठ ! तुम (नदीनां असुर्या बृहत् उ वचः गायिषे) नदियोंमें बलवती नदीके बडे स्तोत्रोंका गान करो। (रोदसी सरस्वतीं) द्युलोक और भूलोकमें रहनेवाली सरस्वतीका महत्व (सुवृक्तिभिः स्तोमैः महय) उत्तम वचनोंके स्तोत्रोंसे वर्णन करो।

[२] (७६२) हे शुभ्रे) शुभ्र वर्णवाली सरस्वती नदी ! (यत् ते महिना) जिस तुम्हारी महिमा द्वारा (उभे अंधसी) दोनों प्रकारके दिव्य और पार्थिव अन्नको (पूरवः अधि क्षियन्ति) नागरिक लोग प्राप्त होते हैं। (सा अवित्री नः बोधि) वह रक्षण करनेवाली नदी हमारा रक्षण करना है यह जाने। (मरुत्सखा मघोनां राधः चोद) मरुतोंके साथ मित्रता करनेवाली वह नदी यज्ञ करनेवाले धनिकोंके पास धनको प्रेरित करे।

१ उभे अन्धसी— दिव्य अन्न सोमका रस है, पार्थिव अन्न चावल है। यह दोनों अन्न सरस्वती नदीपर होते हैं और यज्ञ करनेवालोंको प्राप्त होते हैं।

२ पूरवः उभे अन्धसी अधि क्षियन्ति— नागरिक लोग पूर्वोक्त दोनों प्रकारके अन्नोंको प्राप्त करते हैं। वे यज्ञ करते हैं जिनमें वे दोनों अन्न आते हैं और सबको मिलते हैं।

३ अवित्री सरस्वती— सरस्वती नदी सब लोगोंका संरक्षण करनेवाली है।

४ मघोनां राधः चोद— धनवान् अपने धनसे यज्ञ करे और यज्ञ करनेसे उसके पास धन आजाय। यहां यज्ञकर्ताका नाम ' मघवान् ' कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि जिसके पास धन हो वह उस धनका उपयोग करके अवश्य ही यज्ञ करे। धनवान् यज्ञ करता है और जो यज्ञ करता है वह धनवान् होता है। धनवान्को उचित है कि वह अपने धनका यज्ञमें उपयोग करे। धन यज्ञके लिये ही है।

३ भद्रमिद् भद्रा कृणवत् सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती ।
गृणाना जमदग्निवत् स्तुवाना च वसिष्ठवत् ७६३

४ जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः । सरस्वन्तं हवामहे ७६४

५ ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः । तेभिर्नोऽविता भव ७६५

६ पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः । भक्षीमहि प्रजामिषम् ७६६

---

[३] (७६३) (भद्रा सरस्वती भद्रं इत् कृणवत्) कल्याण करनेवाली सरस्वती निःसंदेह कल्याण करती हैं । तथा (अकवारी वाजिनीवती चेतति) सीधी जानेवाली और अन्नदेनेवाली यह सरस्वती हमारे अन्दर चेतना उत्पन्न करे, प्रज्ञा बढावे । (जमदग्निवत् गृणाना) जमदग्नि ऋषिके द्वारा प्रशंसित होनेके समान (वसिष्ठवत् च स्तुवाना) वसिष्ठके योग्य स्तुतिसे प्रशंसित हो ।

सरस्वती कल्याण करनेवाली है वह सबका कल्याण करे । यहां सरस्वती नदी भी है और विद्या भी समझनी योग्य है । जैसी सरस्वती नदी अन्नादि द्वारा कल्याण करती है वैसी विद्या भी मानवोंका कल्याण करती है ।

(वाजिनीवती) अन्न देनेवाली सरस्वती नदी भी है और विद्या भी अन्न तथा धन देती है । (अ-कवारी) यह सीधा उन्नतिका मार्ग बताती है । टेढी चालसे चलनको रोकती है ।

जमदग्नि (जमत्-अग्नि) जो अग्निको प्रदीप्त करता है । वासिष्ठ (वासयति) जो निवास कराता है । इस वासिष्ठके मन्त्रमें जमदग्निका नाम आनेसे जमदग्निका पूर्वकालमें होना इतिहास पक्षवालोंकी दृष्टिसे सिद्ध होता है ।

पुत्रकी इच्छा

[४] (७६४) (जनीयन्तः) पत्नीवाले (पुत्रीयन्तः) पुत्रकी कामना करनेवाले (सुदानवः अग्रवः) उत्तम दान देनेवाले हम अग्रेसर होकर (सरस्वन्तं हवामहे) सरस्वान् समुद्र देवकी विद्वानकी प्रशंसा गाते हैं ।

विवाह करके पत्नीवान् बनो, सुपुत्रकी इच्छा करो, बहुत दान दो, अपने राष्ट्रमें अग्रभागमें रहकर कार्य करो और ज्ञानीकी सेवा करो । ' सरस्वान् ' का अर्थ ' समुद्र ' है । यह नदियोंका पति है । सरस्वती नदी है, सरस्वती विद्या भी है । जो महा विद्वान् होता है वह इस कारणसे विद्याका समुद्र ही है ।

[५] (७६५) हे (सरस्वः) समुद्र देव ! (ये ते ऊर्मयः) जो तुम्हारी लहरियाँ (मधुमन्तः घृतश्चयुतः) मीठी और घीवाली हैं, (तेभिः नः अविता भव) उनसे हमारे संरक्षक बनो ।

सरस्वान्का अर्थ समुद्र है और महाज्ञानी भी है । विद्याकी नदियां इसके हृदयमें आकर मिलती हैं । इसके हृदयकी जो उर्मियां हैं वह ऊर्मियाँ मधुरिमाको प्रकट करनेवाली और घीके समान स्नेहको फैलानेवाली हों । विद्याके समुद्रके येही कर्तव्य हैं ।

[६] (७६६) (यः विश्वदर्शतः) जो विश्वका दर्शन कराता है, उस (सरस्वतः पपिवांसं स्तनं) सरस्वान्--समुद्रके परिपुष्ट स्तनका हम पान करते हैं और (प्रजां इषं भक्षीमहि) सुप्रजा तथा अन्न प्राप्त करते हैं ।

सरस्वान् = समुद्र, महाज्ञानी, मेघ । इसका स्तन वर्षा करनेवाला मेघ (मेघपक्षमें), महाज्ञानीके पक्षमें ज्ञानरस देनेवाला उसका हृदय, समुद्रके पक्षमें नदीके मीठे जलका स्रोत ।

ये तीनों मंत्र समुद्रका वर्णन करते हुए साथ साथ महाज्ञानीका वर्णन कर रहे हैं । इस सूक्तमें जो नदीका वर्णन है वह विद्याका वर्णन है । इस तरह इस सूक्तका अर्थ जाननेका यत्न करना योग्य है ।

(९७) १० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । १ इन्द्रः; २, ४-८ बृहस्पतिः; ३, ९ इन्द्राब्रह्मणस्पती, १० इन्द्राबृहस्पती । त्रिष्टुप् ।

१ यज्ञे दिवो नृषदने पृथिव्या नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
इन्द्राय यत्र सवनानि सुन्वे गमन्मदाय प्रथमं वयश्च ॥ ७६७

२ आ दैव्या वृणीमहेऽवांसि बृहस्पतिर्नो मह आ सखायः ।
यथा भवेम मीळ्हुषे अनागा यो नो दाता परावतः पितेव ॥ ७६८

३ तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।
इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥ ७६९

इन्द्र और बृहस्पति

[१] (७६७) (यत्र देवयवः नरः मदन्ति) जहां देवत्वकी प्राप्ति करनेवाले नेता लोग आनंदित होते हैं, (यत्र इन्द्राय सवनानि सुन्वे) जहां इन्द्रके लिये सोमका रस निकालते हैं। वहां (पृथिव्याः नृषदने यज्ञे) पृथ्वी परके मनुष्योंका कल्याण करनेके यज्ञ स्थानमें (दिवः प्रथमं मदाय गमत्) द्युलोकसे सबसे प्रथम इन्द्र आनंदित होनेके लिये आवे और (वयः च) उसके शीघ्रगामी घोडे भी आजांये।

पृथ्वीपर यज्ञका स्थान ऐसा है कि जो सब मानवोंका कल्याण करता है। वहां दैवी भावको अपनानेका यत्न करनेवाले लोग एकत्रित होते हैं। सोमरस निकालते हैं, वहां द्युलोकसे इन्द्र आता है और अपने घोडोंवाले रथमें बैठकर अति शीघ्र वहां पहुंचता है। जहां यज्ञ होता है वहां लोगोंका हित करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष अवश्य जांय।

[२] (७६८) हे (सखायः) मित्रो ! हम (दैव्या अवांसि आवृणीमहे) दिव्य संरक्षणोंको प्राप्त करना चाहते हैं। (नः बृहस्पतिः आ महे) हमारे यज्ञका बृहस्पति स्वीकार करे। (यः परावतः पिता इव नः दाता) जो बृहस्पति दूरदेशसे पिता पुत्रोंको धन देता है उस तरह हमें धन देता है। उस (मीळ्हुषे यथा अनागाः भवेम) सुखदायी बृहस्पतिके सन्मुख हम जिस तरह निष्पाप होकर जांय वैसा आचरण करो।

१ दैव्या अवांसि आवृणीमहे— रक्षण करनेके दिव्य साधन प्राप्त करने चाहिये। उत्तमसे उत्तम साधन अपने संरक्षण करनेके लिये अपने पास सिद्ध रखने चाहिये।

२ पिता इव बृहस्पतिः अवांसि नः दाता— जिस तरह पिता पुत्रोंको धनादिका दान देता है, उस तरह ज्ञानका स्वामी ज्ञानी संरक्षणके उपायोंका हमें प्रदान करता है। इसलिये ज्ञानीके पास जाकर अपने संरक्षण करनेके साधनोंका ज्ञान तथा उनके बर्तनेकी विद्या प्राप्त करनी चाहिये।

३ बृहस्पतिः परावतः दाता— ज्ञानी यह ज्ञान दूरसे भी देता है। ऐसे उपाय किये जा सकते हैं कि यह ज्ञान सुदूर देशसे भी लेनेवालेको मिल जाय।

४ मीळ्हुषे अनागाः भवेम— इस सुख देनेवाले ज्ञानीके पास हम निष्पाप, निर्दोष, प्रमाद रहित होकर जांय। प्रमाद करनेवालेको यह ज्ञान लाभदायी नहीं हो सकता।

[३] (७६९) (तं ज्येष्ठं सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं) उस श्रेष्ठ सेवा करने योग्य ज्ञान पतिकी (हविर्भिः नमसा गृणीषे) हवनों और नमस्कारोंके साथ स्तुति गाता हूं। (महि इन्द्रं दैव्यः श्लोकः सिषक्तु) महान् इन्द्रकी यह दिव्य श्लोक-मन्त्र—सेवा करे। गुणगान करे। (यः देवकृतस्य ब्रह्मणः राजा) यह इंद्र देवके द्वारा किये स्तोत्रका राजा है, अधिकारी है।

देवकृत मन्त्र, श्लोक और ब्रह्म

इस मंत्रमें '**देव-कृतस्य ब्रह्मणः**' '**दैव्यः श्लोकः**' ये दो मन्त्रभाग हैं। इनसे स्पष्ट हो रहा है कि ये जो वेदके मन्त्र या स्तोत्र हैं, जिनको 'ब्रह्म' भी कहा जाता है, वे 'देव-कृत' हैं अतः वे 'दैव्य' हैं। जो मुख्य परमात्मदेव है वही मुख्य देवाधिदेव है। उसके बनाये ये 'मन्त्र, ब्रह्म, श्लोक' हैं। ये दोनों मन्त्रभाग मुख्य हैं। और वेदमंत्रोंका दिव्य स्फुरण कहांसे होता है इसका स्पष्ट निर्देश यहां दर्शाया है।

४ स आ नो योनिं सदतु प्रेष्ठो बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति ।
कामो रायः सुवीर्यस्य तं दात् पर्षन्नो अति सश्चतो अरिष्टान् ७७०

५ तमा नो अर्कममृताय जुष्टमिमे धासुरमृतासः पुराजाः ।
शुचिक्रन्दं यजतं पस्त्यानां बृहस्पतिमनर्वाणं हुवेम ७७१

६ तं शग्मासो अरुषासो अश्वा बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति ।
सहश्चिद् यस्य नीलवत् सधस्थं नभो न रूपमरुषं वसानाः ७७२

७ स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युर्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः ।
बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ७७३

---

[४] (७७०) (प्रेष्ठः सः बृहस्पतिः नः योनिं आ सदतु) वह श्रेष्ठ ज्ञानपति हमारे यज्ञस्थानमें आकर बैठे । (यः विश्ववारः अस्ति) जो सबके द्वारा स्वीकार करने योग्य है । (सुवीर्यस्य रायः कामः तं दात्) उत्तम वीर्य युक्त धनकी जो हमारी अभिलाषा है उसको वह पूर्ण करता है । तथा वह (नः सश्चतः अरिष्टान् अतिपर्षत्) हमारे ऊपर आये उपद्रवोंसे हमें पार करे, हमारे शत्रुओंको वह हमसे दूर करे ।

१ नः सुवीर्यस्य रायः कामः— हमारी इच्छा यह है कि हमें उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति प्राप्त हो और वीरता युक्त धन हमें मिले । यह हमारी इच्छा सफल हो जाय ।

२ नः सश्चतः अरिष्टान् अतिपर्षत्— हमारे ऊपर आये दुःख दूर हों ।

३ प्रेष्ठः बृहस्पतिः नः योनिं आसदतु— श्रेष्ठ ज्ञानपति हमारे यज्ञमें आकर आसन पर बैठे । और हमें संरक्षणके सब साधन देवे ।

[५] (७७१) (तं अमृताय जुष्टं अर्कं) उस अमरत्वके लिये सेवन करने योग्य पूजनीय अन्नको (इमे पुराजाः अमृतासः) ये प्राचीन कालसे प्रसिद्ध अमर देव (नः आ धासुः) हमें देवें । हम (शुचिक्रन्दं पस्त्यानां यजतं) शुद्धताके लिये प्रशंसित, गृहस्थियों के लिये पूजनीय (अनर्वाणं बृहस्पतिं हुवेम) पीछे न हटनेवाले बृहस्पतिकी स्तुति गाते हैं ।

१ अमृताय जुष्टं अर्कं अमृतासः नः आधासुः— मृत्युको दूर करनेवाले सेवनीय अन्नको हमें ये देव देते हैं । योग्य अन्न खानेसे मृत्यु दूर हो सकता है ।

२ अनर्वाणं बृहस्पतिं हुवेम— कदापि पीछे न हटने वाले ज्ञानीकी हम प्रशंसा गाते है । वीर पीछे हटनेवाला न हो ।

[६] (७७२) (शग्मासः अरुषासः) सुखदायी तेजस्वी (सहवाहः अश्वाः) साथ रहकर वहन करनेवाले घोडे (तं बृहस्पतिं वहन्ति) उस ज्ञान पतिको वहन करते हैं । (यस्य सहः चित्) जिसका बल विशाल है, (यस्य नीलवत् सधस्थं) जिसका निवास स्थान निवासके लिये सुयोग्य है । जिसके घोडे (नभः अरुषं रूपं वसानाः) आदित्य के समान तेजस्वी रूप धारण करते हैं ।

उत्तम रहन सहन

[७] (७७३) (सः हि शुचिः शतपत्रः) वह शुद्ध है और बहुत प्रकारके वाहन अपने पास रखने वाला है । (सः शुन्ध्युः हिरण्यवाशीः) वह शुद्धि करनेवाला और सुवर्ण जैसे आयुधोंवाला है । वह (इषिरः स्वर्षाः) प्रगतिशील और आत्म-तेज देनेवाला है । (सः बृहस्पतिः स्वावेशः ऋष्वः) वह बृहस्पति उत्तम निवासस्थानवाला और दर्शनीय सुन्दर है । वह (सखिभ्यः पुरु आसुतिं करिष्ठः) मित्रोंके लिये बहुत अन्न देता है ।

वीर स्वयं शुद्ध रहे, अनेक वाहन पास रखे, अन्योंको शुद्ध बनावे, उत्तम शस्त्र अपने पास रखे, प्रगति करता रहे, स्वकीय शक्तिसे आगे बढे, उत्तम निवास स्थानमें रहे, सुंदर वस्त्र आभू-

८ देवी देवस्य रोदसी जनित्री बृहस्पतिं वावृधतुर्महित्वा ।
दक्षाय्याय दक्षता सखायः करद् ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा ७७४

९ इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिर्ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ७७५

१० बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७७६

(९८) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः, ७ इन्द्राबृहस्पती । त्रिष्टुप् ।

१ अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद् याति सुतसोममिच्छन् ७७७

षण धारण करके अपनी शोभा बढावे और अपने मित्रोंको उत्तम अन्न देता रहे ।

वीरोंको इस तरह रहना चाहिये । निस्तेज हीन दीन दुर्बल रहना उचित नहीं है ।

[८] (७७४) (देवस्य जनयित्री देवी रोदसी) बृहस्पति देवकी जननी द्यौ और पृथिवी ये देवता हैं । (महित्वा बृहस्पतिं ववृधतुः) महिमासे युक्त बृहस्पतिको ये बढाती हैं । हे (सखायः) मित्रो ! (दक्षाय्याय दक्षत) बलके योग्य बृहस्पतिको बलके साथ बढाओ । वह (ब्रह्मणे) ज्ञान और अन्नके संवर्धन के लिये (सुतरा सुगाधा करत्) जलको तैरने योग्य और स्नानके योग्य पर्याप्त प्रमाणमें करता है ।

[९] (७७५) हे ब्रह्मणस्पते ! तुम्हारे लिये और (वज्रिणे इन्द्राय) वज्रधारी इन्द्रके लिये अर्थात् (वां) तुम दोनोंके लिये (इयं सुवृक्तिः ब्रह्म अकारि) यह उत्तम वचन युक्त स्तोत्र किया है । (धियः अविष्टं) हमारे बुद्धि युक्त कर्मोंका संरक्षण करो, (पुरंधीः जिगृतं) बहुत प्रकारकी बुद्धिका श्रवण करो और (वनुषां अर्यः अरातीः जजस्तं) भक्तोंके शत्रुओंकी सेनाओंका विनाश करो ।

१ धियः अविष्टं— बुद्धिका संरक्षण करो, बुद्धिपूर्वक योजना पूर्वक किये कर्मोंका संरक्षण करो ।

२ पुरंधीः जिगृतं-- विशाल बुद्धिकी प्रशंसा करो ।

३ वनुषां अर्यः अरातीः जजस्तं— मित्रोंके शत्रुओंकी सेनाओंका नाश करो । अपने मित्रोंके जो शत्रु हैं वे अपने ही शत्रु हैं अतः उनका नाश करना योग्य है ।

[१०] (७७६) हे बृहस्पते ! तू और इन्द्र ! तुम दोनों (दिव्यस्य वस्वः ईशाथे) द्युलोकमें उत्पन्न धनके तुम स्वामी हो । (उत पार्थिवस्य) और पृथ्वीपर उत्पन्न हुए धनके भी तुमही स्वामी- हो । (स्तुवते कीरये चित् रयिं धत्तं) स्तुति करने- वाले कविके लिये धन दो । (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याणके साधनोंसे सदा हमारी सुरक्षा करो ।

[१] (७७७) हे (अध्वर्यवः) अध्वर्युओ ! (क्षितीनां वृषभाय) मानवोंमें अधिक बलिष्ठ ऐसे इन्द्रके लिये (अरुणं दुग्धं अंशुं जुहोतन) तेजस्वी दुहे हुए सोमरसका हवन करो । (अवपानं गौरात् वेदीयान् इन्द्रः) पीने योग्य रसको गौरमृग से भी दूरसे जाननेमें समर्थ इन्द्र (सुतसोमं इच्छन्) सोम याग करनेवालेकी इच्छा करता हुआ (विश्वहा इत् याति) सर्वदा उसके पास जाता है ।

२	यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।	
	उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि सोमान्	७७८
३	जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता [illegible] ।	
	एन्द्र पप्राथोर्वन्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ	७७९
४	यद् योधया महतो मन्यमानान् त्साक्षाम तान् बाहुभिः शाशदानान् ।	
	यद् वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम	७८०

---

[२] (७७८) हे इन्द्र ! (प्रदिवि चारुं अन्नं दधिषे) पूर्व समयमें सुंदर अन्न रूप सोमरसका तुम अपने उदरमें धारण करते हैं, (दिवे दिवे अस्य पीतिं वक्षि इत्) प्रतिदिन उसके पान-की तुम इच्छा करते ही हो। (उत् हृदा उत् मनसा) हृदयसे और मनसे (जुषाणः उशन्) उसका सेवन करके हमारी इच्छा करके (प्रस्थि-तान् सोमान् पाहि) यहां रखे हुए सोम रसोंका पान करो।

[३] (७७९) हे इन्द्र ! तुम (जज्ञानः सहसे सोमं पपाथ) उत्पन्न होते ही बल बढानेके लिये सोम पीते हो। (माता ते महिमानं प्र उवाच) माता तुम्हारी महिमाका वर्णन करती है। (उरु अन्तरिक्षं आ पप्राथ) विस्तीर्ण अन्तरिक्षको तुमने अपने तेजसे भर दिया। और (युधा देवेभ्यः वरिवः चकर्थ) युद्ध करके देवोंके लिये तुमने धन भी उत्पन्न किया था।

बालपनमें इन्द्रने बल बढाया, अपने तेजसे जगतको तेजस्वी बनाया और तरुण होते ही युद्धमें शत्रुओंका पराभव करके बहुत धन प्राप्त किया।

युद्धमें विजय पाना

[४] (७८०) हे इन्द्र ! (महतः मन्यमानान् यत् योधयाः) अपने आपको बहुत बडे करके माननेवाले शत्रुओंके साथ जब तुम्हारा युद्ध हुआ (तान् शाशदानान् बाहुभिः साक्षाम) उन हिंसक शत्रुओंका हम अपने बाहुओंसे ही प्रतीकार करेंगे। (यत् वा नृभिः वृतः अभियुध्याः) जिस समय तुम वीरोंके साथ रहकर शत्रुसे युद्ध करोगे उस समय (त्वया तं सौश्रवसं आजिं जयेम) तुम्हारे साथ हम रहेंगे और उस यश बढाने-वाले युद्धको जीतेंगे। हम विजय प्राप्त करेंगे।

यह मंत्र वसिष्ठ ऋषि बोल रहा है और इसमें कहा है कि-

१ त्वया तं सौश्रवसं आजिं जयेम-- हम सब वासिष्ठ गोत्रके लोग, इन्द्रके साथ युद्धमें रहेंगे और यश देनेवाले उस संग्राममें हम विजयी होंगे। ये ऋषि युद्धमें जानेके लिये तैयार थे और राक्षसोंके साथ युद्ध करके विजय तथा यश पाने-वाले थे। ऋषियोंका यह सामर्थ्य था।

२ महतः मन्यमानान् योधयाः-- बडे घमंडी शत्रुओंके साथ तुम युद्ध करते हो उस समय तुम्हारे साथ हम भी रहेंगे और-

३ तान् शाशदानान् बाहुभिः साक्षाम-- उन हिंसक शत्रुओंका पराभव हम अपने बाहुओंके बलसे करेंगे और विजयी होंगे। यह ऋषिवाक्य है। इससे सिद्ध होता है कि ऋषियोंके बाहुओंमें भी कैसा बल होता था। ऋषि निर्बल नहीं थे। वे किसी समय युद्ध नहीं भी करते थे, पर वे निर्बल नहीं थे।

४ यत् नृभिः वृतः अभियुध्वाः-- जिस समय इन्द्र अपने सैनिक वीरोंके साथ युद्धमें लडता है उस समय उसके साथ ये ऋषि भी युद्धमें जाते थे और लडते थे।

इस तरह बल प्राप्त करना चाहिये। विद्याका ज्ञानबल और शरीरका लडनेका बल ये दोनों बल ऋषियोंके पास थे। यह उनका महत्त्व है।

५ प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य ७८१

६ तवेदं विश्वमभितः पशव्यं१ यत् पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ७८२

७ बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७८३

(९९) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विष्णुः, ४-६ इन्द्राविष्णू । त्रिष्टुप् ।

१ परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ७८४

२ न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप ।
उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहन्तं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः ७८५

---

[५] (७८१) (इन्द्रस्य प्रथमा कृतानि प्रवोचं) इंद्रके पूर्व समयमें किये पराक्रमोंका मैं वर्णन करता हूं । (या नूतना मघवा चकार) जो नूतन पराक्रम धनवान् इन्द्रने किये उनका भी मैं वर्णन करता हूं । (यदा इत् अदेवीः मायाः असहिष्ट) जिस समय आसुरी कुटिल कपटी आक्रमणोंको उसने परास्त किया (अथ केवलः सोमः अस्य अभवत्) तबसे केवल सोम इसी के लिये मिलने लगा है ।

वीरतासे संमान

अदेवीः मायाः असहिष्ट— जब राक्षसोंके कपटी हमलोंका पराभव किया तबसे (**अस्य केवलः सोमः अभवत्**) तबसे इसका सोमपर प्रथमाधिकार मान्य हुआ । अर्थात् इस तरह वीरता किये विना किसीका संमान बढ नहीं सकता ।

[६] (७८२) हे इन्द्र ! (इदं विश्वं पशव्यं तव इत्) यह सब विश्व जो सब पशुओंके लिये हितकारी है वह तुम्हारा ही है । (यत् सूर्यस्य चक्षसा पश्यति) जो सूर्यके तेजसे दीखता है । तूं (गवां एकः गोपतिः असि) तू गौओंका एक ही गोपाल है अतः (ते प्रयतस्य वस्वः भक्षीमहि) तुम्हारे दिये धनका भोग हम करेंगे ।

[७] (७८३) यह मंत्र ७७६ के स्थानपर है । वहां इसका अर्थ पाठक देखें ।

इन्द्र और विष्णु

[१] (७८४) (परः मात्रया तन्वा वृधान विष्णो) हे अपने श्रेष्ठ शरीरसे बढनेवाले विष्णो ! (ते महित्वं न अनु अश्नुवन्ति) तुम्हारी महिमाको कोई जान नहीं सकता । (ते उभे पृथिव्याः रोदसी विद्म) तुम्हारे दोनों लोक पृथिवी और अन्तरिक्षको हम जानते हैं । परंतु हे देव ! तुम तो (त्वं परमस्य वित्से) परम लोक को भी जानते हो ।

[२] (७८५) हे विष्णु देव ! (ते महिम्नः परं अन्तं) तेरी महिमाका परम अन्तिमभाग (न जायमानः न जातः आप) न तो जन्म लेनेवाले नाही जिन्होंने जन्म लिया है वे जानते हैं । (ऋष्वं बृहन्तं नाकं उत् अस्तभ्नाः) दर्शनीय विशाल ऐसे इस द्युलोकको तुमने ऊपर ही स्थिर किया है । तथा (पृथिव्याः प्राचीं ककुभं दाधर्थ) तुमने पृथिवी की पूर्व दिशाका भी धारण किया है ।

३	इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या ।	
	व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः	७८६
४	उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम् ।	
	दासस्य चिद् वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु	७८७
५	इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम् ।	
	शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान्	७८८
६	इयं मनीषा बृहती बृहन्तोरुक्रमा तवसा वर्धयन्ती ।	
	ररे वां स्तोमं विदथेषु विष्णो पिन्वतमिषो वृजनेष्विन्द्र	७८९
७	वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।	
	वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः	७९०

---

[३] (७८६) हे द्यावा पृथिवी ! (मनुष्ये दश-स्या) मनुष्योंका हित करनेकी इच्छासे तुम (इरावती धेनुमती सुयवसिनी) अन्नवाली, गौओंवाली तथा जौवाली (हि भूतं) हुई हो। हे विष्णो ! (एते रोदसी वि अस्तभ्नाः) तुमने इन द्युलोक तथा पृथिवीलोकको धारण किया है तथा (मयूखैः पृथिवीं आभितः दाधर्थ) पर्वतोंसे पृथिवी को स्थिर किया है।

[४] (७८७) (यज्ञाय उरुं लोकं चक्रथुः उ) यज्ञके लिये तुमने विस्तृत स्थान बनाया है। सूर्य उषा और अग्निको तुम दोनों (जनयन्तौ) उत्पन्न करते हो। हे (नरा) नेताओ ! हे इन्द्र और विष्णु ! (वृषशिप्रस्य दासस्य चित्) बलवान् और सुर-क्षित शत्रुकी (मायाः पृतनाज्येषु जघ्नतुः) कुटिल कपटी आक्रमक योजनाओंको युद्धोंमें तुमने विनष्ट किया।

यज्ञके लिये विस्तृत कार्य क्षेत्र बनाना चाहिये और शत्रुकी कुटिल योजनाओंका संपूर्णतया विनाश करना चाहिये।

[५] (७८८) हे इन्द्र और विष्णु ! तुमने (शंब-रस्य दृंहिताः नव नवतिं च पुरः श्नथिष्टं) शंबर असुरकी नौ और नव्वे सुदृढ पुरियोंका विनाश किया। और (वर्चिनः असुरस्य) वर्चस्वी असुर की (शतं सहस्रं च वीरान्) सौ और हजारों वीरोंको (अप्रति साकं हथः) अप्रतिमरीतिसे तुम ने मारा।

१ शंबरके ९९ सुदृढ कीलोंको तोड दिया और

२ असुरके सेंकडों और हजारों वीरोंको ऐसा मारा कि जिसके लिये कोई उपमा ही नहीं है।

[६] (७८९) (इयं बृहती मनीषा) यह बडी भारी मनन पूर्वक की स्तुति है। यह (बृहन्ता उरुक्रमा तवसा वर्धयन्ती) बडे महापराक्रमी और बलवान् ऐसे इन्द्र और विष्णुका यश बढाती है। हे इन्द्र और विष्णु ! (विदथेषु वां स्तोमं ररे) यज्ञोंमें आपका स्तोत्र गानेके लिये देता हूं। (वृजनेषु इषः पिन्वतं) युद्धोंमें तुम हमारा अन्न बढाओ।

युद्धके समय अधिक अन्नका उत्पादन करो

विदथेषु वृजनेषु इषः पिन्वतं— युद्धोंमें अन्नको बढाओ। युद्धके समय सब लोग युद्धके कार्योंमें लगे रहते हैं और अन्नका उत्पादन नहीं होता। इसलिये युद्धके समय ही अन्नका अधिक उत्पादन करना चाहिये।

[७] (७९०) हे विष्णो ! (ते आसः वषट् आ कृणोमि) तुम्हारे लिये मुखसे मैंने वषट् किया है। वषट् बोल कर अन्नका अर्पण किया है। हे (शिपि-विष्ट) तेजवाले विष्णु ! (तत् मे हव्यं जुषस्व)

(१००) ७ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विष्णुः । त्रिष्टुप् ।

१ नू मर्तो दयते सनिष्यन् यो विष्णव उरुगायाय दाशत् ।
प्र यः सत्राचा मनसा यजात एतावन्तं नर्यमाविवासात् ७९१

२ त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः ।
पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरेरश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः ७९२

३ त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा ।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान् त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ७९३

४ वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ७९४

उस मेरे दिये हविष्यान्नका सेवन करो। (मे सुष्टुतयः गिरः त्वा वर्धन्तु) मेरी उत्तम स्तुतियां तुम्हारे यशका संवर्धन करें। (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) तुम हमारा कल्याणमय साधनोंसे सदा संरक्षण करो।

[१] (७९१) (सः मर्तः सनिष्यन् नु दयते) वही मनुष्य धनकी इच्छा करके सत्वर धनको प्राप्त करता है (यः उरुगायाय विष्णवे दाशत्) जो बहुतों द्वारा प्रशंसनीय विष्णुके लिये हवि देता है। (यः सत्राचा मनसा प्र यजाते) जो साथ साथ कहे जानेवाले मन्त्रोंसे मनन पूर्वक विष्णुके लिये यज्ञ करता है, (यः एतावन्तं नर्यं आविवासत्) जो ऐसे मनुष्योंके हितकर्ता विष्णुकी पूजा करता है।

[२] (७९२) हे (एवयावः विष्णो) कामनाओंकी पूर्णता करनेवाले विष्णु! तुम (विश्वजन्यां अप्रयुतां सुमतिं मतिं दाः) हमें सर्वजन हितकारी दोष रहित उत्तम विचारोंसे युक्त ऐसी बुद्धि दो। तुम (सुवितस्य अश्वावत् पुरुश्चन्द्रस्य भूरेः रायः) सुखसे प्राप्त होने योग्य घोडोंसे युक्त अत्यंत आल्हाददायक विपुल धनका (पर्चः यथा) संपर्क जिस तरह हो सके ऐसा करो। ऐसा धन हमें मिले।

१ विश्वजन्यां अप्रयुतां सुमतिं मतिं दाः— हमें ऐसी बुद्धि दो कि जो सार्वजनिक हित करनेमें तत्पर रहे, प्रमाद न करनेवाली हो, उत्तम विचारोंसे युक्त हो, मननशील हो। ऐसी बुद्धि हमें दो।

२ सुवितस्य अश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य भूरेः रायः पर्चः— सहजसे प्राप्त होनेवाला, घोडे गौवें आदि पशु जिसके साथ हैं, अत्यंत आल्हाददायक ऐसा बहुत धन हमें प्राप्त हो। हम धन धान्य संपन्न हों।

[३] (७९३) (एषः देवः विष्णुः) इस विष्णु देवने (शतर्चसं एतां पृथिवीं) सैंकडों तेजोंवाली इस भूमीपर (महित्वा त्रिः वि चक्रमे) अपनी महिमासे तीन बार पराक्रम किया। (तवसः तवीयान् विष्णुः प्र अस्तु) बडोंसे बडा यह विष्णु हमारा सहायक हो। (अस्य स्थविरस्य नाम त्वेषं हि) इस बडे देवका नाम तेजस्वी है।

विष्णु यह सूर्य है, यह अपने तेजसे सर्वव्यापक देव है। इसका नाम तेजस्वी है। जो इसका नाम लेता है वह तेजस्वी होता है।

[४] (७९४) (एषः विष्णुः एतां पृथिवीं) यह विष्णुदेव इस पृथिवीको (क्षेत्राय मनुषे दशस्यन्) निवास के लिये मनुष्योंको देनेकी इच्छासे (विचक्रमे) पराक्रम करता रहा। (अस्य कीरयः जनासः ध्रुवासः) इसके स्तोता गण यहां सुस्थिर होते हैं। यह (सुजनिमा उरुक्षितिं चकार) उत्तम जन्म लेनेवाला विस्तीर्ण निवास स्थान बनाता है।

१ एष विष्णुः एतां पृथिवीं क्षेत्राय मनुषे दशस्यन् विचक्रमे— यह विष्णु इस पृथिवीको मानवोंके निवासके

५ प्र तत् ते अद्य शिपिविष्ट नामाऽर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ७९५

६ किमित् ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत् प्र यद् ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद् यदन्यरूपः समिथे बभूथ ७९६

७ वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७९७

(१०१) ६ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । (वृष्टिकामः), कुमार आग्नेयो वा । पर्जन्यः । त्रिष्टुप् ।

१ तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा या एतद् दुह्रे मधुदोघमूधः ।
स वत्सं कृण्वन् गर्भमोषधीनां सद्यो जातो वृषभो रोरवीति ७९८

लिये देना चाहता है । इसलिये असुरोंके साथ यह प्रबल युद्ध करता है और उनसे भूमि लेकर मानवोंको देता है ।

(९) सुजनिमा उरुक्षितिं चकार - यह उत्तम जन्म लेनेवाला विष्णु इस पृथिवीको उत्तम निवास करने योग्य बनाता है ।

[५] (७९५) हे (शिपिविष्ट) तेजस्वि विष्णो ! (ते तत् नाम) तुम्हारे उस नामको तथा (वयु-नानि विद्वान्) सब कर्मोंको जानता हुआ (अर्यः अद्य प्रशंसामि) मैं श्रेष्ठ बनकर तुम्हारी प्रशंसा करता हूं । मैं (अतव्यान् तं तवसं त्वा गृणामि) बडा नहीं हूं, पर तुम बडे हो, इसलिये मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं । तुम (अस्य रजसः पराके क्षयन्तं) इस लोकसे दूर रहते हो ।

[६] (७९६) हे विष्णो ! (किं इत् ते परिचक्ष्यं भूत्) क्या यह तुम्हारा नाम त्यागने योग्य हुआ है ? (यत् प्रववक्षे शिपिविष्टः अस्मि) जो तू ऐसा कहता है कि मैं शिपिविष्ट हूं । (एतत् वर्पः अस्मत् मा अप गूहः) यह तेरा रूप हमसे दूर न कर, (यत् अन्यरूपः समिथे बभूथ) जो तुम युद्ध-के समय अन्य अन्य रूप धारण करता है । अर्थात् हमारे सामने तुम्हारा एक ही दिव्य रूप रहे ।

[७] (७९७) यह मंत्र ७९० के स्थानमें है वहां इसको पाठक देखें ।

पर्जन्य

[१] (७९८) (ज्योतिरग्राः तिस्रः वाचः प्र वद) ज्योति जिनके अग्र भागमें है ऐसी तीन वाणियों-का उच्चारण करो । (याः एतत् मधुदोघं ऊधः दुह्रे) जो वाणियां इस मधुर रस देनेवाले दुग्धा-शयको दुहती हैं । (सः वत्सं कृण्वन्) वह विद्युत् अग्निरूप वत्सको निर्माण करता है और (ओष-धीनां गर्भं) औषधियोंके गर्भको स्थापन करता है. (सद्यःजातः वृषभः रोरवीति) वह तत्काल उत्पन्न हुआ वर्षा करनेवाला मेघ शब्द करता है ।

पर्जन्य-मेघ तीन प्रकारके गर्जनाके शब्द करता है । इन शब्दोंके पूर्व (ज्योतिः-अग्राः) ज्योति चमकती है । पहिले विद्युत्की चमक होती है और पीछेसे मेघोंकी गर्जना सुनाई देती है । (मधुदोघं ऊधः दुह्रे) मीठे रसका दुग्धाशय मेघ है । इसका दोहन होकर वृष्टी होती है । यह मेघ (वत्सं कृण्वन्) विद्युरूप अग्निको अपना बच्चा करके उत्पन्न करता है । यही औषधियोंमें गर्भ धारण कराता है अर्थात् वृष्टिके जलसे औष-धियोंमें फलरूप गर्भका धारण होता है । यह वर्षा करनेवाला मेघ ही है । जो बननेके बाद गर्जना करता है ।

यह पर्जन्यका वर्णन है, मेघका और बिजलियोंका यहां वर्णन है ।

२ यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे ।
स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत् त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्टय१स्मे ७९९
३ स्तरीरु त्वद् भवति सूत उ त्वद् यथावशं तन्वं चक्र एषः ।
पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ८००
४ यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुस्तिस्रो द्यावस्त्रेधा सस्रुरापः ।
त्रयः कोशास उपसेचनासो मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ८०१
५ इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे हृदो अस्त्वन्तरं तज्जुजोषत् ।
मयोभुवो वृष्टयः सन्त्वस्मे सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः ८०२

---

[२] (७९९) (यः ओषधीनां वर्धनः) जो पर्जन्य औषधियोंको बढानेवाला है और (यः अपां) जो जलोंको बढानेवाला है, (यः देवः विश्वस्य जगतः ईशे) जो पर्जन्य देव सब जगतका स्वामी है (सः त्रिधातु शरणं शर्म यंसत्) वह पर्जन्य तीन धारक शक्तियोंसे युक्त घर तथा सुख हमें देवे। वह (त्रिवर्तु स्वभिष्टि ज्योतिः अस्मे) तीन ऋतुओंमें रहनेवाली, उत्तम प्रकारसे प्रिय ज्योति हमें देवे ।

पर्जन्यसे औषधियां बढती हैं, भूमिपर जल होता है । इस जलसे तीन प्रकारका सुख प्राप्त होता है । खानेके लिये अन्न, पीनेके लिये जल और आरोग्यके लिये औषधियां इससे मिलती हैं । तीनों ऋतुओंमें इससे सुख होता है। ऐसा यह पर्जन्य मानवोंका हितकारी है ।

[३] (८००) (त्वत् स्तरीः उ भवति) तुम्हारा मेघका एक रूप न प्रसवनेवाली गौ की तरह होता है। (त्वत् उ सूते) तुम्हारा दूसरा रूप प्रसूत होनेवाली गौ जैसा है। (एषः तन्वं यथावशं चक्रे) यह पर्जन्य अपने शरीरको जैसा चाहे वैसा आकारवाला बनाता है। (पितुः पयः माता प्रति गृभ्णाति) पितारूपी द्युलोकसे जल भूमिमाता प्राप्त करती है। (तेन पिता वर्धते) उससे पिता भी बढता है और (तेन पुत्रः) उसीसे पुत्र भी बढता है ।

मेघ दो प्रकारके होते हैं, एक केवल मेघरूपमें दीखनेवाले और दूसरे वृष्टि करनेवाले । मेघोंके शरीर भी बदलते रहते हैं। मेघलोकसे ये वृष्टी करते हैं और वह जल पृथ्वीपर आता है। इससे पृथ्वीपरका धान्य बढता है । धान्यसे यज्ञ होते हैं । इन यज्ञोंसे वायु जल आदि देवताकी शक्ति बढती है और उनसे सब पृथ्वीपरके प्राणियोंकी भी शक्ति बढती है ।

[४] (८०१) (यस्मिन् विश्वानि भूतानि तस्थुः) जिसमें सब भूतमात्र रहे हैं, जिसमें (तिस्रः द्यावः) तीनों लोक रहे हैं, जिससे (आपः त्रेधा सस्रुः) जल तीन प्रकारसे चल रहा है । जिसके (उपसेचनासः कोशासः त्रयः) सिंचन करनेवाले कोश तीन हैं, जो (विरप्शं मध्वः अभितः श्चोतन्ति) बडे मधुर रसको चारों ओरसे बरसाते हैं ।

मेघपर ही सब प्राणी अवलंबित हैं, मेघके विना ये नहीं रह सकते । इनसे जल आता है वह वृष्टी, नदी और कूप तालाव आदिमें रहता और वहांसे सबको प्राप्त होता है । वहांसे खेती-वाडीको सिंचन होता है। ये कोश जलसे भरे रहते हैं और लोगोंको यह जल मिलता रहता है । मेघमें जो जल रहता है वह बडा मधुर है और वही चारों ओर वृष्टीके द्वारा जाता है ।

[५] (८०२) (इदं वचः स्वराजे पर्जन्याय) यह स्तोत्र स्वयं तेजस्वी पर्जन्यके लिये है । यह स्तोत्र (हृदः अन्तरं अस्तु) उनके लिये हृदयंगम हो, वह (तत् जुजोषत्) इसका स्वीकार करे। (मयोभुवः वृष्टयः अस्मे सन्तु) सुखदायी वृष्टियां हमारे लिये होती रहें और इससे (देवगोपाः सुपिप्पलाः ओषधीः) देवों द्वारा सुरक्षित हुई औषधियां उत्तम फलवाली बनें ।

६ स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थुषश्च ।
तन्म ऋतं पातु शतशारदाय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ८०३

(१०२) ३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः (वृष्टिकामः), कुमार आग्नेयो वा । पर्जन्यः । गायत्री, २ पादनिचृत् ।

१ पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे । स नो यवसमिच्छतु ८०४
२ यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम् । पर्जन्यः पुरुषीणाम् ८०५
३ तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तमम् । इळां नः संयतं करत् ८०६

(१०३) १० मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मण्डूकाः (पर्जन्यः) त्रिष्टुप्, १ अनुष्टुप् ।

१ संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ८०७

---

[६] (८०३) (सः शश्वतीनां रेतोधा वृषभः) वह पर्जन्य अनंत औषधियोंमें वीर्य—बल—रखनेवाला महा बलवान देव है। इसलिये (जगतः तस्थुषः च तस्मिन् आत्मा) जंगम और स्थावरका उसमें आत्मा ही निवास करता है। (तत् ऋतं शतशारदाय मा पातु) वह पर्जन्यका जल सौ वर्षोंके दीर्घ जीवनमें मेरा संरक्षण करे। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमारी सुरक्षा कल्याण करनेवाले साधनोंसे करो।

वृष्टीके जलसे सब प्रकारकी औषधि वनस्पतियोंमें अनंत प्रकारके गुणधर्म निर्माण होते हैं जिनसे स्थावर जंगम जगत्का उत्तम पालन हो रहा है, मानो सबका आत्मा ही इस पर्जन्यमें है। इनका सेवन करके मनुष्य सुखसे रहते हैं। इस तरह पर्जन्य सबका हित करता है।

[१] (८०४) (दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे) द्युलोकके पुत्र और सिंचन करनेवाले (पर्जन्याय प्रगायत) पर्जन्यके लिये काव्यगान करो, (सः नः यवसं इच्छतु) वह हमारे लिये औषधि वनस्पतियां तथा धान्य देवे।

[२] (८०५) (यः पर्जन्यः) जो पर्जन्य (ओषधीनां गवां अर्वतां पुरुषीणां) औषधियों, गौवों, घोडों और मानवी स्त्रियोंमें (गर्भं कृणोति) गर्भ धारण कराता है। सब में वीर्य उत्पन्न करके गर्भ धारण करनेवाला यह पर्जन्य है।

[३] (८०६) (तस्मै इत् आस्ये) उसके लिये आग्निरूप मुखमें (मधुमत्तमं हविः जुहोत) मधुर हविका हवन करो। (नः इळां संयतं करत्) वह हमारे लिये नियत अन्न देवे।

मण्डूकाः

[१] (८०७) (व्रतचारिणः ब्राह्मणाः) व्रताचरण करनेवाले ब्राह्मण (संवत्सरं शशयानाः) एक वर्ष तक सत्रमें गुप्त होकर सोये हुए जैसे थे (मंडूकाः) मेंडक (पर्जन्य-जिन्वितां वाचं) पर्जन्यको प्रसन्न करनेवाली वाणी (अवादिषुः) बोलने लगे हैं।

व्रताचरण करनेवाले ब्राह्मण एक वर्षतक चलानेवाले सत्रमें व्रतस्थ होकर मौन धारण करके सोये हुए जैसे चुप चाप रहते हैं। वर्ष समाप्तिके पश्चात् स्तोत्र पाठ करने लगते हैं। ऐसे ही ये मेंडक अपने अपने स्थानोंमें वर्ष भर चुप चाप रहते हैं और पर्जन्य शुरू होते ही शब्द करते हैं।

'मण्डूक' शब्द 'मण्ड सुभूषित करना' इस धातुसे बना है। सुभूषित करनेवाला जो होता है उसका नाम मण्डूक है। तालावका भूषण मण्डूक है, सभाका भूषण पंडित-ब्राह्मण है। इसलिये यहां मेंडकके लिये ब्राह्मणकी उपमा दी है।

❀

२ दिव्या आपो अभि यदेनमायन् दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम् ।
गवामह न मायुर्वत्सिनीनां मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति ८०८

३ यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत् तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम् ।
अख्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ८०९

४ अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोरपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम् ।
मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन् पृश्निः संपृङ्क्ते हरितेन वाचम् ८१०

५ यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः ।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत् सुवाचो वदथनाध्यप्सु ८११

---

[२] (८०८) (शुष्कं दृतिं न) सूखे चमडेकी थैलीके समान (सरसी शयानं) सूखे तालावमें सोनेवाले (एनं) इस मेंडकके पास (यत् दिव्याः आपः अभि आयन्) जिस समय आकाशस्थानीय मेघके वृष्टीजल पहुंचते हैं, तब (वत्सिनीनां गवां मायुः न) बच्छडोंवाली गौवोंके शब्दके समान (अत्र मंडूकानां वग्नुः सं एति) यहां मेंडकोंका शब्द होने लगता है।

गर्मीकी ऋतुमें तालाव सूख जाते हैं, उस समय तो मेंडक चुप चाप बैठते हैं, सूखे चमडेकी थैलीके समान सूख भी जाते हैं। पर जिस समय वृष्टी होती है, और वृष्टीजल उन मेंडकोंके पास पहुंचता है उस समय बच्छडोंवाली गौवें जैसी प्रसन्न होती है, उस तरह ये मेंडक प्रसन्न होते हैं और अपना शब्द बोलते रहते हैं। वह एक विलक्षण शब्द होता है। वह उनके आनंदका शब्द होता है।

[३] (८०९) (उशतः) जल चाहनेवाले (तृष्यावतः) प्यास जिनको लगी है ऐसे (एनान् प्रावृषि) इन मेंडकोंके पास वर्षाका समय (आगतायां) आनेपर (यत् ईं अभिवर्षीत्) जब मेघ बरसने लगता है। तब (पुत्रः पितरं न) पुत्र पिता के साथ जैसा बोलता है, उस तरह (अख्खली कृत्य) 'अखखल' ऐसा शब्द करता हुआ (अन्यः अन्यं उपवदन्तं एति) एक मेंडक दूसरेके पास जाता है।

जल न मिलनेसे मेंडक प्यासे रहते हैं। वर्षा कालमें जिस समय वृष्टी होती है, तब पर्याप्त जल उनको मिलता है और उनको वडा आनंद होता है, उस आनंदसे वे "अख्खल अख्खल" ऐसे शब्द करते हैं, उसका जबाब दूसरा मेंडक भी वैसे ही शब्द करके देता है।

[४] (८१०) (एनोः अन्यः अन्यं अनु गृभ्णाति) इनमेंसे एक दूसरेपर अनुग्रह करता है, (यत् अपां प्रसर्गे अमंदिषातां) जब पानी बरसनेपर ये मेंडक आनंदित होते हैं। (यत् अभिवृष्टः मण्डूकः कनिष्कन्) जब वृष्टि होनेपर मेंडक कूदने लगता है, तब (पृश्निः हरितेन वाचं संपृंक्ते) चितकबरा मेंडक हरित वर्णके मेंडकके साथ बातें करनेके समान शब्द करता है।

जब वृष्टी होती है तब मेंडक आनंदित होते हैं और आनंदसे एक दूसरेके साथ कूदने लगते हैं और परस्पर बातें करनेके समान शब्द करते है।

[५] (८११) (यत् एषां अन्यः) जब इनमेंसे एक मेंडक (अन्यस्य वाचं वदति) दूसरेके साथ बोलने लगता है, (शिक्षमाणः शाक्तस्य इव) तब शिष्य गुरुके शब्द पुनः बोलनेके समान प्रतीत होता है। (यत् अप्सु अधि सुवाचः वदथन) जब पानीके ऊपर कूदते हुए उत्तम शब्द तुम मेंडक बोलते हो, (तत् एषां पर्व समृधा इव) तब इनका शरीर समृद्ध हुआ सा दीखता है।

जब भरपूर पानी होता है, उस समय आनंदसे मेंडक इधर उधर कूदते हैं। उस समय ये मेंडक जो शब्द करते हैं उससे ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु मंत्र कहता है और शिष्य वे ही गुरुके शब्द पुनः बोलता है।

६ गोमायुरेको अजमायुरेकः पृश्निरेको हरित एक एषाम् ।
समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः ८१२

७ ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः ।
संवत्सरस्य तदहः परि ष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ८१३

८ ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न केचित् ८१४

९ देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते ।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ८१५

१० गोमायुरदादजमायुरदात् पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि ।
गवां मण्डूका ददतः शतानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ८१६

---

[६] (८१२) (एकः गोमायुः) एक मेंडक गौके समान शब्द करता है, (एकः अजमायुः) दूसरा बकरेके समान शब्द करता है, (पृश्निः एकः एक चितकबरा है तो (एषां एकः हरितः) इनमेंसे दूसरा हरिद्वर्णवाला होता है। इस तरह ये (विरूपाः) अनेक रूपोंवाले होते हुए भी (समानं नाम बिभ्रतः) एक ही मेंडक यह नाम सब धारण करते हैं। और ये (पुरुत्रा वाचं वदंतः पिपिशुः) अनेक प्रकारके शब्द करते हुए दिखाई देते हैं।

[७] (८१३) (अतिरात्रे सोमेन) अतिरात्र नामक सोमयागमें जैसे (ब्राह्मणासः अभितः वदन्तः) ब्राह्मण मंत्र बोलते हैं, उस तरह (पूर्ण प्रावृषीणं सरः न) सरोवर वर्षामें परिपूर्ण भरनेपर, हे (मण्डूकाः) मेंडकों! (संवत्सरस्य तत् अहः) वर्षका वह दिन तुम्हारे लिये (परि स्थ बभूव) चारों ओर घूमनेके लिये होता है।

यहां ब्राह्मणोंके वेदपाठके समान मेंडकोंके शब्दकी तुलना की है। वेद मंत्रोंका पदपाठ सस्वर बोलनेके समय ऐसा ही दूसरे प्रतीत होता है।

[८] (८१४) (संवत्सरीणं ब्रह्म कृण्वन्तः) एक वर्ष चलनेवाला यज्ञ करनेवाले (सोमिनो ब्राह्मणासः) सोमयाजी ब्राह्मण जैसे (वाचं अक्रत) मन्त्र बोलते हैं और (घर्मिणः अध्वर्यवः सिष्विदानाः) यज्ञ करनेवाले अध्वर्यु पसीनेसे भीगे हुए (केचित् गुह्याः) कई याजक गुप्त स्थानमें बैठते हैं और (आविः न भवन्ति) बाहर नहीं आते हैं।

वैसे मेंडक शब्द करते है, कई बाहर आकर कूदते हैं परंतु कई अन्दर ही बैठे रहते है। यहां याजकोंकी तुलना है।

[९] (८१५) (एते नरः) ये नेता लोग (देवहितिं जुगुपुः] दैवी नियमका संरक्षण करते हैं। इसलिये (द्वादशस्य ऋतुं न प्रमिनन्ति) बारह महिनोंके ऋतुओंको विनष्ट नहीं करते हैं। (संवत्सरे प्रावृषि आगतायां) वर्षमें वृष्टिका समय आते ही (तप्ताः धर्माः विसर्गं अश्नुवते) तपे हुए ये मेंडक बाहर आते हैं।

ये मेंडक गर्मीके दिनोंमें तपते हैं, पर वृष्टि होते ही अपने बिलसे बाहर आते हैं और खूब आनंदसे इधर कूदते और शब्द करते हुए नाचते हैं। ये ईश्वरके नियमका पालन करते हैं। नेता लोग इसी तरह नियमोंका पालन करें।

[१०] (८१६) (गोमायुः अदात्) गौ जैसा शब्द करनेवालेने हमें धन दिया, (अजमायुः अदात्) बकरेके शब्दके समान शब्द करनेवालेने हमें धन दिया, (पृश्निः अदात्) चितकबरेने दिया है,

(१०४) २५ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । (राक्षोघ्नं) इन्द्रासोमौ; ८, १६, १९-२२ इन्द्रः, ९, १२-१३ सोमः; १०, १४ अग्निः, ११ देवाः, १७ ग्रावाणः, १८ मरुतः, २३ (पूर्वार्धस्य) वसिष्ठाशीः, (उत्तरार्धस्य) पृथिव्यन्तरिक्षे । त्रिष्टुप्, १-६, १८, २१, २३, जगती; ७ जगती त्रिष्टुब्वा; २५ अनुष्टुप्।

१ इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः ।
परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्रिणः ॥ ८१७

२ इन्द्रासोमा समघशंसमभ्य१घं तपुर्ययस्तु चरुरग्निवाँ इव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने ॥ ८१८

३ इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।
यथा नातः पुनरेकश्चनोदयत् तद् वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥ ८१९

हरितः नः वसूनि अदात्) हरिद्वर्णवालेने हमें धन दिया है । (सहस्रसावे) सहस्रों औषधियोंको वढानेवाले वर्षा ऋतुमें (गवां शतानि ददतः मंडूकाः) सैंकडों गौवें देनेवाले मेंडक हमारी (आयुः प्रतिरते) आयु वढाते हैं।

यह वर्णन आलंकारिक है । मेंडकोंका आनंद वर्षाका सूचक है। उत्तम वर्षासे उत्तम घास, उत्तम घाससे उत्तम, गौवें, उत्तम धन धान्य और उससे धन प्राप्त होता है।

इन्द्रासोमौ

[१] (८१७) हे इन्द्र और सोम ! (रक्षः तपतं) राक्षसोंको जला दो। (उब्जतं) मारो । हे (वृषणा) वलवानो ! (तमोवृधः नि अर्पयतं) अज्ञानमें वढनेवालोंको हीन वना दो। (अचितः परा शृणीतं) अज्ञानियोंको दूर करो। उनको (नि ओषतं हतं) जलाकर निःशेष करो। (नुदेथां) भगा दो । (अत्रिणः नि शिशीतं) दूसरोंको खानेवालोंको निर्वल करो।

राक्षसोंके लक्षण

(रक्षः) जिनसे प्रजाका संरक्षण करनेकी आवश्यकता है वे गुण्ड वृत्तीके लोग। (तमोवृधः) अन्धकार, अज्ञानमें बढनेवाले, अन्धकारमें लूटमार करनेवाले, (अ-चितः) अज्ञानी ज्ञानहीन, (अत्रिणः) दूसरोंको खानेवाले, हडप करनेवाले, भक्षक। ये राक्षसोंके लक्षण हैं ! ऐसे जो दुष्ट होंगे उनको दूर करना, निर्बल करना, भगा देना, जला देना। जिससे ये उपद्रव न कर सकें ऐसा करना।

[२] (८१८) हे इन्द्र और सोम ! (अघशंसं अघं सं अभि) पाप करनेके लिये प्रसिद्ध, महापापी दुष्टको मिलकर विनष्ट करो। वह दुष्ट (तपुः) दुःखसे तप जानेपर (अग्निवान् चरुः इव ययस्तु) अग्निमें डाली हुई भातकी आहुतिके समान जल कर विनष्ट हो जावे। (ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे किमीदिने) ज्ञानका द्वेष करनेवाले कच्चा मांस खानेवाले भयंकर विरूपवाले सबकुछ खानेवालेके प्रति (अनवायं द्वेषः धत्तं) निरंतर द्वेषभाव धारण करो।

राक्षसोंके लक्षण

(अघ-शंसः) पाप करनेके लिये ही जिसकी प्रसिद्धि है, (अघः) पापमय जीवनवाला, पापकी मूर्ति जैसा दुष्ट (ब्रह्मद्विष्) ज्ञानका द्वेष करनेवाला, (क्रवि-आद्) कच्चा मांस खानेवाला, मांस खानेवाला, (घोर-चक्षाः) जिसका दर्शन भयंकर है, जो भयानक दीखता है, (किमीदिन्-किं इदानीं) अब क्या खांय, अब क्या खांय ऐसा जो सारे समय करता है। दूसरोंकी वस्तुएं छीन छीन कर खानेवाले ये राक्षस हैं। ऐसे दुष्टोंका नाश करो, इनका द्वेष निरंतर करो।

[३] (८१९) हे इन्द्र और सोम ! (दुष्कर्मकारिणः) दुष्ट कर्म करनेवालोंको (अनारम्भणे तमसि अन्तः प्र विध्यतं) अथांग अन्धकारमें विद्ध करो, (यथा एकः चन पुनः अतः न उदयत्) जिससे एक भी फिरसे वहांसे न आसके। (तत् वां मन्युमत् शवः शवसे अस्तु) वह तुम दोनों का उत्साह पूर्ण वल शत्रुविजयके लिये समर्थ हो।

४ इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम् ।
उत् तक्षतं स्वर्यं१ पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ८२०

५ इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः ।
तपुर्वधेभिरजरेभिरत्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ८२१

६ इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना ।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपतीव जिन्वतम् ८२२

७ प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद् यो नः कदा चिदभिदासति द्रुहा ८२३

(दुष्कर्मकारी) दुष्ट कर्म ही सदा करनेवाला यह एक और राक्षसका लक्षण यहां दिया है । इनमेंसे एक भी उपद्रव करनेके लिये न बचे इतना प्रबंध करना चाहिये।

[४] (८२०) **हे इन्द्र और सोम ! (दिवः वधं सं वर्तयतं) अन्तरिक्षसे घातक आयुध उत्पन्न करो। (पृथिव्याः तर्हणं अघशंसाय) चाहे पृथिवीसे विनाशक आयुध राक्षसोंके विनाशार्थ उत्पन्न करो। अथवा (पर्वतेभ्यः स्वर्यं उत् तक्षतं) पर्वतोंसे शत्रु विनाशक आयुध तैयार करो, (येन वावृधानं रक्षः निजूर्वथः) इनसे बढनेवाले राक्षसको तुम मारो।**

किसी तरह राक्षसोंके विनाशके लिये अपने पास पर्याप्त शस्त्रास्त्र उत्तम स्थितिमें रखो और उनसे दुष्टोंका नाश करो ।

[५] (८२१) **हे इन्द्र और सोम ! (दिवः परि- वर्तयतं) आकाशमेंसे चारों ओर आयुध फेंको । (युवं) तुम दोनों (अग्नितप्तेभिः अश्महन्मभिः) अग्निके समान तपानेवाले पत्थरोंके समान मारने- वाले (तपुर्वधेभिः अजरेभिः) तापकारक प्रहार- वाले क्षीण न होनेवाले आयुधोंसे (अत्रिणः पर्शाने नि विध्यतं) भक्षक दुष्ट शत्रुओंके पीठ वींधो । वे वींधे गये शत्रु (निस्वरं यन्तु) चुपचाप भाग जांये।**

यहां " **अत्रिन्** " यह दुष्टोंका नाम आया है वह इससे पूर्व आये प्रथम मंत्रमें दिया है । हरएकको लूट लूट कर खाने वाले जो दुष्ट होते हैं वे " अत्रिणः " कहलाते हैं । इनका नाश करनेके शस्त्र आकाशसे फेंको, चारों ओर ऐसे उनपर फेंको कि उनमेंसे एक भी न बच सके । ये अग्निके समान दाह करनेवाले हों, पत्थरों जैसे फेंककर मारनेके योग्य हों, तपाकर वध करने- वाले हों और समाप्त होनेवाले न हों । इनसे दुष्टोंकी हड्डी टूट जाय और वे न बच सकें । ऐसा शत्रुका नाश करना चाहिये।

[६] (८२२) **हे इन्द्र और सोम ! (कक्ष्या अश्वा इव) जैसी रस्सी घोडोंको बांधती है उस तरह (इयं मतिः) यह स्तुति (वाजिना वां विश्वतः परि भूतु) तुम दोनों बलवानोंको चारों ओरसे प्राप्त हो । (यां होत्रां वां मेधया परिहिनोमि) इस स्तुतिको मैं अपनी मेधासे आपके पास भेजता हूं। नृपती इव इमा ब्रह्माणि जिन्वतं) राजालोगोंके समान इन काव्योंको सफल करो ।**

राजा लोग उनके वर्णनका काव्य सुनकर कविको जैसा बहुत धन देते हैं, उस तरह हमने गाया तुम्हारा यह काव्य सुनकर तुम प्रसन्न होकर हमें पर्याप्त धन दो । कवि राजाके पास जांय, उनके काव्य उनको सुनायें और उनसे अपने काव्यका धनरूप फल प्राप्त करें यह कल्पना यहां है । राजा गुणग्राही काव्यरस जाननेवाला होना चाहिये यह इसका भाव है ।

[७] (८२३) **हे इन्द्र और सोम ! (तुजयद्भिः एवैः प्रति स्मरेथां) वेगवान् घोडों से शत्रुपर आक्र- मण करो । (भंगुरावतः द्रुहः रक्षसः हतं) विनाश- कारी द्रोही दुष्टोंको मारो । (दुष्कृते सुगं मा भूत्) कर्म करनेवालेके लिये सुखसे गमन करनेकी सुविधा न हो । (यः नः कदाचित् द्रुहा अभि**

८	यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।	
	आप इव काशिना संगृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता	८२४
९	ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।	
	अहये वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे	८२५
१०	यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस्तनूनाम् ।	
	रिपुः स्तेनः स्तेयकृद् दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३ तना च	८२६
११	परः सो अस्तु तन्वा३ तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।	
	प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सति यश्च नक्तम्	८२७

दासति) जो हमें किसी समय द्रोहसे विनष्ट करना चाहता है उसको विनष्ट करो ।

'**भंगुरावान्**' —तोडने फोडनेवाला, नाश करनेवाला यह एक राक्षसका लक्षण यहां कहा है । घोडोंकी सहायतासे दुष्टों पर आक्रमण करो । अर्थात् दुष्टोंके वेगसे संरक्षकोंका वेग अधिक हो । घातपात करनेवाले दुष्टोंको समाजमें सुख प्राप्त नहीं होना चाहिये । ऐसा सुरक्षाका प्रबंध राष्ट्रमें होना चाहिये ।

[८] (८२४) (पाकेन मनसा चरन्तं मा) पवित्र मनसे चलनेपर भी मुझे (यः अनृतेभिः वचोभिः अभिचष्टे) जो असत्य वचनोंसे दोषी ठहराना चाहता है, हे इन्द्र ! (काशिना संगृभीताः आपः इव) मुट्ठीमें पकडे जलके समान वह (असतः वक्ता असन् अस्तु) असत्यभाषी नहीं जैसा हो जावे । पूर्णतासे विनष्ट हो जावे ।

असत्य भाषण करके किसीको दोषी ठहराना बहुत ही बुरा है। ऐसे असत्यभाषी लोग समाजमें न रहें।

[९] (८२५) (ये पाकशंसं एवैः विहरन्ते) जो मुझ सत्यवादी पवित्र आचारवालेको भी अपने स्वार्थके कारण कष्ट देते हैं। (वा ये स्वधाभिः भद्रं दूषयन्ति) अथवा जो अपने पासके अन्नादि साधनोंसे मुझ जैसे कल्याण करनेवालेको भी दूषण लगाते हैं। (सोमः तान् अहये वा प्रददातु) सोम उनको शत्रुके अधीन करे (वा निर्ऋतेः उपस्थे वा दधातु) अथवा निर्धन अवस्थामें उसको पहुंचा देवे ।

पवित्रको पापी बताना और अपने पास साधनोंकी विपुलता है इसलिये उन साधनोंका उपयोग करके जनताका कल्याण करनेवालोंको ही दूषण लगाना यह बहुत ही बुरा है ।

[१०] (८२६) हे अग्ने ! (यः नः पित्वः रसं दिप्सति) जो हमारे अन्नके सारभूत रसका नाश करता है (यः अश्वानां) जो घोडोंका, (यः गवां) जो गौओंका और (यः तनूनां) जो अपने शरीरोंका नाश करता है वह (स्तेयकृत् स्तेनः रिपुः दभ्रं एतु) चोरी करनेवाला चोर समाजका शत्रु विनाशको प्राप्त होवे, (सः तन्वा तना च नि हीयतां) वह अपने शरीर और संतानके साथ विनष्ट हो जावे ।

[११] (८२७) (सः तन्वा तना च परः अस्तु) वह दुष्ट राक्षस अपने शरीरसे और संतानसे रहित हो जावे, विनष्ट हो जावे । (विश्वाः तिस्रः पृथिवीः अधः अस्तु) सब तीनों पृथिवीके स्थानोंसे नीचे गिर जावे । हे (देवाः) देवो ! (अस्य यशः प्रति शुष्यतु) इसका यश सूखकर विनष्ट हो जाय। (यः नः दिवा दिप्सति, यः नक्तं) जो दिन रात हमें कष्ट देता है उसका नाश हो जाय ।

१२	सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते । तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित् सोमोऽवति हन्त्यासत्	८२८
१३	न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् । हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते	८२९
१४	यदि वाहमनृतदेव आस मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने । किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम्	८३०
१५	अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि आयुस्ततप पूरुषस्य । अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह	८३१
१६	यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह । इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट	८३२

---

[१२] (८२८) (चिकितुषे जनाय इदं सुविज्ञानं) ज्ञानी मनुष्यके लिये यह सुविदित है कि (सत् च असत् च वचसी पस्पृधाते) सत्य और असत्य वचनोंकी स्पर्धा होती है। (तयोः यत् सत्यं) उनमें जो सत्य होता है, तथा (यतरत् ऋजीयः) जो सरल होता है, (तत् इत् सोमः अवति) उसका सोम संरक्षण करता है और जो (असत् हन्ति) असत् होता है उसका वह नाश करता है।

[१३] (८२९) (सोमः वृजिनं न वै हिनोति) सोम पापीको कभी नहीं छोडता। तथा (मिथुया धारयन्तं क्षत्रियं न) मिथ्या व्यवहार करनेवाले बलवानको भी नहीं छोडता। वह (रक्षः हन्ति) राक्षसको मारता है तथा (असत् वदन्तं हन्ति) असत्य भाषण करनेवालेको भी मारता है। (उभौ इन्द्रस्य प्रसितौ शयाते) ये दोनों अपराधी इन्द्रके बन्धनमें रहते हैं।

[१४] (८३०) (यदि वा अहं अनृतदेवः आस) यदि मैं असत्यको ही देव माननेवाला बनूंगा। अथवा यदि मैं (देवान् मोघं अपि-ऊहे) देवोंकी व्यर्थ कपट भावसे उपासना कर रहा हूं, तो हे अग्ने! हे (जातवेदः) वेद जिससे बने हैं? वास्तवमें ऐसा नहीं है फिर (अस्मभ्यं किं हृणीषे) हमारे ऊपर तुम क्रोध क्यों करते हो? (द्रोघवाचः ते निर्ऋथं सचन्तां) द्रोहपूर्ण मिथ्याभाषी जो हैं वेही तुम्हारे द्वारा बुरी अवस्थाको प्राप्त हों।

[१५] (८३१) (यदि यातुधानः अस्मि अद्य मुरीय) यदि मैं दुष्ट राक्षस हूं तो मैं आज ही मर जाऊं। (यदि पुरुषस्य आयुः ततप) यदि मैंने किसी मनुष्यके जीवनको कष्ट दिये हैं, तो भी मैं आज ही मर जाऊं। (यः मा मोघं यातुधान इति आह) जो मुझे व्यर्थ ही राक्षस करके कहता है (अध सः दशभिः वीरैः वि यूयाः) वह अपने दिसों वीरपुत्रोंसे वियुक्त हो जावे। उसके सब परिवारके लोग विनष्ट हो जांय।

[१६] (८३२) (यः मा अयातुं यातुधान इति आह) जो मुझ दैवी स्वभाववालेको राक्षस करके कहता है तथा (यः रक्षाः वा शुचिः अस्मि इति आह) जो राक्षस होनेपर भी अपने आपको पवित्र कहता है, (इन्द्रः तं महता वधेन हन्तु) इंद्र उसे बडे शस्त्रसे विनष्ट करे। वह (विश्वस्य जन्तोः अधमः पदीष्ट) सब प्राणियोंसे नीच होकर गिरे।

१७	प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहा तन्वं१ गूहमाना । वव्राँ अनन्ताँ अव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः	८३३
१८	वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्वि१च्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन । वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे	८३४
१९	प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन् त्सं शिशाधि । प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्तादभि जहि रक्षसः पर्वतेन	८३५
२०	एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् । शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः	८३६
२१	इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरो हविर्मथीनामभ्या३विवासताम् । अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन् त्सत एति रक्षसः	८३७

[१७] (८३३) (या नक्तं खर्गला इव) जो राक्षसी रात्रीके समय उल्लूकी की तरह (तन्वं गूहमाना) अपने शरीरको छिपाकर (अप प्र जिगाति) चलती है (सा अनंतान् वव्रान् अव पदीष्ट) वह राक्षसी अनंत गढोंमें गिरे। और (ग्रावाणः उपब्दैः रक्षसः घ्नन्तु) पत्थर शब्द करते हुए उन राक्षसोंको मारें।

मरुत्

[१८] (८३४) हे (मरुतः) मरुत् वीरो! तुम (विक्षु वि तिष्ठध्वं) प्रजाओंमें रहो, (इच्छत) राक्षस कहां हैं यह जाननेकी इच्छा करो और उनको (गृभायत) पकडो और उन (रक्षसः सं पिनष्टन) राक्षसोंको चूर्ण करो। (ये वयः भूत्वा नक्ताभिः पतयन्ति) जो पक्षी बनकर रात्रीके समय आते हैं। और (ये वा अध्वरे देवे रिपः दधिरे) जो हिंसा रहित यज्ञ शुरू होनेपर उसमें हिंसा करते हैं।

[१९ (८३५) हे इंद्र! (दिवः अश्मानं प्रवर्तय) आकाशसे पत्थरोंको फेंको। हे (मघवन्) धनवान्! (सोमशितं सं शिशाधि) सोमयाजीको संस्कार-संपन्न करो। (प्राक्तात् अपाक्तात्) पूर्व और पश्चिमसे (अधरात् उदक्तात्) दक्षिण और उत्तरसे (रक्षसः पर्वतेन अभि जहि) राक्षसोंको पर्वतास्त्र-से विनष्ट करो।

अश्मा, पर्वतः-- पत्थर, पर्वत, अस्त्र, वज्र।

[२०] (८३६) (त्ये एते श्वयातवः उ पतयन्ति) वे ये राक्षस कुत्तोंसे काटे जाकर गिरते हैं। (ये दिप्सवः अदाभ्यं इंद्रं दिप्सन्ति) जो मारनेकी इच्छासे अदम्य इंद्रकी भी हिंसा करना चाहते हैं। (शक्रः पिशुनेभ्यः वधं शिशीते) इंद्र उन कपटियोंका वध करनेके लिये अपने शस्त्रको तीक्ष्ण करता है। और वह (यातुमद्भ्यः अशनिं नूनं सृजत्) दुष्ट राक्षसोंपर निश्चयसे वज्र फेंकता है।

[२१] (८३७) (इंद्रः यातूनां पराशरः अभवत्) इंद्र राक्षसोंको दूर करनेवाला है। (हविर्मथीनां आविवासतां अभि) हविका नाश करनेवाले और आक्रमणकारियोंका पराभव करनेवाला इंद्र है। (परशुः यथा वनं) परशु जैसे वनको काटता है और (पात्रा भिंदन्) मिट्टीके बर्तनोंको जैसे मुद्गर तोडता है, उस तरह (शक्रः सतः रक्षसः अभि एति) इंद्र सामने आये राक्षसोंका नाश करता है।

२२ उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥ ८३८

२३ मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावतामपोच्छतु मिथुना या किमीदिना ।
पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ॥ ८३९

२४ इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन् त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥ ८४०

२५ प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम् ।
रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः ॥ ८४१

॥ इति ऋग्वेदे सप्तमं मण्डलं समाप्तम् ॥

---

[२२] (८३८) (उलूकयातुं) उल्लूके समान आचरण करनेवाले मोहवाले, (शुशुलूकयातुं) भेडियेके समान आचरण करनेवाले क्रोधी, (श्वयातुं) कुत्तेके समान आचरण करनेवाले मत्सरग्रस्त, (उत कोकयातुं) कोकपक्षीके समान आचरण करनेवाले कामी, (सुपर्णयातुं) गरुडके समान आचरणवाले गर्विष्ठ, (उत गृध्रयातुं) गीधके समान लोभी जो राक्षस हैं उनको (जहि) मारो। (दृषदा इव प्रमृण) पत्थरसे मारते हैं वैसे मारो और हे इंद्र! (रक्ष) हमारी रक्षा करो।

कामी, क्रोधी, लोभी, मोहित, गर्विष्ठ और मत्सरी राक्षसोंका नाश करो।

[२३] (८३९) (रक्षः नः अभिनट्) राक्षस हमें विनष्ट न करें, (यातुमावतां मिथुना अप उच्छतु) यातना देनेवालोंके स्त्री पुरुषोंके जोडे हमसे दूर हों। (या किमीदिना) जो घातक हैं वे भी दूर हों। (पृथिवी पार्थिवात् अंहसः पातु) पृथिवी पार्थिव पापसे हमें बचावे। (अन्तरिक्षं दिव्यात् अस्मान् पातु) अन्तरिक्ष आकाशमें होनेवाले पापसे हमें बचावे।

[२४] (८४०) हे इंद्र! (पुमांसं यातुधानं जहि) पुरुष राक्षसका नाश करो (उत मायया शाशदानां स्त्रियं) और कपटसे हिंसा करनेवाली स्त्री राक्षसीका भी नाश करो। (मूरदेवाः विग्रीवासः ऋदन्तु) दूसरोंको मारनाही जिनका खेल है वे राक्षस गला कट जानेपर विनष्ट हों, (ते सूर्यं उच्चरन्तं मा दृशन्) वे उदय होनेवाले सूर्यको न देख सकें। सूर्यके उदय होनेके पूर्वही वे दुष्ट मर जांय।

मूरदेवाः– 'मूर' = मारना, मूढ। 'देवः' – खेलनेवाला, व्यवहार करनेवाला। मारना ही जिनका खेल है। मूढताका व्यवहार करनेवाले।

[२५] (८४१) हे सोम! तू और (इंद्रः च) इंद्र (प्रति चक्ष्व) प्रत्येक राक्षसको देखो। (जागृतं) जागते रहो। (रक्षोभ्यः वधं अस्यतं) राक्षसोंपर वध करनेवाले अस्त्र फेंको और (यातुमद्भ्यः अशनिं) यातना देनेवालोंपर वज्र फेंको और उनका नाश करो।

॥ सप्तम मंडल समाप्त ॥

अष्टम मण्डल अनुवाक ९ वाँ [अनुवाक ६५ वाँ]

[अश्विनौ प्रकरण]

ऋग्वेद ८।८७।१-६

(८७) ६ कृष्ण आङ्गिरसो, वासिष्ठो वा द्युम्नीकः, प्रियमेध आङ्गिरसो वा। अश्विनौ।
प्रगाथः= (विषमा बृहती, समा सतोबृहती)।

१ द्युम्नी वां स्तोमो अश्विना क्रिविर्न सेक आ गतम्।
मध्वः सुतस्य स दिवि प्रियो नरा पातं गौराविवेरिणे ८४२

२ पिबतं घर्मं मधुमन्तमश्विनाऽऽबर्हिः सीदतं नरा।
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ नि पातं वेदसा वयः ८४३

३ आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत।
ता वर्तिर्यातमुप वृक्तबर्हिषो जुष्टं यज्ञं दिविष्टिषु ८४४

४ पिबतं सोमं मधुमन्तमश्विना ऽऽबर्हिः सीदतं सुमत्।
ता वावृधाना उप सुष्टुतिं दिवो गन्तं गौराविवेरिणम् ८४५

अश्विनौ

[१] (८४२) हे अश्विदेवो ! (सेके क्रिविः न) जलकी वृष्टि होनेपर जैसा कूआँ पानीसे भरा रहता है, वैसा ही (वां स्तोमः द्युम्नी) तुम्हारा स्तोत्र तेजस्वी होता है। (आगतं) तुम आओ। हे (नरा) नेता वीरो ! (सुतस्य मध्वः) सोमका मधुर रस (सः दिवि प्रियः) वह द्युलोकमें भी प्रिय हो रहा है, (इरिणे गौरौ इव पातं) जलस्थानपर दो गौर मृग जैसे पान करते हैं, वैसे ही तुम भी सोमरसका पान करो।

[२] (८४३) हे (नरा) नेता वीरो ! (मधुमन्तं घर्मं पिबतं) मीठे सोमके गर्म रसका पान करो, (बर्हिः आ सीदतं) आसनपर आकर बैठो। (मनुषः दुरोणे) मानवके घरपर (मन्दसाना ता) आनंदित होनेवाले तुम दोनों (वेदसः वयः आ निपातं) धनसे हमारी आयुका संरक्षण करो।

[३] (८४४) (प्रियमेधाः) यज्ञ जिनको प्रिय है ऐसे ऋषि (वां विश्वाभि ऊतिभिः अहूषत) आप दोनोंको सब प्रकारके संरक्षणोंके साथ अपने पास बुलाते हैं। (वृक्त-बर्हिषः वर्तिः) कुशासन जिसने फैलाकर रखा है ऐसे मानवके घरपर (ता उपयातं) वे तुम दोनों वीर चले आओ (दिविष्टिषु यज्ञं जुष्टं) दिव्य स्थानमें किये जानेवाले यज्ञका सेवन करो।

[४] (८४५) हे अश्विदेवो ! (सुमत् बर्हिः आ सीदतं) सुखकारक आसनपर आकर बैठो। (मधुमन्तं सोमं पिबतं) मीठा सोमरस पीओ। (इरिणं गौरौ इव) जलाशयके पास जैसे दो गौर मृग जाते हैं वैसे ही (दिवः ता वावृधाना) द्युलोकसे तुम दोनों आकर बढते हुए हमारी की हुई (सुष्टुतिं उप गन्त) अच्छी स्तुतिको समीप जाकर सुनो।

५	आ नूनं यातमश्विना ऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।	
	दस्रा हिरण्यवर्तनी शुभस्पती पातं सोममृतावृधा	८४६
६	वयं हि वां हवामहे विपन्यवो विप्रासो वाजसातये ।	
	ता वल्गू दस्रा पुरुदंससा धियाऽश्विना श्रुष्ट्या गतम्	८४७

नवम मण्डल अनुवाक ३ रा [अनुवाक ६९ वाँ]

ऋ० ९।६७।१९-२२ वसिष्ठो मैत्रावरुणः । सोमदेवता ।

१९	ग्राव्णा तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रं सोम गच्छसि ।	दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम्	८४८
२०	एष तुन्नो अभिष्टुतः पवित्रमति गाहते	। रक्षोहा वारमव्ययम्	८४९
२१	यदन्ति यच्च दूरके भयं विन्दति मामिह	। पवमान वि तज्जहि	८५०
२२	पवमानः सो अद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः	। यः पोता स पुनातु नः	८५१

[५] (८४६) हे (दस्रा) शत्रुका विनाश करनेवालो ! (हिरण्यवर्तनी शुभस्पती) सुवर्णके रथसे युक्त सज्जनोंके पालक और (ऋतावृधा अश्विना) ऋतके बढानेवाले अश्विदेवो ! (नूनं) सचमुच (प्रुषितप्सुभिः अश्वेभिः) तेजस्वी शरीरवाले घोडोंसे (आ यातं) आओ और (सोमं पातं) सोमरसका पान करो।

[६] (८४७) हे अश्विदेवो ! (वयं विपन्यवः विप्रासः) हम ज्ञानी विप्र लोग (वाजसातये वां हि हवामहे) अन्नका बटवारा करनेके लिये आप दोनोंको बुलाते हैं। इसलिये (ता वल्गू दस्रा) वे तुम सुन्दर रूपवाले शत्रुविध्वंसक वीर (पुरु दंससा) विविध कार्यवाले और (धिया) बुद्धिमान ऐसे तुम दोनों (श्रुष्टी आगतं) शीघ्र ही हमारे पास आ जाओ।

[१९] (८४८) हे सोम ! (ग्राव्णा तुन्नः अभिष्टुतः) पत्थरोंसे कूटा हुआ और सबके द्वारा प्रशंसित सोम, (पवित्रं गच्छति) छननीके पास जाता है, यह सोम (स्तोत्रे सुवीर्यं दधत्) स्तोताके लिये यह उत्तम बल देता है।

पत्थरोंसे सोमको प्रथम कूटते हैं, पश्चात् छाननीसे उस रसको छानते हैं। यह सोमरस पीनेवालेका बल बढाता है।

[२०] (८४९) (एषः तुन्नः अभिष्टुतः) यह सोम कटा जानेपर प्रशंसित होता है और (अव्ययं वारं पवित्रं अतिगाहते) भेढीके लोमोंकी बनायी छाननीसे छाना जाता है। यह सोमरस (रक्षोहा) राक्षसोंका नाश करनेवाला है।

सोम प्रथम कूटते हैं, उसके छाननेके लिये भेढीकी ऊनकी छाननी बनायी होती है, उससे छानते हैं और द्रोण कलशमें उस रसको रख देते हैं।

[२१] (८५०) हे (पवमान) पवित्रता करनेवाले सोम ! (यत् भयं अन्ति) जो भय पास होता है (यत च दूरके) जो भय दूरसे होता है जो (मां इह विंदति) मुझे यहां प्राप्त होता है (तत् वि जहि) उस भयका नाश करो।

सर्वत्र निर्भयता स्थापन करना योग्य है।

[२२] (८५१) (सः विचर्षणिः पवमानः) वह सबका द्रष्टा पवित्र करनेवाला सोम (यः पोता) जो सबको निर्दोष करनेवाला है वह सोम (अद्य नः पुनातु) आज हमें पवित्र बनावे।

विचर्षणिः पोता पवमानः नः पुनातु— निरीक्षण करनेवाला, पवित्र करनेवाला, निर्दोष बनानेवाला हमें परिशुद्ध करे। राज्य शासनका अधिकारी स्वयं देखरेख उत्तम रीतिसे करे, सबको पवित्र आचरणमें ही रखे और सब लोगोंको शुद्ध करे। अपने क्षेत्रमें अपवित्र पापी रहने न दे।

२३	यत् ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा	। ब्रह्म तेन पुनीहि नः	८५२
२४	यत् ते पवित्रमर्चिवदग्ने तेन पुनीहि नः	। ब्रह्मसवैः पुनीहि नः	८५३
२५	उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च	। मां पुनीहि विश्वतः	८५४
२६	त्रिभिष्ट्वं देव सवितर्वर्षिष्ठैः सोम धामभिः	। अग्ने दक्षैः पुनीहि नः	८५५
२७	पुनन्तु मां देवजनाः पुनन्तु वसवो धिया । विश्वे देवाः पुनीत मा जातवेदः पुनीहि मा		८५६
२८	प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व सोम विश्वेभिरंशुभिः	। देवेभ्य उत्तमं हविः	८५७
२९	उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतीवृधम्	। अगन्म बिभ्रतो नमः	८५८
३०	अलाय्यस्य परशुर्ननाश तमा पवस्व देव सोम	। आखुं चिदेव देव सोम	८५९

[२३] (८५२) हे अग्ने! (यत् ते) जो तुम्हारा (अर्चिषि अन्तः विततं पवित्रं) तेजके अन्दर फैला पवित्रता करनेका सामर्थ्य है जो (ब्रह्म) ज्ञानरूप हैं (तेन नः आ पुनीहि) उससे हमारी पवित्रता करो।

ज्ञान रूप तेजस्वी सामर्थ्यसे सबकी पवित्रता होती है। ज्ञान तेजस्विता बढानेवाला है।

[२४] (८५३) हे अग्ने! (यत् ते आर्चिवत् पवित्रं) जो तुम्हारा तेजस्वी पवित्रता करनेवाला सामर्थ्य है, (तेन नः पुनीहि) उससे हमें पवित्र करो। (ब्रह्मसवैः नः पुनीहि) मन्त्रोंके पाठके साथ निकाले सोम सवनोंसे हमें पवित्र करो।

[२५] (८५४) हे सविता देव! (पवित्रेण सवेन च) छाननी और सोमसवन (उभाभ्यां मां विश्वतः पुनीहि) इन दोनोंसे मुझे चारों ओरसे पवित्र करो।

[२६] (८५५) हे (सविता देव सोम) हे प्रेरक प्रकाशमान सोम देव! हे अग्ने! (वर्षिष्ठैः त्रिभिः धामभिः दक्षैः) श्रेष्ठ तीनों धामों और बलोंसे (नः पुनीहि) हमें पवित्र करो।

[२७] (८५६) (देवजनाः मां पुनन्तु) देव जन मुझे पवित्र करें। (वसवः धिया पुनन्तु) वसुदेव बुद्धियुक्त कर्मोंसे मुझे पवित्र बनावें। (विश्वे देवाः मा पुनीत) सब देव मुझे पवित्र करें। हे (जातवेद) वेद जिससे हुए वह देव! (मा पुनीहि) मुझे पवित्र करो।

[२८] (८५७) हे सोम! (प्र प्यायस्व) हमें बहुत बढाओ। (विश्वेभिः अंशुभिः) अपने सब किरणोंसे (देवेभ्यः उत्तमं हविः प्र स्यंदस्व) देवोंके लिये उत्तम अन्न देओ।

[२९] (८५८) (प्रियं पनिप्नतं) सबके लिये प्रिय, शब्द करनेवाले (युवानं आहुतिवृधं) तारुण्य देनेवाले और आहुतियोंसे बढनेवाले सोमके पास (नमः बिभ्रतः अगन्म) नमस्कार करते हुए हम जाते हैं।

[३०] (८५९) (अलाय्यस्य परशुः) आक्रमणकारी शत्रुका परशु (तं ननाश) उसीका विनाश करे। हे सोम देव! (आ पवस्व) हमारे पास आओ। हे सोमदेव! (आखुं चित् एव) घातक शत्रुका भी नाश करो।

४ उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वन् त्समीचीने आ पवस्वा पुरंधी ।
अपः सिषासन्नुषसः स्व१र्गाः सं चिक्रदो महो अस्मभ्यं वाजान् ॥ ८६५

५ मत्सि सोम वरुणं मत्सि मित्रं मत्सीन्द्रमिन्दो पवमान विष्णुम् ।
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि महामिन्द्रमिन्दो मदाय ॥ ८६६

६ एवा राजेव क्रतुमाँ अमेन विश्वा घनिघ्नद्दुरिता पवस्व ।
इन्दो सूक्ताय वचसे वयो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८६७

रखनेवाला (सहावान्) शत्रुका पराभव करनेका बल रखनेवाला, (जेता) विजयी, (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण आयुधोंवाला, (क्षिप्रधन्वा) शीघ्र धनुष्य चलानेवाला, (समत्सु अषाळ्हः) युद्धोंमें शत्रुके लिये अजिक्य, (पृतनासु शत्रून् साह्वान्) सेनाओंके युद्धके समय शत्रुका पराभव करनेवाला (धनानि सनिता) धनोंका दान करनेवाला तुम हो। वह तुम (पवस्व) हमें पवित्र बनाओ।

इस मंत्रमें उत्तम शूरके लक्षण कहे हैं।

[४] (८६५) (उरु-गव्यूतिः) विस्तीर्ण गौओंका मार्ग जो करता है वह सोम सबके लिये (अभयानि कृण्वन्) निर्भयता करता है। वह (पुरंधी समीचीने आ पवस्व) विस्तृत बुद्धिको उत्तम बनानेके लिये रस निकाले। (अपः उषसः स्वः गाः सिषासन्) जल उषा, सूर्य और गौ वा किरणोंको प्राप्त करनेकी इच्छासे (सं चिक्रदः) तुम शब्द करता है और (महः वाजान् अस्मभ्यं) बडे अन्न और बल हमें प्रदान करता है।

१ **उरु-गव्यूतिः**— गौओंका आने जानेका मार्ग विशाल हो।

२ **अभयानि कृण्वन्**— निर्भयता स्थापन करो।

३ **पुरंधी समीचीने**— विस्तृत धारणावती बुद्धि उत्तम हो। नगरका धारण करनेवाली, नगरका पालन करनेवाली बुद्धि समीचीन हो, उसमें दोष न हो।

४ **महः वाजान्**— बहुत अन्नका प्रदान करो।

[५] (८६६) हे (सोम पवमान इन्दो) पवित्र करनेवाले सोम रस। (वरुणं मत्सि) वरुणको आनंदित करता है, (मित्रं मत्सि) मित्रको आनंदित करता है। (इन्द्रं विष्णुं मत्सि) इन्द्र और विष्णुको आनंदित करता है। (मारुतं शर्धः मत्सि) मरुतोंके संघको आनंदित करता है, (देवान् मत्सि) देवोंको आनंदित करता है। हे सोम! (मदाय) इन सबको आनन्द देनेवाला है।

इस मंत्रमें इन्द्रका नाम दो वार आया है, वह उसका महत्त्व वर्णन करनेके लिये है।

[६] (८६७) हे (इन्दो) सोम! (क्रतुमान् राजा इव) शुभ कर्म करनेवाले राजाके समान (अमेन विश्वा दुरिता घनिघ्नत्) अपने बलसे सब अनिष्टोंका नाश तुम करो। (पवस्व) रस दे दो। पवित्र करो। (सूक्ताय वचसे वयः धाः) सूक्तके वर्णनके लिये हमें अन्न प्रदान कर। तुम्हारे वर्णन करनेसे हमें अन्न प्राप्त हो, हमें दीर्घआयु प्राप्त हो (यूयं स्वस्तिभि सदा नः पात) तुम कल्याणके साधनोंसे सदा हमारी सुरक्षा करो।

१ **क्रतुमान् राजा अमेन विश्वा दुरिता घनिघ्नत्**- उत्तम प्रजापालन रूप कर्म करनेवाला राजा अपने बलसे सब अनिष्टोंको दूर करे और प्रजाका कल्याण करे।

२ **वयः धाः**— अन्न, आयु, धन प्रजाके लिये वह धारण करे। उसके प्रयत्नसे प्रजा अन्नवान्, दीर्घायु तथा धनयुक्त होवे।

ऋग्वेद ९।९७।१-३०

(९७) (५८) १-३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, ४-६ वासिष्ठ इन्द्रप्रमतिः, ७-९ वासिष्ठो वृषगणः, १०-१२ वासिष्ठो मन्युः, १३-१५ वासिष्ठ उपमन्युः, १६-१८ वासिष्ठो व्याघ्रपाद्, १९-२१ वासिष्ठः शक्तिः, २२-२४ वासिष्ठः कर्णश्रुद्, २५-२७ वासिष्ठो मृळीकः, २८-३० वासिष्ठो वसुक्रः ।

१ अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमान्ति होता ॥ ८६८

२ भद्रा वस्त्रा समन्या वसानो महान् कविर्निवचनानि शंसन् ।
आ वच्यस्व चम्वोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ ॥ ८६९

३ समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो अस्मे ।
अभि स्वर धन्वा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८७०

---

[१] (८६८) (अस्य प्रेषा) इसका प्रेरक (हेमना पूयमानः) सुवर्णके द्वारा पवित्र हुआ (देवः) सोम देव (रसं देवेभिः समपृक्त) अपने रसको देवोंके साथ संपर्क होनेके लिये देता है। अपने रसका समर्पण करता है। पश्चात् (सुतः रेभन् पवित्रं परि एति) रस निकलनेपर वह छाननी पर जाकर बैठता है। जैसा (होता) देवोंको बुलानेवाला याजक (पशुमंति सद्म मिता इव) पशु जहां बंधे हैं ऐसी उत्तम परिमाणसे बनायी यज्ञशालामें जाता है।

१ हेमना पूयमानः— सोमरस निकालनेवाला हाथकी उंगलीमें सुवर्णकी अंगुठी रखकर सोमरस निकालता है। इस लिये सोमरस सुवर्णसे पवित्र होता है ऐसा कहा है। अंगुठीको भी ' पवित्र ' ही कहते हैं। सुवर्णके आभूषण शरीरको पवित्र करते हैं।

[२] (८६९) (भद्रा समन्या वस्त्रा वसानः) कल्याण कारक संग्रामके योग्य वस्त्रोंको धारण करनेवाला (महान् कविः निवचनानि शंसन्) बडा कवि स्तोत्रोंका गान करनेवाला (विचक्षणः जागृविः) विशेष रीतिसे देखनेवाला जाग्रत रहनेवाला तू सोम (देववीतौ चम्वोः पूयमानः आवच्यस्व) यज्ञमें पवित्र होकर पात्रोंमें जाकर निवास कर।

१ समन्या भद्रा वस्त्रा वसानः— वीर युद्धके योग्य हितकारी वस्त्रोंको धारण करे। यहां सोम वीर है वह वस्त्रोंसे आच्छादित होकर पात्रमें रखा जाता है। इसलिये इसके वर्णनसे वीरका वर्णन हो रहा है।

२ महान् कविः निवचनानि शंसन्— बडा कवि जैसा काव्यगान करता है वैसा यह सोम भी स्तोत्रोंका गान करता है, इसके स्तोत्र गाये जाते है जिस समय सोम कूटते हैं।

३ विचक्षणः जागृविः—विशेष रीतिसे चारों ओर देखनेवाला जाग्रत रहनेवाला संरक्षक यह है। किसीको किसी स्थान पर संरक्षणके लिये रखा जाय तो उसको वहां जाग्रत रहना चाहिये और चारों ओर देखना चाहिये। पहरा देनेवालेका यह कर्तव्य ही है।

[३] (८७०) (यशसां यशस्तरः) यशस्वीयोंमें अधिक यशस्वी (क्षैतः प्रियः) भूमिपर उत्पन्न हुआ यह प्रिय सोम (सानौ अव्ये अस्मे संमृज्यते) उच्च भागमें स्थित भेडीकी ऊनसे बनायी छाननी पर हमारे लिये शोधित किया जाता है। पवित्र होता है। हे सोम! तू (पूयमानः धन्वा अभिस्वर) पवित्र होकर छाननी पर शब्द कर। छाननीसे नीचे जानेका शब्द कर। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) तुम कल्याण करनेके साधनों द्वारा सदा हमारी सुरक्षा कर।

४ प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय ।
स्वादुः पवाते अति वारमव्यमा सीदाति कलशं देवयुर्नः ॥ ८७१

५ इन्दुर्देवानामुप सख्यमायन्त्सहस्रधारः पवते मदाय ।
नृभिः स्तवानो अनु धाम पूर्वमगन्निन्द्रं महते सौभगाय ॥ ८७२

६ स्तोत्रे राये हरिरर्षा पुनान इन्द्रं मदो गच्छतु ते भराय ।
देवैर्याहि सरथं राधो अच्छा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८७३

७ प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥ ८७४

सोमके वर्णनमें वीरका वर्णन यहां है। सोम भूमिपर उत्पन्न होता है, सबको प्रिय है। छाननीपर छाना जाता है उस समय शब्द करके साथ पात्रमें उतरता है। यह वीर भी ऐसा होता है।

१ यशसां यशस्तरः— यशस्वी वीरोंमें अधिक यशस्वी यह वीर हुआ है।

२ क्षमि प्रियः— इस भूमिपर, इस देशमें यह सबको प्रिय हुआ है

३ सानौ संमृज्यते— पर्वतके ऊपरके कीलेमें रहकर यह वीर अपने पराक्रमसे अधिक पवित्र होता है

४ पुनानः धन्वा अभिस्वर— अपनी वीरतासे पवित्र होनेवाला वीर अपने धनुष्यसे युद्धमें शब्द करे।

५ स्वस्तिभिः सदा नः पात— इस तरह कल्याण करनेवाले साधनोंसे सदा हमें सुरक्षित रखो। शत्रुओंसे हमारा संरक्षण करो।

इस तरह सोमका वर्णन और वीरका वर्णन साथ साथ है। सोम वीरता बढाता है। सोममें वीरता है इसलिये वह वीर्य कहाता है।

[४] (८७१) (सोमं प्र गायत) सोमका वर्णन गाओ। (देवान् अभ्यर्चाम) हम देवोंकी पूजा करते हैं। तथा (महते धनाय सोमं हिनोत) बडे धनकी प्राप्तिके लिये सोमको प्रेरित करो। (स्वादुः अव्यं वारं अतिपवाते) यह मीठा रस भेडीकी ऊनसे बनी छाननीपर छाना जाता है। यह (देवयुः नः कलशं आसीदाति) देवोंको प्राप्त होनेवाला सोम रस कलशमें जाकर बैठता है।

[५] (८७२) (देवानां सख्यं उप आयन्) देवोंसे मित्रता करनेकी इच्छासे आनेवाला यह (इन्दुः सहस्रधारः मदाय पवते) सोमरस सहस्रों धाराओंसे आनन्द बढानेके लिये छाना जाता है, पवित्र हो रहा है। (नृभिः स्तवानः) मनुष्यों द्वारा प्रशंसित होकर (महते सौभगाय) महान भाग्यके लिये (पूर्वं धाम इन्द्रं) पूर्व स्थानमें विराजमान इन्द्रके पास (अनु अगन्) यह सोम पहुंचता है। इन्द्रके सोम पीनेपर यह मनुष्योंको प्राप्त होकर मनुष्योंका भाग्य बढाता है।

[६] (८७३) हे सोम! तू (हरिः पुनानः) हरिद्वर्णवाला सोमरस छाना जाकर (स्तोत्रे राये अर्ष) हमारे स्तोत्र गान करनेपर धन बढानेके लिये हमारे पास आजाओ (ते मदः भराय इन्द्रं गच्छतु) तुम्हारा आनन्ददायक रस युद्धके समय इन्द्रको प्राप्त होवे। (देवैः सरथं याहि) देवोंके साथ रथपर बैठकर जा (राधः अच्छ) धन हमें दो। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण साधनोंसे सुरक्षित रखो।

[७] (८७४) (उशना इव काव्यं प्र ब्रुवाणः) कविके समान काव्य गाता हुआ यह (देवः) दिव्य ऋषि (देवानां जनिमा विवक्ति) देवोंके जन्मवृत्तका वर्णन करता है। (महिव्रतः शुचि-

८ प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः ।
आङ्गूष्यं१ पवमानं सखायो दुर्मर्षं साकं प्र वदन्ति वाणम्

९ स रंहत उरुगायस्य जूतिं वृथा क्रीळन्तं मिमते न गावः ।
परीणसं कृणुते तिग्मशृङ्गो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृज्रः

१० इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन् मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातीर्वरिवः कृण्वन् वृजनस्य राजा

११ अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः
इन्दुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय

बन्धुः पावकः) बडा व्रतपालक शुद्ध बन्धुवाला और पवित्रता करनेवाला यह (वराहः रेभन् पदा अभि एति) श्रेष्ठ दिन जिसके लिये नियत हुआ है ऐसा सोम शब्द कराता हुआ अपने स्थानों-पात्रों-के पास जाता है।

(महिव्रतः) बडा व्रत पालक (शुचिबन्धुः) शुद्ध बन्धुके समान हित करनेवाला (पावकः) शुद्धता-पवित्रता करनेवाला (वराहः-वर-अहः) जिसके लिये शुभ दिन नियत होता है ऐसा यह वीर (रेभन् पदा अभि एति) शब्द करता हुआ अपने पाओंसे शत्रुपर आक्रमण करता है। यह वीरपरक इस मंत्रका भाव है। वीर ऐसा हो।

[८] (८७५) (हंसासः वृषगणाः) हंसके समान वृषगण ऋषि (अमात् तृपलं मन्युं अच्छ) शत्रुके बलसे त्रस्त होकर शीघ्र ही शत्रुनाशक और उत्साहवर्धक सोमको प्राप्त करनेके लिये (अस्तं प्र अयासुः) यज्ञगृहके समीप पहुंचे। ये (सखायः) मित्र इकट्ठे होकर (आंगूष्यं दुर्मर्षं पवमानं) प्रशंसनीय और शत्रुके लिये दुःसह सोमकी (वाणं साकं प्रवदन्ति) वाण नामक वाद्यके साथ प्रशंसा गाने लगे। बाण एक प्रकार-का वाद्य है।

[९] (८७६) (सः रंहते) वह सोम शीघ्र गमन करता है, (उरु गायस्य जूतिं क्रीळन्तं) विशेष प्रशंसनीय गतिके अनुसार क्रीडा करने-वाले सोमको (वृथा गावः न मिमते) व्यर्थ ही गौवें अथवा अन्य गतिमान पदार्थ रोक नहीं सकते। सोमकी गतिके समान अन्योंकी गति नहीं होती। यह (तिग्मशृंगः परीणसं कृणुते) तीक्ष्ण किरणवाला सोम अनेक प्रकारके [illegible] दर्शाता है। (दिवा हरिः ददृशे) दिनके समय हरा दीखता है और (नक्तं ऋज्रः) रातके समय सरलगामी तेजस्वी दिखाई देता है।

सोम दिनके समय हरा दीखता है, परंतु वही रातके समय अन्धेरेमें चमकता है। अन्धेरेमें चमकनेका गुण जैसा तारा चन्द्रमें है वैसा ही सोमरसमें भी है। इससे सिद्ध होता है कि सोममें आग्नेय पदार्थ (फास्फोरस) है जो लाभदायक है।

[१०] (८७७) (इन्दुः सोमः वाजी) यह सोम बल बढानेवाला और (गोऽन्योघाः) गौओंके दुग्धके साथ मिलकर (इन्द्रे सहः इन्वन्) इन्द्र के लिये शक्ति बढानेवाले रसको देता है और (मदाय पवते) इन्द्रके आनन्दके लिये छाना जाता है। यह (रक्षः हन्ति) राक्षसोंको मारता है, (अरातीः परिबाधते) शत्रुओंको दूर से ही बाधा पहुंचाता है, (वरिवः कृण्वन्) श्रेष्ठ धनका निर्माण करता है और वही (वृजनस्य राजा) बलका स्वामी है।

सोम बल बढाता है, दूधके साथ मिलाकर पीया जाता, शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य बढाता, राक्षसों और दुष्टोंका नाश करता है। मानो यह सोम बलका राजा ही है और धन देनेवाला है।

[११] (८७८) (अध अद्रिदुग्धः) पत्थरोंसे कूटा जाकर (मध्वा धारया पृचानः) मधुर सोम रसकी धारासे देवोंको प्राप्त करनेकी इच्छासे

१२	अभि प्रियाणि पवते पुनानो देवो देवान् स्वेन रसेन पृञ्चन् ।	
	इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानो अव्ये	८७९
१३	वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम् ।	
	इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमाम्	८८०
१४	रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।	
	पवमानः संतनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः	८८१
१५	एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन् वधस्नैः ।	
	परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः	८८२

(सोम सिचः पवते) भेडीके बालोंकी छाननीसे छाना जाता है। छाननेपर कलशोंमें रखा जाता है। (इन्द्रस्य सख्यं जुषाणः) इन्द्रके साथ मित्रता करनेकी इच्छा करनेवाला (देवः इन्दुः) सोमदेव (मत्सरः इन्द्रस्य मदाय) आनन्द देनेवाला इन्द्रके हर्षका संवर्धन करता है।

[१२] (८७९) (प्रियाणि धर्माणि) प्रिय धर्मोंको (ऋतुथा वसानः) ऋतुके अनुसार करता हुआ (इन्दुः देवः) सोमदेव (स्वेन रसेन देवान् पृंचन्) अपने रससे देवोंको प्राप्त होनेकी इच्छा करता है (पुनानः अभिपवते) स्वयं पवित्र होता हुआ भी पुनः छाना जाता है। इसको (दश क्षिपः) दसों अंगुलियां (अव्ये सानौ अव्यत) भेडोंके बालोंसे बनायी छाननी पर छाननेके लिये चढाते हैं।

सोम स्वयं पवित्र है, तथापि पुनः पवित्र होनेके लिये छाना जाता है। इसी तरह मनुष्य पवित्र होनेपर भी अधिक पवित्र होनेके लिये प्रयत्न शील होना चाहिये। आत्म निरीक्षणसे छाना जाना चाहिये।

[१३] (८८०) (शोणः वृषा) लोहित वर्णका बैल (गाः अभि कनिक्रदत्) गायोंको देखकर जैसा शब्द करता है। इसी तरह (नदयन् पृथिवीं उत द्यां एति) यह सोम शब्द करता हुआ पृथिवी और द्युलोकको पहुंचता है। (इन्द्रस्य इव) इन्द्रकी गर्जनाके समान (आजौ वग्नुः आ शृण्वे) युद्धके समय इस सोमका शब्द सुनाई देता है। (प्रचेतयन् इमां वाचं आ अर्षति) अपना परिचय देता हुआ सोम अपनी वाणीको जोरसे बोलता है।

[१४] (८८१) हे सोम ! तू (रसाय्यः पयसा पिन्वमानः) रसवाला और दूधसे परिपुष्ट होनेवाला है। (ईरयन् मधुमन्तं अंशु एषि) तू सोम शब्द करता हुआ मधुरता युक्त रस भावको प्राप्त होता है। (परिषिच्यमानः पवमानः) जलका सिंचन करके छाना जानेके पश्चात् (इन्द्राय संतनिं कृण्वन् एषि) इन्द्रके पास अपनी धाराको बनाकर जाता है।

सोमरसमें गौका दूध मिलाया जाता है, जल भी मिलाते हैं। इससे यह रस पीने योग्य धारा प्रवाही होता है जो इन्द्रको सबसे प्रथम दिया जाता है।

[१५] (८८२) हे सोम ! (मदिरः) आनंद देनेवाला तू (उदग्राभस्य वधस्नैः नमयन्) जलधर मेघको अपने वध करनेके आयुधोंसे नम्र करके, उससे वृष्टी करवाके (मदाय एव पवस्व) आनन्दके लिये ही रसवान् बनो। (रुशन्तं वर्णं परि भरमाणः) अपने तेजस्वी वर्णको अधिक तेजस्वी करता हुआ (नः गव्युः) हमारी गायोंकी इच्छा करता हुआ (परि अर्ष) पात्रमें छाना जाकर रहो।

१६	जुष्ट्वी न इन्दो सुपथा सुगान्युरौ पवस्व वरिवांसि कृण्वन् ।	
	घनेव विष्वग्दुरितानि विघ्नन्नधि ष्णुना धन्व सानो अव्ये	८८३
१७	वृष्टिं नो अर्ष दिव्यां जिगत्नुमिळावतीं शंगयीं जीरदानुम् ।	
	स्तुकेव वीता धन्वा विचिन्वन् बन्धूँरिमाँ अवराँ इन्दो वायून्	८८४
१८	ग्रन्थिं न वि ष्य ग्रथितं पुनान ऋजुं च गातुं वृजिनं च सोम ।	
	अत्यो न क्रदो हरिरा सृजानो मर्यो देव धन्व पस्त्यावान्	८८५
१९	जुष्टो मदाय देवतात इन्दो परि ष्णुना धन्व सानो अव्ये ।	
	सहस्रधारः सुरभिरदब्धः परि स्रव वाजसातौ नृषह्ये	८८६

सोमरसमें वृष्टिका अथवा नदीका जल मिलाते हैं, पश्चात् उसमें गायका दूध मिलाते हैं। यह जल और दूध इतना मिलाना चाहिये कि जितनेसे उसका स्वाभाविक तेजस्वी श्वेत वर्ण अधिक तेजस्वी बने। तब यह पीने योग्य होगा।

[१६] (८८३) हे (इन्दो) सोम! (जुष्ट्वी) स्तुतिसे प्रसन्न होकर (नः सुपथा सुगानि कृण्वन्) तुम हमारे उत्तम मार्गोंको सुगम करो। और हमें (वरिवांसि) धनोंका प्रदान करो। तथा (उरौ पवस्व) विस्तीर्ण पात्रमें तुम छाना जाकर रहो। (घना इव दुरितानि विष्वक् विघ्नन्) आयुधोंसे पापाचारियोंको चारों ओर मारकर (अव्ये सानौ स्नुना अधिधन्व) मेढीके बालोंसे बनी छाननीपर धारासे बहता रहो।

[१७] (८८४) हे सोम! (दिव्यां जिगत्नुं) आकाशसे प्राप्त होनेवाली गतिशील (इळावतीं) अन्न देनेवाली (शंगयीं) सुखदायी (जीरदानुं) और सत्वर अन्नका दान करनेवाली (वृष्टिं नः अर्ष) वृष्टिको हमारे लिये दे दो। हे (इन्दो) सोम! (वीता स्तुका इव) जिस तरह प्रिय पुत्रोंको ढूंढते हैं उस तरह (इमान् अवरान् बन्धून् वायून् विचिन्वन्) इन निम्न देशमें बहनेवाले वायुओंको ढूंढकर (धन्व) उनके पास जा।

हमें उत्तम वृष्टी तथा अनुकूल वायु प्राप्त हो और उनसे हमें सुख मिलें।

[१८] (८८५) (पुनानः ग्रथितं विष्य) पुनीत करनेवाले तुम मुझे पापसे बद्ध हुएको मुक्त करो (ग्रन्थिं न) जिस तरह कोई गांठको सुलझाता है। हे सोम! तुम मुझे उन्नतिका (ऋजुं गातुं) सीधा मार्ग बताओ, (वृजिनं च) और बल भी दो। (हरिः आ सृजानः) हरिद्वर्णवाले तुम पात्रोंमें प्रविष्ट होनेके समय (अत्यः न क्रदः) घोडेके समान शब्द करते हो। हे देव सोम! तुम (पस्त्यावान् मर्यः धन्व) उत्तम गृहवाले मनुष्यके समान हमारे पास आओ।

१ ग्रन्थिं न, ग्रथितं पुनानः विष्य— जैसे कोई गांठको खोलता है, उस तरह मैं पापकी गांठसे बंधनमें पडा हुआ हूं, उस मुझको पवित्र करो और मुक्त करो। यहां बंधनसे मुक्त होनेका मार्ग बताया है, पवित्र बनो और बंधनोंसे मुक्त होओ।

२ ऋजुं गातुं वृजिनं च— सरल मार्ग उन्नतिको प्राप्त करनेके लिये बताओ और उसपर चलनेके लिये बल भी दो। उन्नति प्राप्त करनेवाले मनुष्यको सरल मार्गसे चलना चाहिये और बल भी प्राप्त करना चाहिये।

३ पस्त्यावान् मर्यः— मनुष्य घरवाला हो। बिना घरके कोई न रहे।

[१९] (८८६) हे (इन्दो) सोम! (मदाय जुष्टः) तुम आनन्द बढानेके लिये सेवन करने-योग्य हो। तुम (देवताते सानौ अव्ये स्नुना परि धन्व) यज्ञमें ऊंचे मेढीके बालोंसे बनी छाननी

२० अरश्मानो येऽरथा अयुक्ता अत्यासो न ससृजानास आजौ ।
एते शुक्रासो धन्वन्ति सोमा देवासस्ताँ उप याता पिबध्यै ८८७

२१ एवा न इन्दो अभि देववीतिं परि स्रव नभो अर्णश्चमूषु ।
सोमो अस्मभ्यं काम्यं बृहन्तं रयिं ददातु वीरवन्तमुग्रम् ८८८

२२ तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके ।
आदीमायन् वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ८८९

२३ प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्व ऋतमृताय पवते सुमेधाः ।
धर्मा भुवद्वृजन्यस्य राजा प्र रश्मिभिर्दशभिर्भारि भूम ८९०

पर धारासे जाओ। तुम (सहस्रधारः सुरभिः अदब्धः) सहस्रों धाराओंसे प्रवाहित होकर सुगंध युक्त और अदम्य शक्तिवाला होकर (नृषह्ये वाजसातौ परिस्रव) मनुष्योंद्वारा बलसे किये जानेवाले युद्धमें अन्नके वंटवारेके लिये जाते रहो।

अदम्य शक्ति देनेवाला सोमरस पीओ मानवोंके हित करनेके लिये वीरोंद्वारा किये जानेवाले युद्धमें वीरतासे भाग लो।

[२०] (८८७) (ये अरश्मयः अरथाः अयुक्ताः) जो रश्मिरहित रथरहित और न जोते हुए (अत्यासः न) घोडोंके समान (आजौ ससृजानासः) युद्धमें सज्जित करके जाते हैं, (एते शुक्रासः देवासः सोमाः) ये बलवान दिव्य सोमरस (धन्वन्ति) छाने जा रहे हैं, वे कलशोंमें दौड रहे हैं, (तान् पिबध्यै उप यात) उनके पास पीनेके लिये जाओ।

घुडदौडमें जो घोडे लक्ष्यपर दृष्टी रखकर दौडाये जाते हैं वे रथको जोडे नहीं जाते, उनको रश्मियोंका बंधन नहीं रहता; वे खुली रीतिसे निशानका वेध करनेके लिये दौडते हैं। वैसे सोमरसके प्रवाह पात्रोंमें जानेके लिये दौड रहे हैं।

[२१] (८८८) हे (इन्दो) सोम ! (नः देवतातिं) हमारे यज्ञमें (नभः अर्णः) आकाशसे जलधाराएं गिरती हैं उस तरह (चमूषु परि स्रव) कलशोंमें तूं छाननीसे नीचे परिस्रवित होओ। यह (सोमः अस्मभ्यं) सोम हमारे लिये (काम्यं बृहन्तं) प्रिय और बडे (उग्रं वीरवन्तं रयिं ददातु) शूर वीरता युक्त धनको देवे।

धन कैसा हो ?

काम्यं बृहन्तं उग्रं वीरवन्तं रयिं ददातु— प्राप्त करने योग्य प्रिय, बडा, उग्रतायुक्त, शूरत्वके भावके साथ वीरता युक्त धन हमें मिले। इसके विपरीत धन नहीं चाहिये।

[२२] (८८९) (वेनतः मनसः वाक्) इच्छा करनेवाले तथा मनःपूर्वक प्रार्थना करनेवालेकी वाणी (यदि तक्षत्) जैसी इसपर संस्कार करती है, (वा) अथवा (धर्मणि क्षोः ज्येष्ठस्य अनीके) योगक्षेम विषयक कर्तव्य करनेके समय घोषणा करनेवाले श्रेष्ठ राजाके मुखमें जो वाणी होती है उस तरहकी वाणी इस सोमकी प्रशंसा करती है। (कलशे जुष्टं पतिं वरं इन्दुं) कलशमें रहनेवाले सेवनीय श्रेष्ठ सोमरूपी स्वामीके पास (वावशानाः गावः आत् ईं आयन्) इच्छा करनेवाली गौवें जाती हैं।

सब लोग सोमकी प्रशंसा गाते रहते हैं। यह सोमरस कलशमें छाना जाता है और कलशोंमें भरा जाता है। इसमें गौका दूध मिलाया जाता है। इसलिये यहां कहा कि सोममें दूध मिलानेकी इच्छा करनेवाली गौवें सोमके पास जाती हैं। अर्थात् गायोंका दूध निकालकर वह सोमरसके साथ मिलाया जाता है।

[२३] (८९०) (दिव्यः दानुदः) दिव्य दाता (दानुपिन्वः) अन्न देनेवाला (सुमेधाः) मेधा बुद्धि बढानेवाला सोम (ऋताय ऋतं प्र पवते) सत्यपालक इन्द्रके लिये सत्यबलवर्धक रस प्रवाहित करता है। यह (राजा वृजन्यस्य धर्मा भुवत्) राजा सोम उत्तम बलका धारण करनेवाला है।

२४ पवित्रेभिः पवमानो नृचक्षा राजा देवानामुत मर्त्यानाम् ।
द्विता भुवद्रयिपती रयीणामृतं भरत्सुभृतं चार्विन्दुः ८९१

२५ अर्वाँ इव श्रवसे सातिमच्छेन्द्रस्य वायोरभि वीतिमर्ष ।
स नः सहस्रा बृहतीरिषो दा भवा सोम द्रविणोवित् पुनानः ८९२

२६ देवाव्यो नः परिषिच्यमानाः क्षयं सुवीरं धन्वन्तु सोमाः ।
आयज्यवः सुमतिं विश्ववारा होतारो न दिवियजो मन्द्रतमाः ८९३

२७ एवा देव देवताते पवस्व महे सोम प्सरसे देवपानः ।
महश्चिद्धि ष्मसि हिताः समर्ये कृधि सुष्ठाने रोदसी पुनानः ८९४

(दशभिः रश्मिभिः भूम प्र शास्ति) दसों अंगुलियोंसे इस बलशाली सोमको धारण किया जाता है ।

सोमरसका पान करनेसे मेधा बढती है, शरीरका बल बढता है, उत्साह बढता है । इसलिये आर्य लोग इसका पान करते थे। यह ' दिव्य ' है अर्थात् हिमालयकी उच्चसे उच्च शिखर पर होता है । भूमिपर भी होता है, पर जो सोम हिमालयके शिखर पर होता है वह उत्तम होता है ।

[२४] (८९१) (पवित्रेभिः पवमानः नृचक्षाः) **पवित्र करनेके साधनोंसे पवित्र होनेवाला यह मनुष्योंके कर्मोंका निरीक्षण करनेवाला है। यह (देवानां उत मर्त्यानां राजा) देवों और मर्त्योंका राजा है । (रयीणां रयिपतिः) धनोंका धनपति है । यह (इन्दुः द्विता भुवत्) सोम देवों और मानवोंमें रहता है और (सुभृतं चारु ऋतं भरत्) उत्तम भरण करनेवाले सुंदर ऋत-यज्ञ-का धारण करता है ।**

राजा देवों और मानवोंका निरीक्षण करे, धनोंका अपने पास संग्रह करे, सत्ययज्ञका धारण करे, मनुष्योंके कर्मोंका परीक्षण करे । सोमके वर्णनसे यहां राजाका वर्णन हुआ है ।

[२५] (८९२) हे सोम ! (अर्वान् इव) घोडेके समान (श्रवसे सातिं अच्छ) अन्न और धनके लिये तथा (इन्द्रस्य वायोः वीतिं अभि अर्ष) इन्द्र और वायुके सोमरसपानके लिये जाओ । (सः सहस्रा बृहतीः इषः नः दाः) वह तुम सोम सहस्रों प्रकारके बडे अन्नोंको हमें दे दो। तथा (पुनानः द्रविणोवित् भव) पवित्र होता हुआ हमारे लिये धन देनेवाला हो ।

सोमरस तैयार होनेपर इन्द्रादि देवोंको दिया जाता है और पश्चात् मनुष्य उसका पान करते हैं ।

[२६] (८९३) (देवाव्यः परिषिच्यमानाः सोमाः) देवोंकी तृप्ति करनेवाले, पात्रोंमें भरे हुए सोमरस (नः सुवीरं क्षयं धन्वन्तु) हमें उत्तम वीर पुत्रोंसे युक्त धन देवें । ये सोम (आयज्यवः) यज्ञके योग्य और द्युलोकमें भी पूजनीय (होतारः न मन्द्रतमाः) देवोंको बुलानेवालोंके समान अत्यन्त आनन्द देनेवाले (सुमतिं विश्ववाराः) शोभन बुद्धि देनेवाले और सब दुःखोंका निवारण करनेवाले हैं ।

[२७] (८९४) हे देव सोम ! (देवपानः देवताते महे प्सरसे) देवोंके पानके लिये योग्य तुम देव-यज्ञमें महान अन्नभक्षणके समय (पवस्व) प्रवाहित हो । हम (हिताः) तुम्हारे द्वारा सुरक्षित रखे हुए (समर्ये महः चित्) युद्धमें बडे शत्रुओंको भी (स्मसि हि) पराभूत करेंगे । (पुनानः रोदसी सुस्थाने कृधि) तुम पवित्र होकर द्यावा पृथिवी हमारे लिये उत्तम स्थान देनेवाले करो । हमें उत्तम कार्यक्षेत्र प्राप्त हो ।

२८ अश्वो न क्रदो वृषभिर्युजानः सिंहो न भीमो मनसो जवीयान् ।
अर्वाचीनैः पथिभिर्ये रजिष्ठा आ पवस्व सौमनसं न इन्दो ८९५

२९ शतं धारा देवजाता असृग्रन् त्सहस्रमेनाः कवयो मृजन्ति ।
इन्दो सनित्रं दिव आ पवस्व पुरएतासि महतो धनस्य ८९६

३० दिवो न सर्गा अससृग्रमह्नां राजा न मित्रं प्र मिनाति धीरः ।
पितुर्न पुत्रः क्रतुभिर्यतान आ पवस्व विशे अस्या अजीतिम् ८९७

१०८ । १४-१६ शक्तिर्वासिष्ठः ।

१ यस्य न इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ८९८

२ इन्द्राय सोम पातवे नृभिर्यतः स्वायुधो मदिन्तमः । पवस्व मधुमत्तमः ८९९

---

[२८] (८९५) हे (इन्दो) सोम! (वृषभिः युजानः) बलवान वीरोंके साथ संयुक्त होकर (अश्वः न क्रदः) घोडेके समान तू शब्द करता है। (सिंहः न भीमः) सिंहके समान तू भयंकर है (मनसः जवीयान्) मनसे भी अधिक वेगवान तू है। (ये रजिष्ठाः) जो मार्ग अत्यंत सरल हैं उन (अर्वाचीनैः पथिभिः) अर्वाचीन मार्गोंसे (नः सौमनसं आ पवस्व) हमारे लिये मनकी प्रसन्नताका प्रदान करो।

[२९] (८९६) हे (इन्दो) सोम! (देवजाताः शतं धाराः असृग्रन्) देवोंके लिये सेकडों धारा-ओंसे तुम प्रवाहित हो रहे हो। (कवयः एनाः सहस्रं मृजन्ति) कवि लोग इनकी सहस्रों धारा-ओंसे शुद्धि करते हैं। हे सोम! (दिवः सनित्रं आ पवस्व) द्युलोकसे सेवनीय धन हमें लाकर दो। क्योंकि तुम (महतः धनस्य पुर एता असि) बडे धनको सबसे प्रथम लानेवाले हो।

[३०] (८९७) (दिवः न अह्नां सर्गाः अससृग्रं) जिस तरह सूर्यकी दिन करनेवाली किरणें उत्पन्न होती हैं वैसी सोमकी धाराएं होती हैं। (धीरः राजा मित्रं न प्र मिनाति) धीर राजा मित्रका विनाश नहीं करता, वैसा सोम मित्रका नाश नहीं करता। (क्रतुभिः यतानः पुत्रः पितुः न) प्रयत्नोंसे यत्न करनेवाला पुत्र जैसा पिताको आनंद देता है। वैसा सोम आनंद देता है। (अस्यै विशे अजीतिं आ पवस्व) इस प्रजाके लिये विजयका मार्ग बताओ। सोमसे विजय प्राप्त होगा।

[१४] (८९८) (नः यस्य इन्द्रः पिबात्) हमारे सोमका पान इन्द्र करता है, (यस्य मरुतः) जिसका पान मरुत करते हैं, भग और अर्यमा जिसका पान करते हैं। (येन मित्रा वरुणा) जिससे मित्र और वरुण (इन्द्रं महे अवसे आ करामहे) इन्द्रको बडे संरक्षणके लिये सिद्ध करते हैं, उस सोमका रस हम निकाल रहे हैं।

[१५] (८९९) हे सोम! तुम (मधुमत्तमः) अत्यंत मधुर (मदिंतम) आनन्दवर्धक (सु-आयुधः) उत्तम आयुधोंसे युक्त, जिसके साथ उत्तम शस्त्र-धारी वीर रहते हैं, (नृभिः यतः) नेताओंसे युक्त रहनेवाला रस (इन्द्राय पातवे पवस्व) इन्द्रके पीनेके लिये प्रवाहित होते रहो।

३ इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश समुद्रमिव सिन्धवः ।
जुष्टो मित्राय वरुणाय वायवे दिवो विष्टम्भ उत्तमः ९००

ऋ० १०।१३७।७ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ।

१ हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि ९०१

ज्ञान और शौर्यकी तेजस्वीता ।

अथर्ववेद काण्ड ३ । १९
(ऋषिः- वसिष्ठः । देवता—विश्वेदेवाः, चन्द्रमाः, इन्द्रः)

१ संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं १ बलम् ।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येषामस्मि पुरोहितः ९०२
२ समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं १ बलम् ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाहम् ९०३

---

[३] (९००) (सिन्धवः समुद्रं इव) नदियां समुद्रके पास जैसी जाती हैं, उस तरह हे सोम ! (इन्द्रस्य हार्दि सोमधानं आ विश) इन्द्रके हृदयंगम सोमपात्रमें जाकर रहो। मित्र वरुण तथा वायुके लिये (जुष्टः) सेवनके योग्य और (दिवः उत्तमः विष्टम्भः) द्युलोकका उत्तम आधार स्तंभ होकर बैठो।

[१] (९०१) (वाचः पुरोगवी जिव्हा) वाणीको प्रथम प्रेरणा करनेवाली मेरी जिह्वा है। (ताभ्यां अनामयित्नुभ्यां) उन नीरोगिता करनेवाले (दस शाखाभ्यां हस्ताभ्यां) दश शाखावाले, दस अंगुलीरूपी शाखावाले दोनों हाथोंसे (त्वा उपस्पृशामसि) तुमको मैं स्पर्श करता हूं। इससे तुम्हारा रोग दूर होगा और तुम्हारा आरोग्य बढेगा।

हस्तस्पर्शसे रोग दूर करना

प्रथम अपनी वाणीसे रोगीको नीरोगिताकी सूचना देनी चाहिये। जैसे- ' हे मनुष्य ! तू अब नीरोग और स्वस्थ हो रहा है, मेरे हस्तस्पर्शसे तुम्हारा आरोग्य बढ रहा है।' इ०। पश्चात दोनों हाथोंकी अंगुलियोंसे रोगीको स्पर्श करना और जहां रोग होगा, वहांसे रोग दूर करनेके समान स्पर्श करना।

इस तरह हस्तस्पर्शसे करनेसे रोग दूर हो जाता है। और आरोग्य प्राप्त होता है। यह वसिष्ठकी विद्या है।

[१] (९०२) (मे इदं ब्रह्म संशितं) मेरा यह ज्ञान तेजस्वी हुआ है, और मेरा यह (वीर्यं बलं संशितं) वीर्य और बल तेजस्वी बना है। (संशितं क्षत्रं अजरं अस्तु) इनका तेजस्वी बना हुआ क्षात्र-बल कभी क्षीण न होनेवाला होवे, (येषां जिष्णुः पुरोहितः अस्मि) जिनका मैं विजयी पुरोहित हूं।

मैं जिस राष्ट्रका पुरोहित हूं उस राष्ट्रका ज्ञान मैंने तेजस्वी किया है और शौर्य वीर्य भी अधिक तीक्ष्ण किया है, जिससे इस राष्ट्रका क्षात्रतेज कभी क्षीण नहीं होगा।

[२] (९०३) (अहं एषां राष्ट्रं संस्यामि) मैं इनका राष्ट्र तेजस्वी करता हूं, इनका (ओजः वीर्यं बलं संस्यामि) बल, वीर्य और सैन्य तेजस्वी बनाता हूं। और (अनेन हविषा) इस हवनसे (शत्रूणां बाहून् वृश्चामि) शत्रुओंके बाहुओंको काटता हूं।

मैं इस राष्ट्रका तेज बढाता हूं और इसका शारीरिक बल, पराक्रम और उत्साह भी वृद्धिंगत करता हूं। इससे मैं शत्रुओंके बाहुओंको काटता हूं।

३ नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् ।
क्षिणामि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वानहम् ॥ ९०४

४ तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत ।
इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः ॥ ९०५

५ एषामहमायुधा सं स्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि ।
एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्ण्वे३षां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः ॥ ९०६

६ उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद् वीराणां जयतामेतु घोषः ।
पृथग् घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम् । देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ॥ ९०७

---

[३] (९०४) वे शत्रु (नीचैः पद्यन्ताम्) नीचे गिरें, (अधरे भवन्तु) अवनत हों, (ये नः मघवानं सूरिं पृतन्यात्) जो हमारे धनवान् और विद्वान् पर सेनासे चढाई करें। (अहं ब्रह्मणा अमित्रान् क्षिणामि) मैं ज्ञानसे शत्रुओंका क्षय करता हूं, और (स्वान् उन्नयामि) अपने लोगोंको उठाता हूं ।

जो शत्रु हमारे धनिकोंपर तथा हमारे ज्ञानियोंपर सैन्यके साथ हमला करते हैं वे अधोगतिको प्राप्त होंगे। क्योंकि मैं अपने ज्ञानसे शत्रुओंका नाश करता हूं और उसीसे अपने लोगोंको उन्नत करता हूं।

[४] (९०५) (परशोः तीक्ष्णीयांसः) परशुसे अधिक तीक्ष्ण, (उत अग्नेः तीक्ष्णतराः) और अग्निसे भी अधिक तीक्ष्ण, (इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसः) इन्द्रके वज्रसे भी अधिक तीक्ष्ण इनके अस्त्र हों (येषां पुरोहितः अस्मि) जिनका पुरोहित मैं हूं।

जिस राष्ट्रका मैं पुरोहित हूं उस राष्ट्रके शस्त्रास्त्र परशुसे अधिक तीक्ष्ण, अग्निसे भी अधिक दाहक, और इन्द्रके वज्रसे भी अधिक संहारक मैंने किये है।

[५] (९०६) (अहं एषां आयुधा संस्यामि) मैं इनके आयुधोंको उत्तम तीक्ष्ण बनाता हूं, (एषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि) इनका राष्ट्र उत्तम वीरतासे युक्त करके बढाता हूं, (एषां क्षत्रं अजरं जिष्णु अस्तु) इनका क्षात्रतेज अक्षय तथा जयशाली होवे, (विश्वेदेवाः एषां चित्तं अवन्तु) सब देव इनके चित्तको उत्साहयुक्त करें ।

मैं इनके शस्त्रास्त्रोंको अधिक तीक्ष्ण बनाता हूं, इनके राष्ट्रको उसमें उत्तम बीर उत्पन्न करके, बढाता हूं, इनके शौर्यको कभी क्षीण न होनेवाला और सदा विजयी बनाता हूं। सब देवता इनके चित्तोंको उत्साह युक्त करें।

[६] (९०७) हे (मघवन्) धनवान्! धनके (वाजिनानि उद्धर्षन्तां) बल उत्तेजित हों, (जयतां वीराणां घोषः उत् एतु) विजय करनेवाले वीरोंका शब्द ऊपर उठे । (केतुमन्तः उलुलयः घोषाः) झंडे लेकर हमला करनेवाले वीरोंके संघशब्दका घोष (पृथक् उत् ईरताम्) अलग अलग ऊपर उठे। (इन्द्रज्येष्ठा मरुतः देवाः) इन्द्रकी प्रमुखतामें मरुत् देव (सेनया यन्तु) अपनी सेनाके साथ चलें ।

हे प्रभो ! इनके बल उत्साहसे पूर्ण हों, इनके विजयी वीरोंका जयजयकारका शब्द आकाशमें भर जावे । झंडे उठाकर विजय पानेवाले इनके वीरोंके शब्द अलग अलग सुनाई दें। जिस प्रकार इन्द्रकी प्रमुखतामें मरुतोंकी सेना विजय प्राप्त करती है, उसी प्रकार इनकी सेना भी विजय कमावे ।

७ प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः ।
तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः १०८

८ अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
जयामित्रान् प्र पद्यस्व जह्येषां वरंवरं मामीषां मोचि कश्चन १०९

---

[७] (१०८) हे (नरः) लोगो ! (प्र इत) चलो, (जयत) जीतो, (वः बाहवः उग्राः सन्तु) तुम्हारे बाहु शौर्यसे युक्त हों। हे (तीक्ष्णेषवः) तीक्ष्ण बाणवाले वीरो ! हे (उग्रायुधाः उग्र-बाहवः) उग्र आयुध वालो और बलयुक्त भुजावा-लो ! (अ-बल-धन्वनः अबलान् हत) निर्बल धनुष्यवाले निर्बल शत्रुओंको मारो।

हे वीरो ! आगे बढो, विजय प्राप्त करो, अपने बाहु प्रतापसे युक्त करो, तीक्ष्ण बाणों, प्रतापी शस्त्रास्त्रों और समर्थ बाहुओंको धारण करके अपने शत्रुओंको निर्बल बनाकर उनको काट डालो।

[८] (१०९) हे (ब्रह्म संशिते शरव्ये) ज्ञानद्वारा तेजस्वी बने शस्त्र ! तू (अवसृष्टा परापत) छोडा हुआ दूर जा और (अमित्रान् जय) शत्रुओंको जीत लो, (प्र पद्यस्व) आगे बढ, (एषां वरं वरं जहि) इन शत्रुओंके मुख्य मुख्य वीरोंको मार डाल, (अमीषां कश्चन मा मोचि) इनमेंसे कोई भी न बच जाय।

ज्ञानसे तेजस्वी बना हुआ शस्त्र जब वीरोंकी प्रेरणासे छोडा जाता है तब वह दूर जाकर शत्रुपर गिरता है और शत्रुका नाश करता है। हे वीरो ! शत्रुपर चढाई करो और शत्रुके मुख्य मुख्य वीरोंको चुन चुनकर मार डालो, उनकी ऐसी कतल करो कि उनमेंसे कोई न बचे।

राष्ट्रीय उन्नतिमें पुरोहितका कर्तव्य।

राष्ट्रमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांच वर्ग होते हैं। उनमें ब्राह्मणोंका कर्तव्य पुरोहितका कार्य करना होता है। पूर्णहित करनेका नाम पुरोहितका कार्य करना है। यजमान-का पूर्णहित करनेवाला पुरोहित होना चाहिये। जब संपूर्ण राष्ट्रका विचार करना होता है उस समय सब राष्ट्रही यजमान है और सब ब्राह्मण जाति उस राष्ट्रके पुरोहितके स्थानपर होती है। इससे संपूर्ण राष्ट्रका पूर्ण हित करनेका भार सब पुरोहित वर्गपर आ जाता है। ज्ञानकी ज्योति सब राष्ट्रमें प्रज्वलित करके उस ज्ञानके द्वारा राष्ट्रका अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्ध करना पुरोहितका कर्तव्य है; यह कर्तव्य इस सूक्तमें स्पष्ट शब्दोंमें वर्णन किया है, राष्ट्रके ब्राह्मण इस सूक्तका मनन करें और अपना कर्तव्य जान कर उसको निभायें।

इस सूक्तका ऋषि वसिष्ठ है, और वसिष्ठ नाम ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणका सुप्रसिद्ध है। इस दृष्टिसे भी इस सूक्तका मनन ब्राह्म-णोंको करना चाहिये। अब सूक्तका आशय देखिये—

ब्राह्मतेजकी ज्योति।

राष्ट्रमें ब्राह्मतेजकी ज्योति बढाना और उस ज्योतिके द्वारा राष्ट्रकी उन्नति करनेका कार्य सबसे महत्त्वका और अत्यंत आवश्यक है। इस विषयमें इस सूक्तमें यह कथन है—

मे इदं ब्रह्म संशितम्। (मं० १)
ब्रह्मणा अमित्रान् क्षिणामि। (मं० ३)
उन्नयामि स्वान् अहम्। (मं० ३)
अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसंशिते। (मं० ८)
जय अमित्रान्०। (मं० ८)

"मेरे प्रयत्नसे इस राष्ट्रका यह ज्ञानतेज चमकता है। ज्ञानके प्रतापसे शत्रुओंका नाश करता हूं। और उसी ज्ञानसे मैं अपने राष्ट्रके लोगोंकी उन्नति करता हूं। ज्ञानके द्वारा उत्तेजित हुआ शस्त्र दूरतक परिणाम करता है, उससे शत्रुको जीत लो।"

ये मंत्र भाग राष्ट्रमें ब्राह्मतेजके कार्यका स्वरूप बताते हैं। ज्ञान राष्ट्रीय उन्नतिमें बडा भारी कार्य करता है। जगतमें अनेक राष्ट्र हैं उनमें वे ही राष्ट्र अग्रभागमें हैं कि जो ज्ञानसे विशेष संपन्न हैं। ज्ञान न होते हुए अभ्युदय होना अशक्य है। यदि उन्नतिका विरोधक कोई कारण होगा तो वह एकमात्र अज्ञान ही है। अज्ञानसे बंधन होता है और ज्ञानसे उस बंधनका नाश

होता है। इसलिये राष्ट्रमें जो ब्राह्मण होंगे उनका कर्तव्य है कि वे स्वयं ज्ञानी बनें और अपने राष्ट्रके सब लोगोंको ज्ञान संपन्न करें। क्षत्रियों वैश्यों और शूद्रोंको भी ज्ञान आवश्यक ही है। उनके व्यवसायोंको उत्तमतासे निभानेके लिये ज्ञानकी परम आवश्यकता है।

ज्ञानसे शत्रु कौन है और अपना हितकारी मित्र कौन है इसका निश्चय होता है। अपने ज्ञानसे राष्ट्रके शत्रुको जानना और उसको दूर करनेके लिये ज्ञानसे ही उपायकी योजना करना चाहिये। यह उपाय योजनाका कार्य करना ब्राह्मणोंका परम कर्तव्य है। शत्रुपर हमला किस समय करना, शत्रुके शस्त्रास्त्र कैसे हैं, उनसे अपने शस्त्रास्त्र अधिक प्रभावशाली किस रीतिसे करना, शत्रुके शस्त्रास्त्र जितनी दूरीपर प्रभाव कर सकते हैं उससे अधिक दूरीपर प्रभाव करनेवाले शस्त्रास्त्र कैसे निर्माण करना, इत्यादि बातें ज्ञानसे ही सिद्ध हो सकती है, अपने राष्ट्रमें इनकी सिद्धता करना ब्राह्मणोंका कर्तव्य है। अर्थात् ब्राह्मण अपने ज्ञानसे इसका विचार करें और अपने राष्ट्रमें ऐसी प्रेरणा करें कि जिससे राष्ट्रके अंदर उक्त परिवर्तन आ जावे। यही भाव निम्नलिखित मंत्रमें कहा है—

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते। (मं० ८)

" ज्ञानसे तीक्ष्ण बने शस्त्रास्त्र शत्रुपर गिरें। " इसमें ज्ञानसे उत्तेजित प्रेरित और तीक्ष्ण बने शस्त्र अधिक प्रभावशाली होनेका वर्णन है। अन्य देशोंके शस्त्रास्त्र देखकर, उनका वेग जानकर, और उनका परिणाम अनुभव करके जब उनसे अधिक वेगवान् और अधिक प्रभावशाली शस्त्रास्त्र अपने देशके वीरोंके पास दिये जायगे, तब अन्य परिस्थिति समान होनेपर अपना जय निश्चयसे होगा इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।

पुरोहितकी प्रतिज्ञा।

" जिस राष्ट्रका मैं पुरोहित हूं उस राष्ट्रका ज्ञान, वीर्य, बल, पराक्रम, शौर्य, वीर्य, धैर्य, विजयी उत्साह कभी क्षीण न हो। " (मं० १)

" जिस राष्ट्रका मैं पुरोहित हूं उस राष्ट्रका पराक्रम, उत्साह, वीर्य और बल मैं बढाता हूं और शत्रुओंका बल घटाता हूं॥ (मं० २)

" जो शत्रु हमारे धनी वैश्यों और ज्ञानी ब्राह्मणोंके ऊपर, अर्थात् हमारे देशके युद्ध न करनेवाले लोगोंपर, सैन्यके साथ हमला करेगा उसका नाश मैं अपने ज्ञानसे करता हूं और अपने राष्ट्रके लोगोंको मैं अपने ज्ञानके बलसे उठाता हूं। "(मं० ३)

" जिनका मैं पुरोहित हूं उनके शस्त्रास्त्र मैं अधिक तेज बनाता हूं। " (मं० ४)

" इनके शस्त्रास्त्र मैं अधिक तीक्ष्ण करता हूं। उत्तम वीरोंकी संख्या इस राष्ट्रमें बढाकर इस राष्ट्रकी उन्नति करता हूं। और इनका शौर्य बढाता हूं। " (मं० ५)

ये मंत्र भाग पुरोहितके राष्ट्रीय कर्तव्यका ज्ञान असंदिग्ध शब्दों द्वारा दे रहे हैं। पुरोहितके ये कर्तव्य है। पुरोहित क्षत्रियोंको क्षात्रविद्या सिखावे, वैश्योंको व्यापार व्यवहार करनेका ज्ञान देवे और शूद्रादिकोंको कारीगरीकी शिक्षा देवे, और ब्राह्मणोंको इस प्रकारके विशेष ज्ञानसे युक्त करे। इस रीतिसे चारों वर्णोंको तेजस्वी बनाकर संपूर्ण राष्ट्रका उद्धार अपने ज्ञानकी शक्तिसे करे। जो पुरोहित ये कर्तव्य करेंगे वेही वेदकी दृष्टिसे सच्चे पुरोहित है ! जो पंडित पुरोहितका कार्य कर रहे हैं वे इस सूक्तका विचार करें और अपने कर्तव्योंका ज्ञान प्राप्त करें।

युद्धकी नीति।

षष्ठ सप्तम और अष्टम इन तीन मंत्रोंमें युद्धनीतिका उपदेश इस प्रकार किया है—

" वीरोंके पथक अपने अपने झंडे उठाकर युद्धगीत गाते हुए और आनंदसे विजय सूचक शब्दोंका घोष करते हुए शत्रुसेनापर हमला करें और विजय प्राप्त करें। जिस प्रकार इन्द्रकी प्रमुखतामें मरुतोंके गण शत्रुपर हमला करते और विजय प्राप्त करते हैं, इसी प्रकार अपने राजाके तथा अपने सेनापतिके आधिपत्यमें रहकर हमारे वीर शत्रुपर हमला करें और अपना विजय प्राप्त करें। " (मं० ६)

" वीरो ! आगे बढो, तुम्हारे बाहू प्रभावशाली हों, तुम्हारे शस्त्र शत्रुकी अपेक्षा अधिक तीक्ष्ण हों, तुम्हारी शक्ति शत्रुकी शक्तिसे अधिक पराक्रम प्रकाशित करनेवाली हो। इस प्रकार युद्ध करते हुए तुम अपने निर्बल शत्रुको मार डालो। " (मं० ७)

" ज्ञानसे उत्तेजित हुए तुम्हारे शस्त्र शत्रुका नाश करें, ऐसे तीक्ष्ण शस्त्रोंसे शत्रुका तू पराभव कर। " (मं० ८)

इन तीन मन्त्रोंमें इतना उपदेश देकर पश्चात् इस अष्टम

तेजस्विताके साथ अभ्युदय।

अथर्व. कां० ३।२०

(ऋषिः — वसिष्ठः। देवता-अग्निः, मन्त्रोक्तदेवताः)

१ अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः।
तं जानन्नग्न आ रोहाधा नो वर्धया रयिम् ९१०

२ अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव।
प्र णो यच्छ विशां पते धनदा असि नस्त्वम् ९११

३ प्र णो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः।
प्र देवीः प्रोत सूनृता रयिं देवी दधातु मे ९१२

मंत्रके अन्तमें अत्यंत महत्त्वकी युद्धनीति कही है वे शब्द देखने योग्य हैं—

(१) जह्येषां वरं वरं,

(२) माऽमीषां मोचि कश्चन ॥ (मं० ८)

" इन शत्रुओंके मुख्य मुख्य प्रमुख वीरोंको मार दो और इनमेंसे कोई भी न बचे। " ये दो उपदेश युद्धके संबंधमें अत्यंत महत्त्वके हैं। शत्रुसेनाके पथकके जो संचालक और प्रमुख वीर हों उनका वध करना चाहिये। प्रमुख संचालकोंमेंसे कोई भी न बचे। ऐसी अवस्था होनेके बाद शत्रुकी सेना बडी आसानीसे परास्त होगी। यह युद्ध नीति अत्यंत मनन करने योग्य है।

अपनी सेनामें ऐसे वीर रखने चाहिये कि जो शत्रुके वीरोंको चुन चुन कर मारनेमें तत्पर हों। जब इन वीरोंके वेधसे शत्रुसेनाके मुखिया वीरोंका वध हो जावे, तब अन्य सेनापर हमला करनेसे उस शत्रुसैन्यका पराभव होनेमें देरी नहीं लगेगी।

जो पाठक राष्ट्रहितकी दृष्टिसे अपने कर्तव्यका विचार करते हैं वे इस सूक्तका मनन अधिक करें और राष्ट्रविषयक अपने कर्तव्य जानें और उनका अनुष्ठान करके अपने राष्ट्रका अभ्युदय करें।

[१] (९१०) हे अग्ने ! (अयं ते ऋत्वियः योनिः) यह तेरा ऋतुसे संबंधित उत्पत्ति स्थान है (यतः जातः अरोचथाः) जिससे प्रकट होकर तू प्रकाशित हुआ है। (तं जानन् आरोह) उसको जानकर ऊपर चढ (अध नः रयिं वर्धय) और हमारे लिये धन बढा।

हे अग्ने ! ऋतुओंसे संबंध रखनेवाला यह तेरा उत्पत्तिस्थान है, जिसमें जन्मते ही तू प्रकाशित हो रहा है। अपने उत्पत्तिस्थानको जानता हुआ तू उन्नत हो और हमारे धनकी वृद्धि कर।

[२] (९११) हे अग्ने (इह नः अच्छ वद) यहां हमसे अच्छे प्रकार बोल और (प्रत्यङ् नः सुमनाः भव) हमारे सन्मुख होकर हमारे लिये उत्तम मनवाला हो। हे (विशां पते) प्रजाओंके स्वामिन् ! (नः प्रयच्छ) हमें दान दे क्यों कि (त्वं नः धनदाः असि) तू हमारा धनदाता है।

हे अग्ने ! यहां स्पष्ट वाणीसे बोल, हमारे सन्मुख उपस्थित होकर हमारे लिये उत्तम मनवाला हो। हे प्रजाओंके पालक ! तू हमें धन देनेवाला है, इसलिये तू हमें धन दे।

[३] (९१२) (अर्यमा नः प्रयच्छतु) अर्यमा हमें देवे, (भगः बृहस्पतिः प्र प्रयच्छतु) भग और बृहस्पति भी हमें देवे। (देवीः प्र) देवियां हमें धन देवें। (उत सूनृता देवी मे रयिं प्र दधातु) और सरल स्वभाववाली देवी मुझे धन देवे।

अर्यमा, भग, बृहस्पति, देवीयां तथा वाग्देवी ये सब हमें धन देवें।

४ सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ९१३

५ त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय। त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय ९१४

६ इन्द्रवायू उभाविह सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असद् दानकामश्च नो भुवत् ९१५

७ अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ९१६

८ वाजस्य नु प्रसवे सं बभूविमेमा च विश्वा भुवनान्यन्तः ।
उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन् रयिं च नः सर्ववीरं नि यच्छ ९१७

---

[४] (९१३) राजा सोम, अग्नि, आदित्य, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा और बृहस्पति को (अवसे गीर्भिः हवामहे) हमारी रक्षाके लिये बुलाते हैं।

राजा सोम, अग्नि, आदित्य, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा और बृहस्पति की हम प्रार्थना करते हैं कि वे हमारी योग्य रीतिसे रक्षा करें।

[५] (९१४) हे अग्ने ! (त्वं अग्निभिः) तू अग्नियोंके साथ (नः ब्रह्म यज्ञं च वर्धय) हमारा ज्ञान और यज्ञ बढा । हे देव ! (त्वं नः दातवे दानाय रयिं चोदय) तू हमारे दानी पुरुषको दान देनेके लिये धन भेज ।

हे अग्ने ! तू अनेक अग्नियोंके साथ हमारा ज्ञान और हमारी कर्मशक्ति बढाओ। हे देव ! दान देनेवाले मनुष्यको दान देनेके लिये पर्याप्त धन दे ।

[६] (९१५) (उभौ इन्द्रवायू) दोनों इन्द्र और वायु (सु-हवौ) उत्तम बुलाने योग्य हैं इस लिये (इह हवामहे) यहां बुलाते हैं। (यथा नः सर्वः इत् जनः) जिससे हमारे संपूर्ण लोग (संगत्यां सुमनाः असत्) संगतिमें उत्तम मनवाले होवें (च नः) और हमारे लोग (दानकामः भुवत्) दान देनेकी इच्छा करनेवाले होवें।

हम इन्द्र वायु इन दोनोंकी प्रार्थना करते हैं जिससे हमारे सब लोग संगठनसे संगठित होते हुए उत्तम मनवाले बनें और दान देनेकी इच्छावाले होवें ।

[७] (९१६) अर्यमा, बृहस्पति, इन्द्र, वायु, विष्णु, सरस्वती और (वाजिनं सवितारं) वेगवान् सविताको (दानाय चोदय) हमें दान देनेके लिये प्रेरित कर ।

अर्यमा, बृहस्पति, इन्द्र, वायु, विष्णु, सरस्वती और बलवान् सविता ये सब हमें दान करनेके लिये ऐश्वर्य देवें।

[८] (९१७) (वाजस्य प्रसवे सं बभूविम) बलकी उत्पत्तिमें ही हम संगठित हुए हैं। (च इमा विश्वा भुवनानि अन्तः) और ये सब भुवन उसके बीचमें हैं । (प्रजानन्) जाननेवाला (अदित्सन्तं उत दापयतु) दान न देनेवालेको निश्चय पूर्वक दान देनेकेलिये प्रेरणा करे । (च नः सर्ववीरं रयिं नियच्छ) और हमें सब प्रकारके वीर भावसे युक्त धन देवे ।

बल उत्पन्न करनेके लिये हम संघ बनाते हैं, जैसे ये सब भुवन अंदरसे संघटित हुए हैं । यह जाननेवाला कंजूसको दान करनेकी प्रेरणा करे और हमें संपूर्ण वीर भावोंसे युक्त धन देवे ।

९ दुह्रां मे पञ्च प्रदिशो दुह्रामुर्वीर्यथाबलम्।
प्राप्येयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च ११८
१० गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माभ्युदिहि।
आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ११९

[९] (११८) (उर्वीः पञ्च प्रदिशः) ये बडी पांचों दिशाएं (यथाबलं मे दुह्रां) यथा शक्ति मुझे रस देवें। (**मनसा हृदयेन च**) **मनसे और हृदयसे (सर्वाः आकूतीः प्रापयेयम्) सब संकल्पोंको पूर्ण कर सकूं।**

ये बडी विस्तीर्ण पांचही दिशाएं हमें यथाशक्ति पोषक रस देवें, जिससे हम मनसे और हृदयसे बलवान् बनते हुए अपने संपूर्ण संकल्पोंको पूर्ण करेंगे।

[१०] (११९) (**गोसनिं वाचं उदेयं**) **इन्द्रियों** को प्रसन्नता करनेवाली वाणी मैं बोलूं। (**वर्चसा मां अभ्युदिहि**) तेजके साथ मुझे प्रकाशित कर। (**वायुः सर्वतः आ रुन्धाम्**) **प्राण मुझे सब ओर-से घेर रहे।** (**त्वष्टा मे पोषं दधातु**) **त्वष्टा मेरी पुष्टिको देता रहे।**

प्रसन्नताको बढानेवाली वाणी मैं बोलूंगा। तेजके साथ मुझे अभ्युदयको प्राप्त कर। चारों ओरसे मुझे प्राण उत्साहित करें और जगद्रचयिता देव मुझे सब प्रकार पुष्ट करें।

अग्निका आदर्श।

इस सूक्तमें अग्निके आदर्शसे मनुष्यके अभ्युदय साधन करनेके मार्गका उत्तम उपदेश किया है। इस सूक्तका ध्येय वाक्य यह है—

वर्चसा मा अभ्युदिहि। (मं० १०)

" तेजके साथ मेरा सब प्रकारसे उदय कर " यह हरएक मनुष्यकी इच्छा होनी चाहिये। यह साध्य सिद्ध होनेके लिये साधनके आवश्यक मार्ग इस सूक्तमें उत्तम प्रकार कहे हैं। उनका विचार करनेके पूर्व हम अग्निके आदर्शसे जो बात बताई है वह देखते हैं—

" यज्ञमें जो अग्नि लेते हैं, वह लकडियोंसे उत्पन्न करते हैं, लकडियां स्वयं प्रकाशित नहीं हैं, परंतु उनसे उत्पन्न होनेवाला अग्नि (**जातः अरोचथाः**। मं० १) उत्पन्न होते ही प्रकाशित होता है। पश्चात् वह हवन कुण्डमें रखते हैं, वहां वह (**रोह** मं० १) स्वयं बढता है और दूसरोंको भी प्रकाशित करता है। इस समय उसके चारों ओर ऋत्विज लोग (**गीर्भिः हवामहे**। मं० ४) मंत्र पाठ करते हैं और हवन करते हैं। इस समय इस अग्निके साथ (**अग्निः अग्निभिः**। मं० ५) अनेक हवन कुण्डोंमें अनेक अग्नि प्रज्वलित होते हैं और इससे (**ब्रह्म यज्ञं च वर्धय**। मं० ५) ज्ञान और यज्ञकी वृद्धि होती है। यज्ञमें सब लोग (**जनः संगत्यां सुमनाः**। मं० ६) मिलकर उत्तम विचारसे कार्य करते हैं। तथा (**प्रसवे संबभूविम**। मं० ८) ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये एक होकर कार्य करते हैं और इस प्रकारसे यज्ञसे तेजस्वी होकर अपना अभ्युदय सिद्ध करते हैं। "

सारांशसे यह यज्ञ प्रक्रिया है, इसमें लकडियोंसे उत्पन्न हुई छोटीसी अग्निकी चिनगारीका कितना यश बढता है और यह अग्नि अनेक मनुष्योंकी उन्नति करनेमें कैसा समर्थ होता है, यह बात पाठक देखें। यदि अग्निकी छोटीसी चिनगारीके तेजके साथ बढ जानेसे इतना अभ्युदय हो सकता है, तो मनुष्यमें रहनेवाली चैतन्यकी चिनगारी इसी प्रकार प्रकाशके मार्गमें चलेगी तो कितना अभ्युदय प्राप्त करेगी, इसका विचार पाठक स्वयं जान सकते हैं, इसीका उपदेश पूर्वोक्त अग्निके दृष्टान्तसे इस सूक्तमें बताया है।

उत्पत्तिस्थानका स्मरण।

सबसे प्रथम अपने उत्पत्तिस्थानका स्मरण करनेका उपदेश प्रथम मंत्रमें दिया है। " यह तेरा उत्पत्तिस्थान है, जहां उत्पन्न होते ही तू प्रकाशता है, यह जानकर स्वयं बढनेका यत्न कर और हमारी भी शोभा बढा। " (मं० १) यह उपदेश मनन करने योग्य है। उत्पत्ति स्थान कई प्रकारका होता है; अपना कुल, अपनी जाती, अपना देश यह तो स्थूल दृष्टिसे उत्पत्तिस्थान है। इस उत्पत्तिस्थानका स्मरण करके अपनी उन्नति

करना चाहिये। दूसरा उत्पत्तिस्थान आध्यात्मिक है जो प्रकृति-माता और परमपितासे संबंध रखना है, यह भी आध्यात्मिक उन्नतिके लिये मनन करने योग्य है। उत्पत्तिस्थानका विचार करनेसे " मैं कहांसे आया हूं और मुझे कहां पहुंचना है " इसका विचार करना सुगम हो जाता है। जहां कहीं भी उत्पत्ति हुई हो वहांसे अपनी शक्तिसे प्रकाशना, बढना और दूसरोंको प्रकाशित करना चाहिये।

(इह अच्छा वद) यहां सबके साथ सरल भाषण कर, **(प्रत्यङ् सुमनाः भव)** प्रत्येकके साथ उत्तम मनोभावनासे वर्ताव कर, अपने पास जो हो, वह दूसरोंकी भलाईके लिये **(प्रयच्छ)** दानकर, यह द्वितीय मंत्रके तीन उपदेश वाक्शुद्धि, मनःशुद्धि और आत्मशुद्धिके लिये अत्यंत उत्तम हैं। इसी मार्गसे इनकी पवित्रता हो सकती है।

आगेके दो मंत्रोंमें हमें किन किन शक्तियोंसे सहायता मिलती है इसका उल्लेख है।

सबसे प्रथम **(देवीः)** देवियां अथवा माताओंकी सहायता मिलती है, जिनकी कृपाके विना मनुष्यका उद्धार होना अशक्य है, तत्पश्चात् **(सूनृता देवी)** सरल वाणीसे सहायता प्राप्त होती है। मनुष्यके पास सीधे भावसे बोलनेकी शक्ति न हो तो उसकी उन्नति असंभव है। इसके नंतर **(अर्य+मन्= आर्य+मन्)** श्रेष्ठ मनके भावसे जो सहायता होती है वह अपूर्व ही है। इसके पश्चात् **(बृहस्पतिः)** ज्ञानी और **(ब्रह्मा)** ब्रह्मज्ञानी सहायता देते हैं, इनमें ब्रह्मा तो अंतिम मंजिल तक पहुंचा देता है। ये सब उन्नतिके उपाय योग्य **(राजा अवसे)** राजाकी रक्षामें ही सहायक हो सकते हैं, सुराज्य हो अर्थात् राज्यका सुप्रबंध हो, तो ही सब प्रकारकी उन्नति संभवनीय है अन्यथा अशक्य है। इसके साथ साथ **(सोमः आदित्यः सूर्यः)** वनस्पतियां, और सबका आदान करनेवाला सूर्य प्रकाश ये बल और आरोग्यवर्धक होनेसे सहायक हैं और अंतमें विशेष महत्त्वकी सहायता **(विष्णुः)** सर्वव्यापक देवताकी है, जो सर्वोपरि होनेसे सबका परिपालक और सबका चालक है और इसकी सहायता सभीके लिये अत्यंत आवश्यक है। जन्मसे लेकर मुक्तितक इस प्रकार सहायताएं मिलती हैं और इनकी सहायतायें लेता हुआ मनुष्य अपने परम उत्पत्तिस्थानसे यहां आकर फिर वहां ही पहुंचता है। इन शब्दोंसे सूचित होनेवाले अन्यान्य अर्थोंका विचार करके पाठक अधिक बोध प्राप्त कर सकते हैं।

एकत्र समुत्थान।

इस सूक्तमें एकताका पाठ स्पष्ट शब्दों द्वारा दिया है। **(वाजस्य नु प्रसवे संबभूविम ।** मं० ८) " बलकी उत्पत्तिके लिये हम अपनी संघटना करते हैं। " संभूयसमुत्थानके विना शक्ति नहीं होती इसलिये अपनी सहकारिता करके शक्ति बढानेका उपदेश यहां किया है। (**सर्वः जनः संगत्यां सुमनाः असत् ।** मं० ६) " सब मनुष्य सहकारिता करने लगेंगे उस समय परस्पर उत्तम मनके साथ व्यवहार करें। " ऐसा न करेंगे तो संघ शक्ति बढ नहीं सकती। यह उत्तम सौमनस्यका व्यवहार सिद्ध होनेके लिये (**ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।** मं० ५) ज्ञान और आत्मसमर्पणका भाव बढाओ। संघ-शक्तिके लिये इनकी अत्यंत आवश्यकता है। मनुष्यकी उन्नति तो व्यक्तिशः और संघशः होनी है, इसलिये पहले वैयक्तिक उन्नतिके उपदेश देकर पश्चात् सांघिक उन्नतिके निर्देश किये हैं। इस प्रकार दोनों मार्गोंसे उन्नति हुई तो ही पूर्ण उन्नति हो सकती है।

" **वाजस्य प्रसवे संबभूविम** " (मं. ८) यह मन्त्र बहुत दृष्टिसे मनन करने योग्य है। यहां " वाजः " शब्दके अर्थ देखिये- " युद्धमें जय, अन्न, जल, शक्ति, बल, धन, गति, वाणीका बल " ये अर्थ ध्यानमें धारण करनेसे इस मन्त्र भागका अर्थ इस प्रकार होता है- " हम युद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिये संगठन करते हैं; अन्न जल खाद्य पेय और धनादि ऐश्वर्योपभोगके पदार्थ प्राप्त करनेके लिये आपसकी एकता करते हैं; अपनी वाणीका बल बढानेके लिये अर्थात् हमारे मतका प्रभाव बढानेके लिये अपनी संघटना करते हैं, हमारे एक मतसे जो शब्द हम बोलेंगे वे निःसन्देह अधिक प्रभावशाली बनेंगे; तथा हमारी प्रगति और उन्नतिका वेग बढानेके लिये भी हम अपनी सहकारिता बढाते हैं। " पाठक इस मन्त्रका विचार करनेके प्रसङ्गमें इस अर्थका अवश्य मनन करें।

उन्नतिके लिये कंजूसीका भाव घातक है इसलिये कहा है कि (**अ-दित्सन्तं दापयतु ।** मं० ८) " कंजूसको भी, दान न देनेवालेको भी दान देनेकी ओर झुकाओ, " क्योंकि उदारतासे ही संघटना होती है और अनुदारतासे बिगडती है। अपने पास धन तो चाहिये परंतु वह (**सर्ववीरं रयिं नियच्छ ।** मं० ८) " संपूर्ण वीरत्वके गुणोंके साथ धन चाहिये। " अन्यथा कमाया हुआ धन कोई उठाकर ले जायगा इसलिये

कामाग्निका शमन।

अथर्व० कां० ३।२१

(ऋषिः— वसिष्ठः । देवता अग्निः)

१ ये अग्नयो अप्स्व१न्तर्ये वृत्रे ये पुरुषे ये अश्मसु ।
य आविवेशोषधीर्यो वनस्पतींस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ९२०

वीरताके साथ रहनेवाला धन कमानेका उपदेश यहां किया है।

इस रीतिसे उन्नत हुआ मनुष्यही कह सकता है कि " मुझे पांचों दिशाएं यथाशक्ति बल प्रदान करें और मनसे तथा हृदयसे जो संकल्प मैं करूं वे पूर्ण हो जांय। (मं० ९) " इसके ये संकल्प निःसंदेह पूर्ण हो जाते हैं।

हरएकके मनमें अनेक संकल्प उठते हैं, परंतु किसके संकल्प सफल होते हैं ? संकल्प तब सफल होंगे जब उन संकल्पोंके पीछे प्रबल शक्ति होगी, अन्यथा संकल्पोंकी सिद्धता होना असंभव है। इस सूक्तमें संकल्पोंके पीछे शक्ति उत्पन्न करनेके विषयका बडा विचार किया है इसका मनन पाठक अवश्य करें। सूक्तके प्रारंभसे यही विषय है—

" अपनी उत्पत्तिस्थानका विचार करके अपनी उन्नति करनेके लिये कमर कसके उठना, (मं० १); सीधा सरल भाषण करना, मनके भाव उत्तम करना (मं. २); ज्ञान और त्याग भाव बढाना। (मं. ५); प्राप्त धन उपकारमें लगाना (मं. ५) सब मनुष्योंको उत्तम विचार धारण करने, एकता बढाने और उपकार करनेकी ओर प्रवृत्त करना। (मं. ६); सामर्थ्य बढानेके लिये अपनी आपसकी संघटना करना (मं. ८); अपने अंदर जो संकुचित विचारके होंगे उनको भी उदार बनाना (मं. ८); इस पूर्व तैयारीके पश्चात् सब मानसिक संकल्पोंकी सफलता होनेका संभव है। " संकल्पोंके पूर्व इतनी सहायकशक्ति उत्पन्न होनी चाहिये। तब संकल्प सिद्ध होंगे। इसका विचार करके पाठक इस शक्तिको उत्पन्न करनेके कार्यमें जाय। इसके नंतर—" सब स्थानमें उसको प्राणशक्ति साक्षात् होती है, सब स्थानसे उसकी पुष्टि होती है, वह सदा प्रसन्नता बढानेवाली ही भाषा बोलता है इसलिये वह तेजस्विताके साथ अभ्युदयको प्राप्त होता है। (मं० १०)"

इस दशम मंत्रमें " गोसनिं वाचं उदेयं " यह वाक्य है। ' गो ' का अर्थ है— " इंद्रिय, गौ, भूमि, प्रकाश, स्वर्गसुख, वाणी। " इस अर्थको लेकर— " इंद्रियोंकी प्रसन्नता, वाणीकी प्रसन्नता, प्रकाशका विस्तार, मातृभूमिका सुख आदिकी सिद्धता होने योग्य मैं भाषण बोलता हूं " यह अर्थ इससे व्यक्त होता है। आगे " तेजस्विताके साथ अभ्युदय " प्राप्त करनेका विषय कहा है, उसके साथ यह " प्रसन्नता बढानेवाली वाणीसे बोलना " कितना आवश्यक है, यह पाठक यहां अवश्य देखें। इस प्रकार इस सूक्तके वाक्योंका पूर्वापर संबंध देखकर यदि पाठक मनन करेंगे तो उनको विशेष बोध प्राप्त हो सकता है।

इस सूक्तका संक्षेपसे यह विवरण है। पाठक जितना अधिक विचार करेंगे उतना अधिक बोध वे प्राप्त कर सकते हैं। अधिक विचार करनेके लिये आवश्यक संकेत इस स्थानपर दिये ही हैं, इसलिये यहां अधिक लेख बढानेकी आवश्यकता नहीं है। अग्निका वर्णन करनेके मिषसे किये हुए सामान्य निर्देश मनुष्यकी उन्नतिके निदर्शक कैसे होते हैं, इसका अनुभव पाठक यहां करें। वेदकी यह एक अपूर्व शैली है।

[१] (९२०) (ये अग्नयः अप्सु अन्तः) जो अग्नियां जलके अन्दर हैं, (ये वृत्रे) जो मेघमें, और (ये पुरुषे) जो पुरुषमें हैं, तथा (ये अश्मसु) शिलाओंमें हैं, (यः ओषधीः यः च वनस्पतीन् आविवेश) जो औषधियोंमें और जो वनस्पतियोंमें प्रविष्ट हैं (तेभ्यः अग्निभ्यः एतत् हुतं अस्तु) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे (

जो अग्नि जल, मेघ, प्राणियों अथवा मनुष्यों, शिलाओं और औषधिवनस्पतियोंमें हैं उनकी प्रसन्नताके लिये यह हवन है।

२ यः सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्य आविष्टो वयःसु यो मृगेषु ।
य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ९२१

३ य इन्द्रेण सरथं याति देवो वैश्वानर उत विश्वदाव्यः ।
यं जोहवीमि पृतनासु सासहिं तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ९२२

४ यो देवो विश्वाद् यमु काममाहुर्यं दातारं प्रतिगृह्णन्तमाहुः ।
यो धीरः शक्रः परिभूरदाभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ९२३

५ यं त्वा होतारं मनसाभि संविदुस्त्रयोदश भौवनाः पञ्च मानवाः ।
वर्चोधसे यशसे सूनृतावते तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ९२४

६ उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।
वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ९२५

---

[२] (९२१) (यः सोमे अन्तः, यः गोषु अन्तः) जो सोमके अन्दर, जो गौओंके अंदर, (यः वयःसु, यः मृगेषु आविष्टः) जो पक्षियोंमें और जो मृगोंमें प्रविष्ट है, (यः द्विपदः यः चतुष्पदः आविवेश) जो द्विपाद और चतुष्पादोंमें प्रविष्ट हुआ है, (तेभ्यः अग्निभ्यः एतत् हुतं अस्तु) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे।

जो अग्नि सोम, गौवों, पक्षियों, मृगादि पशुओं तथा द्विपाद चतुष्पादोंमें प्रविष्ट हुआ है उसके लिये यह हवन है।

[३] (९२२) (विश्वदाव्यः उत वैश्वानरः) सबको जलानेवाला परंतु सबका चालक अथवा हितकारी (यः देवः इन्द्रेण सरथं याति) जो देव इन्द्रके साथ एक रथपर बैठकर चलता है (यं पृतनासु सासहिं जोहवीमि) जो युद्धमें विजय करनेवाला है इसलिये जिसकी मैं प्रार्थना करता हूं (तेभ्यः०) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे।

सबको जलाकर भस्म करनेवाला परंतु सबका संचालक जो यह देव इन्द्रके साथ रथपर बैठकर भ्रमण करता है, जो युद्धमें विजय प्राप्त करानेवाला है उस अग्निके लिये यह हवन है।

[४] (९२३) (यः विश्वाद् देवः) जो विश्व-का भक्षक देव है, (यं उ कामं आहुः) जिसको "काम" नामसे पुकारते हैं, (यं दातारं प्रतिगृह्णन्तं आहुः) जिसको देनेवाला और लेनेवाला भी कहा जाता है, (यः धीरः शक्रः परिभूः अदाभ्यः) जो बुद्धिमान्, शक्तिमान्, भ्रमण करनेवाला और न दबनेवाला कहते हैं (तेभ्यः०) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे।

जो अग्नि विश्वका भक्षक है और जिसको "काम" कहते हैं, जो देनेवाला और स्वीकारनेवाला है, और जो बुद्धिमान, समर्थ, सर्वत्र जानेवाला और न दबनेवाला है, उस अग्निके लिये यह हवन है।

[५] (९२४) (त्रयोदश भौवनाः पञ्च मानवाः) त्रयोदश भुवन और पांच मनुष्यजातियां (यं त्वा मनसा होतारं अभि संविदुः) जिस तुझको मनसे होता अर्थात् दाता मानते हैं, (वर्चोधसे) तेजस्वी (सूनृतावते) सत्य भाषी और (यशसे) यशस्वी तुझे और (तेभ्यः०) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे।

तेरह भुवनोंका प्रदेश और मनुष्यकी ब्राह्मण क्षत्रियादि पांच जातियां इसी अग्निको मनसे दाता मानती हैं, तेजस्वी, सत्यवाणीके प्रेरक, यशस्वी उस अग्निके लिये यह अर्पण है।

७ दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं ये विद्युतमनुसंचरन्ति ।
ये दिक्ष्व१न्तर्ये वाते अन्तस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत्
८ हिरण्यपाणिं सवितारमिन्द्रं बृहस्पतिं वरुणं मित्रमग्निम् ।
विश्वान् देवानङ्गिरसो हवामह इमं क्रव्यादं शमयन्त्वग्निम्
९ शान्तो अग्निः क्रव्याच्छान्तः पुरुषरेषणः ।
अथो यो विश्वदाव्य१स्तं क्रव्यादमशीशमम्
१० ये पर्वताः सोमपृष्ठा आप उत्तानशीवरीः ।
वातः पर्जन्य आदग्निस्ते क्रव्यादमशीशमन्

---

[६] (९१५) (उक्षान्नाय वशान्नाय) जो बैलके लिये और गौके लिये अन्न होता है और (सोम-पृष्ठाय) औषधियोंको पीठपर लेता है उस (वेधसे) ज्ञानीके लिये और (वैश्वानरज्येष्ठेभ्यः तेभ्यः०) सब मनुष्योंके हितकारी श्रेष्ठ उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे।

जो बैलको और गौको अन्न देता है, जो पीठपर औषधियों-को लेता है, जो सबका धारक या उत्पादक है, उस सब मानवों-में श्रेष्ठरूप अग्निके लिये यह अर्पण है।

[७] (९१६) (हे दिवं अन्तरिक्षं अनु, विद्युतं अनु संचरन्ति) जो द्युलोक और अंतरिक्षके अन्दर और विद्युतके अंदर भी अनुकूलतासे संचार करते हैं, (ये दिक्षु अन्तः, ये वाते अन्तः) जो दिशाओंके अंदर और वायुके अंदर हैं (तेभ्यः अग्निभ्यः) उन अग्नियोंके लिये यह हवन होवे।

द्युलोक, अन्तरिक्ष, विद्युत्, दिशाएं, वायु आदिमें जो रहता है उस अग्निके लिये यह अर्पण है।

[८] (९१७) (हिरण्यपाणिं सवितारं) सुवर्ण-भूषण हाथमें धारण करनेवाले सविता, इन्द्र, बृहस्पति, वरुण, मित्र, अग्नि, विश्वेदेव और आंगिरसोंकी (हवामहे) प्रार्थना करते हैं कि वे (इमं क्रव्यादं अग्निं शमयन्तु) इस मांसभोजी अग्निको शान्त करें।

सविता, इन्द्र, बृहस्पति, वरुण, मित्र, अग्नि, और आंगिरस आदि सब देवोंकी हम प्रार्थना करते हैं कि वे सब देव इस मांस भक्षक अग्निको शान्त करें।

[९] (९१८) (क्रव्याद् अग्निः शान्तः) मांस भक्षक अग्नि शान्त हुआ, (पुरुषरेषणः शान्तः) मनुष्य हिंसक अग्नि शान्त हुआ (अथ यः विश्वदाव्यः) और जो सबको जलानेवाला अग्नि है (तं क्रव्यादं अशीशमम्) उस मांसभक्षक अग्निको मैंने शान्त किया है।

यह मांसभोजी पुरुषनाशक और सब जगत्को जलानेवाला अग्नि शांत हुआ है, मैंने इसको शांत किया है।

[१०] (९१९) (ये सोमपृष्ठाः पर्वताः) जो वनस्पतियोंको पीठपर धारण करनेवाले पर्वत हैं, (उत्तानशीवरीः आपः) ऊपरको जानेवाले जो जल हैं, (वातः पर्जन्यः) वायु और पर्जन्य (आत् अग्निः) तथा जो अग्नि है (ते) वे सब (क्रव्यादं अशीशमम्) मांसभोजी अग्निको शान्त करते हैं।

जहां सोमादि वनस्पतियां हैं ऐसे पर्वत, ऊपरकी गतिसे चलनेवाले जलप्रवाह; वायु और पर्जन्य तथा अग्नि ये सब देव मांस भक्षक अग्निको शांत करनेमें सहायता देते हैं।

कामाग्निका स्वरूप

इस सूक्तमें कामाग्निको शान्त करनेका विधान है। कामको अग्निकी उपमा देकर अथवा अग्निके वर्णनके मिषसे कामको शान्त करनेका वर्णन इस सूक्तमें बडा ही मनोरंजक है। अ[illegible]

सूक्त " बृहच्छान्तिगण " में गिना है, सचमुच कामका शमन करना ही " बृहच्छान्ति " स्थापित करना है। यह सबसे बडा कठिन और कष्ट साध्य कार्य है। इस सूक्तमें जो अग्नि है वह ' क्रव्याद ' अर्थात् कच्चा मांस खानेवाला है, साधारण लोग समझते है कि इस सूक्तमें मुर्दे जलानेवाले अग्निका वर्णन है, परंतु यह मत ठीक नहीं है। काम रूप अग्निका वर्णन इस सूक्तमें है और यही कामरूप अग्नि बडा मनुष्यभक्षक है। जितना अग्नि जलाता है। उससे सहस्रगुणा यह काम जलाता है, यह बात पाठक विचारकी दृष्टिसे देखेंगे तो जान सकते हैं। इसलिये इस सूक्तके अग्निका स्वरूप पहले हम निश्चित करते हैं। इसका स्वरूप बतानेवाले जो अनेक शब्द इस सूक्तमें हैं उनका विचार अब करते हैं—

१ यो देवो विश्वाद् यं उ कामं आहुः। (मं० ४)= जो अग्निदेव सब जगत्को जलानेवाला है और जिसको 'काम' कहते हैं।

इस मंत्रभागमें स्पष्ट कहा है कि इस सूक्तमें जो अग्नि है वह " काम " ही है। नाम निर्देश करनेके कारण इस विषयमें किसीको शंका करना भी अब उचित नहीं है। तथापि निश्चय की दृढताके लिये इस सूक्तके अन्य मंत्र भाग अब देखिये—

२ क्रव्याद् अग्निः। (मं० ९)=मांस भक्षक अग्नि।

३ पुरुषरेषणः अग्निः। (मं० ९)=पुरुषका नाशक (काम) अग्नि।

कामकी प्रवलतासे मनुष्यका शरीर सूख जाता है और इस कामके प्रकोपसे कितने मनुष्य सह परिवार नष्ट भ्रष्ट होगये हैं यह पाठक यहां विचारकी दृष्टिसे मनन करें, तो इन मंत्र भागोंका गंभीर अर्थ ध्यानमें आसकता है। इस दृष्टीसे—

४ विश्वाद् अग्निः। (मं ४, ९)=विश्वका भक्षक (काम) अग्नि।

यह बिलकुल सत्य है। भगवद्गीतामें कामको **" काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः। महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥ '** (भ० गी० ३।३७) यह काम बडा (महाशनः) खानेवाला है। " महाशन (महा-- अशनः) और विश्वाद् (विश्व--अद्) " ये दोनों एक ही भाव बतानेवाले शब्द हैं। सचमुच काम बडा खानेवाला है, इसकी कभी तृप्ति होती ही नहीं, कितना ही खानेको मिले यह सदा अतृप्त ही रहता है, इसका पेट सब जगत्को खाजानेसे भी भरता नहीं, इसी अर्थको बतानेवाला यह शब्द है—

५ विश्व-दाव्यः (मं० ३, ९) = सबको जलानेवाला (काम अग्नि)

यह काम सचमुच सबको जलानेवाला है, जब यह काम मनमें प्रबल होता है, तब यह अंदरसे जलाने लगता है। ब्रह्मचर्य धारण करनेवाला मनुष्य अंदरसे बढने लगता है और कामाग्निको अपने अंदर बढानेवाला मनुष्य अंदरसे जलने लगता है!! जिसका अंतःकरण ही जलता रहता है, उसके लिये मानो सब जगत् ही जलने लगता है। जिसके मनमें कामाग्निकी ज्वालाएं भडक उठती है, उसको न जल शांति दे सकता है, न चंद्रमाकी अमृत पूर्ण किरणें शांति दे सकती हैं, वह तो सदा अशांत और संतप्त होता जाता है ऐसी इस कामाग्निकी दाहकता है!! इसके सामने यह अग्नि क्या जला सकता है। कामाग्निकी दाहकता इतनी अधिक है, कि उसके सामने यह भौतिक अग्नि मानो शान्त ही है और इसीलिये मंत्र आठमें " इस अग्निको कामाग्निकी शान्ति करनेको कहा है? " यदि यह अग्नि कामाग्निसे शान्त न हो तो कामाग्निको शान्त कैसे कर सकता है?

इस प्रकार इसका गुणवर्णन करनेवाले जो विशेषण इस सूक्तमें आये हैं, वे इसका स्वरूप निश्चित करनेमें बडे सहायक है। इनके मननसे निश्चय होता है, कि इस सूक्तमें वर्णित हुआ अग्नि साधारण भौतिक अग्नि नहीं है, प्रत्युत यह कामाग्नि है। भौतिक अग्निका वाचक अग्नि शब्द स्वतंत्र रीतिसे अष्टम मन्त्रमें आया है, इसका विचार करनेसे भी इस सूक्तमें वर्णित अग्निका स्वरूप निश्चित होजाता है।

काम और इच्छा।

" काम " शब्द जैसा काम विकारका वाचक है उसीप्रकार इच्छा, कामनाका भी वाचक है। वस्तुतः देखा जाय तो ये काम, कामना और इच्छा मूलतः एक ही शक्तिके वाचक हैं। भिन्न भिन्न इन्द्रियोंके साथ सम्बन्ध हो जानेसे एकही इच्छा शक्तिका रूप जैसा कामविकारमें प्रगट होता है और वैसाही अन्य इंद्रियोंके साथ सम्बन्ध होनेसे कामनाके रूपमेंभी प्रगट होता है। परन्तु इनके अन्दर घुसकर देखा जाय तो " मुझे चाहिये " इस एक इच्छाके सिवाय दूसरा इसमें कुछ भी नहीं है, अपने अन्दर कुछ न्यूनता है, उसकी पूर्तीके लिये बाहरसे किसी पदार्थकी प्राप्ति करना चाहिये, वह बाह्य पदार्थ प्राप्त होनेसे मैं पूर्ण हो जाऊंगा। इत्यादि प्रकारकी इच्छाही " काम अथवा कामना " है। यही इच्छा सबको चला रही है, इस लिये इसको विश्वकी चालक शक्ति कहा है देखिये—

वैश्वानरः (विश्व—नेता)। (मं० ६)

" यह (विश्व-नर) विश्वका नेता अर्थात् विश्वका चालक (काम) है। विश्वको चलानेवाली यह इच्छाशक्ति है। यह कामशक्ति न हो तो संसारका चलना असम्भव है। पदार्थ मात्रमें कमसे कम चेतन और अर्ध चेतन जगतमें— यह स्पष्ट दिखाई देती है। इस विषयमें प्रथम और द्वितीय मंत्रका कथन स्पष्ट है।

" इस कामरूप अग्निके अनेक रूप हैं और वे जल, मेघ, पत्थर, औषधि वनस्पति, सोम, गौ, पक्षी, पशु, द्विपाद चतुष्पाद, मनुष्य आदि सबमें है।" (मं० १, २) तथा " पृथिवी, अन्तरिक्ष, विद्युत्, द्युलोक, दिशा, वायु, आदिमें भी हैं। " (मं० ७)

इस मंत्रसे स्पष्ट होजाता है कि यह कामाग्नि पत्थर जल औषधियोंसे लेकर मनुष्यों तक सब सृष्टिमें विद्यमान है। औषधियां बढनेकी इच्छा करती हैं, वृक्ष फलना चाहते हैं, पक्षी उडना चाहते हैं, मनुष्य जगत् को जीतना चाहता है इस प्रकार हरएक पदार्थ अपनी शक्तिको और अपने अधिकार क्षेत्रको फैलाना चाहता है। यही इच्छा है और यही काम है। यही जब जननेन्द्रियके साथ अपना संबंध जोडाता है तब उसको कामविकार कहा जाता है, परंतु मूलतः यह शक्ति वही है, जो पहले इच्छाके नामसे प्रसिद्ध थी। यही स्वार्थकी कामना " गाय और बैलोंको पालती है और उनको खिलाती पिलाती है, औषधियोंकी पालना करती है। " (मं० ६)

कामकी दाहकता

वस्तुतः भौतिक अग्नि जलाती है, ऐसा अनुभव हरएकको आता है, और काम या इच्छाकी वैसी दाहकता नहीं है ऐसा भी सब मानते हैं, परंतु साधारण इच्छा क्या, कामना क्या और कामविकार क्या इतने अधिक दाहक हैं, कि उनकी दाहकताके साथ अग्निकी दाहकता कुछ भी नहीं है !!

राज्य बढानेकी इच्छा कई राज्यचालकोंमें बढ जानेके कारण पृथ्वीके ऊपरके कई राष्ट्रोंको पारतंत्र्यकी अग्नि जला रही है, इस स्वार्थकी इच्छाके कारण इतने भयंकर युद्ध हुए हैं और उनमें मनुष्य इतने अधिक मर चुके हैं कि उतने अग्निकी दाहकतासे निःसंदेह मरे नहीं हैं। इसीलिये इसको तृतीय मंत्रमें (पृतनासु सासहिं) अर्थात् युद्धमें विजयी कहा है। किसी भी पक्षकी जीत हुई तो इसीकी वह जीत होती है !!!

एक समाज दूसरी समाजको अपने स्वार्थके कारण दबा रहा है, ऊपर उठने नहीं देता है, दबी जातियोंसे जितनाका चाहे स्वार्थसाधन किया जा रहा है, यह एकही स्वार्थकी कामनाका ही प्रताप है। धनी लोग निर्धनोंको दबा रहे हैं, अधिकारी वर्ग प्रजाको दबा रहा है, एक समर्थ राष्ट्र दूसरे निर्बल राष्ट्रको दबा देता है, इसी प्रकार एक भाई दूसरे भाईकी चीज छीनता है, ये सब कामके ही रूप हैं, जो मनुष्योंको अंदरही अंदरसे जला रहे हैं।

आंख सुंदर रूपकी कामना करता है, कान मधुरस्वरकी अभिलाषा करता है, जिव्हा मधुर रसोंकी इच्छुक है, इसी प्रकार अन्यान्य इंद्रियां अन्यान्य विषयोंको चाहती हैं। इनके कारण जगत्में जो विध्वंस और नाश हो रहे हैं, वे किसीसे छिपे नहीं हैं। इतनी विनाशक शक्ति इस भौतिक अग्निमें कहां है ?

काम क्रोध लोभ मोह मद और मत्सर ये मनुष्यके छः शत्रु हैं, इन शत्रुओंमें सबसे मुख्य शत्रु " काम " है, सबसे बढकर इसके अंदर विनाशकता है। यह प्रेमसे पास आता है, सुख देनेका प्रलोभन देता है और कुछ सुख पहुंचता भी है। परंतु अंदर अंदरसे ऐसा काटता है, कि कट जानेवालेको अपने कट जानेका पता तक नहीं लगता !!! इस कामविकाररूपी शत्रुकी विनाशकता सब शास्त्रोंमें प्रतिपादन की है। हरएक धर्म पुस्तक इससे बचनेका उपदेश कर रहा है।

जिस समय काम विकारकी ज्वाला मनमें भडक उठती है, उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि खून उबल रहा है। खूनके उबलनेका भान स्पष्ट होता है, शरीर गर्म हो जाता है, मस्तिष्क तपता है, अवयव शिथिल हो जाते हैं, मस्तककी विचार शक्ति हट जाती है और एक ही काम मनमें राज करने लगता है। खूनको पीसता है, शक्तीको नष्ट करता है, वीर्यका नाश करता है और आयुका क्षय करता है। ये सब लक्षण इसकी दाहकताके हैं। इसकी यह विध्वंसक शक्ति देखकर पाठक ही विचार कर सकते हैं कि इसकी विनाशकताकी अग्निके साथ क्या तुलना हो सकती है। इसलिये मंत्रमें कहा हुआ विशेषण (विश्व-दाव्यः) जगत्को जलानेवाला इसके अंदर बिलकुल सार्थ होजाता है !!

इस सबका विचार करके पाठक " कामकी दाहकता " जानें और इसकी दाहकतासे अपने आपको बचानेका उपाय करें।

न दबनेवाला।

चतुर्थ मंत्रमें इसके विशेषण " **विश्वाद्, दाता, प्रति-**

गृह्णन्, धीरः, शक्रः, परिभूः, अदाभ्यः " आये हैं और इसीमें इसका नाम (यं कामं आहुः) " काम " करके कहा है। अर्थात् इसी कामाग्निके ये गुणबोधक विशेषण हैं। इसलिये इनके अर्थ देखिये—

" यह काम (विश्वाद्) जगत्को खानेवाला, (दाता) दान देनेवाला, (प्रतिगृह्णन्) आयुष्यादि लेनेवाला, (धीरः) धैर्य देनेवाला, (शक्रः) शक्तिशाली, (परिभूः) सबसे बढकर होनेवाला, (अदाभ्यः) न दबनेवाला है। (मं० ४)"

विचार करनेपर ये विशेषण कामके विषयमें बडे सार्थ है ऐसा ही प्रतीत होगा। जिस समय मनमें काम उत्पन्न होता है उस समय बुद्धीको मलिन करता है, अपनी इच्छा तृप्त करनेके लिये आवश्यक धैर्य अथवा साहस उत्पन्न करता है, अन्य समय भीरु दिखाई देनेवाला मनुष्य भी कामविकारकी लहरमें बडे साहसके कर्म करने लगता है, जब यह मनमें बढता है तब सब अन्य भावनाओंको दबाकर अपना अधिकार सबपर जमा देता है, दबानेका यत्न करनेपर भी यह उछलकर अपना प्रभाव दिखाई देता है! इस प्रकार पूर्वोक्त विशेषणोंका आशय यहां विचार करनेसे स्पष्ट हो सकेगा। इसके दाता और प्रतिग्रहीता (अथर्व ३।२९।७ में भी "**कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता** " कहा है) ये दो विशेषण भी विशेष मनन करने योग्य हैं। यह किंचित् सा सुख देता है और बहुत सा वीर्य हरण करता है, ये अर्थ पूर्वापर संगतिसे यहां अन्वर्थक दिखाई देते हैं। साधारण कामनाके अर्थमें देने और लेनेवाला कामनासे ही प्रवृत्त होता है, इसलिये यह काम ही देनेवालेको दानमें और लेनेवालेको लेनेमें प्रवृत्त करता है, यह मंत्रका आशय भी स्पष्ट ही है।

पंचम मंत्रमें " त्रयोदश भुवनोंमें रहनेवाले पंचजन इसको मनसे मानते हैं, दाता करके पूजते हैं " ऐसा कहा है। संपूर्ण जनता कामकी ही उपासना करती है यह बात इस मंत्रमें कही है। कई विरक्त संत महन्त इस कामको अपने आधीन करके परमात्मोपासक होते हैं, अन्य संसारी जन तो कामको ही अपने सर्वस्वका दाता मानते हैं। इस प्रकार इस कामने ही सब जगत् पर अपना अधिकार जमाया है। जनता समझती है कि (वर्चः) तेज (यशः) यश और (सूनृतं) सत्य आदि सब कामके प्रभावसे ही सफल और सुफल होता है। सब लोग जो संसारमें मग्न हैं, इसीकी प्रेरणासे चले हैं मानो इसीके वेगसे घूम रहे हैं। जो सत्पुरुष इसके वेगसे मुक्त होकर इस कामको जीत लेता है वही श्रेष्ठ होता हुआ मुक्तिका अधिकारी होता है, मानो इसके वेगसे छूट जाना ही मुक्ति है। परंतु कितने थोडे लोग इसके वेगसे अपने आपको मुक्त करते हैं? यही इस सूक्तके मननके समय विचार करने योग्य बात है।

इन्द्रका रथ।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि " यह काम इन्द्रके रथपर बैठकर (इन्द्रेण सरथं याति) जाता है। " (मं. ३) यह देखना चाहिये कि इन्द्रका रथ कौनसा है? " इन्द्र " नाम जीवात्माका है और उसका रथ यह शरीरही है। इस विषयमें उपनिषद्का वचन देखिये—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्॥
(कठ उ० ३।४)

" आत्मा रथमें बैठनेवाला है, उसका रथ यह शरीर है और इंद्रियां उस रथके घोडे हैं, जो विषयोंमें घूमते हैं। " इस वर्णनसे इन्द्रके रथका पता लग सकता है। इस उपनिषद्वचनके " इन्द्रिय " पदका अर्थ " इन्द्रकी शक्ति " है। हमारे इन्द्रिय इन्द्रकी शक्तियां ही हैं, यह देखनेसे आत्माही इन्द्र है इस विषयमें निश्चय हो सकता है।

इस इन्द्र अर्थात् आत्माके शरीर रूपी रथमें यह " काम " बैठता है यह विधान तृतीय मंत्रका है—

यः इंद्रेण सरथं याति। (मं० ३)

" जो कामरूप अग्नि इन्द्रके रथपर बैठकर जाता है " इस वाक्यका अर्थ अब स्पष्ट हुआ ही होगा। पाठक जान सकते हैं कि इस शरीरमें जैसा जीवात्मा है अथवा इन्द्र है, उसी प्रकार काम भी है, दोनों इसको चलानेवाले हैं। स्थूल दृष्टिसे देखा जाय तो काम अर्थात् इच्छाही इसको चला रही है इस प्रकार इस शरीरमें कामकी स्थिति है।

कामरूपी यह अग्नि प्राणियोंके शरीरमें जल रही है इसको अधिक प्रज्वलित करना उचित नहीं, प्रत्युत इसको जहांतक प्रयत्न हो सकता है, उतना प्रयत्न करके शांत करनेकाही उपाय करना चाहिये। इसको शांत करनेका उपाय अब देखिये-

काम शांतिका उपाय ।

नवम मंत्रमें इस कामाग्निके शांत हो जानेका विधान है । देखिये वह मंत्र—

शांतो अग्निः क्रव्याच्छान्तः पुरुषरेषणः ।
अथो यो विश्वदाव्यस्तं क्रव्यादमशीशमम् ॥

(मं० ९)

" यह मांसभक्षक कामरूपी अग्नि शांत हुआ, यह मनुष्यका नाशक कामरूपी अग्नि शांत हुआ, जो यह सबको जलानेवाला कामाग्नि है उसको मैंने शांत किया है। " इस मंत्रमें इस कामाग्निको मैंने शांत किया ऐसा कहा है, इस विधानसे शांत करनेका कुछ उपाय है यह निःसन्देह सिद्ध होता है। यदि एक मनुष्य इसको शांत कर सकता है तो अन्य मनुष्य भी उसी मार्गसे जाकर अपने शरीरमें जलते रहनेवाले इस कामाग्निको शांत कर सकते हैं। हरएकके शरीरमें यह कामाग्नि जलता है इसलिये हरएकको चाहिये कि यह प्रयत्न करके इसको शांत करनेका पुरुषार्थ करें और आत्मिक शांति प्राप्त करें। इसको शांत करनेका उपाय शेष रहे अष्टम मंत्रके भागमें और नवम मंत्रमें कहा है—

" हिरण्यपाणि सविता, इन्द्र, बृहस्पति, वरुण, मित्र, अग्नि, विश्वेदेव, आङ्गिरस, इनका हम यजन करते हैं, ये इस मांस भक्षक कामाग्निको शांत करें " ॥ (मं० ८)

" सोमवल्ली जिनपर उगती है वे पर्वत, ऊपर गमन करनेवाले जल, वायु, पर्जन्य और अग्नि ये इस मांस भक्षक कामाग्निको शांत करें ॥ (मं० १०) "

इन दो मंत्रोंमें जो मार्ग कहा है वह कामाग्नि शान्त करनेवाला है। ये मन्त्र उपायकथन करनेके कारण अत्यन्त महत्त्वके हैं और इनका इसी कारण अधिक मनन करना। चाहिये इन दो मन्त्रोंमें जो उपाय कहे हैं, उनका क्रमपूर्वक चिन्तन अब कहते हैं-

१ सोमपृष्ठाः पर्वताः—जिन पर्वतोंपर सोमवल्ली अथवा अन्यान्य औषिधियां उगती हैं वे पर्वत कामाग्नि शान्त करनेमें सहायक होते हैं। इसमें पहली बात तो उन पर्वतोंका शान्त जलवायु कामको भडकने नहीं देता है। शीत प्रदेशकी अपेक्षा उष्ण प्रदेशमें कामाग्निकी ज्वाला शीघ्र और अधिक भडक उठती है। उष्ण देशके लोग भी इसी कारण छोटी आयुमें कामाग्निसे उद्दीपित होते हैं। इस विषयमें दूसरी बात यह है कि सोम आदि शीतवीर्यवाली औषधियां सेवन करनेसे भी कामाग्निकी ज्वाला शान्त होती है। सोमवल्ली उगनेवाले पर्वतशिखर हिमालयमें हैं, वहां ही दिव्य औषधियां होती हैं। योगी लोग उनका सेवन करके स्थिरवीर्य और दीर्घजीवी होते हैं। तीसरी बात इसमें यह है कि ऐसी पहाडियोंमें प्रलोभन कम होते हैं, शहरों जैसे अत्यधिक नहीं होते, इसलिये भी कामकी उत्तेजना शहरों जैसी यहां नहीं होती है। इत्यादि अनेक उपाय इन पहाडोंके साथ सम्बन्ध रखते हैं। (मं० १०)

२ उत्तानशीवरीः आपः—जल भी कामाग्निका शमन करनेवाला है। शीत जलका स्नान, जलाशयोंमें तैरनेसे शरीरमें समशीतोष्णता होती है जिससे कामकी उष्णता दूर होती है, शीत जलसे मध्य शरीरका स्नान करना, जिसको कटिस्नान कहते हैं, ब्रह्मचर्य साधनेके लिये बडा लाभदायक है। गुप्त इन्द्रियके आसपासका प्रदेश रात्रीके समय, या जिस समय कामका उद्रेक होजावे उस समय धो देनेसे ब्रह्मचर्य साधनमें बडी सहायता होती है। इस प्रकार विविध रीतिसे जलकी सहायता कामाग्निकी शान्ति करनेके कार्यमें होती है। (मं० १०)

३ पर्जन्यः— मेघ अर्थात् वृष्टिका जल इस विषयमें लाभकारी है। वृष्टि होते समय उसमें खडा होकर उस आकाश गंगाके जलसे स्नान करना भी बडा उत्तम है। इससे शरीरकी उष्णता सम होजाती है। इसके अतिरिक्त वृष्टिजल पीनेसे भी शरीरके अंदरके दोष हट जाते हैं। और कामकी शान्ति होनेमें सहायता होती है। (मं० १०)

४ अग्निः—आग, अग्नि यह वस्तुतः शरीरको अधिक उष्ण बनानेवाला है। जो कोमल प्रकृतिके मनुष्य होते हैं यदि उनको अग्निके साथ कार्य करनेका अवसर हुआ तो उनके शरीरकी उष्णता बढनेसे उनका शरीर अधिक गर्म होजाता है और उसके कारण उनको वीर्यदोषकी बाधा हो जाती है। इसलिये इस प्रकारकी अत्याधिक कोमलता शरीरसे हटानी चाहिये। अग्नि प्रयोगसे ही यह हट सकती है। होम हवन करते समय

शरीरको अग्निका उत्ताप लगता है, अन्य प्रकारसे भी शरीरको अग्निकी उष्णतासे परिचित रखना चाहिये, जिससे किसी समय आगके साथ काम करना पडे, तो उस उष्णताको शरीर सह सकेगा। अग्निकी उष्णताका हानिकारक परिणाम शरीरपर न होनेके लिये इस प्रकार शरीरको सहनशक्तिसे युक्त बनाना चाहिये। (मं० १०)

५ **वातः**- वायु भी इस विषयमें लाभदायक है। शुद्ध वायु सेवन, तथा शुद्ध वायुमें भ्रमण करनेसे बडे लाभ हैं। प्राणायाम करना भी वायुसेवनकी एक लाभप्रद रीति है। प्राणायाम करनेसे वीर्यदोष दूर होते हैं। प्राणायामके अभ्याससे मनुष्य स्थिर वीर्य हो जाता है। इसकारण वायुको कामाग्निका शान्त करनेवाला कहा है। जो जगत्में वायु है वही शरीरमें प्राण हैं। (मं० १०)

६ **सविता**-सूर्य भी इस विषयमें बडा सहायक है। जो बात अग्निके विषयमें कही है, वही सूर्यके विषयमें भी सत्य है। कोमल प्रकृतिवाले मनुष्य सूर्य प्रकाशमें घूमने फिरनेसे वीर्य-दोषी होजाते हैं, यह इस कारण होता है कि सूर्यप्रकाश सहन करनेकी शक्ति उनमें नहीं होती। वस्तुतः सूर्यका प्रकाश शरीर स्वास्थ्यके लिये बडा लाभकारी है। सूर्य प्रकाशमें बडा जीवन है। थोडे थोडे सूर्यके प्रकाशसे अपने शरीरको तपाते जानेसे शरीरकी सहन शक्ति बढती है और शरीरमें अद्भुत जीवन रस संचारने लगता है, आरोग्य बढ जाता है और थोडीसी उष्णतासे कामकी उत्तेजना शरीरमें होनेकी संभावना कम होती है। इस प्रकारकी सहनशक्ति बढानेका प्रयत्न करना हो तो प्रथम प्रातःकालके कोमल सूर्य प्रकाशमें भ्रमण करना चाहिये और पश्चात् कठोर प्रकाशमें करना चाहिये। यह सूर्यातपस्नान बडा ही लाभदायक है। मंत्रमें " हिरण्यपाणिः सविता " ये शब्द नऊ बजेतकके सूर्यकेही वाचक हैं। सोनेके रंगके समान रंगवाले किरणोंवाला सूर्य प्रातः और सायंही होता है। (मं० ८)

७ **वरुणः**—वरुणका स्थान समुद्र है इसलिये समुद्रस्नान इस विषयमें लाभकारी है ऐसा हम यहां समझ सकते हैं। इसमें जल प्रयोग भी आसकता है। (मं० ८)

८ **मित्रः**--सूर्य, इस विषयमें पूर्व स्थलमें कहा ही है। यदि " हिरण्यपाणि सविता " पूर्वाह्णका है तो उसके बादके सूर्यका नाम मित्र है। पूर्वोक्त प्रकार यह भी लाभदायक है। मित्रकी प्रेम दृष्टिका उदय होनेसे भी अर्थात् जगत्की ओर प्रेम पूर्ण मित्र दृष्टिसे देखनेसे भी बडा लाभ होना संभव है। (मं० ८)

९ **विश्वे देवाः**--अन्यान्य देवताओंके विषयमें भी इसी प्रकार विचार करके जानना चाहिये और उनसे अपना लाभ करना चाहिये। इस विषयमें बडा विचार करना योग्य है।

१० **बृहस्पतिः**—यह ज्ञानकी देवता है। ज्ञानसे भी कामाग्निकी शांति साधन करनेमें सहायता हो सकती है। बृहस्पति नाम " गुरु " का है। गुरुसे ज्ञान प्राप्त करके उस ज्ञानके बलसे अपनेको बचाना चाहिये अर्थात् कामाग्निका संयम करना चाहिये। यहां जो ज्ञान आवश्यक है वह शारीर शास्त्र, मानस शास्त्र, अध्यात्म शास्त्र इत्यादिका ज्ञान है। साथ ही साथ भक्तिमार्ग ज्ञानमार्ग आदिका भी ज्ञान होना चाहिये। (मं० ८)

११ **आङ्गिरसः**-- अंगरसकी विद्या जाननेवाले ऋषि। शरीरमें सर्वत्र संचार करनेवाला एक प्रकारका जीवन रस है, उसकी विद्या जो जानते हैं, उनसे यह विद्या प्राप्त करके उस विद्या द्वारा कामाग्निका शमन करना चाहिये। योग साधनमें इस विषयके अनेक उपाय कहे हैं, उनका भी यहां अनुसंधान करना चाहिये। (मं० ८)

१२ **इन्द्रः**—इन्द्र नाम जीवात्मा, राजा और परमात्माका है। इन तीनोंका कामाग्निकी शान्ति करनेमें बडा संबंध है। जीवात्माका आत्मिक बल बढाकर शुभसंकल्पोंके द्वारा अपने अंदरके काम विकारका संयम करना चाहिये। राजा को चाहिये कि वह अपने राज्यमें ब्रह्मचर्य और संयमका वायुमंडल बढाकर कामाग्निकी शान्ति करनेकी सबके लिये सुगमता करे। राष्ट्रमें अध्यापकवर्ग और संरक्षक अधिकारी वर्ग ब्रह्मचारी रखकर राज्य चलानेका उपदेश अथर्ववेदके ब्रह्मचर्य सूक्त (अथर्व ११।५ (७) १६] में कहा है। वह यहां अवश्य देखने योग्य है। इससे राजाके कर्तव्यका पता लग सकता है। यदि राज्यमें अध्यापक गण पूर्ण ब्रह्मचारी हों और राज्य शासनके अन्य ओहदेदार भी उत्तम ब्रह्मचारी हों तो उस राज्यका वायुमंडल ही ब्रह्मचर्यके लिये अनुकूल होगा और ऐसे राज्यमें रहनेवाले लोगोंका ब्रह्मचर्य रहना, संयम होना अथवा कामाग्निका शमन होना निःसन्देह सुसाध्य होगा। धन्य है ऐसे वैदिक राज्यकी कि जहां सब अधिकारी वर्ग और अध्यापक वर्ग

वर्चःप्राप्ति सूक्त ।

अथर्व० कां० ३।२२

(ऋषिः वसिष्ठः । देवता—वर्चः, बृहस्पतिः, विश्वेदेवाः)

१ हस्तिवर्चसं प्रथतां बृहद् यशो अदित्या यत् तन्वः संबभूव ।
तत् सर्वे समदुर्मह्यमेतद् विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥ १३०

२ मित्रश्च वरुणश्चेन्द्रो रुद्रश्च चेततु ।
देवासो विश्वधायसस्ते माञ्जन्तु वर्चसा ॥ १३१

३ येन हस्ती वर्चसा संबभूव येन राजा मनुष्येष्वप्स्वन्तः ।
येन देवा देवतामग्र आयन् तेन मामद्य वर्चसाग्ने वर्चस्विनं कृणु ॥ १३२

ब्रह्मचारी होते हों। वैदिक धर्मियोंको ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि ऐसे राज्य इस भूमंडलपर स्थापित हों और सर्वत्र ब्रह्मचर्यका वायुमंडल फैले। इसके नंतर इन्द्र शब्दका तीसरा अर्थ परमात्मा है। यह परमात्मा तो पूर्णब्रह्मचर्यका परम आदर्श है, इसकी भक्ति और उपासनासे कामाग्निका शमन होता ही है। सब ऋषिमुनि और योगी इसी परमात्म भक्तिकी साधनासे मनः संयम द्वारा कामाग्निका शमन करके अमर हो गये।

इस प्रकार उपायका वर्णन इस सूक्तमें किया है। यह सूक्त अत्यन्त महत्त्वका है। इसका पाठ " बृहच्छान्तिगण " में किया है। सचमुच यह सूक्त बृहती शांति करनेवाला ही है। जो पाठक इसके अनुष्ठानसे इस शांतिकी साधना करेंगे वेही धन्य होंगे।

[१] (१३०) **(यत् अदित्याः तन्वः) जो अदितिके शरीरसे (संबभूव) उत्पन्न हुआ है वह (हस्तिवर्चसं बृहत् यशः) हाथीके बलके समान बडा यश (प्रथतां) फैले। (तत् एतत्) वह यह यश (सर्वे सजोषाः विश्वे देवाः अदितिः) सब एक मनवाले देव और अदिति (मह्यं सं अदुः) मुझे देते हैं।**

जो मूल प्रकृतिके अंदर बल है, जो हाथी आदि पशुओंमें आता है, वह बल मुझमें आवे, सब देव एक मतसे मुझे बल देवें।

[२] (१३१) (मित्रः च वरुणः च इन्द्रः च रुद्रः च) मित्र, वरुण, इन्द्र और रुद्र (चेततु) **उत्साह देवें। (ते विश्वधायसः देवाः) वे विश्वके धारक देव (वर्चसा मा अञ्जन्तु) तेजसे मुझे युक्त करें।**

मित्र वरुण इन्द्र और रुद्र ये विश्वके धारक देव मुझे उत्साह देवें, ज्ञान देवें और मुझे तेजसे युक्त करें।

[३] (१३२) **(येन वर्चसा हस्ती संबभूव) जिस तेजसे हाथी उत्पन्न हुआ है, और (येन मनुष्येषु अप्सु च अन्तः राजा सं बभूव) जिस तेजसे मनुष्योंमें और जलोंके अन्दर राजा हुआ है, और (येन देवाः अग्रे देवतां आयन्) जिस तेजसे देवोंने पहले देवत्व प्राप्त किया, (तेन वर्चसा) उस तेजसे हे अग्ने ! (मां अद्य वर्चस्विनं कृणु) मुझे आज तेजस्वी कर।**

जिस बलसे हाथी सब पशुओंमें बलवान् हुआ है, जिस बलसे मनुष्योंके अंदर राजा बलवान् होता है और भूमि तथा जल पर भी अपना शासन करता है, जिस बलसे पहले देवोंने देवत्व प्राप्त किया था, हे तेजके देव ! वह बल आज मुझे प्राप्त होवे।

४ यत् ते वर्चो जातवेदो बृहद् भवत्याहुतेः ।
यावत् सूर्यस्य वर्च आसुरस्य च हस्तिनः ।
तावन्मे अश्विना वर्च आ धत्तां पुष्करस्रजा ॥ १३३

५ यावच्चतस्रः प्रदिशश्चक्षुर्यावत् समश्नुते ।
तावत् समैत्विन्द्रियं मयि तद्धस्तिवर्चसम् ॥ १३४

६ हस्ती मृगाणां सुषदामतिष्ठावान् बभूव हि ।
तस्य भगेन वर्चसाभि षिञ्चामि मामहम् ॥ १३५

[४] (१३३) हे (जातवेदः) जातवेद! (ते वर्चः आहुतेः बृहत् भवति) तेरा जो तेज आहुतियोंसे बडा होता है (यावत् सूर्यस्य, आसुरस्य हस्तिनः च वर्चः) और जितना सूर्यका और असुरी हाथी [मेघ] का बल और तेज होता है, (पुष्करस्रजौ अश्विनौ) पुष्पमाला धारण करनेवाले अश्वि देवो! (तावत् वर्चः मे आधत्तां) उतना तेज मेरे लिये धारण कीजिये ।

हे बने हुएको जाननेवाले देव! जो तेज अग्निमें आहुतियोंसे बढता है, जो तेज सूर्यमें है, जो असुरोंमें तथा हाथीमें या मेघोंमें है, हे अश्विदेवो! वह तेज मुझे दीजिये ।

[५] (१३४) यावत् (चतस्रः प्रदिशः) जितनी दूर चारों दिशायें हैं, (यावत् चक्षुः समश्नुते) जितनी दूर दृष्टि फैलती है, (तावत् मयि तत् हस्तिवर्चसं इन्द्रियं) उतना मुझमें वह हाथीके समान इंद्रियोंका बल (सं एतु) इकट्ठा होकर मिले ।

चार दिशाएं जितनी दूर फैली हैं, जितनी दूर मेरी दृष्टि जाती है, उतनी दूरतक मेरे सामर्थ्यका प्रभाव फैले ।

[६] (१३५) (हि सुषदां मृगाणां) जैसा अच्छे बैठनेवाले पशुओंमें (हस्ती अतिष्ठावान् बभूव) हाथी बडा प्रतिष्ठावान् हुआ है, (तस्य भगेन वर्चसा) उसके ऐश्वर्य और तेजके साथ (अहं मां अभिषिञ्चामि) मैं अपने आपको अभिषिक्त करता हूं ।

जैसा हाथी पशुओंमें बडा बलवान् है, वैसा बल और ऐश्वर्य मैं प्राप्त करता हूं ।

शाकभोजनसे बल बढाना ।

शरीरका बल, तेज, आरोग्य, वीर्य आदि बढानेके संबंधका उपदेश करनेवाला यह सूक्त है । प्राणियोंमें हाथीका शरीर (हस्तिवर्चसं । मं० १) बडा मोटा और बलवान् भी होता है । हाथी शाकाहारी प्राणी है, इसीका आदर्श वेदने यहां लिया है; सिंह और व्याघ्रका आदर्श लिया नहीं । इससे सूचित होता है कि मनुष्य शाक भोजी रहता हुआ अपना बल बढावे और बलवान् बने । वेदकी शाकाहार करनेके विषयकी आज्ञा इस सूक्त द्वारा अप्रत्यक्षतासे व्यक्त हो रही है, यह बात पाठक यहां स्मरण रखें ।

बल प्राप्तिकी रीति ।

" अदिति " प्रकृतिका नाम है, उस मूल प्रकृतिमें बहुत बल है, इस बलके कारण ही प्रकृतिको " अदिति " अर्थात् " अ-दीन " कहते हैं । इस प्रकृतिके ही पुत्र सूर्य चंद्रादि देव हैं, इसी लिये इस प्रकृतिको देव माता, सूर्यादि देवोंकी माता, कहा जाता है । मूल प्रकृतिका ही बल विविध देवोंमें विविध रीतिसे प्रकट हुआ है, सूर्यमें तेज, वायुमें जीवन, जलमें शीतलता आदि गुण इस देवोंकी अदिति मातासे इनमें आगये हैं । इसलिये प्रथम मंत्रमें कहा है कि " इन सब देवोंसे प्रकृतिका अमर्याद बल मुझे प्राप्त हो । (मं० १) " सचमुच मनुष्यको जो बल प्राप्त होता है वह पृथ्वी आप तेज वायु आदि देवोंकी सहायतासे ही प्राप्त होता है, किसी अन्य रीतिसे नहीं होता है । यह बल प्राप्त करनेकी रीति है । इन देवोंके साथ अपना संबंध करनेसे अपने शरीरका बल बढने लगता है । जलमें तैरने, वायुमें भ्रमण करने अथवा खेलकूद करने, धूपसे शरीरको तपाने अर्थात् शरीरकी चमडीके साथ इन देवोंका सम्बन्ध करनेसे शरीरका बल बढता है । इससे यह सिद्ध हुआ कि तंग मकानमें अपने आपको बन्द रखनेसे बल घटता है ।

क्षात्रबल संवर्धन ।

अथर्व० कां० ४।२२

(ऋषिः—वसिष्ठः, अथर्वा वा । देवता—इन्द्रः)

१ इममिन्द्र वर्धय क्षत्रियं म इमं विशामेकवृषं कृणु त्वम् ।
निरमित्रानक्ष्णुह्यस्य सर्वांस्तान्रन्धयास्मा अहमुत्तरेषु ॥ ९३६

२ एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष्टं भज यो अमित्रो अस्य ।
वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र शत्रुं रन्धय सर्वमस्मै ॥ ९३७

३ अयमस्तु धनपतिर्धनानामयं विशां विश्पतिरस्तु राजा ।
अस्मिन्निन्द्र महि वर्चांसि धेह्यवर्चसं कृणुहि शत्रुमस्य ॥ ९३८

द्वितीय मंत्र कहता है कि " (मित्र) सूर्य, (वरुणः) जलदेव, (इन्द्रः) विद्युत्, (रुद्रः) अग्नि अथवा वायु ये विश्व-धारक देव मेरी शक्ति बढावें। " (मं० २) यदि इनके जीवन--रसपूर्ण अमृत प्रवाहोंसे अपना संबंधही टूट गया तो ये देव हमारी शक्ति कैसी बढावेंगे ? इसलिये बल बढानेवालोंको उचित है कि वे अपने शरीरकी चमडीका संबंध इन देवोंके अमृत प्रवाहोंके साथ योग्य प्रमाणसे होने दें। ऐसा करनेसे इनके अंदरका अमृत रस शरीरमें प्रविष्ट होगा और बल बढेगा।

अन्य मंत्रोंका आशय स्पष्टही है। मरियल और बलवान होनेका मुख्य कारण यहां इस सूक्तने स्पष्ट कर दिया है। जो पाठक इस सूक्तके उपदेशके अनुसार आचरण करेंगे वे निःसंदेह बल, वीर्य, दीर्घायु और आरोग्य प्राप्त करेंगे।

[१] (९३६) हे इन्द्र ! तू (मे इमं क्षत्रियं वर्धय) मेरे इस क्षत्रियको बढा, और (मे इमं विशां एकवृषं त्वं कृणु) इस मेरे इस क्षत्रियको प्रजाओंमें अद्वितीय बलवान् तू कर। (अस्य सर्वान् अमित्रान् निरक्ष्णुहि) इसके सब शत्रु-ओंको निर्बल कर और (अहं उत्तरेषु) मैं-श्रेष्ठ मैं-श्रेष्ठ इस प्रकारकी स्पर्धामें (तान् सर्वान्) उन सब शत्रुओंको (अस्मै रन्धय) इसके लिये नष्ट कर।

हे प्रभो ! इस मेरे राष्ट्रमें जो क्षत्रिय हैं उनके क्षात्रतेजको बढा और इस राजाको सब प्रजाजनोंमें अद्वितीय बलवान् कर। इस हमारे राजाके सब शत्रु निर्बल हो जावें और सब स्पर्धाओंमें इसके लिये कोई प्रतिपक्षी न रहे।

[२] (९३७) (इमं ग्रामे अश्वेषु गोषु आ भज) इस क्षत्रियको ग्राममें तथा घोडों और गौओंमें योग्य भाग दे। (यः अस्य अमित्रः तं निः भज) जो इसका शत्रु है उसको कोई भाग न दे। (अयं राजा क्षत्राणां वर्ष्म अस्तु) यह राजा क्षात्रगुणोंकी मूर्ती होवे। हे इन्द्र ! (अस्मै सर्वं शत्रुं रन्धय) इसके लिये सब शत्रु नष्ट कर।

प्रत्येक ग्राममें, घोडों और गौओंमेंसे इस राजाको योग्य करभार प्राप्त हो। इसके शत्रु निर्बल बन जांय। यह राजा सब प्रकार क्षात्र शक्तियोंकी मूर्ति बने और इसके सब शत्रु दूर हो जावें।

[३] (९३८) (अयं धनानां धनपतिः अस्तु) यह सब धनोंका स्वामी होवे (अयं राजा विशां विश्पतिः अस्तु) यह राजा प्रजाओंका पालक होवे। हे इन्द्र ! (अस्मिन् महि वर्चांसि धेहि) इसमें बडे तेजोंको स्थापन कर। (अस्य शत्रुं अव-र्चसं कृणुहि) इसके शत्रुको निस्तेज कर।

इस राजाको सब प्रकारके धन प्राप्त हों, यह राजा सब प्रजा-जनोंका उत्तम पालन करे, इस राजामें सब प्रकारके तेज बढें और इसके सब शत्रु फीके पडें।

४	अस्मै द्यावापृथिवी भूरि वामं दुहाथां घर्मदुघे इव धेनू ।	
	अयं राजा प्रिय इन्द्रस्य भूयात्प्रियो गवामोषधीनां पशूनाम्	९३९
५	युनज्मि त उत्तरावन्तमिन्द्रं येन जयन्ति न पराजयन्ते ।	
	यस्त्वा करदेकवृषं जनानामुत राज्ञामुत्तमं मानवानाम्	९४०
६	उत्तरस्त्वमधरे ते सपत्ना ये के च राजन्प्रति शत्रवस्ते ।	
	एकवृष इन्द्रसखा जिगीवां छत्रूयतामा भरा भोजनानि	९४१
७	सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वा व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून् ।	
	एकवृष इन्द्रसखा जिगीवां छत्रूयतामा खिदा भोजनानि	९४२

[४] (९३९) हे द्यावापृथिवी ! (घर्मदुघे धेनू इव) धारोष्ण दूध देनेवाली गौवोंके समान (अस्मै भूरि वामं दुहाथां) इसके लिये बहुत धनादि प्रदान करो। (अयं राजा इन्द्रस्य प्रियः भूयात्) यह राजा इन्द्रका प्रिय होवे तथा (गवां पशूनां ओषधीनां प्रियः) गौ पशु और औषधियोंका प्रिय होवे ।

ये दोनों द्यावा पृथिवी लोक इसको सब प्रकारके धन देवें, यह राजा सबका प्रिय बने। ईश्वर, मनुष्य, पशुपक्षी और औषधियोंके विषयमें भी यह प्रेम रखे ।

[५] (९४०) (ते उत्तरावन्तं इन्द्रं युनज्मि) तेरे साथ श्रेष्ठ गुणवाले प्रभुको मैं संयुक्त करता हूं। (येन जयन्ति) जिससे विजय होता है और कभी (न पराजयन्ते) पराजय नहीं होता है। (यः त्वा जनानां एकवृषं) जो तुझको मनुष्योंमें अद्वितीय बलवान और (उत मानवानां राज्ञां उत्तमं करत्) मनुष्योंके राजोंमें उत्तम करे ।

यह राजा ईश्वरके साथ अपना आंतरिक संबंध जोड दें, जिससे इनका सदा जय होवे और पराजय कभी न होवे। यह राजा इस प्रकार मनुष्योंमें अद्वितिय बलवान और मनुष्योंके सब राजोंमें श्रेष्ठ होवे ।

[६] (९४१) हे राजन् ! (त्वं उत्तरः) तू अधिक ऊंचा हो, (ते सपत्नाः) तेरे शत्रु और (ये के च ते प्रति-शत्रवः) जो कोई तेरे शत्रु हैं वे (अधरे) नीचे होवें। तू (एक वृषः) अद्वितीय बलवान, (इन्द्रसखा) प्रभुका मित्र (जिगीवान्) जयशाली होकर (शत्रूयतां भोजनानि आभर) शत्रु जैसा आचरण करनेवालोंके भोजनके साधन यहां ला ।

यह राजा उंचा बने और इसके सब शत्रु नीचे हों। यह अद्वितीय बलवान्, ईश्वरका भक्त और विजयी होकर शत्रुका पराभव करके उनके उपभोगके पदार्थ प्राप्त करे ।

[७] (९४२) (सिंहप्रतीकः सर्वाः विशः अद्धि) सिंहके समान प्रभावशाली होकर सब प्रजाओंसे भोग प्राप्त कर। (व्याघ्रप्रतीकः शत्रून् अव बाधस्व) व्याघ्रके समान बलवान् होकर अपने शत्रुओंको हटादे। (एकवृषः इन्द्रसखा जिगीवान्) अद्वितीय बलवान, प्रभुका मित्र, और विजयी बनकर (शत्रूयतां भोजनानि आ खिद) शत्रूके समान व्यवहार करनेवालोंके भोजनके साधन छीनकर ले आ ।

सिंह और व्याघ्रके समान प्रतापी बनकर सब प्रजाओंसे योग्य भोग प्राप्त करें और शत्रुओंको दूर करे। अद्वितीय बलवान्, प्रभुका भक्त और विजयी बनकर शत्रुका पराभव करके उनके धन अपने राज्यमें ले आवे ।

स्पर्धा ।

' अहं-उत्तरेषु ' यह शब्द प्रथम मंत्रमें है। यह स्पर्धाका वाचक है। ' मैं सबसे ऊंचा होऊं यह इच्छा प्रत्येक मनुष्यमें रहती है। मै सबसे आगे बढूं, मैं सबसे अधिक ज्ञान प्राप्त करूं, मैं सबसे अधिक यश, धन प्रभुत्व आदि प्राप्त करके सबसे अधिक प्रतापी यशस्वी और समर्थ बनूं। यह इच्छा हर-एकमें होती ही है। धर्मभावसे इस इच्छाका उत्तम उपयोग करके मनुष्य उच्च हो सकता है। इस प्रकार ऊंचा होनेके लिये अपने शत्रुओंसे अपना बल बढाना चाहिये। शत्रुने जितनी

विद्या, बल, कला और हुन्नर प्राप्त किया है उससे अपनी विद्या, बल, कला और हुन्नर बढ जानेसे ही मनुष्यकी उन्नति हो सकती है। उन्नतिका कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

यह सूक्त सामान्यतः क्षत्रियोंका यश बढानेका उपदेश करता है और विशेषतः राजाका बल बढानेका उपदेश दे रहा है। सब जगत्‌में अपना राष्ट्र अग्र स्थानमें रहने योग्य उन्नत करना हरएक राजाका आवश्यक कर्तव्य है। हरएक कार्यक्षेत्रमें जो जो शत्रु होंगे, उनको नीचे करके अपने राष्ट्रके वीरोंको उन्नत करनेसे उक्त सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

हरएक मनुष्यकी ऐसी इच्छा होनी चाहिये कि मेरे राष्ट्रके क्षत्रिय वीर बडे विजयी हों, किसी राष्ट्रके पीछे हमारा राष्ट्र न रहे। वेद कहता है कि '**अहं-उत्तरेषु**' यह मंत्र राष्ट्रके हरएक मनुष्यके मनमें जाग्रत रहे। मैं सबसे आगे होऊंगा, मेरा राष्ट्र सब राष्ट्रोंके अग्र भागमें रहेगा, इसकी सिद्धिके लिये हरएकके प्रयत्न होने चाहिये। प्रत्येक मनुष्य अपने गुण और कर्मकी वृद्धिकी पराकाष्ठा करके अपने आपको और अपने राष्ट्रको उच्च स्थानमें लानेका प्रयत्न करे। यह भाव '**अहं उत्तरेषु**' पदमें है। प्रत्येक मनुष्यमें जैसा क्षात्रतेज रहता है उसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्रमें भी रहता ही है। इस गुणका उत्कर्ष करना चाहिये, इस गुणके उत्कर्षसे ही शत्रु कम हो सकते हैं।

राजाको चाहिये कि वह अपने राष्ट्रमें शिक्षाका ऐसा प्रबंध करे कि जिससे सब प्रजा एक उद्देश्यसे प्रेरित होकर सब शत्रुओंका पराजय करनेमें समर्थ हो। हरएक कार्यक्षेत्रमें किसी प्रकारकी भी असमर्थता न हो। "**विशां एक वृषं कृणु त्वं।**" (मं. १) प्रजाओंमें अद्वितीय बल उत्पन्न करनेवाला तू हो, यह अंदरका तात्पर्य इस मंत्रमें है। यही विजयकी कूंजी है। राजाका प्रधान कर्तव्य यही है कि वह प्रजामें अद्वितीय बलकी वृद्धि करे। यह बल चार प्रकारका होता है, ज्ञानबल, वीर्यबल धनबल और कलाबल। यह चार प्रकारका बल अपने राष्ट्रमें बढा बढाकर अपने राष्ट्रको सब जगत्‌में अग्र स्थानमें लाकर उसे ऊंचे स्थानपर रखना चाहिये, तभी सब शत्रु हीन हो सकते हैं। यहां दूसरोंको गिरानेका उपदेश नहीं प्रत्युत अपने राष्ट्रका उद्धार करनेका उच्च उपदेश यहां है। दूसरे भी उन्नत हों और हम भी हों। उन्नतिमें स्पर्धा हो, गिरावटकी स्पर्धा न हो। मंत्रका पद 'अहं-उत्तरेषु' है न कि 'अहं-नीचेषु'। पाठक इस दिव्य उपदेशका अवश्य मनन करें।

यह सूक्त अत्यंत सरल है और मंत्रका अर्थ और भावार्थ पढनेसे सब आशय मनके सामने खडा हो सकता है, इसलिये इसके स्पष्टीकरणके लिये अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

९३६-१ **क्षत्रियं वर्धय**--क्षत्रियका संवर्धन करो।

२ **सर्वान् अमित्रान् निरक्ष्णुहि**-- सब शत्रुओंको दूर करो।

३ **अहमुत्तरेषु सर्वान् अमित्रान् रन्धय**--स्पर्धामें सब शत्रुओंका नाश करो।

९३७-१ **अस्य अमित्रं तं निर्भज**-इसके शत्रुको भागने दो।

२ **ग्रामे अश्वेषु गोषु इमं आभज**-- गांवमें घोडों और गौओंमें इसको भाग मिले।

३ **अयं राजा क्षत्रियाणां वर्ष्म अस्तु**--यह राजा क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ हो।

९३८-१ **अयं धनानां धनपतिः अस्तु**-यह धनोंका पति हो।

२ **अयं राजा विशां विश्पतिः अस्तु**-- यह राजा प्रजाओंका पति हो।

३ **अस्मिन् महि वर्चांसि धेहि**-- इसमें बहुत तेज रखो।

४ **अस्य शत्रून् अवर्चसं कृणुहि**-- इसके शत्रुओंको निस्तेज करो।

९३९-१ **अस्मै भूरि वामं द्यावापृथिवी दुहाथां**— इसको बहुत धन द्यावापृथिवी देवे।

२ **अयं राजा इन्द्रस्य प्रियः भूयात्**— यह राजा इन्द्रको प्रिय हो।

३ **अयं राजा गवां पशूनां ओषधीनां प्रियः भूयात्**— यह राजा गौवों, पशुओं और ओषधियोंको प्रिय है।

९४०- **येन जयन्ति, न पराजयन्ते, त्वा जनानां मानवानां राज्ञां एकवृषं उत्तमं करत्**— जिससे जय होता है और पराजय नहीं होता, उसके लिये जनों, मानवों और राजाओंमें तुझे अद्वितीय उत्तम बलवान् करता हूं।

९४१- **हे राजन् त्वं उत्तरः ते सपत्नाः प्रतिशत्रवः ते अधरे**— हे राजन्! तू अधिक श्रेष्ठ बन, तेरे शत्रु नीचे हो जांय।

९४२-१ **सिंहप्रतीकः सर्वाः विशः आद्धि**— सिंहके समान सब प्रजाओंसे भोग प्राप्त कर, कर प्राप्त कर।

२ **व्याघ्रप्रतीकः शत्रून् अव बाधस्व**— व्याघ्रके समान शत्रुओंको हटा दे।

३ **एकवृषः इन्द्रसखा जिगीवान् शत्रूयतां भोजनानि आखिद**- अद्वितीय बलवान और विजयी होकर शत्रुओंके भोगके साधन छीन कर ले आ।

अथर्ववेदमें वसिष्ठ ऋषिके सूक्त ।

अथर्ववेद काण्ड १९ तथा २० में वसिष्ठ ऋषिके सूक्त हैं, पर वे सबके सब ऋग्वेदसे ही लिये हैं । वे ये हैं—

१ शं न इन्द्राग्नी	अथर्व	१९।१०।१-१०	ऋग्वेद	७।३५।१-१० (३३२-३४१)
२ शं नः सत्यस्य	,,	१९।११।१-५	,,	७।३५।१२, ११, १३, १४, १५ (३४३, ३४२, ३४४-३४६)
तदस्तुमित्रावरुणा	,,	६	,,	५।४७।७ *
३ उषा अप स्वसुस्तमः	,,	१९।१२।१	,,	१०।१७२।४ *
अथा वाजं देवहितं	,,	२	,,	६।१७।१५ *
४ उदु ब्रह्माण्यैरयत	,,	२०।१२।१-६	,,	७।२३।१-६ (२११-२१६)
ऋजीषी वज्री वृषभः	,,	७	,,	५।४०।४ *
५ बृहस्पते युवमिन्द्र	,,	२०।१७।१२	,,	७।९७।१० (७७६)
६ यस्तिग्मशृंगो वृषभो	,,	२०।३७।१-११	,,	७।१९।१-११ (१७१-१८१)
७ तुभ्येदिमा सवना	,,	२०।७३।१-२	,,	७।२२।७-८ (२०८-२०९)
प्र वो महे महिवृधे	,,	३	,,	७।३१।१० (२६३)
८ इन्द्र क्रतुं न आभर	,,	२०।७९।१-२	,,	७।३२।२६-२७ (२९१-२९२)
९ यदिन्द्र यावतस्त्वं	,,	२०।८२।१-२	,,	७।३२।१८-१९ (२८३-२८४)
१० अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धं	,,	२०।८७।१-७	,,	७।९८।१-७ (७७७-७८३)
११ पिबा सोममिन्द्र मदन्तु	,,	२०।११७।१-३	,,	७।२२।१-३ (२०२-२०४)
१२ अभित्वा शूर नो नुमो	,,	२०।१२१।१-२	,,	७।३२।२२-२३ (२८७-२८८)

इनमें ७ वें मण्डलके जो मन्त्र हैं उनका अर्थ यथास्थान किया है । इनके अर्थ नीचे देते हैं ।
इस पुस्तकमें आचुका है । जो पांचवे और छठे मण्डलके दो मंत्र हैं उनका अर्थ नीचे दिया जाता है।

ऊपरके मंत्रोंमें सूक्त ३ में (१९।१२।१ में) मंत्र एक ही है, पर वह ऋग्वेदके संवर्त आंगिरसके १०।१७२।४ से प्रथमार्थ और ऋ. बार्हस्पत्यो भरद्वाज ऋषिके ६।१७।१५ से द्वितीय अर्ध लेकर वह एक मंत्र बनाया है।

जो मंत्र ऋग्वेद सप्तम मंडलमें नहीं हैं उनपर ऐसा * चिन्ह किया है । इनके अर्थ नीचे देते हैं ।

ऋ. ७।३५।१५ मंत्र अथर्व १९।११।५ के स्थानपर है, पर इसमें पाठ भेद है—

ये देवानां **यज्ञिया** यज्ञियानां । ऋ. ७।३५।१५

ये देवानां **ऋत्विजा** यज्ञियानां । अथर्व १९।११।५

ऋग्वेदका पद ' यज्ञिया ' है और अथर्ववेदका पद 'ऋत्विजा' है । अब ऋ. ७ मण्डलमें न आये मंत्रोंका अर्थ देखिये—

अथर्व० १९।११।६ वसिष्ठ

१ तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शंयोरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥ ६ ॥ ९४३

अथर्व० १९।१२।१ वसिष्ठ

२ उषा अप स्वसुस्तमः संवर्तयति वर्तनिं सुजातता ।
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १ ॥ ९४४

अथर्व० २०।१२।७ वसिष्ठ

३ ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट् छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥ ७ ॥ ९४५

॥ इति वासिष्ठं दर्शनम् ॥

---

[१]९४३ हे मित्र और वरुण (तत् अस्तु) वह कल्याण हमें प्राप्त हो । हे अग्ने ! (शं-योः तत् इदं शस्तं) शान्ति देनेवाला और दुःख दूर करनेवाला यह प्रशंसनीय ज्ञान (अस्मभ्यं अस्तु) हमें प्राप्त हो । (गाधं उत प्रतिष्ठां अशीमहि) हम गंभीरता और प्रतिष्ठाको प्राप्त करें, (बृहते सादनाय दिवे नमः) बडे घर जैसे इस द्युलोक के लिये नमन करते हैं ।

१ तत् शस्तं अस्मभ्यं अस्तु-वह प्रशंसनीय कल्याण हमें प्राप्त हो ।

२ तत् इदं शंयोः शस्तं अस्मभ्यं अस्तु- वह सब प्रशंसनीय सुखदायी और रोगनिवारक ज्ञान हमें प्राप्त हो

३ गाधं उत प्रतिष्ठां अशीमहि- गंभीरता और प्रतिष्ठा हमें प्राप्त हो

४ महते दिवे सादनाय नमः-बडे दिव्य घरके लिये प्रणाम है ।

[२]९४४ (सुजातता उषा) उत्तम कुलमें उत्पन्न यह उषा अपनी (स्वसुःतमः अप संवर्तयति वर्तनिं) बहिन रात्रीके अन्धेरेको परे हटाती है और मार्गको बताती है । इस उषासे (देवहितं वाजं सनेम) देवोंका हित करनेवाला अन्न तथा बल प्राप्त करेंगे और (सुवीराः शतहिमाः मदेम) उत्तम वीरोंके साथ सौ वर्षतक आनन्द मनाएंगे ।

१ सुजातता तमः अप संवर्तयति— उत्तम कुलीन स्त्री अन्धकारको दूर करती है और (वर्तनिं) मार्गको बताती है ।

२ देवहितं वाजं सनेम--विबुधोंका हित करनेके लिये आवश्यक बल हम प्राप्त करेंगे । बल प्राप्त करके सज्जनोंका हित करना चाहिये ।

३ सुवीराः शतहिमाः मदेम— उत्तम वीरोंके साथ रहकर हम सौ वर्ष पर्यंत आनन्दपूर्ण जीवन व्यतीत करते रहेंगे ।

[३]९४५ (ऋजीषी वज्री) सोम जिसको प्रिय है, वज्र धारण करनेवाला, (वृषभः तुराषाट्) बलवान् त्वरासे शत्रुको दबानेवाला, (शुष्मी वृत्रहा सोमपावा राजा) सामर्थ्यवान् वृत्रका नाश करनेवाला, सोमरस पीनेवाला राजा इन्द्र (हरिभ्यां युक्त्वा) अपने दोनों घोडोंको रथके साथ जोडकर (अर्वाङ् उप यासद्) हमारे समीप आजावे और (माध्यन्दिने सवने मत्सद्) मध्यदिनके सवनमें आनन्दित हो जावे ।

वीर (वज्री) वज्र धारण करनेवाला, (वृषभः) बलिष्ठ, (शुष्मी) सामर्थ्यशाली (तुराषाट्) त्वरासे शत्रुको दबाने-वाला (वृत्रहा) घेरनेवाले शत्रुको भी मारनेवाला (राजा) उत्तम राज्यशासन करनेवाला हो; यह घोडोंको अपने रथको जोते और अपने राज्यमें भ्रमण करे ।

यहां वासिष्ठ ऋषिका दर्शन समाप्त हुआ ।

देवताओंकी मन्त्रसंख्या

१ **अग्निः** १—१८५ कुलमंत्र संख्या १४५
[आप्रीसूक्तं-इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा १, नराशंसः १, इळः १, वर्हिः १, देवीर्द्वारः १, उषासानक्ता १, दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ १, तिस्रोदेव्यः सरस्वतीळाभारत्यः १, त्वष्टा १, वनस्पतिः १, स्वाहाकृतयः १, एता अग्निरूपा देवताः] २६–६६ वैश्वानरोऽग्निः— ६७–७२; १०६–१०८; अग्नि ८२६; ८३०; ८४०; ९२०–९२१ ३३

२ **इन्द्रः** १४६–३०६ १६१
सुदाः पैजवनः २२–२५ (१६७–१७०) वासिष्ठ पुत्राः १-९ (२९३–३०१); वासिष्ठः १०–१४ (३०२–३०६); इन्द्रः ७६७; ७७७-७८२; ८२४; ८३२; ८३५–८३८, ९३६–९४२; २०

३ **विश्वेदेवाः** ३०७—४५२ १४६
अहिः ३२२; अहिर्बुध्न्यः ३२३; सविता ३६४–३६९; भगः (उत्तरार्धः) ३६९; वाजिनः ३७०–३७१; उषसः ३९२; दधिक्राः ४०४–४०८; सविता ४०९–४१२; रुद्रः ४१३–४१६, आपः ४१७–४२०; ऋभवः ४२१–४२४; आपः ४२५–४२८; मित्रावरुणौ ४२९; अग्निः ४३०; नद्यः ४३२; आदित्याः ४३६–४३८; द्यावापृथिवी ४३९–४४१; वास्तोष्पतिः ४४२–४४४; वास्तोष्पतिः ४४५; इन्द्रः ४४६–४५२; ९०२–९०९ ९३०–९३६; १५

४ **मरुतः** ४५३–५०२ ५०
रुद्रः ५०२; मरुतः ८३४; १

५ **मित्रावरुणौ** ५०३–५६२ ६०
सूर्यः ५०३; ५२२–५२४; ५२८–५३२; ५५७–५५९; आदित्याः ५४७–५५६;

६ **अश्विनौ** ५६३–६१८ ४६
८४२–८४७; ६

७ **उषसः** ६१९–६५८ ४०

८ **इन्द्रावरुणौ** ६५९-६८८; ३०

९ **वरुणः** ६८९–७१५; २७

१० **वायुः** ७१६–७३४; १९
इन्द्रवायू ७२०-७२२; ७२४; ७२६–७२९; ७३१; ७३३;

११ **इन्द्राग्नी** ७३५–७५४; २०

१२ **सरस्वती** ७५५–७६६; १२

१३ **बृहस्पतिः** ६
७६८; ७७०–७७४;

१४ **इन्द्राब्रह्मणस्पती** २
७६९; ७७५;

१५ **इन्द्राबृहस्पती** २
७७६; ७८३;

१६ **विष्णुः** १२
७८४–७८६; ७९०; ७९१–७९७;

१७ **इन्द्राविष्णू** ३
७८७–७८९;

१८ **पर्जन्यः** १७
७९८–८०६;
मण्डूकाः ८०७–८१६;

१९ **इन्द्रासोमौ** ८
८१७–८२३; ८४१;

२० **सोमः** ५७
८२५; ८२८–८२९; ८४८–९०१;

२१ **देवाः** १५
८२७; ९१०–९१९; ९४२–९४५;

२२ **ग्रावाणः** १
८३३;

२३ **पृथिव्यन्तरिक्षे** १
८३९;

वसिष्ठ ऋषिका परिचय

वसिष्ठ ऋषिकी उत्पत्तिके संबंधमें बृहद्देवता ग्रन्थमें इस तरह लिखा है—

तयोरादित्ययोः सत्रे दृष्ट्वाप्सरसमुर्वशीम् ।
रेतश्चस्कंद तत्कुम्भे न्यपतद्वासतीवरे ७८३
तेनैव तु मुहूर्तेन वीर्यवन्तौ तपस्विनौ ।
अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च तत्रर्षी संबभूवतुः ७८४
बहुधा पतितं रेतः कलशे च जले स्थले ।
स्थले वसिष्ठस्तु मुनिः संभूत ऋषिसत्तमः ७८५
कुम्भे त्वगस्त्यः संभूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः ।
उदियाय ततोऽगस्त्यः शम्यामात्रो महातपाः ७८६
मानेन संमितो यस्मात् तस्मान्मान्य इहोच्यते ।
यद्वा कुम्भादृषिर्जातः कुम्भेनापि हि मीयते ७८७
कुम्भ इत्यभिधानं च परिमाणाय लक्ष्यते ।
ततोऽप्सु गृह्यमाणासु वसिष्ठः पुष्करे स्थितः ७८८
सर्वतः पुष्करे तं हि विश्वेदेवा अधारयन् ७८९

बृहद्देवता ५।७८३-७८९

निरुक्तमें भी है—

तस्या दर्शनान्मित्रावरुणयो रेतश्चस्कंद ।

निरुक्त ५।१३

तथा सर्वानुक्रमणीमें—

मित्रावरुणयोर्दीक्षितयोरुर्वशीमप्सरसं दृष्ट्वा वासतीवरे कुम्भे रेतोऽपतत्ततोऽगस्त्य-वसिष्ठावजायेताम् । सर्वानुक्रमणी १।१६६

" मित्र और वरुण यज्ञ कर रहे थे । उन्होंने यज्ञकी दीक्षा ली थी । इतनेमें उर्वशी अप्सरा यज्ञस्थानमें आगई । मित्र और वरुणोंने उसे वहां देख लिया । उनका मन विचलित हो गया और उस कारण उनका वीर्य वासतीवर नामक यज्ञपात्रमें गिर पडा । वहां वह वीर्य कुछ समयतक रहा । उसी समय उससे अगस्त्य और वसिष्ठ उत्पन्न हुए। ये बडे तपस्वी तथा विशेष सामर्थ्यवान् थे । यह वीर्य वासतीवर नामक कुम्भमें गिरा, वैसाही वहांके जलमें तथा स्थलमें भी गिर गया था । जो वीर्य भूमि पर गिरा था, उससे महामुनि वसिष्ठ ऋषिका जन्म हुआ । अगस्त्य ऋषि उस कुम्भमें उत्पन्न हुआ और उस जलमें तेजस्वी मत्स्य उत्पन्न हुआ । महातपस्वी अगस्त्य ऋषि शम्याके समान उत्पन्न हुआ । [शम्या वह खीलक है जो गाडीको बैल जोतनेके स्थानपर लगाया होता है । इसकी लंबाई बीस अंगुल होती है ।] अगस्ति ऋषि जन्मके समय इतना सा था । इसका माप लिया था इसलिये इसको यहां ' मान्य ' कहा गया है । अथवा वह कुम्भसे उत्पन्न हुआ इसलिये कुम्भसे भी उसका परिमाण हुआ । कुम्भ यह भी एक मापनेका साधन है । वहांसे जल ले जानेपर वसिष्ठ कमलमें खडा रहा और उस कमलको चारों ओरसे देवोंने सहारा दिया था । " वहांसे निकलनेपर वसिष्ठने बडा तप किया ।

यह कथा जैसी यहां लिखी है वैसी ही हुई होगी, ऐसा दीखता नहीं है । क्योंकि उर्वशीको देखते ही मित्र और वरुण इन दो आदित्योंका वीर्य पतन हो जायगा और वह कुम्भमें इकठ्ठा होगा और वहां इकठ्ठा होते ही उस वीर्यसे इन दो ऋषियोंका जन्म होगा, यह ठीक दीखता नहीं है ।

मित्र और वरुण ये दो देव परस्पर पृथक् हैं, ये एक ही नहीं हैं । इसलिये इन दोनोंका वीर्य एक समय ही किसी एक पात्रमें गिरना यह असंभवसा प्रतीत होता है । अतः यह कथा रूपकात्मक होगी । तथापि इसकी पूरी खोज यहां नहीं हो सकती ।

अगस्ति ऋषि दक्षिण दिशाको निर्भय करनेवाला था । इसने समुद्रके पार भी प्रवास किया था । आज ' क्यांबोडिया ' जिस भूविभागको कहते हैं, वह ' कुम्भज-द्वीप ' ही है । वहां अगस्ति गया था । दक्षिणमें आतापी वातापी ये राक्षस प्रवासियोंका वध करते थे । वहां अगस्ति गया और इस अगस्त्यको उन्होंने नरमांस खिलाया । यह बात जब इसको विदित हुई तब इसने दायां हाथ आगे पेटपर फिराया और कहा कि इसको तो मैंने हजम किया है । इस तरह यह अगस्त्य ऋषि वीर

... इनका प्रचार दक्षिण भारत, वालीद्वीप, जावा, ...त्रा आदिमें हुआ था और वहां उन्होंने वैदिकधर्मका ... प्रचार किया था। वसिष्ठके कुटुंबी भाई ऐसे प्रभावशाली ...।

वसिष्ठके पूर्वज

यहां वसिष्ठके पूर्वजोंका विचार करना चाहिये। इसका वंश-... इस तरह है—

प्रजापति
|
मरीची
|
कश्यप (इसकी १३ स्त्रियां थीं। अदिति, दिति, दनु, ...ला, दनायु, सिंहिका, मुनि, क्रोधा, विश्वा, वरिष्ठा, सुरभि, विनता, कद्रू। ये दक्षकी पुत्रियां थी और कश्यपके साथ विवाहित हुई थीं।)

कश्यप×अदिति
|
१२ आदित्य

[भग--अर्यमा--अंश-- " **मित्र--वरुण** "--धाता- विधाता - विवस्वान--त्वष्टा--पूषा--इन्द्र--विष्णु]

अर्थात् अपने मित्रावरुण कश्यपके पुत्र है। इन मित्रावरुणोंसे पूर्वोक्त प्रकार अगस्त्य और वसिष्ठका जन्म उर्वशीके कारण हुआ। वसिष्ठके पूर्वजोंके विषयमें इतने ही नाम मिलते है। मित्र-वरुण देव थे, आदित्य थे, ऐसा ऊपर कहा है। ये राजा थे ऐसा निरुक्तकार लिखते हैं—

दक्षस्य वाऽदिते जन्मनि व्रते राजाना मित्रावरुणा विवाससि। ऋ० १०।६४।५
जन्मनि व्रते कर्मणि राजानौ मित्रावरुणौ परिचरसि। निरुक्त

यहां मन्त्रके पदोंके आधारसे मित्रावरुण राजा हैं ऐसा निरुक्तकारने कहा है। मंत्रोंमें भी मित्र वरुणको राजा कहा है। विश्वराज्यके शासन कर्ममें ये नियुक्त हुए हैं यह इसका अर्थ है।

ऊपर जो वसिष्ठकी उत्पत्तिकी कथा दी है वह मंत्रोंके पदोंसे भी वैसी ही दीखती है, वे मंत्रभाग ये हैं—

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसो-ऽधिजातः। द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त॥ ऋ० ७।३३।११

" हे ब्रह्मन् वसिष्ठ! तू (मैत्रावरुणः) तू मित्र और वरुणसे जन्मा और (उर्वश्याः मनसः अधिजातः) उर्वशीके मनसे उत्पन्न हुआ है। (द्रप्सं स्कन्नं त्वा) जलमें गिरे हुए तुझे (दैव्येन ब्रह्मणा) दिव्य ज्ञानसे (विश्वेदेवाः त्वा पुष्करे आददन्त) सब देवोंने तुझे कमलमें धारण किया था। "

मित्र और वरुणका मिलकर वसिष्ठ पुत्र है, उर्वशीका प्रभाव मनपर पडा और उससे रेतका पतन हुआ। कमलमें देवोंने इसका धारण किया। इत्यादि कथाके सूचक पद मंत्रमें हैं। इन शब्दोंसे ही पता चलता है कि यह रूपकालंकार है और वास्तविक कथा नहीं है। वसिष्ठके महत्त्वके विषयमें तैत्तिरीय संहितामें निम्न लिखित वचन देखने योग्य है—

ऋषयो वा इन्द्रं प्रत्यक्षं नापश्यन्।
तं वसिष्ठः प्रत्यक्षं अपश्यत्।...
तस्मै एतान् स्तोमभागानब्रवीत्। तै० सं० ३।५।२

' ऋषि इन्द्रका--आत्माका--प्रत्यक्ष दर्शन न कर सके। उसका दर्शन वसिष्ठने किया।' यह वसिष्ठकी श्रेष्ठताका सूचक वचन है। सबसे प्रथम वसिष्ठने इन्द्रका साक्षात् दर्शन किया, इसलिये वसिष्ठ सब ऋषियोंमें श्रेष्ठ और माननीय बना।

मित्रावरुण वसिष्ठके रक्षक

यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं तौ नो मुञ्चतमंहसः।
अथर्व ४।२९।३

" मित्र और वरुण देवोंने कश्यप और वसिष्ठका संरक्षण किया था, वे हमें पापसे मुक्त करें। " अर्थात् वसिष्ठ ऋषि मित्रावरुणोंका प्रिय था। यहां अपने वीर्यसे उत्पन्न होनेके कारण इन्होंने वसिष्ठका संरक्षण किया ऐसा नहीं मान सकते, क्योंकि कश्यपका संरक्षण भी उन्होंने किया था। मित्रावरुणोंका पिता कश्यप था और मित्रावरुण वसिष्ठके पिता थे ऐसा संबंध यहां लगाया जा सकता है। अश्विदेवोंने भी वसिष्ठका संरक्षण किया था—

वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम्। ऋ० १।११२।९

' हे अश्विनौ! तुम जरा रहित हो, तुमने अपने उत्तम संरक्षणके साधनोंसे वसिष्ठका संरक्षण किया था।'

सप्त ऋषियोंमें वसिष्ठकी गणना

विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव। शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुशं- शासः पितरो मृडता नः ॥ अथर्व० १८।३।१६

' हे विश्वामित्र जमदग्नि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गोतम, वामदेव ! अत्रि ऋषिने हमारे घरका संरक्षण किया था। हे हमारे प्रशंसनीय संरक्षको ! उत्तम अन्नोंसे हमें सुखी करो। '

यहां सप्त ऋषियोंमें वसिष्ठकी गणना है। तथा ये ऋषि अन्न देकर सुखी कर सकते हैं, इतना इनका सामर्थ्य है ऐसा इस मंत्रसे दीखता है। ' नम ' का अर्थ ' नमन, अन्न और शस्त्र ' है। अन्न और शस्त्र देकर हमारा संरक्षण करें ऐसा भी भाव इसका हो सकता है।

हितकर्ता वसिष्ठ

अग्निरत्रिं भरद्वाजं गविष्ठिरं प्रावन्नः कण्वं त्रसदस्युमाहवे। अग्निं वसिष्ठो हवते पुरो- हितो मृळीकाय पुरोहितः ॥ ऋ० १०।१५०।५

' अग्नि, अत्रि, भरद्वाज, गविष्ठिर, कण्व और त्रसदस्युका युद्धमें संरक्षण करता है। उस अग्निका गुणगान जनताका हितकर्ता वासिष्ठ करता है, वही मृळीकका हित करता है। ' यहां वसिष्ठको पुरोहित अर्थात् पहिलेसे हित करनेवाला कहा है। वासिष्ठ ऐसे कर्म करता है जिससे सबका हित होता है।

वसिष्ठ देवोंको वन्दन करता है।

देवान् वसिष्ठो अमृतान् ववन्दे ये विश्वा भुवनानि प्रतस्थुः। ते नो रासन्तामुरु- गायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

ऋ० १०।६५।१५; १०।६६।१७

' वासिष्ठ अमरदेवोंको वन्दन करता है, जो देव सब भुवनोंमें जाते हैं। वे हमें प्रशंसनीय धन देवें। हे देवो ! तुम हमारा संरक्षण संरक्षणके उत्तम साधनोंसे करो।

वसिष्ठकी श्रेष्ठता

नि होता होतृषदने विदानः त्वेषो दीदिवाँ असदत्सुदक्षः। अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥

ऋ० २।९।१; वा० य० ११।३६

(विदानः) ज्ञानी (होता) यज्ञकर्ता (त्वेषः दीदिवाँ) तेजस्वी बलवान् (सुदक्षः) उत्तम दक्ष, (अ-दब्ध-व्रत-प्रमतिः) न दबकर कार्य करनेसे जिसकी बुद्धि है ऐसा (सहस्रं-भरः) हजारोंका भरण-पोषण करनेवाला (शुचिजिह्वः) पवित्र भाषण करनेवाला (अग्निः वसिष्ठः) अग्नि समान तेजस्वी वसिष्ठ है।

यह मंत्र वास्तवमें अग्निके वर्णन पर है और यहां वसिष्ठका अर्थ निवासकर्ता है। अग्नि निवास करनेवाला है इसलिये वसिष्ठ है। तथापि अग्निको विशेषण मानकर वसिष्ठका वर्णन करनेवाला यह मंत्र है ऐसा कई मानते हैं और ये कहते हैं कि यह मंत्र वसिष्ठका वर्णन कर रहा है। ज्ञानी, याजक, तेजस्वी, दाता, दक्ष, सतत कर्तव्यकर्म करनेमें तत्पर, सहस्रोंका भरण-पोषणकर्ता, पवित्र भाषण करनेवाला, अग्नि समान दीप्तिमान अग्नि है। इस मंत्रमें ज्ञानीके उत्तम गुण कहे हैं इसमें संदेह नहीं है, पर यह मंत्र वसिष्ठका निःसंदेह वर्णन कर रहा है, ऐसा कहना कठिन है।

सामगान करनेवाला वसिष्ठ

वसिष्ठ ऋषिः त्रिवृत् रथंतरं। वा० य० १३।५७

रथंतर सामका गायक वसिष्ठ ऋषि है। वसिष्ठ ऋषि इस सामगानका योजक है। तथा—

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामाऽऽनुष्टुभस्य हविषो हविर्यत्। धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमाजभारा वसिष्ठः ॥ ऋ० १०।१८१।१

' प्रथ और सप्रथ जिसके नाम हैं, जिसको अनुष्टुभ छन्दके मंत्रद्वारा हवि दिया जाता है, वह रथन्तर साम वसिष्ठ ऋषि तेजस्वी धाता सविता और विष्णुसे प्राप्त करके लाया। '

इस तरह वसिष्ठके उत्तम सामगायक होनेका वर्णन दीखता है।

वसिष्ठका जन्म

विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा। तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठाऽ- गस्त्यो यत्त्वा विश आजभार ॥ १० ॥ उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः। द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वेदेवा पुष्करे त्वाददन्त ॥ ११ ॥ ऋ० ७।३३

हे वसिष्ठ ! (यत् विद्युतः ज्योतिः परि संजिहानं त्वा) जब बिजलीकी ज्योतिका परित्याग करनेवाले तुझको (मित्रावरुणौ अपश्यतां) मित्र तथा वरुणोंने देखा (तत् ते एकं जन्म) वह तेरा एक जन्म है, (यत् त्वा अगस्त्यः) जब तुझे अगस्त्यने (विशः आजभार) प्रजाजनोंमें बाहर लाया। प्रकट किया। हे वसिष्ठ! तू (मैत्रावरुणः असि) तू मित्र वरुणका पुत्र है। हे ब्राह्मण ! (उर्वश्याः मनसः अधिजातः) उर्वशीके मनसे उत्पन्न हुआ है। इस समय (द्रप्सं स्कन्नं) वीर्यका पतन हुआ था (दैव्येन ब्रह्मणा) दिव्य मन्त्रके द्वारा (विश्वे देवा पुष्करे त्वा आददन्त) सब देवोंने कमलमें तुझे धारण किया।

इन दो मंत्रोंमें वसिष्ठके जन्मके संबंधमें बहुत सी बातें हैं ऐसा प्रतीत होता है। मित्र और वरुणने बिजलीका तेज देखा तब उर्वशीके विषयमें उनके मनमें कुछ काम भाव उत्पन्न हुआ। जिससे रेतका स्खलन हुआ और वसिष्ठका जन्म हुआ और सब देवोंने कमलमें उसका धारण किया। यद्यपि इस कथाके ये पद इन मंत्रोंमें हैं। तथापि मित्रवरुणका वीर्य एक समय पतन होना और कुम्भमें इन दोनों ऋषियोंका जन्म होना यह अस्वाभाविकसा प्रतीत होता है। यह कथा इसी वर्णनसे आलंकारिकसी प्रतीत होती है। और अगले मन्त्रमें देखिये-

स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान् त्सहस्रदान उत वा सदानः। यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः ॥१२॥ सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम्। ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो जात- मृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥ १३ ॥ऋ० ७।३३

(सः वसिष्ठः उभयस्य प्र विद्वान्) वह वसिष्ठ द्युलोक और भूलोकका सब ज्ञान रखनेवाला (सहस्रदानः उत वा सदानः) सहस्रों प्रकारके दान देनेवाला अथवा सर्वस्वका दान करनेवाला, (यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्) यमने फैलाये हुए आयुष्य रूपी वस्त्रको बुननेवाला (अप्सरसः परिजज्ञे) अप्सरासे उत्पन्न हुआ। वसिष्ठ अप्सरासे उत्पन्न हुआ। (सत्रे ह जातौ) सत्रमें दीक्षा लिये (नमोभिः इषिता) मन्त्रोंसे प्रेरित हुए मित्रावरुणोंने (कुम्भे रेतः समानं सिषिचतुः) घडेमें अपना वीर्य एक ही समय अथवा समान रीतिसे गिरा दिया। (ततः मध्यात् मानः उदियाय) उसके मध्यसे माननीय अगस्त्य ऋषि उत्पन्न हुआ (ततः वसिष्ठं जातं आहुः) उसके बाद वसिष्ठ जन्मा ऐसा कहते हैं।

भारतोंकी एकता करनेवाला वसिष्ठ

दण्डा इवेद्गोअजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः। अभवच्च पुर एता वसिष्ठ आदित् तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ ६ ॥ऋ० ७।३३

(गो अजनासः दण्डा इव) गौओंको हांकनेके दण्ड जैसे छोटेसे होते हैं वैसे (भरताः अर्भकासः परिच्छिन्नाः आसन्) भरत लोग छोटे बाल बुद्धिवाले और आपसमें विभक्तसे थे। इनका (वसिष्ठः पुरएता अभवत्) इनका अग्रगामी नेता वसिष्ठ हुआ जिससे (आत् इत् तृत्सूनां विशः अप्रथन्त) भरतोंकी प्रजा बढने लगी। भारतीय लोग आपसमें एकता नहीं रखते थे। थोडे थोडे फटकर रहते थे। आपसमें मिलते नहीं थे, इसलिये असंघटित रहनेके कारण पराभूत होते थे। इस कारण ये बालबुद्धि अज्ञानी तथा निर्बल रहते थे और उन्नत नहीं होते थे। ऐसे समय इनका अगुवा वसिष्ठ हुआ। इस वसिष्ठने इस प्रजाकी संघटना की। इनके अन्दर प्रौढता, ज्ञान और संघटित होनेका बल निर्माण किया। इस कारण ये ही लोग बढने लगे और सब प्रकारसे उन्नत हुए। यह वसिष्ठ इस तरह संघटना करनेवालेके रूपमें प्रसिद्ध है।

एवा वसिष्ठ इन्द्रमूतये नॄन् कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति। ऋ० ७।२६।५

'वसिष्ठ मानवोंका संरक्षण करनेके लिये, बलवान् प्रभुका तथा मानवी वीरोंका काव्यगान करता है।' उद्देश्य यहां यह है कि इस स्तोत्रगायनसे मनुष्य वीरतासे प्रभावित हो जाय और वैसी वीरता स्वयं करके दिखावें। वीर बनें और अपना प्रभाव बढावें।

राक्षसोंका नाशक वसिष्ठ

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया: पराशरः शतयातु- र्वसिष्ठः। न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताऽधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥ ऋ० ७।१८।२१

(परा शरः शत-यातुः वासिष्ठः) दूरसे शरसंधान करने- वाला, सैंकडों यातना देनेवालोंको-राक्षसादिकों-दूर करनेवाला, बसानेवाला यह वसिष्ठ है। (त्वायाः) तेरे भक्त (गृहात् प्र अममदुः) घर घरसे तुझे संतुष्ट करते हैं। (ते भोजस्य सख्यं न मृषन्त) वे भोजन देनेवालेकी मित्रताका कदापि विस्मरण नहीं होने देते। (अध सूरिभ्यः सुदिना वि उच्छान्) और इन ज्ञानियोंके लिये उत्तम दिन भी दे देते हैं।

उत्पत्ति होना यह मानव की उत्पत्तिके ज्ञान के अनुसार असंभव है ।

जहां वेदमें वसिष्ठका नाम आता है वहां **'मैत्रावरुणि-र्वसिष्ठः'** ऐसा ही ऋषि दिया जाता है । मंत्रमें भी **'उत असि मैत्रावरुणः वसिष्ठ:'** (ऋ० ७।३३।११) तू मित्र और वरुणसे जन्मा है ऐसा वर्णन है । अप्सरा उर्वशीका दर्शन, कुम्भमें वीर्यका पतन, वहांसे ऋषिकी उत्पत्ति, उर्वशीके पास बालपनमें रहना ये सब वर्णन मंत्रोंमें दीख रहे हैं । ये वर्णन अस्वाभाविक हैं इसलिये ये वर्णन आलंकारिक है ऐसा कइयोंने माना है । आलंकारिक भी किस तरह है, इसका स्पष्टीकरण अवतक किसीने भी नहीं किया है और जो किया है वह समाधानकारक नहीं है ।

उर्वशीको विद्युत् माना है । **'उरु वशे यस्याः'** जिसके वशमें सब विश्व है वह विद्युत् यह उर्वशी है और वह अप्सरा (जलमें संचार करनेवाली) है । मित्र (हैड्रोजन) वायु है और वरुण प्राण वायु (आक्सिजन) है । इन दोनों वायुओंके मिलनेसे जल निर्माण होता है । इस जलका नाम वेदमें 'रेतस्' है । इस तरह मित्रावरुण जल निर्माण करते हैं । यह अलंकार यहां है ऐसा कइयोंका कथन है । पर इस रेतसे अगस्ति और वसिष्ठ उत्पन्न होते हैं वे कौन हैं । यह प्रश्न अनिर्णीतसा रहता है । और यही मुख्य प्रश्न है । वसिष्ठका अर्थ निवास करनेवाला ऐसा है । निवासके हेतु पृथिवी, जल, अग्नि, वायु ये सब हैं अतः इनको वसिष्ठ नहीं कहा जायगा और ये मन्त्र-द्रष्टा ऋषि भी नहीं हैं । 'मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः' यह मंत्रद्रष्टा ऋषि है और वह मित्र-वरुणसे हुआ है ।

कई कहते हैं कि उर्वशी अप्सरा थी । अप्सराका संबंध देवोंसे होता था वैसा इस अप्सराका संबंध मित्र और वरुणसे हुआ और उस अप्सरामें अगस्ति और वसिष्ठका संयुक्त जन्म हुआ । अर्थात् ये जुडे भाई हैं । प्रथम अगस्ति जन्मा और पश्चात् वसिष्ठ जन्मा । और कुम्भ और कमलकी कल्पना गर्भाशयपर की है । यह मत संभवनीय है । पर इसमें भी दो पुरुषोंका संबंध एक स्त्रीसे होनेपर जुडे भाइयोंकी उत्पत्तिकी संभावना है या नहीं यह गर्भशास्त्रके साथ संबंध रखनेवाला प्रश्न है । एक पुरुषके वीर्यसे उसी समय दो बीजाणु गर्भाशयमें जाकर दो संतान एक गर्भसे तो होंगे । पर पृथक् समयमें दो पुरुषोंके संबंधसे जुडे भाइयोंका गर्भ धारण होगा या नहीं यह एक अन्वेषणीय विषय है । एक स्त्रीके साथ एक ही समय दो पुरुषोंका संबंध होना असंभवनीय है । पृथक् समयमें हुआ तो दोनोंके वीर्यसे एक स्थानपर गर्भधारण होगा तो वह एक असाधारणसी बात होगी ।

ऐसी अनेक आपत्तियां यहां होगी । इनका निर्णय अवतक नहीं हुआ । इसलिये वसिष्ठ ऋषिकी उत्पत्तिका वर्णन इस समयतक अनिर्णीतसा है । ऐसा ही समझना उचित है ।

दक्षिणकी ओर शिखा

वसिष्ठ तथा वसिष्ठ गोत्रियोंका वर्णन **"दक्षिणतः कपर्दाः"** दक्षिणकी ओर शिखावाले ऐसा किया है । सीधी बाजूपर इनकी शिखा थी । इस समय हम सिरके मध्यमें परंतु पीठकी ओर शिखा रखते हैं । वसिष्ठ गोत्रके ऋषि सिरमें दक्षिणकी ओर शिखा रखते थे ।

वसिष्ठ सुदास पैजवन राजाका पुरोहित था और वसिष्ठके कारण सुदासकी विशेष उन्नति हुई ऐसा ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा है—

प्रोवाच वसिष्ठः सुदासे पैजवनाय ते ह ते सर्व एव महज्जग्मुरेतं भक्षं भक्षयित्वा सर्वे है-व महाराजा आसुरादित्य इव ह स्म श्रियां प्रतिष्ठिताः । ऐ० ब्रा० ७।३४

तथा—

एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण वसिष्ठः सुदासं पैजवनमभिषिषेच तस्मादु सुदाः पैजवनः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मध्येनेजे । ऐ० ब्रा० ८।२१

'सुदास पैजवन राजाके लिये यह विद्या वसिष्ठने सिखायी, जिससे वह बडा दिग्विजय करनेमें समर्थ हुआ, महाराजा हुआ और सब प्रकारकी संपदाओंसे युक्त हुआ । ' 'वसिष्ठने सुदास पैवजन राजाको इस ऐन्द्र महाभिषेकसे राज्याभिषेक किया । इससे वह राजा सब दिशाओंमें पृथ्वीका विजय करनेमें समर्थ हुआ और उसने अश्वमेध भी किया । ' वसिष्ठ ऋषि जिसके साथ रहता था उसका इसी तरह अभ्युदय होता था । इससे पता चलता है कि वसिष्ठका संघटनाचातुर्य बहुत था । इस सुदास पैजवनका उल्लेख निम्नलिखित मंत्रमें है—

चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः... ।
सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति ॥ २३ ॥
दिवोदासं न पितरं सुदासः ।
अविष्टना पैजवनस्य केतं... ॥ २५ ॥ ऋ० ७।१८

' पिजवन पुत्र सुदास राजाके दानमें दिये, सुवर्णालंकारोंसे लदे चार घोडे बालबच्चोंको ले चलते हैं। दिवोदासके समान सुदासकी सहायता करो। पिजवन पुत्र सुदासके घरकी सुरक्षा करो। '

इस विषयमें ये मंत्र (संख्या १६८ और १७०) देखो ।

वसिष्ठ और विश्वामित्रके झगडेका उल्लेख वेदमंत्रोंमें है ऐसा सायन भाष्य, षड्गुरु भाष्य ऋ० ७।३२; ऋ० ३।५३ आदि स्थानोंमें लिखा है। ऋ० ३।५३।२१-२४ ये चार मंत्र वसिष्ठ के द्वेषका वर्णन करनेवाले है, ऐसा कई मानते हैं। बृहद्देवतामें वैसा लिखा है। इस कारण वसिष्ठ गोत्रमें उत्पन्न दुर्गाचार्यने इन मंत्रोंका अर्थ किया नहीं। यह सब ये लोग लिखते हैं, परंतु मंत्रोंका स्पष्ट अर्थ ऐसा दीखता नहीं है, इसलिये इस विषयका विवरण यहां करनेकी कोई जरूरत हमें दीखती नहीं है। जो भाव मंत्रमें स्पष्ट है वही हम विश्वास योग्य मानते हैं।

हरिश्चन्द्रके राजसूय यज्ञमें वसिष्ठ ब्रह्मा था—

तस्य ह विश्वामित्रो होतासीत्, जमदग्नि रध्वर्युर्वसिष्ठो ब्रह्माऽयास्य उद्गाता ।
ऐ० ब्रा० ७।१६

हरिश्चन्द्रके राजसूय यज्ञमें मिश्वामित्र होता, जमदग्नि अध्वर्यु तथा वसिष्ठ ब्रह्मा था और अयास्य उद्गाता था। इस तरह विश्वामित्र और वसिष्ठ एक ही यज्ञमें थे और श्रेष्ठ ब्रह्माका स्थान वसिष्ठ ऋषिको प्राप्त था। अर्थात् विश्वामित्रको भी वसिष्ठकी श्रेष्ठता मान्य थी।

वसिष्ठ कुलके ब्राह्मण प्राथमिक समयमें यज्ञके लिये योग्य समझे जाते थे। देखो षड्विंश ब्राह्मण १।५, पश्चात् सब ब्राह्मण यज्ञके लिये योग्य समझे जाने लगे। इसका अर्थ यह है कि एक ऐसा समय था कि जिस समयमें वसिष्ठ कुलके पास ही यज्ञकी विद्या थी। वह विद्या इनसे अन्य ब्राह्मणोंको प्राप्त हुई। ये ऋषि आपसमें स्पर्धा भी करते थे। देखिये—

विश्वामित्र-जमदग्नी वसिष्ठेनास्पर्धेतां स एतज्जमदग्निर्विहव्यमपश्यत्तेन वै स वसिष्ठस्येन्द्रियं वीर्यमवृंक्त । तै० सं० ३।१।७।३

विश्वामित्र और जमदग्नि वसिष्ठके साथ स्पर्धा करने लगे। जमदग्निने यह विहव्य नामक यज्ञ देखा। उससे वह वसिष्ठके सामर्थ्यको प्राप्त हुआ। इसमें स्पर्धा है, पर यह स्पर्धा यज्ञकी खोजकी है। दश सूक्तोंका एक यज्ञ होता है तो दूसरा १५ सूक्तोंका होगा। इस दस सूक्तोंके यज्ञसे वह पंदरह सूक्तोंका यज्ञ अधिक प्रभावी होता है। इनकी स्पर्धा यह थी। वसिष्ठ ऋषिका महत्त्व विशेष था। वैसा महत्त्व हम प्राप्त करेंगे ऐसी स्पर्धा इनमें थी।

वसिष्ठ तथा इनके कुलमें उत्पन्न हुए ऋषियोंका नाम ' तृत्सु ' ऐसा भी आया है। वेद मंत्रमें इस शब्दका प्रयोग है। पर वहां इसका अर्थ ' अपनी उत्कर्षकी इच्छा करनेवाला ' ऐसा है।

दत्तक पुत्रकी निंदा

वसिष्ठके सूक्तमें दत्तक पुत्रकी प्रशंसा नहीं है, प्रत्युत निंदा है—

(५३) **अन्यजातं शेषः नास्ति ।** ऋ० ७।४।७
(५४) **अन्योदर्यं मनसा मन्तवै नाहि ।** ऋ० ७।४।८

' दूसरेका पुत्र अपना औरस पुत्रकी योग्यता नहीं पा सकता। दूसरेके पुत्रको अपना औरस जैसा मानना कल्पनामें भी नहीं आ सकता। ' यह दत्तक पुत्रकी निंदा ही है। अर्थात् औरस संतान होनी चाहिये यह इसका तात्पर्य है। वसिष्ठ ऋषि औरस पुत्रको श्रेष्ठ मानता है। जहां औरस संतान नहीं है उस घरमें रहना भी नहीं चाहिये। पुत्र-पौत्र विहीन घर रहने योग्य-नहीं है। ऋषि लोग इस विचारके थे। आजन्म ब्रह्मचर्य, आजन्म यति बनकर रहना, यह ऋषियोंकी कल्पनामें भी नहीं था। वसिष्ठ ऋषि पुत्र-पौत्रवान् था और संतानसहित रहना ही उसको संमत था।

महामृत्युंजय मंत्र

ऋ० ७।५९।१२ " **त्र्यंबकं यजामहे** " यह मंत्र महा-मृत्युंजयके नामसे प्रसिद्ध है। यह वसिष्ठ ऋषिका देखा मंत्र है। इसके जपसे अपमृत्यु दूर होता है, छोटी मोटी व्याधियां तथा शारीरिक क्लेश दूर होते हैं। इस विषयमें यह सुप्रसिद्ध मंत्र है। तै० सं० में कहा है—

वसिष्ठो हतपुत्रोऽकामयत विन्देयं प्रजामभि सौदासान् भवेयमिति स एतमेकस्मान्न पञ्चाशमपश्यत्तमाहरत्तेनायजत ततो वै

सोऽविन्दत प्रजामभि सौदासानभवत् ।
तै० सं० ७।४।७

" पुत्रोंकी मृत्यु होनेपर वसिष्ठने इच्छा की कि मुझे संतान उत्पन्न हो और मैं शत्रुका नाश करूं। उसने उनपचास यागोंको देखा और उसने इस यज्ञको किया । इससे वह पुत्रवान हुआ और शत्रुओंका भी इसीसे इसने पराभव किया। इसी तरह और कहा है—

ऋषयो वा इन्द्रं प्रत्यक्षं नापश्यन्, तं वसिष्ठः प्रत्यक्षमपश्यत्, सोऽब्रवीद्, ब्राह्मणं ते वक्ष्यामि, यथा त्वत्पुरोहिताः प्रजाः प्रजनयिष्यन्ते, अथ मा इतरेभ्य ऋषिभ्यो मा प्रवोच इति, तस्मा एतान् स्तोमभागानब्रवीत्ततो वसिष्ठ-पुरोहिताः प्रजाः प्राजायन्त, इति । तै० सं० ३।५।२

' सब ऋषिलोग इन्द्रको प्रत्यक्ष देखनेमें असमर्थ रहे । वसिष्ठ ऋषिने अपनी दिव्य दृष्टिसे उसे देखा । उस इन्द्रने उस वसिष्ठ ऋषिसे कहा कि ' मैं तुम्हें मंत्रोंका उपदेश करूंगा, इससे तू ही सब प्रजाओंमें मुख्य पुरोहित हो जायगा । पर तुम ये मंत्र अनधिकारियोंको न बताना । ' ऐसा कहकर उस इन्द्रने वसिष्ठ को उन मंत्रोंका उपदेश किया । इससे सब प्रजाओंमें वसिष्ठ श्रेष्ठ हुआ । इस वसिष्ठका श्रेष्ठत्व सबने मान्य किया था ।

विपाश नदीमें वसिष्ठशिला और कृष्णशिला इस नामके दो आश्रम स्थान हैं जहां वसिष्ठने तप किया था ऐसा गोपथ ब्राह्मण १।२।८ में कहा है। इन्द्रकी कृपासे वसिष्ठ सब लोगोंका पुरोहित हुआ ऐसा वहां ही (गो० १।२।१३ में) कहा है।

(२) द्वितीय वसिष्ठ

स्वायंभुव मन्वंतरमें ब्रह्मदेवके दस मानसपुत्रोंमें एक मानसपुत्र वसिष्ठ था । यह ब्रह्मदेवके प्राणसे उत्पन्न हुआ ।

प्राणाद्वसिष्ठः संजातः । श्रीभाग० ३।१२।२३

ब्रह्मदेवके प्राणसे वसिष्ठ उत्पन्न हुआ । यह ब्रह्मदेवका मानस-पुत्र है । इसकी दो पत्नियां थी, एक अरुंधती और दूसरी ऊर्जा । कर्दम नामक प्रजापतिकी नौ कन्याओंमें आठवी अरुंधती है । ऊर्जासे वसिष्ठको छः पुत्र हुए--

**ऊर्जायां जज्ञिरे पुत्रा वसिष्ठस्य परंतप ।
चित्रकेतु प्रधानास्ते सप्त ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥४०॥
चित्रकेतुः सुरोचिश्च विरजा मित्र एव च ।
उल्बणो वसुभृद्यानो द्युमान् शक्त्यादयोऽपरे ॥ ४१ ॥** श्री० भाग० ४।१

वसिष्ठकी ऊर्जामें चित्रकेतु, सुरोचि, विरजा, मित्र, उल्बणः, वसुभृत् ये पुत्र हुए । शक्ति आदि इसीके अन्य पुत्र हैं । इसके अतिरिक्त हवीन्द्र, सुकाल आदि अनेक पुत्र अन्यान्य पत्नियोंमें वसिष्ठको हुए थे ।

ब्रह्माण्ड पुराण २।१२।३९-४३ में लिखा है कि ब्रह्माके समान प्राणसे वसिष्ठकी उत्पत्ति हुई है । यह दक्षका दामाद और शंकरका श्यालक है । दक्षकन्या ऊर्जामें इसको आठ पुत्र हुए । हरिवंशमें १।२ में भी कथा है, जिसमें वसिष्ठको वीर नामक पुत्र उत्पन्न होनेका वर्णन और उससे अनेक संतानें हुई, ऐसा भी वर्णन है ।

(३) तृतीय वसिष्ठ

महादेवके शापसे ब्रह्मदेवके मानसपुत्र दग्ध हुए थे । वे फिरसे ब्रह्मदेवने इस मन्वंतरमें उत्पन्न किये । उस समय अग्निके मध्यसे यह वसिष्ठ उत्पन्न हुआ । यहां इसका विवाह अक्षमालाके साथ हुआ । इस अक्षमालाके विषयमें मनुस्मृतिमें ऐसा लिखा है ।

**अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा ।
शारंगी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम् ॥**
मनु० ९।२३

" अक्षमाला वसिष्ठके साथ विवाहित होनेसे तथा शारंगी मन्दपालसे विवाहित होनेसे अधमयोनीमें उत्पन्न होनेपर भी जगत्को वन्दनीय बनी । " अर्थात् अक्षमाला नीच जातीमें उत्पन्न हुई थी, पर वह भी वसिष्ठकी पत्नी बनी और पवित्र हुई । जगत् उसको वन्दन करने लगा । कई लोग मानते हैं कि अक्षमाला और अरुंधति प्रथक् स्त्रियां हैं, परंतु कइयोंकी संमति यह है कि ये दो नाम एकही स्त्रीके हैं ।

(४) चतुर्थ वसिष्ठ

निमिने शाप दिया । इसके अनंतर वसिष्ठ वायुरूपसे ब्रह्म-देवके पास गया । वहां ब्रह्मदेवकी इच्छानुसार मित्रावरुणोंके

वीर्यसे कुम्भमें उत्पन्न हुआ। यह कथा वा० रामा० में है तथा मत्स्यपुराणमें भी है। देखिये-

यस्तु कुम्भो रघुश्रेष्ठ तेजः पूर्णो महात्मनोः।
तस्मिंस्तेजोमयौ विप्रौ संभूतावृषिसत्तमौ ४
पूर्वं समभवत्तत्र ह्यगस्त्यो भगवानृषिः।
नाहं सुतस्तवेत्युक्त्वा मित्रं तस्मादपाक्रमत् ५
तद्धि तेजस्तु मित्रस्य उर्वश्याः पूर्वमाहितम्।
तस्मिन्समभवत्कुम्भे तत्तेजो यत्र वारुणम् ६
कस्यचित्त्वथ कालस्य मित्रावरुणसंभवः।
वसिष्ठस्तेजसा युक्तो जज्ञे चेक्ष्वाकुदैवतम् ७
तमिक्ष्वाकुर्महातेजा जातमात्रमनिन्दितम्।
वव्रे पुरोहितं सौम्य वंशस्यास्य भवाय नः ८
एवं त्वपूर्वदेहस्य वसिष्ठस्य महात्मनः।
कथितो निर्गमः सौम्य ९

वा. रा. उ. का. ५७

'उस कुम्भमें तेजस्वी दो ब्राह्मण उत्पन्न हुए। प्रथम अगस्ति ऋषि उत्पन्न हुआ। जहां मित्र और वरुणका तेज था वहांसे वसिष्ठ ऋषि उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही राजा इक्ष्वाकुने इस वसिष्ठको अपना पुरोहित बनाया, जिससे हमारे वंशका यश बढ गया। वसिष्ठकी अपूर्व उत्पत्तिका वृत्तान्त यह है।' यह वृत्तांत यहां श्री रामचंद्रने भाई लक्ष्मणको कहा था।

वसिष्ठके विषयमें इतनी सामग्री मिलती है। इससे कुछ और अधिक सामग्री है पर वह वसिष्ठ-विश्वामित्रके झगडेकी है, वह मंत्रों द्वारा सिद्ध नहीं होती इसलिये यहां नहीं दी है। इस विषयके सायण भाष्यके वाक्य हम आगे देंगे। तथा जिन मंत्रोंमें वासिष्ठ नाम है वे मंत्र भी देंगे। इनका विचार पाठक स्वयं भी कर सकते हैं।

वसिष्ठके ग्रन्थ

वसिष्ठ स्मृति एक प्रसिद्ध स्मृति है। वसिष्ठ धर्मसूत्र भी है। मिताक्षरामें वसिष्ठ धर्मशास्त्रके वचन उद्धृत किये हैं। वासिष्ठके ग्रंथमें वेदवचन बहुत आते हैं। वास्तुशास्त्रपर भी वसिष्ठका एक ग्रंथ है। वसिष्ठ ऋषिके गोत्रप्रवरकार अनेक हैं जो मत्स्यपुराणमें अ० २०० में दिये हैं।

वसिष्ठ कुलके मंत्रद्रष्टा ऋषि

वसिष्ठ कुलमें मंत्रद्रष्टा ऋषि हुए जिनके नाम ये हैं— **इन्द्रप्रमति, कुंडिन, पराशर, बृहस्पति, भरद्वसु, भरद्वाज, मैत्रावरुण, वसिष्ठ, शक्ति, सुद्युम्न** इनका वर्णन वायुपुराण १।५९।१०५-१०६ में, मत्स्यपुराण १४५।१०९-११०; ब्रह्माण्डपुराण २।३२।११५-११६ में है। प्रत्येक पुराणमें यह संख्या न्यून वा अधिक है।

वसिष्ठका उल्लेख करनेवाले मंत्र

अब हम वेदमंत्रोंमें जहां जहां वसिष्ठ नाम आया है वे मंत्र देते हैं-

कुत्स आंगिरस ऋषिके मंत्रोंमें। देवता-अश्विनौ

'वसिष्ठं' याभिरजरावजिन्वतम्। ऋ. १।११२।९

गृत्समद ऋषिके मंत्रोंमें। देवता-अग्निः।

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत् सुदक्षः। अदब्धव्रतप्रमति 'र्वसिष्ठः' सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः॥

ऋ० २।९।१; वा० य० ११।३६

वसिष्ठ ऋषिके मंत्रोंमें। देवता-अग्निः

आ यस्ते अग्न इधते अनीकं 'वसिष्ठ' शुक्र दीदिवः पावक। उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः॥

ऋ० ७।१।८

नू त्वामग्न ईमहे 'वसिष्ठा' ईशानं सूनो सहसो वसूनाम्। इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ऋ० ७।७।७

त्वामग्ने समिधानो 'वसिष्ठो' जरूथं हन् यक्षि राये पुरंधिम्। पुरुणीथा जातवेदो जरस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः। ऋ० ७।९।६

त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभि- 'र्वसिष्ठाः'। त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ऋ० ७।१२।३

देवता इन्द्रः

धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे 'वसिष्ठः'। त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा ऽऽ न इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ॥ ४॥

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातु-र्वसिष्ठः'। न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताऽधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥ २१ ॥ ऋ० ७।१८

मो षु त्वा अत्र वाघतश्चनारे अस्मन्नि रीरमन्। आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥

बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ते 'वसिष्ठो' अर्चति प्रशस्तिम्। इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥ ऋ० ७।२२।३; अथर्व २०।११७।३

उत ब्रह्माण्यैरयत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया 'वसिष्ठ'। आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥ १ ॥ साम० ३।१३।३

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः। स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥

ऋ० ७।२३; वा० य० २०।५४ अथर्व २०।१२।१

एवा 'वसिष्ठ' इन्द्रमूतये नृन् कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति। सहस्रिण उप नो माहि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।

ऋ० ७।२६।५

देवता— इन्द्रो वसिष्ठो वा

श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः। उत्तिष्ठन् वोचे परि बर्हिषो नॄन् न मे दूरादवितवे 'वसिष्ठाः' ॥ १ ॥

दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम्। पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्सुतादिन्द्रोऽवृणीता 'वसिष्ठान्' ॥ २ ॥

एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान। एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो 'वसिष्ठाः' ॥ ३ ॥

जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितॄणामक्षमव्ययं न किला रिषाथ। यच्छक्वरीषु बृहता रवेणेन्द्रे शुष्ममदधाता 'वसिष्ठाः' ॥ ४ ॥

उद् द्यामिवेत् तृष्णजो नाथितासोऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः। 'वसिष्ठस्य' स्तुवत इन्द्रो अश्रोदुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम् ॥ ५ ॥

दण्डा इवेद्गोअजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः। अभवच्च पुरएता 'वसिष्ठ' आदित् तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ ६ ॥

त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः। त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वाँ इत्ताँ अनु विदुर् 'वसिष्ठाः' ॥ ७ ॥

सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः। वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो 'वसिष्ठा' अन्वेतवे वः ॥ ८ ॥

त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति। यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उप सेदुर् 'वसिष्ठाः' ॥ ९ ॥

विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा। तत्ते जन्मोतैकं 'वसिष्ठा'ऽगस्त्यो यत्त्वा विश आजभार ॥ १० ॥

उतासि मैत्रावरुणो 'वसिष्ठो'र्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः। द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥ ११ ॥

स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान् त्सहस्रदान उत वा सदानः। यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे 'वसिष्ठः' ॥ १२ ॥

सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम्। ततो ह मान उदियाय मध्यात् ततो जातमृषिमाहुर् 'वसिष्ठम्' ॥ १३ ॥

उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत्प्र वदात्यग्रे। उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो 'वसिष्ठः' ॥ १४ ॥ ऋ० ७।३३

देवता—विश्वेदेवाः

त्वामिन्द्र स्वयशा ऋभुक्षा वाजो न साधुरस्तमेष्यृक्वा। वयं नु ते दाश्वांसः स्याम ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो 'वसिष्ठाः' ॥४॥ ऋ० ७।३७

नू रोदसी अभिष्टुते 'वसिष्ठै' ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः। यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ ऋ. ७।३९

एवाग्निं सहस्यं 'वसिष्ठो' रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत्। इषं रयिं पप्रथद् वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥ ऋ० ७।४२

देवता- मरुतः

न हि वश्चरमं चन 'वसिष्ठः' परिमंसते।

अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः ॥ ३ ॥ ऋ. ७।५९ साम ३।५।०

देवता- अश्विनौ

यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान् कृतब्रह्मा समर्यो भवाति । उप प्रयातं वरमा 'वसिष्ठ' मिमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम् ॥६॥ ऋ० ७।७०

अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् । श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो 'वसिष्ठः' ॥ ३ ॥ ऋ० ७।७३

देवता- उषसः

प्रति त्वा स्तोमैरीळते 'वसिष्ठा' उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः । गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥ ६ ॥

एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते 'वसिष्ठैः' । दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ ऋ० ७।७६

यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः । सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥ ऋ० ७।७७

प्रति स्तोमेभिरुषसं 'वसिष्ठा' गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् । विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥ ऋ० ७।८०

देवता- वरुणः

अव द्रुग्धानि पित्र्या सृजा नोऽव या वयं चकृमा तनूभिः । अव राजन्पशुतृपं न तायुं सृजा वत्सं न दाम्नो 'वसिष्ठम्' ॥ ५ ॥ ऋ० ७।८६

'वसिष्ठं' ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महोभिः । स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन् यादुषासः ॥ ४ ॥ ऋ. ७।८८

प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं 'वसिष्ठ' मीळ्हुषे भरस्व । य ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम् ॥ १ ॥ ऋ० ७।८८

देवता- इन्द्रवायू

अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभि 'र्वसिष्ठाः' । वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७ ॥ ऋ. ७।९०

देवता- सरस्वती

अयमु ते सरस्वति 'वसिष्ठो' द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः । वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ६ ॥ ऋ० ७।९५

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम् । सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥ १ ॥ भद्रमिद्भद्रा कृणवत्सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती । गृणाना जमदग्निवत्स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥३॥ ऋ० ७।९६

देवता- पितरः

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं 'वसिष्ठाः' । तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ८ ॥

ऋ० १०।१५; अथर्व० १८।३।४६

देवता- विश्वेदेवाः

देवान् 'वसिष्ठो' अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनानि प्रतस्थुः । ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १५ ॥

ऋ० १०।६५; १०।६६।१५

'वसिष्ठासः' पितृवद्वाचमक्रत देवाँ ईळाना ऋषिवत्स्वस्तये । प्रीता इव ज्ञातयः काममेत्यास्मे देवासोऽव धूनुता वसु ॥१४॥ ऋ० १०।६६

देवता- उर्वशी

अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः । उप त्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठान्नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे ॥ ७ ॥ ऋ. १०।९५

देवता- अग्निः

नि त्वा 'वसिष्ठा' अह्वन्त वाजिनं गृणन्तो अग्ने विदथेषु वेधसः । रायस्पोषं यजमानेषु धारय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

ऋ० १०।१२२

अग्निरत्रिं भरद्वाजं गविष्ठिरं प्रावन्नः कण्वं त्रसदस्युमाहवे । अग्निं 'वसिष्ठो' हवते पुरोहितो मृळीकाय पुरोहितः ॥ ५ ॥

ऋ. १०।१५०

देवता—विश्वेदेवाः ।

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामाऽऽनुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् । धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा 'वसिष्ठः'॥ १ ॥ ऋ० १०।१८१

यजुर्वेदमें 'वसिष्ठ' पदवाले मंत्र

त्रिवृतो रथन्तरं, 'वसिष्ठ' ऋषिः ।

वा. य. १३।५४; काण्व १४।५७

वसिष्ठहनुः । वा. य. ३९।८; काण्व य. ३९।६।१

अथर्ववेदमें वसिष्ठ पदवाले मंत्र

ऋषिः-मृगारः । देवता—मित्रावरुणौ

यावङ्गिरसमवथो यावगस्तिं मित्रावरुणा जमदग्निमत्रिम् । यौ कश्यपमवथो यौ 'वसिष्ठं' तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥ अथर्व ४।२९।३

ऋषिः- शन्तातिः । देवता-चंद्रमाः ।

श्रेष्ठमसि भेषजानां 'वसिष्ठं' वीरुधानाम् । सोमो भग इव यामेषु देवेषु वरुणो यथा ॥

अथर्व ६।२१।२

ऋषिः विश्वामित्रः । देवता-वनस्पतिः ।

शतं या भेषजानि ते सहस्रं संगतानि च । श्रेष्ठमास्रावभेषजं 'वसिष्ठं' रोगनाशनम् ॥

अथर्व. ६।४४।२

ऋषिः—कौशिकः । देवता-वैश्वानरोऽग्निः ।

यदृदीव्यन्नृणमहं कृणोम्यदास्यन्नग्न उत संगृणामि । वैश्वानरो नो अधिपा 'वसिष्ठ' उदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ॥ १ ॥ अथर्व ६।११९

ऋषिः ब्रह्मा । देवता—आयुः बृहस्पतिः अश्विनौ च ।

सं क्रामतं मा जहीतं शरीरं प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम् । शतं जीव शरदो वर्धमानोऽग्निष्टे गोपा अधिपा 'वसिष्ठः' ॥ २ ॥ अथर्व ७।५५

ऋषिः अथर्वा । देवता--यमः

विश्वामित्र जमदग्ने 'वसिष्ठ' भरद्वाज गोतम वामदेव । शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुसंशासः पितरो मृडता नः ॥ १६ ॥ अथर्व १८।३

सायनभाष्यमें वसिष्ठ

'वसिष्ठ' के विषयके मंत्र ऊपर दिये हैं, इनपरके सायनभाष्यमें वसिष्ठके विषयमें जो लिखा है, उसमेंसे आवश्यक भाग यहां हम पाठकोंके विचारार्थ देते हैं। इससे वसिष्ठके विषयमें क्या क्या पूर्वाचार्योंने लिखा है, सो पाठकोंके सामने आ जायगा। देखिये—

(ऋ. २।९।१) वसिष्ठः सर्वस्य वासयितृतमः ।

(ऋ. ७।१८।२१) पराशरः शतयातुः बहुरक्षाः । बहूनि रक्षांसि बाधितुं यं कामयन्ते शतयातुः बहूनां रक्षसां शातयिता । शक्तिर्वसिष्ठश्चैवमाद्यो ये ऋषयः ।

(ऋ. ७।३३।३) भेदं भेदनामकं शत्रुं अपि एभिर्वसिष्ठैः एव जघान ।

(७।३३।१०) एतासु ऋक्षु वसिष्ठस्य एव देह परिग्रहः प्रतिपाद्यते । एताश्च इन्द्रस्य वाक्यमित्येके वर्णयन्ति, अपरे वसिष्ठपुत्राणामिति । हे वसिष्ठ! यद्यदा विद्युतो विद्युत इव स्वीयं ज्योतिः देहान्तरपरिग्रहार्थं परिसंजिहानं परित्यजन्तं त्वा त्वां जिघृक्षितं देहार्थं स्वीयं ज्योतिः परिसंजिहानं पारत्यजन्तं परिजिघृक्षन्तं मित्रावरुणौ अपश्यताम् । आवाभ्यां अयं जायेत इति समकल्पताम् । तत् तदा ते तव एकं जन्म । उत अपि च यत् यदा अगस्त्यो विशः निवेशनात् मित्रावरुणौ आवां जनयिष्याव इत्येतस्मात् पूर्वावस्थानात् त्वां आजभार आजहार ।

(७।३३।११) हे वसिष्ठ ! मित्रावरुणयोः पुत्रोऽसि । हे ब्रह्मन् वसिष्ठ ! उर्वश्या अप्सरसो मनसो 'मम अयं पुत्रः स्यादिति' ईदृशात् संकल्पात् द्रप्सं रेतः मित्रावरुणयोः उर्वशी दर्शनात् स्कन्नं आसीत् । तस्मात् अधिजातः असि । एवं जातं त्वां दैव्येन ब्रह्मणा वेदराशिना अहं भुवा युक्तं पुष्करे विश्वे देवा अददन्त अधारयन्त ।

वसिष्ठाः वसिष्ठगोत्रा ऋषयः ।

(७।८८।४) **वसिष्ठं खलु वरुणो नावि स्वकीयायां आधात् आरोहयत् । तदा तं ऋषिं अवोभिः रक्षणैः स्वपां स्वपसं शोभनकर्माणं चकार ।**

अथर्व-सायणभाष्ये

(अथर्व ६।२१।२) **हे हरिद्रादिरूप भेषज ! अन्येषां भेषजानां श्रेष्ठं प्रशस्यतमं असि अमोघवीर्यत्वात् । तथा वीरुधानां अन्यासां वीरुधां वसिष्ठं वसुमत्तमं मुख्यं असि ।**

[यहां वसिष्ठका अर्थ ' श्रेष्ठ, विशेष वीर्यवान् ' है। यह औषधिका विशेषण है । ऋषिका नाम नहीं है ।]

(अथर्व. ६।४४।२) **सहस्रसंख्याकानि औषधानि सन्ति तेषां मध्ये श्रेष्ठं प्रशस्ततमं आस्रावभेषजं रक्तस्रावस्य निवर्तकं एतत् क्रियमाणं कर्म अत एव वसिष्ठं वासयितृतमं रोगनाशनम् ।**

[यहां भी वसिष्ठ पदका अर्थ रोगनाश करके अच्छी तरह निवास करनेवाला ऐसा है। वसिष्ठ ऋषिके साथ इसका संबंध नहीं है ।]

(अथर्व ६।११९।१) **अधिपाः अधिकं पालयिता वसिष्ठ वासयितृतमः एवं भूतो अग्निः ।**

[यहां वसिष्ठका अर्थ निवास करानेवाला ऐसा अर्थ है । वसिष्ठ ऋषिका यहां संबंध नहीं है ।]

(अथर्व ७।५५।२) **अग्निः...वसिष्ठः वासयितृतमः वसुमत्तमो वा भवतु ।**

[यहां अग्निका विशेषण वसिष्ठ है जिसका अर्थ निवास करानेवाला ऐसा है । यह वसिष्ठ ऋषिका वाचक नहीं है ।]

अथर्ववेदके मंत्रोंमें जो तो ऋग्वेदके मंत्र हैं उनमें वसिष्ठ ऋषिका नाम आया है ऐसा प्रतीत होता है, परंतु अन्य मंत्रोंमें वसिष्ठ ऋषिका कोई संबंध नहीं है। यहां ये मन्त्र इसलिये दिये हैं कि वेदमें ' वसिष्ठ ' पद ऋषि वाचक न होता हुआ, केवल यौगिक अर्थ " निवास करनेवाला " ऐसा अर्थ बतानेवाला है यह स्पष्ट सिद्ध हो जाय । अथर्ववेदमें वसिष्ठ यह औषधका तथा अग्निका विशेषण है। ऋग्वेदमें भी कई स्थानपर वसिष्ठ पद विशेषणके रूपमें आया है । अन्य स्थानोंमें जो कथा रची गयी है वैसा भाव बतानेवाले मंत्र हैं। पर वह कथा रूपकालंकारिक है, इतिहास की प्रतीत नहीं होती। यह इससे पूर्व बताया है ।

पूर्वस्थानमें ३।४ वसिष्ठ ऋषियोंका हमने वृत्त दिया है। इनमें कौनसा ऋषि ऋग्वेदके सप्तम मंडलका द्रष्टा है यह निश्चय करना कठिन है। इसकी अधिक खोज होनी चाहिये । पर जो पहिला वसिष्ठ ऋषि हमने दिया है वही ऋग्वेदके सप्तम मण्डलका द्रष्टा है ऐसी हमारी संमति है। आगे वसिष्ठके संबंधमें कुछ और वर्णन हम मंत्रोंके आधारसे जो प्रतीत होता है वह देते हैं-

वसिष्ठका थोडासा और वर्णन

वसिष्ठका गौर वर्ण था ऐसा (मंन्त्र २९३ में) **' श्वित्यंचः '** (श्वित्यं अञ्चति) श्वेत वर्ण होनेका सूचक है। पर इसका अर्थ श्वेत वस्त्र परिधान करनेवाला, ऐसा भी कईयोंके मतसे है ।

दक्षिणकी ओर शिखा वासिष्ठगोत्री धारण करते थे ऐसा **' दक्षिणतः कपर्दाः '** इन पदोंसे दीखता है (मं० २९३)। पर इससे यह नहीं सिद्ध होता कि वासिष्ठगोत्री सिरके दक्षिणकी ओर ही शिखा रखते थे। क्योंकि उस समय शिखाएं बडी हुआ करती थी, जैसे आजकल शिख, हिंदू, वैरागी आदिकी होती है। इस शिखाकी ग्रंथी, या गट्टू पीछे, आगे, दायीं और बाईं ओर अथवा ठीक सिरके मध्यमें बांधी जाती है। वासिष्ठ गोत्री दक्षिणकी ओर बांधते थे इतना ही इससे सिद्ध हो सकता है । आजकल कई लोग सिरमें बडी या छोटी शिखा रखते हैं और सिरका अन्य भाग नापितसे क्षुरसे मुंडवाते हैं। ऐसी शिखा वासिष्ठगोत्री दक्षिणकी ओर धारण करते थे, ऐसा इन पदोंका भाव समझनेके लिये कोई प्रमाण नहीं है। दाढी मुंडवाना और सिर मुंडवानेका उल्लेख नहीं है, इससे अनुमान होता है कि ये ऋषि सिरके सब बाल रखते थे। सब बालोंकी मिलकर जो ग्रंथी, जैसी सिख अपने सिरपर बांध देते हैं, वैसी ग्रन्थी, वासिष्ठ गोत्री सिरकी दक्षिणकी ओर बांधते थे। इतना इसका तात्पर्य दीखता है ।

(२९३) **धियं जिन्वानः**- वसिष्ठ लोग बडे विद्वान्, बुद्धिमान, मेधावान् वा प्रज्ञावान् थे । इसलिये इनका संमान सब लोग करते थे । विद्याके लिये इनकी प्रसिद्धि थी।

(२९४) वासिष्ठगोत्री सोमरस तैयार करनेमे अत्यंत प्रवीण थे। इस मंत्रमें ऐसा कहा है कि ' इन्द्र अन्य लोगोंके सोमरसका त्याग करके वसिष्ठोंका सोम लेनेके लिये इनके पास आता था। ' इतनी सोमरस तैयार करनेमें इनकी प्रसिद्धी थी। इसलिये इन्द्र इनका मंत्रगान मन लगाकर सुनता था। देखिये-

(२९।७।२) **स्तुवतः वसिष्ठस्य इन्द्रः अशृणोत्**-- स्तुति करनेवाले वसिष्ठ ऋषिकी स्तुति या स्तोत्र इन्द्र मन लगाकर सुनता था।

वसिष्ठका महिमा

वसिष्ठका महिमा उस समय सब ऋषियोंमें अधिक था। मं॰ (३०० में) **सूर्यस्य ज्योतिः इव, समुद्रस्य इव गंभीरः, वातस्य प्रजवः इव, अन्येन अन्वेतवे न**-सूर्यकी ज्योतिके समान तेजस्वी, समुद्रके समान गम्भीर, वायुके समान वेगवान् वसिष्ठका महिमा है, वह किसी अन्यके द्वारा तुलना करनेयोग्य नहीं है। सब अन्योंसे इसकी विशेषता अत्यंत अधिक है। वसिष्ठके साथ तुलना हो सके ऐसा उस समय कोई दूसरा नहीं था।

३०१ ते वसिष्ठाः निण्यं सहस्रवल्शं हृदयस्य प्रकेतैः अभिसंचरन्ति-- वे सब वसिष्ठ सहस्रशाखावाले विश्वमें अपने हृदयके गूढ ज्ञानविज्ञानसे संचार करते हैं। अपने हृदयके गुह्यज्ञानसे वसिष्ठोंका प्रभाव विश्वभर फैला है। ' **सहस्रवल्शं** ' का अर्थ ' सहस्र वर्ष ' ऐसा भी है, और हजारों शाखाओंसे युक्त ऐसा भी है। पर वर्षका भाव यहां नहीं है। कईयोंके मतसे यहांका वसिष्ठ पद सूर्य तथा सूर्य किरणका वाचक है।

यमेन ततं परिधिं वयन्तः । (३०१।२)
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन् । (३०४)

' यमने मनुष्यकी आयुकी मर्यादा की है, उस आयुरूपी वस्त्रको ये वसिष्ठ बुनते हैं। ' यहां निःसंदेह वसिष्ठ ऋषिका निर्देश नहीं है, क्योंकि नियामक प्रभुके आधीन रहकर मानवोंकी आयुष्यमर्यादा का नियमन करनेवाली प्राणशक्तियोंका वाचक यह पद यहां है। इस मंत्रमें वसिष्ठ पद है, पर वह प्राणका वाचक है।

६३२।१ **उषर्बुधः तुग्रवांसः वासिष्ठाः स्तोमैः ईळते**— उषःकालमें ही उठकर स्तोत्रगान करनेवाले वासिष्ठ स्तोत्रोंसे प्रभुकी स्तुति करते हैं। वसिष्ठ प्रातःकाल उठते थे, स्तोत्र गाते थे, स्तुति--प्रार्थना--उपासना करते थे। अपनी उपासनाके नियममें वे प्रमाद होने नहीं देते थे। इसलिये—

६५० **प्रथमाः विप्राः वसिष्ठाः**— वासिष्ठगोत्री ब्राह्मण प्रथम स्थानमें सन्मानसे पूजित होने योग्य हैं। इस कारण कहा है कि—

३०६ **प्रतृदः ! वः वसिष्ठः आगच्छति, सुमनस्यमानाः एनं आध्वं**— हे भरतो ! आपके पास वसिष्ठ पुरोहित आ रहा है, प्रसन्नचित्तसे उसका सत्कार करो।

इस तरह वसिष्ठके विषयमें मंत्रोंमें अनेक निर्देश हैं। ये सब मनन पूर्वक खोज करनेका विषय है। ये वर्णन देखकर एकदम किसी निर्णय पर पहुंचना योग्य नहीं है। क्योंकि बडे बडे भाष्यकारोंमें शब्दोंके अर्थोंके विषयमें मतभेद हैं। हमने यहां सबके विचारार्थ ये वचन एकत्रित करके रखे हैं। इनका अनेक विद्वान शान्तिपूर्वक मनन करें और मननके पश्चात् निश्चय तक पहुंचे।

हम यहां स्पष्ट शब्दोंमें कहते हैं कि इन वेद मंत्रोंके आधार पर जो वसिष्ठकी कथा रची है, वह वैसी ही बनी थी ऐसा हमें प्रतीत नहीं होता है। स्थान स्थानपर हमने अपना मतभेद लिखा है। यह कथा आलंकारिक है, पर जो अलंकार है वह इस समय तक गुप्त ही रहा है। अनेक विद्वानोंके प्रयत्न करनेपर भी उस अलंकारका स्पष्ट स्वरूप हमारे मनके सामने प्रकट नहीं हुआ।

वसिष्ठने ऋग्वेदके सप्तम मंडलके सूक्त साक्षात् किये थे इसमें संदेह नहीं है। उन मंत्रोंमें जो तत्त्वज्ञान प्रकट हुआ है उसका स्वरूप अब हम देखते हैं।

वसिष्ठ ऋषिका तत्त्वविज्ञान

अब वसिष्ठ ऋषिके तत्त्वज्ञानका विचार करना है। इसका विचार करनेके समय '**ऋत और सत्य**' का विचार प्रथम आता है। इस विषयमें निम्न लिखित वचन देखने योग्य हैं।

२१४ ऋतं नक्षन्।

'ऋतका फैलाव करो,' ऐसा करो कि लोगोंके व्यवहारमें ऋत आ जावे। यह इन्द्रके वर्णनमें वचन है। इन्द्र ऋतको बढाता है, वैसा मनुष्य करे। वैसा राजा अपने राष्ट्रमें ऋतको बढावे। ऋतका अर्थ 'सत्य, सरलता, सीधापन और कुटिलता रहित व्यवहार' है। मनुष्य सरल व्यवहार करें, उसमें छल, कपट, टेढापन, कुटिलता' न हो। ऐसा मानवोंका व्यवहार हुआ तो इस पृथ्वीपर स्वर्गधाम आ जायगा। ऋत और सत्य ये दो अटल तथा स्थायी नियम हैं। सब विश्व इनपर चल रहा है। अतः ये नियम मानवोंके व्यवहारमें आने चाहियें। ऋतका भाव 'गति, प्रगति' है; 'ऋ गतौ' यह धातु इस पदमें है। गतिमान्, प्रगतिमान् यह भाव इसमें है। सत्यका भाव सच्चा, जो जैसा है। ''अस् भुवि' यह धातु इस पदमें है, जो है, जो अस्तित्ववान् है। अतः 'ऋत और सत्य' का मूल यौगिक भाव यह है कि '**प्रगति और अस्तित्व**'। मनुष्यको अपना अस्तित्व टिकाना चाहिये और मनुष्यको प्रगति भी करनी चाहिये। यह प्रगति सरल सत्य श्रेष्ठ मार्गसे होनी चाहिये। संपूर्ण विश्व ऋत और सत्यपर ठहरा और वह सतत गति कर रहा है। मनुष्यको यह देखना चाहिये और ये दो अटल नियम अपने जीवनमें ढालना चाहिये, उषादेवीके वर्णनमें भी यह आया है—

६१९।१ दिविजाः ऋतेन महिमानं आविष्कृण्वानाः आ अगात्।

"द्युलोकमें उत्पन्न हुई उषा ऋतसे अपनी महिमाको प्रकट करती हुई आगयी है।" उषा आती है, वह ऋतके साथ आती है। इसलिये वह आते ही ऋतके कारण वह प्रकाश फैला सकती है, और उसको देखते ही सब जगत्‌को अत्यंत आनंद होता है। जो ऋतवान् है; उससे इसी तरह जगत्‌में आनंद फैलता है। इसी तरह—

८२८ सत् च असत् च वचसी पस्पृधाते, तयोः यत् सत्यं, यतरद् ऋजीयः, तत् इत् सोमो अवति, हन्ति असत्।

"सत् और असत् भाषण परस्पर स्पर्धा करते हुए मनुष्यके पास आते हैं, उनमें एक सत्य और दूसरा असत्य होता है, सत्यमें भी एक सत्य है और दूसरा ऋजु है। इस सत्य और ऋजुका तो ईश्वर संरक्षण करता है और असत्यका तथा कुटिलका नाश करता है। अर्थात् ईश्वर सत्य और ऋतका संरक्षक है और असत्यका और कुटिलताका नाश करनेवाला है। यहाँ 'ऋत' के लिये 'ऋजीयः, ऋजु' ये पद आये हैं। इनका अर्थ 'सरलता' है। इसके आगेके मंत्रमें और कहा है—

८२९ सोमः वृजिनं, मिथुया धारयन्तं क्षत्रियं, रक्षः असद्वदन्तं हन्ति।

'सोम कुटिलको, मिथ्या व्यवहार करनेवाले क्षत्रियको भी, जो असत्य बोलता है उसको विनष्ट कर देता है।' यहाँ असत् का अधिक स्पष्टीकरण है। '**वृजिन, मिथुया धारयन्, असत वदन्**' 'कपटी, मिथ्या व्यवहारी और असत्य-भाषणी' इनका नाश होता है। इसलिये मनुष्य ऋत और सत्यका पालन करे। मनुष्यकी शुद्धि आचार व्यवहारमें दीखनी चाहिये। मन-वचन-कर्ममें मनुष्यको ऋत और सत्यका पालन करना चाहिये।

इस विषयमें वसिष्ठ ऋषिके देखे मंत्रोंमें बहुत उपदेश है, पर यहां संक्षेपसे ही देखना है। इसलिये यहां संक्षेपसे ही दिग्दर्शन किया है। इसी तरह आगे भी संक्षेपसे ही बतायेंगे—

अपनी पवित्रता

अपनी पवित्रता रखनेके विषयमें ऋषियोंके उपदेश स्पष्ट हैं। '**शौच-संतोष**' ये नियमोंमें प्रथम आ गये हैं। इनका अनुष्ठान इस तरह होता है—

४८ स शुचिदन् भूरिचित् अन्ना सद्यः समत्ति।

अग्निके वर्णनमें यह मन्त्रभाग है। 'वह शुद्ध दांतवाला अग्नि तत्काल बहुत अन्न खाता है।' इस मन्त्रभागका '**शुचि-दन्**' यह पद महत्त्वपूर्ण है। देवताके दांत शुद्ध रहते हैं, वैसे उपासकके हों यह प्रेरणा यहां है। उपास्यके समान उपासकने बनना है। अथर्ववेदमें '**अ-शोणा दन्ताः**' (अ० कां० १९।६०।१) दांत स्वच्छ रहने चाहिये। दांत मलीन होनेसे शरीरमें नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। उनको दूर करनेके लिये यह प्रेरक वाक्य इस मंत्रमें है। सब दांतोंकी, मुख तथा जिह्वाकी स्वच्छता, तथा सब इंद्रियों और अवयवोंकी स्वच्छता इस तरह सूचित होती है।

चलनेका वेग

अथर्ववेदमें (१९।६०।१ में) कहा है कि '**जंघयोर्जवः**' जंघाओंमें वेग हो। अर्थात् चलनेका वेग अच्छा होना चाहिये। मन्दगतिसे चलना उचित नहीं है। वही बात हम वसिष्ठके मंत्रोंमें देखते हैं।

३११ यज्ञं अभि प्रस्थात, त्मना यात, पत्मन् त्मना हिनोत ।

" यज्ञके स्थानपर वेगसे जाओ, शत्रुपर हमला वेगसे करो और मार्गपरसे भी वेगसे जाओ । ' मनुष्यमें वेग और उत्साह होना चाहिये । शिथिलता नहीं दीखनी चाहिये । चलना हो तो वेगसे चलो, शत्रुपर हमला करना हो तो वेगसे करो, यज्ञ-स्थानपर जाना हो तो भी वेगसे जाओ । वेग अपने जीवनमें रहे, सुस्ती नहीं चाहिये । वेगसे चलनेसे शरीर स्वस्थ रहता है यह यहां पाठक समझें । जो प्रतिदिन ४।५ मील चलते हैं वे स्वस्थ तथा दीर्घायु होते हैं ।

कामक्रोधादि अन्तः शत्रु

कामक्रोधादि अन्तःशत्रुओंका दमन करनेके लिये एक मंत्रमें वसिष्ठ ऋषिने कहा है, वह मंत्र देखिये—

८३८ उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातु-मुत कोकयातुम् । सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र ॥

(कोकयातुं) कोकपक्षीके समान आचरण अर्थात् काम, (शुशुलूकयातुं) भेडियेके समान आचरण अर्थात् क्रोध, (गृध्रयातुं) गीधके समान आचरण अर्थात् लोभ, (उलूक-यातुं) उल्लूके समान आचरण अर्थात् मोह (सुपर्णयातुं) गरुडके समान आचरण अर्थात् गर्व, (श्वयातुं) कुत्तेके समान आचरण अर्थात् मत्सर ये छः अन्तःशत्रु हैं । इनका दमन करना चाहिये ।

' कोक ' पक्षी बडा कामी होता है, यह चीडिया जैसा है । भेडिया क्रोधके लिये प्रसिद्ध है । गीध लोभी है, स्वार्थ साधनके लिये प्रसिद्ध है, कथाओंमें इसका यही गुण लिखा है । उल्लूको अनाडी माना है, गरुड गर्वसे आकाशमें भ्रमण करता है, वह किसीकी पर्वा नहीं करता । और कुत्ता स्वजातियोंसे झगडता रहता है और अन्य जातियोंके संरक्षणके लिये दत्तचित्त रहता है । ये अन्तःशत्रु दमनसे शान्त करने चाहिये । इनको प्रबल होने नहीं देना चाहिये ।

६८० वरुणस्य हेळः नः परिवृज्याः

' वरुण देवका क्रोध हमें न कष्ट देवे । ' अर्थात् हमसे ऐसा दुराचरण कभी न होवे कि जिससे वरुणके क्रोधका आघात हमपर हो जाय । वरुण देव श्रेष्ठ प्रभु है । वह हमारे आचरणसे प्रसन्न चित्त हो जाय ऐसा उत्तम आचरण हमारा हो जाय ।

८३१ (१) यदि यातुधानः अस्मि, अद्य मुरीय ।
(२) यदि पुरुषस्य आयुः ततप, अद्य मुरीय ।
(३) यः मा मोघं यातुधान इत्याह, स दशभिः वीरैः वियूयाः ।

(१) यदि मैं सचमुच राक्षस हूं, तो मैं आज ही मर जाऊं तो अच्छा है, (२) यदि किसी मनुष्यकी आयुको मैंने कष्ट दिये हैं, तो भी मैं आज ही मर जाऊं तो अच्छा ही होगा । (३) पर यदि कोई दुष्ट मनुष्य निष्कारण राक्षस करके मेरी व्यर्थ निंदा करता है, तब तो वह दुष्ट अपने दसों वीर पुत्रोंके साथ नष्ट हो जाय ।

अर्थात् मैं किसीको कष्ट नहीं दूंगा और कोई मुझे कष्ट न दे । हम परस्पर सहकार्यसे मित्रभावसे रहेंगे और आनंद प्राप्त करेंगे । यह परस्पर सहकारका उद्देश्य इस मंत्रमें दीखता है और यही मनुष्यका ध्येय होना चाहिये । इसी तरह—

८३२ (१) यः मा अयातुं यातुधान इत्याह,
(२) यः रक्षः शुचिः अस्मि इत्याह,
(३) स अधमः पदीष्ट

" (१) मैं राक्षस नहीं हूं, तथापि जो मुझे राक्षस कहके निंदता है, (२) और जो स्वयं राक्षस होता हुआ भी अपने आपको पवित्र करके घोषित करता है, (३) वह अधम है, वह नीच अवस्थाको पहुंचे । "

किसीकी व्यर्थ निंदा नहीं करनी चाहिये, ऐसी निंदा करना बहुत बुरा है, ऐसा निंदक अधम कहलाता है और नीच अवस्थाको पहुंचता है । इसलिये कोई मनुष्य किसीकी निंदा न करे । निंदा करनेसे जिसकी वह निंदा करता है उसका कुछ भी बिगडता नहीं, पर उसकी वाणी प्रथम बिगड जाती है और पश्चात् मन बिगडता है और इस कारण उसकी अवस्था निकृष्ट बनती है, इसलिये निंदा करना किसीको भी योग्य नहीं है।

समाजमें किसीको शोक न हो ऐसा प्रबंध होना चाहिये । इस विषयमें वसिष्ठका मन्त्र देखनेयोग्य है—

२१२ यत् द्रु-रुघः इरज्यन्त, देवजामिः विवाचि घोषः अयामि ।

' जब (शु-रुधः) शोकको रोकनेकी स्पर्धा समाजमें चलती है, तब देवोंतक वह घोषणा पहुंचती है। ' समाजमें शोकके सब कारण दूर करनेकी स्पर्धा होनी चाहिये। समाजका प्रत्येक मनुष्य अपने समाजसे सब शोक दुःखके कारण दूर करनेका यत्न करे और इस समाज सेवा करनेमें वे सब स्पर्धा करें। इससे समाज दुःखोंसे दूर हो जायगा और समाजमें सुख बढेगा। तब जनताकी एक ही पुकार, एक ही घोषणा देवोंतक पहुंच जायगी कि दुःखके दूर करनेमें हमें यश मिले। और यह घोषणा देव सुनेंगे और उनको यश देंगे। इस तरह मनुष्योंमें इस विषयकी स्पर्धा होना अच्छा है। मनुष्य यत्न करके सब प्रकारका सुधार कर सकते हैं और व्यक्तिकी तथा समाजकी अर्थात् राष्ट्रकी सुस्थिति बहुत सुधार सकते हैं।

शिस्नदेव समाजमें न रहें।

१९६।४ शिश्नदेवा नः ऋतं मा गुः।

' शिस्नदेव हमारे यज्ञस्थानमें न आवें। ' वे हमारे समाजसे दूर रहें। हमारा समाज ' ऋत ' मार्गसे जानेका यत्न करता है, उसमें शिश्न देवोंसे विघ्न होगा, इसलिये शिश्नदेव हमारे समाजसे दूर हो जांय ? व्यभिचारी, स्त्री विषयक अत्याचार करनेवालोंका नाम शिश्नदेव है। इनसे समाजमें कैसा दुःख फैलता है इसका पता सबको है। इसलिये अपने राष्ट्रमें ऐसे दुष्ट रहने नहीं चाहिये। यह वसिष्ठने देखा हुआ समाजस्वास्थ्यका सिद्धान्त तीनों कालोंमें सत्य है। समाजमें व्यभिचारी दुराचारी लोग नहीं रहने चाहिये।

अज्ञानीकी निंदा

वसिष्ठ ऋषिके मंत्रोंमें अज्ञानकी निंदा और ज्ञानकी प्रशंसा बहुत है। पीछे बताया गया है कि वसिष्ठ ऋषि ज्ञान विज्ञानमें सबसे अधिक थे, इसलिये अज्ञानकी निंदा करना उनके लिये स्वाभाविक ही है। देखिये—

५३।४ अचेतनस्य पथः मा विदुक्षः

" मूढोंके मार्गसे हम न जांय। " यह इच्छा प्रत्येक मनुष्यको अपने अन्तःकरणमें धारण करनी चाहिये। तथा—

५०९।२ चिकित्वांसः अचेतसं अनिमिषा नयन्ति- ज्ञानी लोग अज्ञानियोंको जागते हुए सुमार्गसे ले जाते हैं। ज्ञानी अज्ञानियोंको सन्मार्गसे प्रमाद न करते हुए चलाते हैं। राष्ट्रमें ज्ञानियोंका यही कर्तव्य है कि वे अज्ञानियोंको सज्ञान करें और जाग्रत रहकर उनको सन्मार्गसे अभ्युदय तक ले जांय।

६९५ अर्यः देवः अचितः अचेतयत्— श्रेष्ठ ज्ञानी अज्ञानीको ज्ञान देता है और ज्ञान विज्ञान संपन्न बना देता है। राष्ट्रमें ज्ञानीको यही करना चाहिये।

८१७ अचितः परा शृणीत— अज्ञानियोंको दूर करो, अपने समाजमें कोई अज्ञानी न रहे ऐसा यत्न करना चाहिये। अपने समाजमें सब ज्ञानी बनें। अतः जो अज्ञानी होंगे अथवा अज्ञानी ही रहना पसंद करेंगे, उनको समाजसे बहिष्कृत करना चाहिये। तथा—

५१९।४ वां निण्यानि अचिते न अभूवन्— तुम्हारे गुप्त प्रयत्न अज्ञान बढानेके लिये न होते रहें। तुम्हारे प्रयत्नसे तुम्हारे अज्ञान न बढे।

इस तरह अज्ञानकी निंदा करके राष्ट्रमें सब लोगोंको ज्ञान-मिले इसलिये किस तरहके प्रयत्न होने चाहियें और इस राष्ट्रो-पयोगी कार्यके लिये ज्ञानी लोगोंने किस तरहके महान प्रयत्न करने चाहिये, इस विषयमें ये निर्देश विचार करने योग्य हैं।

सुशिक्षा

२९१ यथा पुत्रेभ्यः पिता, (तथा त्वं) नः शिक्ष, अस्मिन् यामनि ज्योतिः अशीमहि— जिस तरह अपने पुत्रोंको पिता सुशिक्षण देता है, वैसा तू हमें ज्ञान दे, हम इसी समय ज्ञान तेज प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसा विचार अज्ञानी लोगोंके मनमें चाहिये। वे अज्ञानी ज्ञान लेनेकी इच्छा करें। ज्ञान तेज प्राप्त करनेकी आतुरता उनमें हो और ज्ञानी लोग उनको ज्ञान देनेका यत्न करें। इस तरह दोनों ओरसे प्रयत्न होना चाहिये।

यदि ज्ञानी अपने ज्ञानी होनेकी घमंडमें रहें और अज्ञानि-योंकी ओर न जांय, अथवा अनाडी लोग ज्ञान लेनेकी इच्छा न करें और अपनी स्थितिमें ही सन्तुष्ट रहें, ज्ञानीके पास जानेका यत्न भी न करें, तो कुछ भी उन्नति नहीं हो सकती। इसलिये इस मंत्रमें कहा है कि अनाडी लोगोंमें " **अस्मिन् यामनि ज्योतिः अशीमहि** " — हम शीघ्रातिशीघ्र ज्ञान तेज प्राप्त करके तेजस्वी विद्वान बनेंगे ऐसी प्रबल इच्छा चाहिये। ऐसे लोगोंकी सहायता विद्वानोंको करनी चाहिये। इस तरह दोनों ओरसे प्रयत्न हुए तो राष्ट्रका राष्ट्र ज्ञान विज्ञान संपन्न होनेमें देरी नहीं लगेगी।

विद्या देवी

३५३।२ अक्षरा चरन्ती नः परि मा ख्यत्— अक्षर मयवाणी विद्यादेवी प्रगति करती हुई हमें न छोड देवे।

३८१।२ सरस्वती ईं मुनाति— विद्यादेवी हमें उत्तम कर्ममें प्रेरित करती है ।

यह विद्याकी प्रशंसा है । विद्याका स्वरूप ' **अक्षरा** ' है, अक्षरोंके रूपमें विद्या रहती है । ' **अक्ष-र** ' आंख जिसमें रमते है ऐसे सुंदर अक्षरोंमें ज्ञान रहता है । यह प्रगति करने वाला ज्ञान हमें न छोडे और किसी अन्यके पास न पहुंचे । ज्ञानमें हम प्रवीण हों और प्रगति करें । क्योंकि सरस्वती सत्कर्म करनेकी प्रेरणा करती हैं । विद्या न रही, ज्ञान न मिला तो मनुष्य असंस्कृत रहनेके कारण किसी तरह अपनी उन्नति नहीं कर सकता । इसलिये ज्ञानीके पास जाकर मनुष्यको उचित है कि वह विद्याकी उपासना करे ।

सरस्वती वह है कि जो किसी जातिके पास हजारों वर्षोंसे ज्ञान परंपरा द्वारा रहती और प्रवाहरूपसे चलती रहती है । इसलिये विद्यासे सरस्वतीका महत्त्व अधिक है । विद्या केवल ज्ञानरूप है, परंतु सरस्वती जीवित प्रवाहरूप है जो सहस्रों वर्षोंसे चलती रहती है, परंतु सूखती नहीं । हजारों वर्षोंका लाखों विद्वानोंका ज्ञानमय जीवन सरस्वतीके प्रवाहमें मिला रहता है । विद्या ही नदी जैसी अखंड ज्ञान विज्ञानके प्रवाहरूप बनी और सहस्रों वर्ष टिकने लगी तो वह सरस्वती बनती है ।

ऊपरके दो मंत्रोंमें ' **अक्षरा** ' और ' **सरस्वती** ' ये दो पद हैं । इनका यह भाव मनन करने योग्य है । ' **अक्षरा** ' का अर्थ ' शब्द विद्या, अक्षरोंमें-शब्दोंमें-रहनेवाली विद्या । और ' सरस्वती ' वह है जो ज्ञान नदी सहस्रों वर्ष प्रवाह रूपसे चलती रहती है । राष्ट्रमें अक्षरा विद्या भी बढनी चाहिये और सरस्वतीका प्रवाह भी अखंड चलता रहना चाहिये । दोनोंसे मानवी मनोंपर संस्कार होते हैं, इन संस्कारोंसे मानवी संस्कृति अथवा सभ्यता बनती है । यही संस्कृति मानवी मन पर संस्कार करते करते उसको नारायण भाव तक पहुंचाती है, यही मनुष्यकी अन्तिम अवस्था है कि जहां पहुंचनेके लिये मनुष्य वारंवार जन्म लेता है और अनुभव अपने अन्दर संगृहित करता जाता है ।

तीन देवियां

३३।१ भारतीभिः भारती— उपभाषाओंके साथ भारती यह राष्ट्र भाषा है,

३३।२ देवेभिः मनुष्यैः इळा— दिव्य मनुष्योंके साथ मातृभूमि पूज्य है ।

३३।३ सारस्वतोभिः सरस्वती— विद्या-सरस्वती-देवीके उपासकोंके साथ विद्या देवी मनुष्योंको आदरणीय होनी चाहिये ।

ये तीन देवियां सब मनुष्योंको आदर करने योग्य हैं । मातृभूमि, मातृभाषा और मातृसंस्कृति ये तीन देवियां हैं जो मनुष्यको सुख देती हैं । इनमेंसे एक न रही तो मनुष्य अधूरा बन जाता है । मातृभूमि न रही तो मनुष्यके रहनेके लिये स्थानही नहीं मिलेगा, मातृभाषा न रही तो यह बोलेगा किस तरह और ज्ञान कैसे प्राप्त करेगा ? मातृसभ्यता न रही तो मनुष्य पशुवत् ही बन जायगा । इसलिये वेदने कहा है कि ये तीन देवियां मनुष्योंको उपासनीय हैं । मातृभाषा माताकी गोदमें बैठा बैठा बालक सीखता जाता है, मातृभूमि उसको रहनेके लिये स्थान-घर तथा खानेके लिये अन्न देती है । और मातृसभ्यता उसको सभ्य संस्कारसंपन्न तथा माननीय बना देती है । इसलिये ये तीनों आदरणीय हैं ।

सुमति

१४८।४ ते सुमतौ शर्मन् स्याम— हम सब तेरी सुमतिमें रहकर सुखी हो जांय ।

१६९।४ नः सुमतिं इन्द्रः आगन्तु— हमारी सुमतिसे बने स्तोत्र सुननेके लिये इन्द्र हमारे पास आ जाय ।

१८९।३ अन्नतः चनिष्ठाः वयं सुमतौ स्याम — हम अहिंसक रीतिसे रहनेवाले धनधान्यसंपन्न होकर तेरी सुमतिमें रहेंगे । तेरी प्रसन्नता हमपर रहे ।

२२१।२ ते महीं सुमतिं प्रवेविदाम— तेरा बडा उत्तम आशीर्वाद हमें मिले ।

५६३।२ यज्ञियेन मनसा अच्छ विवक्मि— पवित्र मनसे मैं बोलता हूं ।

मातृभूमि, मातृभाषा और मातृसभ्यतासे मनुष्यके मनपर जो स्वाभाविक रीतिसे संस्कार होते हैं, उससे उसकी मति सुसंस्कारोंसे संपन्न होती है । जो विशेष सुमतिसंपन्न होते हैं उनको देव कहते हैं, उनसे जो कम होते हैं वे विबुध अथवा संस्कारसंपन्न ज्ञानी कहते हैं । मनुष्य देवों तथा विबुधोंकी सुमति प्राप्त करें, उनकी प्रसन्नता संपादन करें, जिससे मनुष्यकी उन्नति होनेका मार्ग सुगम होगा । देवोंके साथ रहकर देव बन जानेकी संभावना होती है । मनुष्य जब अपने अन्दर सुमति

बढायेगा, तभी तो देव उसको अपने साथ रहने देंगे और उसपर अपनी प्रसन्नता प्रकट करेंगे। सुमति मानवी उन्नतिके लिये सहायक है इसीलिये उसको प्राप्त करना चाहिये।

देवोंके जन्मवृत्तांत जानो

३५।१ देवान् उप अवसृज— दिव्य विबुधोंके समीप जाओ।

३५।२ देवानां जनिमानि वेद— दिव्य विबुधोंके जन्म-वृत्तांत जानो।

३५।३ स सत्यतरः यजाति— ऐसा ज्ञानी सत्यनिष्ठ होता है और उत्तम यजन करता है। सत्यनिष्ठासे देवोंकी प्रीतिके लिये यज्ञ करो।

दिव्य ज्ञानियोंके सत्संगमें रहना चाहिये, उनके जीवनचरित्र जानना चाहिये। जो इन दिव्य चरित्रोंको अपने जीवनमें ढालता है, वह सत्यनिष्ठ होता है, और अपना जीवन यज्ञ-रूप बनाता है। और अन्तमें देवत्व प्राप्त करता है।

६८९ अस्य जनूंषि महिना धीराः— इस देवके जन्म महत्त्वसे धीरतायुक्त होते हैं। अर्थात् इनके जन्म वृत्तान्तमें महत्त्व रहता है, धैर्य भी रहता है। देवोंके पास जाना, देवोंका इतिहास जानना, उनके जन्म जाननेका अर्थ उनका जीवन-इतिहास जानना है। उनके जन्ममें उन्होंने कैसा कैसा बर्ताव किया, उसका परिणाम क्या हुआ। यह जाननेसे मनुष्यके अन्दर वैसा श्रेष्ठ बननेकी स्फूर्ति उत्पन्न होती है। **'यद्देवा अकुर्वन्, तत् करवाणि'** (शत० ब्रा०) जैसा देवोंने आचरण किया वैसा मैं करूंगा ऐसा यह साधक कहने लगता है और वैसा आचरण करता जाता है। वह प्रथम 'असत्य' होता है, उससे वह 'सत्य' बनता है, और पश्चात् **'सत्य-तरः'** (मं० ३५) बन जाता है। इस तरह देवोंके जन्मवृत्तांत जाननेसे लाभ होता है। **'अनृतं मनुष्याः सत्यं देवाः'** (शत-ब्रा०) मनुष्य असत्य होते हैं और देव सत्यनिष्ठ होते हैं। इस कारण मनुष्य सत्यनिष्ठ बने तो वे ही देव बनते हैं।

देवोंके साथ रहो

३६।३ तुरेभिः देवैः सरथं आयाहि— सत्वर कार्य करनेवाले देवोंके साथ रथमें बैठकर आओ। देवोंके साथ रह।

९८।३ विश्वेभिः देवैः सरथं आ याहि, त्वदृते अमृताः न मादयन्ते— सब विबुधोंके साथ एक रथमें बैठकर आओ, क्योंकि आपके विना विबुधोंकी प्रसन्नता नहीं होती है।

६९० उत स्वया तन्वा सं वदे? — क्या अपने इस शरीरसे वरुणके साथ बोल सकूं ?

कदा वरुणे अन्तः भुवानि— वरुणके अन्दरमें कब हो जाऊं ?

कदा सुमना मृळीकं अभिख्यं— कब सुख-दायी देवको देखूं ?

देवका दर्शन करना, देवोंके साथ रहना। देवोंके रथपर बैठकर आना, देवके साथ बोलना, उनकी सभामें प्रवेश पाना, ये एकसे एक अधिक महत्त्वकी बातें है। साधककी जैसी योग्यता बढती है वैसा वह देवोंके साथ रहता, उनसे बोलता, उनकी सभामें प्रवेश पाता और अन्तमें स्वयं देव बनता है। वेदमें मरुत और ऋभु देवोंके विषयमें स्पष्ट कहा है कि वे प्रथम मर्त्य थे पीछेसे देवत्व प्राप्त करनेमें समर्थ हुए। मनुष्यने विद्या प्राप्त करना, संस्कार संपन्न होना, दिव्यगुणोंसे युक्त बनना, देवोंकी स्तुतिका गायन करना यह सब इसीलिये करना है कि उसने देवत्व प्राप्त करके स्वयं देव बनना है। इसीलिये यह सब अनुष्ठान है।

देवत्वकी प्राप्ति

९५।१ देवयन्तीः मतयः— देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली बुद्धियाँ हों।

३९९ देवयन्तः विप्राः— देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले विप्र होते हैं।

'देव इव आचरंति इति, देवयन्तः' देवके समान जो आचरण करते हैं उनको 'देवयन्तः' कहते हैं। इसीका स्त्रीलिंग नाम 'देवयन्तीः' है। बृहस्पति जैसा ज्ञान विज्ञानसंपन्न होना, इन्द्र जैसा शूरवीर और शत्रुका पराभव करनेमें समर्थ होना, मरुतों जैसा शत्रुपर वेगसे आक्रमण करना, सूर्यके समान प्रकाशना और अन्धकार-अज्ञानान्धकार—को दूर करना, अग्निके समान अग्रणी बनकर लोगोंको सन्मार्गसे ले चलना, और अन्तिम सिद्धितक पहुंचाना, वायुके समान शत्रुका विध्वंस करना और लोकोंको सुरक्षित रखकर उनको प्राणदान देना।

देवत्व प्राप्त करनेका यह भाव है। देवोंका जन्मवृत्तांत देखना और स्वयं वैसा आचरण करना। यह देवत्व प्राप्तिका अनुष्ठान है। यह मनुष्यको ऊंचा बना देता है। देव मनुष्योंको

अपने आचरणसे सन्मार्ग बताते हैं, मनुष्य वह उपदेश लें और वैसा आचरण करें और उन्नत हो जांय ।

सन्मार्ग

३७१ **तृप्ताः देवयानैः पथिभिः यात**-- संतुष्ट होकर देवयान मार्गोंसे वापस जाओ ।

३७१।३ **रथ्या पथां भेजाते**— वीथीके मार्गका सेवन करो; कुमार्गसे न जाओ ।

३७४ **पथः अर्वाक् कृणुध्वं**-- मार्ग समीपका करो। जो मार्ग समीपसे पहुंचाता है वैसा मार्ग बनाओ ।

३९४ **सनवित्तः अध्वा सुगः**— चिरकालसे चलता हुआ मार्ग सुगम होता है ।

५२७।२ **नः विश्वा सुपथानि सुगा सन्तु**-- हमारे सब सुपथ सुगम हों।

५३६।१ **साधिष्ठेभिः पथिभिः प्र नयन्तु**— उन्नतिके लिये सहायक मार्गोंसे हमें वे ले जावें ।

५५५ **ऋतस्य रथ्यः यत् ओहते, तत् मनामहे**- सत्यके मार्गसे जो मिलता है, उसीका हम विचार करेंगे ।

६१७।३ **आंगिरस्तमाः पथ्याः अजीगः**-- उषा प्रकाशसे मार्ग बताती है।

६२८।१ **देवयानाः पन्थाः अमर्धन्त**-- देवोंके मार्ग हिंसा रहित हैं।

६२८।२ **देवयानाः पन्थाः वसुभिः इष्कृतासः**-- देवयान मार्ग धनोंसे युक्त हैं।

देवोंके जाने आनेके मार्ग अच्छे स्वच्छ सुगम और आनंददायक होते हैं । उस मार्गसे जाने आनेवालोंको सुख होता है । जो मार्ग (सनवित्तः) बहुत वर्षोंसे, अनंतकालसे चालू है वह सुगम होता है । इसीलिये वह चालू रहा है। उस मार्गसे जाना सुखकर है । मनुष्य मार्ग ऐसे बनावे कि जो (सुगः अध्वा) जाने आनेके लिये सुगम हो, जाने आनेवालोंको कष्ट न हों। (पन्थाः वसुभिः इष्कृतासः) मार्ग धनोंसे सुखदायी होते हैं। धनका उपयोग करनेसे मार्ग बनते हैं और उनपर सुख साधन उपस्थित किये जा सकते हैं। देवयान मार्ग प्रकाशका मार्ग है और दूसरा पितृयान मार्ग है वह अन्धकारमय है। तीसरा असुरमार्ग है वह गाढ अन्धकारका और घातपातका मार्ग है वह बडा दुःखदायी है इसलिये असुरमार्गसे कोई न जाय । पितृमार्गपर अन्धकार रहता ही है, पर वहां (पिप्तरः-पातारः) संरक्षक रहते हैं इसलिये वह असुरमार्गके समान दुःखदायी नहीं होगा । यद्यपि वह देवयानके समान सुखदायक भी नहीं है । अस्तु यहां तीन मार्ग हैं, उनमें देवयान मार्ग सबसे सुगम है । अतः वैसा मार्ग बनाया जाय और वह समीपका हो । (रथ्यः) रथ जाने आनेके लिये सुखकर मार्ग हो । यहां अपने देशमें और नगरमें मार्ग कैसे हों इसका भी वर्णन है और नरका नारायण बननेवाले मार्गका भी उपदेश है । साधक इसका विचार करें और अपने लिये सन्मार्ग पकडें और सुखसे आगे बढें ।

बुद्धि

१०।१ **प्रशस्तां धियं पनयन्त**— प्रशस्त बुद्धि तथा कर्म शक्तिकी प्रशंसा करो ।

२३४।१ **नरः पार्याः धियः युनजते**— नेता लोग संकटोंसे पार होनेके लिये बुद्धिपूर्वक प्रयत्न करते हैं ।

२६३।२ **प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं**— बुद्धिमान ज्ञानीके विषयमें सुमति धारण करो, उनकी प्रशंसा करो ।

३०७ **शुक्रा मनीषा देवी**— पवित्र बुद्धि दिव्य होती है ।

३१४ **धियं दधामि**— धारणवती बुद्धिका धारण करता हूं ।

३१५ **देवीं धियं अभि दधिध्वं, देवत्रा वाचं प्रकृणुध्वं**— दिव्य बुद्धि धारण करो और देवोंका गुण वर्णन वाणीसे करो ।

३६०।१ **धीभिः विवेषः**— अपनी बुद्धियों और कर्मोंसे व्याप्त होओ । सब ओर परिणाम करो । सबको प्रभावित करो ।

३७२।२ **वस्वः सुमतिं अश्रेत्**— धनके साथ सुमतिको धारण करो ।

३८८।२ **ददत् धियं उत् अव**— दान देते हुए बुद्धिका संरक्षण कर ।

४०२।२ **समनसः यति स्थ**— एक विचारसे यत्नमें रहो, यत्न करो ।

५३८।१ **धियः अविष्टं**— बुद्धियोंकी सुरक्षा करो ।

५३८।२ पुरंधीः जिगृतं— नगरधारक बुद्धि जगाओ। सार्वजनिक हित करनेकी बुद्धि जाग्रत करो। विशाल बुद्धि धारण करो।

५६८।१ धीषु नः अविड्ढं— बुद्धिके कर्मोंमें हमें सुरक्षित रखो।

६८४।१ अरक्षसं मनीषां पुनीषे— राक्षस भावसे रहित बुद्धिको पवित्र करो।

७०४ शुन्ध्युवं प्रेष्ठां मतिं प्रभरस्व— शुद्ध करनेवाली श्रेष्ठ बुद्धिको भर दो परिपुष्ट कर दो।

इस तरहके वचन वासिष्ठके मंत्रोंमें आते हैं। इन वचनोंसे स्पष्ट हो जाता है कि शुद्ध बुद्धिका कितना आदर करने योग्य है।

पार्या धीः (२३४)
प्रशस्ता धीः (१०)
शुक्रा मनीषा देवी (३०७)
देवी धीः (३१५)
पुरं धीः (५३८)
अरक्षसी धीः (६८४)
प्रेष्ठा मतिः (७०४)

बुद्धि संकटोंसे पार करनेवाली हो, संकटोंके समय भ्रांत न हो जाय। प्रशंसा करने योग्य बुद्धि हो। बलिष्ठ वीर्यवती मनन करनेमें समर्थ दिव्य सामर्थ्यसे युक्त बुद्धि हो। विशाल बुद्धि हो तथा सर्वजनोंका हित करनेवाली बुद्धि हो। बुद्धिमें राक्षसी और आसुरीभाव न हों। अत्यंत इष्ट मति हो अनिष्ट विचार उसमें न आवें। यह बुद्धिका वर्णन देखनेसे स्पष्ट हो जाता है कि इन मंत्रोंमें बुद्धिकी शक्तिके विषयमें कितना सूक्ष्म विचार भरा है।

सज्जनोंके साथ रहनेसे, उत्तम, गुरुके पास रहनेसे, सुविद्याके संस्कार होनेसे, स्वयं पवित्रता और शुद्धता धारण करनेसे बुद्धि अच्छी सूक्ष्म होती है। इस समयतक क्रमसे जो प्रकरण आये हैं और उनमें जो मार्ग दर्शन हुआ है, उस प्रकार करनेसे उत्तम विशाल प्रभावी बुद्धि प्राप्त हो सकती है।

बुद्धिमें सद्भावना चाहिये, दिव्यता चाहिये, शुद्धता चाहिये, कार्यक्षमता चाहिये, अत्यंत कठिन प्रसंगमें भी उसमें कंप उत्पन्न होना नहीं चाहिये। जितना भयानक अवसर प्राप्त हो, उतनी क्षमता बुद्धिमें चाहिये, क्योंकि अपना संरक्षण (स्वस्तिभिः पातं) प्रशस्त संरक्षणके साधनोंसे होना चाहिये। ऐसी बुद्धि होनी चाहिये कि जिससे यह सब सहजहीसे हो सके।

ज्ञान

१०८ तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि— तुम्हारे लिये ये ज्ञानके सूक्त मैं शक्ति वर्धनके लिये करता हूं।

२४३।२ ब्रह्मकृतिं अविष्टः— ज्ञानपूर्वक की हुई कृतिका संरक्षण कर।

२४५ हे ब्रह्मन् वीर! ब्रह्मकृतिं जुषाणः— हे ज्ञानी वीर! ज्ञान पूर्वक कृतिका तू सेवन कर।

२४७ येषां पूर्वेषां ऋषीणां अशृणोः, ते पुरुष्या आसन्— जिन पूर्व ऋषियोंका स्तोत्र तुमने सुन लिया था, वे ऋषि मानवोंका हित करनेवाले थे।

३४७ ऋतस्य सदनात् ब्रह्म प्र एतु— सत्यके केन्द्रसे ज्ञान फैले।

इन मंत्रोंमें (ब्रह्माणि वर्धनानि) ज्ञानके सूक्त शक्तिका संवर्धन करनेवाले होते हैं, इसलिये (ब्रह्म-कृतिं अविष्टः) ज्ञानकी कृतिका संरक्षण करो। क्योंकि (ऋषयः पुरुष्याः) जो ऋषि हैं वे सब मानवोंका हित करनेवाले होते हैं, इसलिये (ब्रह्मकृतिं जुषाणः) उनकी जो ज्ञानकी कृति स्तोत्र रूप होती है, उसका आदर करना योग्य है। इसका कारण यह है कि, इस ज्ञानसे ही सब मानवोंका हित होनेवाला है। यह ज्ञान (ऋतस्य सदनात्) सत्य यज्ञके स्थानसे फैलता है, विश्वमें चारों ओर जाता है और वहां इस ज्ञानसे सबका कल्याण होता है। इसलिये यह ज्ञान सबको आदरके योग्य है। ऐसा यह ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य स्वयं ज्ञानी बने। जो ज्ञानी होगा वही वंदनीय होता है।

ज्ञानीका आदर

२४।१ महः सुवितस्य विद्वान्— बडे कल्याणका मार्ग जो जानता है वह ज्ञानी है।

२४।२ सूरिभ्यः बृहन्तं रयिं आवह— ज्ञानियोंको धन दो।

५० अमृतः सहस्वः कविः प्रचेताः अकविषु मर्तेषु निधायि— अमर बलवान् ज्ञानी बुद्धिमान् पुरुष

अज्ञानी (निर्बुद्ध तथा निर्बल) मानवोंमें अपना ज्ञान रखता है ।

८७।१ जारः मन्द्रः पावकः कवितमः उषसां उपस्थात् अबोधि— वृद्ध आनन्द देनेवाला पवित्र करनेवाला ज्ञानी उषः कालके समय जागता है । ज्ञानी प्रातः कालमें उठकर अपने कामपर लगता है ।

८७।२ उभयस्य जन्तोः केतुं दधाति— दोनों प्रकारके मनुष्योंको ज्ञान देता है । सबको ज्ञान मिलना चाहिये ।

८७।३ देवेषु हव्या सुक्रतुसु द्रविणं— यज्ञमें देवोंके लिये हविष्यान्न और अच्छा कर्म करनेवाले ज्ञानियोंको धन देना चाहिये ।

८८।२ मन्द्रः दमूनाः विशां राम्याणां तमः तिरः ददृशे— आनंदित तथा मनका संयम करनेवाला ज्ञानी वीर प्रजाजनोंके लिये रात्रीयोंका अन्धेरा दूर करता है । सबके लिये प्रकाश करता है । ज्ञानी अज्ञान दूर करके अपने ज्ञानसे सबको मार्ग दर्शन करता है । सूर्य वा अग्नि जैसा अन्धेरा दूर करता है वैसा ज्ञानी अज्ञान दूर करें ।

८९ अमूरः कविः अदितिः विवस्वान् सुसंसत् मित्रः अतिथिः चित्रभानुः शिवः उषसां अग्रे भाति- ज्ञानी दूरदर्शी अदीन--उत्साही, तेजस्वी, उत्तम साथी मित्र पूज्य प्रभावी हमारे लिये कल्याणकारी ऐसा ज्ञानी उषःकालके पाहिले ही जागता है ।

९० मनुषः युगेषु ईळेन्यः जातवेदाः, समनगाः अशुचत्, सः सुसंदृशा भानुना विभाति— मनुष्योंके संगठनमें प्रशंसनीय कार्य करनेवाला ज्ञानी, युद्धोंके समय सामना करनेवाला प्रकाशित होता है, वह अपने दर्शनीय सुंदर तेजसे चमकता है ।

९४ उशिजः धर्म मन्म च तन्वानाः, वनिष्ठः विद्वान् देवयावा वि आ द्रवत्— सुखकी इच्छा करने वाला विद्वान् प्रशस्त कर्म और सुविचारोंका प्रचार करता है, वही दानशील विद्वान् देवत्व प्राप्तिकी इच्छासे विशेष प्रगति करता है । विशेष प्रयत्न करता है ।

१०४।२ जातवेदाः दमे आस्तवे— ज्ञानीकी अपने स्थानमें प्रशंसा हो ।

१०८।४ ब्रह्मणे गातुं विदं— ज्ञानप्रसारके लिये उत्तम मार्ग प्राप्त करो ।

१३३।१ सूरयः ते प्रियासः सन्तु— ज्ञानी तेरे लिये प्रिय हों ।

१६६।३ सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छात्— ज्ञानियोंके लिये उत्तम दिन दो । ज्ञानियोंके लिये सभी दिन उत्तम दिन प्रकाशित होते है ।

१७७।४ सूरिषु प्रियासः स्याम— विद्वानोंमें हम अधिक प्रिय हों । हम अधिक ज्ञानी हों और हम विद्वानोंमें प्रिय हों ।

३६१।१ वेधसः वासयामसि— ज्ञानियोंका सुखसे निवास करनेवाला राजा हो । शासक अपने राज्यमें ज्ञानियोंका उत्तम योगक्षेम चले ऐसा प्रबंध करे ।

४०८ विश्वे महिषाः अमूराः शृण्वन्तु— सब बलवान् ज्ञानी सबका सुनें । ज्ञानी शक्तिशाली हों और वे सबका सुनें और उनको योग्य उपदेश दें ।

५१६।१ ऋतावा दीर्घश्रुत् विप्रः— सत्यनिष्ठ बहुश्रुत् ज्ञानी होता है ।

५१६।२ सुक्रतू ब्रह्माणि अवाथः— तुम उत्तम कर्ममें कुशल होकर अपनें ज्ञानोंको सुरक्षित रखो । ज्ञानका नाश होने न दो ।

५५२ सूरिभिः सह स्याम— विद्वानोंके साथ हम रहें ।

५७२ सूरीन् जरतं— ज्ञानियोंकी प्रशंसा करो ।

६३० ऋतावानः पूर्व्यासः कवयः पितरः सत्यमन्त्राः ते देवानां सधमादः आसन्— सत्यका पालन करनेवाले पूर्व समयके ज्ञानी संरक्षक वीर सत्यमंत्र और देवोंके साथ रहकर आनंद करनेवाले थे । सत्यमंत्र वे हैं कि जिनके विचार सच्चे होते हैं ।

६८१।१ सूरिषु ब्रह्माणि प्रशस्ता कृतं— ज्ञानियोंमें प्रशंसित स्तोत्र करो । ज्ञानियोंका गुण वर्णन करो ।

७००।३ विद्वान् विप्रः मेधिराय उपराय युगाय शिक्षन् उवाच— ज्ञानी गुरु अपने पास रहनेवाले बुद्धिमान् शिष्यको उपदेश देता है । विद्या सिखाता है ।

७००।८ पदा गुह्या प्रवोचत्— पदोंसे गुह्यज्ञान देता है ।

इन वेद वचनोंमें ज्ञानीका वर्णन है । ये वचन मनन पूर्वक देखने योग्य हैं । (सूरिभ्यः बृहन्तं रयिं आवह) ज्ञानियोंको

धन दो, पर्याप्त दक्षिणा दो। यह आदेश है। ज्ञानी लोग विचारे मांगेंगे नहीं, चुप बैठेंगे; इसलिये उनको भूखा रहना पडेगा। इसलिये यह सूचना दी है कि उनकी आजीविकाका प्रबंध करो। ज्ञानियोंके घरमें विद्यार्थी पढनेके लिये आते है, अतः ज्ञानियोंका सब समय पढाईमें जाता है, वे धन किस तरह कमा सकते है? इस कारण उनको घर बैठे ही धन मिलना चाहिये। ये ज्ञानी (महः सुवितस्य विद्वान्) बडी सुविधाका प्रबंध करनेका ज्ञान रखते हैं। ज्ञानी निश्चिंत हुए तो वे उपदेश द्वारा सबके कल्याणका मार्ग सबको बता सकते हैं। इसलिये उनको धन मिलना चाहिये अर्थात् आजीविकाकी तंगी उनको न सताये, इतना प्रबंध होना चाहिये।

(अमृतः सहस्वः प्रचेताः कविः अकविषु मर्तेषु निधायि) अमरबलसे युक्त विशेष बुद्धिमान् ज्ञानी अज्ञानी मानवोंमें अपना ज्ञान रखता है और उनको सज्ञान करता है। समाजमें वा राष्ट्रमें ज्ञानीका यह कार्य है। अज्ञानीयोंको ज्ञानी बनाना। यह कार्य महत्त्वपूर्ण कार्य है, इसलिये ज्ञानीको धन देना चाहिये और उसका आदर करना चाहिये।

(कवितमः पावकः) अत्यंत ज्ञानी जो होता है वह पवित्र करनेवाला होता है। बाह्य आभ्यंतर शुद्धता वह करता है। अपवित्र भाव कहीं भी रहने नहीं देता। पवित्र करके उन्नतिको पहुंचा देता है। (केतुं दधाति) अज्ञानियोंको वह ज्ञान देता है। ज्ञान ही पवित्रता करनेका उत्तम साधन है। (मन्द्रः विशां तमः तिरः ददृशे) यह सदा प्रसन्न रहनेवाला ज्ञानी प्रजा जनोंके अज्ञानको दूर कर देता है। सदुपदेश द्वारा वह सबको ज्ञान देता है।

ज्ञानी कैसा होता है देखिये (अमूरः कविः) वह मूढता रहित होता है, कवि अर्थात् क्रांतदर्शी, दूरदर्शी होता है, (अदितिः=अदीनः) दीनता उसके पास नहीं होती तथा (अदितिः=अदनात्) अन्न उत्पन्न करनेकी आयोजना यशस्वी करता है। (विवस्वान्) सूर्यके समान तेजस्वी होता है, (सुसंसत् मित्रः) उसकी संगतिमें रहने योग्य है, वह उत्तम साथी होता है, हित करनेवाला मित्र होता है, (अतिथिः= अतति) जो उपदेश करता हुआ सतत भ्रमण करता है, भ्रमण करके जनताको सदुपदेश देता है, (शिवः) कल्याण करनेवाले उपदेश देता है कल्याण करनेका मार्ग बताता है। ये पद ज्ञानी कैसा होता है, क्या करता है और उसको क्या करना चाहिये इस विषयका वर्णन करते हैं। इसका मनन करनेसे ज्ञानीके सामाजिक कर्तव्योंका बोध प्राप्त हो सकता है।

(ब्रह्मणे गातुं विंद) ज्ञानके प्रसारका मार्ग वह जानता है और वैसा ज्ञानका प्रसार वह करता है। (सूरिभ्यः सुदिना) ज्ञानियोंके लिये उत्तम दिन प्रकाशित होते हैं क्योंकि उनके ज्ञानसे दुरवस्था दूर होती है और उन्नतिका मार्ग उनके लिये सुगम होता है। इसलिये (सूरयः प्रियासः) ज्ञानी प्रिय होते है। सबको उचित है कि वे ज्ञानियोंके साथ प्रेमका व्यवहार करें और उनको प्रसन्न रखें।

(ऋतावा दीर्घश्रुत् विप्रः) सन्मार्गसे जानेवाला जो बहुश्रुत होता है उसको विप्र कहते है। (सत्य-मन्त्राः) इनके विचार सत्य होते हैं, असत् विचार वे अपने पास नहीं रखते। ऐसे ज्ञानी (गुह्या पदा प्रवोचत्) गुह्य विद्याका उपदेश करता है, सबको गुप्तज्ञान देता है और विद्वान् बना देता है। (विद्वान् विप्रः मेधिराय सुगाय शिक्षन्) उक्त प्रकारका विद्वान् ज्ञानी बुद्धिमान शिष्यको उपदेश देकर ज्ञान देता है। धारणा शक्ति वाला शिष्य हुआ तो ही वह उत्तम गुरुसे उत्तम विद्या प्राप्त करता है। जो बुद्धिहीन होता है वह गुरुके प्रयत्न करनेपर भी ज्ञानमें विशेष प्रगति नहीं कर सकता।

इस तरह ज्ञानीके कर्तव्योंका वर्णन वसिष्ठके सूक्तोंमें हमें मिलता है। ज्ञानी बननेसे ही सब प्रकारका हित होनेकी संभावना है। यह अनुभव इन वचनोंमें टपकता है। ज्ञानके विना मनुष्यका अभ्युदय या निःश्रेयस कुछ भी बनना नहीं है। इसलिये यावत् शक्य मनुष्यको ज्ञानीके पास रहकर ज्ञान विज्ञान प्राप्त करना चाहिये। यह इन वचनोंका तात्पर्य है।

ज्ञानके साथ भक्ति

५२।५ वयं अव्रुधः मा— हम भक्तिहीन न हों।

ज्ञानका महात्म्य इससे पूर्व वर्णन किया है। अब इस वचनमें कहते है कि हम भक्तिहीन न हों। ज्ञान और भक्तिका सामंजस्य होना चाहिये। इसका कारण यह है कि ज्ञान भक्तिके साथ न रहा तो नास्तिकता बढ जाती है और भक्ति ज्ञानके साथ न रही तो वह अन्धविश्वास बढाती है। इसलिये अवि- श्वास भी न बढे और अन्धविश्वास भी न बढे, ऐसा मध्यम मार्ग प्राप्त करनेके लिये ज्ञानसे आंखें भी खोल दी हैं और भक्तिसे हृदयकी सहृदयता भी सिद्ध की है। इस तरह यहां ज्ञान और भक्तिका समन्वय बताया है।

समाजमें ज्ञानहीन भक्ति न बढे, ज्ञानहीन भक्ति बढनेसे लोग भोले बनेंगे, जिनको कोई आकर लूट सकेगा। इसी तरह भक्तिहीन ज्ञान भी बुरा है जो नास्तिकता और भोगी जीवन बढाता है, इससे अश्रद्ध क्रूर राक्षस पैदा होते है इसलिये राष्ट्रमें ज्ञान सार्वत्रिक होना चाहिये और साथ साथ भक्ति भी चाहिये। प्रारंभसे ही ऐसा शिक्षा प्रबंध रहना चाहिये।

घुटने टेककर प्रार्थना

६६२ मितज्ञवः क्षेमस्य प्रसवे युवां हवन्ते— घुटने जोडकर कल्याणके लिये तुम्हारी स्तुति करते हैं।

७५८ सरस्वती मितज्ञुभिः नमस्यै इयाना सुभगा राया युजा— घुटने टेककर प्रार्थना करनेवालोंसे सरस्वती भाग्यवान बनी है।

यहां '**मितज्ञु, मितज्ञवः**' पद हैं। घुटने जोडकर बैठना या घुटने टेककर बैठना और प्रर्थना करना ऐसा इसका भाव है। घुटने जोडकर वीरासन होता है और घुटने टेककर भी एक प्रकारका प्रार्थनासन बनता है। मध्यकालीन पद्धतिके अनुसार पुण्याहवाचन नामक कर्ममें एक ऐसा कर्म किया जाता है कि जिसमें यजमान घुटने टेककर ही बैठता है और वह कर्म करता है। '**अधनिक्रत जानुः**' ऐसे पद उक्त कर्मके समय बोलते हैं इसका अर्थ घुटनोंसे भूमिको स्पर्श करके बैठना चाहिये। यही वीरासन या प्रार्थनासन होता है। इस समय ईसाई अथवा मुसलमान ऐसे बैठकर प्रार्थना करते हैं। पर ऐसे घुटने टेककर बहुत देरतक बैठा नहीं जाता। दस पंद्रह निमेष या ऐसा ही बैठना संभव है। अधिक बैठनेके लिये दूसरे ही स्वस्तिकासन, सुखासन, पद्मासन आदि आसन उपयोगी है।

जय विजय

२७४।३ तरणिः इज्जयति— जो स्वयं तैर जाता है, त्वरासे कर्म करता है, वह विजय प्राप्त करता है।

२७४।४ तरणिः इत् क्षेति— जो स्वयं तैरकर दुःखोंसे पार जाता है वह अपने घरमें आनंदसे रहता है। और **पुष्यति** पुष्ट होता है. बलिष्ठ भी होता है

२७४।६ कवत्नवे देवासः न— कुत्सित कर्म करनेवालेके लिये देव सहायता नहीं करते। अच्छा कर्म करनेसे देव-सहायक होते हैं जिससे विजय मिलता है।

१७७ जिग्युषः धनं— विजयी वीरका ही धन होता है।

यहां विजय किसका होता है उसका वर्णन ' तरणि ' शब्दसे किया है। ' तरणि ' नाम सूर्यका है, वह अन्धकारसे लडता है और उसका पराभव करके स्वयं विजयी होता है। तरणि उत्तम तैरनेवालेका नाम है। आकाश रूपी महासागरमें उत्तम रीतिसे तैरता है इसलिये सूर्य विजयी होता है। जो ऐसा दुःखों, संकटों और शत्रुओंसे पार होगा, इनको परास्त करेगा वही विजयी होगा और वही (क्षेति) यहां आनंदसे रह सकेगा। त्वरासे अपना कर्तव्य करना और शत्रुओंसे पार होना बीचमें डूबना नहीं, इतनी बातें हैं जिनसे विजय होता है। मनुष्यको विजय चाहिये और विजयसे भी मनुष्यको धन चाहिये। यह धन (जिग्युषः धनं) विजयी वीरको ही मिलता है। इसलिये धन चाहनेवाले मनुष्य वीर बने तथा दुःखोंसे पार होनेका पुरुषार्थ करें।

शरीरका संवर्धन

८४।१२ हे सुजात ! स्वयं तन्वं वर्धस्व— हे कुलीन ! तू स्वयं अपने शरीरका संवर्धन कर। अपने शरीरको हृष्ट पुष्ट तथा बलवान् बनाओ।

११७ ऊर्जः न-पात्— बलको कम न करनेवाला बन। इस जगत्में जय, यश या धन जो भी कमाना होगा, वह शरीर स्वस्थ तथा बलवान् होनेसे ही होगा। सब यशोंके लिये शरीरकी आवश्यकता है। विना शरीर स्वस्थ रहे कुछ भी नही हो सकता। शरीरमें ऊर्जे, ओज, और बल रहना चाहिये। यह (स्वयं तन्वं वर्धस्व) स्वयं यत्न करो, स्वयं प्रयत्न करो तब हो सकता है। तुम्हारे लिये दूसरा कोई व्यायाम करे और अच्छा अन्न खाये, तो तुम्हारा शरीर हृष्टपुष्ट नहीं हो सकता, उसके प्रयत्नसे उनका शरीर स्वस्थ रहेगा। इसलिये मंत्रमें कहा है (स्वयं) स्वयं प्रयत्न करके शरीरको बढाओ। यह स्वकीय प्रयत्नसे सिद्ध होनेवाली बात है। विचार, उच्चार, आचार अच्छे रहनेसे शरीर अच्छा रहता है और शरीर बलवान् रहनेसें यश प्राप्त हो सकता है।

तेजस्विता

९३ वृषा शुचिः धियः हिन्वति, भासा आभाति, पृथु पाजः अश्रेत्— बलवान् पवित्र वीर अपनी बुद्धियों द्वारा शुभ कर्मोंको करता है, अपने तेजसे प्रकाशता है, और बहुत अन्न या सामर्थ्य प्राप्त करता है।

९३।१ वस्तोः स्वः न अरोचि—दिनके समय जैसा सूर्य प्रकाशता है वैसा प्रकाशित हो जाओ ।

१०७।१ त्वं शोचिषा शोशुचानः रोदसी आपृणः- तू तेजस्वी होकर अपने तेजसे विश्वको परिपूर्ण कर दो ।

२९१।२ अस्मिन् यामनि जीवाः ज्योतिः अशीमहि— इसी समयमें हम सब जीव, मनुष्य तेजस्विता प्राप्त करना चाहते हैं ।

५२१।१ सूर्यः बृहत् पुरु अर्चींषि अश्रेत्— सूर्य बहुत बडे तेजोंको प्राप्त करता है, वैसा तुम तेजस्वी बनो ।

५२१।२ सूर्यः मानुषाणां विश्वा जनिमा ददर्श— सूर्य मनुष्योंके सब जन्म देखता है।

५२१।३ दिवा रोचमानः समः ददृशे— दिनके समय प्रकाशता है और सबको समान दीखता है ।

बल, शुचिता और बुद्धि होनेसे तेजस्विता मनुष्यमें रहती है। (वृषा शुचिः धियः भाः) ये चार शब्द मननीय हैं। बल, पवित्रता, बुद्धि और तेजस्विता मनुष्यको अपने अन्दर धारण करनी चाहिये। शारीरिक बल, अन्तर्बाह्य पवित्रता, बुद्धियों, और तेजस्विता मनुष्यको अपने अन्दर बढानी चाहिये। इसके लिये (पृथु पाजः) बहुत पर्याप्त अन्न चाहिये, यह अन्न शुद्ध और पवित्र चाहिये ।

सब मनुष्य चाहते हैं कि (जीवाः ज्योतिः अशीमहि) हम तेजस्विता प्राप्त करें । कोई ऐसा नहीं चाहता है कि मैं निस्तेज निर्वीर्य बनूं । परंतु " अन्न बल, शुचिता, बुद्धि, और पश्चात् तेजस्विता " यह क्रम है। योग्य अन्न न मिला तो शरीरमें बल नहीं बढेगा, शुचिता न रही तो वह बल प्राप्त होनेपर भी टिकेगा नहीं,बुद्धि न रही तो बल प्राप्त होनेपर भी उससे अपनी उन्नति नहीं हो सकती । इस तरह ' अन्न, बल, पवित्रता, बुद्धि ' इनका योग्य साहचर्य मिला तो ही तेजस्विता प्राप्त होती है । यहां बुद्धिमें ज्ञान तथा विद्याका समावेश हुआ है।

(मानुषाणां विश्वा जनिमा ददर्श) मनुष्योंके सब जन्मवृत्त देखो । इस इतिहासके मननसे पता लग जायगा कि किन दिव्य विभूतियोंने तेजस्विता प्राप्त की थी, वैसा बननेका यत्न करो। और जिन्होंने वैसा आचरण नहीं किया इस कारण जो अवनतिको प्राप्त हुए उनके मार्गसे न जाओ । तेजस्विता इस तरह प्राप्त होती है । तेजस्वी पुरुष ही श्रेष्ठ होते हैं ।

भोजनके लिये अन्न

१३० विश्वा अभि भोजना यास्व— मनुष्योंके लिये जो योग्य भोजन है वह दे दो। मनुष्योंके उपभोगके योग्य अन्न हमें प्राप्त हो ।

१७६।१ दाशुषे सना भोजनानि— दाताको शाश्वत टिकनेवाले भोजन दो ।

३८९।२ अनर्वा अदितिः सुहवा— प्रतिबंधरहित अन्न देनेवाली जो होगी वही प्रशंसायोग्य है ।

५६७ वां चित्रं भोजनं अस्ति, अत्रये महिष्मन्तं नियुयोतं— तुम्हारा वह विलक्षण अन्न है, जो अत्रिकी शक्ति बढानेके लिये तुमने दिया था ।

५७८ जरते च्यवनाय ऊती वर्पः अधित्थ— जीर्ण और क्षीण च्यवनके लिये संरक्षक सुंदर रूप तुमने दिया था । वह उसे योग्य अन्नसे प्राप्त हुआ था ।

(मर्त-भोजनं) मनुष्यके हितके लिये उसे योग्य भोजन मिलना चाहिये । (अदितिः सुहवा) जो ऐसे भोजन देती है वह विशेष प्रशंसा करने योग्य है । (सना भोजनानि) अन्न टिकनेवाला हो, सदा वैसा ही मिलता रहे । (महिष्मन्तं भोजनं) शक्ति बढानेवाला अन्न हो जिसके खानेसे मनुष्य बलवान और निरोग हो जाय । (जरते ऊती वर्पः) क्षीण वृद्धको भी सुंदर रूप तथा तारुण्य प्राप्त हो ऐसा भोजन मिलना चाहिये, सब आवश्यक जीवन सत्त्व अन्नमें रहे तो उससे शक्ति प्राप्त होती है और वृद्ध आयुमें भी तारुण्य प्राप्त होता है ।

१२८ स विश्वभोजसा अहषा योजते— वह अन्न प्राप्त होनेसे तेजस्वी होता है ।

१८२।४ वाजान् नः उपमिमीहि— अन्न और बल हमें प्राप्त हो ।

१८५।४ अन्धसः मदेषु समुवोच— अन्नरसका आनन्दके समय वर्णन कर ।

१९१।१ नः इषे धाः— हमें भरपूर अन्न दे दो ।

३५५।२ प्रजायै वयः धुः— प्रजाके लिये अन्न दिया जावे ।

३५६ त्रिपृष्ठैः महाभिः सोमैः आ पृणध्वं— दूध दही और सत्तुको सोमरससे मिला दो और वह अन्नरस भरपूर पीओ ।

[illegible] आभ्रुः [illegible] अन्न अलका आवक है।

[illegible] आसुवानः— मनुष्योंके लिये [illegible] लिये योग्य भोजन हो।

[illegible] वाजस्वातौ वाजः अवतु— अन्नदानके समय प्राप्त हुआ अन्न हमारा संरक्षण करे।

[illegible] इळाभिः घृतैः गव्यूतिं उक्षतं— अन्नों और घीसे मार्गका सींचन करो। मार्गमें अन्न और घी भरपूर मिलता रहे।

७७४ मघानि अन्धांसि प्र अस्थुः— आनंदवर्धक अन्न रखे हैं।

६१७ यन्तः सूरयः पृक्षः सचन्त- प्रयत्नशील ज्ञानी अन्न प्राप्त करते हैं।

७७१ अमृताय जुष्टं अर्कं अमृतासः नः आधासुः- अमरत्वके लिये योग्य अन्न हमें अमरदेव देते रहें।

७८९ विदथेषु वृजनेषु इषः पिन्वतं- यज्ञोंमें तथा युद्धोंके समय अन्न बढाओ।

मनुष्यका अन्नके विना चल नहीं सकता। अन्नमय प्राण और प्राणमय पराक्रम होता है। इस कारण योग्य अन्न मनुष्यको मिले ऐसा प्रयत्न होना चाहिये। (अरुषा विश्वभोजसा) तेज, कान्ति बढानेवाला भोजन होना चाहिये। अन्नका नाम वेदमें 'वाजः' है और इस 'वाजः' का अर्थ 'अन्न और बल' है। अर्थात् अन्न वह है कि जो शरीरका पोषण करके शरीरमें बल बढावे। बल घटानेवाला, रोग बढानेवाला खाद्य अन्न नहीं कहलायेगा। इसी तरह अन्नका नाम 'अन्धस्' है। प्राण धारण करने, दीर्घजीवन देनेकी शक्ति अन्नसे प्राप्त होनी चाहिये। ऐसा अन्न मनुष्य खाएं कि जिससे उनका बल बढे और उनको दीर्घ जीवन प्राप्त हो। (प्रजायै वयः) संतान देनेवाला अन्न चाहिये। अन्नसे मनुष्यमें वीर्य निर्माण होना चाहिये और उस वीर्यसे उत्तम संतान होने चाहिये। अर्थात् ऐसी कोई वस्तु खानी नहीं चाहिये कि जिससे संततिका उच्छेद हो, वीर्य क्षीण हो अथवा रोगी संतान हो।

(गवाशिरः [illegible]) दूध दही तथा सत्तूके साथ सोमरस मिलाकर वह पेय पीना योग्य है। यह पेय बल, उत्साह और बुद्धिको बढाता है। (घृतैः इळाभिः) घीसे भरपूर मिलाया हुआ अन्न अच्छा है, यह सात्विक है और नीरोगिता बढानेवाला है। (मघानि अन्धांसि) आनन्द बढानेवाले और प्राणशक्तिको धारण करके दीर्घ आयु देनेवाले अन्न होने चाहिये। प्राणकी क्षीणता बढानेवाले अन्न न हों। वे खाने योग्य नहीं हैं।

इस तरहका अन्न लेने योग्य है। निरोगिता, बल, उत्साह, कार्यक्षमता, दीर्घायु, तेजस्विता, बुद्धि, वीर्य बढानेवाला अन्न हो। जो इनका नाश करता है वैसा अन्न सेवन करने योग्य नहीं है।

जल

अन्नके सेवनके साथ जलका सेवन भी करना चाहिये। इसलिये जलका निर्देश देखना चाहिये (४२५ दैवीः आपः) जल दिव्य शक्तिसे युक्त है। (पुनानाः) जलसे पवित्रता होती है, शरीरके अन्दरकी तथा बाहरकी भी पवित्रता जलसे होती है।

४२६ दिव्या आपः —आकाशसे वृष्टिसे मिलनेवाला जल,

स्रवन्ती— जो झरनोंमें स्रवता है।

खनित्रिमाः- खोदकर कूंवे आदिसे जो प्राप्त होता है।

स्वयंजाः- स्वयं जो भूमीसे ऊपर आता है।

शुचयः पावकाः— ये जल शुद्धता करनेवाले हैं, नीरोगिता बढानेवाले हैं।

४२९ कुलायतं विश्वयत् नः मा आगन्— स्थानमें रहनेवाला और चारों ओर फैलनेवाला विष हमसे दूर हो, जल प्रयोगसे विष दूर हो जाता है। (अजकावं दुर्दृशीकं तिरः दधे) रोग और दृष्टिकी मन्दता दूर हो। जल प्रयोगसे ये दोष दूर होते हैं।

४३१ देवीः शिपदाः— दिव्य जल शिपद रोगको दूर करें। पांव बडा होनेका नाम शिपद रोग है। जलचिकित्सासे वह रोग दूर हो सकता है। इस तरह जल प्रयोगसे आरोग्य मिल सकता है।

आपत्ती दूर हो

१९ अवीरतै, दुर्वाससे, अमतये, क्षुधे, मा परा दाः— हमें दुर्बलता, बुरे कपडे पहननेकी दरिद्रता, निर्बुद्धता, भूख आदि आपत्ति न प्राप्त हो।

१९ दमे वने नः मा आजुहूर्थाः— घरमें और वनमें हमें कष्ट न हो।

६६५ तं मर्तं अंहः न, तपः न, दुरितानि न, परिहृतिः न नशते यस्य अध्वरं गच्छथः— उस मर्त्यको पाप, ताप, क्लेश, विनाश नहीं सताते. जिसके अहिंसक यज्ञ कर्ममें आप जाते हैं ।

आपत्तियां इन मंत्रोंमें गिनाई हैं । वे ये हैं —(अ-वीरता) भीरुता, दुर्बलता, डरपोकपन, (दुर्वासाः) बुरे फटे मैले कपडे पहननेकी दरिद्रता, (अ-मतिः) बुद्धिहीनता, (क्षुधा) भूख, अन्न न मिलनेसे होनेवाली दुरवस्था, (अंहः) पाप, (तपः) ताप, कष्ट, संकट, (दुरितानि) अन्तःकरणके हीन भाव, (परिहृति) लूट, नाश, न्यूनता, (नाश) विनाश मृत्यु, अपमृत्यु, रोगादिके क्लेश । ये सब आपत्तियां हैं । ये आपत्तियां हमारे पास नहीं आनी चाहिये । ये आपत्तियां हमसे दूर हों । हमें घरमें कष्ट न हों । और हम वनमें गये तो वहां भी हमें कष्ट न हों । हम सदा सर्वदा आनंद प्रसन्न रहें और उन्नतिके कार्य करते रहें ।

कीर्ति

५२६।२ जने नः आश्रवयत्— लोगोंमें हमारी कीर्ति हो । लोगोंमें, राष्ट्रमें, समाजमें हमारा यश चारों ओर फैले । केवल इच्छा मात्रसे यह यश नहीं फैल सकता । ज्ञान, विज्ञान, संपन्नता जिसके पास होगी, जो शौर्य, वीर्य पराक्रममें विशेष प्रभावी होगा, जिसके पास बहुत धन होगा और जो उसका उपयोग दानमें करता जायगा; जनताके कल्याणके कार्य जो करता रहेगा, जो शिल्पी होगा और जो अप्रतिम कुशल होगा, उसका यश फैलता है । चारों दिशाओंमें ऐसे मनुष्योंकी कीर्ति गाते हैं ।

जिन्होंने जनहितके महान महान कार्य किये हैं, उनका ही यश गाया गया है । जो जनताका अहित करते हैं, जो आत्म-भोगके लिये दूसरोंको कष्ट देते हैं । उनका नाम भी कोई नहीं लेता । प्रत्येक मनुष्य यश और कीर्ति तो चाहते हैं, परंतु जनहित करनेके लिये आत्म समर्पण नहीं करते, उनका यश कैसे फैलेगा ? इसलिये मनुष्य कीर्ति चाहें और उसके लिये आवश्यक आत्म यज्ञ भी करें ।

सौंदर्यकी इच्छा

५२।४ वयं अप्लवः मा— हम सौंदर्यहीन न हों । अर्थात् हम सुन्दर बनें, अपनी सुंदरता बढावें ।

१४७ पिशा अस्मान् अभिशिशीहि— सौंदर्यसे हमें युक्त करो ।

सब लोग सुंदरता चाहते हैं । (वयं अप्लवः मा) हम कुरूप न बनें । हमारी सुंदरता बढे । हम सुंदर बनें । (पिशा अस्मान् अभिशिशीहि) सौंदर्यसे हम सुंदर बनें । ऐसी इच्छा मनुष्यकी रहती है । परमेश्वर (सु-रूप-कृत्नु । ३८०) सुंदर रूप बनानेवाला है । जो सुंदरता इस विश्वमें दीखती है वह परमेश्वर बनाता है । प्रत्येक रूपमें जो आकर्षकता है वह ईश्वरने [illegible] । विश्वभरमें सौंदर्य ओतप्रोत भरा है । आकाशमें सूर्य चंद्र नक्षत्रका सौंदर्य, पृथ्वीपर पर्वत, नदियां, वृक्ष, वनस्पति, फूल पत्तों आदिकी सुंदरता अपूर्व है । प्रत्येक फूल, पत्ता, तृण, वनस्पति आदि सबमें सौंदर्य है । इस विश्वमें सुन्दर नहीं ऐसा कोई पदार्थ नहीं है । चारों ओर सब वस्तुएं सज धज कर सुन्दर बनकर ऊपर आरही हैं, ऐसे सुंदर विश्वमें कोई मनुष्य आना चाहे तो वह सुंदर बनकर ही आजावे । अपनी सुंदरता बढानेका यत्न करना मनुष्यको योग्य है । विश्व परमेश्वरका रूप है अतः वह सुंदर है, उसमें सुंदर बनकर ही आना चाहिये । वस्त्र, अलंकार, पुष्पमाला आदि धारण करके मनुष्य अपनी सुंदरता बढावे और वह यज्ञादि समारंभ जहां होते हैं वहां जाय ।

निंदा

२२४।२ निनित्सोः शंसं आरे कृणुहि— निन्दककी निन्दाके शब्द दूर कर, वे हमारे पास न पहुंचे ।

३१८।२ निनित्सोः शंसं अ-धुं कृणोत— निंदककी निंदाको निस्तेज करो ।

६२६।२ पुरुषता नः बर्हिः निदे मा कः— मानव समाजमें हमारे पौरुष कर्मकी निंदा न हो । हमारे पौरुष प्रयत्नकी सर्वत्र प्रशंसा ही होती रहे ।

जगत्में (निनित्सुः) निंदक होते ही हैं, वे भले मनुष्यकी भी निंदा करते हैं । फिर जहां दोष होंगे, उसकी निंदा किये विना वे रहेंगे नहीं । इसलिये हमारा आचरण ऐसा उत्तम होना चाहिये कि जिसके सामने उन निंदकोंकी निंदा निस्तेज सिद्ध हो जाय । हमारा आचरण लोग देखेंगे और उनकी निंदाके शब्द वे सुनेंगे और वे ही स्वयं कहेंगे कि यह निंदा अवास्तव है । इस तरह (शंसं अ-धुं) निंदाको फीका निस्तेज बनाया जा सकता है । अपने श्रेष्ठ आचरणसे निन्दकोंकी निंदा निस्तेज करनी चाहिये । हमारे पौरुष प्रयत्न, हमारे वीरताके कर्म ऐसे श्रेष्ठ हों, कि कोई निंदक उनकी निंदा करनेका साहस ही न कर सकें ।

[illegible] स्पृहः वाजः— अन्न बलका साधक है।

[illegible] कृणुध्वं मर्तभोजनं आनुषानः— मनुष्योंके लिये मानवोंके लिये-सुयोग्य भोजन दो।

[illegible] धाजसातौ वाजः अवतु— अन्नदानके समय प्राप्त हुआ अन्न हमारा संरक्षण करे।

५४१ इळाभिः घृतैः गव्यूतिं उक्षतं— अन्नों और घीसे मार्गका सींचन करो। मार्गमें अन्न और घी भरपूर मिलता रहे।

५७४ मघानि अन्धांसि प्र अस्थुः— आनंदवर्धक अन्न रखे हैं।

६१७ यन्तः सूरयः पृक्षः सचन्त— प्रयत्नशील ज्ञानी अन्न प्राप्त करते हैं।

७७१ अमृताय जुष्टं अर्कं अमृतासः नः आधासुः— अमरत्वके लिये योग्य अन्न हमें अमरदेव देते रहें।

७८९ विदथेषु वृजनेषु इषः पिन्वतं- यज्ञोंमें तथा युद्धोंके समय अन्न बढाओ।

मनुष्यका अन्नके विना बल नहीं रहता। अन्नमय प्राण और प्राणमय पराक्रम होता है। इस कारण योग्य अन्न मनुष्यको मिले ऐसा प्रयत्न होना चाहिये। (अरुषा विश्वभोजसा) तेज, शान्ति बढानेवाला भोजन होना चाहिये। अन्नका नाम वेदमें 'वाजः' है और इस 'वाजः' का अर्थ 'अन्न और बल' है। अर्थात् अन्न वह है कि जो शरीरका पोषण करके शरीरमें बल बढावे। बल घटानेवाला, रोग बढानेवाला खाद्य अन्न नहीं कहलायेगा। इसी तरह अन्नका नाम 'अन्धस्' है। प्राण धारण करने, दीर्घजीवन देनेकी शक्ति अन्नसे प्राप्त होनी चाहिये। ऐसा अन्न मनुष्य खाएं कि जिससे उनका बल बढे और उनको दीर्घ जीवन प्राप्त हो। (प्रजाये वयः) संतान देनेवाला अन्न चाहिये। अन्नसे मनुष्यमें वीर्य निर्माण होना चाहिये और उस वीर्यसे उत्तम संतान होने चाहिये। अर्थात् ऐसी कोई वस्तु खानी नहीं चाहिये कि जिससे संततिका उच्छेद हो, वीर्य क्षीण हो अथवा रोगी संतान हो।

(मद्योभिः सोमैः) दूध दही तथा [illegible] साथ सोमरस मिलाकर वह पेय पीना योग्य है। यह पेय बल, उत्साह और बुद्धिको बढाता है। (घृतैः इळाभिः) घीसे भरपूर मिलाया हुआ अन्न अच्छा है, यह सात्विक है और नीरोगिता बढानेवाला है। (मघानि अन्धांसि) आनन्द बढानेवाले और प्राणशक्तिको धारण करके दीर्घ आयु देनेवाले अन्न होने चाहिये। प्राणकी क्षीणता बढानेवाले अन्न न हों। वे खाने योग्य नहीं हैं।

इस तरहका अन्न लेने योग्य है। निरोगिता, बल, उत्साह, कार्यक्षमता, दीर्घायु, तेजस्विता, बुद्धि, वीर्य बढानेवाला अन्न हो। जो इनका नाश करता है वैसा अन्न सेवन करने योग्य नहीं है।

जल

अन्नके सेवनके साथ जलका सेवन भी करना चाहिये। इसलिये जलका निर्देश देखना चाहिये (४२५ देवीः आपः) जल दिव्य शक्तिसे युक्त है। (पुनानाः) जलसे पवित्रता होती है, शरीरके अन्दरकी तथा बाहरकी भी पवित्रता जलसे होती है।

४२६ दिव्या आपः—आकाशसे वृष्टिसे मिलनेवाला जल,

स्रवन्ती— जो झरनोंमें स्रवता है।

खनित्रिमाः- खोदकर कूंवे आदिसे जो प्राप्त होता है।

स्वयंजाः- स्वयं जो भूमीसे ऊपर आता है।

शुचयः पावकाः— ये जल शुद्धता करनेवाले हैं, नीरोगिता बढानेवाले हैं।

४१९ कुलायं विश्वयत् नः मा आगन्— स्थानमें रहनेवाला और चारों ओर फैलनेवाला विष हमसे दूर हो, जल प्रयोगसे विष दूर हो जाता है। (**अजकावं दुर्दृशीकं तिरः दधे**) रोग और दृष्टिकी मन्दता दूर हो। जल प्रयोगसे ये दोष दूर होते हैं।

४३२ देवीः आशिपदाः— दिव्य जल शिपद रोगको दूर करें। पांव बडा होनेका नाम शिपद रोग है। जलचिकित्सासे वह रोग दूर हो सकता है। इस तरह जल प्रयोगसे आरोग्य मिल सकता है।

आपत्ती दूर हो

१९ अवीरते, दुर्वाससे, अमतये, क्षुधे, मा परा दाः— हमें दुर्बलता, बुरे कपडे पहननेकी दरिद्रता, निर्बुद्धता, भूख आदि आपत्ति न प्राप्त हो।

१९ दमे वने नः मा आजुहूर्थाः— घरमें और वनमें हमें कष्ट न हो।

६६५ तं मर्तं अंहः न, तपः न, दुरितानि न, परिहृतिः न नशते यस्य अध्वरं गच्छथः— उस मर्त्यको पाप, ताप, क्लेश, विनाश नहीं सताते, जिसके आह्निक यज्ञ कर्ममें आप जाते हैं।

आपत्तियां इन मंत्रोंमें गिनाई हैं। वे ये हैं —(अ-वीरता) भीरुता, दुर्बलता, डरपोकपन, (दुर्वासाः) बुरे फटे मैले कपडे पहननेकी दरिद्रता, (अ-मतिः) बुद्धिहीनता, (क्षुधा) भूख, अन्न न मिलनेसे होनेवाली दुरवस्था, (अंहः) पाप, (तपः) ताप, कष्ट, संकट, (दुरितानि) अन्तःकरणके हीन भाव, (परिहृति) लूट, नाश, न्यूनता, (नाश) विनाश मृत्यु, अपमृत्यु, रोगादिके क्लेश। ये सब आपत्तियां हैं। ये आपत्तियां हमारे पास नहीं आनी चाहिये। ये आपत्तियां हमसे दूर हों। हमें घरमें कष्ट न हों। और हम वनमें गये तो वहां भी हमें कष्ट न हों। हम सदा सर्वदा आनंद प्रसन्न रहें और उन्नतिके कार्य करते रहें।

कीर्ति

५२६।३ जने नः आश्रवयतं— लोगोंमें हमारी कीर्ति हो। लोगोंमें, राष्ट्रमें, समाजमें हमारा यश चारों ओर फैले। केवल इच्छा मात्रसे यह यश नहीं फैल सकता। ज्ञान, विज्ञान, संपन्नता जिसके पास होगी, जो शौर्य, वीर्य पराक्रममें विशेष प्रभावी होगा, जिसके पास बहुत धन होगा और जो उसका उपयोग दानमें करता जायगा; जनताके कल्याणके कार्य जो करता रहेगा, जो शिल्पी होगा और जो अप्रतिम कुशल होगा, उसका यश फैलता है। चारों दिशाओंमें ऐसे मनुष्योंकी कीर्ति गाते हैं।

जिन्होंने जनहितके महान महान कार्य किये हैं, उनका ही यश गाया गया है। जो जनताका अहित करते हैं, जो आत्म-भोगके लिये दूसरोंको कष्ट देते हैं। उनका नाम भी कोई नहीं लेता। प्रत्येक मनुष्य यश और कीर्ति तो चाहते हैं, परंतु जनहित करनेके लिये आत्म समर्पण नहीं करते, उनका यश कैसे फैलेगा? इसलिये मनुष्य कीर्ति चाहें और उसके लिये आवश्यक आत्म यज्ञ भी करें।

सौंदर्यकी इच्छा

५२।४ वयं अप्सवः मा— हम सौंदर्यहीन न हों। अर्थात् हम सुन्दर बनें, अपनी सुंदरता बढावें।

१४७ पिशा अस्मान् अभिशिशीहि— सौंदर्यसे हमें युक्त करो।

सब लोग सुंदरता चाहते हैं। (वयं अप्सवः मा) हम कुरूप न बनें। हमारी सुंदरता बढे। (पिशा अस्मान् अभिशिशीहि) सौंदर्यसे हम सुंदर दीखें। ऐसी इच्छा मनुष्यकी रहती है। परमेश्वर (सु-रूप-कृत्नु। ऋ०) सुंदर रूप बनानेवाला है। जो सुंदरता इस विश्वमें दीखती है वह परमेश्वर बनाता है। प्रत्येक रूपमें जो आकर्षकता है वह ईश्वरसे प्राप्त है। विश्वभरमें सौंदर्य ओतप्रोत भरा है। आकाशमें सूर्य चंद्र नक्षत्रका सौंदर्य, पृथ्वीपर पर्वत, नदियां, वृक्ष, वनस्पति, फूल पत्तों आदिकी सुंदरता अपूर्व है। प्रत्येक फूल पत्ता, तृण वनस्पति आदि सबमें सौंदर्य है। इस विश्वमें सुन्दर नहीं ऐसा कोई पदार्थ नहीं है। चारों ओर सब वस्तुएं सज धज कर सुन्दर बनकर ऊपर आरही है, ऐसे सुंदर विश्वमें कोई मनुष्य आना चाहे तो वह सुंदर बनकर ही आजावे। अपनी सुंदरता बढानेका यत्न करना मनुष्यको योग्य है। विश्व परमेश्वरका रूप है अतः वह सुंदर है, उसमें सुंदर बनकर ही आना चाहिये। वस्त्र, अलंकार, पुष्पमाला आदि धारण करके मनुष्य अपनी सुंदरता बढावे और वह यज्ञादि समारंभ जहां होते हैं वहां जाय।

निंदा

२२४।२ निनित्सोः शंसं आरे कृणुहि— निन्दकका निन्दाके शब्द दूर कर, वे हमारे पास न पहुंचे।

३१८।२ निनित्सोः शंसं अ-द्युं कृणोत— निंदककी निंदाको निस्तेज करो।

६२६।२ पुरुषता नः बर्हिः निदे मा कः— मानव समाजमें हमारे पौरुष कर्मकी निंदा न हो। हमारे पौरुष प्रयत्नकी सर्वत्र प्रशंसा ही होती रहे।

जगत्में (निनित्सुः) निंदक होते ही हैं, वे भले मनुष्यकी भी निंदा करते हैं। फिर जहां दोष होंगे, उसकी निंदा किये विना वे रहेंगे नहीं। इसलिये हमारा आचरण ऐसा उत्तम होना चाहिये कि जिसके सामने उन निंदकोंकी निंदा निस्तेज सिद्ध हो जाय। हमारा आचरण लोग देखेंगे, और उनकी निंदाके शब्द वे सुनेंगे और वे ही स्वयं कहेंगे कि यह निंदा अवास्तव है। इस तरह (शंसं अ-द्युं) निंदाको फीका निस्तेज बनाया जा सकता है। अपने श्रेष्ठ आचरणसे निन्दकोंकी निंदा निस्तेज करनी चाहिये। हमारे पौरुष प्रयत्न, हमारे वीरताके कर्म ऐसे श्रेष्ठ हों, कि कोई निंदक उनकी निंदा करनेका साहस ही न कर सकें।

[illegible]

१०२।४ **चित्रभानु विश्वतः प्रत्यञ्चं यविष्ठं नमसा अगन्म**— विलक्षण तेजस्वी सब ओरसे जिसके पास लोग जाते हैं ऐसे तरुण वीरके पास नमस्कार करते हुए हम जाते हैं।

७२७ **नर्यः वृषा वृषभः शिशुः**— मानवोंका कल्याण करनेवाला बलवान तरुण (यज्ञियासु योषणासु) पवित्र स्त्रियोंमें रहता है और (वाजिनं दधाति) बलवान पुत्रको उत्पन्न करता है।

तरुण पुरुष कैसा हो, वह यहां देखिये (चित्रभानुं) अत्यंत तेजस्वी (विश्वतः प्रत्यञ्चं) चारों ओरसे जिसको देखनेके लिये लोग आते हैं, जो सबके लिये प्रणाम करने योग्य है, (नर्यः) मनुष्योंका हित करनेमें तत्पर रहनेवाला (वृषा वृषभः) बलवान् बैल जैसा हृष्टपुष्ट और वीर्यवान् ऐसा तरुण हो। निस्तेज निर्वीर्य, जनताके हितके कार्य न करनेवाला, निर्बल, विद्याहीन, जिसका मुख कोई देखना नहीं चाहते, ऐसा पुत्र किसीको न हो।

ऐसा तरुण पुरुष अपनी विवाहित पवित्र स्त्रीमें बलवान पुत्र उत्पन्न करता है। अर्थात् ऐसे तरुण-तरुणीका विवाह संबंध हो और इनसे उत्तम संतान निर्माण हो। अब तरुणी कैसी होनी चाहिये वह देखिये—

तरुणीका प्रेम

६ **यं सुदक्षं हविष्मती घृताची युवतिः दोषा-वस्तोः उपैति, एनं स्वा वसूयुः अरमतिः उपैति**— उस उत्तम दक्ष और बलवान तरुणके पास अन्न और घी लेकर दिनमें और रातमें तरुणी पहुंचती है, कि जिनके पास धन कमानेवाली बुद्धि होती है। जो तरुण धन कमाता और जो बुद्धिमान होता है, उसपर तरुण स्त्री प्रेम करती है और उत्तम अन्न और घी लेकर उसकी सेवामें तत्पर रहती है।

६३४।१ **युवतिः योषा न उपो रुरुचे**— तरुणी स्त्री वस्त्रालंकारोंसे सजती है,

६३५।१ **विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थात्**— सबसे प्रथम स्त्री उठे।

६३५।२ **रुशत् शुक्रं वासः बिभ्रती हिरण्यवर्णा सुप्रतीक-संदृक् अरोचि**— चमकीला स्वच्छ वस्त्र धारण करके सुवर्णके रंगवाली स्त्री चमकती हुई आरही है।

६३६।४ **चित्रामघा विश्वं अनुप्रभूता**— धनवाली विश्वके सन्मुख आती है।

उत्तम दक्ष, बुद्धिमान् और धनवान तरुणपर स्त्री प्रेम करती है और मनःपूर्वक उसीकी सेवा करती है। यह पहिले उठती है, वस्त्र आभूषणोंसे सजकर आती है और अपनी पतिका प्रेम संपादन करती है।

मं० ६३४-३५ ये मंत्र उषाका वर्णन करते हुए तरुण स्त्रीका वर्णन करते हैं। तरुण स्त्री किस तरह बर्ताव करे यह उपदेश उषाके मंत्रोंसे विदित हो सकता है। इसलिये यहां उषाके कुछ मंत्र देखिये—

उषा

६२९।१ **सूर्यस्य प्राचीना उदिता बहुलानि अहानि आसन्**— सूर्यके पूर्व उदित बहुत दिन थे। सूर्यके उदय होनेके पूर्व बहुत दिन उषःकालके जाते हैं।

६२९।२ **उषा जारः इव पर्याचरन्ती, यतीव न-** उषा जारकी सेवा करनेके समान पतिसेवा करती है, संन्यासिनी-के समान पतिके विषयमें उदास नहीं रहती।

६३१ **गवां नेत्री वाजपत्नी**— गौओंको चलनेवाली उषा अन्न पकाती है।

सूर्यका उदय होनेके पूर्व (बहुलानि अहानि आसन्) बहुत दिन होते हैं। इन दिनोंमें उषःकालही होता है और सूर्य दर्शन नहीं होता है। उत्तर ध्रुवके पास ऐसी स्थिति है। ३० दिन तक वहां उषःकाल ही रहता है और पश्चात सूर्यका उदय होता है। इस तरह उदित हुआ सूर्य छः मासतक ऊपर ही रहता है। यहां सूर्यके उदय होनेके पूर्व उषा उठती है। इससे पतिके पूर्व प्रातःकाल पत्नीको उठना चाहिये यह बोध मिलता है।

उषा उठकर गौओंकी सेवा करती है, अन्नपानका प्रबंध करती है, वैसा स्त्री उठे, गौओंसे दूध निकाले और प्रातःकालके उपहारका प्रबंध करे। जैसी जारिणी अपने जारकी सेवा करती है वैसी प्रत्येक स्त्री अपने पतिकी सेवा करे, संन्यासिनी जैसी पतिसे विमुख न होवे। यद्यपि जारिणीकी उपमा हीन है तथापि सेवाकी तत्परताकी दृष्टिसे वह उत्तम है। तत्परता ही यहां देखनी है बाकी बातें लेनी या देखनी नहीं है।

धनवाली स्त्री

३१ मघोनी योषणे नः सुविताय आश्रयेताम्- धनवाली दो स्त्रियोंका हमारी सुविधाके लिये हम आश्रय करें। यहां स्त्रियां भी धनवाली होती है और वे लोगोंको आश्रय देती हैं ऐसा कहा है।

१४७ **जनिभिः राजा**— अनेक स्त्रियोंके साथ राजा रहता है।

६२० **मानुषी देवी मर्तेषु अवस्युं धेहि**—हे मनुष्यों में देवि उषा ! मानवोंमें संरक्षक संतान दे।

६२३।२ (स्त्री) **ऋषिस्तुता**— ऋषियों द्वारा प्रशंसित स्त्री हो।

६२३।३ **मघोनी वसूनां ईशे**- धनवती स्त्री धनोंपर स्वामित्व करती है,

६२४ **शुभ्रा विश्वपिशा रथेन याति**- शुभ्र उषा सबसे तेजस्वी रथसे जाती है।

६२४ **विधते जनाय रत्नं दधाति**— प्रयत्नशील मनुष्यको उषा धन देती है।

स्त्री ऐसी विदुषी हो कि वह धनकी स्वामिनी बन कर रहे। स्त्रीके पास धन हो या न हो इस विषयमें आजके लोग संदेह करते हैं। इस विषयमें वेदने निर्णय दिया है कि (मघोनी योषणे) स्त्री धनवाली हो, स्त्रीके अधिकारमें धन रहे। (मघोनी वसूनां ईशे) धनवाली स्त्री धनोंपर अधिकार चलावे। इस तरह स्त्री धनकी स्वामिनी होती है और उसके अधिकारमें नाना प्रकारके धन होते हैं।

स्त्री (ऋषि-स्तुता) ऋषियों द्वारा प्रशंसित होने योग्य हो। ऐसी विदुषी और ऐसी कर्तृत्व शालिनी हो कि सब विद्वान् उसकी प्रशंसा करें। ऐसी धनवती स्त्री (विधते जनाय रत्नं दधाति) प्रयत्नशील मनुष्यको वह रत्न देती है, धन देती है। (शुभ्रा विश्वपिशा रथेन याति) श्वेत वस्त्र पहन कर वह सुंदर रथमें बैठकर बाहर जाती है।

यह विदुषी स्त्री (मानुषी देवी) मनुष्योंके घरमें देवीके समान पूज्य होकर रहती है और (अवस्युं दधाति) संरक्षक वीर पुत्र उत्पन्न करती है। विदुषी स्त्री के अंदर विद्वान् सुयोग्य पति के द्वारा उत्तम वीर संतान उत्पन्न होते हैं।

(जनिभिः राजा) स्त्रियोंके साथ राजा रहता है, इस वेदवचनसे ऐसा प्रतीत होता है कि राजा लोग अनेक स्त्रियां भी करते हैं। एक पुरुषको एक स्त्री यह नियम होगा, परंतु कई प्रसंगमें एक पुरुषको अनेक स्त्रियां करनेका भी अधिकार होगा। दशरथकी अनेक स्त्रियां थीं, चन्द्रकी अनेक स्त्रियोंका आलंकारिक वर्णन है। इस तरह अनेक स्त्रियां होनेके भी वर्णन हैं। विचार करना चाहिये कि इन दोनों प्रकारके वचनोंकी संगति किस तरह लगानी है।

पति-पत्नी

२३१ एकः समानः पतिः जनीः इव— एक समान पति अनेक स्त्रियोंको वश करता है। यहां एककी अनेक स्त्रियां होनेका उल्लेख है।

अनेक स्त्रियोंको वशमें रखनेवाला एक समान पति है। इस वर्णनमें अनेक स्त्रियोंके समान एक पतिका उल्लेख है। यह उल्लेख स्पष्ट है। इन्द्रके वर्णनमें यह मन्त्र आया है। एक इन्द्र अनेक कीलोंपर अपना अधिकार चलाता है, इसके लिये यह उपमा दी है, जिस तरह एक पति अनेक स्त्रियोंको वशमें रखता है। इस उपमामें भी एक इन्द्रके आधीन अनेक कीले होते हैं, वैसे एक पतिके आधीन अनेक स्त्रियां होती हैं। इस उपमाका विचार करनेपर भी एक पतिकी अनेक स्त्रियां होनेकी मान्यता मिली है ऐसा प्रतीत होता है।

ब्राह्मण ग्रन्थमें—

एकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति, नहि एकस्याः सहपतयः।

'एक पुरुषको अनेक स्त्रियां होती हैं, परंतु एक स्त्रीको एक समय अनेक पति नहीं होते' यहां भी अनेक पत्नियां करनेके लिये मान्यता है। एक यूप पर अनेक रसियां बांधी जाती है. उसके समान एक पतिको अनेक स्त्रियां होती हैं यह उपमा दी है। तात्पर्य एक पतिको अनेक स्त्रियां होनेका विषय यह ऐसा है।

अपना घर

११।३ नृणां मा निषदाम— दूसरोंके घरमें हम न रहें। हम अपने घरमें रहें। रहनेका घर अपना हो।

१०३।१ स्वे दुरोणे समिद्धः दीदाय--अपने घरमें प्रदीप्त होकर तेजस्वी बन। अपने स्थानमें जागते हुए प्रकाशित हो।

अग्नि अपने वेदीरूप घरमें रहकर प्रदीप्त होता है, वैसा मनुष्य अपने घरमें रहे और प्रकाशित होवे।

१७८।२ सखायः प्रियासः नरः शरणे मदेम— हम सब एक कार्य करनेवाले, परस्पर प्रीति करनेवाले नेता, अग्रगामी होकर अपने घरमें आनंदसे रहेंगे।

३६१।२ नः अस्तं सुवीरं रयिं पृक्षः— हमारा घर उत्तम वीर संतानसे युक्त हो और धन तथा अन्नसे भरपूर हो।

३६२ मर्ताः यं अस्ववेशं कृण्वन्तः— मनुष्य उसको अपने निज घरमें रहने नहीं देते। उसको सब बुलाते हैं।

दूसरेके घरमें नहीं रहेंगे

यहां कहा है कि (नृणां मा निषदाम) दूसरोंके घरोंमें न रहें। दूसरोंके घरमें रहनेकी आपत्ति हमपर न आवे। हम अपने घरमें रहें। मनुष्योंकी प्राप्ति जहां नहीं होती वहां हम न रहें। जहां मानवोंका आना जाना होता है ऐसे स्थानपर हम रहें, क्योंकि हमें मानवोंमें संघटना करना है। अतः जहां मानव न होंगे वहां रहकर हमें करना क्या है?

(स्वे दुरोणे समिद्धः) अपने निजके घरमें हम प्रकाशित होंगे, जैसा अग्नि अपने घरमें, वेदीमें रहता है और वहां प्रदीप्त होता है, वैसे हम अपने घरमें रहकर प्रकाशित होते रहेंगे, दूसरोंको सन्मार्ग दिखाते जांयगे।

(सखायः नरः शरणे मदेम) एक कार्य करनेवाले अर्थात् सुसंघटित होकर, नेता अग्रणी बनकर हम अपने घरमें आनन्द प्राप्त करेंगे और अपने अनुयायियोंको भी आनन्द प्राप्तिका मार्ग बतायेंगे।

(नः अस्तं सुवीरं रयिं पृक्षः) हमारा घर उत्तम वीर संतानों-पुत्र पौत्रोंसे, धनसे और अन्नसे भरपूर हो। किसी प्रकारकी न्यूनता न हो। वीर पुत्रोंसे युक्त घरमें हम रहेंगे।

नेता अपने घरमें नहीं रहता

(मर्ताः अ-स्व-वेशं कृण्वन्तः) मनुष्य-अनुयायी जन-नेताको अपने निज घरमें रहने नहीं देते। चारों ओर जाकर उसके लिये इतना कार्य करना पडता है, कि उसको अपने घर रहनेका अवसरही नहीं मिलता। यह नेताका लक्षण है। वह भ्रमण करता है और अपने अनुयायियोंका सुधार करता जाता है। वह अपने घरमें किस तरह बैठा रहे?

१३४।१ येषां दुरोणे घृतहस्ता इळा प्राता आ निषीदति, तान् त्रायस्व— जिनके घरोंमें घी और अन्नके भरे पात्र लेकर अन्न परोसनेके लिये स्त्रियां सिद्ध रहती हैं, उनका संरक्षण कर।

१३४।२ द्रुहः निदः तान् त्रायस्व— द्रोही निंदकोंसे उनका संरक्षण कर।

१३४।३ दीर्घश्रुत् शर्म नः यच्छ— जिसकी कीर्ति दीर्घकालतक टिकी रहती है वैसा सुखदायी घर हमें दो।

१८१।५ स्तीन् नः उपामिमीहि— रहनेके लिये घर हमें मिलें।

२१७।१ सद्ने योनिः अकारि—अपने स्थानमें रहनेके लिये घर किया है।

२२६ तविषीवः उग्र! विश्वा अहानि ओकः कृणुष्व— हे बलवान् वीर! तुम सबदिन अपने घरको सुरक्षित करो।

३९२ भद्रा उषसः अश्वावतीः गोमतीः वीरवतीः घृतं दुहानाः विश्वतः प्रपीताः नः सदं उच्छन्तु— कल्याण करनेवाली उषा देवी घोडों, गौवों, वीरोंसे युक्त होकर घी देती हुई, सब प्रकारसे संतुष्ट होकर हमारे घरोंको प्रकाशित करे।

४१४ क्षम्यस्य जन्मनः क्षयेण स चेतति— पृथ्वीके ऊपर जन्म लेनेवाले मनुष्यका निवास घरमें करानेके लिये वह वीर सचेत रहता है।

५४८।१ क्षयः सुप्रावीः अस्तु— घर सुरक्षित हो।

५७२ इरावत् वार्तैः यासिष्ठ— अन्नवाले घरमें जाओ।

५९१ मनुषः दुरोणे घर्मः अतापि— मानवोंके घरमें अग्नि जलता है।

६१७ मघवद्भ्यः छर्दिः ध्रुवं यशः यंसतः— धनी लोगोंको उत्तम घर और स्थायी यश दो।

७०८ बृहन्तमानं सहस्रद्वारं गृहं जगम— बडे विशाल हजार द्वारोंवाले घरमें रहेंगे।

७११ अहं मृन्मयं गृहं मो गमं— मैं मिट्टीके घरमें जाकर नहीं रहूंगा।

सु— सुंदर घरमें रहूंगा।

८८५ पस्त्यावान् मर्यः— घरवाला मनुष्य हो।

८९३ नः सुवीरं क्षयं धन्वन्तु— वीर पुत्र पौत्रोंवाला हमारा घर हो।

मिट्टीके घरमें नहीं रहेंगे

(७११ **अहं मृन्मयं गृहं** मा, गमं स्त्रु)- मैं मिट्टीकी झोपडीमें **नहीं रहूंगा**, परन्तु सुन्दर पक्के घरमें मैं निवास करूंगा। जो **समझते हैं** कि ऋषि लोग मिट्टीके घरोंमें रहते है और वैदिक सभ्यता हमें मिट्टीके झोपडोंमें रहना सिखाती है, वे इस मंत्रको देखें और समझें कि वसिष्ठ ऋषि तो कहते है कि मै मिट्टीके घरमें नहीं रहूंगा। परन्तु सुन्दर पक्के घरमें रहूंगा। यह ठीक भी है क्योंकि वसिष्ठ ऋषिके गुरुकुलमें हजारों छात्र पढते थे, वे सब मिट्टीकी झोपडोंमें किस तरह रह सकेंगे।

हजार द्वारोंवाला घर

आगे वे ही कहते है कि (७०८ बृहन्तं मानं सहस्रद्वारं गृहं जगम) बडे विशाल आकारवाले हजार द्वार जिसमें हैं ऐसे घरमें जाकर हम निवास करेंगे। (६१७ ध्रुवं छर्दिः) स्थिर टिकनेवाला घर हो। आज तैयार किया, जोरसे हवा आयी, नदीका प्रवाह बढ गया और वह घर बह गया, तो वसिष्ठ ऋषिके गुरुकुलका-कि जहां सहस्रो छात्र पढते थे— क्या बनेगा। इसलिये पक्के मकानोंमें रहना ही योग्य है। 'बृहन्तं मानं सहस्रद्वारं' बडे विशाल परिमाणवाला घर हो जिसको हजार द्वार हैं ऐसा विशाल घर हो। जहां हजारों छात्रोंको पढना है वहां हजार द्वारोंवाला ही घर होना चाहिये। एक एक कमरेके लिये दो तीन द्वार रहे तो २००।३०० कमरेवाला तो यह घर होगा ही। ऐसे घरोंमें रहनेकी इच्छा करना योग्य है। सहस्रों छात्रोंके साथ रहनेवाले ऋषि ऐसे ही विशाल मकानोंमें रहते होंगे, इसमें संदेह नहीं हो सकता।

घरोंका संरक्षण

१३४ द्रुहः निदः त्रायस्व।

५४८ क्षयः सुप्रावीः अस्तु।

'निंदकोंसे और द्रोहियोंसे घरका संरक्षण कर। घर सुरक्षित हो।' उस घरपर कोई हमला न करे, चोर लुटेरे डाकू उस घरको कष्ट न पहुंचा सकें। ऐसा सुरक्षित घर हो।

यशस्वी घर हो

(१३४ दीर्घश्रुत् शर्म) अत्यंत कीर्तिसे युक्त घर हो। यशस्वी घर हो। जिसकी कीर्ति सुनकर लोग उसकी ओर आकृष्ट होते हों ऐसा घर हो।

(४१४ क्षयेण चेतति) घरसे उत्तेजना मिले, घर देखनेसे उत्साह बढ जाय ऐसा घर हो। घर देखनेसे सब उत्साह दूर हो ऐसा घर न हो।

मंत्र ३९२ कहा है कि 'घोडे गौवें तथा बालबच्चे घरके चारों ओर घूमें, उषःकालके सूर्य किरण (सदं उच्छन्तु) घरको प्रकाशित करें ऐसा घर हो।

(५७२ इरावत् वर्तिः) घर धनधान्यसे संपन्न हो। दरिद्रता दुःख हानि घरके पास न आवे। ऐसे घर मनुष्यके हों। मनुष्य ऐसे उत्तम घरमें रहें और आनन्द प्रसन्न हों, घर बालबच्चे, पुत्रपौत्रोंसे युक्त हों और ऐश्वर्यसे संपन्न हों।

उत्तम पुत्र

११।१ **शूने मा निषदाम**— संतानरहित घरमें हम न रहें।

११।२ नृणां अशेषसः अवीरता मा— मनुष्योंको संतान-हीनता और अवीरता न प्राप्त हो।

११।४ प्रजावतीषु दुर्यासु परि निषदाम— पुत्र-पौत्रोंसे युक्त घरोंमें हम रहें।

१२ यं अश्वी नित्यं उपयाति, प्रजावन्तं स्वपत्यं स्वजन्मना शेषसा वावृधानं क्षयं नः धेहि— जिस घरके पास घोडेपर बैठे वीर नित्य आते हैं, वैसा सन्तानवाला, उत्तम पुत्रोंवाला औरस संतानोंसे बढनेवाला अपना निवास स्थान हो।

१४ वाजी वीळुपाणिः सहस्रपाथः तनयः अक्षरा समेति— बलवान शस्त्रधारी सहस्रों धनोंसे युक्त पुत्र ज्ञानोंको प्राप्त करता है। पुत्र ज्ञानी भी हो और वीर तथा धनवान् भी हो।

१५।३ सुजातासः वीराः परिचरन्ति—उत्तम कुलीन वीरपुत्र ईश्वरकी पूजा करते हैं। वीर ईश्वरकी भक्ति करें।

२१।१ तनये मा आधक्—हमारा पुत्र न मरे।

२१।२ नर्यः वीरः अस्मत् मा विदासीत्— मानवोंका हित करनेवाला पुत्र हमसे दूर न हो.

२१।३ सुहवः रण्वसंदृक् सहसः सूनुः— प्रेमसे बुलाने योग्य रमणीय और बलवान पुत्र हो।

३४ तत् तुरीयं पोषयित्नु विष्यस्व, यतः कर्मण्यः सुदक्षः देवकामः वीरः जायते— वह सत्वर पोषण

करनेवाला वीर्य हमें दो, कि जिससे कर्ममें कुशल, उत्तम दक्ष और ईश्वर भक्ति करनेवाला वीरपुत्र उत्पन्न होता है। पुरुषका वीर्य उत्तम निर्दोष हुआ तो संतान उत्तम होती है, इसलिये पुत्रकी कामना करनेवाले लोग अपना वीर्य उत्तम प्रभावशाली बनानेका यत्न करें।

३६ सुपुत्रा अदितिः बर्हिः आस्ताम्-- जिसके उत्तम तेजस्वी पुत्र हैं वह माता अदिति यहां आसनपर बैठे। सुपुत्रोंकी माताका सब सत्कार करें।

४५।२ मात्रोः सुक्रतुः पावकः देवयज्यायै आजनिष्ट-- मातापितासे उत्तम कर्म करनेवाला पवित्र पुत्र दिव्य कर्म करनेके लिये ही उत्पन्न होता है। ऐसा ही दो अरणियोंसे अग्नि यज्ञ करनेके लिये उत्पन्न होता है।

५१।३ वयं अवीराः मा— हम निर्वीर्य न बनें, हम पुत्र हीन न बनें।

५३।३ अन्यजातं शेषः नास्ति-- दूसरेका पुत्र अपन औरस पुत्र नहीं हो सकता, औरस पुत्रकी योग्यता दत्तक पुत्रको नहीं हो सकती।

५४।१ अन्योदर्यः सुशेवः अरणः ग्रभाय नहि- दूसरेका पुत्र उत्तम सेवा करनेवाला, अपने पास आनेवाला होनेपर भी औरस पुत्रके समान ग्रहण करने योग्य नहीं होता।

५४।२ अन्योदर्यः मनसा मन्तवै नहीं— दूसरेका पुत्र मन से अपने औरस पुत्रके समान मानने योग्य नहीं होता।

५४।३ सः (अन्योदर्यः) ओकः एति-वह दूसरेका पुत्र अपने मातापिताके घर ही जायगा। उसका मन इधर नहीं लगेगा।

५४।४ नव्यः वाजी अभीषाट् नः एतु— नवीन बलवान् और शत्रुका पराभव करनेवाला औरस पुत्र हमें उत्पन्न हो।

१८६।१ वृषा वृषणं रणाय जजान— बलवान् पिताने बलवान् पुत्रको युद्ध करके शत्रुनाश करनेके लिये निर्माण किया है।

१८६।२ नारी नर्यं ससूव— स्त्री मानवोंका हित करनेवाला पुत्र उत्पन्न करे। मनुष्यका यह ध्येय रहे।

१८६।३ यः नृभ्यः सेनानीः प्र अस्ति— जो मानवोंका हित करनेवाला तथा सेनाका संचालन करनेवाला प्रभावी नेता हो सकता है ऐसा पुत्र मातापिता उत्पन्न करें।

१८६।४ स इनः सत्वा गवेषणः धृष्णुः-- वह पुत्र स्वामी, सत्ववान्, गौओंकी खोज करनेवाला तथा शत्रुका धर्षण करनेवाला हो।

२१५ जरित्रे शुष्मिणं तुविराधसं—ज्ञानीको बलवान् कलाओंमें प्रवीण पुत्र हो।

२२०।१ वृषणं शुष्मं वीरं दधत्— हमें बलवान और सामर्थ्यवान् पुत्र चाहिये।

२२०।२ हर्यश्वः सुशिप्रः— पुत्र शीघ्रगामी घोडे और उत्तम कवच धारण करनेवाला हो।

२२०।३ विश्वाभिः ऊतिभिः सजोषाः स्थविरेभिः वरीवृजत्— वह वीर पुत्र सब प्रकारके संरक्षक साधनोंसे युक्त, उत्साही और निपुणोंके साथ रहे और शत्रुओंको दूर करे।

२२१।४ नः ओमन्तं अधिधाः— हमें धन कमानेवाला पुत्र चाहिये।

२३० पुत्राः पितरं न सबाधः समान दक्षाः अवसे हवन्ते— पुत्र जैसे पिताको बुलाते हैं, उस तरह इकट्ठे मिले समान भावसे दक्ष रहनेवाले वीर अपनी सुरक्षाके लिये इन्द्रको बुलाते हैं।

३२६ सुपाणिः त्वष्टा पत्नीः वीरान् दधातु— निर्माता प्रभु हमारी पत्नियोंमें उत्तम वीर निर्माण करे।

४०१ विभृतासः पुत्रासः मातरं— भरण पोषण होनेवाले पुत्र माताकी गोदमें बैठते हैं।

४४३ पिता पुत्रान् इव नः जुषस्व— पिता पुत्रोंका पालन करता है वैसा तुम हमारा पालन कर।

५१०।२ तस्मिन् तोकं तनयं दधानाः— उस शुभ कर्ममें हम अपने बालबच्चोंको रखेंगे, प्रवीण बनायेंगे।

५६३।३ सूनुः पितरा न विवक्मि— पुत्र पिताके साथ जैसा बोलता है, वैसा मैं बोलता हूँ।

५६८।२ तोके तनये तूतुजानाः- बालबच्चोंके लिये त्वरा करो।

७६४ जनीयन्तः पुत्रीयन्तः सुदानवः अग्रवः— स्त्रीवाले पुत्र चाहनेवाले दाता अग्रेसर हों।

संतानोंसे भरे हुए घर हों

घरका भूषण संतान है। जिसमें बालबच्चे हैं ऐसा घर हो। **(११ शूने मा निषदाम)** हम संतान रहित घरमें नहीं

रहेंगे। हम ऐसे घरमें रहेंगे कि जिस घरमें बाल बच्चे बहुत हों। बाल बच्चोंसे शून्य घरमें रहनेका दुर्भाग्य हमें कदापि प्राप्त न हो। (११ **प्रजावतीषु दुर्यासु परि निषदाम**) जिस घरमें बाल बच्चे बहुत है उस घरमें हम रहेंगे। (११ **नृणां अशेषसः मा**) मनुष्योंके दैवमें पुत्रहीनता न हो। पुत्रहीनता बडी बुरी अवस्था है। यह महादुर्दैव है। पुत्रहीनता हमें कदापि प्राप्त न हो। (१२ **प्रजावन्तं स्वपत्यं स्वजन्मना शेषसा वावृधानं क्षयं नः धेहि**) बालबच्चोंसे भरा, अपने निज संतानोंसे परिपूर्ण, औरस पुत्रोंसे बढनेवाला घर हमें मिले। हमारे घरमें औरस पुत्र पौत्र तथा प्रपौत्र हों। पुत्र पौत्रोंसे हमारा घर भरा हो। (५२ **वयं अवीरा मा**) हम कभी वीर संतानसे रहित न हों अर्थात् हमें सन्तान हों और वीर सन्तान हों।

दत्तक पुत्र नहीं चाहिये

दत्तक पुत्रकी निंदा वसिष्ठ मंत्रोंमें दीखती है। (५३ **अन्यजातं शेषः नास्ति**) दूसरेका गोदमें लिया दत्तक पुत्र औरस संतानकी योग्यता नहीं पा सकता। औरस संतानका मूल्य कुछ और ही है।

५४ अन्योदर्यः सुशेवः अरणः ग्रभाय नहि।

दूसरेके पेटसे जन्मा उत्तम सेवा करनेवाला, प्रेमसे पास आनेवाला होनेपर भी वह औरसपुत्र जैसा स्वीकारके योग्य नहीं होता। वह (अ-रणः) न लडनेवाला भी हुआ तो भी वह औरस जैसा नहीं समझा जायगा। जो दूसरेका पुत्र है वह दूसरेकाही रहेगा और जो अपना होगा वह अपनाही रहेगा। इसलिये दत्तक पुत्र लेनेका दुर्दैव हमारे नसीबमें न हो। हमारे पास अपना औरस वीर पुत्र हो। ऐसे सुपुत्रोंसे हमारा घर भरा रहे।

५४ अन्योदर्यः मनसा मन्तवै नहि।

'दूसरेका पुत्र दत्तक लेनेकी बात मनमेंभी लाने योग्य नहीं है।' वह दूसरेका पुत्र (५४ **सः ओकः एति**) अपने घर ही जायगा। अपने मातापिताओंके पास ही आकर्षित होगा। वह हमारे पास कदापि नहीं रहेगा। इस दत्तक पुत्र लेनेकी बात मनमें लाने योग्य भी नहीं है।

ज्ञानी वीर धनी पुत्र हो

केवल औरस सन्तान नहीं चाहिये, परंतु वह ज्ञानी वीर पुरुषार्थी विजयी धन प्राप्त करनेमें समर्थ ऐसा संतान हो-

१४ वाजी वीळुपाणी सहस्रसाथः तनयः अक्षरा समेति।

बलवान्, शस्त्रधारी, सहस्रों मार्गोंसे धन कमानेवाला पुत्र ज्ञानी भी हो। पुत्र ऐसा सुलक्षणी होना चाहिये। (१५ **सुजातासः वीराः परिचरन्ति**) उत्तम कुलीन सुपुत्र जिस समय अपनी सेवा करनेके लिये तत्पर रहते हैं उस समय अपने घरका सच्चा आनंद मिल सकता है। इस तरह इस संसारसे आनंद प्राप्त करना चाहिये।

२१ नर्यः वीरः अस्मत् मा विदासीत्।

'जनताका हित करनेवाला वीर पुत्र हमें उत्पन्न हो और वह हमसे दूर न जाय।' यही पुत्र घरकी शोभा है। (२१ **सुहवः रण्व-संदृक् सहसः सूनुः**)— उत्तम प्रेमसे बुलानेयोग्य रमणीय और बलवान् पुत्र हो (३४ **कर्मण्यः सुदक्षः देवकामः वीरः**) पुरुषार्थी, दक्ष, ईश्वरभक्त और वीर पुत्र हो।

५४ नव्यः वाजी अभीषाट् नः एतु।

'नवीन बलवान् शत्रुका पराभव करनेमें समर्थ पुत्र हमें उत्पन्न हो।' (१८६ **वृषा रणाय जज्ञे**) बलवान् पुत्र शत्रुके साथ युद्ध करनेके लिये उत्पन्न होता है ऐसा वीरपुत्र हमें चाहिये। (१८६ **नारी नर्यं ससूव**) पत्नी जनताका हित करनेवाले सुपुत्रको उत्पन्न करती है। सब लोगोंके कल्याण करनेवालेको 'नर्य' (नरेभ्यो हितं) कहते हैं। 'पाञ्च-जन्यं, (पञ्चजनेभ्यो हितं) पांचों प्रकारके मनुष्योंका हित करनेवाला पुत्र हो, सार्वजनिक हित करनेके कार्यमें तत्पर पुत्र हो यह भाव यहां है।

१८६ यः नृभ्यः सेनानीः अस्ति।

जो पुत्र मानवोंका हित करनेके लिये सेनानीका कार्य कर सकता है ऐसा पुत्र हो। मनुष्य (७६४ **जनीयन्तः पुत्रीयन्तः सुदानवः अग्रवः**) पत्नी करें, पुत्रवान हों, दान दें और अग्रभागमें रहकर धुराका कार्य करें।

यह इच्छा होनी चाहिये। मेरे पुत्र विद्वान् हों, वीर हों, युद्धमें जानेके लिये उत्सुक हों, अनेक उद्योग करके धन कमानेवाले हों, धन कमाकर उत्तम रीतिसे दान दें, उत्तम सत्पात्रमें दान दें, जनताका सुख बढानेके कार्य करें, कार्य करनेमें तत्पर-

[illegible] आगे बढ़ें, अनुयायियोंको लेकर आगे बढ़ें, अपना, अपने [illegible] तथा राष्ट्रका गौरव करें, अपने घरको शत्रुकी बाधा होने न दें। (५२ नकिरस्य मा आधक्) घरके बालबच्चे न मरें। वे दीर्घजीवी हों।

(६६ सुपुत्रा बर्हिः आस्तां) उत्तम वीर पुत्रोंकी माताका सन्मान होता रहे। समाजमें वीर पुत्रोंका प्रसव करनेवाली माताका आदर हो।

वसिष्ठ मंत्रोंमें पुत्रके विषयमें ये भाव प्रकट हुए हैं। अच्छे श्रेष्ठ वीर (७२५ **सुअपत्यानि चक्रुः**) उत्तम संतान निर्माण करते हैं। सुप्रजा निर्माण करनेका यत्न हरएकको करना चाहिये।

बच्चेकी प्यार

३० **मातरा शिशुं न रिहाणे**— गौमाता बच्चेको प्रेमसे चाटती है।

गौ अपने बच्चेके साथ जिस तरह प्रेम करती है वैसा प्रेम माता तथा पिता अपने पुत्रोंसे करे। बच्चे यह जाती का धन है। यद्यपि वह किसीके घर आता है, तथापि वह जातीका तथा राष्ट्रका धन है। इसलिये उसकी पालना परम आदरके साथ करनी चाहिये।

बन्धु भाई

११२ **नेदिष्ठं आप्यं उपसद्याय मीळहुषे**— समीपके भाई पास जाने योग्य और सहायता मांगने योग्य हैं।

५७१ **बन्धुं सूनृताभिः प्रतिरन्ते**— भाईके साथ मीठा भाषण करो। भाई भाईके साथ भाईचारेका वर्ताव होना योग्य है, उससे प्रेम भरा वर्ताव किया जाय, मीठा भाषण हो, आदरसे मिलें और आवश्यक समय पर योग्य सहायता भी दी जावे। '**मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्, मा स्वसारं उत स्वसा** (अथर्व ३।३०।३)' भाई भाईके साथ तथा बहिन बहिनके साथ द्वेष न करें। ये मिलकर प्रेमसे रहें। मिलजुल कर रहें। यह वसिष्ठ मंत्रोंकी शिक्षा है।

प्रजाजनोंका हित

२६२ **कृष्टयः त्वा संनमन्ते**— प्रजाजन तुम्हें प्रणाम करते हैं।

२६३।३ **चर्षणिप्राः पूर्वीः विशः प्रचर**— प्रजाको परिपूर्ण करनेवाला होकर तू प्रजाओंमें संचार कर।

५४० **असुर्या आर्या क्षितिः ऊर्जयन्ती करतं**— बलवान आर्य संतानको अधिक बलशाली बनाओ।

६१३ **विशं विशं हि गच्छथः**—प्रत्येक प्रजाजनके पास जाओ।

६२२।१-२ **पञ्चक्षितीः युजाना सद्यः परिजिगाति**— पंचजनोंको कार्यमें जोडती और तत्काळ प्रेरित करती है।

६२२।३-४ **दिवः दुहिता भुवनस्य पत्नी जनानां वयुना अभिपश्यन्ती**— द्युलोककी पुत्री विश्वकी पालन करनेवाली लोगोंके कार्योंका निरीक्षण करती है॥

६२७।१ **विश्वानरः सविता देवः विश्वजन्यं अमृतं ज्योतिः उदश्रेत्**— विश्वका नेता सविता देव सार्वजनिक हित करनेवाळी ज्योतिका आश्रय करता है।

६४५।२ **मानुषीः पंच क्षितीः बोधयन्ती**—पांचों मानवोंको उषा जगाती है।

६८६ **अन्यः प्रविक्ताः कृष्टीः धारयति**— अन्य वीर प्रजाका धारण करता है।

'कृष्टयः' पद खेती करनेवालोंका बोधक है। '**चर्षणी**' का भी वही अर्थ है। 'क्षिति' पद भूमिके आश्रयसे रहनेवाले किसानोंका बोधक है। '**पञ्चक्षितीः**' '**पञ्चजना**' ये पद पांच जातियोंके वाचक हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांच जातियां हैं। इन सबका हित होना चाहिये। इन पांचों मानवोंका कल्याण होना चाहिये। '**६२७ विश्वजन्यं अमृतं ज्योतिः**' सार्वजनिक सुख और तेज सबको मिलना चाहिये। कोई दीन, दुर्बल, अनाडी, निर्धन न रहे, सब लोग आनंद प्रसन्न रहें। **(६१३ विशं विशं गच्छथः)** प्रत्येक प्रजाजनके पास जाओ, उनको क्या चाहिये वह देखो और विचार करो और उनको सुखी करनेका यत्न करो। **(६४५ मानुषीः पञ्च क्षितीः बोधयन्ती)** पांचों प्रकारके मानवोंको बोध करो, ज्ञान दो, उनको सज्ञान करो, उनकी उन्नतिका मार्ग दिखाओ।

इस तरह वसिष्ठ मंत्रोंमें सार्वजनिक कल्याणका विषय आया है।

गोरक्षण

१४९।१ **दुधुक्षन् सुयवसे धेनुं उपसृजे**—

दूध दुहने की इच्छा करनेवाला उत्तम घासके पास अपनी गौको पहुंचाता है।

१४९।३ विश्वः इन्द्रं गोपतिं आह–सब कोई इन्द्रको गौओंका स्वामी करके वर्णन करता है।

१५१।१ यः आर्यस्य सधमाः गव्याः तृत्सुभ्यः आ अनयत्— जो इन्द्र आर्यके घरमें रहनेवाले गौओंके झुण्ड हिंसक शत्रुओंसे वापस लाता है। '**सध-माः गव्याः**'– गौवें घरमें रहती थीं। गोशालामें साथ साथ बांधी जाती थीं।

२१४।१ स्तर्यः गावः न आपः चित् पिप्युः— प्रसूत न हुई गौओंकी तरह जल प्रवाह बढते है।

२३४।४ नः गोमति व्रजे त्वं आभज— हमें गौओंके बाडमें स्थान दे।

२७५ यस्य रक्षिता इन्द्रः मरुतः च स गोमति व्रजे गमत्— जिसके रक्षक इन्द्र और मरुत् हैं, वह गौओंवाले बाडेमें जाता है, उसके पास बहुत गौवें होती है।

३८८।३ गोभिः अश्वैः नृभिः प्रजनय, नृवंतः स्याम— गौएं, घोडे और वीरोंसे हमें युक्त कर, इनसे हम वीरवान बनें।

५८० शचीभिः स्तर्यं अघ्न्यां अपिन्वतं— अपनी अद्भुत शक्तियोंसे वंध्या गौको दुधारू बनाया।

५८१ अघ्न्या पयोभिः तं वर्धत्— गौ दूधसे उसे पुष्ट करती है।

६२५।३ उस्रियाणां ददत्, गावः उषसं वावशंत- उषा गौओंको देती है, गौवे उषाको चाहती है।

७०० अघ्न्या त्रिःसप्त नाम बिभर्ति— गौके २१ नाम हैं।

९१९ गोसनिं वाचं उदेयं, वर्चसो मां अभ्युदिहि, त्वष्टा मे पोषं दधातु— गोसेवाकी प्रतिज्ञा मैं करता हूं, मुझे तेजस्वी कर, त्वष्टा मेरा पोषण करे।

१०८ पशून् गोपाः— पशुओंका संरक्षण कर।

वैदिक धर्ममें गोरक्षणका महत्त्व अत्यंत है। विना गौके यज्ञ नहीं और विना यज्ञके वैदिक धर्म नहीं। इतना गोरक्षणके साथ धर्मका संबंध है (**१४९ सुयवसे धेनुं उपसस्रुजे**) उत्तम जौके घासको खानेके लिये गौको छोडता हूं। गौ विना बंधनके घास के खेतमे जाय और पर्याप्त घास स्वेच्छासे खाय, इस तरह गौवें हृष्टपुष्ट हों।

(**२३४ नः गोमति व्रजे आभज**) हमें गौओंके बाडेमें रख। जहां गौवें हों वहां हम रहेंगे। इतना प्रेम गौओंपर होना चाहिये। जैसे घरके मनुष्य वैसी ही गौवें घरमें रहें। घरके मनुष्य और घरकी गौओंमें कोई फरक नहीं होना चाहिये। जिसका संरक्षण इन्द्र करता है, वह गौओंके बाडेमें रहता है।

वन्ध्या गौको दुधारू बनाना

अश्विनी कुमार इस वन्ध्या गौको दुधारू बनानेकी विद्याको जानते थे। उन्होंने '**स्तर्यं अघ्न्यां शचीभिः अपिन्वतं**' (५८०) वंध्या गौको पुष्ट करके दुधारू बनाया था। (**५८१ अघ्न्या पयोभिः तं वर्धयत्**) गौ अपने दूधसे उस रुग्ण मनुष्यको पुष्ट करती है। मनुष्यको हृष्ट पुष्ट बनानेके लिये गौका दूध अच्छा होता है। इसलिये (**९१९ गोसनिं वाचं उदेयं**) गोसेवा की ही बात करनी चाहिये। गोसेवा करना ही मनुष्योंका धर्म है। मनुष्य पुष्ट होना चाहता है और तेजस्वी होना चाहता है। यह गौके दूधसे हो सकता है, इसलिये गौसेवा करना मनुष्योंका कर्तव्य है।

गौसे पञ्चगव्य उत्पन्न होता है जो मनुष्यके लिये अत्यंत हितकारी है। गौके शरीरसे उत्पन्न होनेवाले सभी पदार्थ हित-कारी हैं। इस तरह गौ मनुष्यके लिये हितकारी है।

उत्तम दिन

९१।२ यस्य बर्हिः देवैः आससाद असौ सुदिनानि भवन्ति– जिसके घरके आसनपर श्रेष्ठ विबुध आकर बैठते हैं, उसके लिये उत्तम दिन आते है।

१५१।१ अहा सुदिना व्युच्छात्— दिन अच्छे दिन हों।

जिसके घरमें आकर ज्ञानी पुरुषार्थी वीर बैठते हैं वे दिन उस घरके लिये सुदिन होते हैं। श्रेष्ठोंकी संगतिसे दिन सुदिन बनते हैं। श्रेष्ठ पुरुषोंकी अनुकूलतासे सब दिन सुदिन होते हैं। प्रत्येक दिनको सुदिन करनेका यही एक उपाय है। आप श्रेष्ठ सत्पुरुषोंकी संगतिमें अपने दिन व्यतीत कीजिये, तो वे दिन आप-के लिये सुदिन हो जायगे। अर्थात् दुष्ट मनुष्योंके साथ जो दिन जायगे वे दिन अच्छे होनेपर भी वे कुदिन या दुर्दिन ही कहे जायगे।

दीर्घ आयु

२४ आयुषा अविक्षितासः— आयुसे हम क्षीण न हों। हम दीर्घायु बनें।

५१६।३ क्रत्वा शरदः आपृणैथे— पुरुषार्थसे अनेक वर्षोंको पूर्णतया प्राप्त कर सकते हैं।

५१६ नः जीवसे गव्यूतिं घृतेन आ उक्षतं— हमारे दीर्घ जीवनके लिये हमारा मार्ग घीसे सिंचित हो। हमें भरपूर घी मिले।

५१९ पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं— सौ वर्ष देखें और सौ वर्ष जीवें।

९४७ सुवीराः शतहिमाः मदेम— उत्तम वीर होकर सौ वर्ष आनन्दमें रहेंगे।

(आयुषा अविक्षितासः) आयुसे हम क्षीण न हों, हमारी आयु कम न हो। जो आयु हमें मिले वह रोगादि पीडाओंसे जर्जरित न हो। उत्तम स्वास्थ्यके साथ हमें दीर्घ आयु मिले। (क्रत्वा शरदः आपृणैथे) पुरुषार्थकी भरपूर आयु हमें प्राप्त हो। हमें दीर्घ आयु मिले और उसमें हमसे भरपूर पुरुषार्थ होते रहें। घी, गौका घी दीर्घ आयु देनेवाला है इसलिये वह हमें भरपूर मिलता रहे। हम सौ वर्ष जीते रहें और वीरताके कर्म करते हुए आनंदसे रहें। हमारी दीर्घ आयु हो।

२१२ जनेषु स्वं आयुं नहि चिकीते— लोगोंमें अपनी आयुको कोई नहीं प्रकाशित करता।

६३८।१ नः आयुः प्रतिरंती— हमें दीर्घ आयु चाहिये।

लोगोंको अपनी आयु कितनी होगी, अर्थात् मैं कितनी आयुतक जीवित रहूंगा, इसका पता नहीं होता। इसी तरह अपनी आयु इतनी है यह भी ठीक ठीक कोई नहीं बताना चाहता। पर प्रत्येक चाहता है कि हमें अतिदीर्घ आयु प्राप्त हो। केवल इच्छासे दीर्घ आयु प्राप्त होगी ऐसा मानना उचित नहीं है। (क्रत्वा शरदः आपृणैथे) पुरुषार्थसे सौ वर्ष पूर्ण हो सकते हैं। इसके लिये प्रयत्न करना चाहिये। सुनियमोंका पालन करना चाहिये, मनका संयम करना चाहिये, विचार उच्चार आचार पर स्वाधीनता चाहिये। सत्पुरुषोंकी संगतिमें रहना चाहिये। मन पवित्र विचारोंसे भर देना चाहिये। इत्यादि रीतिसे रहनेवाला पुरुष दीर्घ आयु प्राप्त कर सकता है।

ईश्वर

२८७ अस्य तस्थुषः जगतः ईशानं स्वर्दृशं अभि नोनुमः— इस स्थावर जंगम विश्वके अपनी दृष्टीसे देखनेवाले स्वामी ईश्वरको हम प्रणाम करते हैं।

२८८ दिव्यः पार्थिवः त्वावान् अन्यः न जातः न जनिष्यते— द्युलोकमें तथा पृथिवीपर तुम्हारे समान दूसरा कोई सामर्थ्यवान् न हुआ और न होगा। और न इस समय है।

३८३ अस्य विष्णोः देवस्य वयाः— इस विष्णु सर्वव्यापक देवकी शाखाएं अन्य देव हैं। सब विश्वही उस विष्णु देवकी शाखाएं हैं।

५०४।१ एष नृचक्षाः सूर्यः उभे ज्मन् उदेति— वह मनुष्योंका निरीक्षक सूर्य दोनों लोकोंमें उदय होता है। यह सबका निरीक्षण करता है।

५०४।२ सः विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपाः— वह ईश्वर स्थावर जंगमका रक्षक है।

५०४।३ मर्त्येषु ऋजु वृजिना पश्यन्— वह ईश्वर मानवोंमें सरल और कुटिल को देखता है।

इससे पूर्व जो आकांक्षाएं प्रकट की हैं, सुपुत्र हो, वह वीर और ज्ञानी तथा प्रभावी हो, दीर्घायु प्राप्त हो, जीवन यशस्वी होना आदि जो मनुष्यकी आकांक्षाएं हैं वे सिद्ध होने और करनेके लिये ईश्वरकी भक्ति करना एक प्रमुख साधन है। अन्य अनेक साधन हैं पर उन सबमें ईश्वरकी भक्ति मुख्य साधन है।

ईश्वर कैसा है यह जानना, उसके श्रेष्ठ गुणोंका मनन करना और उन गुणोंको अपने जीवनमें ढालना यह साधन है। जीव का शिव बनना है, वह शिवके गुण जीवमें ढालनेसे ही होनेकी संभावना है।

वह स्थावर जंगम विश्वका स्वामी है (जगतः तस्थुषः ईशानं) सब विश्वका वह सच्चा अधिपति है। वह अधिपति अपने सामर्थ्यसे बना है, किसीकी दयासे नहीं। उसके समान दूसरा कोई सामर्थ्यवान नहीं है इसलिये वह सबका स्वामी है। वह (स्वःदृशं) अपनी दृष्टीसे सबका निरीक्षण करता है, दूसरे प्रेषितकी शिफारस उसको नहीं लगती। वह सर्वत्र है और सबको अपनी आंखसे देखता है और (मर्त्येषु

ऋजु वृजिना पश्यन्) मानवोंमें सरल कौन है और कुटिल कौन है यह जानता है। यह कार्य वह अपनी शक्तिसे करता है। (त्वावान् अन्यः न जातः जनिष्यते) तुम्हारे समान दूसरा कोई न समर्थ हुआ और न है तथा न कोई होगा। वह स्थावर जंगमका रक्षक है और सब अन्य देव तथा पदार्थ वृक्षके आश्रयसे शाखाएं रहती हैं वैसे है। संपूर्ण विश्व इसीके आश्रयसे रहता है। यह सबका उपास्य है।

ईश्वर उपासना

१४८।१-२ त्वा पस्पृधानासः देवयन्तीः मन्द्रा गिरः उपस्थुः— तुम्हारे वर्णन करनेकी स्पर्धा करनेवाली देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छुक आनंद बढानेवाली हमारी वाणियां तुम्हारी उपासना करती हैं।

१९७।२ ते महिमानं रजांसि न विव्यक्— तेरी महिमाको रजोगुणी लोक नहीं जान सकते। तेरी महिमाको ये लोक नहीं जान सकते।

२०९ मन्यमानस्य ते महिमानं नू चित् उत् अश्नुवन्ति— सन्माननीय ऐसी तेरी महिमाका कोई पार नहीं लगा सकते। तुम्हारी संपूर्ण महिमा कोई जान नहीं सकता।

२०९ ते राधः वीर्यं न उत् अश्नुवन्ति— तेरे धन और पराक्रमका पार नहीं लग सकता।

२२१ महे उग्राय वाहे वाजयन् एष स्तोमः अधायि— बडे उग्र वीरके अर्थात् तुम्हारे प्रभावका वर्णन करनेवाला यह काव्य किया है। यह प्रभुकी स्तुति है।

२२७।१ हर्यश्वाय शूषं कुत्साः— उत्तम घोडोंको वेगवान् साधनोंको अपने पास रखनेवाले वीरकी प्रशंसा गाते हैं।

२२९ नवीयः उक्थं जनये— नवीन स्तोत्र मैं बनाता हूं। **नृवत् शृणवत्**— वह मनुष्योंमें बैठकर सुने।

२३६ क्षामि अधि यत् विषुरूपं अस्ति, तस्य जगतः चर्षणीनां राजा इन्द्रः— पृथ्वीपर जो विरूप या सुरूप है उस जंगम प्रजाओंका राजा इन्द्र है। स्थावरका भी वही प्रभु है।

२४०।१ ते महिमा व्यानट्, ऋषिणां ब्रह्म पासि— तेरी महिमा जिनमें फैली है उन ऋषियोंके काव्योंका संरक्षण तू करता है।

२९६।१ वः ब्रह्मणा पितॄणां जुष्टी— तुम्हारे काव्यसे पितरोंकी प्रसन्नता होती है। तुम्हारे काव्योंका गान सुननेसे सब आनंदित होते हैं।

२९६।४ शक्करीषु बृहता रवेण इन्द्रे शुष्मं आदधातन— बडे स्वरसे सामगान करके इन्द्रका यशगान करो। उच्च स्वरसे प्रभुका यश गाओ।

इस तरह वेदमें तथा वसिष्ठ ऋषिके मंत्रोंमें ईश्वरके गुणोंका वर्णन अर्थात् उस प्रभुकी महिमाका वर्णन है। यह इसलिये किया है कि मनुष्य इस आदर्श पुरुषका वर्णन देखे और सुने और वैसा बननेका यत्न करे।

ईश्वर अपने सामर्थ्यसे सब विश्वका राज्य करता है। इससे स्पष्ट है कि जिसमें सामर्थ्य होगा, वह इस पृथ्वीपर राज्य करेगा। ईश्वरसे अधिक सामर्थ्यवान् कोई दूसरा नहीं है, वैसे ही हम अद्वितीय सामर्थ्यवान बनें तो हम भी अपने स्थानपर टिके रहेंगे। सामर्थ्यसे सब कोई टिक सकता है। वह ईश्वर सबका निरीक्षण करता है हम भी अपने आधीन जो है उसका निरीक्षण करें और योग्य कौन है और अयोग्य कौन है यह जानें। इस तरह ईश्वरके गुण अपने अन्दर ढाले जाते हैं। यही उपासनासे लाभ होता है।

स्वामी बनकर रहो

१७ ईशानासः पियेघ भूरि आहवनानि जुहुयाम— हम स्वामी बनें और यज्ञमें बहुत हवनीय द्रव्योंका हवन करें। धनके स्वामी बनो और धनका समर्पण यज्ञमें बहुत करो।

यहां ' ईश ' बन कर रहो। जिसमें ईशन शक्ति है वह ईश अथवा ईशान है। स्वामी बनना, प्रभु बनना, शासक बनना, उसके अन्दर बसना, उसको घेरना ये सब भाव ' ईश ' बननेमें हैं। रहना, वसना, घेरना, शासन करना इतना जो नहीं कर सकता वह न प्रभु बन सकता है और न ईश बन सकता है। इस समयतक जो शासक बने हैं, उनमें शासन शक्ति थी, राज्यमें वसने घेरने, शासन करनेकी शक्ति थी, इसीलिये वे शासक बने हैं। अनधिकारीको किसीने शासकके स्थानपर रखा भी तो उसमें शासन शक्ति, ईशान शक्ति न रही तो वह वहां टिक नहीं सकेगा और जिसमें शासक शक्ति है, वह किसी न किसी रूपमें शासक बन ही जायगा, इसीलिये कहा है कि पहिले ' ईश '

बनो और पश्चात् बहुत दान दो। जगत्‌का भला करनेके लिये बहुत अर्पण करो।

मातृभूमि

३७४ वसवः देवाः ज्मया रन्त— धनवान निवास कर्ता विबुध मातृभूमिके साथ रमते रहते है।

जो निवास करानेवाले होते हैं उनको वसु कहते हैं। (ये निवासयन्ति ते वसवः) जनताका निवास सुखका करनेमें जो यत्न करते है, सहायक होते हैं वे ' वसु ' हैं। ये वसुदेव सबका निवास करानेवाले हैं। ये (ज्मया रन्त) भूमिके साथ रमते है। मातृभूमिके साथ रहनेमें प्रसन्न होते हैं। जो मातृभूमिके साथ रहनेसे प्रसन्न रहते हैं वेही जनताका सुखसे निवास करनेवाले होते है। जो अपनी मातृभूमिका द्रोह करेंगे, जो मातृभूमिके शत्रुओंका हित करनेके लिये तत्पर रहेंगे वे जनताका निवास सुखमय करनेवाले नहीं होंगे।

' वसवः ज्मया रन्त ' निवास करानेवाले मातृभूमिके साथ रमते हैं। मातृभूमिके साथ रमनेवाले, मातृभूमिकी भक्ति करनेवाले जनताका निवास मातृभूमिमें सुखसे हो, इसके लिये यत्नवान् होंगे। अथर्ववेदमें काण्ड १२।१ में मातृभूमिक सूक्त है। उस सूक्तमें ६२ मंत्र हैं। उन मंत्रोंका मनन पाठक यहां करें। '**माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः** ।' '**तुभ्यं बलिहृतः स्याम** ' यह मातृभूमि हमारी है और मैं उसका पुत्र हूं। मै इस माताके लिये अपना बलि देता हूं। ये उस सूक्तके मंत्र हैं। यह सब सूक्त यहां देखने योग्य है।

संघटना

९१ गणेन ब्रह्मकृतः मा रिषण्यः— संघके द्वारा ज्ञानका प्रसार करनेवालोंका नाश न कर। संघसे ज्ञान प्रचार करनेवालोंकी सहायता करो।

२९८।१-२ गो- अजनासः दण्डा इव भरताः परिच्छिन्नाः अर्भकासः आसन्— गौऐं चलानेके दण्डे जैसे भरत लोग निर्बल, तथा बालक जैसे थे। असंघटित और बिखरे हुए थे।

२९८।३-४ तृत्सूनां पुरएता वसिष्ठः अभवत्, आत् इत् तृत्सूनां विशः अप्रथन्तः— तृत्सूओंका नेता वसिष्ठ हुआ, तबसे तृत्सुओंकी प्रजाएं बढ गयीं, उन्नत हुई, संघटित हुई, समर्थ बनी।

३७५ विश्वेदेवाः सधस्थं अभिसन्ति— सब देव एक स्थानपर रहते हैं। नियत समय एक स्थानपर आकर बैठना यह संघटनाके लिये आवश्यक है।

४०३ सधमादः अ-रिष्टाः— संघटित होनेवाले विनष्ट नहीं होंगे।

६३१।१ समाने ऊर्वे अधिसंगतासः— वे एक ही बडे कार्यमें मिलकर संघटित हुए।

६३१।२-३ संजानते, ते मिथः न यतन्ते— जो ज्ञानी होते हैं वे आपसमें लडते नहीं।

६७२।१ अप्रति भेदं वधनाभिः वन्वन्ता— अप्राप्त भेदको वधसे नष्ट करो। आपसमें भेद बढजानेके पूर्व ही उसको दूर करो, नष्ट करो। आपसमें फूट रहने न दो।

७४७ सबाधः विप्राः वाजसातये ईळते— समान दुःखमें रहे ज्ञानी बलके लिये प्रार्थना करते हैं। समान दुःखमें रहनेवाले संघटित होते हैं और अन्न तथा बल प्राप्त करते है।

९१५ नः सर्व इत् जनः संगत्या सुमना असत्— हमारे सब लोग अपनी संघटना करनेके लिये उत्तम मनसे मिलते रहते हैं।

वसिष्ठ मन्त्रोंमें संघटनाके विषयमें ऐसे उत्तम निर्देश मिलते हैं। (९१) **गणेन मा रिषण्यः**) संघमें, गणमें रहनेसे तुम्हारा नाश नहीं होगा। यह संघटनाका पहिलाही सूत्र यहां कहा है। गणशः अपनी संघटना बलवती करनी चाहिये। प्रथम (**भरताः परिच्छिन्ना अर्भकासः आसन्**)भारत लोग आपसमें असंघटित थे, इसलिये वे बालक जैसे निर्बल थे। परिच्छिन्न होना, छोटे छोटे फिरकोंमें समाजका बंट जाना यह निर्बलताका चिन्ह है। इस कारण समाजको परिच्छिन्न, छिन्न विच्छिन्न नहीं होने देना चाहिये। (**पुरएता वसिष्ठः अभवत्**) फिर उन भारतीयोंका नेता वसिष्ठ हुआ। वसिष्ठ उसको कहते हैं कि (वासयति इति वसिष्ठः) जो संघटना करनेमें चतुर होता है, वसानेमें चतुर हो। भारतीयोंको ऐसा उत्तम पुरोहित मिला और उन्होंने जो भारतीय बालक जैसे निर्बल थे उनको बलवान और सुसंघटित बनाया। तब भरतोंकी (विशः अप्रथन्त) प्रजाएं सामर्थ्यवान् बनी और बढने लगी। सामर्थ्यवान् होगयी।

जो (**सध- स्थं अभिसन्ति**—) एक स्थानपर

र नियत समयपर बैठते और अपनी संघटना करनेका विचार हैं, वे (सध-मादः अ-रिष्टाः) एक स्थानपर जमा वाले, संघटित होकर अपने आपको विनाशसे बचाते है। न होनेसे विनाशसे बच सकते हैं। अपने अन्दरका भेद करना, अपने अन्दर एकात्मता उत्पन्न करना और एक में अपने आपको बांध लेना ये संघटनाके लिये आवश्यक (समाने ऊर्वे अधिसंगतासः) एक बडे कार्यके अन्दर संमिलित होना, उस कार्यके लिये अपने आपको समर्पित करना यह संघटनके लिये अत्यंत आवश्यक है। (सबाधः विप्राः) एक बाधामें एक आपत्तिका अनुभव जिनको होगा, वे उस बाधाको दूर करनेके लिये संघटित होंगे। इस लिये जिनको संघटित करना है, उन सबको एक कष्टमें वे सब हैं, सबके संघटित होनेसे वह सबको सतानेवाला भय दूर हो सकता है, इसका यथार्थ ज्ञान देना चाहिये। इससे उन सबकी उत्तम संघटना होगी। (सर्वः जनः संगत्यां सुमनाः) संघटित होनेवाले सब लोग अपने संघटनमें उत्तम मनसे संमिलित हों। किसीका किसीके विषयमें विपरीत मनोभाव न हो। इस तरह संघटित समाज करनेके विषयमें वसिष्ठके मंत्रोंमें सूचना मिलती हैं। जो सदा ध्यानमें धरने योग्य हैं।

अग्रणी कैसा हो !

१ नरः दूरेदृशं प्रशस्तं गृहपतिं अथर्युं अग्निं जनयन्तः—नेता लोग अपनेमेंसे दूरदर्शी प्रशंसायोग्य गृहस्थी प्रगतिशील अग्रणीको प्रमुख बनाते हैं।

अग्रणी वह बने कि जो दूरका देखनेवाला, प्रशंसायोग्य कार्य करनेवाला, गृहस्थ धर्म पालन करनेवाला, अचंचल अर्थात् स्थिर पद्धतिसे अपना कर्तव्य करनेवाला, अग्निके समान तेजस्वी तथा अपने प्रकाशसे दूसरोंको मार्ग बतानेवाला हो।

यहां अग्रणी गृहपति हो ऐसा कहा है। ब्रह्मचारी या संन्यासी नहीं। क्योंकि ब्रह्मचारी और संन्यासी को आगापीछा नहीं होता, इसलिये ग्रामकार्य अथवा राष्ट्र कार्यमें वह ठीक तरह अपना कर्तव्य नहीं कर सकता, पर जो गृहस्थी होता है उसके सर्वत्र संबंधी होते हैं, इसलिये वह जानता है कि अपना उत्तरदायित्व क्या है। इसलिये अध्यक्ष अथवा नेता गृहस्थी ही होना उचित है।

दूरदर्शी प्रशंसायोग्य गृहस्थी प्रगतिशील तेजस्वी अग्रणी हो।

८ वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक अग्ने— जनताका निवास करानेवाला, बलवान् वीर्यवान्, तेजस्वी, पवित्रता करनेवाला अग्रणी हो।

१७ सुकृतवः शुचयः धियंधाः वयं नराशंसस्य यज्ञतस्य महिमानं उपस्तोषाम—उत्तम कर्म करनेवाले, पवित्र बुद्धिमान होकर हम सब मानवोंमें प्रशंसित और पूजनीय नेताकी महिमाका वर्णन करें। हम उत्तम कर्म करें, पवित्र बनें, ज्ञानी बनें और श्रेष्ठ महात्माका ही वर्णन करें।

२८ ईळेन्यं असुरं सुदक्षं सत्यवाचं अध्वराय सदं इत् सं महेम— प्रशंसनीय, बलवान, उत्तम दक्ष, सत्य भाषण करनेवाला जो है उसी नेताका हम सदा वर्णन करते हैं।

५१।१ यः कृत्वा अमृतान् अतारीत् सः देवकृतं योनिं आससाद— जो अपने पुरुषार्थसे दिव्य विबुधोंका तारण करता है वह देवोंके बनाये श्रेष्ठ स्थानमें विराजता है। वह मुख्य स्थानपर बैठता है। वही नेता होता है।

५८ वैश्वानरः वरेण वावृधानः मानुषीः विशः अभि विभाति— सब मनुष्योंका श्रेष्ठ नेता श्रेष्ठ साधनसे बढता हुआ अपने मानवी प्रजाजनोंको अधिक प्रकाशित करता है। सब लोगोंका अग्रणी अपना सामर्थ्य बढाकर अपने अनुयायियोंका भी तेज बढाता है।

६९।१ नृतमः अपाचीने तमसि मदन्तीः शचीभिः प्राचीः चकार— मनुष्योंमें श्रेष्ठ वह है कि जो अज्ञानान्धकारमें पडे रहनेपर भी उसीमें आनंद माननेवाले लोगोंको शक्तियोंसे संपन्न उदयोन्मुख करता है।

६९।२ वस्वः ईशानं अनानतं पृतन्यून् दमयन्तं गृणीषे— धनके स्वामी उन्नत और सेनासे हमला करनेवाले शत्रुका दमन करनेवाले नेताकी प्रशंसा करो।

७१।१ विश्वे जनासः शर्मन् यस्य सुमतिं भिक्षमाणाः— सब लोग अपनी सुरक्षाके सुखके लिये जिसकी सद्बुद्धिको चाहते हैं वह श्रेष्ठ पुरुष है।

७१।२ विश्वे जनासः एवैः यं उपतस्थुः— सब लोग अपने कर्मोंके साथ जिसके पास पहुंचते हैं वह श्रेष्ठ पुरुष है। अपने कर्मोंकी परीक्षा यहां होगी, ऐसा जिसके संबंधमें सब मानते हैं वह श्रेष्ठ है।

७१।३ **वैश्वानरः वरं आससाद**— सबका जो श्रेष्ठ नेता है, वह श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करता है। श्रेष्ठ स्थानमें विराजता है।

७३ **सहमानं देवं अग्निं नमोभिः प्रहिषे**— शक्तिमान दिव्य अग्रणीको मैं नमस्कार करता हूं। उसका मैं सन्मान करता हूं।

७६।१ **विचेतसः मानुषासः अध्वरे रथिरं सद्यः जनन्त**— ज्ञानी मनुष्य हिंसारहित शुभकर्ममें रथमें बैठकर जानेवालेको तत्काल नियुक्त करते हैं। मुख्य स्थानमें रखते हैं। नेता बनाते हैं।

७६।२ **यः एषां मन्द्रः विश्पतिः मधुवचा ऋतावा विशां दुरोणे अधायि**— जो इन लोगोंका आनन्ददायक प्रजापालक है वह मधुरभाषणी सत्यपालक प्रजाओंके घरमें सन्मानके स्थानमें स्थापित होता है। बैठता है।

९५।३ **सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहं मनुष्याणां अरतिं अच्छ यन्ति**— सुन्दर, सुडौल, प्रगतिशील, अन्नवान् मानवोंके नेताके पास मनुष्य जाते हैं। उनके साथ रहें और उन्नतिके कार्य करें।

९८।४ **इह प्रथमः निषद्**— यहां पहिला मुख्य बनकर रह। नेताको मुख्य स्थानपर बिठलाना योग्य है।

१०६।१ **विश्वशुचे धियंधे असुरघ्ने अग्नये मन्म धीतिं प्रभरध्वम्**—विश्वमें तेजस्वी बुद्धिमान् पुरुषार्थी दुष्टोंका नाश करनेवाले अग्रणी नेताका सन्मान करो।

१०६।२ **प्रीणानः वैश्वानराय हविः भरे**— मैं सन्तुष्ट होकर सबके नेताके लिये अर्पण करता हूँ, सन्मान करता हूं।

१०७।२ **जातवेदः वैश्वानरः**— जो ज्ञानी है वह विश्वका नेता होता है।

१०८।१ **जातः परिज्मा इर्यः**— प्रकट होते ही चारों ओर घूमनेवाला नेता सबको प्रेरणा करता है।

११३ **कविः गृहपतिः युवा पंचचर्षणीः दमे दमे निषसाद**—ज्ञानी गृहस्थ तरुण पांचों प्रजाजनोंके घरोंमें जाकर बैठता है।

२४१।१ **तव प्रणीती नॄन् रोदसी सं निनेथ**— तुम्हारी पद्धति मानवोंको इस विश्वमें सम्यक् रीतिसे उन्नतिकी ओर ले चलती है।

यहां प्रायः अग्निके वर्णनमें ही नेताका वर्णन किया है। अग्नि ही अग्रणी है। अग्-र-णी, अग्-नी, अग्नि। इस तरह अग्नि ही अग्रणी अथवा अग्रणी ही अग्नि है। अग्नि अपने प्रकाशसे सब विश्वको मार्गदर्शन करता है और उनको उन्नतिके मार्गसे चलाता है। इसलिये अग्नि ही अग्रणी है। इस कारण अग्निके वर्णनमें 'अग्रणी' के गुण दिये हैं।

अग्रणी (दूरे-दृशः) दूरदर्शी, दूरका देखनेवाला, भविष्यमें क्या होगा, इसकी जिसको यथार्थ कल्पना है, ऐसा (प्रशस्तः) प्रशंसित, प्रशंसाके योग्य, सबको आदरणीय (अ-थर्युः) जो चंचल नहीं, जो क्षणक्षणमें बदलता न हो, जो स्थायीरूपसे उन्नतिके कार्य करता हो, (अग्निः) जो प्रगतिशील है, अपने तेजसे अज्ञानान्धकारको दूर हटाता है, मार्ग बताता है और प्राप्तव्यस्थान पर पहुंचाता है, बीचमें ही नहीं छोडता, (वसिष्ठः) जो अनुयायियोंको सुखपूर्वक निवास कराता है, जो (पावकः) पवित्रता करनेवाला है, अन्तर्बाह्य शुद्धता करनेवाला है, (शुक्रः) जो बलवान्, वीर्यवान् तथा पराक्रमी है। (दीदिवः) जो तेजस्वी है, प्रकाशमान है, (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करनेवाला, (शुचिः) जो शुद्ध है, (धियं धाः) जो बुद्धिमान है, योग्य समय पर योग्य संमति देता है, (असु-रः) जो बलवान् है, प्राणके बलसे सामर्थ्यवान् है, (सु- दक्षः) जो उत्तम दक्ष है, प्रत्येक कार्य उत्तम दक्षतासे जो करता है, शिथिलता जिसमें होती नहीं, (सत्य-वाक्) जो सत्यभाषण करता है, जो असत्य भाषण करता नहीं, (वैश्वा-नरः) सब नरोंका सब मनुष्योंका जो नेता है, (नृ-तमः) सब मानवोंमें जो अत्यंत श्रेष्ठ है, (ईशानः) शासन शक्तिसे जो युक्त है, जो प्रमुख होने योग्य है, (अभानतः) जो उच्च है, जो श्रेष्ठ है, (पृत-न्यून दमयन्) जो शत्रुसेनाका दमन कर सकता है, शत्रुसेनाका पराभव करनेवाला, (सहमानः) शत्रुका पराभव करनेवाला, शत्रुका आक्रमण रोकनेवाला, (वि-चेताः) जो विशेष ज्ञानी है, सामर्थ्यवान चित्तवाला, (अ-ध्वरे रथिरं) हिंसारहित, अकुटिल श्रेष्ठ कर्ममें सत्वर जानेवाला, (मन्द्रः) आनंददायक, प्रसन्नचित्त, (मधु-वचाः) मधुर भाषण करनेवाला, (ऋता वा) सरल स्वभाव, सत्य कर्मको करनेवाला, (विश्-पतिः) प्रजाका उत्तम पालन करनेवाला, (सु संदृशं) सुन्दर दीखनेवाला, (सु-प्रतीकं) उत्तम आदर्शवान, (स्वञ्चं,सु-अञ्चं) प्रगतिशील, (मनुष्याणां अरतिः) मनुष्योंको उच्च स्थान तक

कब समय कैसा करना, इसका निश्चय करना आदि ये सब कार्य पुरोहितके हैं। राजा युद्ध करेगा, सैनिक भी युद्ध करेंगे, परंतु सब तैयारी प्रथम पुरोहित करेगा। यह वैदिक व्यवस्था यहां वसिष्ठके मंत्रोंमें दीखती है। इस तरह राष्ट्र निर्माणका कार्य पुरोहितका है, राष्ट्रमें सेनाको तैयार करना, उसको उत्साहसे भर देना, शत्रुपर करनेके आक्रमणोंकी सब तैयारी करना, यह सब पुरोहितके करनेका कार्य है। रामेश्वर जानेवाले यात्री भी धनुष्यबाण और दक्षिणा पुरोहितको ही देते हैं। गणेश पुराणमें काशीराजाके पुरोहित श्रीगणेशने ही सेनाकी तैयारी की थी और जिससे उसको विजय मिला। ये कार्य पुरोहितके हैं।

राष्ट्रका ध्वज

३१२ जनाय केतुं दधात— लोगोंके लिये ध्वज दो।

५६४ दिवः दुहितुः उषसः जायमानः केतुः श्रिये अचेति— द्युकी पुत्री उषासे उत्पन्न होनेवाला ध्वज शोभाके लिये प्रकाशता है।

६१८ पुरस्तात् उषसः केतुः अभूत्, प्रतीची हर्म्येभ्यः अधि आ अगात्— पूर्व दिशामें उषाका ध्वज फहरने लगा है, पश्चिम दिशाके प्रासादोंपर प्रकाश पड रहा है।

उषाका यह रंग गेरुवा, लालसा होता है। उषाका ध्वज इस लाल या गेरुवे वर्णका है। ' उषसः केतुः ' गेरुवा है इसमें संदेह नहीं है। यही लोगोंको दिया ध्वज है।

९०७ केतुमन्तः उदीरतां।

अपना अपना ध्वज लेकर अपनी सेना चले, शत्रुपर आक्रमण करे। अन्यत्र भी वेदमें ध्वजका रंग अग्निज्वाला जैसा अथवा उदय होनेवाले सूर्य प्रकाश जैसा वर्णन किया है। यह रंग निःसंदेह भगवा है। इस ध्वजको लेकर वैदिक धर्मी राजाओंकी सेना शत्रुपर चढाइ करती थी और विजय प्राप्त करती थी। ध्वजकी ओर देखनेसे सेनाका उत्साह बढता है और युद्धमें शक्ति बढ जाती है। इसलिये राष्ट्रके पास अपना ध्वज रहना चाहिये। वेदमें ' **सूर्यकेतवः** ' कहा है। गेरुवे रंगपर सूर्यका चिन्ह आर्योंके वैदिक ध्वजपर रहता था।

राज्य, स्वराज्य, साम्राज्य

६६ असुरस्य पुंसः कृष्टीनां अनुमाद्यस्य सम्राजः तवसः कृतानि विवाक्मि— बलवान् पुरुषार्थी प्रजाओंके प्रिय सम्राट्के बलसे किये पराक्रमोंका मैं वर्णन करता हूं।

६७ कविं केतुं अद्रेः धासिं भानुं शं राज्यं (आ विवासे) ; पुरंदरस्य पूर्व्या महानि व्रतानि गीर्भिः आविवासे— ज्ञानी, ज्ञान प्रसारक, कीलोंको अपने राज्यमें धारण करनेवाले, तेजस्वी, प्रजाको सुख देनेके लिये राज्य करनेवाले, राजाकी मैं प्रशंसा करता हूं। इस शत्रुके नगरोंका नाश करनेवाले सम्राट्के अपूर्व महान पराक्रमोंका वर्णन मैं करता हूं।

४१४।२ दिव्यस्य जन्मनः साम्राज्येन स चेतति— दिव्य जन्मवाले सम्राट्के साम्राज्यसे वह सचेत होता है। मनुष्य उत्तेजित होता है।

४४४। १ हे वास्तोष्पते ! शग्मया, रण्वया, गातुमत्या संसदा सक्षीमहि— हे भूपते ! सुखदायी रमणीय प्रगतिसाधक परिषदमें हम बैठें। राजाके लिये ऐसी सभा होनी चाहिये।

६६० सम्राट् स्वराट्, महान्तौ महावसू वृषणा ओजः बलं संदधुः— सम्राट् और स्वराट् ये दोनों महा धनवान बलवान हैं वे शक्ति और बलका धारण करते हैं।

७४९ दुःशंसः मा नः ईशत— दुष्टका शासन हमपर न हो।

' राज्य ' का अधिपति ' राजा '; ' स्वराज्य ' का अधिपति ' स्वराट् '; और ' साम्राज्य ' का अधिपाति ' सम्राट् ' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त ' भौज्य, वैराज्य, महाराज्य, जानराज्य ' ऐसे अनेक प्रकारके राज्य शासनोंका नाम वैदिक सारस्वतमें हैं, पर उनका उल्लेख वसिष्ठके मंत्रोंमे नहीं है। सबसे प्रथम विचार और मनन करनेयोग्य वसिष्ठका मंत्र है वह **' मा नो दुःशंस ईशत '** (७४९) हमारे ऊपर दुष्टका शासन न हो यह है। **' मा वः स्तेन ईशत, मा अघशंसः '** (वा० यजु. १।१) हमारे ऊपर चोर और पापीका राज्य न हो, यह यजुर्वेदका कहना है। वही बात वसिष्ठके मंत्रमें है। चोर, पापी दुष्टका शासन कोई न माने, ऐसे शासनमें कोई न रहे। यह महत्त्वपूर्ण उपदेश यहां दिया है।

६६० स्वराट् सम्राट् महान्तो महावसू वृषणा ओजः बलं संदधुः— स्वराज्यका अधिपति स्वराट्, और साम्राज्यका शासक सम्राट्, ये दोनों बडे हैं और (महा-वसू) बडे धनवान हैं, अतः वे बडे (वृषणा) बलवान हैं, वीर्यवान्

और पराक्रमी तथा समर्थ है। वे ओज और बल धारण करते हैं। यहां सम्राट् और स्वराट्‌को 'महावस्' कहा है। इनके पास बडा धनकोश है। क्योंकि राजा धनकोशसे राज्य कर सकता है। जिसका कोश खाली हुआ है वह राजा निर्बल है। राजाकी शक्ति बल और सामर्थ्य उसके धनकोशपर है यह बात यहां कही है और वह सत्य है।

राजसभा

राजसभा (शग्मा) सुखदायी है, प्रजाके लिये हितकर है, (रण्वा) प्रजाको रममाण करनेवाली है, प्रजाका राज्य-शासनपर विश्वास प्रजाकी प्रतिनिधिसभासे रह सकता है। (गातुमती) प्रजाकी प्रगति करनेवाली सभा होती है। इसलिये राजाको सलाह देनेके लिये प्रजाके प्रतिनिधियोंकी एक संसद होनी चाहिये। राष्ट्रका धनकोश भरपूर होना चाहिये और प्रजाके प्रतिनिधियोंकी एक संसद होनी चाहिये। ऐसा राज्य-शासन प्रजाको सुखदायी, प्रजाका आनंद बढानेवाला और प्रजाकी उन्नति करनेवाला होता है। (४४४)

प्रजाकी अनुमति

(९६) **सम्राट् असुरः पुमान्, कृष्टीनां अनुमाद्यः**— सम्राट् बलवान्, नवजीवन अपने राष्ट्रको देनेवाला, पुरुषार्थी और प्रजाओं द्वारा अनुमोदित हो। यहां '**कृष्टीनां अनुमाद्यः**' ये पद बडे महत्त्वके हैं। सम्राट्‌को राजगद्दीपर बैठनेके लिये प्रजाजनोंकी अनुकूल संमति चाहिये। तभी कोई राजा राज्यपर रह सकता है।

इस तरहके प्रजाकी संमतिसे राज्यपर आये हुए राजाके (**तवसः कृतानि विवक्मि**) सामर्थ्यसे किये हुए पराक्रमके कृत्य वर्णनके योग्य होते हैं। उनका वर्णन करना योग्य हैं। इनके वर्णनसे दूसरोंको वैसे सुयोग्य कार्य करनेका प्रोत्साहन मिलता है।

राजा (**कविः**) ज्ञानी दूरदर्शी, (**केतुः**) ज्ञान प्रसारका ध्वज जैसा दर्शक प्रतीक, (अद्रेः धासिः) कीलोंको अपने राज्यके संरक्षणके लिये धारण करनेवाला, (**भानुः**) तेजस्वी (शं राज्यं) प्रजाके कल्याणके लिये राज्य करनेवाला हो। इस (पुरंदरः) शत्रुके नगरोंको तोडनेवाले राजाके बडे बडे पुरुषार्थोंके काव्योंका गान करना चाहिये। इन पराक्रमोंको सुनकर दूसरोंको उत्तेजना मिलेगी कि हम भी ऐसा राज्य शासन करें और ऐसा ही यश प्राप्त करें।

राजा प्रजाका पालनकर्ता

६१ **कृष्टीनां पतिं रयीणां रथ्यं वैश्वानरं वावशानाः हरितः सचन्ते**— कृषि करनेवाली प्रजाके स्वामी धनसे पूर्ण रथमें बैठनेवाले सब लोगोंके नेताको शिक्षित घोडियां इधर लाती हैं, उसके रथको चलाती हैं। राजा रथमें बैठता है, उस रथमें ऐश्वर्य भरपूर भरा रहता है, उसके रथको उत्तम शिक्षित घोडियां चलाती हैं।

१४१।२ **अनेनाः मायी**— श्रेष्ठ देव पापरहित है और कुशल है। सामर्थ्यवान् है।

२६५ **सत्रा राजानं अनुत्तमन्युं**— सबका राजा अप्रतिम उत्साहवाला हो तो उसकी स्तुति होगी।

३१६ **सहस्रचक्षाः उग्रः**— हजारों नेत्रोंसे देखनेवाला वीर राजा है।

३१७ **राष्ट्रानां राजा पेशः अस्मै अनुत्तं क्षत्रं विश्वायुः**— राष्ट्रोंकी शोभा राजा है, इस राजाके लिये क्षात्र तेज प्राप्त हो और पूर्ण आयु मिले। उत्तम बलवान् बनकर दीर्घ जीवन प्राप्त करे।

३४८ **इनः अदब्धः पद-वीः**—शासक शत्रुसे न दबकर योग्यको योग्यपदपर रखता है।

३७३ **नियुत्वान् विश्पती इव विशां स्वस्तये वीरैः आ इयाते**— जैसे घोडे जोतकर प्रजापालक राजा लोग जाते हैं, उस तरह प्रजाजनोंके कल्याणके लिये सभामें जाते हैं। सभाकी संमतिसे राज्यशासन चलाते हैं।

५३७ **ता राजाना सुक्षितीः तर्पयेथां**— वे राजा उत्तम रीतिसे प्रजाकी तृप्ति करते हैं। वे अपने पदपर स्थिर रहते हैं।

५६३ **प्रजापति धिष्ण्यौ**— राजाके पालक बुद्धिमान् हों। निर्बुद्ध न हों।

६१८ **जनानां नृपातारः अव्रुकासः प्रययुः**— मनुष्योंके पालक अकुटिलतासे सीधे मार्गसे अपनी प्रजाकी प्रगति करते हैं।

जनानां नृपातारः स्वेन शवसा शुशुवुः— वे मानवोंके पालक अपने बलसे बढते हैं।

जनानां नृपातारः सुक्षितिं क्षियन्ति— वे मनुष्योंके पालक अपनी प्रजाका निवास कराते हैं।

७०२ सुपारदक्षः अस्य सतः राजा-- कष्टोंसे प्रजाको पार ले जानेमें राजा उत्तम दक्ष हो।

८६७ क्रतुमान् राजा अमेन विश्वा दुरिता घनिघ्नत्— पुरुषार्थी राजा अपने बलसे सब कष्टोंके पार होता है।

८९० राजा वृजन्यस्य धर्मा भुवत्-- राजा बलका धारक हो।

८९१ मर्त्यानां राजा रयीणां रयिपतिः-- मनुष्योंका राजा धनोंका धनपति हो। राजाका कोश भरपूर भरा हो।

९३२ वर्चसा मनुष्येषु राजा संबभूव— तेजसे मानवोंमें राजा होता है। जो तेजस्वी है वही राजा होने योग्य है।

किसानोंका पालक

राजा केवल प्रजाका स्वामी नहीं है वह "कृष्टीनां पतिः" वह प्रजाजनोंका पालक है, विशेषतः कृषि करनेवालोंका प्रतिपाल करनेवाला है। क्षत्रिय अपने अधिकारके बलसे तथा वैश्य अपने धनके बलसे अपना पालन करनेमें समर्थ होते हैं। कृषक वर्ग ही निर्बल रहता है। इसलिये निर्बलोंका पालन करनेवाला राजा है ऐसा कहनेसे सब प्रजाका पालक वह है यह सिद्ध हुआ। यही राजाका कर्तव्य है। अधिकार चलाना यह राजाका कर्तव्य नहीं है, प्रत्युत उत्तम प्रकारसे प्रजाका पालन करना और उनमें भी कृषकोंका पालन करना राजाका मुख्य कर्तव्य है।

'रयीणां रथ्यः' वह राजा धनोंके रथपर बैठता है, उसका अधिकार नाना प्रकारके धनोंपर रहता है। प्रजाका पालन धनसे ही हो सकता है। इसलिये राजाके पास धनकोश भरपूर होना ही चाहिये। इसकी सूचना इस पदसे मिलती है। 'वैश्वा-नरः' यह राजा सब राष्ट्रका नेता, अगुआ, अग्रगामी, अग्रणी है, प्रजाका योग्य रीतिसे संचालन करनेवाला यह है।

यह प्रजापालक राजा (अनेनाः=अन्+एनाः) निष्पाप रहना चाहिये। किसी तरहका पापाचरण उसके जीवनमें उससे न हो। राजा राष्ट्रमें आदर्श पुरुष है इसलिये उससे पाप कदापि होना नहीं चाहिये। (मायी) प्रवीण, कुशल, कर्म करनेमें कुशल राजा हो। किसी तरह अपने प्रजापालन कर्ममें न्यून न हो। (सत्रा-राजा) साथ साथ सब प्रजाजनोंको लेकर प्रकाशित होनेवाला राजा हो। प्रजाजनोंके साथ मिलकर रहे, अपने आपको पृथक् न समझे। (अनुत्तमन्युः) जिसका उत्साह अत्यंत हो, जिसके पास निराशा कभी आती न हो। यहां मन्यु ' का अर्थ ' उत्साह ' है। इसका दूसरा अर्थ, ' क्रोध ' भी है। राजाका क्रोध और प्रसाद विफल न होनेवाला हो। (उग्रः) राजा उग्र हो, निस्तेज न हो, अजागलके स्तन जैसा निरर्थक न हो। (सहस्राक्षः) हजारों आंखोंसे देखनेवाला हो। 'चारैः पश्यन्ति राजानः' गुप्त चरोंसे राजा सबका निरीक्षण करता है। गुप्तचर विभाग राजाके पास उत्तम कार्यक्षम हो। जो अपने देशके अन्दरकी सब बातें जाने और परदेशमें क्या चल रहा है यह सब यथावत् जाने। यह ज्ञान प्राप्त करनेमें राजा कसर न करे।

३१७ राजा राष्ट्रानां पेशः— राजा राष्ट्रोंका सौंदर्य है, राष्ट्रको सुंदर रूप देनेवाला राजा हो। राजा उत्तम रहा और उसका शासनप्रबंध अच्छा रहा तो राष्ट्र तेजस्वी होता है। इसके विपरीत शासनप्रबंध ढीला रहा तो प्रबल राष्ट्र भी क्षीण और दुर्बल होता है। (अस्मै अनुत्तं क्षत्रं) राजाके पास उत्तम क्षत्रियोंका सामर्थ्य हो, उत्तम सेना हो और उसमें उत्तम वीर पुरुष हो।

३४८ इनः अ-दब्धः- राजा किसीके दबावसे न दब जानेवाला हो। किसीके दबावसे न दबे। सत्य पालन करे और दुष्टोंके दबावमें कभी न फंसे।

राजसभामें राजा जाय

राजाके लिये एक सभा हो, उस सभामें राजा जाय और उस सभाकी अनुमतिसे राज्यशासनका व्यवहार करता रहे। (३७३ विशां स्वस्तये बीरीट आ इयाते) प्रजाजनोंका कल्याण करनेके लिये राजा राजसभामें जाय और उस सभाके सदस्योंसे विचार विनिमय करे। ' बिरीट ' का अर्थ ' मेला, अनेक लोगोंकी जहां उपस्थिति होती है वह स्थान, सभा, सार्वजनिक परिषद ' यह है।

राजा बुद्धिमान हो

५६३ प्रजापती धिष्ण्यौ— राजालोग बुद्धिमान हों।

निर्बुद्ध न हों। बुद्धिसे जो राज्य चलाया जाता है, वही अच्छा हितकारी होता है। जो राजा निर्बुद्ध, अनाडी, दुर्व्यसनी, पापी हो तो राज्याधिकारी होनेके लिये ही अयोग्य है। इसलिये कहते हैं कि— (६१८ **जनानां नृपातारः अवृकासः**) मनुष्योंका पालन करनेके कार्यमें नियुक्त हुए राजपुरुष 'अ-वृक' अर्थात् क्रोधी न हों, कुटिल न हों, दुष्ट न हों। सरल स्वभाव-वाले हों। वे (**स्वेन शवसा शुशुवुः**) अपने निज बलसे बढते रहें, दूसरेके हाथसे पानी पीनेवाले न हों। परावलंवी न हों। (**नृपातारः सुक्षितिं क्षियन्ति**) मनुष्योंका पालन करनेवाले मनुष्योंका सुखपूर्वक निवास करानेका प्रयत्न करें। प्रजाजनोंका जीवन सुधारनेका यत्न करें। प्रजाजनोंका रहन सहन सुधर जाय, उनकी स्थिति अधिक अच्छी हो जाय ऐसा प्रयत्न करें।

७०२ **राजा सुपारदक्षः**— प्रजाका पालन करनेवाला प्रजाको दुःखोंसे पार ले जानेके कार्य दक्षतासे करनेवाला हो। प्रजा हितका प्रत्येक कार्य दक्षतासे प्रमादरहित रीतिसे करे। (८६७ **क्रतुमान् राजा अमेन विश्वा दुरिता घनिघ्नत्**) पुरुषार्थ प्रयत्न करनेवाला राजा अपने प्रयत्नके बलसे सब आपत्तियां दूर कर सकता है। प्रयत्न करनेसे सब कुछ होता है। (८९० **राजा वृजन्यस्य धर्मा भुवत्**) राजा बलका धारण पोषण करनेवाला होता है। राजाके रहनेसे राष्ट्रमें बल रहता है और वही राजा दुष्ट हुआ तो उसके कुप्रबंधसे बलवान् राष्ट्र भी निर्बल हो जाता है। (८९१ **मर्त्यानां राजा रयीणां रयिपतिः**) मानवोंका राजा नाना प्रकारके धनोंका स्वामी होता है। राजाके पास परिपूर्ण भरा हुआ धनकोश रहना चाहिये। धन ही राजाका बल है। (९३२ **वर्चसा मनुष्येषु राजा संबभूव**) तेजस्वितासे मनुष्योंमें राजा होता है। अर्थात् राजामें तेजस्विता चाहिये। निस्तेज मनुष्य राजगद्दीपर शोभा नहीं दे सकता। इसलिये तेजस्वी प्रतापी पुरुषको ही राजाके स्थानपर रखना चाहिये।

९३६ **इमं क्षत्रियं वर्धय**-इस क्षत्रियको बढाओ। (**इमं विशां एक वृषं कृणु**) इस क्षत्रियको अद्वितीय बलवान कर। (९३७ **अयं राजा क्षत्रियाणां वर्ष्म अस्तु**) यह राजा क्षत्रियोंसे सबसे श्रेष्ठ हो जाय। बलवान् होनेसे यह राजा सबमें श्रेष्ठ हो। सब अन्य राजा लोग इस राजाके साम्राज्यमें रहें। इतनी इस राजाकी शक्ति बढे। (९३८ **अयं राजा धनानां धनपतिः, विशां विश्पतिः अस्तु**) यह राजा सब प्रकारके धनोंका स्वामी हो और सब प्रजाओंका उत्तम पालक हो। (अस्य शत्रुं अवर्चसं कृणुहि) इसके शत्रुको निस्तेज करो।

९३९ **अयं राजा इन्द्रस्य प्रियः भूयात्**— यह राजा प्रभुको प्रिय हो। इसका आचरण ऐसा उत्तम हो कि जिससे इसपर ईश्वर प्रसन्न हो जाय। (९४० **येन जयन्ति, न पराजयन्ते**) जिससे राजा विजयी होता है और कभी पराभव नहीं होता, इसका ज्ञान यह है, (**मानवानां राज्ञां उत्तमं करत्**) मानवोंमें, राजाओंमें, क्षत्रियोंमें इसको उत्तम कर दिया है, इसलिये इसका कभी पराभव नहीं होगा और विश्वमें यह विजयी होगा।

९४१ **हे राजन्! त्वं उत्तरः**— हे राजा! तूं अधिक श्रेष्ठ बन, सब मानवों और राजाओंमें तुम्हारे जैसा कोई न हो। सबसे ऊंचा स्थान तुम्हारे लिये ही प्राप्त हो। (**ते सपत्नाः प्रतिशत्रवः अधरे**) तेरे सब शत्रु नीचे हों, तुम्हारी योग्यताको वे न प्राप्त हों। इतनी तुम्हारी योग्यता श्रेष्ठ हो जाय।

९४२ **सिंह प्रतीकः सर्वा दिशः**— सिंहके समान सब दिशाओंमें प्रभावी बन, (**व्याघ्रप्रतीकः शत्रून् अव बाधस्व**) व्याघ्रके समान शत्रुओंको पराजित कर। (**एक वृषः जिगीवान**) अद्वितीय बलवान् होकर तू सर्वत्र विजयी और यशस्वी बन।

(९४५) (**वज्री**) शस्त्रधारी, (**वृषभः**) बलवान्, (**तुराषाट्**) त्वरासे शत्रुको दबानेवाला (शुष्मी) सामर्थ्यवान् (राजा) ऐसा राजा हो।

इस तरह प्रजापालक राजाके गुणोंका वर्णन वसिष्ठ मंत्रोंमें है। पाठक इस दृष्टीसे इन मंत्रोंका मनन करें और राज्यशासन विषयक बोध लें। ये मंत्र राज्यशासन विषयक उत्तमोत्तम बोध दे रहे हैं। वासिष्ठ ऋषिने इन मंत्रोंमें आदर्श राजाका वर्णन किया है। वह आज भी मननीय है।

दूतकर्म

३७१ **अग्निभिः सजोषा अग्निं देवं दूतं कृणुध्वम्**— तेजस्वी पुरुषोंके साथ रहनेवाले तेजस्वी दिव्य पुरुषको अपना दूत बनाओ। राजदूत वह बनाया जावे कि जो स्वयं नेता हो और अग्निके समान तेजस्वी और मार्गदर्शक हो। तथा जो—

३७।७ मर्त्येषु निध्रुविः ऋतावा पावकः तपुर्मूर्धा अध्वरः— जो मनुष्योंमें स्थिर रहता है, तथा जो सत्यनिष्ठ, पवित्र, तेजस्वी, घीसे पका अन्न खानेवाला तथा हिंसा छल कपट आदि दोषोंसे रहित हो। ऐसे श्रेष्ठ पुरुषको राजदूत बनाना योग्य है।

९९ मानुषासः अजिरं दूत्याय ईळते— मनुष्य सदा प्रगतिशील पुरुषको ही दूतकर्मके लिये प्रशंसित करते हैं।

देवोंमें अग्निको दूतकर्मके लिये प्रशंसनीय माना है। यज्ञकर्ताका दूत होकर देवोंके राज्यमें जाता है और देवोंको बुलाकर लाता है। दूत अग्निके समान तेजस्वी, उत्साही, प्रकाशमान, अग्रणी, कार्य (अग्र-नी) अन्ततक, सिद्ध होनेतक संपादन करनेवाला, बीचमें ही न छोडनेवाला हो। ये अग्निके गुण हैं। ये गुण राजदूतमें होने चाहिये। परराष्ट्रमें अपना दूत अग्नि समान प्रकाशता रहे। नीतिमें (निध्रुविः) स्थिर, (ऋतावा) सत्यनिष्ठ, (पावकः) शुद्ध, पवित्र, (तपुः मूर्धा) तेजस्वी मुखवाला (अ-ध्वरः) हिंसा न करनेवाला अथवा (अध्व-रः) योग्य मार्ग बतानेवाला (अजिरः) जो निर्बल नहीं है। ऐसा दूत हो।

३७४ नः अस्य जग्मुषः दूतस्य श्रोत— हमारे इस प्रवासी दूतका कथन सुनो।

६९९ वरुणस्य स्पशः स्मदिष्टाः सुमेके उभे रोदसी परिपश्यन्ति— वरुणके गुप्त दूत द्यावा पृथिवीका निरीक्षण करते हैं।

हमारे दूतकी बातें जहां वह जाय वहांके सदस्य सुनें। ऐसा कभी न हो कि हमारा दूत तो राजसभामें जाय और वहां उसका कोई न सुने। हमारा दूत इतना तेजस्वी और विद्वान हो कि सब लोग उसकी बातें सुनें और उसका कहना माने।

(स्पशः) गुप्तचर, राज्यके चार, चारों ओर भ्रमण करें उनको किसी स्थानपर प्रतिबंध न हो। वे ऐसी युक्तिसे जहां जाना है वहां पहुंचे कि किसीको पता तक न लगे। ये (उभे रोदसी परिपश्यान्ति) दोनों लोकोंको देखते हैं। उनको सब दृश्य प्रत्यक्ष जैसे होने चाहिये क्योंकि उनकी गति सर्वत्र रहनी चाहिये। सबमें वरिष्ठ और श्रेष्ठ देव वरुण है। इसके ये गुप्तचर सब विश्वमें जाते हैं और सबके कार्य देखते है। वैसे हमारे राजाके दूत हों, गुप्तचर हों, जो सब राष्ट्रमें तथा बाहरकी सब बातें देखें, जानें, और राजाके पास उस ज्ञानको पहुंचा दें।

नदीपार

१५०।१ इन्द्रः अर्णांसि गाधा सुपारा अकृणोत्— इन्द्रने अगाध जलोंको सुखसे पार करनेयोग्य बनाया। यही राजाका राष्ट्रमें कर्तव्य है। लोगोंके जानेआनेके मार्ग नदीके कारण न रुकें ऐसा प्रबंध करना चाहिये

३५२ सिन्धुमाता सरस्वती सुधारा सुदुघा, स्वेन पयसा पीप्याना: यशसा वावशाना स्नाकं अभि आ सुष्वयन्त— सिन्धु माता सरस्वती उत्तम धारासे युक्त, उत्तम दूध देनेवाली, अपने जलसे बढनेवाली, अन्नको बढानेवाली साथ साथ बढती जाय। यह नदी गौका दूध बढावे परंतु मार्गमें रुकावट न करे।

५०९।३ प्रवाजे नद्यः गाधं अस्ति— निम्न प्रदेशमें नदी गहरी होती है। इसलिये उसको पार करनेका यत्न करना चाहिये।

५०९।४ अस्य विष्पितस्य पारं नः पर्षन्— इस गहरी नदीके पार ये वीर हमें ले जांय। हम गहरी नदीके भी पार जांयगे।

नदीका जल तो जैसाका वैसा ही रहेगा, परंतु जाने आनेके लिये नदीके ऊपरसे मार्ग बनाना चाहिये। नौकाओंकी पंक्ति रखकर उस परसे गहरी नदीके पार जा सकते है, बडे बडे वृक्षोंके काष्ठोंसे सेतु बनकर पार होनेके लिये मार्ग बनाया जा सकता है। इस पारसे उस पारतक बडा रस्सा अथवा तारोंका रस्सा रखकर उसपरसे पार हो सकते हैं। पत्थरोंके सेतु तथा लोहेके सेतु किये जा सकते हैं। तात्पर्य व्यापार व्यवहारकी उन्नति होनेके लिये नदियोंके पार जानेके मार्ग अक्षुण्ण होने चाहिये।

नौकासे समुद्र पार होना

७०६ नावं आरुहाव, समुद्रं मध्ये प्रेरयाव, अपां स्नुभिः अधिचराव, शुभे कं प्रेंखं प्रेंखयावहै— नौकापर चढें, उसे समुद्रमें चलावें, जलोंके बीचमें अन्य नौकाओंके साथ चले तब आनन्दके लिये झूलेपर चढनेके समान आनंद प्राप्त करेंगे।

७०७ वरुणः वसिष्ठं नावि आ अधात्— वरुणने वसिष्ठको नौकापर चढाया (**सु अपाः महोभिः ऋषिं**

चकार) उत्तम कर्म करनेवालेने अपनी शक्तियोंसे उस ऋषिको पार किया ।

इस तरह नौकाओंका समुद्रमें जाना आना, नदीपार करना, समुद्रकी यात्रा करना आदि इन मंत्रोंमें लिखा है । यह नौका विहार सब जानते थे इतना सुप्रसिद्ध था, सबको सुविदित था । इसलिये '**नावा इव सिंधुं दुरितात्यग्निः** ।' ऐसी उपमाएं दीं गयीं है । दुःखों, कष्टों, पापों और आपत्तियोंसे पार होनेके लिये 'नौकासे नदीपार या समुद्रपार' होनेकी उपमा दी हैं । उपमा उसकी दी जाती है कि जो सबको सुविदित हो । इसलिये छोटी और बडी नौकाओंका वर्णन सिद्ध करता है कि यह व्यवसाय सुविदित था । अश्विदेवोंने भुज्युको और उसकी सेनाको भी समुद्रपार किया था । यह नौका बडी ही होगी ।

शिल्पी

१८५ त्वष्टा सु-द्रं नेमिं— सुतार उत्तम लकडीसे चक्रकी नेमी बनाता है ।

३५६ ऋभुक्षणाः सुशिप्राः वाजाः— शिल्पियोंमें रहनेवाले बल अन्न तथा धन सुरक्षित होते हैं ।

३५७ ऋभुक्षणः स्वर्दशः अमृक्तं रत्नं धत्थ— कारीगरोंको आश्रय देनेवाले, आत्मोन्नति करनेवाले, चुराया जानेवाला धन न दें ।

३५९ इन्द्रः स्वयशाः ऋभुक्षाः— राजा अपने यशसे शिल्पियोंको आश्रय देनेवाला हो ।

४२२ ऋभुभिः ऋभुः स्याम— शिल्पीयोंके साथ रहकर हम कुशल शिल्पी बनेंगे ।

५८१ सुमन्मा कारुः उषसां अग्रे बुधानः— मनन-शील शिल्पी उषःकालके पूर्व उठे । और अपना कार्य प्रारंभ करे ।

६६२।३ कारवः उभयस्य वस्वः ईशानाः— कारीगर दोनों धनोंके स्वामी होते हैं ।

(सु-द्रं नेमिं) उत्तम लकडीकी ही चक्रको नेमि बनानी चाहिये, नहीं तो वह टिकेगी नहीं । शिल्पीयोंके प्रयत्नसे अन्न, बल तथा धन निर्माण होते हैं । राजा (ऋभु-क्षाः) शिल्पियोंको आश्रय देनेवाला हो । जो शिल्पियोंके साथ रहते हैं वे शिल्पी बनते हैं । इस तरह राष्ट्रमें शिल्पकी वृद्धी करनी चाहिये । शिल्पियोंके साथ धन रहता है । इसलिये शिल्पीयोंका राष्ट्रमें सन्मान हो ।

३१ मानुषेषु कारू विप्रौ जातवेदसौ मन्ये— मनुष्योंमें जो कारीगर ज्ञानी और बुद्धिमान है उनको मैं मान्यता करता हूं । वे अपने कर्मको उत्तमसे उत्तम बनावें, वे अपना कर्म छल कपट रहित करें ।

१९९।१ कीरिः अवसे ईशानं जुहाव— कारीगर अपनी सुरक्षाके लिये ईश्वरकी प्रार्थना करता है ।

(मानुषेषु कारू विप्रौ) मानवोंमें शिल्पी ज्ञानी हों, ज्ञान और शिल्प एक स्थानपर रहना चाहिये । ये शिल्पी (जातवेदसौ-जात-धनौ) धन उत्पन्न करनेवाले हैं, शिल्पसे ही धन निर्माण होता है । इसलिये राष्ट्रमें शिल्पी अधिक होने चाहिये ।

इन्द्रको (३५९ **इन्द्रः ऋभु-क्षाः**) शिल्पियोंको आश्रय देनेवाला कहा है । इन्द्र देवोंका राजा है, वह शिल्पियोंको आश्रय देता है, सन्मानसे उनके शिल्पोंको उत्तेजना देता है, इस तरह यहांके राजाओंको भी अपने राज्यमें शिल्पियोंको उत्तेजना मिले, शिल्पोंकी वृद्धि हो ऐसा करना चाहिये । शिल्प ही धन है । शिल्पकी उत्तेजनाका अर्थ धनकी उत्तेजना है । मनुष्योंको धन चाहिये, इसलिये मनुष्योंको शिल्पोंको उत्तेजना देनी चाहिये ।

पापसे बचाव

१०४।१ मह्ना दुरितानि साह्वान्— अपने महत्त्वसे पापोंको दूर कर ।

१०४।३ सः अवद्यात् दुरितात् गृणतः मघोनः नः रक्षिषत्— वह प्रभु निंद्य पाप कर्मसे हम सब उपासकों और धनिकोंको बचावे ।

१०७।३ त्वं अभिशस्तेः अमुञ्चः— तूं निन्दितोंसे हमें बचाओ ।

२१२ तानि अंहांसि अस्मान् अतिपर्षि— उन सब पापोंसे हम सबको बचाओ ।

२४१।३ यत् अनृतं प्रतिचष्टे, द्विता अवसात्— जो पाप हमारे अन्दर दिखाई देगा, वह द्विधा होकर दूर किया जाय ।

२८३।३ पापत्वाय न रासीय— पाप बढानेके लिये मैं धनका दान कदापि नहीं करूंगा ।

३११।२ तनूनां रपः विष्वक् वि युयोत— शरीरोंके पाप दूर हों ।

३८१ नः अंहः अतिपर्षत्— हमारा पाप दूर हो।

४३३ आदित्यानां शंतमेन शर्मणा सक्षीमहि तुराषः अनागस्त्वे अदितित्वे दधतु— आदित्योंके कल्याणकारी कवचसे हम सुरक्षित हों और वे त्वरासे कार्य करनेवाले हमें निष्पाप और अदीन बनावें।

४३७ अन्यजातं एनः मा भुजेम— दूसरेका किया पाप हमें भोगना न पडे।

५०३ उद्यन् अद्य अनागाः ब्रवः— वह सूर्योदय होनेपर आज ही हमें निष्पाप करके घोषित करे।

५०३।२ वयं देवत्रा सत्यं— हम देवोंमें सत्यपालक करके प्रसिद्ध हों।

५१३ नः अनागसः प्रवोचः— हमें निष्पाप घोषित कर।

५४१।४ ऋतस्य पथा दुरिता तरेम नावा अपः इव— सत्यमार्गसे पापके पार होंगे जैसे नौकासे नदी पार होते हैं।

५४८ यामन् नः अंहः अतिपिप्रति— वीरोंका आगमन हमारा पाप दूर करे।

६७३।१ अर्यः अघानि मा अभि आतपन्ति— शत्रुके पाप मुझे कष्ट दे रहे हैं।

६७३।२ वनुषां अरातयः मा तपन्ति— घातक शत्रु मुझे ताप देते हैं।

६८०।२ अरज्जुभिः सेतृभिः सिनीथः— रज्जुरहित बंधनोंसे पापियोंको बांधते हैं।

६९३।१ नः पित्र्या द्रुग्धानि, वयं तनूभि चकृम— हमारे पैत्रिक पाप हों अथवा अपने इस शरीरसे किये हों, वे सब दूर हों।

६९३।३ पशुतृपं तायुं— पशुको तृप्त करनेवाला पशु चोर (पापमें भी पुण्य करता है।) चोर किसीके पशुको चोरता है, यह पाप है, पर उस पशुको घास पानी देता है यह उसका उस पापमें पुण्य है।

६९३।४ दाम्नः वत्सं न, वसिष्ठं अवसृज— रस्सीसे बछडेको छोडनेके समान मुझ वसिष्ठको मुक्त करो।

६९५ मीळ्हुषे भूर्णये देवाय अनागाः अहं अरं कराणि— मैं निष्पाप बनकर देवकी सेवा करूंगा।

७०३।१ यः आगः चकुषे चित् मृळयाति— ईश्वर पाप करनेवालेको भी सुख देता है।

७०३।१ वरुणे वयं अनागाः स्याम— वरुणमें हम निष्पाप हों।

७०९ यः नित्यः आपिः प्रियः सखा सन्, आगांसि कृणवत्, ते एनस्वन्तः मा भुजेम— जो प्रियमित्र होनेपर भी पाप करता है, वह तुम्हारा मित्र होनेसे उसे पापफल भोगना न पडे।

७१० वरुणः अस्मत् पाशं विमुमोचत्— वरुण हमसे पाश दूर करे।

७१५ दैव्ये जने यत् किंच मनुष्याः अभिद्रोहं चरामसि, अचित्ती तव यत् धर्मा युयोपिम, तस्मात् एनसः नः मा रीरिषः— दिव्यजनसंबंधी जो द्रोह हमने किया है, न समझते हुए जो धर्मलोप हुआ हो, उस पापका भोग हमें न करना पडे।

७४५ न पापत्वाय, अभिशस्तये, नः निदे, मा रीरधतं— पाप, विनाश, निन्दाके लिये हमें पराधीन न कर।

पाप कई प्रकारके होते हैं, एक व्यक्तिका किया हुआ पाप, दूसरा सामुदायिक रीतिसे किया हुआ, तीसरा अज्ञानसे हुआ चौथा जानबूझकर परिणामका विचार करके किया हुआ। ऐसे अनेक प्रकारके पाप हैं। इन सब पापोंको दूर करना चाहिये, इन सब पापोंसे अपना बचाव करना चाहिये। इसलिये कहा है-

१०४ अवद्यात् दुरितात् नः रक्षिषत्।
१०७ अभिशस्तेः अमुञ्चः।
२१२ अंहांसि अस्मान् अतिपर्षि।
३८२ नः अंहः अतिपर्षत्।
५४८ नः अंहः अतिपिप्रति।

हमारा पापसे बचाव हो। हमसे पाप न हो। पापके दुष्परिणामको हम सहें और पापका नाश करें (१०४ महा दुरितानि साह्वान्) अपने महत्त्वसे, अपनी शक्तिसे हम पापोंको सहकर दूर करेंगे। पापोंके दुष्परिणामको सहना पडेगा, पर उस समय हम हिम्मत ऐसी धारण करेंगे कि इस विपत्तिसे हम बचेंगे और पश्चात् अच्छा सत्कर्म करके उन्नत हो जायगे।

२८३ पापत्वाय न रासीय— पाप बढानेके लिये हम अपने धनका दान नहीं करेंगे। अपने धनसे पाप होगा ऐसा कोई दुष्कर्म हम नहीं करेंगे।

४३७ अन्यजातं एनः मा भुजेम— दूसरेका किया पाप

हमें भोगना न पडे। दूसरेके पापका जो भोग भोगना पडता है। जैसा नेताके, अथवा राजाके प्रमादसे पराभव होता है और सबका सब राष्ट्र परतंत्र हो जाता है और दुःख भोगता है। ऐसे कई भोग हैं कि जो दूसरोंके कारण हुए होते हैं। रावणके पापके कारण लंका जली और दुर्योधनके पापके कारण कुरुकुलका नाश हुआ।

५४१ ऋतस्य पथा दुरिता तरेम — सत्यके मार्गसे हम पापप्रवाहोंके पार हो जांयगे। सत्य और ऋतके अवलंबन करनेसे पाप नहीं होता। इसलिये सत्यनिष्ठा धारण करनी चाहिये।

६९३ पित्र्या द्रुग्धानि, वयं तनूभिः चकृम— पितामाताके किये पाप और स्वयं अपने शरीरसे किये पाप भोगने पडते हैं। पिताके पापसे पैत्रिक रोग होते हैं और अपने किये पापोंसे भी अनेक विपत्तियां प्राप्त होती हैं। इन सबसे अपना बचाव करना चाहिये।

७०३ आगः चकुषे मूळयाति— पाप करनेवालेको भी ईश्वर सुख देता है। यह उसकी दया है। इसलिये हमको सदा ऐसी दक्षता धारण करनी चाहिये कि (७०३ **वरुणे वयं अनागाः स्याम**) ईश्वरके सामने हम निष्पाप सिद्ध हो जांय। दक्षता धारण करनेसे यह हो सकता है। (७१० **वरुणः पाशं अस्मत् विमुमोक्तु**) ईश्वर हमें पापके पाशसे मुक्त करे। इसलिये हमें ईश्वरकी भक्ति करनी चाहिये।

तात्पर्य यह कि पापसे अपना बचाव करना चाहिये। पाप वैयक्तिक भी हैं और सामुदायिक और राष्ट्रीय भी पाप होते हैं। उन सबको करना नहीं चाहिये। उत्तम ज्ञान प्राप्त करके दक्षतासे व्यवहार करनेसे पाप नहीं होते। हम निष्पाप बनें यही इच्छा धारण करनी चाहिये।

बल

२२७ देवजूतं सहः इयानाः— देव जिसकी प्रशंसा करते हैं वैसा बल हमें चाहिये।

२२७।३ तरुत्रा वाजं सनुयाम— दुःखोंसे पार होकर हम बल प्राप्त करें।

२३३।२ नः सहस्रिणः वाजान् उपमाहि— हमें सहस्रों प्रकारके बल अन्न और धन प्राप्त हों।

२३७।१ यः ते शुष्मः अस्ति, सनिष्णुः युध्मः शिक्ष— जो तेरे पास सामर्थ्य है, वह तू समान विचारवाले मनुष्योंको सिखाओ।

२४१।१ महे क्षत्राय शवसे जज्ञे— बडे क्षात्रबलके लिये वह जन्मा है।

२४९ देव शुष्मिन् सुवज्र शूर इन्द्र नृपते — हे दिव्य बलिष्ठ वज्रधारी शूर इन्द्र राजा! **शवसा आयाहि**— वेगसे आओ, अपने बलके साथ आओ।

२४९ अस्य महे नृम्णाय क्षत्राय पौंस्याय भव— इस बडे सामर्थ्य और बडे क्षात्रबलके लिये प्रसिद्ध हो जाओ।

२५० ते सहः, त्वं महान् असि— तेरा यह बल है, इस बलके कारण तू बडा है।

२६५।२ सहध्यै वाणीः दधिरे— बल बढानेके लिये वाणीको धारण करो। बल बढानेके लिये ही बोलना है तो बोलो।

२७७ यः हरिवान् दक्षं दधाति, तं रिपः न दभन्ति— जो घुडसवार वीर बलका धारण करता है, उसको शत्रु नहीं दबा सकते। बलवान्को शत्रु नहीं दबाते, निर्बलको ही दबाते हैं।

२७९ त्वावसुं कः आ दधर्षति— तेरे धनको कौन धर्षित कर सकता है! क्योंकि तुम महाबलवान् और सामर्थ्यवान् हैं।

२७९ पार्ये वाजं सिषासति— दुःखसे पार होनेके दिनमें बलकी आवश्यकता होती है।

१९६।१ भुवनेषु त्रयः रेतः कृण्वन्ति— भुवनोंमें तीन लोग ही बलवीर्य प्राप्त करते हैं, वे **ज्योतिरग्राः आर्याः तिस्रः प्रजाः**— प्रकाशके मार्गसे जानेवाले आर्योंके तीन ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य ये प्रजाजन हैं, जो बलवान् हो सकते हैं।

३१३।१ शुष्मात् भानुः उदार्त— बलसे सूर्यका उदय होता है।

३१३।२ शुष्मात् पृथिवी भारं बिभर्ति— बलसे पृथिवी भार उठाती है।

४२२।३ शवसा शवांसि— बलवानोंके साथ रहकर बल प्राप्त करेंगे।

५१८।२ शुष्मः महित्वा रोदसी बद्धधे— बल अपने महत्त्वसे विश्वमें व्यापता है।

५१८।४ यज्ञमन्मा वृजनं प्र तिराते— यज्ञमें मन रखनेवाले बल बढाते हैं।

५१९।१ विश्वा अमूरा वृषणा— सब मूढता दूर करें और बल बढावें।

५३९ पूतदक्षं अक्षितं ज्येष्ठं असुर्यं विश्वस्य जिगत्नु- जो पवित्र, अक्षय, श्रेष्ठ, दीर्घायुदायक बल है वही विश्वविजयी होगा।

५४।१ असुर्याय धारयन्त— बल धारण करते हैं।

५५१ हिरण्यया राया इयं मतिः अवृकाय शवसे मेधसातये— सुवर्णसे वा धनसे युक्त यह मेरी बुद्धि अहिंसक बलके लिये तथा मेधावृद्धिके लिये कार्य करे।

५६७।४ शचीभिः नः शक्र— सामर्थ्योंसे हमें सामर्थ्य- वान बनाओ।

५६८।२ नः प्रजावत् रेतः अह्रयं अस्तु— हमारा सुप्रजा उत्पन्न करनेवाला वीर्य क्षीण न हो। हमारा वीर्य बढे।

६६४।३-५ त्विषे महेशुल्काय ओजः मिमाते— तेजस्विता और बडे धनके लिये बल बढाते हैं।

९४४ देवहितं वाजं सनेम— वह बल हम प्राप्त करें कि जो विबुधोंका हित करता है।

वसिष्ठके मंत्रोंमें बलके बढानेके लिये ऐसे वचन हैं। यहां बलका महत्त्व वर्णन किया है और अपना बल बढानेकी भी उत्तेजना दी है। (५१९ विश्वा अमूरा वृषणा) सबको क्या करना चाहिये ? दो ही बातें सबको करनी चाहिये, इनमें एक (अ-मूरा, अ-मूढा) मूर्खता दूर करना चाहिये और दूसरी (वृषणा) बलवान् बनना चाहिये। विश्वमें विजयी होनेका यहां ऐसा परिपूर्ण कार्यक्रम इन तीन शब्दोंमें रख दिया है। सब मानवजातिके लिये यह उपदेश उपयोगी है।

२२७ देवजूतं सहः इयानाः- देवोंके द्वारा जिस बलकी प्रशंसा की जाती है वह बल हमें चाहिये। राक्षसों द्वारा प्रशंसित बल हमें नहीं चाहिये। प्रकाशके मार्गको बतानेवाला बल देवोंमें वर्णनीय होता है। क्रूरता, घातपात करनेवाला बल राक्षस पसंत करते हैं।

२३५ ते शुष्मः सखिभ्यः नृभ्यः— शिक्ष तेरे पास जो बल है, वह अपने मित्रोंको सिखादो और उनको भी वैसा ही बलवान् बनाओ। न सिखाते हुए तुम्हारे पास ही बल पडा रहा, कोई विद्या पडी रही तो वह तुम्हारे साथ ही नष्ट होगी, इसलिये जो अपने पास विद्या है वह अपने लोगोंको सिखाओ और विद्याका खूब प्रचार करो। (२४१ महे क्षत्राय जज्ञे) तुम्हारा जन्म बडा क्षात्र कर्म करनेके लिये, बडे पुरुषार्थ करनेके लिये है, यह ध्यानमें धारण करो और किसी हीन कर्ममें अपने आपको न फंसाना। (२४९) देव शुष्मिन् सुवज्र शूर नृपते) प्रकाशमान्, सामर्थ्यवान्, शस्त्रधारी शूर राजा हो। ये राजाके गुण भी यहां कहे है। ऐसा बलवान् राजा होगा तो वही अपने राज्यका योग्य पालन कर सकेगा और शत्रुओंको दबा सकेगा। (२४९ महे क्षत्राय नृम्णाय पौंस्याय भव) बडे क्षात्र तेज तथा बलके बडे कार्यके लिये अपना जन्म है यह बात ध्यानमें धारण कर। अपना जन्म किसी भी हीन कार्यके लिये नहीं है, ऐसा मानना आवश्यक है। (२६० त्वं महान् असि) तू बडा है, ऐसा समझो कि मैं बडे कार्य करनेके लिये, बडा होनेके लिये जन्मा हूं। मै क्षुद्र नहीं हूं, हीन, दीन नहीं हूं। मुझसे बडे कार्य होने हैं, ऐसे विचार मनमें धारण करने चाहिये।

२६५ सहध्यै वाणीः- बल बढानेवाले विचार बोल- नेके लिये ही अपनी वाणी है। यदि बोलना है, व्याख्यान देना है, तो बल बढानेके लिये ही बोलना चाहिये। अपना सामर्थ्य बढे, संघटना बढे, अपना प्रभाव बढे इस कार्यके लिये ही बोलना है तो बोले।

२७७ यः दक्षं दधाति, तं रिपः न दभान्ति— जो बल धारण करता है, उसको शत्रु नहीं दबाते। यह सिद्धान्त कितना अच्छा है। यह सिद्धान्त व्यक्ति, राष्ट्र और समाजको सदा ध्यानमें धारण करना चाहिये। यदि तुमको शत्रु दबा रहे हैं, तो समझो कि तुम्हारे अन्दर बल नहीं है। बल भी दक्षतायुक्त सामर्थ्यवान् चाहिये। तब सब शत्रु दूर हो सकेंगे। बलवान्के (वसुं कः आदधर्षति) धनको कौन हाथ लगा सकता है ! जगत्में किसका सामर्थ्य है कि जो बलवानके धनको हाथ लगानेका साहस कर सके ! (२७० पार्यं वाजं) दुःखोंसे पार होनेके लिये ही बल चाहिये। बल प्राप्त होते ही दुःख दूर हो सकते हैं।

३१३ शुष्मात् भानुः उदार्त, पृथिवी भारं बिभर्ति- बलसे ही सूर्य उदय होता है और पृथिवी इतने भारको उठाती है। यह तो तुम प्रत्यक्ष देखो और अपना बल बढाओ। बलके विना इस जगत्में रहना भी असंभव है। यहांके अस्तित्वके लिये भी बल चाहिये। (५१८ शुष्मः रोदसी बद्धदे) बल ही त्रिभुवनमें व्यापता है, अपना प्रभाव फैलाता है, इसलिये बल बढाओ, फिर तुम्हें कोई दबायेगा नहीं। बलकी प्राप्ति करनेके लिये ही यत्न करो।

बडा होनेसे अनुकूलता

३८ अस्य शोचिः अनु वातः अनुवाति— इस अग्निके प्रकाशके अनुकूल होकर वायु बहता है। अग्नि छोटा रहा तो जो वायु उसको बुझाता है, वही वायु अग्निके बढ- जानेपर उसका सहायक होता है। छोटेपनमें विपत्ति है, बडा होनेपर सबकी अनुकूलता हो जाती है।

१८५ महित्वा तविषीभिः आ पप्राथ-- अपने महत्त्वसे और अपनी शक्तियोंसे पूर्ण बनता है। प्रसिद्ध होता है। सर्वत्र प्रभावी होता है।

छोटापन दुःखदायक है, छोटेपनमें भय है। दीपको वायु बुझाता है, जो अग्नि प्रज्वलित नहीं हुआ उसको वायु बुझाता है, पर वही अग्नि बडा होकर दावानलका प्रचण्ड स्वरूप धारण करके धधकने लगता है, उस समय जो वायु उसको बुझाता था, वही उसको अनुकूल होता है और उसको अधिक बढनेके लिये सहाय्य करता है। जो छोटेपनमें शत्रु था वही बडा होनेसे मित्र बनता है। इसलिये कहा है-

न अल्पे सुखमस्ति।
भूमैव सुखम्।

अल्पमें सुख नहीं, बडा होना ही सुखकारक है। निर्बलतासे शत्रु बढते है, समर्थ होनेपर शत्रु ही मित्र होते हैं। सामर्थ्यसे ही शत्रुको मित्र बनाया जा सकता है।

उत्तम मित्र

२१ सखा नः दुर्भृतये दुर्मतयः मा प्रवोचः— हमारा मित्र हमारे भरण-पोषणमें बाधा डालनेके लिये कुविचार न फैला दे।

२१ अमात् चित् सखा मा नशन्त-- भ्रमसे भी हमारा मित्र हमारे नाशका विचार न करे।

१५१।४ विपूर्वोः सखा सखायं अतरत्-- परस्पर विरोधि परिस्थितियोंमें भी जो मित्र रहता है, वही अपने मित्रका तारण करता है। कष्ट और सुखकी परिस्थितिमें जो सहायक होता है वह सच्चा मित्र है।

१५७।१ ये त्वायन्तः त्वा अनु-अमदन् सख्याय सख्यं वृणानाः— जो अनुकूल रहकर आनन्द बढाते हैं, जो मित्रता करनेके इच्छुक हैं, उनसे मित्रता करना योग्य है।

१६४ सर्वताता भेदं प्रमुषायत्-- यज्ञसे आपसकी फूट दूर होती है। मित्रता बढती है। यज्ञ उसको कहते हैं कि जो (सर्व ताता) सबका तारण करे।

२०० नमो वृधासः विश्वहा सखायः स्याम-- अन्नकी वृद्धि करनेवाले सब लोग सर्वदा मित्रभावसे आपसमें रहें।

२१० अस्मे ते सख्यानि शिवानि सन्तु-- हमारे लिये तेरी मित्रता कल्याण करनेवाली बने।

३४८।३ मित्रः जनं यतति-- मित्र लोगोंको सत्कर्ममें प्रेरित करता है।

६६६ युवयोः सख्यं आप्यं मार्डीकं नियच्छतं-- तुम्हारी मित्रता, बंधुता हमारे लिये सुखकर हो।

मित्रके विषयमें वसिष्ठके मंत्रोंमें ऐसे वचन आते हैं। विपत्काल और संपत्कालमें जो सहायक होता है वह सच्चा मित्र है यह मित्रकी व्याख्या मंत्र १५१ में देखने और मनन करने योग्य है। संपत्कालमें सब पास आते ही हैं और विनम्रभावसे रहते भी हैं, परंतु विपत्काल आनेपर वे दूर होते हैं। वे सच्चे मित्र नहीं कहलाते।

१६४ सर्वताता भेदं मुषायत्— यज्ञसे सब भेद मिट जाते हैं। सबका हित जिससे होता है, सर्वत्र जिसका अच्छा प्रभाव होता है, सबका जिससे विकास होता है वह यज्ञ है। यज्ञमें श्रेष्ठोंका सत्कार, सबकी संघटना और दुर्बलोंकी सहायता होनी चाहिये। ये श्रेष्ठ कर्म हैं कि जिससे आपसके भेद दूर होते हैं। और एकता बढती है। (२१० सख्यानि शिवानि सन्तु) मित्रता कल्याण करनेवाली हो। दुराचारियोंकी भी संघटना होती है, परंतु वह अधःपात करनेवाली है। इसलिये संघटना शुभ करनेवाली चाहिये।

अपने अन्दर विद्या, शौर्य, धन, शिल्पका सामर्थ्य रहना चाहिये। यह सामर्थ्य अपने अन्दर बढना चाहिये। इसके बढ जानेसे शत्रु भी मित्र होते हैं और हिंसा, कुटिलता आदि समाजमें नहीं रह सकती।

श्रेष्ठ धन

५।१ सुवीरं स्वपत्यं प्रशस्तं रयिं धिया नः दाः-- उत्तम वीरोंसे युक्त तथा उत्तम वीर संतानोंसे युक्त प्रशंसित धन बुद्धिके तथा कर्तृत्व शक्तिके साथ हमें चाहिये।

५।२ यातुमावान् यावा यं रयिं न तराति-- हिंसक, डाकू ऐसे धनको लूट नहीं सकता। जिस धनके साथ वीर रहते हैं उस धनको लुटेरे लूट नहीं सकते, पर जिस धनके पास संरक्षण करनेके लिये वीर नहीं होते, वह धन लूटा जाता है।

४६ विश्वा सौभगा नः दीदिहि-- सब प्रकारके सौभाग्ययुक्त ऐश्वर्य हमें प्राप्त हों।

५२ भूरेः अमृतस्य, सुवीर्यस्य रायः ईशे-- हम बहुत अन्नके और उत्तम वीर्ययुक्त धनके स्वामी बनें।

५३।२ नित्यस्य रायः पतयः स्याम-- स्थायी रहनेवाले धनके हम स्वामी बनें। हमारे पास धन स्थायी होकर रहे।

५५।४ स्पृहाय्यः सहस्री रयिः समेतु-- स्पृहणीय सहस्रों प्रकारका धन हमारे पास एकत्रित होकर आवे।

६४ तां द्युमतीं इषं अस्मे आ ईरयस्व-- उस तेजस्वी इष्ट धनको हमें दे दो।

६५ नः पुरुक्षुं रयिं श्रुत्यं वाजं महि शर्म सुवस्व-- हमें बहुत यश, सुख, बल और कीर्ति देनेवाला धन दो।

७२ वैश्वानरः कुल्या वसूनि आददे-- सबका नेता मूल धन प्राप्त कर लेता है। सब कार्योंके निभानेके लिये जो धन आवश्यक है वह नेता प्राप्त करता है।

८२ कदा दुध्रस्य साधोः रायः पतयः, वन्तारः भवेम-- हम कब शत्रुके पासके उत्तम धनके स्वामी बनकर, उस धनका बंटवारा करनेवाले बनेंगे?

९१ विश्वान् देवान् रत्नधेयाय यक्षि-- सब देवोंका रत्नकी प्राप्तिके लिये यजन कर।

९४।१ राये पुरंधिं यक्षि-- धन प्राप्तिके लिये बुद्धिमानका सत्कार कर।

९५।१ गिरः रयिणं सिक्षमाणाः-- वाणियां धनकी इच्छा करती हैं।

९७ उशिजः विशः मन्द्रं यविष्ठं ईळते, सः रयीणां देवान् यजथाय अतन्द्रः अभवत्-- सुखकी इच्छा करनेवाली प्रजाएँ आनंद बढानेवाले तरुणकी प्रशंसा गाती हैं, वह धनोंकी प्राप्तिके हेतु दिव्यजनोंकी प्रीतिके अर्थ यज्ञ करनेके लिये आलस्य छोडकर सिद्ध रहता है।

१००।१ दाशुषे मर्त्याय अक्तोः वसूनि त्रिः प्राचिकितुः-- दान देनेवाले मनुष्यको दिनमें तीनवार धनका दान करना योग्य है। यह सब जानते हैं।

११५ सः नः कुवित् वस्वः वनाति-- वह हमें बहुत धन देता है।

११६ वीरवतः रयिः दशे स्वार्हा-- वीर पुरुषका धन उसकी शोभा बढाता है। वीर पुत्रवालेके लिये धन शोभा देता है।

१२० नरः विप्रासः धीतिभिः सातये त्वा उपयन्ति- नेता ज्ञानी लोग बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंके साथ धन प्राप्तिके लिये तुम्हारे पास आते हैं।

१२२ हे सहसः यहो! सः ईशानः त्वं नः राधांसि आ भर, भगः वार्यं दातु-- हे बलके पुत्र! तू सामर्थ्यवान होकर हमें भरपूर धन दे, तथा धनवान् प्रभु भी हमें ऐश्वर्य देवे।

१२३ सः वीरवत् यशः वार्यं च दाति- वह वीरोंसे युक्त यश तथा धन देता है।

१२८ स सुब्रह्मा सुशमी वसूनां देवं राधः जनानां योजते-- वह उत्तम ज्ञानी और संयमी धनोंमें उत्कृष्ट धनको लोगोंको देता है।

१३५ विदुष्टरः वह्निः, मन्द्रया आसा जिह्वया, नः रयिं आ वह-- विद्वानोंमें श्रेष्ठ तेजस्वी वीर, आनन्द देनेवाली मधुर भाषाके साथ, हमें धन देवे।

१३५।२ मघवद्भ्यः रयिं आ वह-- धनवानोंके पाससे धन ला दो।

१३३।१ महः श्रवस्य‌ कानि राधांसि अश्वया मघा ददाति-- बडे यशकी इच्छासे विशेष सिद्धि देनेवाले धन, अर्थात् घोडे आदि धन वह देता है।

१३८।२ अग्निः, विश्वानि काव्यानि जनयन्, सुवीर्यं रत्नं दधाति-- यह तेजस्वी अग्नि, कर्ता दाता जनके लिये, उत्तम वीर्य तथा रत्न आदि धन देता है।

१४३ प्रचेतसः ! विश्वा स्पार्हाणि वंसव-- हे बुद्धि-मान् ! सब प्रकारके स्वीकार करने योग्य धन हमें दो।

१४५ महः इयानः नः रत्ना विद्धः- महत्त्वको प्राप्त होकर हमें रत्नोंको दे दो।

१४६।१ नः पितरः, विश्वा वामाः, सुदुघाः गावः अश्वाः असन्वन्,-- हमारे पूर्वजोंने, सब प्रकारके धन, दुधारू गौवें और उत्तम घोडे प्राप्त किये थे।

१४६।२ त्वं देवयते वसु वनिष्ठः-- तू देव बननेकी इच्छा करनेवालेके लिये धन देता है।

१४७ विदुः कविः सन्, पिशा, गोभिः अश्वैः गिरः त्वायतः अस्मान् राये अभिशिशीहि--- तू ज्ञानी और कवि होता हुआ, सुन्दर रूप, गौवें, घोडे आदिके साथ, तुम्हारे वर्णनकी स्तुतियोंको प्रयुक्त करनेवाले हम सबको धन प्राप्त करनेके लिये उत्तम संस्कार संपन्न कर।

१४८ रायः पथ्या अर्वाची एतु-- धन प्राप्तिका मार्ग हमारेतक पहुंचनेवाला हो।

१४९।२ वसिष्ठः दुधुक्षन् ब्रह्माणि उपससृजे--- वसिष्ठ धन प्राप्त करनेकी इच्छा करता हुआ काव्योंको करता है।

१५१।२ मत्स्यासः, राये, निशिता अपिः इव--- मत्स्यके समान परस्परको खा जानेवाले, धन प्राप्त करनेके लिये, बडी तेजीसे कार्य करनेवाले होते हैं और आपसमें मित्र-भावसे भी रहते हैं।

१५२।३ भृगवः, द्रुह्यवः, श्रुष्टिं चक्रुः-- भरण-पोषण करनेके इच्छुक, तथा द्रोह करनेवाले, (धन प्राप्त करनेके लिये स्वेच्छासे परस्पर) सेवा भी करते हैं।

१६५ पूर्वीः नूतनाः च रायः सुमतयः संचक्षे--- पूर्व समयके तथा इस समयके धन तथा सुविचार अवर्णनीय हैं। प्रशंसा योग्य है।

तीन प्रकारका धन

१८८।१ पूर्वीः अपत्यस्य रिक्थम्--- जो पूर्वज वंशजको देता है जैसा पित्र्य धन पुत्रको मिलता है।

१८८।२ ह्वर्यां कनीयसः उपायायान् अयस्--- जो धन कनिष्ठने श्रेष्ठको मिलता है जैसा राजाको प्रजासे कर मिलता है।

१८८।३ अद्भुतः दूरं परि आसीत्--- जो धन दूर देशमें जाकर वहां अमर जैसा रहकर प्राप्त होता है।

१८८।४ चित्रं रयिं नः आभर--- यह विलक्षण धन हमें भरपूर भर दो।

१९० रायः कामः आगन्, त्वं वसः नः आशकः- धनकी कामना मेरे पास आगयी है। अतः धन हमें दे दो।

१९१।२ वस्वी शक्तिः नु अस्ति--- धनकी उत्तम शक्ति हमारे पास है।

१९८ इन्द्रः विषह्य मघानि दयते--- इन्द्र शत्रुका पराभव करके आनंददायक धन देता है।

२१६ स वीरवत् गोमत् नः धातु--- वह वीरोंसे युक्त तथा गौओंसे युक्त धन हमें देवे।

२११ अयं वसूनां इष्टे--- यह धनोंका स्वामी बनना चाहता है।

२१२।१ नः वार्यस्य पूर्धि--- हमें संरक्षणके योग्य धनसे भरपूर भर दे।

२१२।३ सुवीरां इषं पिन्व--- उत्तम वीरोंके साथ रहने-वाला धन हमें मिले।

२१४।३ वसूनां संभरणं नः आभर--- धनोंका समूह हमारे पास ले आओ।

२१५।५ अस्मे द्युम्नं रत्नं अधि धेहि- हमें तेजस्वी रत्न प्रदान कर।

२३१।२ एकः मघानां विभक्ता तरणिः- एक ही वीर धनका दाता है और वही तारक भी है।

२३४।३ शूरः नृषाता शवसः चकानः- शूर वीर मनुष्योंके लिये धनका बटवारा करनेके समय बलको देखता है।

२३५।३ त्वं विचेताः, परिवृतं राधः न अपवृधि- तू ज्ञानी है, इसलिये इस गुप्त धनको भी हमारे सामने प्रकट कर।

२३६।२ दाशुषे वसूनि ददाति— दाताको धन देता है।

२३६।३ उपस्तुतः चित् राधः अर्वाक् चोदत्- प्रशंसित होनेपर वह धन हमारे पास भेजता है।

२३७।२ अस्य अनूना दक्षिणा, सखिभ्यः नृभ्यः वामं पीपाय- इसकी दी हुई न्यूनता-रहित धनकी दक्षिणा, समान विचारवाले वीरोंके लिये इष्ट धन देती है।

२३८।१ नः राये वरिवः कृधि- हमें ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेके लिये श्रेष्ठ धन दे दो।

२३८।१ ते मनः मघाय आववृत्मां- तेरा मन धन प्राप्तिके लिये हम आकर्षित करते हैं।

२३८।३ गोमत् अश्ववत् रथवत् व्यन्तः- गौवें, घोडे और रथोंसे युक्त धन तुम्हारे पास है।

२४३।१ महः राधसः रायः नः— बडी सिद्धि देनेवाले धन हमें मिलें।

२४९।३ अस्य रायः वृधे भव- इस धनको बढाने-वाला हो।

२५१।१ मघानि ददतः- धनोंका दान सत्पात्रमें करें।

२५२।२ सूरिभ्यः उपमं वरूथं यच्छ- ज्ञानियोंको उपमा देने योग्य धन दो।

२५२।३ स्वाभुवः जरणां अश्नवंत- ऐश्वर्यवान् होकर दीर्घायु प्राप्त करें।

२५६ नः वाजयुः गव्युः हिरण्ययुः भव— हमें अन्न, गौवें और सुवर्ण देनेवाला हो।

२६८ रायस्कामः वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रः पितरं न, हुवे— धनकी इच्छा करनेवाला वज्रधारी उत्तम दक्ष वीरको, पुत्र पिताको बुलानेके समान, बुलाता है।

२७० सद्यः चित् यः शता सहस्राणि ददत्, दित्सन्तं न किः आ मिनत्- तत्काल जो सैंकडों और सहस्रों प्रकारके धन देता है, उस दाताको कोई रोक नहीं सकता।

२७२ मघवन्! धनानां वरूथं भव- हे धनपते! तूं धनोंका कवच जैसा संरक्षक बन।

२७२ त्वाहतस्य वेदनं विभजेमहि- तुम्हारे द्वारा मारे गये शत्रुका धन हम सब बंटवारा करके लेंगे।

२७९ दुर्नशः गयं आभर- जिसका नाश नहीं होता ऐसा घर और धन हमें दो।

२७४।२ महे आतुजे, राये, कृणुध्वम्- बडे शत्रु-विनाशके लिये, तथा धन प्राप्त करनेके लिये, प्रयत्न करो।

२८१ अवमं मध्यमं वसु तव इत्- अवम, मध्यम और परम धन तुम्हारी ही है।

२८१ विश्वस्य परमस्य राजसि- सब परम श्रेष्ठ धनका तू राजा है।

२८२ त्वं विश्वस्य धनदा श्रुतः असि- तू सबका धन देनेवाला करके प्रसिद्ध है।

२८३।१ एतावत् अहं ईशीय- इतना धन मैं प्राप्त करना चाहता हूं।

२८३।२ हे रदावसो! स्तोतारं दिधिषेय- हे धन दाता! स्तोताकी सुरक्षा हो।

२८४ कुहाचिद्विदे मह्यते दिवे दिवे रायः शिक्षेयं इत्- कहीं भी रहनेवाले अपनी उन्नति करनेवालेको प्रतिदिन हम धन देते हैं।

२८५।१ तरणिः, पुरंध्या युजा, वाजं सिषासति- त्वरासे कार्य करनेवाला, अथवा दुःखोंसे तैरकर पार होनेवाला, धारणावती बुद्धिके साथ युक्त होकर, धन, बल और अन्न प्राप्त करता है।

२८६।१ दुष्टुतिः मर्त्यः वसुः न विन्दते- निंदनीय मनुष्य धन नहीं प्राप्त कर सकता।

२८६।२ स्रेधन्तं रयिः न नशत्- हिंसकके पास धन नहीं पहुंचता।

२८३।३ पार्ये दिवि सुशक्तिः इत् देष्णं विन्दते- दुःखसे पार होनेके समय उत्तम शक्तिवाला ही धन प्राप्त करता है।

२८८।२ अश्वायन्तः गव्यन्तः वाजिनः, त्वा हवामहे— घोडे, गौवें और अन्न प्राप्त करनेकी इच्छावाले हम तुम्हारी भक्ति करते हैं।

२८९।१ ज्यायः कनीयसः सतः तत् अभि आभर- बडा भाई छोटे भाईको धनका भाग देवे।

२८९।२ सनात् पुरुवसुः, भरे भरे हव्यः असि— तू सदासे बहु धनवाला है और प्रत्येक स्पर्धामें, सहायार्थ बुलाने योग्य है।

१९०।१ नः वसु सुवेदा कृधि— हमें धन सुखसे प्राप्त होने योग्य कर ।

३२४ नृषु श्रवः धुः— मनुष्योंमें धनका धारण करो ।

३२७ अरमतिः अस्मे वसूयुः स्यात्- उत्तम बुद्धिवाला हमें धन देनेवाला हो ।

३१८ रातिषाचः नः वसूनि दासन्- दान देनेवाले हमें धन देवें ।

३१९ नः रायः पर्वताः आपः रातिषाचः औषधीः द्यौः वनस्पतिभिः सजोषा पृथिवी उभे रोदसी परिपासतः— हमारे धनका संरक्षण पर्वत, नदियां, औषधियों वनस्पतियोंके साथ पृथिवी करें ।

३३० धियंध्यै रायः धरुणं स्याम- धारण करने-योग्य धनके हम आधार बनें ।

३५३।४ ते नः युज्यं रयिं अवीवृधन्— वे वीर हमारे सुयोग्य धनको बढावें ।

३५८।१ महः अर्भस्य वसुनः विभागे देष्णं उवोचिथ— बडे अथवा अल्प धनके दान करनेके समय देने योग्य ही धन तुम देते हो ।

३५८।२ ते उभा गभस्ती वसुना पूर्णा— तुम्हारे दोनों हाथ धनसे भरपूर भरे हैं। देनेके समय कंजूसी नहीं है ।

३५८।३ सूनृता वसव्या न नियमते— तुम्हारी दानके लिये प्रवृत्त हुई वाणी किसीके द्वारा रोकी नहीं जाती ।

६६३।१ रायांसि नः आ यन्तु— बहुत धन हमारे पास आ जांय ।

३६३।२ रातौ रायः नः आयन्तु— दानके समय धन हमारे पास आजांय ।

३६४ नूनं भगः मनुष्येभिः हव्यः— निःसंदेह ऐश्वर्य मनुष्यों द्वारा पूजनीय है ।

३६४ पुरूवसुः रत्ना विदधाति— बहुत धनवाला रत्नोंका दान करता है ।

३६९ जास्पतिः रत्नं नः अनुमंसीष्ट— प्रजाका पालक राजा धन हमें देवे ।

३६९ उग्रः भगं अवसे जोहवीति— उग्र वीर धनको अपनी सुरक्षाके लिये प्राप्त करता है। पर **(अध अनुग्रः रत्नं याति)** जो वीर नहीं वह केवल धनके पास जाता है ।

३७७।३ अविदस्यं सदासां रयिं धात- अक्षय तथा सदा टिकनेवाले धनका धारण करो ।

३७७ मर्त्यानां कामं आसिन्वन् नक्षत्— मर्त्योंकी धन कामनाको प्रतिबंध न करो ।

३७८ नः उपमं अर्कं यच्छन्तु— हमें उत्तमसे उत्तम धन मिले ।

३७९ विदथ्या श्रुष्टिः सं एतु— संगठनसे मिलनेवाला धन हमें मिले ।

३७९ अस्य रत्निनः विभागे स्याम- इस रत्नवानके दानमें हम दानके अधिकारी हों ।

३८० द्युभक्तं रेक्णः दिदेष्टु- देवभक्तको धन मिले ।

३८८ प्रणेतः सत्यराधः भगः- उत्तम नेता सत्यप्रतिज्ञ भाग्यवान है ।

३८९ वयं इदानीं भगवन्तः स्याम— हम सब धनवान् बनें ।

३९० भग एव भगवान् अस्तु, तेन वयं भगवन्तः स्याम- भगदेव भाग्यवान है, उससे हम धनवान् हों ।

३९१ वाजिनः अश्वाः रथं इव, वसुविदं भगं अर्वाचीनं- जैसे बलवान घोडे रथको खींचकर लाते हैं, वैसे ही धनवान भगको-धनको-हमारे समीप लाया जावे ।

३९६ आतिथिः अग्निः वीरस्य रेवतः दुरोणे स्योनशीः अचिकेतत्, दमे सुप्रीतः इयत्यै विशे वार्यं दाति- अग्नि धनवान् वीरके घरमें सुखसे प्रकाशता है, तब वह उसके घरमें संतुष्ट होकर उस प्रजाको धन देता है ।

४०२।१ वसूनां ज्येष्ठं महः अद्य आगंतन- धनोंमें जो श्रेष्ठ महत्त्वका धन हो वही हमारे पास आज ही आ जावे ।

४०३ नः विक्षु आ दशस्य- हमारी प्रजाजनोंमें धन दो ।

४०३ वयं राया युजा— हम धनसे युक्त हों ।

४०९ सुरत्नः सविता हस्ते पुरूणि नर्या दधानः, अश्वैः वहमानः भूम निवेशयन् प्रसुवन्— उत्तम रत्नोंवाला सविता हाथमें मनुष्योंका हित करनेवाले बहुत धन धारण करके, घोडोंके रथसे आकर सबका निवास करावें और सबका ऐश्वर्य बढावें ।

४१०।१ हिरण्यया बृहन्ता सिमियेरा बाहू- सुवर्णसे भरे बडे विशाल तथा फैले हुए इस सूर्यके बाहू हैं जिनसे वह धन देता है।

४११ सहावा वसुपतिः वसूनि नः आ साविषत्- बलवान् धनपति हमें धन देता है। **उरूचीं अमतिं विश्रयाणः**— विस्तृत प्रगतिका आश्रय देता है।

४१२ **शुजिह्वं पूर्णगभस्तिं सुपाणिं सवितारं इमा गिरः, सः चित्रं बृहत् वयः अस्मे दधत्**- उत्तम भाषण करनेवाले हाथोंमें पूर्ण भर कर धन लेनेवाले उत्तम हाथवाले सविताकी यह प्रशंसा है कि वह विलक्षण और बडा धन हमें देवे।

४२० **सिन्धवः वरिवः नः दधानन**- नदियां हमें श्रेष्ठ धन दें।

४२२।२ **विभ्वभिः विभ्वः स्याम**- वैभववानोंके साथ रहकर हम वैभववान हों।

४२४।१ **देवासः ! नः वरिवः कर्तन**— हे देवो ! हमें धन दे दो।

४२४।१ **वसवः अस्मे इषं सं दधीरन्**- वसुदेव हमें अन्न अथवा इष्ट धन दे।

४३८ **तुरण्यवः आंगिरसः सवितुः देवस्य रत्नं नक्षन्त**- त्वरासे कार्य करनेवाले अंगिरस ऋषि सवितादेवसे रत्नोंको प्राप्त करते रहें।

४४१ **सुदासे पुरूणि रत्नधेयानि सन्ति, अस्मे धत्त**- उत्तम दाताके पास बहुत धन होगा, वह हमारे लिये दे दें।

४४२ **यत् त्वा ईमहे, तत् नः प्रतिजुषस्व**- जो तुम्हारे पास हम मागेंगे वह धन हमें दे डालो।

४४३ **गयस्फानः, गोभिः अश्वैः अजरासः स्याम**- घरका विस्तार करनेवाले होकर, गौओं और घोडोंसे युक्त होकर हम तरुण बनें।

५२४।१ **शुरुधः ऋतावानः नः सहस्रं विरदन्तु**- शोकको दूर करनेवाले सत्यनिष्ठ वीर हमें सहस्रों प्रकारके धन दें।

५२४।२ **चन्द्राः उपमं अर्कं नः आ यच्छन्तु**— आनन्द देनेवाले वीर पूजनीय धन हमें दें।

५२४।३ **नः कामं पूरयन्तु**- हमारी कामनाके अनुसार धन देकर कामना पूर्ण करें।

५२७।१ **त्मने तोकाय वरिवः दधन्तु**— अपने पुत्र पौत्रोंके लिये धन दें।

५३६।२ **देवगोपाः इषा सह मदेम**- देवों द्वारा सुरक्षित होकर हम अन्नसे आनंदित होंगे।

५४९ **अदब्धस्य व्रतस्य स्वराजः राजानः महः ईशते**- न दब जानेवाले नियमोंके पालक राजा धनके स्वामी बनते हैं। धन प्राप्त करते है।

५६५।३ **वसुमता रथविदा रथेन पूर्व्याभिः पथ्याभिः आयातं**- धनवाले तेजस्वी रथसे आप पूर्वके मार्गसे ही आइये।

५६६ **वां अवः शुभाकुः वसूयुः**- तुम्हारा संरक्षण सुख तथा धन देनेवाला है।

५६७।१ **वसूयुं अमृध्रां प्राचीं धियं सातये कृतं**— धन देनेवाली अहिंसक बुद्धिको दानके लिये सिद्ध करो।

५६९ **अस्मे रातः एष वयः निधिः हितः**— हमें दिया यह खजाना हमारे लिये सुखदायी हो।

५७१।१ **गव्याः अश्व्याः मघानि पृञ्चन्तः**— गो अश्व रूप धन तुम देते हो।

५७१।३ **राया मघदेयं जुनन्ति, मघवद्भ्यः अवस्था स्याम**— जो धनी धनका दान करते हैं उन दानियोंके साथ रहो।

५७२ **रत्नानि धत्तं**— रत्नोंका धारण करो।

६०७ **पांचजन्येन राया विश्वतः आयातं**— पंचजनोंके हित करनेवाले धनके साथ चारों ओरसे तुम आओ।

६२०।२ **चित्रं यशसं रयिं धेहि**— यशस्वी धन दे।

६२०।१-२ **महे सुवितायं बोधि, सौभगाय प्रयन्धि**- बडे सुख और सौभाग्यके लिये जाग, यत्न कर।

६२६।१ **गोमत् अश्वावत् वीरवत् पुरुभोजः रत्नं धेहि**— गौवें, घोडे, वीर और अन्न जिसके साथ है ऐसा धन दे।

६३१।३ **वसूनि वादमानाः** — धनोंको प्राप्त करते हैं।

६३३ दीर्घश्रुतं रयिं अस्मे दधानाः- प्रशंसित धन हमें दें।

६३७ अन्तिवामा वसूनि आभर, राधः चोदय— पास धन रखनेवाली वीरा धन भर देवे और धनको हमारे समीप ला देवे।

६३८ गोमत् अश्ववत् रथवत् इषं राधः नः दधती- गौवों घोडों और रथोंके साथ अन्न तथा धन हमें दो।

६३९ अस्मासु बृहन्तं ऋष्वं रयिं धाः- हमे बडा विशाल धन दो।

६४० अर्वाचा बृहता ज्योतिष्मता रथेन अस्मभ्यं वामं यक्षि- बडे तेजस्वी रथसे हमें धन दो।

६४७।३ सुकृते वसूनि विदधाति- सत्कर्मकर्ताको धन देता है।

६५२ अश्वावतीः गोमतीः वीरवतीः घृतं दुहानाः विश्वतः प्रपीताः भद्राः उषासः नः सदं उच्छन्तु— घोडे गौएं और वीरोंसे युक्त घृत दुहनेवाली परिपुष्ट कल्याण करनेवाली उषाएं हमारे घरको प्रकाशित करें।

६५४ वनस्वती उषा दाशुषे मयः रत्नं— धनवती उषा दाताको सुख तथा धन देती है।

६५७ दीर्घश्रुत्तमं चित्रं राधः आभर- प्रशंसनीय धन दें।

६५८ सूरिभ्यः अमृतं वसुत्वनं श्रवः गोमतः वाजान्— ज्ञानियोंको अपार धन, यश और गौओंवाले अन्न दो।

६६८।१ अस्मे माहि द्युम्नं सप्रथः शर्म यच्छन्तु- हमें बडा तेजस्वी विस्तृत धनवाला सुख मिले।

६७४।१ उभयस्य वस्वः सातये- दोनों धनोंका दान हो।

६८१।२ देवजूतः रयिः नः उपो एतु— देवों द्वारा सेवित धन हमें मिले।

६८२।१ विश्ववारं पुरुक्षुं वसुमन्तं रयिं धत्त— सबको स्वीकारने योग्य बहुत अन्नसे युक्त निवासक धन धारण करो।

६८२।२ शूरः अमिता वसूनि दयते— शूर अपरिमित धन देता है।

६८३ सुरत्नासः देववीतिं गमेम— उत्तम रत्न धारण करके यज्ञमें हम जांय।

६९५।३ कवितरः देवः गृत्सं राये जुनाति— ज्ञानी देव भक्तको धनके लिये प्रेरित करता है।

७११ ये ईशानासः गोभिः अश्वैः वसुभिः हिरण्यैः स्वः नः दधते, विश्वं आयुः अर्वद्भिः वीरैः पृतनासु सह्युः— जो स्वामी गौवें, घोडे, धन, सुवर्ण और सुख हमें देते है, वे पूर्ण आयुकी अवधितक अश्वारोही वीरोंके साथ युद्धोंमें शत्रुका पराभव करते है।

७१४ मार्डीकं नव्यं सुवितं ईट्टे— सुखदायी नवीन सुखकी-धनकी-प्रशंसा करते है।

७३६ भूरेः यवसस्य रायः क्षयन्तौ— बहुत धन पास रखनेवाले।

७३८ प्रमतिं इच्छमानः विप्रः पूर्वभाजं यशसं रयिं ईट्टे— विशेष बुद्धिकी इच्छा करनेवाला ज्ञानी प्रथम उपभोग लेने योग्य धनकी प्रशंसा करता है।

७५१ गोमत् हिरण्यवत् अश्ववत् वसु वनेमहि- गौओं, हिरण्य, घोडोंवाला धन प्राप्त करेंगे।

७५६ भुवनस्य भूरेः रायः चेतंती— पृथ्वीके सब धनोंको प्रेरणा करती है।

७६२।४ मघोनां राधः चोद— धनियोंके धनको प्रेरित कर।

७७०।१ सुवीर्यस्य रायः कामः— उत्तम पराक्रमसे प्राप्त धनकी कामना हम करते है।

७७६ दिव्यस्य पार्थिवस्य वस्वः ईशाथे, कीरये रयिं धत्त- दिव्य तथा पार्थिव धनके तुम स्वामी हो, कविको धन दो।

७८६ मनुष्ये दशस्या इरावती धेनुमती सुयवसिनी भूतं— मानवोंका हित करनेवाली तुम दोनों धान्यवाली, गौवाली उत्तम जौवाली हो।

७९१।२ सुवितस्य अश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य भूरेः रायः पर्च— सुविधाजनक घोडोंवाले तेजस्वी धनके संपर्क में रहो।

८६२ आयुधा संशिशानाः, हस्तयोः विश्वावसु दधानाः— शस्त्र तेजस्वी करते हैं, देनेके लिये हाथमें धन लेते है।

८६३ रत्नधाः वार्याणि वि दयते- रत्न धारण करने वाले धनोंका दान करते हैं ।

धन चाहिये

' धन चाहिये ' यह कामना यहां स्पष्ट दीख रही है । धनके विना कुछ भी सिद्ध नहीं होता यह बात सब जानते हैं । राज्य, व्यवहार, यज्ञयाग आदि सब यज्ञसे ही होते हैं । संन्यास भी लिया जाय तो भी उसको गेरुए कपडे और भोजन तो चाहिये । यह धनके विना नहीं हो सकता । जो पृथ्वीपर स्वर्गधाम स्वप्रयत्नसे लाना चाहते हैं उनके लिये तो धन चाहिये ही । उदाहरणार्थ वासिष्ठ गुरुकुल चलाते थे, और उसमें सहस्रों छात्र निःशुल्क पढते थे । उनका व्यय विना धनके कैसे चल सकता है, इसलिये ऋषिलोग धन चाहते थे और वह सच भी है ।

वसिष्ठ ऋषिका आश्रम राजा विश्वामित्रने लूटा था, इसी तरह हैहयराजाने जमदग्नि ऋषिका आश्रम लूटा था । ये राजा लोग आश्रम धनके लोभसे ही लूटते थे । इतने संपन्न ये आश्रम थे, इसलिये इन आश्रमोंसे सहस्रों छात्र निःशुल्क पढते थे । यदि धन न होता तो इतने छात्रोंकी पढाईकी सुव्यवस्था हो भी नहीं सकती थी । इसलिये राष्ट्रसेवाके अर्थ ऋषि लोग धन चाहिये यह इच्छा करते थे और वह योग्य ही थी ।

वसिष्ठके मंत्रमें ही देखिये ' धन चाहिये ' यह कामना स्पष्ट दीख रही है-

४६ विश्वा सौभगा नः दीदिहि ।
९५ द्रविणं भिक्षमाणा गिरः ।
१३५ रयिं आ वह ।
१४६ त्वं वसु वनिष्ठः ।
१८८ चित्र्यं रयिं नः आभर ।
१९० रायः कामः आगन् ।
त्वं वस्वः नः आशकः ।
१९८ इन्द्रः मघानि दयते ।
२२१ अयं वसूनां ईष्टे ।
२२१ वार्यस्य पूर्धि ।
२२४ वसूनां संभरणं नः आभर ।
२५२ मघानि ददतः ।
२७४ राये कृणुध्वं ।
२९० नः वसु सुवेदा कृधि ।
३२४ नृषु श्रवः धुः ।
३६३ राधांसि नः आयन्तु ।
रायः नः आयन्तु ।
३६४ नूनं भगः मनुष्येभिः हव्यः ।
३८९ वयं इदानीं भगवन्तः स्याम ।
४०३ वयं राया युजा ।
४१२ वसुभिः विश्वः स्याम ।
४२४ नः वरिवः कर्तन ।
५२४ नः कामं पूरयन्तु ।
५७१ रत्नानि धन्तः ।
६८१ रयिः नः उपो एतु ।

इस तरह धन चाहिये, धन हमारे पास आजाय, धन हमें प्राप्त हो, यह इच्छा इन मन्त्र भागोंमें स्पष्ट है । ये मन्त्रभाग इतने ही हैं ऐसा कोई न समझे । ऐसे मंत्र सैंकडों हैं । मनुष्य प्रत्येक कार्य करनेके समय देखे कि प्रत्येक क्षणमें धनकी आवश्यकता है, वह दूर नहीं हो सकती । विना धनके कुछ भी प्रगति नहीं हो सकती । इसलिये धनको छोडना असंभव है । यह धन लोभ नहीं, यह इस भूमिपर स्वर्गधाम स्थापन करनेकी आतुरता है । यदि व्यवहारमें धन चाहिये, तो उसको प्राप्त करना ही चाहिये । व्यर्थ त्यागका स्वांग करनेमें क्या लाभ होगा ? धनके स्वामी हम बनें, धनके गुलाम हम न बने । यह बात ध्यानमें धारण करनी चाहिये । धन हमारे ऊपर चढकर हमें दास न बनावे, पर हमारा प्रभुत्व धनपर सदा रहे, यह आवश्यक है देखिये-

५३ नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
५१ रायः ईशे ।
२८३ एतावत् अहं ईशीय ।
५४९ महः ईशाते ।
७७६ वस्वः ईशाथे ।

' धनके स्वामी हम बनें । हम धनके ईश बनें । हम धनके प्रभु बनें । ' यह इच्छा प्रशंसनीय है । धनके दास हम नहीं बनेंगे, परंतु धनके स्वामी बनकर यहां रहेंगे । हमारे आधीन धन रहेगा, धनके आधीन हम नहीं होंगे । जिस तरह ईशन करनेवाला, शासन करनेवाला अपनी इच्छासे और अपनी स्वतंत्रतासे, अपने प्रभुत्वसे अपनी वस्तुका प्रयोग और उपयोग

करता है, वैसा हम अपने धनका उपयोग करेंगे। हमें धनका यज्ञ करना है, धनकी गुलामी करनी नहीं है यह भाव यहां है और यह महत्त्वपूर्ण भाव है। धनका स्वामी होनेमें दोष नहीं है, धनका दास होनेमें गिरावट है। इस गिरावटसे बचना चाहिये और धनसे मिलनेवाले सब लाभ प्राप्त करने चाहिये और इससे व्यक्तिका और राष्ट्रका हित करना चाहिये। इसलिये कहा है—

५ सुवीरं स्वपत्यं प्रशस्तं रयिं दाः।
१२ अमृतस्य सुवीर्यस्य रायः ईशे।
११६ वीरवतः रयिः इशे स्पार्हा।
१२३ वीरवत् वार्यं दाति।
१३८ सुवीर्यं रत्नं दधाति।
२१२ सुवीरां इषं पिन्व।
७७० सुवीर्यस्य रायः कामः।

उत्तम वीरताके साथ रहनेवाला धन चाहिये। वीरतासे धनका संरक्षण होता है। वीरता न रहते हुए, जो धन मिलेगा, वह कोई डाकू लूटकर ले जायगा। उसका संरक्षण अपनी वीरतासे हम करें और कमाया हुआ धन दुष्टोंके आक्रमणसे सुरक्षित रखें। विना वीरताके धन मिला, तो वह अपने पास नहीं रहेगा। जहां वीरता होगी, वहीं धन स्थायी रहेगा। इस लिये धनी लोगोंको वीरता प्राप्त करनी चाहिये। 'वीर' का अर्थ 'पुत्र' भी है। (वरियति दुष्टान्) जो दुष्टोंको दूर करता है और अपने कुलका धन सुरक्षित रखता है वह वीर है और वही सच्चा पुत्र है। ऐसे पुत्र हों। नहीं तो घरमें धन बढता जाता है और संतान नहीं होती। उस धनका क्या उपयोग? इसलिये घरमें भरपूर धन भी चाहिये और वीर सुपुत्र भी घरमें औरस होने चाहिये। दत्तक नहीं। वसिष्ठ ऋषि दत्तक पुत्रको पुत्र भी नहीं कहते। वे दत्तक पुत्रकी निषेधपूर्वक निंदा करते हैं। यह धन तेजस्वी होना चाहिये—

६४ द्युमतीं इषं अस्मे ऐरयस्व।
२२५ द्युम्नं रत्नं अस्मे अधि धेहि।
३५३ नः युज्यं रयिं अवीवृधन्।
६३३ दीर्घश्रुत् रयिं अस्मे दधानाः।
६५७ दीर्घश्रुत्तमं राधः आभर।
६६८ अस्मे महि द्युम्नं सप्रथः शर्म यच्छन्तु।
६८१ देवजूतः रयिः नः उपो एतु।

'हमें तेजस्वी धन चाहिये' अर्थात् जिससे हमारी तेजस्विता बढेगी ऐसा धन हमें चाहिये। किसी दुष्टमार्गसे मिला हुआ धन हमें नहीं चाहिये परंतु वह (युज्यं रयिः) योग्य धन, योग्यता बढानेवाला धन हमें चाहिये। (दीर्घश्रुत्, दीर्घश्रुत्तमः रयिः) विशेष यश फैलानेवाला धन हमें चाहिये। हमारा यश चारों दिशाओंमें फैले, वह धन प्राप्त करने योग्य हो, तेजस्विता बढानेवाला हो, ऐसा श्रेष्ठ धन हमें चाहिये।

धनके अन्दर किन किन पदार्थोंका समावेश होता है यह अब देखिये—

५ सुवीरं स्वपत्यं रयिं।
५५ स्पृहाय्यः सहस्री रयिः।
१२३ वीरवत् यशः वार्यं च।
१३८ सुवीर्यं रत्नं।
१४६ विश्वाः वामाः सुदुघा गावः, अश्वाः।
१४७ पिशा, गोभिः अश्वैः राये अभिशिशीमहि।
२१६ वीरवत् गोमत् नः धातु।
२३८ गोमत् अश्ववत् रथवत् व्यन्तः
२५६ वाजयुः गव्युः हिरण्ययुः नः भव।
२७२ दुर्नशः गयं आभर।
३९१ वाजिनः अश्वाः रथं भगं।
४४३ गयस्फानः गोभिः अश्वैः अजरासः स्याम।
५७१ गव्या अश्वया मघानि पृञ्चन्ते।
६२६ गोमत् अश्ववत् वरिवत् पुरुभोजः रत्नं धेहि।
६३८ गोमत् अश्ववत् रथवत् इषं राधः।
६५२ अश्वावतीः गोमतीः, वीरवतीः।
७२१ गोभिः अश्वैः वसुभिः, हिरण्यैः, अर्वद्भिः वीरैः स्वः नः दधते।
७५१ गोमत् हिरण्यवत् वसु अश्ववत् वनेमहि।
७८६ इरावती धेनुमती सुयवसिनी भव।
७९२ अश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य भूरेः रायः पर्च।

'उत्तम वीरोंका सहाय्य, उत्तम औरस वीर संतान, यश देनेवाला, स्वीकार करने योग्य, गौवें, घोडे, रथ, सुवर्णके अलंकार, उत्तम (दुर्नशं गयः) पक्का घर, विशाल घर, उत्तम (अजरासः) तारुण्य, (पिशा) सुंदर रूप, (पुरुभोजः) पर्याप्त खानपानकी सुविधा, विशेष तेजस्विता आदि देनेवाला

धन चाहिये। इसको (वार्य, वरणीयं) स्वीकार करने योग्य, प्राप्त करने योग्य धन कहते है। ऐसा धन चाहिये। (स्पृहाय्यः) इच्छा करने योग्य धन हो, केवल पैसा नहीं, परंतु वर्णन करने योग्य धन चाहिये। धनोंमें (वामा) उत्तम पतिव्रता स्त्री, (गयः) घर, दुधारू गौवें, घोडे, रथ (आजकलके समयके अनुसार मोटरें,) उत्तम अन्न, सुंदर रूप, ओजस्वी तारुण्य आदिका समावेश होता है। घोडोंमें अश्व और अर्वा ये दो भेद है। अरब देशके घोडेको अर्वा (अरब, अर्वा) कहते हैं और अश्व दूसरा घोडा, देशी घोडा है। इन धनोंमें सुंदर रूप, सुडौल शरीर, तारुण्य, वृद्धावस्थामें भी टिकनेवाला तारुण्य, उत्तम पक्का घर, उत्तम पुष्टिदायक अन्नका समावेश होता है। यह सब ऐश्वर्य चाहिये।

यहां गौवें, घोडे, रथ तो हैं, पर हाथी नहीं है। यह विचारणीय बात है। हाथी तो वेदमें है।

मृगा इव हस्तिनः खादथा वना। ऋ. १।६४।७

' हाथी वनोंको खाते हैं ' नोधा गौत्तम ऋषिका यह मन्त्र है। पर धनमें हाथीका निर्देश वेदमें नहीं है। गौवें घोडे रथ घर पुत्र आदि हैं, पर हाथी नहीं। आधुनिक संस्कृत वाङ्मयमें **' गजान्त-लक्ष्मी '** का वर्णन है। जहां हाथी हैं ऐसा धन। लक्ष्मीके चित्रमें हाथी अवश्य रहते हैं। हाथीपर सुवर्णकी अम्बरी रखकर उसमें राजाका बैठना ऐश्वर्यका लक्षण समझा जाता है। इन्द्रके पास भी ऐरावत है। पर वेदमें ऐरावतका अर्थ (इरा-वान्) जलपूर्ण मेघ ऐसा है। अस्तु। वेद मंत्रोंमें धन वर्गमें हाथीकी गणना नहीं है।

' सहस्री रयिः ' अर्थात् हजारों प्रकारका धन है ऐसा अनेक बार वेदमें कहा है। बल, बुद्धि, चातुर्य, विद्या, अधिकार, आरोग्य, उत्तम मित्र, मान्यता, यश आदि अनेक प्रकारके धन होते है। वे सब धन चाहिये। जिससे मनुष्य धन्य होता है उसका नाम धन है। मनुष्य अनेक प्रकारोंसे धन्य होता है, वे सब धन हैं। इसलिये सहस्रों प्रकारके धन हैं ऐसा कहा है। ये सब धन मनुष्यको चाहिये।

धनका संरक्षण

धन प्राप्त करना सहज बात है, परंतु उसका संरक्षण करना कठिन है। इसलिये वेदमंत्रोंमें धनके संरक्षणका भी उपदेश किया है—

५ यातुमावान् यावा यं रयिं न तराति।

' दुष्ट डाकू जिसको लूट नहीं सकता ' ऐसा धन चाहिये। अपने धनका इतना संरक्षण होना चाहिये।

२३५ परिवृतं रायः।

' गुप्त धन ' अर्थात् सुरक्षित धन होना चाहिये।

३२९ नः रायः पर्वताः आपः औषधीः वनस्पतिः द्यौः पृथिवी परिपासतः।

हमारे धनका संरक्षण पर्वत, जलप्रवाह नदियां, औषधि, वनस्पतियां, पृथिवी, आकाश ये करते है। ' इससे धनकी ठीक कल्पना आसकती है। पर्वत और पर्वतोंपर बनाये कीलोंसे राष्ट्रका संरक्षण होता है। जल प्रवाहों और नदियोंसे भी राष्ट्र और ग्रामोंका संरक्षण होता है, औषधि वनस्पतियोंसे शरीरके आरोग्यरूपी धनका संरक्षण होता है। पृथिवी और आकाश ये भी राष्ट्ररूपी धनके संरक्षक है। यह वर्णन राष्ट्ररूप धनका विशेषतया है। अन्य धन गौण अर्थसे ले सकते है।

४९१ सहावा धनपतिः।

शत्रुका पराभव करनेवाला धनी हो। अपनी शक्तिसे वह शत्रुका पराभव करे। ऐसा धनी होगा तो वह अपना धन सुरक्षित रख सकता है।

५ रयिं धिया नः दाः

' धनको बुद्धिके साथ हमें दो ' अर्थात् हमें बुद्धि भी चाहिये और धन भी चाहिये। बुद्धि न रही और केवल धन ही रहा, तो हीन मार्गसे जाकर धनका नाश करेगा। इसलिये धनके साथ बुद्धि चाहिये। कितनी सावधानीकी सूचना है देखिये।

७२ बुध्न्या वसूनि।

' बुनियादी धन है ' क्योंकि प्रत्येक कर्ममें प्रथम धन चाहिये। धनके विना कोई व्यवहार हो ही नहीं सकता। सब कर्मोंका इस तरह आधार धन है।

९२ राये पुरंधिः

' धनके लिये विशाल बुद्धि चाहिये। ' पुरंधीका अर्थ विशाल बुद्धि ऐसा भी है और (पुरं धारयते सा) नगरके संरक्षणके लिये जो उपयोगी होती है वह धारणावती बुद्धि पुरंधि कहलाती है। यह जनताका संरक्षण करनेवाली विशाल बुद्धि धनके साथ चाहिये।

२८५ तरणिः पुरंध्या युजा वाजं सिषासति ।

' (तरणिः) त्वरासे कार्य करनेवाला, निर्दोष कार्य करने' वाला, (पुरंध्या युजा) विशाल बुद्धिसे युक्त होकर, धन बल तथा अन्न प्राप्त करता है । धारणावती बुद्धि धनके साथ होनेसे बडे लाभ हो सकते हैं ।

६०७ पाञ्चजन्येन राया विश्वतः आयात

' पञ्चजनोंका हित करनेवाले धनके साथ चारों ओरसे यहां आओ । ' ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद इन पांचों मनुष्योंका हित करनेवाला धन राष्ट्रमें बढना चाहिये । जो धन राष्ट्रमें होगा वह इन पञ्चजनोंके हितके कार्यमें लगाना चाहिये ।

९१ रत्नधेयाय विश्वान् देवान् यक्षि ।

रत्नोंका धारण करनेके लिये सब देवोंके उद्देश्यसे यज्ञ कर । यज्ञका उद्देश्य भी धन प्राप्ति है । यज्ञमें धन लगता है, धनके व्ययसे ही यज्ञ होता है, वह धन दशगुणित होकर यज्ञकर्ताके पास आ जाता है । इस तरह यज्ञ भी धनके उपार्जनके लिये होता है । यज्ञसे विश्व कल्याण होता है, उससे विश्वका सुख बढता है, आरोग्य बढता है, हृष्टि पुष्टी बढती है । उसके पश्चात् वे मनुष्य अनेक पुरुषार्थ करते हैं और धनका उपार्जन करते हैं ।

तीन प्रकारका धन

१८८ पूर्वः अपराय शिक्षन्,
कनीयसः ज्यायान् देष्णं,
दूरं अमृतः पर्यासीत् ।

धन तीन प्रकारका होता है, (१) जो वरिष्ठ कनिष्ठको देता है, पितासे पुत्रको वंश परंपरया प्राप्त होता है, (२) कनिष्ठ श्रेष्ठको देता है, जिस तरह प्रजा राजाको कर के रूपसे देती है, (३) तीसरा धन वह है कि दूर देशमें जाकर वहां जीवित रहकर, व्यवसाय करके जो प्राप्त किया जाता है, और इस तरह इकठ्ठा होता है ।

२६८ रायस्कामः पुत्रः पितरं ।

' धनकी कामना करनेवाला पिताके पास धन मागता है । ' और पिता पुत्रको धन देता है । यह आनुवंशिक धन है । इसपर पुत्रका अधिकार जन्मसे है । परंतु जब धनवान पुत्रहीन होकर मर जाता है, तब उसका धन राजा, अथवा शासन संस्था अपने पास ले लेती है । क्योंकि अन्तिम धनपर अधिकार सब प्रजाजनोंका है । (६०७ **पाञ्चजन्येन राया**) पञ्चजनोंका धन है । पञ्चजनोंके हितके लिये सब धन है अतः पुत्रहीनका धन शासक लेता है और उसका उपयोग पञ्चजनोंके हित करनेके कार्योंमें करता है । धन किसी भी व्यक्तिका नहीं है, क्योंकि व्यक्ति मरती है, व्यक्ति स्थायी नहीं है । व्यक्तियोंका संघ, समाज स्थायी है । इसलिये समाजका-पञ्चजनोंके संघका धन है । इसलिये पुत्रहीनका धन राजा लेता है । इतना ही नहीं परंतु प्रजासे कर लेकर राजा अपना कोश भर देता है । वह राजाका अधिकार इसलिये माना गया है कि धन पञ्चजनोंका है । राजा पञ्चजनोंके पालन कार्यमें वह लगाता है । राजा कर लेनेका अधिकारी इसलिये है ।

राजा प्राप्त धनका व्यय प्रजापालनके कार्योंमें ठीक तरह करता है वा नहीं, यह सभा, समिति आदि पञ्चजनोंकी सभाएं देखें और राजाको योग्य रीतिसे व्यय करनेके लिये उसे बाधित करें ।

१९१ वस्वी शक्तिः स्वस्ति

' धनकी शक्ति बडी है ' यह जानना चाहिये और इस धन शक्तिको अपने प्रभुत्वमें रखना चाहिये । यदि वह धनशक्ति हमारे सिरपर बैठ जाय, तो वही शक्ति हमारा हित करनेके स्थानपर हमारा ही घात करेगी । इसलिये जिसके पास धन आता है वह अत्यंत दक्ष रहे, सावध रहे । धनका दास या गुलाम न बने परंतु धनका स्वामी बनकर रहे ।

धनवान्

२३ यं सूरिः अर्थी पृच्छमानः एति स मर्तः रेवान्- ज्ञानी और धनकी इच्छा करनेवाला जिसके विषयमें पृच्छा करता है वह मनुष्य धनवान् है ।

१३३।१ मघवानः यन्तारः— धनवान् दाता हों, संयम रखें ।

१३३।३ मघवानः जनानां गवां ऊर्वान् दयन्त— धनी लोग लोगोंको गौओंके झुंडोंका प्रदान करें ।

विद्वान ज्ञानी धनकी इच्छा करता हुआ जिसके पास जाता है तथा जिसको आदरसे पूच्छता है उसको धनी कहते हैं । धनीकी यह व्याख्या है । केवल धन पास होनेसे धनी नहीं कहलाता, परंतु जो धनका दान ज्ञानीके ज्ञान प्रसारके कार्यके लिये करता है, अतः ज्ञानी जिसके विषयमें पूछते रहते हैं,

आदरसे पूछते हैं वह सच्चा धनी है। धनी संयमी हो, अपने इंद्रियोंका संयम करे, अपने भोगोंका संयम करे। और (जनानां) लोगोंकी भालाईके लिये गौवोंके झुण्ड तथा अन्यान्य प्रकारके धन देता रहे।

२५२ सूरिभ्यः उपमं वरूथं यच्छ।

' ज्ञानियोंको उपमा देने योग्य श्रेष्ठ धन दो। ' क्योंकि वे ही सत्पात्र और धनका दान लेनेके लिये योग्य अधिकारी हैं। धनकी शक्ति बडी होनेसे उसका प्रत्येक मानव अच्छी तरह उपयोग नहीं कर सकता। इसलिये अज्ञानीके हाथमें गयी धन-शक्ति अच्छा कार्य करनेकी अपेक्षा बुरा घातक परिणाम ही करेगी। इसालिये कहा है कि (सूरिभ्यः वरूथं यच्छ) ज्ञानियोंको ही श्रेष्ठ धन दो। अज्ञानियोंको धन न दो। धनका विशेष दान करना हो तो उस समय इस तरह विचार करना चाहिये कि इस धनको मैं किस विद्वानको दूं कि जो इसका उत्तम उपयोग करके जनताका भला अधिकसे अधिक कर सकेगा। धनका उपयोग जनहित करना है। वह जिसके पास धन जानेसे होगा वह उस धन लेनेका अधिकारी है।

शस्त्र-तलवार

४५ रोचमानः सुक्रतुः, पूता स्वधितिः इव, निः गात्— स्वच्छ खड्गके समान चमकनेवाला अग्नि प्रकाशित हुआ है। यहां तलवारकी उपमा अग्निको दी है। अग्नि जैसा लकडियोंसे बाहर आकर चमकता है, वैसा खड्ग म्यानसे बाहर आकर चमकता है।

'पूता स्वधितिः' तलवार अथवा खड्ग स्वच्छ रहना चाहिये। शस्त्र जितना स्वच्छ रहेगा उतना वह अच्छा कार्यकर सकेगा। प्रत्येक शस्त्रके विषयमें यही नियम है। धनुष्य बाण हुआ, तो धनुष्य, उसकी डोरी तथा बाण स्वच्छ, मल रहित होने चाहिये। परशु, खड्ग, तलवार, स्फ्य, कृपाण, कुल्हाडा, भल्ल, भाला आदि सभी शस्त्र तेज चाहिये, साफ किये होने चाहिये। ये शस्त्र स्वच्छ न रहें तो कार्य नहीं कर सकेंगे।

अग्निकी ज्वालाके समान सब शस्त्र स्वच्छ रहने चाहिये ऐसा इस मंत्रमें कहा है। जिसकी धारा सुतीक्ष्ण होती है वही शस्त्र युद्धमें काम दे सकता है। सैनिकोंके शस्त्र सुतीक्ष्ण रखने रखवानेका कर्तव्य पुरोहितका है। मंत्र ९०५-९०६ देखो। इनमें पुरोहित कहता है कि जिनका मैं पुरोहित हूं उनके सैनिकोंके शस्त्रास्त्र मैं अत्यंत तेज रखता हूं। जिनसे शत्रु परास्त होंगे और अपना विजय होगा। शत्रुके शस्त्रसे अपने शस्त्र अधिक तीक्ष्ण होने चाहिये, तब अपना विजय होगा।

आर्य और दस्यु

६२ त्वं आर्याय उरु, ज्योतिः जनयन्, दस्यून् ओकसः आजः— तू आर्योंके लिये विशेष प्रकाश करता है और दस्युओंको घरसे उखाड देता है।

६८ अक्रतून् ग्रथिनः मृध्रवाचः अश्रद्धान् अवृधान् अयज्ञान् अयज्यून् दस्यून् पणीन् अपरान् चकार— सत्कर्म न करनेवाले, कुटिल, असत्यभाषी, श्रद्धाहीन, हीन अवस्थामें पहुंचे, यज्ञ न करनेवाले, दूसरोंको भी यज्ञसे हटानेवाले, कुटिल रीतिसे व्यापार व्यवहार करनेवाले दस्यु-लुटेरोंको वह प्रभु अधिक हीन दीन बनाता है। योग्य राजा दुष्टोंको हीन अवस्थातक पहुंचा देता है।

आर्योंके लिये प्रकाशका मार्ग है और चोर, डाकुओंके लिये इसके विपरीत अवस्था प्राप्त होती है। (अक्रतु) सत्कर्म न करनेवाले, (ग्रथी) कुटिल, जटिल, (मृध्रवाक्) असत्यभाषी, (अश्रद्ध) श्रद्धारहित, (अवृध) हीन अवस्थामें रहनेवाले, (अयज्ञ) यज्ञ स्वयं न करनेवाले, (अयज्यु) यज्ञ करनेवालोंको यज्ञ कर्मसे रोकनेवाले (पणि) कुटिल रीतिसे व्यापार व्यवहार करनेवाले, (दस्यु) चोर डाकू लुटेरे जो होंगे उनको (अ-परान् चकार) नीच अवस्थामें पहुंचा दो। ऐसे काम वे न करें ऐसा करो। ये दस्यु हैं।

काली प्रजा

५९ हे वैश्वानर ! त्वत् भिया असिक्नीः विशः भोजनानि जहातीः असमना आयन्, यत् पूरवे शोशुचानः, पुरः दरयन् अदीदेः— हे सबके नेता वीर ! तुम्हारे भयसे काली प्रजा अपने भोजनोंको छोडकर, व्यग्र चित्तसे इधर उधर भटकती है, जिस समय तुमने नागरिक जनोंके हितके लिये, शत्रुके नगरोंको तोड दिये। यहां काली प्रजा शत्रु है और पुरु प्रजा दूसरी है एसा प्रतीत होता है।

' अ-सिक्नीः विशः ' अश्वेत प्रजाजन, काले वर्णके लोग थे यहां पराजित हुए, वे अपने भोजन छोडकर इधर उधर भागने लगे ऐसा वर्णन है। दूसरी प्रजा (पूरवे, पुरु) है। पुरवासी लोगोंको पुरु कहते हैं। नागरिक लोग ये पुरु है

जिनका नाम ' पौर ' भी है। (असिक्नी विशः) काली प्रजाके भी नगर थे, वे नगर, वे पुरियाँ (पुरः दरयन् अर्दादेः) तोडी गयीं, उनका नाश किया गया। और वे अपने तैयार हुए भोजन वहीं फेंककर इधर उधर भागने लगे। यहां किसी युद्ध प्रसंगका काल्पनिक अथवा सत्य वर्णन है। जिस युद्धमें काली प्रजाका पूर्ण पराभव हुआ और आर्योंका विजय हुआ है। आर्य वीरोंने काली प्रजाके नगर तोडे, उनको भगाया, उन नगरोंपर कब्जा किया।

कीलोंसे सुरक्षा

४३ आयसीभिः शतं पूर्भिः अमितैः महोभिः नः पाहि— सेकडों लोह दुर्गोंसे और अपरिमित सामर्थ्योंसे हम सब नागरिकोंको सुरक्षित करो। '**आयसी पूः**' का अर्थ कीला, लोहेका बना अथवा पत्थरोंकी दीवारोंसे बना दुर्ग। 'पूः' का अर्थ 'नगरी' है जिसमें नागरिकोंके संपूर्ण सुखसाधन भरपूर रहते हैं। ऐसी नगरियोंका संरक्षण दुर्गोंसे करना चाहिये।

१२५ अनाधृष्टः नः नृपीतये शतभुजि मही आयसी पूः भव— शत्रुओंसे आक्रान्त न होकर हमारे मनुष्योंके संरक्षणके लिये सेकडों साधनोंसे सुरक्षित बडी विस्तृत लोह प्राकारसे सुराक्षित कीलोंवाली नगरी हो।

१८९ अद्रिवः— कीलोंमें सुराक्षित रहनेवाला। पर्वतपरके कीले जिसका संरक्षण करते हैं।

२२४।१ दुर्गे मर्तासः नः अमन्ति, तान् अमित्रान् निश्नथिहि— कीलोंमें रहकर जो हमारा नाश करते हैं उन शत्रुओंका नाश कर।

७५५ आयसी पूः— लोहेके कीलेकी नगरी।

इन मंत्रोंमें कीलोंका वर्णन है। नगरका संरक्षण करनेके लिये कीलोंकी रचना करनी चाहिये। ऐसे सुरक्षित नगर हों। तथा राष्ट्रके संरक्षणके लिये भी कीलोंकी उत्तम व्यवस्था करना योग्य है। ऐसे सुराक्षित नगर हों, जो शत्रुके आक्रमणसे भयसे विमुक्त हों।

दान

१६९ विभक्ता शीर्ष्णे शीर्ष्णे विवभाज— दान देनेवाला श्रेष्ठसे श्रेष्ठ विद्वानको दान देवे।

१७१।३ सुष्वितराय वेदः प्रयन्ता— उत्तम यज्ञकर्ताको धन दान करो।

पापमय दान

१७७।१ परादै अघाय मा भूम— (पर आदा) दूसरोंसे लेकर जीवन निर्वाह करनेका पाप करनेवाले हम न हों। हमें ऐसी हीन स्थिति कभी प्राप्त न हो।

धनदान

१८०।१ मघानि ददतः अस्मद्र्यंचः— धनका दान करते हुए वे हमारी ओर आ रहे हैं।

१८३।४ दाशुषे मुहुः वसु दाता अभून्— दाताको वारंवार धनका दान करता है।

१८९।१ प्रियः सखा ते ददाशत्— प्रियमित्र तुझे दान देता है।

२१४।३ त्वं धीभिः वाजान् विदयसे— तू बुद्धियोंके साथ अन्नोंका दान देता है।

२१५ देवत्रा एकः मर्तान् दयसे— देवोंमें एक ही देव मानवों पर दया करता है। धनका दान देनेकी दया करता हैं। धन देता है।

२१७ वसूनि ददः— धनका दान कर।

२२६ त्वावतः अवितुः रातौ— तेरे अनुकूल रहकर संरक्षण करनेवालेके दान हमें मिलें।

२४४ मघानि ददः— धनोंका प्रदान कर।

२५५ सुदानवे सत्यराधसे उक्थं शंस— उत्तम दानी और सत्यके लिये धन देनेवालेकी प्रशंसा कर।

२७५ सुदासः रथं न किः परिआस— उत्तम दाताके रथको कोई घेर नहीं सकता।

५११ सुदासे उरुं लोकं— उत्तम दाताके लिये विस्तृत क्षेत्र मिले।

६४९।३ सनये धियं धाः— दानकी बुद्धिका धारण कर।

दान किसको देना चाहिये? (शीर्ष्णे शीर्ष्णे) श्रेष्ठ विद्वानको ही दान देना चाहिये। शिर स्थानमें विराजनेवाले ज्ञानीको दान देना चाहिये। दान (अघाय मा) पाप बढानेके लिये दान न हो। जो पाप करता है उसको दान नहीं देना चाहिये।

२१७ वसूनि ददः।

२४४ मघानि ददः।

धनोंका दान करो। यज्ञके लिये, शुभ कर्म करनेवालोंके लिये

धनका दान करो। सदा (सनये धियं धाः) दान देनेकी बुद्धि अपने अन्दर रखो। क्योंकि सब धन समाजका है, इसलिये जितना उस धनका उपयोग समाज हितके लिये हो सकेगा, उतना उसका अधिक सार्थक होगा।

३१४ अ-यातु, ऋतेन साधन् , देवान् व्हयामि— हिंसारहित, सत्यसे साधन करके, देवोंको बुलाता हूँ।

३७२ ऋतं यजाति— ऋत सत्यका यजन करता है।

५११।१ यः वेदिं अवयजेत, स रिपः चित्— जो वेदीका अपमान करता है, वह दुर्गतिको प्राप्त होता है।

६८५ देवहूतये स्पर्धन्ते— यज्ञके अर्थ स्पर्धा करते हैं।

यज्ञका स्वरूप देवपूजा-संगतिकरण-दान है। विबुधोंका सत्कार, संघटन करना और निर्बलोंकी सहायता, ये त्रिविध कर्म यज्ञमें होते हैं। ' अ-यातुः ' दूसरोंको यातना न देना, इतना ही नहीं परंतु दूसरोंको सहायता पहुंचाना यह यज्ञका उद्देश है। ' अ-ध्वर ' अकुटिलता, हिंसा न करना, तेढी चालसे न जाना आदि यज्ञमें होते हैं। ' ऋत और सत्य ' ये यज्ञके अंग हैं। सरलता और सत्यनिष्ठा ये यज्ञके मुख्य अंग है। " देवहूति " देवोंको बुलानेमें स्पर्धा यज्ञमें होती है। देव आकर यहां बैठें इतनी पवित्रता यज्ञ स्थानमें होनी चाहिये। ये यज्ञके सामान्य लक्षण है। शेष देखा जाय तो अनेक प्रकारके यज्ञ हैं। उनका संपूर्ण वर्णन विशेष स्थानपर किया जायगा। यहां इतने लक्षणोंका उल्लेख ही पर्याप्त है।

सुगंधी हवन

१८ नः सुरभीणि हव्या प्रतियन्तु— हमारे सुगंधित हविर्द्रव्य प्रत्येक देवताको प्रिय हों।

सुगंधित हवनसे प्रसन्नता होती है, यह अनुभव हरएकको है। सुगंधी हवनसे प्रसन्नचित्त होता है, दुर्गंधियुक्त पदार्थोंका हवन करनेसे मन अप्रसन्न होता है, मिरचके हवनसे खांसी आती है ये अनुभव सबको मालूम है। हवनमें ये ही विचार मुख्य स्थान रखते हैं।

प्रायः जो औषधियां और वनस्पतियाँ जिस रोगपर प्रयुक्त होती हैं उनका हवन उस रोगका प्रतिकार करता है। कई हवन ऐसे भी हैं कि जो शत्रुके राज्यमें किये जाते हैं जिनसे अनेक रोग वहां बढ जाते हैं। इस विषयका वर्णन आर्य चाणक्यके अर्थ शास्त्रमें किया है। जैसे रोग बढानेवाले हवन हैं वैसे ही रोगोंको दूर करनेवाले भी हवन हैं।

इस विषयमें प्रयोग करके देखना चाहिये और निश्चित कार्य-क्रम नियत करना चाहिये। हवनसे पदार्थोंके परमाणु शरीरमें श्वसन नलिकासे जाते हैं, वहांकी श्लेष्मल त्वचापर वे चिपकते है और शरीरमें जाकर इष्टानिष्ट परिणाम करते हैं।

प्रशंसनीय कर्म

१८२।२ नर्यः यत् करिष्यन् अपः चाक्रिः— मानवोंका हित करनेवाला जो कर्म करना चाहता है, वह कर छोडता है।

१९५।१ नर्याणि विश्वा अपांसि विद्वान्— मानवोंका हित करनेके सब कर्मोंको जो जानता है वह विद्वान् कहलाता है।

२११ यः विश्वानि शवसा ततान— जो सब कर्मोंको अपने बलसे फैलाता है।

३८२ राजानः ऋतस्य नेतारः अपः धुः— राजा और राजपुरुष सत्यके प्रवर्तक होकर लोगोंके कर्मोंको आश्रय देते हैं।

४१० सूरः अस्मै अपस्यां अनु अदात्— सूर्य (ज्ञानी) मनुष्यको कर्म करनेकी प्रेरक बुद्धि देता है।

५१० तुरासः देवहेडनं कर्म मा— शीघ्रतासे देवोंका निरादर करनेवाला कर्म कोई न करें।

५१५।३ सूर्यः विश्वा भुवना अभिचष्टे— सूर्य सब भुवनोंका निरीक्षण करता है।

५१५।४ सः मर्त्येषु मन्युं आ चिकेत— वह सूर्य मर्त्योंके मनमें जो भाव है उसे जानता है।

६४९।१ देवं देवं राधसे चोदयन्ती— प्रत्येक विबुधको सत्कर्म करनेकी प्रेरणा देती है।

सूनृता ईरयन्ती—सत्यभाषणकी प्रेरणा करती है।

५२२।४ कर्तृभिः क्रत्वा कृतः सुकृतः भूत्— पुरुषार्थ प्रयत्न करनेवाला सत्कर्म करता है।

' **नर्यः** ' वह है कि जो सब मानवोंके हित करनेके लिये प्रशस्त कर्मोंको करता है। ' **पाञ्चजन्य** ' पदका भी यही अर्थ है। पञ्चजनोंका हित करनेवाला पाञ्चजन्य कहलाता है। सार्वजनिक हितका कर्म करनेवाला यह इसका अर्थ आजकी भाषामें है।

१९५ नर्याणि विश्वा अपांसि विद्वान् सब मानवोंके हित करनेके लिये जो प्रशस्त कर्म करने होते है, उन कर्मोंका यथावत् जाननेवाला ' विद्वान् ' कहलाता है। ये ' **ऋतस्य नेतारः** ' सरलताके मार्गके संचालक होते है।

५१० **तुरासः देवहेडनं मा-** त्वरासे कर्म करते हुए देवोंके निरादर होने योग्य कर्म न कर। प्रत्युत देवोंका आदर होने योग्य ही कर्म कर। इसमें प्रमाद न हो।

' **सुकृतः भूः** ' सुकर्म कर, सत्कर्म कर, प्रशंसित कर्मोंको कर। इसमें प्रमाद न हो। सदा अपने हाथसे प्रशंसित ही शुभ कर्म होते रहें। कभी हानिकारक कर्म न हों।

हिंसारहित कर्म

९८।१ अध्वरस्य महान् प्रकेतः असि— हिंसा कुटिलता विरहित कर्मोंका महान् सूचक तू बन।

१३८।१ देवाः प्रचेतसं अध्वरस्य होतारं अकृण्वत- देवोंने विशेष ज्ञानी तेजस्वी वीरको कुटिलतारहित प्रशस्त कर्म करनेके लिये निर्माण किया है।

६३१।४ देवानां व्रतानि न मिनन्ते, अमर्धन्तः— देवोंके कर्मोंको कोई बिगाडते नहीं, हिंसित नहीं करते। देवोंके प्रशस्त कर्म चलते ही रहते है।

' अ-ध्वर ' पदका अर्थ ' हिंसारहित, कुटिलतारहित, जिसमें तेढापन नहीं ऐसा कर्म। ' (ध्वरा हिंसा तदभावो यत्र स अध्वरः) जिसमें तेढापन नहीं, हिंसा नहीं, छल, कपट, घात-पात नहीं ऐसा उत्तम प्रशंसा योग्य कर्म। यज्ञका यह महत्त्व-पूर्ण नाम है। यज्ञके अर्थ पूर्व स्थलमें ' सत्कार-संघटन-दान ' दिये हैं, उनके साथ ' अहिंसा-सरलता-अकपट ' का समावेश करना योग्य है। इससे यज्ञका स्वरूप विशेष रूपमें प्रकाशित होगा।

विस्तृत कार्यक्षेत्र

३५४।१ महीं अरमतिं प्र कृणुध्वं— पृथ्वीपर कार्य-क्षेत्र अपने लिये विशाल बनाओ।

' **अरमति** ' पद यहां महत्त्वपूर्ण है। ' **अ-रमति** ' जहां रममाण होना ही केवल नहीं हैं, भोग भोगना ही केवल नहीं, जहां केवल मजा उडाना ही नहीं वह ' अ-रमति ' है। भोगोंपर आसक्ति न रखकर कर्तव्यपर बल देना यह इसका भाव है। दूसरा अर्थ इसका ऐसा है— ' **अर-मति** ' प्रगति करनेमें जो बुद्धि होती है। (ऋच्छति प्रगच्छति इति अरं, तत्र मतिः) जो प्रगति करता है, अभ्युदय या उन्नति करता है उसका नाम ' अर ' है, ऐसे अभ्युदयके कर्मोंमें जो अपनी मतिको लगाता है वह अरमति है।

अपनी बुद्धिको अभ्युदय निश्रेयसके, परम कल्याणके कार्यमें लगाना चाहिये। मनुष्य हीन, तुच्छ, दीन कार्योंके लिये अपनी मतिको न लगावे, परंतु श्रेष्ठ प्रगति करनेवाले कार्योंमें ही लगावे। यह इसका तात्पर्य है।

सुख, शान्ति और कल्याण

३३१।३ अस्मे प्रिया भद्राणि सश्चत— हमें प्रिय कल्याण रूप सुख प्राप्त हों।

३३३ भगः पुरंधिः रायः सुयमस्य सत्यस्य शंसः नः शं अस्तु— ऐश्वर्य, बडी बुद्धि, धन और उत्तम संयम-पूर्वक पालन किये सत्यकी प्रशंसा ये सब हमारा कल्याण करनेवाले हों।

३३५ सुकृतां सुकृतानि नः शं सन्तु— उत्तम कर्म करनेवालोंके सुकृत हमारा कल्याण करनेवाले हों।

३३६ जिष्णुः रजसस्पतिः नः शं अस्तु— विजयी लोकपति हमारा कल्याण करनेवाला हो।

३३८ सोमः ब्रह्म नः शं भवतु— सोम आदि वनस्पति और ज्ञान हमारा कल्याण करनेवाला हो।

३३९ सूर्यः पर्वताः सिन्धवः आपः नः शं सन्तु- सूर्य, पर्वत, नदियां, जल हमारे लिये कल्याण करनेवाले हों।

३४१ त्रायमाणः सविता पर्जन्यः क्षेत्रस्य शंभुः पतिः नः प्रजाभ्यः शं भवन्तु— संरक्षक सूर्य, पर्जन्य और देशका हितकर्ता राजा हमारी प्रजाओंके लिये सुखकारी हो।

३४२ सरस्वती धीभिः नः शं अस्तु— विद्यादेवी बुद्धियों और कर्म शक्तियोंके साथ हमारा कल्याण करें।

३४३ सत्यस्य पतयः, अर्वन्तः गावः, सुकृतः सुहस्ताः ऋभवः पितरः नः शं भवन्तु— सत्यका पालन करनेवाले, घोडे, गौवें, सुकर्म करनेवाले, उत्तम हस्त-कौशल्यका कार्य करनेवाले शिल्पी तथा हमारे रक्षक हमें सुख-दायी हों।

५१०।१ गोपावत् भद्रं शर्म सुदासे यच्छन्ति— जिसमें संरक्षण शक्ति है, कल्याण और सुख है, वह सुख उत्तम दाताको देवता देते हैं।

६९९ विशे जनाय अध्वराय महि शर्म यच्छतं- ...नाजन अहिंसक कर्म करें इसलिये उनको सुख दो।

६९६ नः योगे क्षेमे शं अस्तु— हमारा योगक्षेममें कल्याण हो।

मनुष्यको सुख चाहिये, शान्ति चाहिये और परम कल्याण चाहिये। 'प्रियाणि भद्राणि' हमें कल्याण चाहिये, पर वह प्रिय भी होना चाहिये। हितकारक वस्तु तो हो पर वह प्रिय भी होनी चाहिये। (भगः) ऐश्वर्य भाग्य, (पुरंधिः) विशाल बुद्धि, सार्वजनिक हितकी बुद्धि, (रायः) धन, संपत्ति, (सुयमः) उत्तम संयम, (सत्यं) सत्य व्यवहार, सरल व्यवहार, (शंसः) प्रशंसा, यश, कीर्ति, (सुकृत) उत्तम कर्म, पुण्य-कर्म (ब्रह्म) ज्ञान, (सरस्वती) विद्यादेवी यह सब हमारा सच्चा कल्याण करनेवाला हो। कल्याणका भास इन साधनोंसे न हो, परंतु सच्चा कल्याण हो यह भाव यहां है।

युद्ध

४० ते प्रसितिः सृष्टा सेना इव एति— अग्निकी ज्वाला युद्ध करनेवाली सेनाके समान हमला करती है। जैसी अग्निकी ज्वालाएं लकडियोंपर हमला करके उनका नाश करती है, उस तरह वीरकी सेनाएं शत्रुसेनाका नाश करें।

१७२ तन्वा शुश्रूषमाणः समर्ये आवः— शरीरसे शुश्रूषा करनेवाला युद्धमें वीरोंका संरक्षण करता है। युद्धमें शुश्रूषा करनेवाले भी रहने चाहिये।

२२३।१ समन्यवः सेनाः समरन्त— उत्साही सेना ही युद्ध करती है।

२३४।२ नेमधिता नरः इन्द्रं हवन्ते— युद्धमें जाने-वाले वीर इन्द्रको अपने सहाय्यार्थ बुलाते हैं।

२५१।२ समत्सु केतं उपमं दधः— युद्धोंमें ज्ञान उपमा देने योग्य धारण करो, युद्ध संबंधका अच्छा ज्ञान धारण करो।

२८२ ये आजयः ई भवन्ति, अयं विश्वः पार्थिवः अवस्युः भिक्षते— जो युद्ध यहां होते हैं, उनमें ये सब पार्थिव वीर अपनी सुरक्षाके लिये सहायता चाहते हैं।

२९० महाधने सखीनां अविता वृधः भव— युद्धमें मित्रोंकी सुरक्षा करनेवाला और वृद्धि करनेवाला हो।

२९७।१ तृष्णजः वृतासः नाधितासः दाशराज्ञे उदर्दीधयुः— तृषित, शत्रुसे घेरे हुए उन्नति चाहने-वाले वीरोंने दाशराज्ञ युद्धमें अपने उद्धारके लिये बहुत यत्न किया।

३१२ समत्सु त्मना वीरं हिनोत— युद्धोंमें स्वयं स्फूर्तिसे जानेके लिये वीरोंको प्रेरणा करो।

३३२ वाजसातौ नः शं योः— स्पर्धामें हमारा कल्याण हो तथा दुःख भी दूर हो।

३५४।४ सातौ पुरंधिं रातिषाचं वाजं प्र कृणुध्वं- युद्धके समय नगरका संरक्षण करनेवाले बलवान वीरकी शक्तिको बहुत बढाओ।

६६२।१ युत्सु पृतनासु वन्हयः युवां हवन्ते— युद्धोंमें अग्निसमान तेजस्वी वीर तुम्हें बुलाते हैं।

६६७।२ भरेभरे पुरोयोधा भवत— युद्धमें आगे रहकर लडो।

६६७।३ उभये नरः स्पृधि— दोनों नेता स्पर्धामें हैं।

६७०।१ कृतध्वजः नरः समयन्ते— ध्वज उठाकर वीर युद्ध करते हैं।

६७०।२ आजौ किंचन प्रियं न भवति— युद्धमें कुछ भी भला नहीं होता है।

६७०।३ स्वर्दृशः भुवना यत्र भयन्ते— आत्मज्ञानी पुरुष युद्धसे डरते हैं।

६७१।१ भूम्याः अन्ताः ध्वसिराः सं अदृक्षत— भूमिके अन्त भाग उध्वस्त होते हैं। युद्धका परिणाम भयंकर होता है।

६७१।३ जनानां अरातयः उपतस्थुः— जनताके शत्रु युद्धमें इकठ्ठे होते हैं।

६८१।१ विदथेषु नः यज्ञं चारु कृतं— युद्धोंमें भी हमारा यज्ञ सुंदर रीतिसे होजाय।

६८५।२ दिद्यवः ध्वजेषु पतन्ति— युद्धके समय शस्त्र ध्वजोंपर गिरते हैं।

७८०।१ त्वया सौश्रवसं आजिं जयेम— यश देने-वाले संग्राममें विजय पावेंगे।

७८०।२ महतः मान्यमानान् योधयाः— बड़े घमंडी शत्रुओंसे युद्ध कर।

७८०।३ शाशदानान् बाहुभिः साक्षाम— हिंसक शत्रुका अपने बाहुबलसे पराभव करेंगे ।

७८०।४ यत् नृभिः वृतः अभियुध्वाः— वीरोंसे घेरा हुआ शूर पुरुष शत्रुसे लडता है ।

७८१ अदेवीः मायाः असहिष्ट— राक्षसी कपटोंका पराभव कर ।

युद्धकी नीति ।

(६७० आजौ किंच प्रियं न भवति) युद्धसे कुछ भी अच्छा नहीं होता है, युद्धके परिणाम बहुत बुरे होते हैं। धर्मकी मर्यादा टूट जाती है, तरुण लोग नष्ट होते हैं, तरुण न रहनेसे स्त्रियां व्यभिचार करने लगती हैं । संतानें बिगडती है। धान्य कम पकता है । इस तरह सर्वत्र अव्यवस्था होती है । इसलिये जहांतक हो सके वहांतक युद्धको टालना चाहिये और यदि कुछ भी दूसरा उपाय न रहा तो ही युद्ध करना चाहिये ।

(६७० स्वर्दृशः भुवना भयन्ते) ज्ञानी लोग युद्धसे भयभीत होते हैं, क्योंकि वे युद्धके भयानक परिणामको देखते हैं। इसलिये युद्धसे ऐसे घोर परिणाम होंगे ऐसा वे ज्ञानी पहिलेसे जानते हैं, इस कारण युद्धसे वे डरते रहते हैं । (भूम्याः अन्ताः ध्वसिराः सं अदृक्षत) भूमिके अन्तभाग भी विनष्ट हो रहे हैं ऐसा युद्धके समय दीखता है। घनघोर युद्ध होने लगा तो भूमि धूलीसे विनष्ट हो रही है ऐसी दीखने लगती है। युद्ध क्या है वहां तो (६७२ जनानां अरातयः उपतस्थुः) जनताके शत्रु ही इकट्ठे होते हैं । यदि वहां जनताके मित्र इकट्ठे हो जायगे, तो उनमें युद्ध ही नहीं होगा। वे मित्र बनकर जनताके कल्याणका उपाय सोचेंगे । पर युद्धके पूर्व जनताके शत्रुही इकठ्ठे होते है, इसलिये युद्ध खडा हो जाता है और उसमें विध्वंस ही विध्वंस हो जाता है।

इस तरह ऋषियोंकी इच्छा युद्ध करने करवानेकी नहीं होती है, परंतु किसी एक पक्षकी दुष्टताके कारण युद्ध छिड जाता है । वैसा हुआ तो पहलेसे ही अपने पक्षकी तैयारी उत्तम रखनी चाहिये ।

शुश्रूषा पथक

(१७२ तन्वा शुश्रूषमाणाः समर्ये आवः) अपने शरीरसे शुश्रूषा करनेवाले युद्धमें बडा संरक्षणका कार्य करते हैं। घायल हुए वीरोंका शुश्रूषा करनी चाहिये । यह (तन्वा शुश्रूषमाणाः) शरीरसे शुश्रूषा करनेका कार्य है । ' शुश्रूषमाण ' पदका अर्थ ' सुननेवाला, एकाग्रचित्तसे सुननेवाला ' ऐसा है । ' श्रु ' धातु ' सुननेके अर्थवाला ' है । परंतु जो ध्यानपूर्वक सुनता है वही ध्यानपूर्वक सेवा शुश्रूषा करता है । इस कारण इसी पदका अर्थ ' सेवा, सुश्रूषा करनेवाला ' ऐसा होता है । इस १७२ वे मंत्रमें ' इन्द्रने कुत्सकी शुश्रूषा की ' ऐसा भाव है । युद्धमें कुत्स अस्वस्थ हुआ था, जिसकी सेवा, शुश्रूषा इन्द्र प्रबंधसे हुई, जिससे कुत्सका संरक्षण हुआ । यहां युद्धमें घायलोंकी सेवा करनेकाही भाव है ।

उत्साही सेना लडती है

(२२३ समन्यव· सेनाः समरन्त) उत्साहवाली सेना ही लडती हैं । जिनमें लडनेका उत्साह नहीं, शक्ति नहीं, वे क्या लडेंगे ? जहां (७८२ आजयः भवन्ति, विश्वः पार्थिवः अवस्युः भिक्षते) जहां युद्ध होते हैं वहां सब योद्धा अपनी सुरक्षा चाहते हैं । ' महाधन ' पदका अर्थ ' युद्ध ' है, क्योंकि युद्धसे बडा धन प्राप्त होता है, अर्थात् युद्धमें विजय होनेसे बडा धन मिलता है, शत्रुके नगर लूटकर धन प्राप्त किया जाता है । इसलिये युद्धका नाम ' महाधन ' है । (२९८ महाधने सखीनां अविता भव) युद्धमें मित्रोंका संरक्षण कर । युद्धके समय अपने साथियोंका संरक्षण करना योग्य है ।

(३१२ समत्सु त्मना वीरं हिनोत) युद्धोंमें स्वयंस्फूर्तिसे वीर जांय ऐसी उनको प्रेरणा होनी चाहिये । जबरदस्ती युद्ध भूमीपर जानेसे भीरु मनुष्य लड नहीं सकेगा और उसको संभालनेका कार्य दूसरोंको करना पडेगा । इसलिये वीर स्वयंस्फूर्तिसे ही युद्धमें जांय और वहां उत्तम वीरताके साथ लडें । (६६७ भरे भरे पुरोयोधा भवत) प्रत्येक युद्धमें अग्रभागमें रहकर युद्ध करो । पीछे पीछे रहना योग्य नहीं । (६७० कृतध्वजः नरः समयन्ते) ध्वजा फहरानेवाले वीर युद्ध करते हैं । अपने अपने ध्वज वीर लें और उस ध्वजका सन्मान करते हुए शत्रुसे लडे । (६८५ दिद्यवः ध्वजेषु पतन्ति) शत्रुके शस्त्र ध्वजोंपर गिरते हैं। ध्वजको देखकर शत्रु शस्त्र चलाते है । (७८० आजिं जयेम) युद्धमें हम निःसंदेह जीतेंगे ऐसी धारणा लडनेवाले वीरकी चाहिये। ऐसा वीर युद्धमें जय प्राप्त करता है । (७८० मन्यमानान् योधयाः) घमंडी शत्रुओंके

साथ युद्ध करना और उनको पराजित करना चाहिये। (७८१ अदेवीः मायाः असहिष्ट) आसुरी कपटोंका पराभव करना चाहिये। राक्षस लोग जो कपटसे युद्ध करते हैं, उनका पराभव करना चाहिये। इस तरह वसिष्ठ मंत्रोंमें युद्धके विषयमें कहा है।

रथ

२९६।२ अक्षं अव्ययं— रथका अक्ष न टूटनेवाला हो।

३०७ सुतष्टः वाजी रथः— उत्तम बनाया उत्तम शक्तिशाली रथ हो।

३१० धूर्षु अश्वान् आदधात— धुराओंमें घोडोंको जोतो।

३५६ वाहिष्ठः अमृक्तः रथः— उत्तम वहन करनेवाला न टूटनेवाला रथ हो।

३९४ हरितः रोहितः वीरवाहाः युक्ष्व— हरिद्वर्णवाले घोडे वीरोंके रथोंको जोते जांय।

४०७ प्रथमः वाजी अर्वा दधिक्रावा प्रजानन् रथानां अग्रे भवति— सबमें मुख्य अरबी घोडा स्वयं जानता हुआ, रथके आगे स्वयं जाकर खडा रहता है।

४२१ मघवानः वाजाः ऋभुक्षणः नरः! अर्वाचः नर्यं रथं आवर्तयन्तु— हे धनी बलवान् और कारीगरोंको आश्रय देनेवाले नेताओ! तुम्हारे मनुष्य-हितकारी रथको तुम्हारे घोडे हमारे पास ले आवें।

५३७ मनसा गर्तं तक्षत्— शिल्पी मन लगाकर रथको तैयार करता है।

५७५ मनोजवः रथः शतोतिः- मनके समान वेगवान रथ सैंकडों संरक्षक साधनोंसे युक्त हो।

५८२ हिरण्ययः घृतवर्तनिः पविभिः रुचानः इषां वोळ्हा वाजिनीवान् नृपतिः वृषभिः अश्वैः आ यातु- सुवर्णका बना, घीके मार्गसे जानेवाला, जगमगाता हुआ, अन्नोंको लानेवाला सेनावाले राजाके समान बलिष्ठ घोडोंसे खींचा जानेवाला रथ हमारे पास आजावे।

५९९ वृषणः सुम्नायवः वां रथं आवर्तयन्तु— बलवान शिक्षित घोडे आपके रथको यहां लावें। हमारे पास ले आवें।

५९९ ऋतयुग्भिः अश्वैः स्यूमगभस्तिं वसुमन्तं आवहेथां— सरल जानेवाले घोडोंसे तेजस्वी धनवाले रथको इधर ले आइयें। हमारे पास धनसे भरा रथ आ जाय।

६०० रथः वसुमान् उस्रयामा— धनवाला रथ सवेरे जानेवाला है।

रथके विषयमें वसिष्ठ मंत्रोंमें इस तरहके निर्देश मिलते हैं। '**अ-व्ययः अक्षः**' रथका अक्ष न टूटनेवाला हो यह आदेश कितना महत्त्वका है यह विचार करनेवाले पाठक जान सकते हैं। (सुतष्टः रथः) उत्तम बनाया हुआ रथ हो। शिल्पीने रथ उत्तम प्रकारसे बनाया हो। जो न टूटनेवाला होगा और चालकके लिये भी अच्छा होगा। (धूर्षु अश्वान् आदधाति) धुरामें घोडे जोते जांय। बैलोंका काम युद्धमें नहीं है। (मनोजवः रथः) मनके अनुसार चलाया जानेवाला रथ हो। ये रथके वर्णन देखने योग्य है।

घोडा

४१ अत्यं दोषा उषसि मर्जयन्तः— घुडदौडके घोडेको दिन रात सेवा करके स्वच्छ रखते हैं। घोडेकी सेवा न हुई तो वह घोडा घुडदौडमें अच्छा कार्य नहीं कर सकता। इसलिये घोडेकी सेवा अवश्य होनी चाहिये।

१७६।४ वृषणा हरी रथे युनज्मि— बलवान (दो) घोडे रथमें मैं जोतता हूं।

२२१।१ धुरि अत्यः अधायि— धुरामें चपल घोडा जोता है।

३५३ मन्दसानाः वाजिनः नः तोकं धियं च अवन्तु— आनंद देनेवाले घोडे अथवा बलवान् वीर हमारे बालबच्चोंका तथा कर्मोंका संरक्षण करें।

४०८ दधिक्राः ऋतस्य पंथां अनु एतवै नः पथ्यां आ अवन्तु— यह घोडा सत्य मार्गसे चलता है, वह हमारे मार्गकी शोभा बढावे।

५७० ते तरणयः धूर्षु वहन्ति— तुम्हारे त्वरासे चलनेवाले घोडे धुरामें रहकर ढोते हैं।

५९० शुनः पृष्ठः वाजी अश्वः— जिसके पीठपर बैठना सुखदायी है वह बलिष्ठ घोडा अच्छा है।

घोडेके विषयमें वसिष्ठ मंत्रोंमें ऐसे वर्णन आते हैं। सर्व साधारण घरोंमें रहनेवाला घोडा और घुडदौडमें दौडनेवाला

घोडा ऐसे दो घोडोंका पृथक् वर्णन किया है और अरबी घोडेका भी वर्णन पृथक् है। वसिष्ठ ऋषिके वर्णनमें इन तीनों घोडोंका वर्णन देखने योग्य है।

रोग दूर करो

७।३ **अमीवां प्र चातयस्व**— रोगोंको दूर करो। आममे, अपचित अन्नसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंको दूर करो। उसका बीज शरीरमें न रहे ऐसा करो।

८५ **अमीवचातनं रक्षोहा द्युमत् आपये शं भवाति**— रोग दूर करने और रोग बीज हटानेवाला तेजस्वी औषध बांधवोंके लिये सुखदायी होता है।

३७० **सनेमि अमीवाः अस्मत् युयवन्**— पुराने रोग हमसे दूर हों।

४१४ **जासु अनमीवः भव**— प्रजाजनोंमें नीरोग हो। रोगी न बनो! रोग दूर करनेवाला बनो।

४१५।२ **सहस्रं भिषजा**— हजारों औषधियां रोग दूर करनेकी है।

४१५।३ **तोकेषु तनयेषु मा रीरिषः**— बालबच्चोंमें अपमृत्यु न हो।

४४२ **नः स्वावेशः अनमीवः भव, नः द्विपदे चतुष्पदे शं भव**— हमारा घर रोगरहित हो। हमारे द्विपाद और चतुष्पाद सुखी हों।

४४५ **वास्तोष्पते! अमीवहा विश्वारूपाणि आविशन्**— हे भूपते! रोग दूर करनेवाला हो, सब रूपोंकी सुंदरता प्राप्त कर।

५९८ **अस्मत् अनिरां अमीवां युयुतं, नः दिवा नक्तं त्रासीथां**— हमसे अन्नके अभावको तथा रोगको दूर करो और हमें दिन रात सुरक्षित रखो।

रोग दूर करके दीर्घजीवन प्राप्त करना यह इच्छा यहां स्पष्ट दीखती है। रोगका नाम 'अमीवा' है। 'अमी-वा' का अर्थ आमसे उत्पन्न होनेवाला, अपचित अन्न पेटमें सडता है, वह आम है। इस आमके कारण रोग होते हैं। रोग होनेका मुख्य कारण यह है। यदि अपचन न रहा तो रोग आपही आप दूर हो सकते हैं। नीरोग होनेके लिये 'अनमीवः भव' कहा है। 'अमीव-चातन' यह रोग दूर करनेको चिकित्साका नाम है। 'रक्षो-हा' इस पदमें 'रक्षः (राक्षस)' नाम रोग बीजोंका है। इनका नाश करनेवाले औषधका नाम 'रक्षो-हा' है। 'सहस्रं भिषजा' सहस्रों औषध हैं जो रोगोंको दूर करते हैं और मनुष्यको नीरोग और दीर्घायु करते हैं। इसलिये मनुष्यको डरना नहीं चाहिये। आवश्यक होनेपर औषधि प्रयोग करके नीरोग होकर दीर्घजीवन तथा बल प्राप्त करना चाहिये।

उत्तम वीर

४।१ **सुवीरासः द्युमन्त वरं**— जो उत्तम वीर तेजस्वी होते हैं वे श्रेष्ठ होते हैं। उत्तम वीरोंका तेजस्वी होना श्रेष्ठताका द्योतक है।

४।२ **सुजातासः नरः समासते**— कुलीन नेता संघटित होते हैं, कुलीन नेता संघटित होकर कार्य करते हैं।

४।३ **सुवीरासः प्र निः शोशुचन्त**— उत्तम वीर विशेष तेजस्वी होते हैं। उत्तम वीर तेजस्वी, श्रेष्ठ, संघटना करनेवाले, तथा कुलीन होते हैं।

२४।४ **सुवीरासः मदेम**— हम उत्तम वीरोंसे युक्त होकर आनन्द प्राप्त करेंगे।

४१।३ **नरः दोषा उषसि यविष्ठं मर्जयन्तः**— नेता लोग रात्रीमें तथा उषःकालमें बलवान् तरुणको शुद्ध करते हैं, पतित होने नहीं देते। जगाते हैं, तेजस्वी बनाते हैं।

४७ **शुक्राय भानवे सुपूतं मतिं प्रभरध्वम्**— बलवान् तेजस्वी वीरके लिये अत्यंत पवित्र स्तोत्र गाओ। बलवान् और तेजस्वी वीरकी प्रशंसा करो।

४८ **सः तरुणः अग्निः गृत्सः मातुः अजनिष्ट**— वह तरुण वीर अग्निके समान तेजस्वी तथा प्रशंसनीय मातासे उत्पन्न हुआ है।

४८।२ **सः भूरि अन्ना सं अत्ति**— वह वीर बहुत अन्न उत्तम रीतिसे भक्षण करता है जिससे वह बलवान् बनता है।

४९ **अनीके संसदि मर्तासः श्येतं जगृभ्रे, सः आयवे दुरोकं शुशोच**— सैनिकोंकी सभामें मनुष्य अत्यंत तेजस्वी वीरको प्रमुख स्थानमें रखते हैं, वहां वह मानवोंके हितके लिये अत्यंत प्रखरतासे चमकता है। तेजस्वी वीरको सेनापति बनाते हैं, वहां वह अपनी वीरतासे चमकता है।

९६ दारुं वन्दे— शत्रुके विदारण करनेवाले वीरको मैं प्रणाम करता हूं।

११८ द्युमन्तं सुवीरं निधीमहि— तेजस्वी सुवीरको हम यहां संरक्षणके लिये स्थापन करते हैं।

११९ त्वं अस्मयुः सुवीरः— तू हमारे साथ रहनेवाला उत्तम वीर है।

१६६।१ पराशरः शतयातुः वसिष्ठः— दूरसे (पराशरः) शरसंधान करनेवाला और इस कारण सैंकडों यातना देनेवाले शत्रुओंका सामना करनेवाला वसिष्ठ ऋषि है। यह शूर वीर है।

१७१।१ एकः भीमः विश्वाः कृष्टीः प्रच्यावयति— अकेला प्रबल वीर सब शत्रुओंको अपने स्थानसे उखाड देता है।

१७१।२ अदाशुषः शश्वतः गयस्य च्यावयिता— अदाताके-शत्रुके-सुस्थिर घरोंको उखाडनेवाला वीर हो।

१८२।१ स्वधावान् उग्रः वीर्याय जज्ञे— बलवान् शूर वीर पराक्रम करनेके लिये उत्पन्न हुआ है।

१८४ युध्मः अनर्वा खजकृत् समद्वा शूरः जनुषा सत्राषाट् अषाळ्हः स्वोजाः पृतना त्रिं आसे। अथ विश्वं शत्रूयन्तं जघान— वीर युद्धसे पीछे न हटनेवाला, युद्धविद्यामें कुशल युद्धमें जानेके लिये सिद्ध शूर जन्मस्वभावसे शत्रुका पराभव करनेवाला, स्वयं पराभूत न होनेवाला बलशाली योद्धा, शत्रुसेनाको अस्तव्यस्त करता है और सब शत्रुओंका नाश करता है।

१८५ हरिवान् वज्रं नि मिमिक्षत्- घुडसवार शत्रुपर शस्त्र फेंकता है।

१८७।१ यः अस्य घोरं मनः आविवासत्, स जनः नुचित् भ्रेअते, न रेषत्-- जो इस वीरके घोर मनको प्रसन्न करता है, वह मनुष्य अपने स्थानपर सुरक्षित रहता है, वह कभी क्षीण नहीं होता।

१८७।२ यः इन्द्रे दुवांसि दधते, सः ऋतपाः ऋतेजाः राये क्षयत्— जो इस वीरके काव्य गाता है वह सत्यपालक और सत्यके लिये जन्मा वीर धनके लिये निवास करता है। पर्याप्त धन प्राप्त करता है।

१९५।२ भीमः आयुधेभिः एषां विवेश— प्रचण्ड वीर अपने आयुधोंके साथ शत्रुसेनाओंमें घुमता है।

१९५।३ जर्हृषाणः वज्रहस्तः महिना जघान-- प्रसन्नचित्तसे वज्र हाथमें धारण करके अपनी पूर्ण शक्तिसे शत्रुपर मारता है।

२१६।१ वज्रबाहुं वृषणं अर्चन्ति— वज्रके समान बाहुवाले बलवान् वीरकी पूजा करते हैं।

२१७।२ नृभिः आ प्रयाहि— नेताओंके साथ जाओ।

२२३ उग्रः— पुरुष उग्र वीर हो।

२२३।२ नर्यस्य महः बाह्वोः दिद्युत् ऊती पताति- मानवोंका हित करनेवाले बडे वीरके बाहुओंसे तेजस्वी शस्त्र उन मानवोंका रक्षण करनेके लिये शत्रुपर गिरता है।

२२३।३ विश्वद्र्यक् मनः मा विचारीत्--चारों ओर जानेवाला वीरका मन इधर उधर न जाय। अपने संरक्षणके कार्यमें ही लगा रहे।

२४९।४ अस्य महे नृम्णाय भव-- इस राष्ट्रका महान् सामर्थ्य बढाओ।

२४९।५ अस्य महि क्षत्राय पौंस्याय भव-- इस राष्ट्रका बडा क्षात्रतेज और वीर्य पौरुष बढाओ।

२५०।१ शूराः तनुषु सूर्यस्य सातौ-- शूर वीर अपने शरीरोंमें सूर्यके दानको धारण करें। सूर्य प्रकाशसे अपने बलकी वृद्धि करें।

२५०।३ विश्वेषु जनेषु शूरः सेन्यः— सब मानवोंमें शूर ही सेनामें रखने योग्य है।

२५१।३ असु-रः अग्निः— बलवान् वीर अग्निके समान तेजस्वी होता है।

२५१।४ असु-रः सुभगाय अत्र निषीदत्— बलवान् वीर उत्तम ऐश्वर्यके लिये यहां निवास करता है। वह ऐश्वर्यका रक्षण करे।

२६५।३ हर्यश्वाय आपीन् संबर्हय— घुडसवार वीरके लिये मित्रोंको उत्साहित करो।

२९७।३ तृत्सुभ्यः उरुं लोकं अकृणोत्— तृत्सु लोगोंको विस्तृत प्रदेश युद्ध करके प्राप्त हुआ। उनको विस्तृत प्रदेश दिया।

३०२ वृत्रेषु उग्राः शूराः मंसन्ते— शत्रुका हमला होनेपर उग्रवीरोंका सन्मान होता है।

३५४ विदथ्यं पूषणं वीरं प्रकृणुध्वं— युद्धमें विजयी हृष्टपुष्ट वीरपुत्रको निर्माण करो। पुत्र ऐसा हो कि जो शूर हो और विजयी हो।

३६३ पायुः दिव्यः सदा नः सिषक्तु- संरक्षणकर्ता दिव्य वीर सदा हमारी सुरक्षा करे।

३८२ यः शुष्मी उग्रः तस्य रायः पर्येता कः नास्ति- जो वीर बलवान् और शूर होता है, उसके धनका अपहरण करनेवाला कोई नहीं होता।

३८७ विधर्ता उग्रः तुरः राजा— धारण शक्तिवाला उग्र वीर त्वरासे कार्य करनेवाला राजा विजयी और स्तुतिके योग्य होता है।

४१३ स्थिरधन्वने क्षिप्रेषवे सुधाम्ने वेधसे अषाळ्हाय सहमानाय तिग्मायुधाय रुद्राय देवाय इमा गिरः भरत— स्थिर धनुवाले, शीघ्र बाण फेंकनेवाले, धारण शक्तिवाले शत्रुके आक्रमणको हटानेवाले बलवान तथा तीक्ष्ण आयुधवाले (रुद्र देव) वीरके लिये ये स्तोत्र हैं।

४५३ रुद्रस्य सनीळा मर्याः सु-अश्वाः व्यक्ताः नरः— रुद्रके एक ही घरमें रहनेवाले मर्त्य वीर उत्तम घुडसवार और सबके परिचित नेता हैं।

४५५ स्वपूर्भिः मिथः अभिवपत, वातस्वनसः श्येनाः अस्पृध्रन्- अपने शरीरोंके साथ मिलकर, वायुके प्रचंड वेगके समान शब्द करनेवाले और श्येन पक्षीके समान वेगवान् वीर स्पर्धामें शामील होते हैं।

४५६ धीरः एतानि निण्या चिकेत- शूर वीर इन कार्यकलापोंको जानता है।

४५७ सा विट् सुवीरा सनात् सहन्ती नृम्णं पुष्यन्ती अस्तु- वह प्रजा उत्तम वीर होकर, सदा शत्रुका पराभव करती हुई, मनुष्योंके उपयोगी होनेवाले बलको बढाती रहे।

५१२।१ एषां सम्भृतिः सस्वः त्वेषी च- इन वीरोंकी मित्रता गुप्त स्थायी तथा तेजस्विता देनेवाली होती है।

५१२।२ अपीच्येन सहसा सहन्ते- सुरक्षित बलसे वीर शत्रुका पराभव करते हैं।

५१२।३ युष्मत् भिया रेजमानाः- तुम वीरोंके भयसे शत्रु कांपते हैं।

५१२।३ दक्षस्य महिना नः मृळत- अपने बलकी महिमासे हम सबको सुखी करो।

५१८।३ अयज्वनां मासाः अवीराः आयन्- यज्ञ न करनेवालोंके दिन वीरतारहित अवस्थामें जांय।

५३७।२ ऊर्ध्वां धृतिं कृणवत् धारयत्- उच्च धैर्य करता और धारण करता है।

५४१ भूरिपाशा अनृतस्य सेतुः मर्त्याय रिपवे दुरत्येतुः- शत्रुको बांधनेके बहुत पाश धारण करनेवाले, असत्यके पार होनेके सेतु जैसे, मानवी शत्रुको पार करनेवाले ये वीर हैं।

५५३।२ सूरचक्षसः अग्निजिह्वाः ऋतावृधः— सूर्यके समान देखनेवाले, अग्निके समान जिह्वावाले अर्थात् उत्तम वक्ता सत्यका संवर्धन करनेवाले वीर हों।

५५४।१ अनाप्यं क्षत्रं राजानः आशत- अप्राप्य क्षात्रबल राजा प्राप्त करें।

५५४।२ शरदः मासं अहः अक्तुं ऋचं यज्ञं विदधुः- वीर वर्ष, मास, दिन-रात, ज्ञान और कर्मका धारण करें। दीर्घायु और ज्ञानी बनें।

५५६ ऋतावानः ऋतजाताः ऋतावृधः अनृतद्विषः घोरासः सुछर्दिष्मे सुम्ने सूरयः नरः वयं स्याम— सत्यनिष्ठ असत्यद्वेषी घोर वीरोंके सुखमें हम रहेंगे।

६६३।२ उग्रः मरुद्भिः शुभं ईयते-उग्र वीर मरुद्वीरोंके साथ सबका शुभ करता है ॥

८६४ शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळहः पृतनासु शत्रून् साह्वान् धनानि सनिता— शूर, वीर, बलवान, विजयी, तीक्ष्ण शस्त्रवाला, शीघ्र धनुष्य चलानेवाला, युद्धोंमें असह्य, शत्रुओंका पराभव करनेवाला वीर हो।

९१३ यः धीरः शक्रः परिभूः अदाभ्यः- जो शूर वीर बलवान शत्रुओंको जीतनेवाला और किसीसे न दब जानेवाला है वही उत्तम वीर है।

इस तरह वीरोंका वर्णन वासिष्ठ मंत्रोंमें है। ये सब मंत्र मनन करने योग्य है।

वीरके शस्त्र-वीरके शस्त्र कैसे होने चाहिये इस विषयमें क्या कहा है देखिये, (परा-शरः) दूरतक बाण फेंकनेमें समर्थ वीर हो, (वज्रं मिमिक्षत्) वज्र जैसे शस्त्रको तीक्ष्ण करके धारण करे, (आयुधेभिः भीमः) शस्त्रोंसे भयंकर वीर हो, (वज्र हस्तः) हाथमें वज्र धारण करनेवाला वीर हो, (वज्रबाहु) वज्र जैसे बलवान बाहु हों, (दियुत् ऊती) संरक्षक शस्त्र तेजस्वी हों, (स्थिर धन्वा) शूरका धनुष्य स्थिर हो, न टूटनेवाला हो, (क्षिप्रेषुः) शीघ्र बाण छोड सकनेवाला वीर हो, (वेधाः) अचूक बाण मारनेवाला, शत्रुको वींधनेवाला, (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण आयुधवाला, (भूरिपाशः) वीरके पास शत्रुको बांधनेके लिये बहुत पाश हों, (अग्नि जिह्वा) अग्नि ज्वालाके समान ज्वाला शत्रुपर छोडनेका साधन वीरके पास हो, (क्षिप्रधन्वा) धनुष्य शीघ्रतासे चलानेवाला वीर हो। इस तरह शस्त्र, अस्त्र वीरके पास हों और वह शस्त्रप्रयोग करनेमें प्रवीण हो।

उत्तम वीर बनो

केवल वीर बने इतनी ही इच्छा यहां दीखती नहीं है। यहां तो ' सु-वीर ' अर्थात् उत्तमसे उत्तम वीर होना चाहिये यह महत्त्व-पूर्ण आकांक्षा स्पष्ट दीखती है। ऊपर दिये वचनोंमें ' सुवीर ' पद अनेक वार आया है, जो प्रेरणा करता है कि उत्तम शूर वीर बनो। ये उत्तम वीर (सुजातासः) कुलीन हों, अर्थात् उनके आनुवंशिक संस्कार उत्तम हों। (भूरि अन्नं आत्ति) वीर अधिक अन्न खाये, क्योंकि यदि वह अधिक न खाय तो उसमें विशेष शक्ति नहीं बढेगी और वह युद्धके कर्म ठीक तरह कर नहीं सकेगा। वीरको ' दारु ' कहा है, (दारयति सः) जो शत्रुका विदारण करता है वह दारु है। (भीमः) भयंकर युद्ध करनेवाला, देखनेमें भयानक, (विश्वाः कृष्टीः च्यावयति) शत्रुके सब सैनिकोंको भगा देता है। यह है वीरताकी कृती। अदाता, अनुदार, कंजूस ही समाजका शत्रु है उसको समाजसे दूर करना चाहिये। (अ-दाशुषः गयस्य च्यावयिता) जो दान सार्वजनिक हितके कार्य करनेके लिये नहीं देता उसका घर हमारे समाजमें नहीं रहना चाहिये। समाजमें वेही लोग रहें कि जो सार्वजनिक हित करनेके लिये योग्य दान देते हैं।

वीर (युध्मा) युद्ध करनेके लिये उत्सुक रहे, सदा तैयार रहे, (अनर्वा) पीछे न हटनेवाला, (जनुषा सत्राषाट्) जन्म-स्वभावसे शत्रुका पराभव करनेवाला, (अ-षाळ्हः) कभी पराभूत न होनेवाला, (स्वोजाः-सु+ओजाः) अपने निज-बलसे ही जो बलवान हुआ है, (खज कृत्) उत्तम रीतिसे युद्ध करनेवाला, (नर्यः) सब मानवोंका हित करनेवाला वीर होना चाहिये। (पौंस्यं) पौरुष, सामर्थ्य, (नृम्णं) मनुष्योंके हित करनेका बल, (२५० विश्वेषु शूरः सेन्यः) सब मनुष्योंमें जो विशेष शूर हो वही सेनामें भरती करनेयोग्य है। यह महत्त्वकी बात है।

इस प्रकार शूरवीरोंके विषयमें वसिष्ठ दर्शनमें मननीय उपदेश है, वह सब मानवोंका हित करनेवाला है। इसलिये इसका मनन विशेष रीतिसे करना योग्य है।

शत्रुनाश

१९६।१ यातवः नः न जुजुवुः- यातना देनेवाले शत्रु हमारे पास न आ जांय।

१९६।२ वंदना वेद्याभिः नः न जुजुवुः- वन्दन करके हमारे अन्दर नम्रभावसे रहनेवाले हमारे शत्रु हमारे पास न पहुंचें।

१९६।३ स अर्यः विषुणस्य जन्तोः शर्धत्- वह श्रेष्ठ वीर विषम भाव मनमें धारण करनेवाले दुष्ट मानवोंपर भी अपना प्रशासन करता है।

२५८ अर्यः वक्तवे निदे आराव्णे नः मा रन्धि— तुम हमारे स्वामी होकर हमें कठोरभाषी, निंदक अदाताके अधीन न रख।

२९२।१ अज्ञाताः अशिवासः दुराध्यः वृजनाः नः मा अवक्रमुः— अज्ञात मार्गसे आकर अशुभ दुष्ट शत्रु हमपर आक्रमण न करें।

७७० सश्चतः अरिष्टान् अतिपर्षत्— हमारेपर आये दुःखोंको दूर कर।

' यातु ' वह है कि जो यातना या पीडा देता है। चोर लूट, घातपात करनेवाले लोग यातु कहलाते हैं क्योंकि वे समाजको यातना पहुंचाते हैं। (अज्ञाताः अशिवासः) अज्ञात मार्गसे अशुभ (दुराध्यः वृजनाः) दुष्ट दुर्जन आते हैं और अनेक प्रकारके कष्ट पहुंचाते हैं। ये सब समाजके शत्रु हैं उनको दूर करना चाहिये।

७।१ विश्वाः अरातीः, जरूथं, तेजोभिः अपदह- सब शत्रुओं और कठोरभाषियोंको दूर करो। जला दो।

७।२ **निः स्वरं अरातीः चातयस्व**— शब्द न करते हुए दुष्ट दूर हो जांय ऐसा कर।

१३ **अजुष्टात् रक्षसः अररुषः अघायोः धूर्तेः पाहि-** अयोग्य, दुष्ट, पापी, धूर्त शत्रुसे अपना संरक्षण कर।

१३ **पृतनायून् अभिष्याम्**— सैन्यसे हमला करनेवाले शत्रुओंका भी हम नाश करेंगे। शत्रुका पराभव करेंगे।

७०।१ **सः वधस्नैः देह्याः अनमयत्**— वह राजा शस्त्रोंसे हिंसक आसुरी कर्म करनेवालोंको विनम्र करता है।

७०।२ **सहोभिः विशः निरुध्य बलिहृतः चक्रे**— वह राजा अपने सामर्थ्योंसे कर न देनेवाली प्रजाका निरोधन करके उनको कर देनेवाली बनाता है।

८३ **सः भरतस्य अग्निः पृतनासु पुरुं अभितस्थौ-** वह भरतका सेनानी अग्रणी वीर युद्धोंमें पुरु नामक असुरके ऊपर आक्रमण करनेके लिये खडा हुआ था।

८८ **स सुक्रतुः पणीनां दुरः वि-** वह उत्तम कर्म करनेवाला वीर पणि राक्षसोंके किलोंके द्वार तोडता है, और मार्ग खुला करता है।

९२।१ **जरूथं हन्-** कठोरभाषी दुष्टको दण्ड दे।

१२१ **शुक्रशोचिः अमर्त्यः शुचिः पावकः ईड्यः अग्निः रक्षांसि सेधति-** तेजस्वी, अमर, दीप्तिमान, पवित्र, स्तुत्य, अग्रणी नेता राक्षसोंका नाश करता है।

१२४ **त्वं अंहसः रक्षः अजरः रिषतः तपिष्ठैः दह-** तू पापी शत्रुओंसे हमें बचाओ और जरारहित होकर अपने तपनेवाली ज्वालाओंसे हिंसक शत्रुओंको जला दो।

१५०।२ **शापं, सिन्धूनां अशस्तीः, शर्धन्तं शम्युं अकृणोत**— शापको, नदियोंके महापूरक विनाशक जलप्रवाहोंको, शत्रुता करनेवाले शम्यु नामक शत्रुके ऊपर पहुंचने योग्य बना दिया।

१५२।२ **युधा नॄन् अगन्-** युद्धमें शत्रुके वीरोंपर आक्रमण करें।

१५३ **दुराध्यः अचेतसः**— दुष्ट बुद्धिवाले तथा अविचारी जो हैं वे शत्रु हैं।

१५३ **चायमानः कविः पल्यमानः पशुः अशयत्-** अपने स्थानसे उखाडा गया, वह ज्ञानी शत्रु भागनेपर भी हमारे (इन्द्र) वीरने उसे पशुके समान गिरा दिया। मार दिया।

१५४ **इन्द्रः मनुषे वध्रिवाचः सुतुकान् अमित्रान् अरन्धयत्-** इन्द्रने मनुष्योंके हित करनेके लिये व्यर्थ बडबड करनेवाले उत्तम संतानवाले शत्रुओंको मार डाला।

१५६।१ **राजा श्रवस्या वैकर्णयोः जनान् नि अस्त-** राजा यशकी इच्छासे सदुपदेश न सुननेवाले शत्रुके लोगोंका नाश करे। वि-कर्ण—सदुपदेश न सुननेवाला।

१५६।२ **दस्मः सद्मन् बर्हिः निशिशाति**— सुन्दर तरुण वीर घरमें बैठा बैठा जैसा दर्भोंको काटता है, वैसा शत्रुको वीर काटता जाय।

१५६।३ **शूरः इन्द्रः एषां सर्गं अकरोत्**— शूर इन्द्रने इन वीरोंकी उत्पत्ति ही इस शत्रुनाशके कार्यके लिये की है।

१५७।२ **वज्रबाहुः श्रुतं वृद्धं द्रुह्युं क-वषं अप्सु निवृणक्**— वज्रधारी वीर बहुश्रुत ज्ञानी, द्रोहकारी तथा कभी वशमें न आनेवाले शत्रुको जलप्रवाहोंमें डुबाकर मारे।

१५८।१ **एषां विश्वा पुरः सप्त दृंहितानि सहसा सद्यः विदर्दः-** इन शत्रुओंके सब नगरियोंके सातों सुदृढ प्राकारोंको अपने बलसे तत्काल तोड दो।

१५८।२ **अनवस्य गयं तृत्सवे विभाक्-** अरक्षणीय शत्रुके स्थान मित्रोंको दे दो।

१५८।३ **मृध्रवाचं पुरुं जेष्म-** असत्यभाषी नागरिक शत्रुपर हम विजय प्राप्त करेंगे।

१५९ **गव्यवः द्रुह्यवः अनवः षष्टिः शता षट्सहस्रा षष्टिः च षट् वीरासः दुवोयु निः सुषुपु**— द्रोहकारी रक्षणके अयोग्य ऐसे गायें चुरानेवाले शत्रुओंके छियासठ हजार छियासठ वीरोंको मित्रोंका रक्षण करनेके लिये मारा गया।

१६० **दुर्मित्रासः तृत्सवः प्रकलावित्-** विशेष कलावान् होनेपर भी लोभी होनेके कारण शत्रु ही समझे गये, उनपर हमला किया, तव वे (**विश्वा भोजना अद्युः**)- सब अपने भोजनादि भोगोंको छोडकर (**वीवषाणाः सृष्टाः नीचीः अधावंत**)- हमारे वीरोंद्वारा अन्दर प्रविष्ट होनेपर अपने स्थानसे छुट गये और नीचे मुंह करके भागने लगे।

१६१।१ **क्ष्मां अभि अनिन्द्रं वीरस्य अर्धं शर्धन्तं परा नुनुद**— मातृभूमिके हितका विचार करके नास्तिक तथा वीरके घातक शत्रुको दूर भगा दो।

१६१।२ मन्युमः स्वर्तु भिमाय— क्रोधी शत्रुके तेजका नाश करो।

१६१।३ दुध्रवाणः पथः वर्तनिं भेजे— पराजित शत्रु भागनेवालोंके मार्गका सेवन करे। इतना शत्रुका पराभव करना चाहिये कि वह भाग जाय।

१६३।१ ते शत्रवः शश्वन्तः रन्धुः— तुम्हारे शत्रु सदाके लिये पीसे जांय।

१६३।२ शर्धतः भेदस्य रन्धिं विन्द— स्पर्धा करनेवाले तथा पक्षभेद निर्माण करनेवाले शत्रुका नाश कर।

१६३।३ यः स्तुवतः मलान् एनः कृणोति, तिग्मं वज्रं निजहि— जो सदाचारी लोगोंको भी पापका दोष लगाता है, उसपर तीक्ष्ण शस्त्र फेंको।

१६५।३ मन्यमानं देवकं जघंथ- घमंडी तथा तुच्छ देव पूजकका नाश कर। 'देव-क' तुच्छ छोटा देव, हीन देवपूजक।

१६५।४ बृहतः शंवरं अवभेत्— बडे पहाडपरसे युद्ध करनेवाले शत्रुका नाश कर।

१६९ युध्या-मधिं सरितः अभीके नि आशिशात्- सतत युद्धसे ही कष्ट देनेवाले शत्रुको नदीके जलसे विनष्ट करो। "युध्या-मधि" -जो युद्ध करके ही सदा कष्ट देता है।

१७२ दासं शुष्णं कुयवं निरंधयः- घातपाती, शोषणकर्ता, बुरे चावल देनेवाले शत्रुका नाश कर।

१७४।१-२ नृमनः देववीतौ नृभिः भूरीणि हंसि- प्रजाका (नृ-मनः) हित करनेमें जिसका मन तत्पर है, वह युद्धोंमें अपने वीरों द्वारा बहुत शत्रुओंका वध करता है।

१७४।३ दस्युं चुमुरिं धुनिं नि अस्वापयः— घातपाती, कष्टदायी और घबराहट करनेवाले शत्रुओंको स्थायी रूपसे सुला दो, वे फिर कभी उठ न सकें।

१७४।४ दभीतये भूरीणि हंसि- भयभीतको निर्भय करनेके लिये बहुत शत्रुओंका नाश कर।

१७८।४ तुर्वशं याद्वं नि शिशीहि- त्वरासे वशमें करनेवाले तथा यातना देनेवाले शत्रुका नाश कर।

१८३।१ शूशुवानः वृत्रं हन्ता- सामर्थ्यसे बढनेवाला वीर शत्रुका नाश करता है।

१९७।१ कृत्वा ज्मन् परिभूः— अपने पुरुषार्थसे भूमिके ऊपरके सब शत्रुओंका पराभव कर।

१९७।३ स्वेन शवसा वृत्रं जघन्थ- अपने निजबलसे शत्रुका वध कर।

१९७।४ शत्रुः युधा ते अन्तं न विविदत्- शत्रु युद्धसे तेरा ही नाश न कर सके, इतना अपना सामर्थ्य बढाओ।

१९८ पूर्वे देवाः असुर्याय क्षत्राय ते सहांसि अनुममिरे- पूर्वसमयके देव (अर्थात् अबके राक्षस) अपने क्षात्रबलकी घमण्डसे तुम्हारे बलोंको कम मानते थे। (पर वे फंस गये।)

२१३।२ इन्द्रः वृत्राणि अप्रति जघन्वान्- इन्द्र शत्रुओंको अप्रतिम रीतिसे नष्ट करता है।

२२५।४ वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि— घातपात करनेवाले शत्रुके मनुष्यने जो वध करनेके लिये शस्त्रप्रयोग किया है, उसका नाश कर।

२२७।४ सत्रा वृत्रा सुहना कृधि— सदा शत्रु सहजहीसे नाश करने योग्य हो, (अर्थात् अपना बल उनसे बहुत बढाया जाय।)

२३१ सर्वाः पुरः, समानः एकः पतिः जनीः इव, सु नि मामृजे- शत्रुकी सब नगरियोंको, समान रीतिसे अकेला ही, एक पति अनेक स्त्रियोंको वश करनेके समान, उत्तम रीतिसे वश करता है।

२४१।३ तूतुजिः अतूतुजिं अशिश्नत्- दाता अदाताको पीछे रखता है।

२४२ दुर्मित्रासः क्षितयः पवन्ते, एभिः अहभिः नः दशस्य— दुष्ट लोग आक्रमण करते हैं, उनको इन दिनोंमें हमारे अधीन कर।

२५० त्वं सुहन्तु वृत्राणि रन्धय- तू तीक्ष्ण शस्त्र मारकर शत्रुका नाश कर।

२५१ त्वं वर्म असि, पुरो योधः असि, त्वया युजा प्रतिब्रुवे- तू हमारा कवच हो, तू संरक्षक है, तू अग्रगामी होकर युद्ध करनेवाला है, तेरे साथ रहकर हम शत्रुको योग्य उत्तर देंगे।

२७२ शर्धतः समजासि- स्पर्धा करनेवाले शत्रुको दूर कर।

१८० वृत्रहत्येषु चोदय— शत्रुका नाश करनेके लिये अपने वीरोंको उत्तेजित कर।

१८० तव प्रणीति सूरिभिः विश्वा दुरिता तरेम— तुम्हारी नीतिका अवलंबन करके ज्ञानियोंके साथ रहकर हम सब दोषोंको दूर करेंगे, सब शत्रुओंके पार जायंगे।

१९० अमित्रान् परा नुदस्व— शत्रुओंको दूर कर।

३१९ दिद्युन् दिद्युन् अशोचा विष्वक् व्येतु— शत्रुओंके तेजस्वी शस्त्र हमपर परिणाम न करते हुए चारों ओर अस्तव्यस्त हो जाय।

३२३ अहिः नः रिषे मा धात्— शत्रु हमारा नाश न करे।

३२४ राये शर्धन्तः अर्यः प्रयन्तु— धनकी स्पर्धा करनेवाले शत्रु दूर हों।

३५० रिरिक्षतः मन्युं प्र मिनाति— शत्रुके क्रोधको वीर दूर करता है।

४०१ देवताता नः मृधः मा कः— युद्धमें हमारे शत्रुओंको सहायता न कर।

४२३।४ शत्रोः नृम्णं मिथत्या विकृण्वन्— शत्रुके बलको हिंसा द्वारा विकृत करके नाश करते हैं।

५११।२ अर्यमा द्वेषोभिः परि वृणक्तु— अर्यमा द्वेषी शत्रुओंको घेरकर रखे।

५१४ विश्वानि दुर्गा नः तिरः पिपृतं— सब विपत्तियोंको हमसे दूर करो।

५१९।३ जनानां द्रुहः अनृता सचन्ते— जनताके द्रोहियोंको असत्य मार्गमें पकडो।

५५३।१ परिभूतिभिः धीतिभिः विश्वानि विदथानि येमुः— शत्रुका पराभव करनेके अनेक सामर्थ्योंसे युक्त सब वीर युद्धस्थानोंका नियमन करते हैं।

५७४ अर्यः तिरः— शत्रुओंको दूर करो।

६१९ द्रुहः अजुष्टं तमः अप आवः— शत्रु भूत अंधकार दूर करता है।

६२५।१ देवी देवेभिः दृळ्हा रुजत्—देवी उषा देवोंके साथ सुदृढ शत्रुओंका नाश करती है।

६२५।२ सत्या सत्येभिः दृळ्हा रुजत्— सत्यनीरा सत्यपालक वीरोंद्वारा सुदृढ शत्रुओंको दूर करती है।

६५९।२ नः पृतनासु दुष्टरः दीर्घप्रयज्यु [illegible] **वनुष्याति तं वयं जयेम**— जो युद्धोंमें पराजित होना कठिन है, जो उत्तम मानवको कष्ट देता है, उस शत्रुपर [illegible] जय पायेंगे।

६६४।१ अन्यः अश्रयन्तं अजामि आ आसिनाति— अन्य वीर शत्रुको दूर करता है।

६६४।२ अन्यः दभ्रेभिः भूयसः अवृणोति— दूसरा वीर थोडे सैन्यसे बडे शत्रुको घेरता है।

६८५।४ शर्वा विषूचः पराचः, अमित्रान् हतं— शत्रुओंको दूर करो और उनका वध करो।

६८६।२ अन्यः प्रसिक्ताः अप्रतीनि वृत्राणि हन्ति— दूसरा वीर बडे शत्रुका वध करता है।

७३२ अर्यः नितोशनासः— शत्रुका नाश करनेवाले वीर होते हैं।

७४९ चर्षणीसहा अस्मभ्यं अवसा आगतं— सेनाका पराभव करनेवाले तुम सब वीर हमारे पास संरक्षणके साथ आओ।

७५४ दुःशंसं दुर्विद्वांसं आभोगं रक्षस्विनं हन्मना हतं— दुष्ट, अज्ञानी, कुटिल, शत्रुका नाश कर।

७८७ वृषशिप्रस्य दासस्य मायाः पृतनाज्येषु जघ्नतुः— शत्रुके कपटोंका नाश करो।

७८८ वर्चिनः असुरस्य शतं सहस्रं वीरान् अघ्नात साकं हथः— बलवान् शत्रुके सैकडों और सहस्रों वीरोंको साथ साथ मारो।

८१८ अघशंसं अघं सं अभि, तपुः ययस्तु ब्रह्मद्विषे, घोरचक्षसे किमीदिने अनवायं द्वेषः धत्तं— पापीद्वेषी, ज्ञान द्वेषी घोर शत्रुका वध कर।

८१९ दुष्कृतः तमसि अन्तः प्र विध्यतं— दुष्टोंको अन्धेरेमें बींधो।

८२० ववृधानं रक्षः निजूर्वथ— बढनेवाले राक्षसको मारो।

८२१ अग्नितप्तेभिः अश्महन्मेभिः तपुर्वधेभिः अजरेभिः अत्रिणः पर्शाने नि विध्यतं, निस्वरं यन्तु— शस्त्रोंसे राक्षसोंको मारो वे चुपचाप भागें।

८२३ भंगुरावतः द्रुहः रक्षसः हतं, दुष्कृते सुगं मा भूत्, यः नः द्रुहा अभिदासति— राक्षसों, दुराचारियोंको मारो।

८२४ असतः वक्ता असन् अस्तु— असत्यभाषी नष्ट होवे।

८२६ स्तेयकृत् स्तेनः रिपुः दभ्रं एतु, स तन्वा तना च निहीयतां— चोर नष्ट हो, वह समूल नष्ट हो।

८२७ स तन्वा तना च परः अस्तु, अस्य यशः परिशुष्यतु, यः दिवा नक्तं दिप्सति— जो दिनरात कष्ट देता है वह विनष्ट होवे, वह सूख जाय, दूर हो जाय।

८७७ रक्षः हन्ति, अरातीः परिबाधते— राक्षस मारते हैं, शत्रु बाधा करते हैं।

८४१ प्रतिचक्ष्व, जागृतं, रक्षोभ्यः वधं अस्यतं, यातुमद्भ्यः अशनिं अस्यतं— देखो, जागो, राक्षसोंपर शस्त्र फेंको, घातपात करनेवालोंपर अस्त्र चलाओ।

शत्रुके लक्षण

वसिष्ठ मंत्रोंमें शत्रुके लक्षण दीखते हैं वे ये हैं- (अ-राति) दान न देनेवाला, कंजूस, कृपण, सार्वजनिक हित करनेके कार्योंमें दान न देनेवाला, (जरूथ) कठोर भाषण करनेवाला, व्यर्थ बहुत बडबडनेवाला, अपने भाषणसे दूसरोंके मनको कष्ट देनेवाला, (अ-जुष्ट) पास जाने अयोग्य, साथमें रहने अयोग्य, प्रीतिसे सेवा करने अयोग्य, (रक्षः) रक्षक करके रहकर घातपात करनेवाला, (अघायु) पापी जीवन व्यतीत करनेवाला, (अररुष) दुष्ट दुर्जन, (धूर्त) धूर्त, कपटी, कुटिल, (पणि) दुष्ट रीतिसे व्यापार, व्यवहार करनेवाला, व्यापार करनेके मिषसे चोरी करनेवाला, (अंहः) पापी, (रिषत्) हिंसक, (अशस्त) अप्रशंसनीय, निंद्य, (शर्धन्) हिंसक, घातपात करनेवाला, (दुराध्य) दुष्ट बुद्धिवाला, घातपातकी ही आयोजना करनेवाला, (पत्यमानः) गिरनेवाला, पतित, (पशु) पशुके समान बर्ताव करनेवाला, (वध्रिवाच्) व्यर्थ बहुत बोलनेवाला, निरर्थक भाषण करनेवाला, (अ-मित्र) जो मित्रता नहीं करता, शत्रुत्व करता है। (वै-कर्णः) सदुपदेश न सुननेवाला, सुननेपर भी उसके अनुसार आचरण न करनेवाला, (द्रुह्) द्रोही, घातपात करनेवाला, द्रोहकारी (व-बष) संयम न करनेवाला, (अनव, अन्-अव) रक्षण करने अयोग्य, जिसका नाश ही होना चाहिये, (मृध्र-वाक्) असत्यभाषी, (दुर्मित्र) मित्र करके रहकर दुष्टता, शत्रुता करनेवाला, (अनिन्द्र) ईश्वर उपासना न करनेवाला, नास्तिक, (मन्यु-म्य) क्रोधी, (भेद) भेद उत्पन्न करनेवाला, फूट उत्पन्न करके बढानेवाला, आपसका विद्वेष बढानेवाला, (एनः) पाप करनेवाला, पाप, पापी, (मान्यमान) घमंडी, गर्विष्ठ, (देवक) हीन देवताका पूजक, क्षुद्र देवताका उपासक, तामस देवताका भक्त, (युध्या-मधि) युद्ध बढानेका इच्छुक, कलह बढानेवाला, (दास) घातपात करनेवाला, विनाश करनेवाला, (शुष्म) शोषण करनेवाला, लुटेरा, (कु-यव) चावलोंको सडाकर बेचनेवाला, दूषित धान्यका व्यापार करनेवाला, (दस्यु) विनाशकर्ता, घातपात करनेवाला, (चुमुरि) कष्ट देनेवाला, घबराहट उत्पन्न करनेवाला, (धुनि) योंही प्रक्षोभ मचानेवाला, (याद्व) यातना बढानेवाला, (वृत्र) घेरनेवाला शत्रु, (पूर्व देवः) पहिले देव करके बताकर पीछेसे शत्रुता करनेवाला, (वनुष्) घातपात करनेवाला, (अ-तू तुजि) दान न देनेवाला, (द्विष्) द्वेष करनेवाला, व्यर्थ द्वेष करनेवाला (अ-हिः) कम न होनेवाला, घातपातोंको बढानेवाला, (अरिः) आक्रमणकारी शत्रु, (मृधः) हिंसक, (अनृत) असत्य मार्गसे जानेवाला, कुटिल, (तमः) अज्ञानान्धकार बढानेवाला, (दीर्घप्रयुज्य) दीर्घ द्वेष करनेवाला, (दुःशंस) जिसकी चारों ओर निंदा होती है, (दुर्विद्वान्) विद्वान होनेपर भी दुष्ट प्रवृत्तीवाला, (आभोग) कुटिल, सर्पके समान कुटिल गतिवाला, (मायाः) कपट, जाल फैलानेवाला, (दुष्कृत) बुरा चालचलन करनेवाला, (अत्रिन्) खानेवाला भोगी, (भंगुरावान्) तोड मरोडनेवाला, (असत्) असन्मार्गसे चलनेवाला, (स्तेयकृत्) चोरी करनेवाला, (स्तेनः) चोर, (रिपुः) शत्रु (परः) अन्य होकर रहनेवाला, (यातुमान्) यातना देनेवाला, कष्ट देनेवाला, जो होता है वह शत्रु है।

यहां शत्रुके करीब करीब साठ लक्षण दिये हैं। इन लक्षणोंसे मनुष्य अपने शत्रुओंको पहचान सकते हैं। शत्रुओंके इतने लक्षण देकर बताया है कि यदि शत्रुओंसे अपने आपको बचाना है, तो कितने लक्षणवालोंको दूर करना चाहिये। मनुष्य मात्र सुख चाहता है। इसलिये उसको शत्रुओंको दूर करना ही चाहिये।

जिस तरह रोगबीजोंको शरीरमें रखनेसे शरीर स्वास्थ्यका

आनंद नहीं मिल सकता, उसी तरह राष्ट्रमें इन लक्षणोंवाले शत्रुओंको रखनेसे राष्ट्रको भी सुख, समाधान तथा आनंद नहीं प्राप्त हो सकता। जितने शत्रु समाजमें रहेंगे, उतने उपद्रव समाजमें बढेंगे और सामाजिक शान्ति सुदूर जाती रहेगी। इसलिये समाजको शान्ति, सुख स्थायी रूपसे देनेके लिये समाजसे ये उपद्रवकारी दुष्ट लोग दूर हटाने चाहिये। इसलिये ऋषिलोग इन दुष्टोंके इतने लक्षण देते हैं। इन लक्षणोंसे मनुष्य इन दुष्टोंको पहचानें और इनसे अपने आपको बचावें और शान्तिका आनंद प्राप्त करें।

संरक्षक सैन्य

९ अनीकं मर्ताः नरः पुरुत्रा विभेजिरे— अपनी सेनाको मनुष्योंके नेता लोग अनेक स्थानोंपर विभक्त करके रखते हैं। देशकी सुरक्षाके लिये अनेक स्थानोंपर अपने सैन्यको रखते हैं। सैन्यको अनेक स्थानोंमें रखना चाहिये।

१०।२ शूराः नरः अदेवीः मायाः अभिसन्तु— शूर लोग आसुरी, कपट जालोंको दूर करें, उनमें न फंसे। सेनासे आसुरी कपटियोंको दूर करें।

८४।१ विश्वेभिः अनीकैः सुमना भव— अपने सब सैनिकोंके साथ उत्तम मनसे व्यवहार करनेवाला बन।

२५० विश्वेषु जनेषु शूरः सैन्यः— सब जनोंमें जो शूर होगा वही सेनाके लिये योग्य है।

३२५ महासेनासः अमेभिः शत्रुं तपन्ति- बडी सेना अपने साथ रहनेवाले अपने बलोंसे शत्रुको तपाते हैं।

३९५ पुरु अनीकः— बहु सेना रखनेवाला वीर अच्छा होता है।

४२३।१ पूर्वीः शासा अभिसन्ति- शत्रुके बडे सैन्यका पराभव अपने उत्तम शस्त्रसे होता है।

२५० विश्वेषु जनेषु शूरः सैन्यः— सब मनुष्योंमें जो विशेष शूर होता है वह सेनामें भरती करने योग्य है। भीरु मनुष्यका सेनामें उपयोग नहीं हो सकता। **(९ अनीकं पुरुत्रा विभेजिरे)** अपने सैन्यको राष्ट्र रक्षणार्थ राष्ट्रमें अनेक स्थानोंपर रखते हैं। जहां जहां दुष्टोंका प्राबल्य होनेकी संभावना रहती है वहां पहिलेसे ही सेना रखी जानेसे वे गुण्ड दब जाते हैं और समाजमें उपद्रव नहीं करते। यह सावधानता राज्यशासकोंको पहिले ही रखनी चाहिये।

राक्षसी कपट जालोंको दूर करना और प्रजाको शान्ति सुखका अनुभव देना यही तो राज्यशासनका कर्तव्य है। इसलिये गुण्डोंके शमन करनेके लिये राष्ट्रमें अनेक स्थानोंमें सेनाकी छोटी मोटी टुकडियां रखना चाहिये। (शासा अभिसन्ति) शस्त्रसे थोडी सेना भी बडे शत्रुका सामना कर सकती है। इसलिये शत्रुके शस्त्रोंसे अपने शस्त्र अधिक तीक्ष्ण रखने चाहिये।

वसिष्ठ ऋषि राज्यशासनका कैसा उपदेश देते हैं यह देखिये।

दक्षको संरक्षक बनाओ।

१ यः दक्षाय्यः नित्यः दमे आस, तं सुप्रतिचक्षं अस्ते अवसे नि ऋण्वन्— जो नित्य दक्ष रहकर अपने घरमें रहता है, उस उत्तम दर्शनीय वीरको घरके संरक्षणके लिये नियुक्त करते हैं। जो दक्षतासे अपने कार्य करता है, उसको रक्षणके कार्यमें नियुक्त करना योग्य है।

१५ समेद्धारं वनुष्यतः उरुष्यात् पापात् निपाति— जगानेवाले वीरका हिंसकोंसे और बडे पापसे संरक्षण हो।

५१।१ वनुष्यतः अवद्यात् नि पाहि— हिंसकों और पापियोंसे संरक्षण करो।

१००।३ अभिशस्ति-पावा भव— शत्रुओंसे अपनी सुरक्षा करनेवाला बन जा।

१०९ यूयं नः सदा स्वस्तिभि पात— तुम सदा हमारा संरक्षण कल्याण करनेवाले साधनोंसे करो।

११४ सः अग्निः नः आमात्यं वेदः विश्वतः रक्षतु उत अस्मान् अंहसः पातु:— वह नेता हमारे साथ रहनेवाले धनको सुरक्षित रखे और हमें पापसे बचावें।

१३६।२ तान् अंहसः पर्तृभिः पिपृहि- उनको पापसे बचानेवाले साधनोंसे बचाओ।

१३६।३ शतं पूर्भिः पिपृहि— सौ नागरिक कीलोंसे उनको सुरक्षित कर। कीलोंमें उनके संरक्षणके सब साधन रखो और उनसे संरक्षण करो।

१६४।२ यमुना तृत्सवः आवन्— यमनियम पालन करनेवाले तथा संकटोंसे पार करनेवाले वीर संरक्षण करते हैं।

१७० अ-जरं क्षत्रं दुनाशं— क्षात्रबल क्षीण न होनेवाला और अविनाशी हो।

१७३ धृषता विश्वाभि: ऊतिभिः प्राव:-- शत्रुके उखाडनेके बलसे सब प्रकारके संरक्षणके साधनोंसे अपने लोगोंका संरक्षण करो।

१७७।३ अवृकेभिः वरूथैः त्रायस्व-- क्रूरतारहित संरक्षणोंसे सबका संरक्षण कर।

१८०।४ नृणां सखा शूरः अविता च भूः-- मनुष्योंका मित्र शूर और उनका संरक्षण करनेवाला हो।

१८१।३ तन्वा ऊती वावृधस्व-- अपने शरीरके द्वारा संरक्षणकी शक्ति बढाओ।

१८१।४ महः एनसः त्राता-- बडे पापसे बचानेवाला वीर है।

१८१।३ युवा नृषदनं अवोभिः जग्मिः- तरुण वीर-मनुष्य रहनेके स्थानमें अपने सब संरक्षण करनेके साधनोंके साथ जाता है।

१८३।२ वीरः जरितारं ऊती प्रावीत्-- वीर वीर काव्योंके गान करनेवालोंका संरक्षणके साधनोंसे संरक्षण करता है।

१८९।४ नृपीतौ वरूथे स्याम-- मानवोंकी सुरक्षा करनेके कार्यमें तथा उनकी सुरक्षाके कार्यमें हम कार्य करनेवाले होकर रहेंगे।

१९९।२ भूरेः सौभगस्य शतं ऊतिः अवः-सभी धनोंकी सुरक्षा सैंकडों साधनोंसे करनी चाहिये।

१९९।४ त्वावतः अभिक्षत्तुः वरूता- तेरे संरक्षणमें रहनेवाला वीर चारों ओर हिंसा करनेवालोंका निवारण करता है।

२०० ते अवसा सभीके अर्यः अभीतिं वनुषां शवांसि वन्वन्तु- अपने बलसे युद्धमें आर्यदलके वीर आक्रमणकारी हिंसकोंके बलोंका नाश करें।

२१७ अविता वृधे असः- हमारा रक्षण और संवर्धन करनेवाला हो।

२२५।१-२ सुदासे शतं ऊतयः सहस्रं शंसाः सन्तु- उत्तम दाताके लिये सैंकडों संरक्षण प्राप्त हों और सहस्रों प्रशंसाएं प्राप्त हो।

२३२।१ यस्य मिथः तुरः ऊतयः- जिसके परस्पर मिले त्वरासे सिद्ध होनेवाले रक्षाके साधन हैं।

२३३।१ वृषभं कृष्टीनां नॄन् ऊतये गृणासि--बलवान्-को मानवोंके नेताओंको सुरक्षित रखनेके लिये स्वीकारता है।

२३५।२ त्वं दृळ्हा-- तू सुदृढ शत्रुके कीलोंको तोडता है।

२३७।१ दाता मघवा नः सहूती, नः ऊती वाजं नियमते-- दाता धनपति हमारे कहनेपर, हमारी सुरक्षा करनेके लिये हमें बल देवे।

२४० हे शवसिन् उग्र! हस्ते वज्रं आदधिषे, घोरः सन् क्रत्वा अषाळहः जनिष्ठाः-- हे बलवान् वीर तुम अपने हाथमें वज्र धारण करता है, तब भयानक वीर बनता है और अपने युद्ध सामर्थ्यसे शत्रुके लिये असह्य होता है।

२७३ अवसे पक्तीः पचत, कृणुध्वं इत्-- संरक्षण करनेवालेके लिये, देनेके लिये अन्न पकाओ, उसके लिये आवश्यक कर्म करो।

२७३ मयः पृणन् इत् पृणते-- वह संरक्षक सुख देता है और हमें पूर्ण करता है।

२७६ यस्य अविता त्वं भुवः स मर्तः वाजयन् वाजं गमत्-- जिसका संरक्षण तू करता है वह मनुष्य अन्न धन प्राप्त करता है।

२७६ अस्माकं रथानां नृणां च बोधि-- हमारे रथों और वीरोंको जानो और उनका संरक्षण करो।

२९२।२ वयं प्रवतः शश्वतीः अपः अतितराम-- हम सब अपनी सुरक्षा करनेमें समर्थ होकर सदा कर्मोंको निर्विघ्नतया कर सकें इतना सामर्थ्य प्राप्त करें।

२९६।३ न रिषाथ-- निर्बल न बनो।

३१८ विश्वासु विक्षु आविष्टः-- सब प्रजाओंमें संरक्षण करे।

३५४।३ धियः अवितारं भगं प्र कृणुध्वं-- बुद्धिका संरक्षण करनेवाले वीरको भाग्यवान करो।

३६०।२ प्रवतः सनिता असि-- संरक्षण करनेवाला धन देता है।

३६०।३ युज्याभिः ऊती अवन्म-- योग्य संरक्षणोंसे हम सुरक्षित होंगे।

जाय । (पूर्भिः पिपृहि) कीलोंसे नगरों और राष्ट्रका संरक्षण कर । कीलोंमें संरक्षणके सब उत्तमोत्तम साधन रखे जांय और उनसे संरक्षण किया जाय ।

(अजरं क्षत्रं दुणाशं) विशाल क्षात्रबल विनष्ट नहीं होता, वही संरक्षण करता है । इसलिये अपने लोगोंका क्षात्रबल क्षीण न हो इसके लिये यत्न करना चाहिये । राष्ट्रमें क्षात्रबल बढाना चाहिये । (ऊतिभिः प्रावः) संरक्षणके उत्तम साधनोंसे हमें सुरक्षित कर । रक्षणके सब साधन अपने पास तैयार रहने चाहिये । इस विषयके यत्नमें त्रुटी नहीं होनी चाहिये ।(वरूथैः त्रायस्व) संरक्षक कवचोंसे बचाव करो । कवच जैसा संरक्षण करता है वैसी संरक्षणकी योजना करो और अपना बचाव करो। (शूरः अविता) जो शूर होता है वही उत्तम संरक्षक होता है। इसलिये वीरोंको अपने पास संरक्षक करके रखो । (ऊती वावृधस्व) संरक्षणके साधन बढाओ । जिनसे संरक्षण होता है वैसे सब साधन अपने पास रखो ।

(अभिक्षत्तुः वरूता) हिंसक दुष्ट शत्रुओंका निवारण करना चाहिये । (अर्यः वनुषां शवांसि वन्वन्तु) आर्यदलके वीर हिंसक बलोंका नाश करें और अपना संरक्षण करे । (अविता वृधे असः) रक्षक वीर वर्धन करनेवाला होता है । (शतं ऊतयः सन्तु) सैंकडों संरक्षक साधन अपने पास रखो । रक्षणके साधनोंमें न्यूनता न हो । (मिथः तुरः ऊतयः) जो लोग आपसमें संघटित होकर रहते हैं, उनके लिये संरक्षणके साधन शीघ्र ही उपस्थित रहते हैं। आपसकी संघटना और रक्षाके साधन साथ साथ रहने चाहिये ।

(कृष्टीनां वृषभं ऊतये) मानवोंमें जो बलवान होते हैं उनको संरक्षणके कार्यके लिये नियुक्त करना योग्य है । बैल जैसे बलवान पुरुष संरक्षणके कार्यके लिये लगाना योग्य है । (घोरः सन् अषाळ्हः) जो भयंकर वीर होता है वह शत्रुका पराभव करता है । इसलिये मनुष्य बल वीर्य शौर्यसे विशेष उग्र बनें और अपना रक्षण करें ।

(विश्वासु विक्षु अविष्टः) सब प्रजाजनोंतक संरक्षण पहुंचना चाहिये । राष्ट्रमें कोई मनुष्य असुरक्षित नहीं रहना चाहिये । हम सब सुरक्षित हैं ऐसा सब नागरिकोंको प्रतीत होना चाहिये । (धियः अवितारं भगं कृणुध्वं) बुद्धिका संरक्षण करनेवालेके लिये पर्याप्त धन दो । क्योंकि बुद्धिका संरक्षण हुआ तो ऐश्वर्य भी प्राप्त होता है । इसलिये धनसे बुद्धिके संरक्षणका महत्त्व विशेष है ।

(विश्वेभिः पायुभिः सूरीन् पातु) सब संरक्षक साधनोंसे ज्ञानियोंका संरक्षण होना चाहिये । राष्ट्रका उत्थान ज्ञानियोंसे होता है । इसलिये विपत्तियोंके समय ज्ञानी विज्ञानीयोंका संरक्षण करना चाहिये । वे सुरक्षित रहे तो राष्ट्रका उद्धार निःसंदेह होगा । (विप्राः अमृताः अवतं) ज्ञानी न मरकर सब अन्योंका संरक्षण करें । ज्ञानियोंका प्रथम संरक्षण हो और वे अनेक युक्तियोंसे राष्ट्रका संरक्षण करें ।

(ऊमाः यज्ञियासः) संरक्षक वीर पूजनीय होते हैं, क्योंकि वे ही सबको सुरक्षा देकर बचाते हैं । इसलिये बचानेवाले माननीय होने ही चाहिये । (अर्वन्तः निपान्तु) प्रगतिसंपन्न वीर सबका संरक्षण करें । रक्षकोंमें गति चाहिये । शत्रुसे इनकी गति अधिक चाहिये जिससे वे शत्रुको पकड सकेंगे । (दुरः उपचर) द्वारोंका संरक्षण कर । घरके द्वार, नगरके द्वार, राष्ट्रके द्वार सुरक्षित रखने चाहिये । रक्षकोंको वहां रखना चाहिये । (सजोषाः अवसे भूत) सब उत्साही वीर रक्षणके काममें लगें ।

(भुवनस्य गोपाः सन्तु) राष्ट्रके संरक्षण करनेवाले अच्छे रक्षक हों । (वास्तोष्पते प्रतरणः भव) हे रक्षक ! हे भूपते ! उत्तम संरक्षण करनेवाला हो । (नः वरं पाहि) हमारे अंदर जो श्रेष्ठ होगा उसका संरक्षण कर । (अनिमिषं रक्षमानाः) आंख बंद न करते हुए अपना संरक्षण करते रहो । आलस्य छोडकर अपना रक्षण करो । (यामन् प्रावीः अस्तु) शत्रुपर आक्रमण करना हो तो वह भी अपनी सुरक्षा करनेवाला होना चाहिये । नहीं तो इधर शत्रुपर आक्रमण करेंगे और उधर घरमें लूटे जायंगे । (दूतः अजीगः) रक्षक, सेवक जागता रहे । उसको तो सदा जागना ही चाहिये । वह सोया तो सुरक्षा कौन करेगा ?

(विश्वाः पुरंधीः आविष्ठं) सब विशाल नगररक्षक बुद्धियोंको सुरक्षित रखो । जिससे अपना संरक्षण किया जा सकता है उन बुद्धियोंको सुरक्षित रखो । बुद्धिको विनष्ट होने न दो ।

वसिष्ठ ऋषिका ऋषि

आदर्श-पुरुष-दर्शन

निरुक्तमें श्रीमान यास्काचार्य लिखते है कि—

यत्काम ऋषिः, यस्यां देवतायां, आर्थपत्यं इच्छन्, स्तुतिं प्रयुंक्ते, तद्देवतः स मन्त्रो भवति ।
निरु. ७।१।१

जिस कामनाका धारण करता हुआ ऋषि, जिस देवतामें, इस अर्थका मैं स्वामी बनूंगा ऐसी इच्छा करता हुआ, स्तुतिका प्रयोग करता है, उस देवताका वह मन्त्र होता है। यहां तीन भाव हैं—

१ ऋषिके मनमें किसी कामनाकी उत्पत्ति होनी,
२ किसी देवताके लिये उसने स्तुतिका प्रयोग करना,
३ 'मैं इससे इस अर्थका स्वामी बनूंगा' यह ऋषिके मनमें विचार रहना

ये तीन बातें यहां हैं। ऋषिके सामने अग्नि, वायु, जल आदि देवताएं रहती हैं, वैसी वे देवताएं हम सबके सामने रहती ही है। इस विश्वभरमें सर्वत्र देवताएं ही देवताएं हैं। कोई स्थान देवताओंसे खाली नहीं है। हम देवताओंको देखते हैं, उनसे संबंध रखते हैं और उनका उपयोग भी हम सब करते ही हैं। उनके विषयमें बुरा भला कहते भी हैं।

यह जल, वायु अच्छा है, यह भूमी ठीक नहीं है। यह वनस्पति उपयोगी है आदि प्रकार हम इन देवताओंके संबंधका ही वर्णन करते हैं। इसी तरह ऋषि करते थे।

पर उनमें दो बातें विशेष रूपसे थीं। (यत्काम ऋषिः) किसी कामनाकी पूर्ति करनेकी इच्छा उनके मनमें रहती थी और (आर्थपत्यं इच्छन्) इससे मैं इस अर्थका स्वामी बनूंगा ऐसी महत्त्वपूर्ण आकांक्षा उनके मनमें रहती थी। ऐसी परिस्थितिमें ऋषियोंके मनमें जो स्फुरण हुआ वे ये वेदमंत्र हैं। अग्नि आदि देवताएं हमारे सामने रहतीं हैं, पर उन देवताओंमें हम जो बातें नहीं देखते, उन बातोंका साक्षात्कार ऋषियोंने उन देवताओंमें किया था। इसीका अर्थ 'अर्थपति' होनेकी इच्छा है। 'मैं इस अर्थका पति बनूंगा' और इस अर्थके स्वामी बननेका मार्ग यह देवता इस रीतिसे बताती है ऐसा देखना ही उसका साक्षात्कार देवताके रूपमें करना है।

अब हम क्रमशः वसिष्ठ ऋषिके मन्त्रोंमें इन देवताओंके अन्दर किसका साक्षात्कार किया था, यह देखेंगे और इससे जानेंगे कि वसिष्ठ ऋषि (यत्काम ऋषिः) किसकी कामना मनमें धारण कर रहे थे और (आर्थपत्यं इच्छन्) किस अर्थका पति होनेकी उनमें इच्छा थी और उनको वह सिद्धि किस तरह हुई थी।

हम प्रथम अग्निदेवताके मंत्र लेंगे। ये करीब १६५ मंत्र हैं। ऋग्वेदमें १४५ हैं और शेष ६ मंत्र अथर्ववेदमें तथा अन्य संहिताओंमें हैं। इन मंत्रोंमें अग्निका वर्णन अपने अन्तःकरणके स्फुरणसे, किसीके प्रलोभनसे नहीं, करते हैं। यह वर्णन करते हुए वसिष्ठ ऋषि इस अग्निदेवतामें ज्ञान, गुण देखते हैं—

ज्ञानी अग्नि

"५० **कविः** (६७), ८७ **कवितमः**, ८९ **अमूरः कविः**" ये नाम इन मंत्रोंमें हैं। इनका अर्थ 'कवि, उत्तम कवि, अमूढ अर्थात् ज्ञानी कवि' हैं। अग्निमें कवित्व यहां ऋषिने साक्षात्कार करके देखा है। अर्थात् यहां उस अग्निका वर्णन है कि जो उत्तमसे उत्तम काव्य करनेवाला है और जो (अ-मूरः) मूढ नहीं है। उत्तम ज्ञानी है।

"४८ **गृत्सः** (विद्वान्, ज्ञानी), ४९ **सुचेताः**, ५० **प्रचेताः**" ये पद भी ज्ञानी, विद्वान् जिसका चित्त ज्ञानसे पवित्र हुआ है ऐसे प्रशंसनीय उत्तम अन्तःकरणवाले विशेष विद्वानका वर्णन कर रहे हैं।

"७७ **ब्रह्मा**, १२८ **सुब्रह्मा**" ये पद भी बडे ब्रह्मवित्के बोधक हैं। सब विद्वानोंमें जो अत्यंत माननीय होता है उसको ब्रह्मा कहते हैं। यज्ञस्थानमें ब्रह्मा सर्वोपरि होता है। ऐसा यह ब्रह्मा यह अग्नि है। '१२८ **सुशमी**' इन्द्रियोंको

शमन करनेवाला, मनको शान्त करनेवाला जो ज्ञानी है वह सुशर्मा कहलाता है। ' **४४ जात-वेदाः (९०)** ' जिससे वेद बने या प्रकट हुए। जिससे ज्ञान फैलता है, जो वेदोंका ज्ञाता है, (जातं वेत्ति) जो प्रकट हुए वस्तुमात्रको यथावत् जानता है, जो पदार्थ विद्याको जानता है और आत्मविद्याको भी जानता है, ऐसा सर्वज्ञ जो है वह जातवेदा है। इसीलिये कहा है वह " **८७ केतं दधाति** " ज्ञानका धारण करता है, जो ज्ञानी है, जिसमें ज्ञान विज्ञान परिपूर्ण रहता है।

' **१०८ ब्रह्मणे गातुं विंद** ' ज्ञान प्रसार करनेका मार्ग जो जानता है, स्वयं ज्ञानी होकर जो दूसरोंको ज्ञानी बनाता है। अतः कहते है कि ' **८८ विशां तमः तिरः ददर्शे** ' प्रजाजनोंमें जो अज्ञानान्धकार है उसको जो दूर कर सकता है और दूर करके प्रजाजनोंको ज्ञान देता है। यह ' **५० अकविषु मर्तेषु कविः निधायि** ' अज्ञानी मानवोंमें यह बडा ज्ञानी होकर रहता है, उनको ज्ञानसंपन्न करनेके लिये यह उन्हींमें रहता है। अपने ज्ञानी होनेकी घमण्ड नहीं करता परंतु अपने लोगोंमें रहता है और उनको ज्ञानी बनानेका यत्न करता है। ' **६७ केतुः** ' यह ज्ञानका ध्वज है। यह ज्ञानका सूचक है, ज्ञानका चिन्ह है। जिस तरह ध्वज किसी संगठनकी सूचना देता है, उस तरह यह ज्ञानकी संघटनाको सूचित करता है, इसलिये यह ज्ञानका ध्वज जैसा है। ' **२४ महो सुवितस्य विद्वान्** ' यह बडे कल्याणके साधन करनेके मार्गको यथावत् जानता है और यह सबको वह निश्रेयसका मार्ग बताता है। यह ' **८७ उषसां उपस्थे अबोधि** ' उषःकालके पहिले जागता है, उठता है और अपना ज्ञानप्रसारका कार्य करता है।

' **६१ अपाचीने तमांसि मदन्तीः शचीभिः प्राचीः चकार** ' गाढ अज्ञानान्धकारमें ही आनन्द माननेवाली अनाडी प्रजाजनोंको इसने अपनी अद्भुत शक्तियोंसे ज्ञानके प्रकाशमें लाकर अभ्युदयके सरल मार्गपर चलाया। ज्ञानदान देकर उन्नतिका उत्तम मार्ग बताया। यह ' **४७ यः दैव्यानि मानुषा जनूंषि विद्मना जिगाति** ' जो दिव्य मानवी जन्मोंके वृत्तांतोंको उत्तम रीतिसे जानता है, जो इतिहासका तत्त्व जानता है और उससे योग्य लाभ कैसा लेना यह अपने ज्ञानसे समझता है। तथा ' **९१ गणेन ब्रह्मकृतः** शर्म ... ' संघटनामें रहकर जो ज्ञान प्रचार करते हैं उनको कभी कष्ट नहीं देता, अर्थात् ऐसे ज्ञानियोंको उन्नत करता है। इसलिये कहते हैं कि ' **१४ सहस्रपाथाः तनयः अक्षरा समेति** ' सहस्रों धनान्नके स्तोत्रोंसे युक्त पुत्र साक्षर हो। ज्ञानी बने।

अग्निके ये विशेषण वसिष्ठ ऋषिके अग्निसूक्तोंमें आये हैं। ऊपर जहां मन्त्रभाग दिया है वहां उसका मन्त्रांक भी दिया है वहां उस भागको मन्त्रमें पाठक देख सकते हैं। अब यहां प्रश्न यह है कि क्या ये विशेषण अग्नि-आग में चरितार्थ हो सकते हैं? चरितार्थ होते हैं ऐसा कहना कठिन ह। फिर सत्य विद्या प्रकाशक, स्फुरणसे प्रकट हुए वेदमंत्रोंमें ये कैसे आये है? इसका विचार करना है।

यह बात है कि जो ' **यत्काम ऋषिः यस्यां देवतायां आर्थपत्यं इच्छन्** ' इस निरुक्त वचनसे व्यक्त होती है। ऋषि कुछ असाधारण कामना धारण करता है और कुछ असाधारण अर्थका पति बननेकी इच्छा करता है। ऋषि तो साधारण भोगकामनामें फंसनेवाले होते ही नहीं, वहां उनकी परिस्थिति ही पवित्र रहती है। वहां वे असाधारण पवित्र परिस्थितिमें रहते हैं और विश्वकल्याणका विचार उनके मनमें सतत रहता है। इसलिये उनकी कामना भी विश्वकल्याणकी और उनका अर्थपति होना भी विश्वकल्याणके कार्यक्रमका एक भाग होता है। यह असाधारण विश्वकल्याणकी कामना धारण करके, विश्वकल्याणकी साधना करनेके लिये ही वे अर्थपति बनना चाहते हैं। ये ऋषि यज्ञाग्नि सिद्ध करके सामने रखते है और उसमें हव्य पदार्थोंका हवन करके अग्नि प्रदीप्त प्रज्वलित अतएव प्रसन्न हुआ है, उसकी ज्वालाएं प्रसन्नतासे ऊपर उठ रहीं हैं, चारों ओर उनका प्रकाश हो रहा है, उजाला हुआ है, अन्धेरा दूर हुआ है, अच्छी तरह मार्ग दीखने लगा है, यह देखकर अग्नि अन्धकार—अज्ञानान्धकारको दूर करता है, ज्ञानका प्रसार करता है, मार्ग बता रहा है ऐसा काव्य उनके पवित्र अन्तःकरणमें सहजस्फूर्तिसे स्फुरित होता है। इसलिये इस अग्निमें ज्ञानीका दर्शन होता है। वह काव्यकी दृष्टीसे योग्य ही है।

अग्नि वास्तवमें ' अग्+नी ' है। (अगति) ' अग् ' धातुका अर्थ जाना, प्रगति करना, अभ्युदय प्राप्त करना है। (नयति) ' नी ' धातुका अर्थ ले जाना, चलाना, संभालकर ले चलना, साथ देकर ले जाना है। इस तरह ' अग्-नी '

इन दो धातुओंका मिलकर अर्थ 'प्रगतिका साधन करनेके लिये ले जाना' है। यह जो करता है वह अग्नि है। अग्रतक ले जाता है, अन्ततक पंहुचाता है। रातके घने अन्धेरेमें मार्ग दर्शाकर लोगोंको इष्ट स्थानपर पहुंचानेका कार्य अग्नि करता है, दीप करता है, जलती हुई लकडी भी मार्ग दर्शाती है यह 'अग्+नी' है, अग्रतक ले चलती है। इसी तरह अग्रणी भी अनुयायियोंको अन्तिम प्राप्तव्य स्थानतक ले जाता है और वहां पहुंचानेकी सहायता करता है, मार्गमें सुरक्षा करता है और अन्ततक निःसंदेह पहुंचाता है। ज्ञानी इसी तरह समाजका अग्निके समान मार्गदर्शक ही है।

पुरुषार्थी अग्नि

जो ज्ञानी होता है, जो जनताका मार्गदर्शक अग्रणी होता है उसको समाजके हितके लिये बडा यत्न करना होता है। विना प्रयत्नके कुछ भी सिद्धि हो नहीं सकती। इसलिये अग्निके विशेषणोंमें निम्नलिखित पुरुषार्थ बोधक वचन आगये है—

'**३४ कर्मण्यः**'—कर्म करनेमें प्रवीण, कुशलताके साथ कर्म करनेवाला, पुरुषार्थी, सतत प्रयत्नशील, उद्यमी, '**४६ क्रतु ; ४५ सुक्रतु** ८८ '—उत्तम कर्म करनेवाला, कर्म करना जिसका स्वभाव है, तथा '**१०८ इर्यः परिज्मा**' —जो कर्मकी प्रेरणा करता है और चारों ओर भ्रमण करके जो जनतामें उत्साहमयी प्रेरणा देता है। '**१२८ द्रुद्रवत्**' — जो वेगसे चलता है, द्रुतगतिसे कार्य करता है, प्रयत्नोंकी शीघ्रता करता है। प्रयत्नोंकी पराकाष्ठा करता है।

ये सब विशेषण प्रयत्नशीलताके वाचक हैं। पुरुषार्थ प्रयत्न इन पदोंसे प्रकट होता है। अग्निके कारण कितने कार्य होते हैं। स्वयं जलता रहता है और दूसरोंको प्रकाश देता है। मार्गदर्शन करता है। जीवित रहता है तबतक उजाला देता है। गति करता रहता है। लकडियोंको खाता है, अन्धेरारूपी शत्रुको जलाता, दूर करता है। अन्न पकाकर लोगोंको पुष्टी देता है। सहायक होता है। अग्नि सतत यज्ञ करता और करवाता है। यज्ञशीलताका यह उत्तम उदाहरण है।

दक्ष अग्नि

अग्नि अपने कर्ममें दक्ष रहता है। इसलिये उसके विशेषण '**२ दक्षाय्यः, ६ सुदक्षः** (२८, ३४)' सार्थक होते हैं। अग्नि सदा दक्षतासे प्रकाश देता ही रहता है, वैसा अग्रणी दक्षतासे अपने कर्तव्य करे।

अहिंसाका व्रत

अग्नि अहिंसाका व्रत पालन करता है इसलिये उसको '९८ **अध्वरस्य प्रकेतः, ११० अध्वरस्य होता**' कहते है। इन पदोंका अर्थ यह है कि यह हिंसा, कुटिलतारहित कर्म करता है। अध्वर नाम यज्ञका है। '**ध्वरा हिंसा तदभावो यत्र सोऽध्वरः**' जिस कर्ममें कुटिलता, टेढापन, वक्रता, हिंसा नहीं है उस कर्मका नाम अध्वर है। यह अध्वर—हिंसारहित कर्म करता है। इसलिये कहा है कि '२८ **यः अध्वराय सं महेम**' जो हिंसारहित, कुटिलतारहित कर्मका संपादन करता है इसलिये इसका हम गौरव करते हैं। यज्ञमें 'दिव्य विबुधोंकी पूजा, लोगोंकी संघटना और दीनोंकी सहायता' होती है। ये कर्म संघटनाके सहायक है, अतः ये दक्षतासे करने चाहिये और हिंसक वृत्ति छोडकर ही करने चाहिये।

सत्यभाषण करनेवाला

अग्नि सत्यभाषण करनेवाला है, इसलिये उसका वर्णन '**२८ सत्यवाक्; १९ ऋतावा** (३७; ७६) इन पदोंसे किया जाता है। '**अग्निर्वाक् भूत्वा मुखं प्राविशत्** (ऐ० उ०)' अग्नि वाणीका रूप धारण करके मुखमें प्रविष्ट होता है। मनुष्यके शरीरमें 'वाणी' अग्निरूप है। '**७६ मधुवाचा**' - मधुर भाषण करनेवाला। वाणी मधुरभाषण द्वारा मित्र बनाती है और कटुभाषणसे मित्रों और भाईयोंमें कलह उत्पन्न करके महायुद्ध निर्माण करती है। भाषणरूप अग्निका यह प्रताप है। शब्द आग्नेयी शक्ति है। समाजमें 'अग्रणी' अग्नि है। वह सत्यभाषणी होना चाहिये। वास्तवमें देखना चाहिये कि ये अग्निके विशेषण जो अग्निके लिये प्रयुक्त हुए हैं, वे 'आग' के लिये ठीक होंगे अथवा 'ज्ञानी अग्रणी' के लिये ठीक तरहसे चरितार्थ होंगे। अग्निमें 'आदर्श पुरुषका दर्शन' यहां ऋषि कर रहे हैं इसलिये ये आदर्श पुरुषके ही विशेषण हैं।

'**९३ हरिः**' (दुःखोंका हरण करनेवाला) यह विशेषण अग्निका है। शीत बाधाका दुःख अग्नि दूर करता है। इसी तरह 'ज्ञानी अग्रणी' जनताके सब कष्टोंको दूर करता है और उन सब अनुयायियोंको सुखमय अवस्थातक पहुंचा देता है।

पवित्र करनेवाला अग्नि

अग्नि पवित्रता करनेवाला है, इसलिये उसके ये विशेषण है—

' ८ पावकः (पवित्र करनेवाला); ४५ **शुचिः** (शुद्ध, पवित्र); ४७ **सुपूतः** ' (उत्तम पवित्र) ये अग्निके विशेषण उसका स्वभाव पवित्रता करनेवाला है, ऐसा बता रहे है । ये जैसे अग्निके विशेषण हैं उसी तरह ये अग्रणी नेताके भी हो सकते हैं । पर—

' **४८ शुचि-दन्** ' (शुद्ध दांतवाला), अपने दांत शुद्ध स्वच्छ तथा निर्मल रखनेवाला, यह विशेषण अग्निपर काव्य दृष्टीसे ही लग सकेगा और मनुष्यपर ठीक तरह लग सकेगा । ' **८९ शिवः** ' यह विशेष वह शुद्ध है, पवित्र तथा कल्याण-कारी है ऐसा सिद्ध कर रहा है ।

' १०६ **विश्व-शुक्**; १०९ **शुक्र-शोचिः**, ११० **भद्र-शोचिः** ' ये अग्निके विशेषण वह विश्वको प्रकाशित करता है ऐसा भाव बता रहे हैं । अग्नि साक्षात् अपने प्रकाशसे विश्वको प्रकाशित करता है और ज्ञानी अपने ज्ञानके प्रकाशसे विश्वको प्रकाशित करता है ।

' **८ तेजस्वी, २१ सुदीतिः, २६ बृहच्छोचिः, ३७ तपुर्मूर्धा, ४५ स्वया तन्वा रोचमानः, ४७ भानुः** (६७), **६० शोशुचानः, ७२ देवः, ९० समनगा अशुचत्**, ये सब विशेषण अग्नि प्रकाश गुण है यह भाव व्यक्त कर रहे हैं । विद्वानपर ये कविकल्पनासे सार्थ होंगे । ' **५८ मानुषीः विशः अभिविभाति** ' मानवी प्रजाओंको यह चारों ओरसे प्रकाशित करता है, यह भी विशेष वर्णन वैसा ही दोनों ओर लगनेवाला है ।

प्रसन्न मनवाला अग्नि

अग्निके वर्णनमें उसके मनका वर्णन वसिष्ठके मंत्रोंमें आया हैं । वह देखने योग्य है— ' **९ सुमनाः**, (उत्तम मनवाला), **७४ मन्द्रः** (आनन्द, प्रसन्न), **८४ विश्वेभिः अनीकैः सुमना भुवः** (सब सैनिकोंके साथ प्रसन्नचित्तसे रहो ।) **८४ सुजातः** (उत्तम कुलमें उत्पन्न होनेसे उत्तम मनवाला), **१०६ धियं धाः** (उत्तम बुद्धिका धारण करनेवाला, **९३ धियं हिन्वानः** (बुद्धिको शुद्ध कार्यमें प्रेरित करनेवाला) ये सब अग्निके विशेषण अग्निमें अच्छी तरह नहीं घटते, परंतु ज्ञानी नेतापर ठीक तरह घट सकते है । उनमें भी ' सब सैनिकोंके साथ प्रसन्न मनके साथ बर्ताव करो ' यह मंत्रभाग सेनापति आदि सेनाके अधिकारियोंके लिये उत्तम रीतिसे मार्गदर्शक होनेवाला है । किसी कार्यके अधिकारीको यह उपदेश सदा ध्यानमें धारण करने योग्य है । वह इस उपदेशके अनुसार अपने अनुयायियोंके साथ बर्तेगा, तो वे भी संतुष्ट रहेंगे और कार्य उत्तम होगा अन्यथा यदि अधिकारी चिडचिडा रहेगा, तो उसके चिडचिडेपनसे उसके अनुयायी भी चिडचिडे बनेंगे और सब कार्य बिगड जायगा । इसलिये ' सैनिकोंके साथ सेनापति प्रसन्नचित्तसे बर्ताव करे ' यह उपदेश हरएकके लिये अपने अपने क्षेत्रमें निःसंदेह उपयोगी होनेवाला है ।

न दबनेवाला अग्नि

किसीके दबावमें आकर दब जाना और उसके दबावसे कार्य करना किसीको भी उचित नहीं है । इसलिये ' **१२५ अनाधृष्टः, १२६ अदाभ्यः** ' शत्रुके दबावसे न दब जानेवाला, ये विशेषण वीरताका प्रकाश बढानेवाले हैं । इस विश्वमें वीर पुरुष ही विजयी होते हैं अतः वे किसीके दबावमें आकर न दब जांय, परंतु अपने कर्तव्यका विचार करके स्वधर्मानुसार जैसा करना चाहिये वैसा आचरण करें ।

भक्ति करनेवाला अग्नि

अग्निके वर्णनमें वह देवताकी भक्ति करता है ऐसे भी नाम आगये हैं । **३४ देव-कामः** (देवकी भक्ति करनेवाला'), **९४ देव-यावा** (देवोंके पास जानेवाला), **९४ वनिष्ठः** (उत्तम भक्ति करनेवाला) ये विशेषण उसके उत्तम देवभक्त होनेका वर्णन कर रहे हैं । इससे वह ' ५० **अमृतः** (अमर), १२१ **अमर्त्यः** (जो मरणधर्मा नहीं) ' कहलाता है । मनुष्य मरणधर्मा हैं, परंतु वह देवत्व प्राप्ति करनेके पश्चात् अमर होता है ।

यज्ञकर्ता अग्नि

अग्निके वर्णनमें ' **७४ होता** (७७); **१३१ होता, पोता, प्रचेताः** ये पद आये हैं । अन्यत्र ' **पुरोहित, अध्वर्यु, ऋत्विज्** ' ये भी नाम अग्निको दिये हैं । ये मानवोंमें जो याजक हैं उनके लिये प्रयुक्त होते हैं, परंतु गौणभावसे अग्नि-पर लग सकेंगे ।

' **४१ अतिथिः** (अतिथिवत् पूज्य), **८९ मित्रः अतिथिः** (जो मित्र और अतिथि भी है ।) ये पूज्य पुरुषके वाचक पद है । ये अग्निपर गौणभावसे लगेंगे ।

यज्ञसे संघटन होता है और संघटनसे बल बढता है। इसलिये बलवाचक नाम भी अग्निके लिये प्रयुक्त हुए हैं।

बलवान अग्नि

अग्नि बलवान् है, वह धधकने लगता है उस समय वह बडे बडे वनोंको भी जलाकर खाक कर देता है। यह बल प्रत्येक मनुष्य जान सकता है। यह बलका आदर्श मनुष्य अपने सामने रखे और वैसा अप्रतिम बलवाला बननेका यत्न करे। इसके बलका वर्णन करनेवाले पद जो वसिष्ठके मंत्रोंमें है वे ये हैं—

'९३ **वृषा** (बलवान्), **३९ वृष्णः** (सामर्थ्यवान्), **१४ वाजी** (शक्तिमान्) ८ **शुक्रः** (४७) वीर्यवान्; ५ **सहस्यः** (शत्रुका आक्रमण होनेपर भी जो अपने स्थानपर सुरक्षित रहता है); ५० **सहस्वः**; ७१ **सहमानः** (स्वयं इतना बलवान् कि जो शत्रुसे हिलाया नहीं जा सकता); २८ **असु-रः** (प्राणके विशेष बलसे युक्त); ४२ **ते शुष्मः दिवः एति** (तेरा बल द्युलोकतक फैलता है); ४० **यस्य पाजः पृथिव्यां तृषु अश्रेत्** (जिसका बलयुक्त तेज पृथिवीमें शीघ्र ही चारों ओर फैलता है); २१ **सहसः सूनुः**; १२१ **सहसः यहुः**; (बलका पुत्र, बलके लिये प्रसिद्ध वीर पुत्र); १२७ **ऊर्जः न पात्** (बलकी हानि न करनेवाला, बलको न गिरानेवाला, बलको स्थायीरूपसे सुस्थिर रखनेवाला) ८४ **स्वयं तन्वं वर्धमानः** (स्वयं अपने शरीरको बढानेवाला, अपना शरीर हृष्टपुष्ट तथा बलशाली बनानेवाला); ७० **यह्वः**; १४ **वीळुपाणिः** (बलवान् तथा बलवाले हाथोंसे युक्त); ७० **सहोभिः विशः निरुध्य बलिहृतः चक्रे** (जो अपने सामर्थ्योंसे दुष्ट प्रजाजनोंका निरोध करके उनसे कर लेता है, इतना सामर्थ्यवान् जो है।)

ये सामर्थ्यवाचक अग्निके विशेषण समर्थ पुरुषका आदर्श लोगोंके सामने रखते हैं। वीर ऐसे सामर्थ्यवान् बनें। घर-घरमें ऐसे तरुण बनें कि जो शत्रुका पराभव करें और अपना विजय संपादन करें। कोई निर्बल न रहे। वीर्य, धैर्य, शौर्य, पराक्रम सामर्थ्यसे सब पुरुष प्रभावी बनें।

यशस्वी अग्नि

जो बलवान् शूर वीर पराक्रमी और प्रभावी होते हैं वे यशस्वी होते हैं। इसलिये वेदमंत्रोंमें अग्निको यशस्वी करके वर्णन किया है। ६४ **पृथु- श्रवः** (जिसका यश बडा विशाल है); १०८ **भुवना व्यख्यः** (सब भुवनोंमें जो सुप्रसिद्ध है); १३४ **दीर्घश्रुत् शर्म** (जो विशाल यशसे युक्त सुख देता है); १२३ **वीरवत् यशः दाति** (जो वीर पुत्रोंके साथ विशाल यश देता है।)

जो शौर्य धैर्य वीर्यके प्रभावसे युक्त होगा वह यशस्वी होगा। इसमें कोई संदेह ही नहीं है। मनुष्यके सामने यह आदर्श है और अग्निके वर्णनसे इस आदर्शको लोगोंके सामने दिव्य कविने रखा है।

गृहस्थी अग्नि

अग्निको '' **गृहपतिः** '' (१; १३१) कहा जाता है। गृहका पालन करता है। गृहमें रहता है। ' **२ नित्यः दमे अस्ते** ' अपने घरमें सदा रहता है। इधर उधर भटकता नहीं। दूसरोंके घरोंमें जाकर व्यर्थ बैठनेमें समय व्यतीत नहीं करता। ' **७७ नृषदने असादि** ' मनुष्योंके रहनेके योग्य घरमें निवास करता है। ' **११३ दमे दमे निषसाद** ' अपने अपने घरमें आनंदसे रहता है। अपने घरका पालन करता है।

घरका क्षेत्र छोटा बडा हो सकता है। जहां अपना रहना सहना होता है वह अपना घर तो है ही, अपने ग्रामको भी अपना घर आलंकारिक रीतिसे कह सकते हैं, इसी तरह अपना प्रान्त और अपना देश भी अपना घर कहा जाता है। इस अपने घरमें रहना, इस घरका संरक्षण करना, इस घरमें प्रकाशित होते रहना, इसपर किसीने आक्रमण किया तो उस शत्रुका पराभव करना और अपने घरका रक्षण करना, इस अपने घरमें विबुधोंको बुलाना और यहां अपने द्वारा चलाये यज्ञमें उनकी सहायता प्राप्त करना ये कार्य गृहपती-गृहस्थी-के है। अग्निके वर्णनमें ये कार्य वर्णन किये गये हैं।

तरुणी गृहपत्नी

पूर्वोक्त तरुण गृहस्थीके लिये उत्तम तरुणी गृहपत्नी अवश्य चाहिये। ' गृहिणी ' ही गृहपत्नीको कहते हैं। घरको चलानेवाली वह होती है। इस विषयमें वसिष्ठ मंत्रोंमें एक उत्तम स्मरण रखने योग्य वाक्य आया है, वह यह है—

६ **यं सुदक्षं युवतिः दोषावस्तः उपैति।**

' उत्तम दक्ष गृहपतिके पास युवती स्त्री-धर्मपत्नी-दिन

रात जाती है । ' अर्थात् पति उत्तम दक्ष चाहिये, अपने कर्तव्य निर्दोष रीतिसे करनेवाला चाहिये । ऐसा जो कर्तव्यदक्ष पति होगा उसके पास तरुणी स्त्री दिन रात रहनेकी इच्छा करती है । हां, सती पत्नी किसी तरह अपना कार्य करने या न करनेवाले पतिके साथ रहेगी, पर उसके मनमें प्रसन्नता नहीं रहेगी। पर जो पति कर्तव्यमें दक्ष, तेजस्वी और प्रभावी होगा उसका सहवास वह पत्नी आनन्दसे चाहेगी। इस कारण पुरुषोंको चाहिये कि वे तेजस्वी, शूर, प्रभावी, विजयी, दक्ष और यशस्वी हों और पतिपत्नी आनन्दसे गृहस्थधर्मका पालन मिलकर करें ।

उत्तम अन्न

अग्निका वर्णन करते हुए कहा है कि **' ४८ भूरि अन्ना अत्ति '** वह बहुत अन्न खाता है । जो प्रदीप्त अग्निमें डाला जाता है उसको वह खा जाता है । पर यज्ञाग्निमें हविष्य अन्न- पवित्र अन्न- ही डाला जाता है । गृहस्थीको अपना भोजन योग्य प्रमाणमें खाना चाहिये । अपनी शक्ति स्थिर रहे, कृशता न बढे, बीमारियां न आजांय, इसलिये उत्तम अन्न पर्याप्त प्रमाणमें खाना चाहिये । **' ३७ घृतान्नः '** (घृतमिश्रित अन्न हो), जिसमें भरपूर घी मिलाया हो ऐसा अन्न हो । यह घी गौका ही होना चाहिये । गौका दूध, दही, मखन, छाछ आदि यथेच्छ सेवन करना चाहिये यह इसका तात्पर्य है । **' ६४ द्युमतीं इषं एरयस्व '** तेज बढानेवाला अन्न हमें प्राप्त हो । वह अन्न तेजस्विता बढाता है कि जो घीसे भरपूर भरा होता है । यह घी भी बनावटी या मिलावटी नहीं होना चाहिये । ' हैयंगवीनं घृतं ' कल सवेरे गायका दोहन करके जो दूध प्राप्त हुआ हो, उसको तपाकर, शामको दही बनाकर, दूसरे दिन सवेरे उसको बिलोडकर जो मक्खन प्राप्त होगा उसको अग्निपर तपाकर जो घी होगा, उसका नाम हैयंगवीन घृत है । यह भरपूर सेवन करना चाहिये । ऐसा छः मासतक सेवन किया जाय तो उससे शरीरमें जो तेज बढेगा वह दिव्य तेज वर्णनीय होगा ।

' १४ सहस्रपाथः ' सहस्रों प्रकारका उत्तम उत्तम खान-पानका अन्न हो सकता है ऐसा **' ३ यं वाजाः उपयन्ति '** जिसके पास ऐसे अन्न उपस्थित रहते हैं, ऐसा धनधान्यसंपन्न गृहस्थीका घर हो ।

उत्तम संतान

११ शूने मा निषदाम— संतानरहित घरमें रहनेका अवसर हमें न प्राप्त हो । **५२ वयं अवीराः मा—** हम संतानहीन न हों । **५३ अन्य जातं शेषः नास्ति-** दूसरेका पुत्र औरस नहीं कहलाता । **५४ अन्योदर्यः मनसा मन्तवै नहीं-** दूसरेका पुत्र गोद लेना मनमें लाने योग्य भी नहीं है । **२१ नर्यः वीरः अस्मत्-** सब जनोंका हित करनेवाला वीर पुत्र हमें होना चाहिये । वसिष्ठके मंत्रोंमें उत्तम औरस संतानकी प्रशंसा है, दत्तक पुत्रकी निंदा है और उत्तम वीर तथा ज्ञानी पुत्र उत्पन्न करनेकी गृहस्थियोंको प्रेरणा है । जहां ऐसे वीर पुत्र रहते हैं वह सुखी घर कहलाता है ।

सौंदर्यका साधन

गृहस्थ और गृहिणी स्वयं उत्तम घरमें रहें, सुंदर वस्त्र अलं- कार धारण करें, यज्ञस्थानमें सजकर जांय ऐसा वेदमंत्रोंमें कहा है । **' २ सु-प्रति-चक्षः** (सुंदर), **२१ रण्व-संदृक्** (रमणीय दीखनेवाला), **४० दस्म** (दर्शनीय रूपवाला), **४१ सु संदृक्** (उत्तम सुंदर दीखनेवाला) इस तरह अग्निके विशेषणसे आदर्श स्त्री पुरुष वस्त्र अलंकारसे सुशोभित हों, सुंदर दीखें, रमणीय दर्शन हो, शरीरकी सजावट करके घरसे बाहर जांय, यह बताया है जो गृहस्थियोंके लिये पसंद होने योग्य है ।

गृहस्थी स्त्री पुरुष ' सुवासाः ' (उत्तम कपडे पहनकर रहें) सुंदर आभूषण धारण करें । अपनी सुंदरता बढावें ।

वीर अग्नि

अग्निका वर्णन वीरताके साथ किया है । **' ४८ तरुणः** (युवा); **३४ वीरः** (शूर); **४ सुवीरः** (उत्तम शूरवीर); **११८ द्युमान् सुवीरः** (तेजस्वी वीर पुरुष) ये अग्निके विशेषण बता रहे हैं कि, वीर पुत्र कैसा शूरवीर धीर होना चाहिये । उत्तम गृहस्थीकी यही इच्छा हो ।

धनवान् अग्नि

अग्निका वर्णन धनवान्, धनदाता करके किया है । वह इसलिये कि हमारा आदर्श गृहस्थी धनवान् होना चाहिये । निर्धन गृहस्थको सुख प्राप्त नहीं होता । इसलिये अपने उपास्य अग्निका वर्णन धनी करके किया है । अग्नि धनवान् है, धन अधिक प्राप्त करता है और धनका दान भी करता है । देखिये- **' १३२ रत्नधाः '** (रत्नोंका धारण करनेवाला); **७२ ' बुध्न्या वसूनि आददे '** (जो मूलतः उपयोगी धन अपने पास रखता है), **' ६१ रयीणां रथ्यः '** (जो

धनोंसे भरे रथपर बैठता है); ' ६ यं वसूयुः अरमतिः उपैति ' (जिसके पास धन प्राप्त करनेवाली प्रयत्न करनेकी बुद्धि होती है) इस तरह यह अग्नि धनवान् है, सुयोग्य उद्योगसे यह धन प्राप्त करता है और अपने पास सुरक्षित रखता है।

यह धनका दान भी करता है। ' १४ सूरिभ्यः रयिं आवहति' (ज्ञानियोंको धन पहुंचा देता है) ज्ञानी मांगनेके लिये आ जांय, या न आ जांय, यह उनके घर धन स्वयंस्फूर्तिसे पहुंचाता है। ' ८७ सुकृत्सु द्रविणं, ' १३८ दाशुषे जनाय सुवीर्यं रत्नं दधाति ' सत्कर्म करनेवालोंको वह धन देता है, दाता मनुष्यको उत्तम वीरता युक्त धन देता है। यहां के ' सुवीर्यं रत्नं ' ये पद मननके योग्य है। जिस धनके साथ उत्तम वीरता न होगी, उसका संरक्षण नहीं हो सकता। इसलिये वेद हमेशा कहता है कि धन वीरतासे युक्त चाहिये। ऐसा धन ज्ञानियोंके पास होना चाहिये।

' १३१ वार्यं यक्षि ' — स्वीकार करने योग्य धन चाहिये। किसी तरह प्राप्त किया धन नहीं चाहिये, परंतु निर्दोष धन चाहिये। जो धन घरमें रहनेसे यश बढता है वह धन स्वीकार करने योग्य है। ' १२१ भगः वार्यं दातु ' —ऐश्वर्यवान् हमें स्वीकारके योग्य धन देवे। ' ६५ पुरुक्षुं रयिं श्रुत्यं वाजं युवस्व ' जिसके साथ बहुत अन्न होता है ऐसा धन और यशस्वी बल हमें चाहिये। धनके साथ अन्न और बलके साथ विजययुक्त यश हो। ' ९१ राये पुरंधिं यक्षि ' — ऐश्वर्य प्राप्त करनेके लिये हमें विशाल बुद्धि चाहिये। ' ११४ सः अमात्यं वेदः विश्वतः रक्षति ' —वह सदा साथ रहनेवाला धन सुरक्षित रखता है। धन भी ऐसा हो कि जो अपने साथ रहे। धन स्थायी रहनेवाला हो। ' १३७ द्रविणोदाः ' धनका दान करनेवाला वीर हो। धनका दान करनेमें कृपणता न दिखाई जाय। ' १३३ गोनां ऊर्वान् दयन्त '- गौवोंके झुण्ड दानमें दो। अब ऐसी अवस्था आगयी है कि लोगोंको गौके झुण्ड तो दूर रहे पर एक गौका दान देना और लेना कठिन हो रहा है। पर वेद तो गौओंके झुण्डोंके दान करनेकी बात बोलता है।

गौओंके साथ घोडे भी रहते हैं, अग्निके रथके घोडे लाल रंगके होते हैं। ' ६१ हरितः सचन्ते ' लाल रंगके घोडे तुम्हारे रथको जोते हैं।

अग्रणी अग्नि

इस समयतक जिस अग्निका वर्णन किया गया वह निःसंदेह अग्रणी है। अग्रणी ही अग्नि है। ' अग्निः कस्माद् अग्रणीः भवति ' (निरु०) अग्रणी ही अग्नि कहलाता है। अग्रणी, अग्-र-नी, अग्-नी, अग्नि। बीचके रकारका लोप होकर अग्रणीका ही अग्नि बना है। अग्रतक ले जाता है, अन्त अवस्थाको पहुंचा देता है। उच्च प्राप्तव्य स्थानको पहुंचाता है। (अग्रं नयति इति अग्रणीः) श्रेष्ठ अवस्थातक पहुंचाता है वह अग्नि है। बीचमें ही नहीं छोडता। सीधा मार्ग दर्शाता हुआ निःश्रेयसकी प्राप्तितक साथ देता है। जो ऐसा करता है वह अग्रणी है, वही अग्नि यहां पूजनीय है। '१ अग्निः (आग्निवत् पूजनीय, अग्रणी), ६९ नृतमः (मनुष्योंमें श्रेष्ठ, जो मानवोंमें श्रेष्ठ होता है वही अग्रणी नेता है अथवा उसीको नेता बनाना योग्य है।) ५७ वैश्वानरः (विश्व-नरः; सब मानवोंमें मुख्य, विश्वका नेता, सबका चालक, मुख्य, सबका अग्रणी); ६४ विश्ववारः (७७; १३१ विश्वेभिः वरणीयः, सब मनुष्यों द्वारा स्वीकारने योग्य, सब मनुष्यों द्वारा अपना प्रमुख करके स्वीकार करने योग्य); ' ५८ सिन्धूनां नेता ' सब स्यन्दन शीलोंका नेता, चलनेवालोंका नेता, नदियोंका चालक।

इस तरह नेताको अग्नि कहा है। यह सबकी संमतिसे नेता होता है। अनुयायियोंकी संमतिके विना कोई नेता नहीं हो सकता।

राजा अग्नि

अग्निको राजा करके भी वेदमंत्रोंमें वर्णन किया है। ' ८० अर्यः (श्रेष्ठ); ८० राजा (राज्यशासन करनेवाला); ७६ विश्पतिः (प्रजाजनोंका पालन करनेवाला); ६१ कृष्टीनां पतिः (कृषि करनेवालोंका पालन करनेवाला); ७९ वसूनां ईशः (सब प्रकारके धनोंका स्वामी, कोश अपने पास भरपूर रखनेवाला राजा); १२२ ईशानः वार्यं आ भरति (यह राजा स्वीकारने योग्य धन भरपूर भर देता है) ६७ शं राज्यं (इसका राज्य शान्तिका राज्य होता है); ६६ सम्राजः असुरस्य पुंसः कृष्टीनां अनुमाद्यासः तवसः कृतानि विवक्मि— सम्राट् बलवान् पुरुषार्थी प्रजाओं द्वारा अनुमोदित समर्थ राजाके प्रशंसनीय कर्मोका मैं

वर्णन करता हूं। यह सम्राट् अग्नि है, जो बलवान् पुरुषार्थी (कृष्टीनां अनुमाद्यः) कृषि करनेवालोंने जिसको अपना राजा होनेकी संमति दी है। यह सब वर्णन प्रजाके उत्तम नेताका ही है। ऐसे लोकाग्रणी नेता राज्यशासक होने योग्य है।

अग्निके सहायक

जो राजा या अग्रणी नेता होता है, उसके सहायक अनेक होते हैं, इसलिये अग्निके वर्णनमें '७४ **सु शेवः** (उत्तम सेवा करने योग्य) ८९ **सुसंसत्**, (उत्तम सभामें बैठनेवाला, लोकसभामें बैठकर राज्यशासनका कार्य करनेवाला); १५ **यं सुजातासः वीराः परिचरन्ति**— (उत्तम कुलीन वीर जिसकी सेवा करते हैं, जिसके शासनकार्यमें कुलीन वीर कार्य करते हैं); ७४ **देवानां सख्यं जुषाणः** (दिव्य विबुधोंके साथ जो मित्रता रखता है अर्थात् जिसके सहायक ये दिव्य विबुध होते हैं।)

इस तरहकी सहायता जिसको मिलती है वही ठीक तरह प्रजाजनोंका नेतृत्व तथा शासनकार्य कर सकता है।

सेनाको साथ रखनेवाला अग्नि

वसिष्ठ ऋषि जिस अग्निका वर्णन करते हैं वह अग्नि '२३ **स्वनीकः** (सु-अनीकः, उत्तम शिक्षित सेनाको अपने साथ रखता है और शत्रुका पराभव उस सेनासे करता है); ४० **ते सेना सृष्टा एति** (तुम्हारी सेना तुम्हारी आज्ञा होते ही शत्रुपर गिर पडती है और शत्रुको परास्त करती है।)

सेनापति ही यह अग्नि है। यह विद्वान् भी है और सेना-संचालन भी उत्तम रीतिसे करता है। इस कारण यह सदा विजयी रहता है। शत्रु इसको दबा नहीं सकते।

संरक्षक अग्नि

इस समयतक हमने ज्ञानी यज्ञकर्ता, तथा सेना अपने साथ रखकर शत्रुसे युद्ध करनेवाला अग्नि देखा। यह ज्ञानी भी है और शूर योद्धा भी है। ये दोनों गुण एकमें होने चाहिये, यह वसिष्ठके मंत्रोंका तात्पर्य स्पष्ट दीख रहा है। ज्ञानी अपनी विद्यासे संरक्षणकी आयोजना बनाता है और अपनी सेनाके बलसे ठीक तरह निभा भी लेता है। राष्ट्रमें ऐसे पुरुष चाहिये।

'**१ यं अवसे न्यृण्वन्**' — जिसको अपनी सुरक्षाके लिये सहायार्थ बुलाते हैं ऐसा सामर्थ्यशाली यह है। यह '**२७ सहसा अवन्** (५२ अपनी शक्तिसे सबका संरक्षण करता है), ४४ **सूरीन् निपाति**— वह विद्वानोंका संरक्षण करता है, वह—

५५ अनद्यात् पाति
११४ अंहसः पाति
५५ वनुष्यतः पाति
१०४ अनवद्यात् दुरितात् राक्षिषत्

यह पापसे, निंद्यकर्मसे, हिंसासे बचाता है। राजाको उचित है कि वह अपनी प्रजाका इस तरह पापसे संरक्षण करे। अपने राष्ट्रमें '**१०८ पशून् गोपाः**' —पशुओंका संरक्षण करे। पशुओंका वध होने न दे। गौ आदियोंका संरक्षण राष्ट्रमें होना चाहिये। अनेक प्रकारसे ये पशु राष्ट्रकी सहायता करते हैं इस लिये उनका संरक्षण होना चाहिये।

४३ अमितैः महोभिः शतं आयसीभिः पूर्भिः नः पातम्।
११५ नृपीतये शतभुजि मही आयसीः पूः भव।
१३६ पर्तृभिः शतं पूर्भिः पिपृहि।

' अपरिमित शक्तियोंसे युक्त सेंकडों कीलोंवाली नगरियोंका संरक्षण कर, सेंकडों संरक्षक कीलोंसे संरक्षण कर, मनुष्योंका संरक्षण करनेके लिये सेंकडों प्रकारके संरक्षक साधनोंसे युक्त कीला जैसा तूं संरक्षक हो।' नगरोंके संरक्षणके लिये लोहेके बने हुए कीले चाहिये, उनमें उत्तम सेना रखनी चाहिये और सब प्रकारके संरक्षक साधन चाहिये। इस तरह सुरक्षा करने-वाला संरक्षक सेनापति ही अग्रणी या अग्नि है। कीलोंसे जन पदका संरक्षण करनेवाला वीर ही यहां अग्निरूपसे वर्णन किया है।

शत्रु संहार करनेवाला वीर अग्नि

'**६६ दारुं वन्दे**' —शत्रुका विदारण करनेवाले शूर वरिको मैं प्रणाम करता हूँ। '**६७ पुरंदरः**' —शत्रुकी नगरियोंका विदारण करनेवाला यह वीर है। '**२०६ असुरघ्नः**'- असुरों, राक्षसों, दुष्टोंका नाश करनेवाला यह वीर है। '**१२१ रक्षांसि सेधति**' —यह राक्षसोंका नाश करता है। '**९१ जरूथं हन्**'—कठोर, दुष्ट भाषण करनेवाले शत्रुओंका वध कर।

'**१२४ रिषतः तपिष्ठैः दह; १३४ द्रुहः निदः,**— घातपात करनेवाले द्रोही निंदकों दुष्टोंको ज्वालाओंसे जला दो। '**८१३ स्तेयकृत् स्तेनः रिपुः दभ्रं एतु, स तन्वा तना नि हीयतां**'— चोरी करनेवाला डाकू शत्रु विनाशको प्राप्त हो, वह बालबच्चोंके साथ विनष्ट हो। '**७० य. देह्य वधस्नैः अनमयत्**' उस शत्रुका वध करनेके शस्त्रोंसे विनाश हो। '**७ विश्वा अरातीः अपदहति**'— सब शत्रुओंको जलाता है, उन शत्रुओंका विनाश करता है।

५९ तद्भिया असिक्नीः विशः भोजनानि जहातीः असमना आयन्, पुरः दरयन्।
६८ अक्रतून् ग्रथिनः मृध्रवाचः पणीन् अश्रद्धान् अवृधान् अयज्ञान दस्यून् प्रविवाय। अयज्यून् अपरान् चकार।
६९ तं वस्व ईशानं अनानतं पृतन्यून् दमयन्तं गृणीषे।

'तेरे भयसे काली प्रजा भोजन छोडकर अस्तव्यस्त होकर भागती है और उसकी नगरियोंको तुम तोड देते हो। यज्ञ न करनेवाले, असत्य भाषण करनेवाले, कुव्यवहार करके ठगानेवाले, अश्रद्ध शत्रुओंको तुम भगा देते हो और उनको हीन अवस्थाको पहुंचाते हो। जो धनके स्वामी है, शत्रुके दबावसे न दब जानेवाले हैं, उन शत्रुओंकी सेनाका नाश करनेवाले वीरकी ही मैं प्रशंसा करता हूं।'

यह वीर '**१६५ विदुष्टरः**— शत्रुओंद्वारा पराभूत न होनेवाला है। यही सब शत्रुओंका पराभव करता है। '**५ यं यातुमावान् यावा न तरति**'— इस वीरको दुष्ट शत्रु पराभूत नहीं कर सकता। '**५४ नव्यः वाजी अभीषाट्**'— यह तरुण बलवान् वीर शत्रुका दमन करनेमें समर्थ है।

शत्रुदलका पूर्ण पराभव करनेवाला और अपना विजय संपादन करनेवाला यह वीर राष्ट्रमें प्रशंसनीय है। यह वीर अग्निकी एक विभूति ही है।

निवासक अग्नि

अग्नि जनताका निवास सुखसे करनेवाला है, इसलिये उस अग्निको '**८ वासिष्ठ**'–निवासकर्ता कहा है। वही '**८९ अदितिः विवस्वान्**'— वह भोजनके लिये अन्न देता है और लोगोंकी बसाहत कराता है। घर घरमें रहकर सबका संरक्षण करता है और हरएक प्रकारसे संरक्षण करता है।

यह सबके लिये '**२८ दूतः**' दूत जैसा सहायक होता है। मार्ग बताता है, प्रकाश बताता है। यह '**८७ जारः**' वृद्ध है तो भी '**९९ अ-जिरः**' जरा रहित अर्थात् तरुण जैसा ओजस्वी और वीर्यवान है। ऐसा हरएकके सामने आदर्श होना चाहिये।

रोग दूर करनेवाला अग्नि

अग्नि अपनी दाहक ज्वालाओंसे रोगबीज दूर करता है और रोगोंको हटाता है इसलिये उसको '**८५ अमीव-चातनः**' रोग बीज दूर करनेवाला; '**८५ रक्षो-हा**'— रोग हेतुरूप सूक्ष्म जन्तुओंका नाश करनेवाला, '**७ अमीवां चातयति**'— रोगके कारण जो आम—अपचित अन्नसे उत्पन्न होनेवाला रोग कारण है, उसको दूर करता है। अग्नि पित्तको निर्माण करता है जिससे पचनशक्ति बढ जाती है और रोग दूर होते हैं।

राष्ट्रशासन व्यवस्थासे भी राष्ट्रको रोगोंसे मुक्त करना चाहिये।

आर्योंका सहायक और दस्युओंका विनाशक अग्नि

६२ 'आर्याय उरुं ज्योतिः जनयन्, दस्यून् ओकसः आज' यह वीर आर्योंके लिये विस्तृत प्रकाशका मार्ग बताता है और दस्युओंको अपने घरसे भी दूर भगा देता है। अर्थात् दस्युओंको नगरमें रहने नहीं देता और आर्योंको सब प्रकारकी सहायता और सुरक्षा देता है। सज्जनोंकी सुरक्षा और दुर्जनोंका विनाश करके समाजकी उत्तम व्यवस्था करना उत्तम राज्य-शासनका मुख्य कर्तव्य है।

दुरवस्थाको दूर करनेवाला अग्नि

१९ अवीरतायै दुर्वाससे अमतये क्षुधे रक्षसः नः मा दाः।

'हमें (अ-वीरतायै) पुत्रहीनता, वीर पुत्र न होना, वीरोंकी सहायता न प्राप्त होना, (दुर्वाससे) बुरा कपडा, फटा-या मलिन कपडा पहननेकी दरिद्रावस्थाकी स्थिति, (अ-मतये) निर्बुद्ध अवस्था, बुद्धिहीनता, (क्षुधे) भूखसे मरनेकी स्थिति, (रक्षसः) राक्षसोंके आधीन होनेकी स्थिति हमें कभी प्राप्त

न हो। अग्नि उच्च अवस्थाको पहुंचाता है और दुरवस्था दूर करता है। राष्ट्रशासकका यह कर्तव्य है कि वह प्रजाको इन दुरवस्थाओंसे बचावे।

इनमें '**दुर्वासाः**' यह एक अवस्था है। फटे, मलिन, दारिद्र्यको बतानेवाले कपडे धारण करनेकी बुरी स्थिति हमें प्राप्त न हो। अर्थात् सुंदर मूल्यवान् अच्छे शोभा बढानेवाले कपडे पहननेकी उत्तम अवस्था हमारे लिये सदा रहे, सुन्दर वस्त्र उत्तम अलंकार आदिसे हम अपनी सुंदरता बढाते रहें। कुरूपता, मलिनता, अलंकारहीनता हमारे पास न आजाय। हम दारिद्र्यमें न रहें। हम धनधान्य ऐश्वर्य संपन्न हों। हमारे पास उत्तम वस्त्र, बहुमूल्य आभूषण, रथ घोडे तथा ऐश्वर्यके अन्य साधन हमारे पास भरपूर हों। और हम सुसंपन्न भाग्ययुक्त स्थितिमें रहें। कदापि दीन न बनें यह यहां तात्पर्य है।

दूरदर्शी अग्नि

अग्निको '**१ दूरे दृश्**' (दूरदर्शी) कहा है। दूरसे देखता है। दूरका देखता है और यह स्वयं दूरसे दिखाई देता है। ऐसा इसका दोनों प्रकारसे अर्थ होता है। यदि यह दूरदर्शी न होगा, तो वह अग्रणी नेता कैसा बनेगा और शत्रुका पराभव भी किस तरह कर सकेगा ? इसलिये पूर्वोक्त वर्णनके साथ इसका दूरदर्शी होना अत्यंत आवश्यक ही है।

प्रशंसित अग्नि

इतने उत्तम गुण इसमें हैं इसलिये इसकी प्रशंसा चारों ओर होती है। "**१ प्रशस्तः; १२१ ईड्यः; १३२ सुशंसः; १८ ईळेन्यः; २१ सुहवः; २७ नराशंसः**; (मनुष्योंद्वारा प्रशंसित); **यजतः; १६ यजिष्ठः; ५५ स्पृहाय्यः; ५८ पृष्टः**" वह प्रशंसाके योग्य है, ऐसा भाव बतानेवाले ये पद अग्निके विशेषण है। जिसमें पूर्वोक्त गुण होंगे वह मनुष्योंके द्वारा प्रशंसा होनेयोग्य होगा, इसमें कोई संदेह ही नहीं है। जो नेता है, प्रजाद्वारा अनुमोदित है, जनताका सुख बढानेवाला है, शत्रुको दूर करनेवाला है, ज्ञान विज्ञानसे संपन्न है उसकी निःसंदेह प्रशंसा होगी, इसमें संदेह ही क्या है ?

अग्निके रूपमें आदर्श पुरुषका दर्शन

अग्निके रूपमें ऋषियोंने आदर्श पुरुषका दर्शन किया। यही दिव्यदर्शन अथवा दिव्यस्फुरण है। केवल 'अग्नि' तो केवल 'आग' ही है। उसको सब देखते और जानते ही हैं। परंतु उसमें काव्य दृष्टिसे दिव्य आदर्श पुरुषका दर्शन करना यह थोडेही दिव्य दृष्टिवाले पुरुष कर सकते हैं। इसकी संक्षेपसे प्रक्रिया यह है—

१ अग्नि प्रकाशता है और अपने प्रकाशसे दूसरोंको मार्गदर्शन करता है, अन्धेरेको दूर करता है और ठीक रीतिसे अपने प्रकाशसे लोगोंको चलाता है।

इस तरह मनुष्य अपने अन्दर ज्ञानाग्नि जगावे, स्वयं ज्ञानी बने, अपने ज्ञानसे दूसरोंको प्रकाश बतावे, उनको मार्गदर्शन करे, उनके अज्ञानको दूर करे और ठीक धर्म मार्गपर उनको चलावे।

२ ज्योतियां तीन हैं, द्युस्थानमें सूर्य, अन्तरिक्षमें विद्युत् और पृथिवीपर अग्नि। सूर्य हमें सदा सहायता नहीं करता, जिस समय वह ऊपर दीखता है प्रकाश देता है, पर जिस समय रात्री होती है, उस समय सूर्यको हम सहयतार्थ बुला नहीं सकते, विद्युत् भी उस समय सहायता दे सकती है, ऐसी बात नहीं, परंतु अग्नि जिस समय जगाया जाय उस समय प्रकाश देकर मार्गदर्शन करनेके लिये सिद्ध रहता है। इसलिये वेदमें उसको 'दूत' कहा है। यह दूत दिव्य है, पर सदा दक्ष रहकर सहायक होता है। रात्रीके अन्धेरेमें यह इष्ट स्थानपर पहुंचाता है। थोडीसी लकडियां जलायीं तो वह अग्नि मार्ग दर्शाता है, दीपको साथ लेकर हम अन्धेरेमें जहां चाहे वहां जा सकते हैं। ऐसी लकडियां है कि वे जलती रहती हैं। जहां हम जाना चाहें वहां वह पहुंचा देता है बीचमें नहीं छोडता। इस कारण इसको 'अग्रणी' कहते हैं, अग्रणी ही अग्नि है। अग्र तक लेजानेवाला अग्रणी कहलाता है।

ज्ञानी मनुष्य भी इसी तरह अपने अनुयायिकी सहायता करें और उनको निःश्रेयसके स्थानतक पहुंचा दें। उनको बीचमें ही न छोडें।

३ अग्नि अपने प्रकाशसे अन्धेरे रूप अपने शत्रुका नाश करता है और लोगोंको अन्धेरेके कष्टोंसे छुडाता है।

इसी तरह ज्ञानी अज्ञानरूप शत्रुको दूर करे और दूसरोंको ज्ञान देकर उनके अज्ञानको भी दूर करे। शत्रुको दूर करनेकी वीरता और तेजस्विता अपने अन्दर बढावे और शत्रुको दूर करे और लोगोंको सुरक्षित रखे।

इस रीतिसे अग्निके अन्दर एक एक गुण आलंकारिक रीतिसे मनुष्य देखे और उससे बोध लेता जाय।

पूर्वोक्त स्थानमें कई गुण अग्निके अन्दर ऋषिने साक्षात् किये। उनमें कई तो अग्निमें घटते हैं, पर कई गुण ऐसे हैं कि जो ज्ञानी दिव्यपुरुषमें ही घट सकते है। जो ऊपर गुण दिये हैं वे सबके सब दिव्य आदर्श पुरुषमें तो पूर्णतया घट सकते है, पर केवल अग्निमें ही सब गुण घट सकते हैं ऐसा नहीं कह सकते। इसीलिये अग्निके अन्दर दिव्य आदर्श पुरुषका साक्षात्कार ऋषिने किया और उस साक्षात्कारके स्फुरण-का यह काव्य है।

पाठक इन गुणोंको किसी पुरुषमें देखनेका यत्न करें। वह आदर्श दिव्य पुरुष समाज, जाती और राष्ट्रका नेता हो जायगा और सबकी प्रशंसा उसको प्राप्त होगी।

पाठक अपने अन्दर इन गुणोंका धारण करें और इन गुणोंका विकास करें। जिनमें ये गुण विकसित होंगे वे दिव्य आदर्श पुरुष बनेंगे और सबके लिये वे आदर्श और पूजनीय हो जायगे।

अग्निदेवता 'ब्राह्मण देवता' है। इसमें ज्ञान प्रधानता है। मुखसे वाणी हुई और वाणीसे अग्नि हुआ है। इससे दूसरी बाजू यह है कि मुखसे अग्नि हुआ और अग्निसे वाणी हुई। इस तरह मुख-वाणी-अग्निका परस्पर संबंध है। मुखका कार्य वाणी है, वाणीका कार्य प्रमुखतया करनेवाले ब्राह्मण हैं। इस लिये अग्निके वर्णनसे ब्राह्मणका वर्णन होता है। इसलिये ज्ञानी होना, वक्तृत्व करना, मनको पवित्र करना, मनका संयम करना, ज्ञानका प्रसार करना, पुरुषार्थ प्रयत्न-यज्ञयाग करना-कराना, अहिंसा व्रतका पालन करना, सत्यभाषण करना, पवित्रता करना, प्रसन्न मनसे रहना, तेजस्वी रहना, बाहरके दबावसे न दबना, ईश्वरकी भक्ति करना, बल प्राप्त करना, गृहस्थी होना, योग्य पत्नीको प्राप्त करना, घृतमिश्रित अन्न खाना, उत्तम संतान उत्पन्न करना, वीरता धारण करना, धन प्राप्त करना, जनताका अग्रणी होकर उनको सन्मार्गसे ले जाना, राजा-राष्ट्राध्यक्ष बनकर राज्यशासन करना, अपने पास सेना रखना, उससे राष्ट्रका संरक्षण करना, शत्रुका नाश करना, राष्ट्रमें शान्ति स्थापन करना, आर्योंकी सहायता करके दस्यु गुण्डोंको दूर करना, इत्यादि जो गुण अग्निके हैं ऐसा इन मंत्रोंमें कहा है, वे ब्राह्मणोंके गुण है। पाठक विचारकी दृष्टिसे देखेंगे तो उनको पता लग जायगा कि इन गुणोंसे जो पुरुष युक्त होगा, वह बडा ज्ञानी होगा और जनताका उत्तम मार्गदर्शक नेता होगा।

यहां ब्राह्मणके गुणोंमें ज्ञान और शौर्यवीर्यका संमेलन है। उत्तरकालमें जो ब्राह्मणोंके गुण कहे हैं उनमें वीरताके गुण नहीं गिनाये। परंतु वेदमें ज्ञानके साथ वीरता ब्राह्मणके गुणोंमें संमिलित है यह भूलना नहीं चाहिये।

भगवान् परशुराम, द्रोण आदि परंपराके ब्राह्मणोंमें ये सब गुण दिखाई देते हैं। तथा गुरुकुलोंमें क्षत्रिय कुमारोंको धनुर्वेदकी पढाई करानेवाले ब्राह्मण ही थे। इसलिये ब्राह्मणों-को युद्ध विद्याकी शिक्षा भी अनिवार्य थी ऐसा इससे प्रतीत होता है। पाठक गण इसकी विशेष खोज करें।

वसिष्ठ ऋषिका इन्द्रमें
आदर्श-पुरुष-दर्शन

वसिष्ठ ऋषिके देखे इन्द्रदेवताके मन्त्र ऋग्वेदमें क्रमसे १६१ हैं और ऋग्वेदके फुटकर करीब २० हैं। इन मंत्रोंमें वीर पुरुषका आदर्श ऋषिने देखा है। 'इन्द्र' का ही अर्थ "इन्+द्र" अर्थात् शत्रुओंका विदारण करनेवाला है। इन्द्र देवता क्षात्र देवता है। राजा, शासक, राजपुरुष, सेनापति, वीर, रक्षक करके नियुक्त हुए पुरुष आदिका आदर्श 'इन्द्र' देवतामें पाठक देख सकते हैं। इन्द्रमें शक्ति है, वीर्य है, संरक्षण करनेका सामर्थ्य है। इस विषयका आदर्श इन्द्र मन्त्रोंमें हम देख सकते हैं। सबसे प्रथम इन्द्रमें हम प्रचण्ड शक्तिका दर्शन करते हैं, जिसके पास शक्ति नहीं होगी वह अन्योंका संरक्षण किस तरह कर सकेगा ? इसलिये इन्द्रमें शक्ति अवश्य चाहिये।

शक्तिमान् इन्द्र

'**१९० अंग शक्र**' प्रिय शक्र ! यह 'शक्र' पद शक्तिमानका वाचक है। जो (शक्नोति इति शक्रः) जो कर्म करनेकी शक्ति रखता है वह शक्र है। जिसमें सामर्थ्यकी शक्यता है वह इन्द्र है। '**१९३ शविष्ठः; २१६ तविषी उग्रः; २७१ वाजी**' ये इन्द्रवाचक पद उसके सामर्थ्यके वाचक है। वह अतुल सामर्थ्यवान् है, यह इनका अर्थ है।

'**१७६ पुरुशाक**'— विशेष शक्तिमान, '**१८५ तुविष्म इन्द्र**'— सामर्थ्यवान् इन्द्र, '**१९९ ईशानः**— स्वामी, राजा, अधिकारी, शासक; '**२४५ वीर**'— वीर्यवान्; '**२५६ शतक्रतु**'— सैंकडों कर्म करनेवाला, अनंत कर्म करनेका सामर्थ्य जिसमें है, '**२५१ पुरोयोधा**'— अग्र भागमें रहकर युद्ध करनेवाला, युद्धमें पीछे न हटनेवाला; '**२८९ ज्यायः**'— श्रेष्ठ ये सब इन्द्रके वाचक पद इन्द्रका प्रचण्ड सामर्थ्य है ऐसा भाव बता रहे है ?

'**१७७ सहसा-वन्**'— शत्रुका पराभव करनेका सामर्थ्य जिसमें है। '**१८२ स्व-धा-वन्**'— अपनी निज धारणा शक्तिसे युक्त, '**१९१ सुशक्तिः**'— उत्तम शक्तिमान्; **२४० शवसी**— बलवान, सामर्थ्यशाली, ये सब इन्द्रके नाम उसकी शक्तिके वाचक हैं। पाठक यहां देखें कि इन्द्रके प्रत्येक नाममें शक्तिका अर्थ टपक रहा है। विना शक्तिके संरक्षणका कार्य हो नहीं सकता। इसलियें जिनको संरक्षण-के कार्यपर नियुक्त करना है, उसमें पर्याप्त प्रभावी सामर्थ्यवान् है वा नहीं यह पहिले देखना चाहिये यह इसका आशय है।

'**१७० अजरं नृणाशं क्षत्रं**'— इन्द्रका क्षात्र तेज कम न होनेवाला और पराभूत न होनेवाला है। ऐसा ही होना चाहिये। '**१८२ उग्रः-इन्द्रः वीर्याय जज्ञे**'— शूर इन्द्र पराक्रम करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है। '**१८२ नर्यः यत् करिष्यन् अपः चाकिः**'— यह इन्द्र (नर्यः) मानवोंका हित करनेके लिये जो करना चाहता है, वे कर्म वह कर छोडता है। उसके उन कर्मोंके करनेमें कोई बाधा नहीं डाल सकता। इतना इसका सामर्थ्य है। यह जो करना चाहेगा वह कर ही छोडेगा। '**१८५ महित्वा तविषीभिः उभे रोदसी आपप्राथ**'— अपनी महिमासे अपनी शक्तियोंके द्वारा इस द्युलोकसे पृथ्वी लोक तक इसका यश फैला है। '**१८० नृतम इन्द्रः**' मानवोंमें अत्यंत श्रेष्ठ है, इसकी बराबरी करनेवाला कोई दूसरा मनुष्योंमें नहीं है। इसलिये यह '**१८० नृणां सखा अविता**' मानवोंका मित्र और उनका संरक्षण करता है। अपनी शक्तिसे यह सबका संरक्षण करता है।

'**१९७ क्रत्वा जन्मन् अभिभूः**'— इन्द्र जन्मसे ही अपने पौरुष सामर्थ्यसे शत्रुका पराभव करनेवाला है। '**स्वेन शवसा वृत्रं जघान**'— अपने बलसे घेरनेवाले शत्रुका वध करता है। वह '**शत्रुः युधा ते अन्तं न विविदत्**'— शत्रु युद्ध करता हुआ इन्द्रकी शक्तिको जान न सका। इतनी इसकी शक्ति अपरंपार है। '**२०६ ते असुर्य**'— तेरे प्राणोंका बल बडा भारी है। '**२१६ वज्रबाहुः वृषणः**

इन्द्रः '— वज्र धारण करनेवाला, अथवा वज्रके समान जिसके बलवान् बाहु हैं ऐसा यह बलवान् इन्द्र है। इसका शरीर बल बडा है वैसा प्राणोंका बल भी बडा है। '**२११ विश्वानि शवसा ततान** '— सबको अपने बलसे यह फैलाता है। '**२०९ मन्यमानस्य ते महिमानं नू चित् अश्नुवन्ति** '— विशेष संमान देने योग्य इन्द्रकी महिमाको कोई भी पार नहीं कर सकता। '**ते राधः वीर्यं न उदश्नुवन्ति** '— तेरे यश तथा वीर्यका पार किसीको नहीं लगता। '**१९४ विश्वा कृत्रिमाणि भीषा रेजन्ते** '— इन्द्रके भयसे सब भूत कांपते हैं। सब उससे डरते हैं।

'**१९८ पूर्वे देवाः असुर्याय क्षत्राय ते सहांसि अनुममिरे** '— पूर्व समयके देवोंने अपने बल और क्षात्र तेजको तुम्हारे– इन्द्रके सामर्थ्यसे कम ही मान लिया था। '**१९६ स अर्यः विपुणस्य जन्तोः शर्धत्।** '— वह श्रेष्ठ इन्द्र विषम अर्थात् शक्तिसे बडे शत्रुके साथ भी स्पर्धा करता है। किसी वीरके साथ इन्द्र लडनेके लिये डरता नहीं। क्योंकि उसका बल बडा प्रभावी है। वह इन्द्र—

२२१ महे उग्राय वाहे।
२४१ महे क्षत्राय शवसे जज्ञे।
२४९ महि क्षत्राय पौंस्याय भव।

' बडी वीरता, क्षात्र बल और सामर्थ्यके लिये ही यह प्रसिद्ध है। ' यह वीर—

'**१८४ युध्मः, अनर्वा, खजकृत्, समद्वा, शूरः जनुषा सत्राषाट्, अषाळ्हः, स्वोजाः, इन्द्रः पृतनाः व्यासे, विश्वं शत्रूयन्तं जघान** '— युद्धके लिये तत्पर, पीछे न हटनेवाला, युद्धमें कुशल, युद्धमें उत्साही, शूर, जन्मसे शत्रुका पराभव करनेवाला, कभी पराभूत न होनेवाला, निज शक्तिसे युक्त इन्द्र अपनी सेनाको व्यूहमें रखता है, और सभी शत्रुओंका नाश करता है। इस मंत्रके पद इन्द्रकी शूरताका विशेष वर्णन करते है। उत्तम क्षत्रियका ही यह वर्णन है। '**२५० त्वं सुहन्तु वृत्राणि रन्धय** '— तू उत्तम शस्त्रसे घेरनेवाले शत्रुका नाश करता है। अपने शस्त्रको सुतीक्ष्ण रखना चाहिये यह भाव यहां है। ' सुहन्तु ' जिससे शत्रुका हनन होता है वैसा शस्त्र तीक्ष्ण चाहिये।

२६५ सत्राराजानं अनुत्तमन्युं इन्द्रं वाणीः सहध्यै दधिरे।

' साथ साथ तेजस्वी उत्तम उत्साही इन्द्रकी प्रशंसा बल बढानेके लिये वाणियां गाती हैं। ' इन्द्रके स्तोत्र गानेसे बल बढता है, उत्साह बढता है। सामर्थ्य बढानेकी इच्छा बढती है।

२४० ते महिमा व्यानट्। यत् हस्ते वज्रं आदधिषे घोरः सन् क्रत्वा अषाळ्हः जनिष्ठाः।

' तेरी महिमा फैली है। जब तू हाथमें वज्र लेता है तब भयंकर बनता है और अपने प्रयत्नसे शत्रुके लिये असह्य होता है। ' ऐसी विलक्षण इन्द्रकी शक्ति होती है।

२२३ समन्यवः सेनाः समरन्त, महः नर्यस्य ते बाह्वो दिद्युत् ऊती पताति।

' जब उत्साही सेना युद्ध करती है, तब मनुष्योंके हित करनेके लिये युद्ध करनेवाले तेरे बाहुओंसे तेजस्वी संरक्षक शस्त्र शत्रुपर गिरता है, जिससे मानवोंका बडा संरक्षण होता है। '

२७४ तरणिः जयति, क्षेति, पुष्यति।
२८५ तरणिः पुरंध्या युजा वाजं सिषासति।

' त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला, जय प्राप्त करता है, वही विजयी होकर यहां सुखसे निवास करता है, और पुष्ट भी होता है। जब वह विशाल बुद्धिसे युक्त होता है तब बलको प्राप्त करता है। '

२३८ रायस्कामः वज्रहस्तं सुदक्षिणं हुवे।

' मैं धनकी इच्छा करके वज्रधारी दक्ष इन्द्रको सहाय्यार्थ बुलाता हूं। '**१८८ न त्वावान् अन्यः जातः जनिष्यते**' तुम्हारे समान दूसरा कोई भी न हुआ और न होगा और नहीं इस समय है। ऐसा अद्वितीय शक्तिमान यह वीर इन्द्र है। यह '**२२५ सुशिप्रिन्, २२० सुशिप्रः** '— उत्तम शिरस्त्राण धारण करता है, कवच धारण करता है। '**१८९ अद्रिवः** '— पहाडपरके किलोंमें रहकर युद्ध करता है और शक्तिके कारण '**२०९ दस्म** '— सुंदर भी है। जो वीर पराक्रमी शक्तिमान होते हैं वे अपने तेजके कारण सुंदर भी दीखते हैं। शक्ति और प्रभाव अपने अन्दर रहना यही सौंदर्य बढानेवाला है। तेजस्वितासे सौंदर्य निर्माण होता है। वीरोंके लिये यह आदर्श है। हमारे वीर ऐसे प्रभावी हों।

संरक्षण करनेका कर्तव्य

वीरोंका कर्तव्य है कि वे जनताका संरक्षण करें, यह इन्द्रके वर्णनमें आया है वह अब देखिये—

' १७२ तन्वा शुश्रूषमाणः समर्ये कुत्सं आवः '– शरीरसे शुश्रूषा करता हुआ, युद्धमें कुत्सकी सुरक्षा करता रहा। इन्द्रने कुत्सकी रक्षा की थी। ' ' १७३ सुदासं विश्वाभिः ऊतिभिः प्रावः '– ' राजा सुदासकी सुरक्षा अनेक संरक्षणके साधनोंसे इन्द्रने की। ' ' वृत्रहत्येषु क्षेत्रसाता पौरुकुत्स्यं त्रसदस्युं पुरुं आवः ' वृत्रके साथ होनेवाले युद्धमें पुरुकुत्सके पुत्र, त्रसदस्यु और पुरुकी सुरक्षा इन्द्रने की थी। युद्धके समयमें भी इन्द्र अपने अनुयायियोंकी रक्षा करता है।

' १७७ अवृकेभिः वरूथैः त्रायस्व ' क्रूरतारहित श्रेष्ठ साधनोंसे सबकी सुरक्षा कर। साधनोंकी परिशुद्धता देखनी चाहिये। साधन अच्छे चाहिये और परिणाम भी अच्छा होना चाहिये। ' १८१ तन्वा ऊती वावृधस्व '—अपने शरीरसे संरक्षण शक्तिको बढाओ। अपने अन्दर शक्ति न रही, तो वह दूसरोंको सुरक्षित रख नहीं सकता। इसलिये अपनी निज शक्ति बढानी चाहिये ऐसा यहां कहा है।

१८१ नृषदनं युवा अवोभिः जग्मि— मनुष्योंके रहनेके स्थानमें उनका संरक्षण करनेके लिये तरुण वीर अपने पासके संरक्षण करनेके साधनोंके साथ जाय और उनका संरक्षण करे। ' १८१ महः एनसः त्राता '— बडे पापसे संरक्षण करो। ' १८३ वीरः जरितारं ऊतीः प्रावीत् '– वीर भक्तको संरक्षणोंके साधनोंसे सुरक्षित रखता है।

' १९९ शतं ऊते, अस्मे भूरेः सौभगस्य अवः बभूथ '— हे सैंकडों साधनोंसे संरक्षण करनेवाले वीर, हमारे बडे सौभाग्यका संरक्षण करनेवाला हो। तुम संरक्षणके सब साधन अपने पास रख और हमारे सौभाग्यका उत्तम संरक्षण कर। ' २२५ सुदासे ते शतं ऊतयः '— सुदास राजाका संरक्षण करनेके लिये सैंकडों संरक्षणके साधनोंका उपयोग कर। ' २७६ रथानां अविता बोधि '— रथोंका संरक्षण करनेवाला करके प्रसिद्ध हो। ' २९० महाधने सखीनां अविता बोधि '– युद्धके समय अपने मित्रों, अनुयायियोंका संरक्षण करनेवाला हो। मित्रोंका संरक्षण कर।

' २०० महिना तरुत्रा '— अपनी बडी शक्तिसे सबका संरक्षण करनेवाला हो।

इस तरह इन्द्र अपने अनुयायियोंका संरक्षण करता है, यह वर्णन है। मनुष्य वीर बने, अपने पासकी शक्ति बढावे, संरक्षण करनेके साधन बढावे और उनका उपयोग करके अपने लोगोंका संरक्षण उत्तम प्रकार करे। यह उपदेश इन मंत्रोंसे मिलता है।

युद्ध

आक्रमण करनेवाले शत्रु सहजहीसे दूर नहीं होते इसलिये उनके साथ युद्ध करके उनका पराभव करके उनको दूर करना आवश्यक होता है, इसलिये इन्द्रको युद्ध करनेकी आवश्यकता होती है। यह इन्द्र—

' १९५ आयुधेभिः भीमः एषां विवेष '— शस्त्रोंसे युक्त होनेके कारण भयंकर बना हुआ यह वीर शत्रुके सैन्यमें युद्ध करनेके लिये घुसता है। ' १५४ इन्द्रः सुदासे वाध्रिवाचः सुतुकान् अमित्रान् अरंधयत्।'— इन्द्रने राजा सुदासका संरक्षण करनेके लिये असत्यभाषी शत्रुओंका युद्धमें वध किया। शत्रुका वध करके सुदासको सुरक्षित किया।

' १५२ युधा नॄन् अजगन् '— युद्धसे, युद्धके समय इस वीरने शत्रुके वीरोंपर आक्रमण किया। ' १५८ मृध्रवाचं जेष्म '— व्यर्थ भाषण करनेवाले, असत्य प्रचार करनेवाले शत्रुपर विजय प्राप्त करेंगे। ' १६० दुर्मित्रासः तृत्सवः प्रकलवित् इन्द्रेण वेविषाणाः सृष्टाः विश्वा भोजनानि सुदासे जहुः— दुष्ट शत्रुके सैनिकोंमें इन्द्र घुसा और उसने ऐसा युद्ध किया कि वे शत्रुके सैनिक अपने सब भोजन छोडकर भाग गये। ' १५९ गव्यवः अनवः द्रुह्यवः षष्टिः शता षट् सहस्राः षष्टिः च वीरासः दुवोयु निसुषुपुः '— गौवें चुरानेवाले अनु और द्रुह्यु नामक शत्रुके छियासष्ट हजार और साठ वीर काटे गये। इतना प्रचण्ड युद्ध हुआ कि शत्रुके इतने वीर मारे गये और वे भूमिपर मरकर सोये। सदा द्रोह करनेवाले झूठ मूठ प्रचार करनेवाले द्रुह्यु कहे जाते हैं। छियासठ हजार शत्रु एक युद्धमें काटे जाने योग्य बडा भारी युद्ध हुआ। तथा और देखिये—

१५८ एषां विश्वा दृंहितानि पुरः सप्त सहसा सद्यः विदर्दः।

' इन शत्रुओंकी सब प्रकारसे सुदृढ कीलोंसे सुरक्षित नगरियोंके सातों प्राकारोंको तोडकर सब नगर उध्वस्त किये। ' इससे वे शत्रु नष्ट हुए और सज्जनोंको रहनेके लिये शान्त स्थान प्राप्त हुआ। ' १५६ वैकर्णयोः एकं च विंशतिं

च जनान् न्यस्तं ' — अच्छी बातें वारंवार कहनेपर भी जो नहीं सुनता उसके इक्कीस वीरोंका वध किया ।

इस प्रकारके युद्ध इस वीरने किये, शत्रुओंका पराभव किया और अपने अनुयायियोंको शान्तिका सुख दिया । इस तरह युद्ध न किया जाय तो शत्रु दूर नहीं होंगे और सज्जनोंका संरक्षण भी नहीं होगा । इसलिये सज्जनोंका संरक्षण करनेके लिये और दुर्जनोंको दूर करनेके लिये ऐसे युद्ध करने आवश्यक ही होते हैं ।

नास्तिकोंका पराभव

शत्रुके वर्णनमें **' अनिन्द्र '** पद आता है । जो इन्द्रका अनुयायी नहीं है । **' १६१ श्रुतपां शर्धन्तं अनिन्द्रं परानुदे '** — अपने अन्नको खानेवाले, स्पर्धा करनेवाले, इन्द्रकी उपासना न करनेवाले नास्तिकोंका पराजय करके आस्तिकों को शान्ति देनी है । आर्य और दस्यु इनका यह झगडा है ।

' १६५ मन्यमानं देवकं जघन्थ । ' — वीर घमंडी क्षुद्र देवताके पूजकका वध करते है । क्षुद्र देव पूजक ही दस्यु हैं । जिनको सर्वव्यापक ईश्वरकी कल्पना नहीं है इसलिये जो क्षुद्र देवपूजा करते हैं और सज्जनोंको जो कष्ट देते है वे वधके योग्य हैं । **' २७४ कवत्नवे देवासः न '** — कुत्सित कर्म करनेवालेकी सहायता देव नहीं करते । ये सब लक्षण संस्कार हीन जातियोंके हैं । ये ही संस्कारहीन जातिके लोग संस्कार संपन्न जातियोंको उपद्रव देनेवाले होते हैं ।

शत्रुके नगरोंको तोडना

१७५ नव नवतिं पुरः सद्यः निवेशने शततमा आविवेषीः ।

२३१ सर्वाः पुरः एकः सु नि मामृजे, पतिः जनीः इव ।

' इन्द्रने, शत्रुकी ९९ नगरियोंको तोड दिया और तत्काल ठहरनेके लिये सौवीं नगरीमें प्रवेश किया । ' ' सब शत्रुकी नगरियोंको वैसा अपने आधीन किया जैसा पति अपनी स्त्रियोंको वश करता है । ' यहां अनेक पत्नियोंको एक पति वश करता है ऐसा लिखा है । इस उपमासे शत्रुकी निर्बलता दिखायी है । शत्रुकी तैयारीसे अपनी तैय्यारी अधिक उत्तम रहनी चाहिये यह भाव इन मंत्रोंका है । अपना हमला होनेपर शत्रु पराभूत ही होना चाहिये ।

शत्रुको दूर करना

' १९० अमित्रान् परानुदस्व ' - शत्रुओंको दूर कर । **' २२७ वृत्रास सुहना कृधि '** — शत्रुओंका वध सहज हो ऐसा प्रबंध । **' १५८ अर्यः वक्तवे निदे अराव्णे नः मा रन्धि '** - कठोरभाषी, निंदक, दान न देनेवाले दुष्ट शत्रुओंके आधीन हमे न कर । अर्थात् शत्रुओंका नाश कर और हमें उनसे होनेवाले कष्टोंसे छुडाओ । **' २२४ दुर्गे ये मर्तासः नः अभि अमान्ति, अमित्रान् निश्नथिहि '** - कीलेमें रहकर जो शत्रु हमें कष्ट पहुंचाते हैं, उन दुष्ट शत्रुओंको शिथिल कर ।

' २९२ अज्ञाताः अशिवासः दुराध्यः वृजना नः मा अवक्रमुः ' — न समझते हुए आक्रमण करनेवाले, अशुभ, दुष्ट, कपटी क्रूर शत्रु हमपर आक्रमण न करें ऐसा सुरक्षाका प्रबंध कर । यहां कई शत्रुओंकी गणना की है । ये आक्रमण न करें ऐसा सुरक्षाका प्रबंध होना चाहिये ।

' ७८१ अदेवीः मायाः असाहिष्ट ' - जो राक्षसी कपट जाल फैले होते है, उनमें फंसना नहीं चाहिये । उस कपट जालको दूर करना चाहिये । **' २९५ भेदं जघन्थ '** - अपने अन्दर जो भेद, फूट अथवा आपसके झगडे होते हैं, उनको दूर करो । ये भेद ही आगे शत्रुको घरमें लाते है और भयानक आपत्ति खडी होती है । **' १६४ सर्वताता भेदं प्रमुषायत् '** - यज्ञसे भेदको दूर करना योग्य है । यह मंत्र भी वही बात कहता है ।

' सहमान और **असह्य '** ऐसे वीर होने चाहिये । शत्रुका आक्रमण होनेपर स्वयं अपने स्थानपर रहकर शत्रुको भगा देना, इस शक्तिका नाम है, ' सहमान ' और जिस समय हम शत्रुपर आक्रमण करते हैं, उस समय अपने आक्रमणसे शत्रु छिन्न भिन्न होकर परास्त हो जाय, इस शक्तिको ' असह्य ' कहते हैं । ये दो प्रकारकी शक्ति अपने वीरोंके पास रहनी चाहिये । तब अपना विजय होगा । इसमें किसी शक्तिकी न्यूनता रही तो अपना पराजय होगा । इसलिये सावधानी रखनी चाहिये ।

यहां दिये मंत्रोंके मननसे शत्रु कौन है, उसको दूर किस तरह करना चाहिये, अथवा उसका नाश कैसा करना चाहिये । इस विषयके बडे महत्त्व पूर्ण आदेश इन मंत्रोंसे पाठकोंको मिल

सकते हैं। इसलिये पाठक इस दृष्टिसे इन मंत्रोंका विचार करें और युद्ध विषयक बोध प्राप्त करें।

शत्रुका नाश

शत्रुका नाश न हुआ तो शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती। शान्ति प्राप्त करना, आनंद प्राप्त करना तो सबका उद्देश्य है ही। इसलिये शत्रुका नाश करनेका प्रयत्न करना प्रत्येकका एक अत्यंत आवश्यक कर्तव्य है। जो इन्द्रके मन्त्रोंमें अनेक प्रकारके वर्णनोंके द्वारा बताया है, वह अब देखिये—

'**१६६ पराशरः शतयातुः वसिष्ठः**'— दूरसे शर-संधान करनेवाला सैंकडो यातना देनेवाले शत्रुओंका सामना करनेवाला जो होता है वही (वसिष्ठः) यहां निवास कर सकता है। पर जो शत्रुपर सुदूरसे प्रहार नहीं कर सकता, सैंकडों दुष्टोंका प्रतिकार नहीं कर सकता वह तो शत्रुसे पराभूत हो जायगा, फिर वह यहां सुरक्षित किस तरह रह सकेगा? इन सैंकडों शत्रुओंका प्रतिकार करनेका सामर्थ्य अपने अन्दर धारण करना चाहिये। '**१६९ युध्यामधिं न्यशिशात्**'— जो शत्रु सदा युद्ध करनेकी ही बुद्धि रखता है, बारंबार शान्तिके उपायसे समझानेके प्रयत्न करनेपर भी जो युद्ध टालनेकी इच्छा नहीं करता, वह 'युध्याम-धि' युद्धकी बुद्धि धारण करनेवाला शत्रु है, उसको नष्टभ्रष्ट करना चाहिये। कभी उसको जीवित छोडना नहीं चाहिये।

'**१७२ दासं शुष्णं कुयवं न्यरंधयः**'— बारंबार हमारा नाश करनेवाला बलवान और धनका नाश करनेवाला जो शत्रु है उसका नाश करना चाहिये। 'दास' उसको कहते हैं कि जो (दस उपक्षये) जो निष्कारण विनाश करता रहता है। ऐसे शत्रुका विनाश करना चाहिये। '**१७४ त्वं नृभिः भूरीणि वृत्रा हंसि**'— तू अपने वीरोंके साथ रहकर अनेक शत्रुओंका नाश करता है। ऐसे शत्रुका विनाश तो करना ही चाहिये। '**१७५ वृत्रं नमुचिं अहन्**'— घेरनेवाला शत्रु वृत्र कहलाता है (वृणोति इति वृत्रः), तथा पीछा न छोडनेवाले शत्रुका नाम 'न मुचि' है। ये दोनों शत्रु नाश करने योग्य हैं।

'**१७१ एकः विश्वाः कृष्टीः व्यावयति**-अकेला शूर वीर शत्रुके संपूर्ण सैनिकोंको भगा देता है। ऐसा बल रहा तो ही विजय प्राप्त होनेकी आशा हो सकती है। '**१६१ इन्द्रः मन्युभ्यः मन्युमिमाय, पत्यमानः पथः वर्तनिं भेजे**'- इन्द्रने क्रोधी शत्रुओंके क्रोधको दूर किया और उनको भागनेवालोंके मार्गसे दूर भगा दिया। इन्द्रने उनका ऐसा पराभव किया, कि वे शत्रुता छोडकर दूर स्थानको भाग गये, जहांसे कि वे पुनः शत्रुता करनेमें असमर्थ रहे। इन्द्रका प्रभाव ऐसा है कि वह जिसके पक्षमें होगा, उसका जय होगा। '**१६२ सिंह्यं पेत्वेन जघान**'— सिंहका वध बकरेसे उन्होंने करवाया। यदि इन्द्र बकरेके साथ रहा तो वह बकरा सिंहको भी भारी हो जाता है। यह वीरका प्रभाव है।

'**१६३ ते शत्रवः शश्वन्तः ररधुः**'— तुम्हारे शत्रु सदाके लिये विनष्ट हुए हैं, अब पुनः वे खडे नहीं होंगे ऐसा तुमने जो यत्न किया है वह प्रशंसा योग्य है।

'**१७८ तुर्वशं याद्वं निशिशीहि। १७९ पणीन् व्यदाशन्। २१३ वृत्राणि अप्रति जघन्वान्**'— त्वरासे वशमें होनेवाले शत्रुको तुमने अच्छी तरह विनष्ट किया है, बुरा व्यापार व्यवहार करनेवालोंको तुमने हटाया है और घेरनेवाले शत्रुओंको तुमने नष्टभ्रष्ट किया है। इस तरह सब शत्रुओंका विनाश किया है।

इस तरह शत्रुका नाश अवश्य करना चाहिये, यह सनातन तत्त्व महर्षि वसिष्ठजीने देखा जो इन मंत्रोंमें प्रकट हुआ है। शरीरमें रोगादि तथा कुविचार आदि शत्रु हैं, समाज और राष्ट्रमें दुष्ट दुर्जन चोर डाकू आदि शत्रु हैं। तथा विश्वमें अनेक शत्रु हैं। इन सब शत्रुओंका शमन होना चाहिये। इनका ऐसा बंदोबस्त होना चाहिये कि वे फिरसे कभी न उठ सकें और उपद्रव न मचा सकें। शत्रुका पराभव इतना होना चाहिये कि उनमें पुनः उठनेकी शक्ति रहनी नहीं चाहिये।

'**१५७ वज्रबाहुः श्रुतं कवषं वृद्धं द्रुह्युं अप्सु निवृणक्**'— वज्रधारी इन्द्रने द्रोहकारी इन सब शत्रुओंको जलमें डुबा दिया। जलमें डुबाना या शस्त्रसे मारना यह तो युद्ध करनेवालेकी इच्छा पर रहेगा। मुख्य बात यह है कि शत्रु न रहे और वह पुनः उपद्रव न दे सके। पुनः न उठनेकी अवस्थाको उसको पहुंचाना चाहिये।

इन्द्रकी दया और सहायता

इस समय तक जो हमने इन्द्रके वर्णन करते हुए लिखा, उससे यह प्रतीत होता है कि इन्द्र शत्रुका विनाश करनेवाला है, शत्रुके सिर काटता है, वज्रका उपयोग करके शत्रुका नाश

करता है, शत्रुके नगर और कीले तोडता है और आर्योंके लिये स्थान करके देता है। इन लडाइयोंके अतिरिक्त भी इन्द्रके कर्तव्य हैं। वह अनुयायियोंपर दया करता है। सहायता देता है, धन देता है, हरप्रकारकी सहायता करता है। देखिये—

१५७ ये त्वायन्तः सख्याय सख्यं वृणानाः अन्वमदन्।

'जो इन्द्रके अनुयायी होते हैं, और उसके साथ मित्रता करते है, उनको वह आनन्द देता है।' उनको सुख प्राप्त हो ऐसा करता है। '**१८७ यः इन्द्रे दुवांसि दधते, स जनः न भ्रेजते, न रेषत्।**' जो इन्द्रकी स्तुति करता है, वह स्थान-भ्रष्ट नहीं होता, और वह विनाशको भी प्राप्त नहीं होता। अर्थात् इन्द्रका जो अनुयायी होता है, वह सुरक्षित होता है और निर्भय होता है। वह इन्द्रकी सहायता प्राप्त करता है।

इन्द्र धन देता है

२१६ स वीरवत् गोमत् नः धातु।

२१७ वसूनि ददः।

२५१ सूरिभ्यः उपमं वरूथं यच्छ।

'वह इन्द्र वीर पुत्र और गौवें जिसके साथ होती हैं, ऐसा धन देता है। ज्ञानियोंको वह श्रेष्ठ धन देता है।' जो दान देने योग्य हैं उनको वह धन देकर सहायता करता है।

२२२ नः वार्यस्य पूर्धि।

२३६ अधि क्षमि यत् विषुरूपं अस्ति, वसूनि दाशुषे ददाति।

'हमें स्वीकार करने योग्य भरपूर धन दो। जो इस पृथिवी-पर सुरूप या कुरूप है, उसका राजा इन्द्र दाताके लिये अनेक प्रकारके धन देता है।

२३८ नः राये वरिवः कृधि। ते मनः मघाय गोमत् अश्ववत् रथवत् व्यन्तः।

२७२ दुर्णशः रयं आभर।

'हमें धन मिले इसलिये श्रेष्ठ धन हमारे लिये दे। तेरा मन धनदान करनेके लिये प्रवृत्त हो। गौवे, घोडे, रथ आदि धन है। ऐसा यह धन हमें प्राप्त हो। जिसका नाश नहीं होता ऐसा घर हमें प्राप्त हो।' अर्थात् हमें स्थायी टिकनेवाला घर, गौवे, घोडे, रथ तथा अन्य प्रकारके अनेक धन हमें चाहिये। ये धन इन्द्र देता है।

१४६ नः पितरः त्वे विश्वाः वामाः सुदुघाः गावः अश्वाः असन्वन्। त्वं देवयते वसु वनिष्ठः।

१४७ विशा गोभिः अश्वैः अस्मान् राये अभिशिशीहि।

'हमारे पूर्वजोंने तुम्हारे पाससे सब प्रकारके धन, दुधारू गौवे, उत्तम घोडे प्राप्त किये थे। तूं देवभक्तको धन देता है। तूं हमें सौंदर्य, गौवें, घोडे तथा धन दे दो।' हमें सब प्रकारका धन चाहिये। वही तुम्हारे पाससे मिलता रहा है, हमारे पूर्वजोंने तुमसे ही वह प्राप्त किया था। इसलिये हमें भी अब वह चाहिये।

१६९ विभक्ता शीर्ष्णे शीर्ष्णे विबभाज।

'धनका विभाजन करता हुआ तूं प्रत्येक मनुष्यके लिये धनका विभाजन कर दो।' कोई मनुष्य विना धनके न रहे।

१८३ दाशुषे वसु मुहुः दाताऽभूत्।— दाताके लिये धन वारंवार देनेवाला हो। ऐसा कभी न हो कि दाताके पास धन दान करनेके लिये न रहे। दाताका धनकोश सदा भरपूर भरा रहे।

'**१८८ चित्रं रयिं नः आभर**'— चित्रविचित्र प्रकारका धन हमारे पास सदा भरपूर भर दो। कभी हमारा धनकोश रिक्त न रहे। '**१९८ इन्द्रः विपह्य मघानि दयते**'— इन्द्र शत्रुका पराभव करके शत्रुके धन लाता और अपने अनुयायियोंको बांटता है।

१६७ देववतः नप्तुः पैजवनस्य सुदासः गोः द्वे शते वधूमन्ता द्वा रथा, दानं रेभन्।

देवभक्तके पपौत्र, पिजवनके पुत्र सुदास राजाने गौओंके दो सैंकडे, तथा स्त्रियोंके समेत दो रथ दानमें दिये। इस तरह दान दिये जाते थे। गौवें, घोडे, रथ, दास दासी यह सब दानमें प्राप्त होता था।

दान धनका ही होता था ऐसी बात नहीं। घर, घोडे, रत्न, गौवें, रथ, भूमि, धान्य, वस्त्र आदि जो सबके उपयोगके सब पदार्थ दानमें दिये जाते थे। दान देनेवालेका यश बढता था और दान लेनेवाला सुखी हो जाता था। जिसको जिस वस्तुकी

आवश्यकता होती थी वह दानसे दूर हो जाती थी। यह दानकी प्रथा अच्छी है और वह समाजमें सुख बढाती थी।

इन्द्रने जलके मार्ग बनाये

१५० सुदासे अर्णांसि गाधानि सुपारा अकृणोत्।

जहां अपार जल था, वहां पार होने योग्य, जलमेंसे पार जाने योग्य मार्ग, सुदासके लिये बनाया। जलमें ऐसा मार्ग बनाया यह इन्द्रकाही सामर्थ्य है। '**१५० शर्धन्तं उचथ्यस्य शिम्युं सिन्धूनां अशस्तीः अकृणोत्।**'— स्पर्धा करनेवाले उचथ्यके शिम्युको नदियोंके कष्ट बढा दिये। शत्रुके लिये नदीके कष्ट हों और अपने लोगोंको कष्ट न हों, इसलिये नदियोंके प्रवाह भी बदल दिये। इससे शत्रुराज्यमें नदी प्रवाहसे नगर बह गये और अपने लोगोंको अच्छा स्थान मिल गया।

१९४ त्वं महिना परिष्ठिता पूर्वीः अपः स्रवितवा कः।

'तू अपने सामर्थ्यसे पहिले स्तब्ध हुई नदियोंके प्रवाहोंको अच्छी तरह प्रवाहित किया।' नदियोंके प्रवाहोंको अच्छी तरह मार्ग करके दिया, जिन मार्गोंसे नदियाँ बहने लगी। '**१९४ धेना त्वत् रथ्यः न वावके**'— नदियां रथके समान दौडने लगीं। नदियोंके प्रवाहोंको इष्ट दिशासे चलाना यह इन्द्रका कार्य है, नहर निकालना, नदियोंको सुपार करना यह सब इन्द्रके कार्य हैं। राजाको अपने राष्ट्रमें ऐसे ही जलप्रवाहोंका संचालन करना चाहिये।

इन्द्र कवि है

इन्द्र जैसा राजा है, शूर है, युद्धमें प्रवीण है वैसा कवि भी है। '**१४७ विदुः कविः त्वं**'- तू कवि है और (विदुः) ज्ञानी भी है। ज्ञान और कवित्व राजा और राजपुरुषोंमें होना चाहिये। नहीं तो वे राज्यमें ज्ञान प्रचार नहीं कर सकेंगे। जो राजा ज्ञानी और कवि है वह '**१६६ सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान्।**'— ज्ञानियोंको सहायता देकर विद्वानोंके लिये उत्तम दिन करता है। विद्वानोंको धनधान्यसे समृद्ध करके, उनसे ज्ञान प्रचार करवाके उनका संमान और उनकी प्रतिष्ठा बढाकर उनके लिये अच्छे दिन निर्माण करके देता है। ज्ञानियोंके लिये राष्ट्रमें अच्छे दिन रहने चाहिये। ज्ञानियोंके लिये जिस राष्ट्रमें दुर्दिन होते है वह राष्ट्र नष्ट हो जाता है।

सत्यप्रिय इन्द्र

'**१८७ स ऋतपाः ऋतेजाः राये क्षयत्।**'

'वह इन्द्र सत्यका पालन करता है, सत्यपालन करनेके लिये ही वह उत्पन्न हुआ है। इस कारण वह धनके लिये योग्य स्थान देता है। सत्यका पालन करनेसे वह धनसे भरपूर होता है। सत्यके मार्गसे ही वह धनवान् हुआ है।

मानवोंपर दया

इन्द्र मानवोंपर दया करता है। इस विषयमें कहा है— '**२१५ देवत्रा एकः मर्तान् दयसे**'— सब देवोंमें एक ही यह इन्द्र मानवोंपर दया करता है। अन्य देव इसके समान दया करनेवाले नहीं हैं। यही एक इन्द्र सब मानवोंपर दया करता है और मानवोंकी सहायता करता है। '**२६३ चर्षणिप्राः विशः प्रचर।**'— प्रजाजनोंका संरक्षण करनेवाला इन्द्र प्रजाओंमें संचार करता है, प्रजाजनोंकी अवस्था देखता और उनकी सहायता करता है।

राजा इन्द्र

'**२३६ जगतः चर्षणीनां इन्द्रः राजा**'— जंगम प्रजाओंका भी राजा इन्द्र है। स्थावर पदार्थोंका भी वह राजा है, पर जंगमोंका भी वही राजा है। राजाका अधिकार जैसा स्थावरोंपर है वैसा जंगमोंपर भी है। इसलिये उसके कर्तव्य पूर्वस्थानमें जो वर्णन किये हैं, वे संरक्षण करना, शत्रुनाश करना, धनका योग्य बंटवारा करना आदि हैं।

कठोर मन

'**१८७ अस्य घोरं मनः**'— इन्द्रका मन घोर है, कठोर है। कोमल नहीं है। उसका मन घोर है इसलिये वह निष्पक्ष होकर स्थावर जंगमका योग्य शासन करता है।

'**१८६ स इनः सत्वा गवेषणः धृष्णुः**— वह राजा बलसे शत्रुका पराभव करनेवाला है और प्रजाकी गौवें चुरानेवाले चोरोंसे गौवें वापस लाकर उनको देता है। राजाका यह एक कर्तव्य यहां बताया है, वह यह है कि वह राजा अपनी प्रजाकी चोरी होनेपर चोरीका माल चोरोंसे वसूल करके वह जिसका था उसको वापस कर देवे। और चोर पुन

चोरी न कर सके ऐसा प्रबंध करे। प्रजाप्रजामें राजाके विषयमें इतना विश्वास उत्पन्न हो कि हमारा राजा चोरीका माल हमें वापस ला देगा और हमारा संरक्षण करेगा।

'**२१३ गवेषणं रथं हरिभ्यां युजे**।'— गौवोंकी खोज करनेके लिये जानेवाले इन्द्रके रथको दो घोडे जोते होते हैं। उसमें बैठकर वह जाता है और चुरायी गौवें ढूंढकर वापस लाता है। '**२५६ त्वं गव्युः। त्वं हिरण्ययुः**; **७८१ गवां एकः पतिः असि**'— तूं गौवें देनेवाला, धन देनेवाला और गौओंका एक स्वामी है।

यातना देनेवालोंको दण्ड

यातना देनेवालोंको योग्य दण्ड देना चाहिये इस विषयमें इन्द्रकी प्रसिद्धि है। '**८३६ यातुमद्भ्यः अशनिं सृजत्**'— यातना देनेवाले दुष्टोंपर शस्त्रका प्रहार करता है। '**८३७ रक्षसः अभि पनि**'— दुष्टोंका प्रतिकार करता है।

'**८४० यातुधानं जहि**'— यातना देनेवालोंका नाश कर। '**मूरदेवाः विग्रीवा आसन्**'— मूढोंको देव मानकर उनकी पूजा करनेवालोंका सिर टूट जाय। ऐसे मूढ-पूजक अपने समाजमें न रहें। '**८४१ रक्षोभ्यः वधं अस्यत्**'— दुष्ट क्रूर शत्रुका वध करो।

इस तरह इन्द्रके वर्णनसे राजा और राजपुरुषोंके कर्तव्योंका वर्णन हुआ है। इन्द्रका स्वरूप विद्युत् है, मेघ गर्जना होकर जो विद्युत् होती है वह मध्यस्थानमें रहनेवाली देवता इन्द्र है। इसीका वर्णन करते हुए, यह विद्युतके गिरनेसे वृक्ष, पर्वत, पत्थर आदि टूट जाते हैं, यही शत्रुका नाश करना है। यह देखकर इन्द्र राजा, क्षत्रिय और राज्यशासक करके वर्णन किया है। इन्द्रके अन्य रूप ईश्वर, सूर्य आदि अनेक वर्णन किये हैं। यह इन्द्र देवता क्षत्रिय देवता है। अग्नि ब्राह्मण देवता है। इन्द्र क्षत्रिय है। अग्निके वर्णनमें ज्ञान आदि गुणोंका वर्णन है, वैसा इन्द्रके वर्णनमें नहीं है। क्योंकि क्षत्रियका आदर्श इन्द्र देवतामें ऋषि देख रहा है और आदर्श क्षत्रियका वर्णन इन मंत्रोंमें है। राजा और राजपुरुषोंके कर्तव्य पाठक यहां इन मंत्रोंमें देख सकते हैं।

मरुद्देवतामें आदर्श पुरुषका दर्शन

इन्द्रके सैनिक 'मरुत्' है। इन्द्र सेनापति है और उसकी सब सेना मरुतोंकी है। मरुतोंकी सेनाके द्वारा ही इन्द्र शत्रुका पराभव करता है। जो जो पराक्रम इन्द्र करता है वह मरुतोंकी सेनाकी सहायतासे करता है। सेनापतिका बल और युद्ध कुशलता तो रहती ही है, परंतु सैनिक शूर न रहे तो अकेला सेनापति क्या कर सकता है। इसलिये सैनिकोंका महत्त्व निःसंदेह है।

इन्द्र मध्यस्थानीय विद्युत् है और मरुत् उसके सहायक विविध प्रकारके वायु है। जब वेगसे वायु चलता है, तब वह वृक्षोंको तोडता है, मकानोंको भी गिराता है, इस तरह जो उसके बीचमें आजाय उसका नाश करता है। सैनिक शत्रुके प्रदेशमें आक्रमण करते हैं। इसलिये विविध वायुदलोंपर सेनादलोंका आरोप कवि करता है और मरुतोंमें, आदर्श सैनिकभाव वह देखता है।

मरुतोंके गण होते हैं। नियमित गणसंख्यामें रहना यह एक सैनिकोंका कर्तव्य होता है। एक कतारमें ७ मरुत् वीर रहते हैं और आगे पीछे एक एक पार्श्वरक्षक होता है। इस तरह एक पंक्तिमें ९ मरुद्वीर रहते हैं। ऐसी मरुतोंकी सात कतारें होती हैं अर्थात् एक गणमें [७+२=९×७=] ६३ मरुद्वीर रहते हैं। यह मरुद्वीर चलते हैं तो ७।७ की पाक्तियोंमें चलते हैं। साथ दोनों ओर रक्षक रहते हैं। मरुतोंका गण इस तरह ६३ सैनिकोंका होता है।

यह सैनिक रचना मरुतोंको देखकर कवियोंने की है। वायु प्रवाहोंका हमला मिलकर होता है। इसलिये मरुतोंका वर्णन गणशः किया है।

मरुतोंका एक घरमें रहना

मरुत् अकेला अकेला पृथक् पृथक् घरमें नहीं रहता। ये सब एक बडे घरमें रहते हैं। '**४५३ सनीळाः**'— एक घरमें रहनेवाले यह मरुतोंका वर्णन है। आजकलके यूरोपियन सैनिक एक घरमें बहुतसे रहते हैं। उस सैनिकोंके घरको 'बरॉक' कहते है। वैसे ही मरुतोंके बडे घर होते थे। सैनिक ये संघदेव हैं। वे संघमें रहते, संघसे हमला करते हैं, सब कार्य संघसे ही करते हैं। रहना सहना संघसे होता है। एक घरमें रहनेसे इनके अन्दर सांघिक जीवन आजाता है, जो संघशक्ति बढाता है।

घोडेपर बैठनेवाले

'**४५३ स्वश्वाः**'— घोडेपर बैठनेमें प्रवीण। सैनिकोंका घुडदल भी होता है। उसमें सब सैनिकोंके एक जैसे घोडे होते हैं। वे भी पक्तियोंमें ही जाते हैं।

रथमें मरुत्

'४७३ रथ्यः मरुतः '— रथमें बैठनेवाले मरुत। ये भी रथोंकी पंक्तिमें भ्रमण करते है। मरुतोंका नाम गणदेव है। वसु, रुद्र, आदित्य, मरुत् ये गणदेव है। ये गणोंसे ही सब कार्य करते हैं।

खेलमें प्रवीण

'४६८ पयोधा वत्सारः न प्रक्रीळन्तः- दूध पीनेवाले बालकोंके समान ये मरुत् खेलते रहते हैं। बालक जैसे निष्कपटभावसे खेलते रहते है, उस तरह ये मरुद्वीर खेलते है। मर्दानी खेल खेलना यह इनकी वृत्ती ही है। खेलसे इनका शरीर और मन स्वस्थ रहता है। देवोंके लक्षणोंमें 'दिव्-क्रीडा, विजिगीषा' ये लक्षण दिये है, उनमें क्रीडा पहिला लक्षण है। यह क्रीडा पौरुषके खेल है। जो देव होते है वे पौरुष खेलोंको खेलते ही हैं।

त्वरासे कार्य करनेवाले

मरुत् त्वरासे कार्य करते हैं, सुस्ती उनके पास नहीं होती। '४७१ इमे तुरं रमयन्ति'। '४७५ साकं उक्षे गणाय प्रार्चत '- ये मरुत् त्वरासे दूसरोंको सुख देनेका कार्य करते हैं। साथ साथ रहकर ये कार्य करते हैं इसलिये इनके गणोंका आदर करो। ये सैनिक साथ साथ एक घरमें रहते हैं और शत्रुपर आक्रमण करनेके समय संघसे ही आक्रमण करते हैं। भोजन आदि सब संघसे ही इनका होता है। इसलिये इनमें प्रचण्ड संघशक्ति रहती है। सांघिक जीवनसे संघशक्ति निर्माण होती है और सांघिक रहन सहनसे ही वह शक्ति बढती है। इसलिये मरुतोंके सब कार्य संघसे होते हैं।

शत्रु नहीं दबाता

मरुतोंमें प्रचण्ड सांघिक बल होनेसे इनको कोई भी शत्रु दबा नहीं सकता। '४६७ अन्य अरावा नूचित आदभत् ' कोई दूसरा शत्रु इनको दबा नहीं सकता। क्योंकि ये संघसे रहते हैं, संघसे शत्रुका प्रतीकार करते हैं। इसलिये इनका बल अधिक होता है और हरएक प्रकारका शत्रु इनसे दबाया जाता है।

शत्रुका नाश करते हैं

मरुतोंका कर्तव्य ही है कि राष्ट्रकी सुरक्षा करनेके लिये यत्न करना और युद्ध उपस्थित हुआ तो शत्रुके साथ युद्ध करना। इसलिये इनके विषयमें कहा है—

'४६९ दशस्यन्तः '— ये शत्रुका विनाश करते हैं।

'४७१ अररुषे गुरुद्वेषः दधन्ति '— हिंसक शत्रुपर बडा द्वेष रखते है

'४७८ उग्राः अयासुः रोदसी रेजयन्ति '— ये उग्र वीर जब शत्रुपर हमला करते हैं, तब पृथ्वीको हिला देते है।

'४८६ वः यामन् विश्वः भयते '— तुम वीरोंके आक्रमणसे सब शत्रु भयभीत होते हैं।

'८३४ रक्षसः संपिनष्टन '— दुष्टोंका विनाश करो, शत्रुओंको पीस डालो।

'४७१ इमे सहः सहसः आनमन्ति '— ये वीर अपने बलसे बलिष्ठ शत्रुको भी विनम्र करते हैं।

'४७६ उग्रः मरुद्भिः पृतनासु साळ्हा '— उग्र वीर मरुतोंके साथ रहनेसे शत्रुका पराभव करता है।

'४८८ युष्मा ऊतः सहुरिः '-- आप मरुतोंसे जो सुरक्षित होता है वह शत्रुका पराभव करता है।

'४८८ युषा ऊतः सम्राट् वृत्रं हन्ति '-- तुम्हारे द्वारा सुरक्षित होनेसे सम्राट शत्रुका वध करता है।

'४९२ युष्माकं अवसा द्विषः तरति '-- तुम्हारे संरक्षणसे शत्रुको पार करता है।

इस तरह मरुद्वीर शत्रुका नाश करते हैं, तथा लोगोंको संरक्षण देकर उनमें भी अपना संरक्षण करनेका बल बढाते हैं।

वीरोंके शस्त्र

'४६३ स्वायुधा इष्मिणः '- मरुत् वीर उत्तम शस्त्रास्त्र अपने पास रखते हैं और वेगसे शत्रुपर आक्रमण करते हैं। उनके पास '४६९ नृहा वधः '--शत्रुके वीरोंका वध करनेवाले शस्त्र होते हैं। '४६१ सनेमि दिद्युं '-- उन वीरोंका शस्त्र अत्यंत तीक्ष्ण धारावाला होता है। इस तरहके उत्तम शस्त्रास्त्र इन वीरोंके पास रहते हैं। इसलिये इनका प्रभाव युद्धोंमें अत्यंत अधिक होता है।

मरुतोंद्वारा संरक्षण

मरुतोंद्वारा जिसको संरक्षण मिलता है वह निर्भय होता है, इस विषयमें कहा है—

४८४ विश्वे सूरीन् अच्छ ऊती आजिगात ।
४८७ स्पार्हाभिः ऊतिभिः प्रतिरेत ।
४८८ युष्मा ऊतः शतस्वी सहस्री ।
४९४ वः ऊती पृतनासु नहि मर्धति ।

' सब मरुत ज्ञानियोंका संरक्षण करते हैं। इनके प्रशंसनीय संरक्षणसे मनुष्य आपत्तियोंसे मुक्त होता है। इनके संरक्षणसे सुरक्षित हुआ मनुष्य सैकडों और सहस्रों प्रकारके धन प्राप्त करता है। इनके संरक्षणसे सुरक्षित हुआ मनुष्य युद्धोंमें भी विनष्ट नहीं होता। ' यह लाभ इनके संरक्षणसे प्रजाजनोंको प्राप्त होता है।

धनका दान करनेवाले मरुत्

मरुद्वीर जैसा संरक्षण करते हैं वैसा धनका दान भी करते हैं—

४६७ सुवीर्यस्य रायः मक्षु दात ।
४८३ सूनृतारायः मघानि जिगृत ।
५०० सुदानः मरुतः गृहमेधासः ।

' उत्तम शौर्यके साथ रहनेवाला धन हमें दो। सत्यमार्गसे प्राप्त होनेवाले धन दे दो। दान देनेवाले मरुत् गृहस्थधर्मका पालन करनेवाले हैं।

इस तरह मरुद्वीरोंके दातृत्वका वर्णन है। जो वीर होते हैं, वे दानी होते ही हैं। उदारता वीरके साथ रहनेवाली होती है।

शुद्धता, सत्यनिष्ठा और यशस्विता

मरुद्वीरोंकी शुचिताके विषयमें इस तरह वर्णन आता है—

४६४ शुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ।
४८१ अनवद्यासः शुचयः पावकाः मरुतः ।

ये मरुत् जन्मसे शुद्ध, पवित्र और दूसरोंको पवित्र करने-वाले हैं। ये शुद्ध और पवित्र होनेके कारण अनिंद्य हैं। वीरोंको शुद्धाचरणी होना चाहिये। सैनिकों और रक्षकोंका आचरण परि-शुद्ध होना चाहिये।

इनके सत्यनिष्ठ होनेके विषयमें ऐसा वर्णन है—

४६४ ऋतेन सत्यं आयन् ।

' ये मरुत् वीर सरल आचरणके साथ सत्यको प्राप्त करते हैं। ' सरलता और सत्यता इनके आचरणमें होती है। प्रायः वीर ऋजुगामी, सत्यनिष्ठ और सरल व्यवहार करनेवाले होने चाहिये। अथवा वीरोंका आचरण सीधा होना चाहिये।

जो पवित्र और सत्यनिष्ठ होते हैं वे यशस्वी होते हैं, इसलिये इनके वर्णनमें इनके यशस्वी होनेका भी वर्णन है—

४६२ तुराणां वः प्रिया नाम ।

त्वरासे कार्य समाप्त करनेवाले इन मरुतोंका नाम अर्थात् यश सबको प्रिय है। यशस्विताके साथ उनका प्रिय होना भी है। वीर यश भी प्राप्त करें और प्रिय भी हों।

नेता वीर

' **४८३ नरः मरुतः** '- मरुत् नेता हैं, नर हैं, अर्थात् चलानेवाले हैं। अतएव वे ' **४७८ यजत्राः** '-- पूज्य हैं, और ' **४५३ व्यक्ताः** ' नेता करके प्रकट या प्रसिद्ध भी होते हैं। छुपे रहकर वे नेतृत्व नहीं करते परंतु प्रकट रीतिसे वे नेतृत्व करते हैं।

' **४५३ मर्याः** '— मरनेके लिये तैयार हैं। ' **मरुत्** ' (मर्-उत्) का अर्थ भी मरनेतक उठकर लडनेवाले, यही भाव यहां मर्यका है। मरनेके लिये तैयार रहकर वीरतासे लडने-वाले ये वीर हैं।

' **४६० मनांसि क्रुध्मी घृणोः शर्धस्य धुनिः** '— इन वीरोंके मन क्रोधसे भरे जैसे रहते हैं। शत्रुका पराभव करनेके बलकी इनके अन्दर पराकाष्ठा होती है। ये वीर ' **४५८ यामं येष्ठाः; ओजोभिः उग्राः, ४५९ शवांसि स्थिराः** '— शत्रुपर आक्रमण करनेके समय आगे रहनेवाले, अपने बलसे ये उग्रवीर स्थिर बलसे युक्त होते हैं।

' **४५५ स्वपूर्भिः मिथः अस्पृध्रन्, ४५७ सा विट् मरुद्भिः सुवीरा, नृम्णं पुष्यन्ती, सनात् सहन्ती** '- वे वीर अपने आप परस्पर स्पर्धा करते हैं, खेलकूदमें बडे वेगसे खेलते कूदते हैं। मरुतोंके साथ रहनेवाली प्रजा उत्तम वीर होती है, अपनी वीरता बढाती है और सदा शत्रुका पराभव करती है। प्रजाकी शक्ति भी इन वीरोंके कारण बढती है।

४५६ मही पृश्निः ऊधः जभार '— गौ अपने स्तनोंमें दूध इन वीरोंको देनेके लिये ही धारण करती है। मरु-तोंको वेदमें अन्यत्र ' गोमातरः, पृश्निमातरः ' कहा है। ये गौको

माता मानकर उसका संरक्षण करते हैं। गोरक्षा करनेवाले ये वीर हैं। वीरोंको गोरक्षण अपनी मातृभूमिमें करना चाहिये।

मरुद्वीरोंका बल

मरुतोंके प्रचण्ड सामर्थ्यके विषयमें वेदके मंत्रोंमें बहुत प्रकारका वर्णन है, उनमेंसे थोडेसे मन्त्र यहां देखिये—

४५९ गणः तुविष्मान् ।
४६० शुभ्रः शुष्मः ।
४६५ आयुधैः स्वधां अनुयच्छमानाः ।
४६६ बुध्न्या महांसि प्रेरते ।
४६७ वाजिनः, ४७० वृषणः, ४७४ अर्यः
४७८ युद्धेषु शवसा प्रमदन्ति ।
४८६ भीमासः तुविमन्यवः अयासः ।
४९५ धृष्विराधसः । ४९९ रिशादसः ।
५०१ स्वतवसः कवयः मरुतः

' मरुतोंका समुदाय बलवान् है; इनका बल निष्कलंक है, आयुधोंके साथ ये अपनी आधारशक्तिको ही देते हैं। ये अपने निजसामर्थ्योंको प्रेरित करते हैं। ये बलिष्ठ, समर्थ और गतिमान हैं, युद्धोंमें ये बलसे आनंदित होते हैं। ये भयानक दीखनेवाले शीघ्र कोप करनेवाले और शत्रुपर प्रभावी धांवा करनेवाले है। ये शत्रुका नाश करनेवाले और अपनी शक्तिसे सामर्थ्यवान् और कवि अथवा ज्ञानी भी हैं।

ये वर्णन इनके बलका वर्णन कर रहे हैं। जो सैनिक हैं और ग्रामरक्षक हैं, वे बलवान चाहिये इसमें किसीको संदेह नहीं हो सकता।

अपने शरीरको सजाना

जिस तरह आजकलके पुलीस तथा सैनिक अपना गणवेश करके सजधजके साथ बाहर आते हैं, उसी तरह ये मरुत् भी अपना गणवेश करके सजधज कर अपने कार्यपर लगते हैं। शरीरके सजानेके विषयमें मंत्रोंमें वर्णन बहुत है, उनमेंसे कुछ नमूनेके मंत्र देखिये--

४५८ शुभ्राः शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्लाः ।
४६३ सुनिष्काः स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ।
४६५ अंसेषु खादयः, वक्षःसु रुक्माः उपशिश्रियाणाः । विद्युतः रुचयः न ।
४६८ यज्ञदृशः शुभयन्त । हर्म्येष्ठाः शिशवः न शुभ्राः ।
४८० रुक्मैः आयुधैः तनूभिः भ्राजन्ते ।
,, विश्वपिशा रोदसी पिशानाः ।
,, समानं अञ्जि शुभे कं आ अञ्जते ।
४९७ तन्वः शुम्भमानाः रण्वाः नरः ।

' ये वीर मरुत् शोभिवन्त दीखते हैं और प्रभासे युक्त हैं। ये शरीरपर निष्क अर्थात् सुवर्णके पदक धारण करते हैं और उनसे शरीरकी शोभा बढाते हैं। कंधोंपर भूषण और छातीपर अलंकार धारण करते हैं और बिजलीकी चमकके समान चमकते हैं। यज्ञ देखनेके लिये जानेवाले जैसे सजकर जाते हैं और राजभवनमें रहनेवाले गौरवर्ण बालक जैसे सजे रहते हैं, वैसे ये वीर सजे रहते है। तेजस्वी आयुधोंसे ये चमकते हैं। अपनी शोभासे ये विश्वकी शोभा बढाते हैं। सबके आभूषण एक जैसे होते हैं जो उनकी शोभा बढाते हैं। ये शरीरकी सजावट करनेवाले रमणीय वीर हैं।'

ये वर्णन इनकी सजावटका वर्णन कर रहे है। मरुतोंमें ऋषि ग्रामरक्षकों (पुलिसों) और सैनिकोंका आदर्श देख रहा है। ऐसे रक्षक और सैनिक होने चाहिये। युरोप अमेरिकाके अन्दर पुलिसों और सैनिकोंका जैसा थाटबाट होता है, वैसा यह है। ऐसे ये रक्षक सजेसजाये न रहे, तो उनका प्रभाव जनतापर नहीं पडेगा और ऐसे सजधजसे रहे तो ही वे अपना कार्य उत्तम रीतिसे कर सकेंगे।

इसलिये रक्षकों और सैनिकोंके लिये यह आदर्श ध्यानमें रखने योग्य है। हमारे आजके रक्षक भी ऐसे प्रभावी हों।

वसिष्ठ ऋषिका वरुण, विष्णु और सोममें
आदर्श-पुरुष-दर्शन

वरुण देवतामें ऋषिने आदर्श राजाका दर्शन किया है। इसलिये कहा है कि '**७०९ गृत्सः राजा वरुणः**'- वरुण राजा बडा विद्वान् है। अर्थात् राजा ज्ञानवान् होना चाहिये। आदर्श राजामें विद्या अवश्य चाहिये। वह '**७११ सुक्षत्र**' उत्तम क्षात्रबलसे युक्त होना चाहिये तथा '**७१२ अद्रिवः**' पर्वतके ऊपरके कीलों द्वारा अपने राज्यका संरक्षण करनेवाला होना चाहिये। अर्थात् वह अपने राष्ट्रमें कीले तैयार करे और राष्ट्रको सुरक्षित करे। '**६९२ दुर्दभ स्वधावः**'- वह राजा किसीके दबावमें आकर अनिष्ट करनेवाला न हो, अपनी आधारशक्तिसे संपन्न हो। अपनी शक्तिसे अपने स्थानपर रहनेवाला हो। किसी दूसरेकी कृपासे राज्याधिकारमें आया न हो। '**६८९ अस्य जनूंषि महिना धीराः**' इसका जीवनवृत्त महत्त्वपूर्ण कार्य करनेके कारण जनताका धैर्य बढानेवाला हो। निर्बलता और भीरुता उसके जीवनमें न रहे। धीर तथा उदात्तभाव उसके जीवनमें टपकता रहे।

'**७०२ सुपारदक्षः राजा**'- संकटोंसे उत्तम रीतिसे पार होनेके साधन राजाके पास हों और उनका उपयोग योग्य समयपर दक्षतासे करे।

'**७०८ ते बृहन्तं मानं सहस्रद्वारं गृहं जगम**'- उस राजाका जो बडा विशाल सहस्रद्वारवाला सभागृह है उसमें मैं प्रविष्ट हो जाऊंगा। अर्थात् राजाका एक सभागृह हो, उसमें वह सभासदोंसे संमति प्राप्त करके राज्यशासन करे। यदि सदस्योंकी संमतिकी अपेक्षा करनी नहीं है, तब तो इतने बडे सभागृहकी क्या आवश्यकता है? इसलिये राज्यशासनपरिषद् हो और वह बडी हो।

'**६९९ वरुणस्य स्पशः स्वादिष्टाः सुमेके उभे रोदसी परिपश्यन्ति। ये ऋतावानः कवयः यज्ञधीराः प्रचेतसः मन्म इषयन्त।**'

'वरुण राजाके दूत बडे वेगसे इस विश्वमें घूमते हैं और सबका निरिक्षण करते हैं। कौन सत्यपालन करता है, कौन ज्ञान प्रचार करता है, कौन यज्ञ करता है, कौन विशेष ज्ञानमें प्रवीण है और कौन मननीय विचार प्रेरित करता है। इसी तरह कौन इसके विरुद्ध व्यवहार करता है वह सब वे देखते हैं।

इस तरह राजा अपने राज्यमें चारोंके द्वारा, दूतोंके द्वारा, सबका यथायोग्य निरीक्षण करे और राज्यशासन करे। वरुणदेवके वर्णनमें इस तरह आदर्श राजाका दर्शन ऋषिने किया है।

परमेश्वरका दर्शन

वरुणके वर्णनमें परमेश्वरका भी वर्णन है वह इस तरह है—

६८९ वरुणने आकाशको आधार दिया है, सूर्यको ऊपर रखा है, नक्षत्रोंको प्रेरित किया है। भूमिको विस्तृत किया है। ६९७ सूर्यके लिये मार्ग किया है, इत्यादि वर्णनमें वरुणका अर्थ निःसंदेह परमेश्वर है।

७०६-७०७ इन मंत्रोंमें समुद्रमें नौका और उसमें वसिष्ठका वरुणके साथ बैठनेका वर्णन बडा ही हृदयंगम है। वह जीव और ईश्वरका शरीरमें निवास होनेकी कल्पनाको व्यक्त कर रहा है। ये मंत्र इस प्रकरणमें पाठक अवश्य देखें। बडे ही गंभीर अर्थवाले ये मंत्र हैं।

अन्य ज्ञानके साथ वेदमंत्रोंमें ईश्वरका वर्णन होता है, यह बात पाठकोंको पता है। इसलिये इस विषयका विवरण इस टिप्पणीमें अधिक नहीं किया। जिसका विचार नहीं किया जाता वही विषय बताना इस टिप्पणीका कार्य है।

विष्णु देवता

विष्णु देवता भी इन्द्र और वरुणके समान ही शत्रुका नाश करनेवाली है। इसलिये इसके मंत्रोंमें कहा है कि-

७८८ हे इन्द्राविष्णू ! शंबरस्य दृंहिता नव नवतिं च श्नथिष्टं। वर्चिनः असुरस्य शतं सहस्रं च वीरान् अप्रति साकं हथः।

' इन्द्र और विष्णुने मिलकर शंबरके सुदृढ निन्यानवे नगर तोड दिये और उस बलिष्ठ शत्रुके एक हजार एक सो वीर अतुलनीय रीतिसे मार दिये। ' यह पराक्रम इन दोनों देवोंने किया है।

बाकी विष्णुके वर्णनमें परमेश्वरका वर्णन ही विशेष करके हैं। ' विष्णु ' सर्वव्यापक देवको कहते हैं।

सोम देवता

सोम एक वनस्पति है। जिसका रस जीवन देनेवाला है और उत्साह बढानेवाला है। इस देवताका वर्णन भी शूरवीर जैसा किया है—

८६४ शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि। तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळ्हः साह्वान् पृतनासु शत्रून्॥

(शूरग्रामः) शूरोंका संघ बनानेवाला, (सर्ववीरः) सब प्रकारके वीरोंके गुणोंसे युक्त, (सहावान्) शत्रुका पराभव करनेयोग्य बल धारण करनेवाला, (जेता) विजयी, (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण आयुध धारण करनेवाला, (क्षिप्रधन्वा) शीघ्रतासे धनुष्य चलानेवाला, (समत्सु अषाळ्हः) युद्धोंमें शत्रुके लिये अजिंक्य, (पृतनासु शत्रून् साह्वान्) युद्धक्षेत्रमें सेनाएँ परस्पर भिडनेपर शत्रुओंको परास्त करनेवाला, (धनानि सनिता) धनोंका दान करनेवाला तुम (पवस्व) प्रवाहित हो या पवित्र कर।

इस मंत्रका प्रत्येक पद वीर पुरुषका वर्णन कर रहा है। पर यह मंत्र सोमदेवताका है। इसलिये कहा जाता है कि यहां सोमदेवतामें विजयी वीरका साक्षात्कार ऋषि कर रहा है। और देखिये—

८६७ क्रतुमान् राजा इव अमेन विश्वा दुरिता घनिघ्नत्— पुरुषार्थी राजाके समान यह सोम अपने बलसे संपूर्ण अनिष्टोंका नाश करता है। यहां सोमको राजाकी उपमा देकर कहा है कि वह दुष्टोंका नाश करता है।

युद्धके समयका गणवेश

८६९ भद्रा वस्त्रा समन्या वसानो महान् कविर्निवचनानि शंसन्— कल्याणकारक संग्रामके योग्य गणवेश पहनकर यह बडा कवि अनेक उपदेश करता है। यह युद्धके समयका गणवेश भिन्न होता है, वह युद्धके समय ही पहना जाता है ऐसा कहा है। युद्धके समयके वस्त्र पृथक्, यज्ञके समयके वस्त्र पृथक् होते थे। यह इस मंत्रभागसे सिद्ध होता है।

८७७ हन्ति रक्षः, परिबाधते अरातीः वृजनस्य राजा वरिवः कृण्वन्। —बलवान् राजा सोम राक्षसोंका नाश करता है, दुष्टोंको बाधा देता है, और धनका दान करता हैं। यह वर्णन भी शूर क्षत्रिय राजाके वर्णन जैसा ही है। इस तरहके वर्णन ऋषि उत्तम आदर्श क्षत्रियका साक्षात्कार करता है, इस मतकी पुष्टि कर रहे हैं। ऋषिको अपने राष्ट्रमें किस प्रकारके क्षत्रिय उत्पन्न होनेकी अभिलाषा थी यह इससे स्पष्ट हो जाता है, अथवा यों कह सकते हैं कि सर्व साधारणतः क्षत्रिय कैसे होने चाहिये यह इस वर्णनसे प्रकट होता है।

सरस्वती देवी

स्त्री देवताओंमें सरस्वती और उषा प्रमुख स्थानमें गिनी जाती हैं। इनके वर्णनमें स्त्रीके गुणधर्मोका वर्णन आता है, वह देखने योग्य है—

७५५ एषा सरस्वती आयसी पूः धरुणं प्रसस्रे।

' यह सरस्वती लोहेके प्राकारवाली नगरीके समान सुरक्षाका धारण करती है। ' स्त्री कीलेवाली नगरी जैसी संरक्षण करनेमें समर्थ हो यह इसका अभिप्राय है। स्त्रियां अबला नहीं रहनी चाहिये परंतु बलवती होनी चाहिये। देवताओंमें भी पुरुष देवताके पास २।४ ही शस्त्र रहते हैं, परंतु, स्त्री देवताओंके हाथोंमें १८।२८ तक शस्त्र रहते हैं। काली भवानी आदिके चित्र देखो। ये स्त्रियां युद्धमें शत्रुका प्रलय करनेवाली करके प्रसिद्ध हैं। वही बात यहां स्त्रीको ' आयसी नगरी ' कहकर बतायी है।

७५७ नर्यः वृषा वृषभः शिशुः यज्ञियासु योषणासु ववृधे— जनोंका हित करनेवाला बलवान् बैल जैसा

सामर्थ्यवान् पुत्र इन पूज्य स्त्रियोंमें होकर बढता है। यहां स्त्रियों-को पुत्र कैसा हो उसका वर्णन है। प्रजाजनोंका कल्याण करनेका कार्य करनेवाला बलवान पुत्र होना चाहिये।

'**७६१ शुभ्रा**' सरस्वती है। यह स्वयं गौरवर्ण है और वस्त्र भी श्वेत पहनती है। '**७६३ वाजिनीवती भद्रा सरस्वती भद्रं करत्**'—यह बलवती सरस्वती सब प्रकारसे कल्याण करती है।

इस तरह सरस्वती देवीका वर्णन करते हुए कवि सामर्थ्यवती वीरा स्त्रीका वर्णन करता है और बताता है कि स्त्री विदुषी तथा सामर्थ्यवती होनी चाहिये।

उषा

सरस्वती देवी बडी विदुषी प्रौढ स्त्री जैसी वर्णन की है। परंतु उषा यह प्रौढकन्या अथवा नवविवाहिता तरुणी जो प्रियपतिको प्रसन्न करना चाहती है, प्रेमसे मिलना चाहती है ऐसी तरुणी जैसी वर्णन की है। सरस्वती और उषा दोनों स्त्री देवताएं हैं, परंतु उषाका लावण्य सरस्वतीमें नहीं है और सरस्वतीका प्रशस्त प्रौढत्व उषामें नहीं है। इस दृष्टीसे इन देवताओंके वर्णन देखने योग्य हैं।

६११ दैव्या व्रतानि जनयन्तः— देवोंके व्रत करती हैं। अपनी भावी उन्नतिके लिये ये अनेक व्रत वे करती हैं।

६१३ वसूनां ईशे— धनोंकी स्वामिनी हैं।

६२२ भुवनस्य पत्नी— भुवनकी स्वामिनी है। इतनी योग्यता और इतना अधिकार इस स्त्रीका है।

६१४ विश्वपिशा रथेन याति— यह सुंदर रथमें बैठकर भ्रमण करती है। '**विधते जनाय रत्नं दधाति-**' उत्तम शिल्पीको धन देती है।

६१९ यती इव न— संन्यासिनी जैसी यह उदास कभी नहीं रहती। '**पर्याचरन्ती**' पतिकी सेवामें तत्पर रहती है।

६३४ युवती योषा उप रुरुचे— तरुण स्त्री जैसी यह चमकती है।

६३५ हिरण्यवर्णा सुदृशीक-संदृक् रुशत् शुक्रं-वासः बिभ्रती—सुवर्ण जैसे रंगवाली यह अत्यंत रमणीय स्त्री (रेशमी) चमकीला वस्त्र पहनती है।

६५७ अश्वावतीः गोमतीः वीरवतीः भद्राः— घोडे, गौवें और वीर पुत्रोंको पास रखनेवाली, कल्याण करनेवाली है। '**घृतं दुहानाः**'— सवेरे दूध दुहती है और दहीको बिलोडकर मक्खन बनाकर घी तैयार करती है। यह '**विश्वतः प्रपीनाः**'— सब प्रकारसे हृष्टपुष्ट रहती है।

देखिये यह उषाका वर्णन आदर्श तरुणीका वर्णन है। कवि उषामें आदर्श तरुण स्त्रीका वर्णन देखता है ऐसा यहां स्पष्ट प्रतीत हो रहा है। सजधजसे रहनेवाली, चमकीले वस्त्रभूषण पहननेवाली, सुंदर रथमें बैठकर घूमनेवाली, जिसके रथको सुंदर घोडे जोते जाते हैं, ऐसी तरुणी यहां वर्णित हुई है। स्त्रीके यति- संन्यासिनी- होनेका यहां स्पष्ट निषेध भी है। यति या संन्यासीनी होनेका यहीं स्पष्ट और तीव्र निषेध है। तरुण स्त्री तो कभी यतिनी नहीं होनी चाहिये।

बुद्ध मतके अनंतर यति होनेकी प्रथा शुरू हुई, कलियुगमें संन्यास लेना उचित नहीं है, ऐसा मनुस्मृतिने भी निषेध ही किया है। तो भी संन्यास लेते हैं, यह बुद्ध मतकी छाप है। वैदिक धर्मके वेदके द्रष्टा सभी ऋषि गृहस्थी हैं। यही हमारे लिये आदर्श है क्योंकि मनुष्योंको यहां ही स्वर्गधाम बनाना है। पृथ्वीपर देवराज्यका प्रकाश करना है। वह इसको जगत् त्यागनेसे नहीं हो सकेगा।

मित्र और वरुण

वरुण देवतामें ऋषिने आदर्श पुरुषका दर्शन किस तरह किया है, वह हमने इससे पूर्व (पृ०३९१ में) देखा है। अब मित्र और वरुण इन देवोंमें किस आदर्शका दर्शन किया है वह देखना है—

५०४ एषः नृचक्षाः सूर्यः— यह मित्र अर्थात् सूर्य मनुष्योंके आचरणका निरीक्षण करता है। इस तरह राजाको अपने राष्ट्रके लोगोंका निरीक्षण करना चाहिये। कौन यहां आर्य है और कौन दस्यु है इसकी परीक्षा करनी चाहिये:

'**मर्तेषु ऋजु वृजिना च पश्यन्**'— मानवोंमें सरल कौन है और कुटिल कौन है, इसका निश्चय करना चाहिये।

'**विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपाः**'— सब स्थावर जंगमका संरक्षण करना चाहिये।

५०७ भूरेः अनृतस्य चेतारः, ऋतस्य दुरोणे वावृधुः— ये असत्यको दूर करनेवाले और सत्यका संवर्धन

करनेवाले हैं। शासकोंको भी अपने राज्यमें इसी तरह सत्यका संवर्धन और असत्यका विनाश करना चाहिये।

५०८ सुचेतसं क्रतुं वतन्तः, सुक्रतुं सुपथा नयन्ति— उत्तम चित्तवाले और उत्तम कर्मकर्ताको उत्तम मार्गसे ये ले जाते हैं। इसी तरह राष्ट्रमें जो उत्तम कर्म करनेवाले ज्ञानी हों, उनको उत्तम मार्गसे उन्नतितक पहुंचाना शासकोंका कर्तव्य है।

५०९ अचेतसं चिकित्वांसः नयन्ति— अज्ञानियोंको ये ज्ञानी बनाते और उन्नतिके प्रति पहुंचाते हैं।

५१० गोपावत् भद्रं शर्म यच्छन्ति— संरक्षणके साथ कल्याण देनेवाला सुख देते हैं। इसी तरह शासकोंको उचित हैं कि वे अपनी प्रजाको संरक्षण देवें और उनका कल्याण करें, उनको सुख देवें।

५११ सुदासे उरुं लोकं— उत्तम दाताको विस्तृत कार्यक्षेत्र देते है। **'अर्यमा द्वेषोभिः परिवृणक्तु'**— आर्य और दस्युको पहचानकर शत्रुओंको दूर करे।

५१९ अमूरा विश्वा वृषणा— ये अज्ञान दूर करते हैं और सब प्रकारका बल प्राप्त करते हैं।

५३५ महः ऋतस्य गोपा राजाना— बडे सत्यके संरक्षक ये दोनों राजा हैं। राजा सदा सत्यका संरक्षक होना चाहिये। उसके राज्यमें सत्यनिष्ठको कष्ट नहीं पहुंचाने चाहिये।

५३९ अक्षितं ज्येष्ठं असुर्यं विश्वस्य जिगत्नु— अक्षय श्रेष्ठ बल विश्वका विजय कर सकता है। बलसे विश्वमें विजय होता है।

५४१ ऋतस्य पथा दुरिता तरेम— सत्यके मार्गसे पापके पार हो जांयगे। सबको उचित है कि वे सत्य मार्गका आश्रय करें और उससे असत्यसे बचावें।

५५४ अनाप्यं क्षत्रं राजानः आशत— शत्रुको अप्राप्य ऐसा प्रभावी क्षात्र तेज ये राजा लोक प्राप्त करते है। राजाको उचित है कि वे प्रभावी बल अपने पास बढावें।

इस तरह मित्र तथा वरुण देवताओंमें दो उत्तम राजाओंका दर्शन किया है। दो राजाओंका आपसमें व्यवहार कैसा हो, वे अपने राज्यमें आर्य और दस्युओंको किस तरह पहचानते है और आर्योंकी उन्नति और दस्युओंको दबानेका कार्य किस तरह करते हैं, वे अपना बल कैसा बढते है और विश्वमें विजय किस तरह करते हैं आदि अनेक बातोंका उत्तम उपदेश यहां मिलता है। जिसको राजा तथा राजपुरुष व्यवहारमें लाकर सब लोगोंका सुख बढा सकते है।

इन्द्र और वरुण

इन्द्र और वरुण देवताओंमें ऋषि किस आदर्शको देखता है वह अब देखिये—

६५९ विशे जनाय महि शर्म यच्छतं—प्रजाजनोंके लिये बडा शान्तिसुख देदो। प्रजाजनोंको सुख देना यह राजाका तथा शासकोंका कर्तव्य ही है।

'यः पृतनासु दृढयः दीर्घ-प्रयुज्यं अतिवनुष्यति, तं जयेम'— जो युद्धमें पराजित करना कठिन है और जो सज्जनोंको अत्यंत कष्ट देता है, उस शत्रुपर विजय प्राप्त करेंगे। प्रजाजनोंमें ऐसा सामर्थ्य बढाना शासकोंका कर्तव्य है। प्रजाजनोंको सामर्थ्यवान् बनाना चाहिये।

६६० अन्यः सम्राट्, अन्यः स्वराट् उच्यते, महान्तौ महावसू वृषणा— एक सम्राट् और दूसरा स्वराट् है, दोनों बडे बलवान् और धनवान् हैं। साम्राज्यका शासक सम्राट् और स्वराज्यका अध्यक्ष स्वराट् कहलाता है। ये दोनों बलवान् सामर्थ्यशाली और बडा कोश-धनकोश-अपने पास रखनेवाले हैं। इन्द्रमें सम्राट्का भाव तथा वरुणमें स्वराट्का भाव ऋषि देख रहा है। यह वर्णन अत्यंत स्पष्ट है। ये राज्यके शासक है। साम्राज्य शासन और स्वराज्य शासनके विधानोंमें वस्तुतः भेद है। तथापि वैदिक तत्त्वज्ञानके अनुसार ये दोनों साथ रहते हैं इसलिये इनके दोष दूर होते और गुण ही प्रजाजनोंको प्राप्त होते हैं। इसको बताते हैं—

६६० विश्वे देवासः वां ओजः बलं संदधुः— सब दिव्य विबुध-तुम्हारे राज्यके अन्दर कार्य करनेवाले सब ज्ञानी राजकार्य करनेवाले उपशासक तुम्हारा बल और सामर्थ्य धारण करते और सब मिलकर सामर्थ्य बढाते हैं। इस तरह राज्यशासक और उपशासक प्रजापालनमें तत्पर होकर राज्यका बल बढावें।

६६२ कारवः वस्वः ईशाना हवन्ते— शिल्पी लोग तुम

धनके स्वामियोंको सहायार्थ बुलाते हैं। कारीगर धनपतियोंके पास जाते हैं क्योंकि शिल्पी धन चाहते और धनी शिल्पोंको अपने घरोंमें रखना चाहते हैं। इस तरह ये दोनों परस्परके पोषक हैं। धनी शिल्पियोंकी सहायता करें।

६६४ **अन्यः दश्रेभिः भूयसः प्र वृणोति**— एक वीर अपने थोडेसे सैनिकोंसे शत्रुकी बडी भारी सेनाको घेरता है। उसका पराभव करता है। ऐसी वीरता अपने राष्ट्रमें बढानी चाहिये। राष्ट्रके रक्षक वीर ऐसे हों।

६६७ **भरे भरे पुरोयोधा भवतं**— प्रत्येक युद्धमें आगे जाकर युद्ध करनेवाले शूरवीर बनो। यह आदर्श वीरता है।

६७० **कृतध्वजः नः समयन्ते**— अपने ध्वज ऊपर उठाकर वीर युद्धोंमें लडते हैं। अपना ध्वज ऊपर उठाना और शत्रुके साथ लडना वीरका कर्तव्य है।

६७० **आजौ किं च प्रियं न भवति**— युद्धसे कुछ भी हित नहीं होता है, यह जानकर जहांतक बन सके वहांतक युद्ध टालना चाहिये। जिस समय युद्ध टलता नहीं उस समय घोर युद्ध करना चाहिये। टालते हुए नहीं टलता फिर युद्ध करना ही चाहिये।

६७७ **अन्यः समिथेषु वृत्राणि जिघ्नते, अन्यः सदा व्रतानि अभि रक्षते**— एक वीर युद्धोंमें बाहरके शत्रुओंसे लडता है और दूसरा वीर सदा लोगोंके व्यवहारोंका सब प्रकारसे संरक्षण करता है। यहां यह कहा है कि सैनिक शत्रुसे लडे और ग्रामरक्षक प्रजाके व्यवहारोंका संरक्षण करे।

६७९ **इन्द्रावरुणौ राजानौ**— इन्द्र तथा वरुण ये राजा हैं। ६६० वे मंत्रमें एकको सम्राट् और दूसरेको स्वराट् कहा है। ये आदर्श राजा हैं।

६८० **युवोः बृहत् राष्ट्रं**— तुम दोनोंका बडा भारी राष्ट्र है। विशाल राष्ट्रके ये शासक हैं।

६८० **इन्द्रः नः उरुं लोकं कृणवत्**— इन्द्र हमें बडा विस्तृत कार्यक्षेत्र करके देता है। राजा अपने प्रजाजनोंका कार्यक्षेत्र बढावे।

६८४ **अरक्षसं मनीषां पुनीषे**— आसुरभाव रहित बुद्धिको यह शासक पवित्र करता है।

६८५ **युवं अमित्रान् हतं**— तुम शत्रुओंका वध करो।

इन इन्द्र तथा वरुणके मन्त्रोंमें ऋषिने दो आदर्श राजाओंका दर्शन किया है। ये राजा अपनी प्रजाको सुख देते, कारीगरोंको बढाते, शिल्पियोंको धन देते, सब राष्ट्रके विद्वानोंको सुरक्षित रखते और उनको विद्याप्रचारमें लगाते, अपने राष्ट्रमें वीरता बढाते, थोडे सैनिकोंसे बडे शत्रुसैन्यका पराभव करते, युद्ध टालनेका यत्न करते, परंतु टलता नहीं तब वे आगे होकर ऐसा युद्ध करते हैं कि सब शत्रु पराभूत होकर भाग जाते हैं। इस तरह राज्यशासनके तत्त्व इन सूक्तोंमें पाठक देख सकते हैं।

इन्द्र और बृहस्पति

इन्द्र और बृहस्पति तथा ब्रह्मणस्पतिके मंत्रोंमें किस आदर्श पुरुषका दर्शन ऋषिने किया है वह अब देखिये—

७६९ **देवकृतस्य ब्रह्मणः राजा**— यह बृहस्पति दिव्य ज्ञानका राजा है, यह विद्वान् है, ज्ञानी है।

७७० **श्रेष्ठः बृहस्पतिः सुवीर्यस्य रायः दात्, अरिष्टान् अतिपर्षत्**— श्रेष्ठ बृहस्पति उत्तम पराक्रम करानेवाले धनोंको देता है और उपद्रवोंको दूर करता है। वीरतायुक्त धन देकर अरिष्टोंको दूर करता है।

७७५ **पुरंधीः जिगृतं, अर्यः अरातीः जजस्तं**— विशाल बुद्धिका धारण करो और शत्रुके सैनिकोंका नाश करो। ज्ञानसे बुद्धिको विशाल करो और शत्रुओंको दूर करो।

७८० **आजिं जयेम, मन्यमानान् योधयाः, शाशदानान् साक्षाम**— युद्धको जीतेंगे, घमंडी शत्रुसे लडेंगे, हिंसक शत्रुओंका पराभव करेंगे।

इस तरह इन्द्र और बृहस्पतिके मंत्रोंमें वीरों और ज्ञानियोंका आदर्श ऋषिने देखा है।

पर्जन्यः और मण्डूक

पर्जन्य देवतामें ऋषिने किस आदर्शको देखा है वह अब देखिये-

७९९ **ओषधीनां वर्धनः**— औषधि वृक्ष वनस्पतियोंकी वृद्धी करनेवाला।

८०१ यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः— जिसमें सब भुवन रहते हैं, जिसके आधारसे सब भुवन रहते हैं।

८०३ सः रेतोधा वृषभः— वह वीर्यधारक बलवान् है। ऐसा ऊर्ध्वरेता तथा बलवान बनना चाहिये।

८०७ व्रतचारिणः ब्राह्मणाः संवत्सरं शशयानाः वाचं अवादिषुः— एक वर्षतक व्रतपालन करनेवाले ब्राह्मण मंत्रघोष करने लगे है। व्रतपालन करनेसे शक्ति बढती है।

पर्जन्य तथा मण्डूक देवतामें ऋषिने ब्रह्मचारी, ऊर्ध्वरेता, तपश्चरण करनेवाले व्रतधारीका दर्शन किया है। ऊर्ध्वरेता तरुणका वर्णन इसमें पाठक देख सकते हैं। इसी तरह सबको आश्रय देनेवाले राजा तथा अपने राष्ट्रमें औषधियों और वृक्ष वनस्पतियोंका संवर्धन करनेवाले राष्ट्रशासकको ऋषिने पर्जन्यमें देखा है। यही काव्य है। क्रान्तदृष्टिसे ऋषि ऐसा देखते हैं।

अश्विनौ

अश्विनौ देवताके मंत्रोंमें अनेक बोध मिलते हैं। प्रथमके मंत्रमें अश्विनौको '**नृ-पती**' (५६३) कहा है। अर्थात् राजाका आदर्श ऋषि इसमें देखता है।

५६४ तमसः अन्ताः उपाश्नन्— अन्धकारके अन्तका अर्थात् अज्ञान दूर होने और ज्ञानप्रकाश प्राप्त होनेका यह अनुभव है।

५६६ माध्वी अश्विना— मधुरभाषी, मधुरदर्शनी अश्विदेव हैं। मनुष्योंको भी आनन्दप्रसन्न, मधुरभाषणी तथा मधुरदर्शनी होना चाहिये।

५७० भुरणा अश्विना- भरणपोषण करनेवाले अश्विदेव हैं। राजाको भी उचित है कि वह प्रजाका भरणपोषण करनेमें दत्तचित्त रहे।

५७२ रत्नानि धत्तं, सूरीन् जरतं— रत्नोंको देदो और विद्वानोंकी प्रशंसा करो। ज्ञानियोंकी सराहना करना योग्य है।

५७३ अर्यः तिरः- शत्रुओंको दूर करो।

६०१ जरसः च्यवानं अमुमुक्तं- बुढापेसे च्यवनको मुक्त करके उसे तरुण बनाया। इसी तरह बुढापा दूर करना चाहिये। वृद्ध अवस्थामें भी तारुण्य रहे ऐसा प्रयत्न करना चाहिये

६०७ पाञ्चजन्येन राया विश्वतः आयातं— पांचों जनोंका हित करनेवाला धन लेकर चारों ओरसे आओ। धन सब पांचोंजनोंका हित करनेवाला हो। किसी एक ही जातीका हित करनेवाला और दूसरोंको दरिद्रतामें रखनेवाला न हो।

६१८ जनानां नृपातारः अवृकासः- जनताका पालन करनेवाले शासक क्रूर न हों। शान्तचित्त हों और अपने संरक्षणके कार्यमें दत्तचित्त रहें।

कवि अश्विनौ देवताके अन्दर किस आदर्शका दर्शन करता है वह इन मंत्रोंमें पाठक देख सकते हैं। अश्विनौ देव वास्तवमें चिकित्सक हैं। वृद्धोंको तरुण बनाते, वंध्याको बच्चे देने योग्य बनाते, दूध न देनेवाली गौको दुधारू बनाते, ऐसे इनके शुभ कार्य वेदोंमें सुप्रसिद्ध हैं।

इनका वर्णन राजा तथा शासक करके भी वेदमंत्रोंमें है। ये युद्ध करते हैं, शत्रुका पराभव करते हैं, अपने पक्षवालोंका संरक्षण करते हैं। जनताको उत्तम अन्न देते हैं और लोगोंको पुष्ट करते हैं। हृष्टपुष्ट करनेमें ये प्रवीण हैं। इस तरह इनके अन्दर उत्तम शासकोंका कर्तव्य भी दिखाई देता है। इस तरह अश्विनौ देवताके मन्त्र राष्ट्रशासकका कर्तव्य भी बताते हैं।

विश्वेदेवाः

एक ही मन्त्रमें अनेक देवोंका वर्णन आनेसे उसका देवता 'विश्वेदेवाः' माना जाता है। 'विश्वे देवाः' के माने 'सर्वे-देवाः' अर्थात् सब देव। इस देवताके मंत्रोंमें अनेक आदर्शोंका समावेश हुआ है। वह अब देखिये—

३१२ समत्सु त्मना वीरं हिनोत— युद्धोंमें स्वयं-स्फूर्तिसे वीर जांय। ऐसा उत्साह राष्ट्रमें बढाना चाहिये।

३१३ शुष्मात् भानुः उदार्त, पृथिवी भारं बिभर्ति- अपने बलसे सूर्य उदय होता है और पृथिवी भारका धारण करती है। बलके बिना इस संसारमें कुछ भी नहीं होता।

३१५ देवीं धियं दधिध्वं, देवत्रा वाचं प्रकृणुध्वं- दिव्य बुद्धिका धारण करो और दिव्यगुणवाली वाणी बोलो।

अपनी बुद्धि और अपनी वाणी शुद्ध तथा दैवी गुणोंसे युक्त होनी चाहिये।

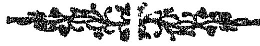
३३५ सुकृतां सुकृतानि नः शं सन्तु— सत्पुरुषोंके उत्तम कर्म हमारे लिये शान्ति बढानेवाले हों। कदाचित् ऐसा बनता है कि बडे लोग उत्तम कर्म तो करते हैं, पर उससे अशान्ति हो जाती है और जनताको कष्ट पहुंचते हैं। इसलिये सत्पुरुषोंपर बडा दायित्व है। वे अपने कर्मोंका परिणाम क्या हो रहा है उसका विचार करें। और शान्ति करनेवाले ही कर्म करें।

४०९ नर्या पुरूणि हस्ते दधानः— मानवोंका हित करनेवाले धन हाथमें धारण करता है। दान देनेकी इच्छासे हाथमें बहुतसा धन धारण करता है। इस तरह मुक्तहस्तसे धनका दान करना चाहिये।

४१३ (स्थिर धन्वा) बलवान् धनुष्य धारण करनेवाला, (क्षिप्रेषुः) शीघ्र बाण छोडनेवाला, (स्व-धा-वान) अपनी शक्तिसे युक्त, (अ-षाळ्हः) असह्य आक्रमण करनेवाला, (सहमानः) शत्रुके आक्रमण सहकर अपने स्थानपर रहनेवाला, (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण शस्त्रवाला, यह वीरका वर्णन है। ऐसे वीर अपने राष्ट्रमें होने चाहिये।

इस तरह विश्वेदेवा देवताके मंत्रोंमें आदर्श पुरुषका वर्णन है। ये सब आदर्श मनुष्योंको अपने सामने रखनेयोग्य है। मनुष्य इन आदर्शोंको अपने सामने रखे और अपने अन्दर इन आदर्शोंको धारण करें। देवताओंके समान बनना चाहिये। ' जैसा देवता आचरण करते हैं वैसा हमें बनना है।' इस तरह आदर्शका विचार हुआ। प्रायः सब देवोंका विचार संक्षेपसे यहां आगया है। कुछ छोटे देवता रहे हैं उनके मंत्रोंसे बोध पाठक स्वयं ले सकते हैं।

॥ यहां आदर्श पुरुषके दर्शनका विचार समाप्त है ॥



वसिष्ठ ऋषिके मंत्रोंके
सुभाषितोंका संग्रह

(ऋ० ७।१)

१ **नरः प्रशस्तं दूरे दृशं अथुर्यं गृहपतिं दीधितिभिः जनयन्त**— नेता लोग प्रशंसा करनेयोग्य, दूरदर्शी, प्रगतिशील गृहस्थीको तेजस्विताओंके साथ निर्माण करते हैं।

२ **सुप्रतिचक्षं दक्षाय्यः (यं) अवसे अस्ते न्यृण्वन्**— दर्शनीय सुंदर बलवान् वीरको संरक्षणके लिये घरमें रखते हैं।

३ **हे यविष्ठ ! अजस्रया सूर्म्या पुरः दीदिहि**— हे बलवान् वीर ! अपने प्रचण्ड तेजसे अपने नगरको प्रकाशित कर।

४ **द्युमन्तः सुवीरासः वरं प्र निः शोशुचन्त**— तेजस्वी उत्तम वीर अपनी श्रेष्ठताके साथ प्रकाशते रहते हैं।

४ **सुजाता नरः समासते**— कुलीन पुरुष संघटित रहते हैं।

५ **सुवीरं स्वपत्यं प्रशस्तं रयिं नः धिया दाः**— उत्तम वीरभावसे युक्त, उत्तम पुत्रपौत्रोंसे युक्त प्रशंसित धन हमें बुद्धिके साथ दे दो।

५ **यातुमावान् यावा यं रयिं न तरति**— हिंसक डाकू जिस धनको लूट नहीं सकता (ऐसा धन हमें दो)।

६ **सुदक्षं घृताची युवतिः दोषावस्तोः उपैति**— उत्तम, दक्ष, बलवान् तरुणके पास उत्तम अन्न लेकर तरुणी रात्रीमें तथा दिनमें जाती है।

६ **सुदक्षं स्वा वसूयुः अरमतिः**— बलवान् दक्ष तरुणके पास अपनी धन लानेवाली बुद्धि रहती है (इसके पास तरुणी जाती है)।

७ **विश्वा अरातीः तपोभिः अपदह**— सब शत्रुओंको अपने तेजोंसे जला दो (दूर करो)।

७ **जरूथं अदहः**— कठोर भाषांको जला दो (दूर करो)।

७ **अमीवां निःस्वरं प्रचातयस्व**— रोगको निःशेष दूर कर।

८ **दीदिवः पावकः शुक्रः**— तेजस्वी शुद्ध वीर बलिष्ठ (होता है)।

८ **यो अनीकं आ इध्यते**— जो अपनी सेनाको तेजस्वी करता है (वह वीर है।)

९ **पित्र्यासः मर्ता नरः अनीकं पुरुत्रा विभेजिरे**— संरक्षक मानवी वीर अपनी सेनाको अनेक स्थानोंमें विभक्त करके रखते हैं।

९ **इह सुमनाः स्याः**— यहां आनन्द प्रसन्न रह।

१० **प्रशस्तां धियं पनयन्त**— प्रशंसित बुद्धिका वर्णन करते हैं।

१० **वृत्रहत्येषु शूराः नरः**— युद्धोंमें शूर पुरुष नेता होते हैं।

१० **विश्वा अदेवी माया अभिसन्तु**— सब राक्षसी कपटजालोंको दूर करो।

११ **शूने मा निषदाम**-पुत्र, पौत्ररहित घरमें हम न रहें।

११ **दुर्यः**— घरका हित करनेवाला बन।

११ **नृणां अशेषसः अवीरता मा**— मनुष्योंके बीच हम पुत्ररहित, वीरतारहित न हों।

११ **प्रजावतीषु दुर्यासु परि निषदाम**— पुत्रयुक्त घरोंमें हम रहेंगे।

१२ **प्रजावन्तं स्वपत्यं स्वजन्मना शेषसा वावृधानं क्षयं**— सेवकोंसे युक्त, बालबच्चोंसे भरा औरस सन्तानोंसे बढनेवाला घर हो।

१३ **अजुष्टात् रक्षसः नः पाहि**— दुष्ट राक्षसोंसे हमारा संरक्षण हो।

१३ **अररुषः अघायोः धूर्तेः पाहि**—दुष्ट, पापी, धूर्तसे हम सुरक्षित हों। (सुभाषित संख्या २६)

१३ पृतनायून् अभिष्यां— सेनासे आक्रमण करनेवाले शत्रुका हम पराभव करेंगे ।

१४ वाजी वीळुपाणिः सहस्रपाथः तनयः— बलवान्, सुदृढ, शस्त्रधारी सहस्रों धनोंसे युक्त पुत्र हो ।

१४ तनयः अक्षरा समेति— पुत्र विद्या सीखता रहे ।

१४ अग्निः अग्नीन् अत्यस्तु— हमारा अग्निके समान तेजस्वी पुत्र अन्य पुत्रोंसे श्रेष्ठ बने ।

१५ यः समेद्धारं वनुष्यतः निपाति— जो जगानेवालेको हिंसकोंसे बचाता है (वह श्रेष्ठ है ।)

१५ यः उरुष्यात् पापात् निपाति— जो बडे पापोंसे बचाता है । (वह श्रेष्ठ है ।)

१५ सुजातासः वीराः यं परिचरन्ति— उत्तम कुलीन वीर जिसकी सेवा करें (वह श्रेष्ठ है । ऐसा हमारा पुत्र हो ।)

१७ ईशानासः पियेथे भूरि आवहनानि जुहुयाम— हम स्वामी बनकर यज्ञमें बहुत हवनाहुतियोंका हवन करेंगे ।

१८ सुरभीणि वीततमानि हव्या— सुगन्धयुक्त तथा प्रसन्नता बढानेवाले हवनीय पदार्थ हों ।

१९ अवीरता नः मा दाः— वीर संतान न होनेका कष्ट हमें न हो ।

१९ दुर्वाससे नः मा दाः— बुरा वस्त्र पहननेका दुर्भाग्य हमें न प्राप्त हो ।

१९ अमतये नः मा दाः— बुद्धिहीनता हमें प्राप्त न हो ।

१९ क्षुधे नः मा दाः— भूख हमें कष्ट न देवे ।

१९ रक्षसः नः मा दाः— राक्षस हमें कष्ट न दें ।

१९ दमे वने वा नः मा आजुहूर्थाः— घरमें तथा वनमें हमारा नाश न हो ।

२० मे ब्रह्माणि शशाधि— मुझे ज्ञान प्राप्त हो ।

२१ तनये मा आधक्— पुत्रको अग्निकी बाधा न हो ।

२१ वीरः नर्यः अस्मन् मा विदासीत्— लोगोंका हितकर्ता पुत्र हमसे दूर न हो ।

२१ सुहवः रण्वसंदृक् सहसः सूनुः— प्रेमसे बुलाने योग्य सुन्दर बलवान् पुत्र हो ।

२१ सखा दुर्मतये मा प्रवोचः— कोई मित्र अपने साथियोंके भरणपोषणमें बाधा डालनेका भाषण न करे ।

२२ दुर्मतयः मा— दुष्ट बुद्धियां (हमें बाधा) न (करें।)

२२ भ्रमात् चित् सखा मा नशन्त— भ्रमसे भी कोई मित्रका नाश न करें ।

२३ अर्थी सूरिः यं पृच्छमानः एति स मर्तः रेवान्— धनप्राप्तिकी इच्छा करनेवाला जिसके विषयमें पूछताछ करता हुआ जिसके पास जाता है, वह मनुष्य सच्चा धनवान् है ।

२३ स्वनीकः (सु-अनीकः)—अपने पास उत्तम सेना हो ।

२४ महो सुवितस्य विद्वान्— बडे कल्याणका मार्ग जान लो ।

२४ सूरिभ्यः बृहन्तं रयिं आवह— ज्ञानियोंको बडा धन दो ।

२४ आयुषा अविक्षितासः सुवीराः मदेम— आयुसे क्षीण न होकर उत्तम शूर बनकर आनन्द प्रसन्न रहेंगे ।

२६ बृहत् शोच— बहुत प्रकाशित हो ।

(ऋ. ७।२)

२६ दिव्यं सानु रश्मिभिः उपस्पृश-दिव्य उच्चताको अपने किरणोंसे स्पर्श करो । (अपने तेजसे उच्चता प्राप्त करो ।)

२७ सुक्रतवः शुचयः धियंधाः— उत्तम कर्मकुशल लोग पवित्र होकर बुद्धिमान् होते हैं ।

२७ नराशंसस्य यजतस्य महिमानं उपस्तोषाम— वीरों द्वारा प्रशंसित पवित्र नेताकी महिमा हम गाते हैं ।

२८ ईळेन्यं असुरं सुदक्षं सत्यवाचं अध्वराय सद इत् संमहेम— प्रशंसायोग्य, बलवान्, उत्तम कर्तव्यमें दक्ष, सत्यभाषी नेताकी हिंसारहित अर्थात् शान्तिवर्धक कर्मके लिये सदा हम प्रशंसा करते हैं ।

३० स्वाध्याः देवयन्तः— उत्तम अध्ययनपूर्वक ध्यानधारणा करनेवाले दिव्य गुणोंसे युक्त होते हैं ।

३१ दिव्ये योषणे मही बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी यज्ञिये सुविताय आश्रयेतां— दिव्य स्त्रियां, जो बडी सभाओंमें बैठती हैं, प्रशंसित और धनवाली होकर पूजनीय होती हैं, उनका आश्रय अपने कल्याणके लिये करो । (सुभा० ६०)

३२ विप्रा जातवेदसा मानुषेषु कारू— ज्ञानी विद्वान् मनुष्योंमें प्रशस्त कार्य करनेवाले होते हैं ।

३२ अध्वरं ऊर्ध्वं कृतं— कुटिलतारहित कर्म अधिक श्रेष्ठ बनाओ ।

३३ भारतीभिः भारती सजोषा— उपभाषाओंके साथ भारती भाषा सेवनीय है ।

३३ देवैः मनुष्येभिः इळा सजोषा— दिव्य गुण संपन्न मानवोंके साथ मातृभूमी सेवाके योग्य है ।

३३ सारस्वतेभिः सरस्वती सजोषा— सरस्वतीके भक्तोंके साथ सरस्वती सेवनीय है ।

३४ यतः कर्मण्यः सुदक्षः देवकामः वीरः जायते, तत् तुरीयं पोपयित्नु विष्यस्व— जिससे कर्ममें प्रवीण, उत्तम दक्ष श्रद्धावान् वीर पुत्र निर्माण होता है, वह त्वरासे पोषण करनेवाला वीर्य हमारें शरीरमें वढे ।

३५ सत्यतरः देवानां जनिमानि वेद— सत्यपर अधिक निष्ठा रखनेवाला देवोंके जन्मवृत्तान्त जानता है ।

३६ सुपुत्रा अदितिः बर्हिः आस्तां— अदितिमाताके उत्तम पुत्र हैं इसलिये वह सन्मानित होकर आसनपर बैठे ।

३६ तुरेभिः देवैः सरथं आयाहि— त्वरासे सत्कर्म करनेवाले विबुधोंके साथ एक रथमें बैठकर आओ ।

(ऋ० ७।३)

३७ ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः— सत्यनिष्ठ तेजस्वी घी खानेवाला पवित्र वीर होता है ।

३८ अस्य शोचिः अनुवातः अनुवाति— अग्नि अधिक प्रदीप्त होनेपर वायु उसके अनुकूल बहने लगता है (जो अग्नि थोडा होनेकी अवस्थामें उसे बुझा देता था ।)

४० ते पाजः पृथिव्यां तृषु व्यश्रेत्— तेरा तेज पृथिवीपर शीघ्र फैल जाय (ऐसा प्रयत्न कर ।)

४१ अतिथिं दोषा उषसि मर्जयन्तः— अतिथिकी रात्रीमें और सवेरे सेवा करो ।

४२ स्वनीक ! यत् रुक्मः रोचसे, ते प्रतीकं सुसंदृक्— हे उत्तम सेनापते ! जब तू प्रकाशता है, तब तेरा रूप अत्यंत सुंदर दीखता है ।

४३ अमितैः महोभिः शतं आयसीभिः पूर्भिः नः पाहि— अपरिमित सामर्थ्योंके साथ सैंकडों लोहमय कीलोंसे हमारा रक्षण करो ।

४४ सहसः सूनो जातवेदः ! नः सूरीन् नि पाहि— हे बलपुत्र ज्ञानी वीर ! हमारे ज्ञानियोंका संरक्षण कर ।

४५ पूता शुचिः स्वधितिः रोचमानः— पवित्र शस्त्र तेजस्वी होता है ।

४६ सुचेतसं क्रतुं वतेम— उत्तम बुद्धिमान तथा उत्तम कर्म करनेमें प्रवीण पुत्र हमें प्राप्त हो ।

४६ स्वस्तिभिः नः पात— कल्याण करनेवाले साधनोंसे हमें सुरक्षित कर ।

(ऋ० ७।४)

४७ शुक्राय भानवे सुपूतं हव्यं मतिं च प्रभरध्वं— वीर्यवान् तेजस्वी वीरके लिये पवित्र अन्न और प्रशंसाके भाषण अर्पण करो ।

४८ तरुणः गृत्सः अस्तु— तरुण ज्ञानी हो ।

४८ मातुः यविष्ठः अजनिष्ठ— मातासे बलवान पुत्र होवे ।

४८ शुचिदन् भूरि अन्नं समत्ति— शुद्ध दांतवाला वीर बहुत अन्न खाता है ।

४९ अनीके संसदि मर्तासः पौरुषेयीं गृभं न्युवोच— सैनिक वीरोंकी सभामें युद्धमें मरनेके लिये तैयार हुए वीर पौरुषकी ही बातें करते हैं ।

५० अमृतः प्रचेताः कविः अकविषु मर्तेषु निधायि— अमर ज्ञानी कवि अज्ञानी मनुष्योंमें रहता है (और उनको ज्ञान देता है ।)

५० हे सहस्वः ! त्वे सुमनसः स्याम— हे विजयी वीर ! तुम्हारे साथ हम प्रसन्न चित्तसे रहेंगे ।

५१ यः क्रत्वा अमृतान् अतारीत्, स देवकृतं योनिं आससाद— जो अपने प्रयत्नसे श्रेष्ठ विबुधोंका तारण करता है, वह दिव्य श्रेष्ठ स्थानमें विराजता है ।

५२ सुवीर्यस्य रायः दातोः ईशे— वह उत्तम वीर्य युक्त धनका दान करनेमें समर्थ है ।

५१.अवीरा वयं त्वा मा परिषदाम— पुत्रहीन होकर हम तेरी सेवा करनेके लिये न बैठें। (पुत्रपौत्रोंसे युक्त होकर हम प्रभुकी भक्ति करें।)

५२ अ-प्सवः मा, अदुवः मा— हम सुरूपरहित न हों, और भक्तिहीन भी न हों।

५३ अरणस्य रेक्णः परिपद्यं— ऋणरहित मनुष्यका धन पर्याप्त होता है। (अतः हम ऋणरहित हों।)

५३ नित्यस्य रायः पतयः स्याम- हम स्थायी धनके स्वामी हों।

५३ अन्यजातं शेषः नास्ति— दूसरेका पुत्र औरस नहीं कहलाता।

५३ अचेतानस्य पथः मा विदुक्षः— निर्बुद्धके मार्गसे हम न जांय।

५४ अन्योदर्यः सुसेवः अरणः ग्रभाय नहि— दूसरेका पुत्र उत्तम सेवा करनेवाला, ऋण न करनेवाला होनेपर भी, औरसपुत्र करके स्वीकार करनेयोग्य नहीं होता।

५४ अन्योदर्यः मनसा मन्तवै नहि— दूसरेका पुत्र औरस करके माननेयोग्य नहीं है।

५४ सः अन्योदर्यः ओकः एति— वह दूसरेका पुत्र अपने (पिताके) घरको ही जायगा।

५४ नव्यः वाजी अभीषाट् नः एतु— नवीन उत्साही बलवान् शत्रुका पराभव करनेवाला औरसपुत्र हमें प्राप्त हो।

५५ वनुष्यतः अनवद्यात् पाहि— हिंसक पापोंसे बचाओ।

५५ स्वसन्वत् पाथः अभ्येतु- निर्दोष अन्न प्राप्त हो।

५५ स्पृहाय्यः सहस्री रयिः समेतु-स्पृहणीय सहस्रों प्रकारका धन हमें प्राप्त होता।

(ऋ० ७।५)

५८ वैश्वानरः मानुषीः विशः अभिविभाति- विश्वका नेता मानवी प्रजाओंको प्रकाशित करता है।

५९ हे वैश्वानर ! त्वद्भिया असिक्नीः प्रजाः भोजनानि जहातीः असमनाः आयन्— हे सबके नेता वीर ! तेरे भयसे भयभीत हुई काली प्रजाएँ अपने भोजन छोडकर तितर बितर होकर भागने लगी हैं।

५९ पूरवे शोशुचानः पुरः दरयन् अदीदेः- नागरिकोंके लिये प्रकाशित होनेवाला वीर शत्रु नगरियोंको तोडकर अधिक तेजस्वी होता है।

६० अजस्रेण शोशुचा शोशुचानः- विशेष प्रकारसे प्रकाशित हो।

६१ कृष्टीनां पतिं, रयीणां रथ्यं, वैश्वानरं गिरः सचन्ते— प्रजाओंके पालक, धनोंके संचालक सबके नेताकी स्तुति वाणियां गाती हैं।

६२ आर्याय ज्योतिः जनयन्- आर्योंको प्रकाश उत्पन्न किया।

६२ दस्यून् ओकसः आजः-दस्युओंको घरोंसे भगाया।

६३ हे जातवेदः ! त्वं भुवना जनयन्— हे वेदके प्रकाशक ! तू भुवनोंको उत्पन्न करता है।

६४ द्युमती इषं अस्मे आ ईरयस्व-तेजस्वी धन हमें दो।

६४ पृथु श्रवः दाशुषे मर्त्याय— बडा यश दाता मानवको दो।

६५ पुरुक्षुं रयिं, श्रुत्यं वाजं, महि शर्म यच्छ— बहुत यशके साथ धन, कीर्ति बढानेवाला बल और बडा सुख दो।

(ऋ० ७।६)

६६ दारुं वन्दे-शत्रुके विदारक वीरको मैं प्रणाम करता हूं।

६६ कृष्टीनां अनुमाद्यस्य असुरस्य पुंसः सम्राजः तवसः कृतानि विवक्मि- प्रजाजनोंद्वारा अनुमोदित बलवान् पुरुषार्थी सम्राट्के बलसे किये वीरताके कृत्योंका मैं वर्णन करता हूं।

६७ अद्रेः धासिं, भानुं, कविं, शं राज्यं पुरंदरस्य महानि व्रतानि गीर्भिः आ विवासे- कीलोंका धारण कर्ता, तेजस्वी, ज्ञानी, सुखदायी राज्यशासन करनेवाले, शत्रु-नगरोंका भेदन करनेवाले वीरके बडे पुरुषार्थी कृत्योंका वर्णन मैं करता हूं।

६८ अक्रतून्, ग्रथिनः, मृध्रवाचः पणीन्, अश्रद्धान्, अवृधान्, अयज्ञान् दस्यून् प्र विवाय, अपरान् चकार— सत्कर्म न करनेवाले, वृथाभाषी, हिंसक, सूदका व्यवहार करनेवाले, अश्रद्ध, हीन, यज्ञ न करनेवाले डाकुओंको दूर करें और हीन अवस्थाको पहुंचा देवें। (सुभा० सं० ११६)

६९ नृतम अपाचीने तमसि मदन्तीः शचीभिः प्राचीः चकार— उत्तम नेता अज्ञानान्धकारमें पडी प्रजाको अपने सामर्थ्योंसे ज्ञानाभिमुख करता है।

६९ वस्वः ईशान अनानतं पृतन्यून् दमयन्तं गृणीषे— धनके स्वामी, संयमी तथा सेनासे आक्रमण करने-वाले शत्रुका दमन करनेवाले वीरकी प्रशंसा होती है।

७० वधस्नैः देह्यः अनमयत्— वह शस्त्रोंसे गुण्डोंको नम्र करता है।

७१ विश्वे जनासः शर्मन् यस्य सुमतिं भिक्षमाणाः— सब लोग सुखके लिये जिसकी सद्बुद्धिकी अपेक्षा करते हैं (वह श्रेष्ठ वीर है।)

७१ वैश्वानरः वरं आससाद— सब जनोंका हित करने-वाला श्रेष्ठ स्थानपर बैठता है।

७१ वैश्वानरः बुध्न्या वसूनि आददे— सब जनोंका हित करनेवाला मूल आधाररूप धनोंको प्राप्त करता है (और उनसे जनहित करता है।)

(ऋ० ७।७)

७३ सहमानं प्र हिन्वे— शत्रुका पराभव करनेवाले वीरको मैं प्रेरित करता हूं (वह शत्रुका पराभव करे।)

७६ विचेतसः मानुषासः— विशेष बुद्धिमान मनुष्य हों।

७६ मन्द्रः मधुवचा ऋतावा विश्पतिः विशां दुरोणे अधायि— आनन्द बढानेवाला मधुरभाषणी, ऋजुगामी प्रजापालक प्रजाओंके मध्यस्थानमें स्थापित हुआ है।

७७ ब्रह्मा विधर्ता नृषदने अस्मादि ब्रह्मा विशेष कर्म करनेवाला होकर मनुष्योंकी सभामें विराजता है।

(ऋ० ७।८)

८० अर्यः राजा समिन्धे— श्रेष्ठ राजा प्रकाशता है।

८१ अयं मन्द्रः महः मनुषः सुमहान् अवेदि— यह सुखदायी महान् वीर मानवोंमें अत्यंत श्रेष्ठ करके प्रसिद्ध है।

८२ दुष्टरस्य साधोः रायः पतयः भवेम— शत्रुके लिये अप्राप्य उत्तम धनके स्वामी हम बनें।

८३ पृतनासु पुरु अभितस्थौ— युद्धके समय पूर्ण प्रबल शत्रुका सामना यह करता रहा (ऐसा यह वीर है।)

८४ विश्वेभिः अनीकैः सुमना भव— सब सैनिकोंके साथ प्रसन्नतासे बर्ताव कर।

८४ स्वयं तन्वं वर्धस्व— अपने शरीरको बढाओ।

८५ द्युमत् अमीवचातनं रक्षोहा आपये शं भवाति— वह तेजस्वी, रोग दूर करनेवाला, राक्षसोंको दूर करनेवाला, तथा बांधवोंके लिये सुखदायी होता है।

(ऋ० ७।९)

८७ जारः मन्द्रः कवितमः पावकः उषसां उपस्थात् अबोधि— वृद्ध, आनन्द बढानेवाला, उत्तम कवि पवित्र वीर उषःकालके पहिले उठता है।

८७ उभयस्य केतं दधाति— दोनों श्रेष्ठ कनिष्ठोंको ज्ञान देता है।

८७ सुकृत्सु द्रविणं— अच्छा कर्म करनेवालेको धन देता है।

८८ सुक्रतुः पणीनां दुरः वि— उत्तम कर्म करनेवाला वीर चोरोंके द्वार खोलता है।

८८ मन्द्रः दमूनाः विशां तमः तिरः ददृशे—आनन्द-दायी संयमी वीर प्रजाजनोंके अन्धकारको दूर करता हुआ दीखता है।

८९ अमूरः सुसंसत् मित्रः शिवः चित्रभानुः कविः अग्रे भाति— अमूढ उत्तम साथी मित्र कल्याणकारी विशेष तेजस्वी कवि अग्रभागमें प्रकाशता है (नेता होता है।)

९० मनुषः युगेषु ईळेन्यः समनगाः अशुचत्— मनुष्योंके संमेलनमें प्रशंसा होनेयोग्य वीर युद्धस्थानमें जाकर अग्रभागमें प्रकाशता है।

९१ गणेन ब्रह्मकृतः मा रिषण्यः— संघसे ज्ञान प्रसार करनेवालोंका विनाश नहीं होता।

९१ जरूथं हन्— कठोर भाषण करनेवालेको ताडन कर।

९१ पुरंधिं राये यक्षि— बहुत बुद्धिवालेका धन देकर सत्कार कर।

९१ पुरुनीथा जरस्व— विशेष नीतिमानोंकी प्रशंसा कर।

(ऋ० ७।१०)

९३ पृथु पाजः अश्रेत्— विशेष तेज धारण करे।

९३ शुचिः वृषा हरिः— पवित्र बलवान् दुःखहरण करनेवाला वीर। (सुभा० सं० १४६)

९३ धियः हिन्वानः भासा आभाति— बुद्धिसे सबको शुभ प्रेरणा करनेवाला अपने तेजसे प्रकाशित होता है ।

९४ विद्वान् देवयावा वनिष्ठः— ज्ञानी दिव्य विबुधोंके साथ रहनेवाला प्रशंसनीय दाता होता है ।

९५ मतयः देवयन्तीः— बुद्धियां दिव्यता प्राप्त करनेवाली हों ।

९५ द्रविणं भिक्षमाणा गिरः सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं मनुष्याणां अरतिं अच्छ यन्ति— धनकी इच्छा करनेवाली वाणियाँ दर्शनीय सुरूप प्रगतिशील मानवोंमें श्रेष्ठ वीरकी प्रशंसा करें ।

९७ उशिजः विशः मंद्रं यविष्ठं ईळते— सुख चाहनेवाली प्रजा आनन्द प्रसन्न तरुण वीरकी प्रशंसा करती है ।

(ऋ० ७।११)

९८ अध्वरस्य महान् प्रकेतः— हिंसारहित कर्मका बडा सूचक ध्वज जैसा हो ।

९९ यस्य बर्हिः देवैः आसदः अस्मै अहानि सुदिना भवन्ति— जिसके आसनपर दिव्य विबुध बैठते हैं उसके लिये सब दिन शुभदिन ही होते हैं ।

१०० अभिशस्तिपावा भव— शत्रुओंसे रक्षण करनेवाला हो ।

(ऋ० ७।१२)

१०२ स्वे दुरोणे दीदिहि— अपने स्थानमें प्रकाशता रह ।

१०३ चित्रभानुं विश्वतः प्रत्यञ्चं यविष्ठं नमसा अगन्म— तेजस्वी सब ओरसे सेवाके योग्य तरुण वीरका हम नमस्कारसे स्वागत करते हैं ।

१०४ महा विश्वा दुरितानि साह्वान्— अपने बडे सामर्थ्योंसे सब दुरवस्थाओंको दूर कर ।

१०४ सः दुरितात् अवद्यात् नः रक्षिषत्— वह सब पापों और निंदित कर्मोंसे हमारा रक्षण करे ।

१०५ वसु सुषणानि सन्तु— धन स्वीकारने योग्य हो ।

(ऋ० ७।१३)

१०६ विश्वशुचे धियंधे असुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वं— विश्वमें पवित्र, बुद्धियोंके धारणकर्ता, राक्षसोंके विनाशक वीरके लिये प्रशंसाके वाक्य बोलो और उसके आदरार्थ शुभ कर्म करो ।

१०७ त्वं शोशुचा शोशुचानः रोदसी आपृण— तूं अपने तेजसे प्रकाशित होकर विश्वको प्रकाशित कर ।

१०७ त्वं अभिशस्तेः अमुञ्चः— तूं शत्रुओंसे बचाओ ।

१०७ जातवेदा वैश्वानरः— ज्ञानी विश्वका नेता होता है ।

१०८ जातः परिज्मा इर्यः— उत्पन्न होनेपर चारों ओर भ्रमण करो और सबको शुभकर्मकी प्रेरणा दो ।

१०८ पशून् गोपाः— पशुओंकी पालना करो ।

१०८ भुवना विचख्यः— भुवनोंका निरीक्षण करो ।

१०८ ब्रह्मणे गातुं विंद— ज्ञानप्रसारका मार्ग जानो ।

(ऋ० ७।१४)

१०९ शुक्रशोचिषे जातवेदसे दाशेम— तेजस्वी ज्ञानीको दान देंगे ।

(ऋ० ७।१५)

११२ यः नः नेदिष्ठं आप्यं, उपसद्याय मीळ्हुषे जुहुत— जो हमारा समीपका बन्धु है, उसके पास जानेयोग्य सहायक वीरके लिये दान दो ।

११३ पञ्च चर्षणीः दमे दमे कविः युवा गृहपतिः निषसाद— पांचों ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-निषादोंके घर-घरमें ज्ञानी तरुण गृहस्थी रहता है ।

११४ स विश्वतः नः रक्षतु, अंहसः पातु— वह सब ओरसे हमारी सुरक्षा करे और हमें पापसे बचावे ।

११६ श्रिये वीरवतः रयिः दृशे स्पार्हाः— सुशोभित वीरतायुक्त धन ही देखनेके लिये सुन्दर है ।

११८ द्युमन्तं सुवीरं निधीमहि— तेजस्वी उत्तम वीरको यहां रखते हैं ।

११९ अस्मयुः सुवीरः— उत्तम वीर हमारे पास रहे ।

१२० विप्रासः नरः धीतिभिः सातये उपयन्ति— ज्ञानी नेतागण अपनी उत्तम धारणावती बुद्धियोंके साथ धनका बंटवारा करनेके लिये इकट्ठे होते हैं ।

१२१ शुक्रशोचिः शुचिः पावकः ईड्यः— बल और तेजसे युक्त स्वयं पवित्र और दूसरोंको पवित्र करनेवाला वीर प्रशंसायोग्य है ।

१२२ ईशानः नः राधांसि आभर— ईश्वर हमें धन देवे ।

१२२ भगः वार्यं दातु— भाग्यवान् देव उत्तम धन हमें देवे ।

११३ वीरवत् यशः वार्यं च दातु— वह हमें वीरता युक्त यश तथा स्वीकार करनेयोग्य धन देवे ।

११४ नः अंहसः रक्ष— हमें पापसे बचाओ ।

११४ रिषतः तपिष्ठैः दह— विनाशकोंको ज्वालाओंसे जला दे ।

१२५ अनाधृष्टः नृपीतये शतभुजिः मही आयसीः पूः भव- पराभूत न होकर तू हमारे मानवोंके संरक्षण करनेके लिये सैकडों वीरोंसे सुरक्षित लोहेके कीले जैसा रक्षक हो ।

१२६ हे अदाभ्य! दिवानक्तं अंहसः अघायतः नः पाहि— हे अदम्य वीर ! दिनरात पापसे तथा पापियोंसे हमें बचाओ ।

(ऋ० ७।१६)

१२७ ऊर्जः न-पातं प्रियं चेतिष्ठं अरतिं स्वध्वरं विश्वस्य अमृतं दूतं नमसा आहुवे— बलका नाश न करनेवाले, प्रिय उत्तेजना देनेवाले प्रगतिशील, उत्तम हिंसारहित कार्य करनेवाले सबके अमर सहायकको नमस्कार करके बुलाते है ।

१२८ विश्वभोजसा अरुषा सुब्रह्मा सुशमी जनानां राधः योजते— सबको भोजन देनेके सामर्थ्यसे युक्त उत्तम ज्ञानी और संयमी वीर लोगोंको धन देनेकी योजना करता है ।

१३० विश्वा मर्तभोजना रास्व— सब मानवी भोग दे दो ।

१३३ सूरयः प्रियासः सन्तु—विद्वान् सबको प्रिय हों।

१३३ मघवानः यन्तारः जनानां गोनां ऊर्वान् दयन्त— धनी लोग दान देनेके समय लोगोंको गौओंके झुण्ड दान दें।

१३४ द्रुहः निदः त्रायस्व- द्रोही निंदकोंसे सबको बचाओ ।

१३४ दीर्घश्रुत शर्म यच्छ— विशाल कीर्तिवाला सुख या घर हमें दे दो ।

१३४ येषां दुरोणे घृतहस्ता इळा प्राता आ निषीदाति तान् त्रायस्व— जिनके घरमें घी और अन्नसे भरे पात्र लेकर परोसनेवाली रहती है, उनकी सुरक्षा करो ।

१३५ विदुष्टरः मन्द्रया आसा जिह्वया नः रयिं—श्रेष्ठ ज्ञानी प्रसन्न मुख तथा मधुरभाषणसे हमें ज्ञानरूप धन देवे ।

१३६ महः श्रवसा कामेन अश्व्या मघा राधांसि ददाति— बडे यशकी कामनासे वह घोडों तथा धनोंसे युक्त अन्न देता है ।

१३६ अंहसः पर्तृभिः शतं पूर्भिः पिपृहि— पापियोंसे संरक्षक सैंकडों किलोंसे हमें बचाओ ।

१३८ विधते दाशुषे जनाय सुवीर्यं रत्नं दधाति- ज्ञानी दाता मनुष्यके लिये वह उत्तम बल तथा धन देता है ।

(ऋ० ७।१७)

१४१ स्वध्वरा कृणुहि— कुटिलता हिंसारहित कार्य कर ।

१४३ हे प्रचेतः! विश्वा वार्याणि वंस्व--हे ज्ञानी ! सब स्वीकारनेयोग्य धन दे दो ।

१४४ ऊर्जः न-पातं— अपने बलको कम न करो ।

१४५ महः इयानः नः रत्ना विदधः— महत्त्वको प्राप्त होकर हमें रत्नोंको दे दो ।

(ऋ० ७।१८)

१४६ त्वे सुदुधा गावः, त्वे अश्वाः— तुम्हारे पास दुधारू गौवें और तुम्हारे पास घोडे हों ।

१४७ विशा गोभिः अश्वैः अस्मान् राये अभिशिशीहि—सुंदर रूप, तथा गौवें और घोडोंसे युक्त हमें करके धनसे भी युक्त कर ।

१४८ राया पथ्या अर्वाची एतु— धनका मार्ग हमारे पास आवे ।

१४८ सुमतौ शर्मन् स्याम— उत्तम बुद्धिसे और सुख से हम युक्त हों ।

१४९ सुयवसे धेनुं दुधुक्षन्- उत्तम घास खानेवाली गौका दोहन करनेकी इच्छा करो ।

१५१ मत्स्यासः राये निशिताः-- मत्स्य (जैसे आपसमें एक दूसरेको खानेवाले) धनके लिये तीक्ष्ण (स्पर्धा करनेवाले) होते हैं ।

१५१ सखा सखायं अतरत्- मित्रामित्रको कष्टसे पार करता है ।

१७७ सूरिषु प्रियासः स्याम- विद्वानोंमें हम प्रिय हों।

१७८ नरः प्रियासः सखायः शरणे मदेम— नेता और प्रिय मित्र होकर अपने स्थानमें आनन्दसे रहेंगे।

१७८ तुर्वशं निशिशीहि— त्वरासे वशमें आनेवाले शत्रुको दूर कर।

१८० नृणां सखा शूरः शिवः अविता भूः— जनताका मित्र शूर कल्याण करनेवाला रक्षक हो जाओ।

१८१ तन्वा ऊती वावृधस्व— शारीरिक शक्ति तथा संरक्षक बल बढा दो।

१८१ वाजान् नः उपमिमीहि- अन्नों और बलोंको हमारे पास ले आओ।

१८१ स्तीन् उपमिमीहि— रहनेके लिये घर हों।

(ऋ० ७।२०)

१८१ स्वधावान् उग्रः वीर्याय जज्ञे- अपनी धारक-शक्तिसे युक्त वीर पराक्रम करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ होता है।

१८१ नर्यः यत् करिष्यन् अपः चक्रिः- मानवोंका हित करनेवाला जो करना चाहता है, वह कार्य कर छोडता है।

१८१ युवा अवोभिः नृषदनं जग्मिः- तरुण वीर रक्षक साधनोंके साथ मनुष्य रहनेके स्थानमें जाता है।

१८२ महः एनसः त्राता— वीर बडे पापसे बचाता है।

१८३ वीरः जरितारं ऊती प्रावीत्- वीर वीरकाव्योंके गान करनेवालोंको संरक्षक साधनोंसे सुरक्षित रखता है।

१८३ दाशुषे मुहुः वसु दाता आभूत्— दाताको बहुत धन देता है।

१८४ युध्मः अनर्वा खजकृत्, समद्वा शूरः जनुषा सत्राषाट् अषाळ्हः स्वोजाः पृतना व्यासे, विश्वं शत्रूयन्तं जघान— युद्ध करनेवाला, युद्धसे पीछे न हटने-वाला, युद्धमें कुशल, युद्धमें जानेमें उत्साही, शूर, जन्मसे ही शत्रुका पराभव करनेवाला, स्वयं कभी पराभूत न होनेवाला, निजबलसे समर्थ वीर शत्रुसेनाको अस्तव्यस्त करता है, और सब शत्रुओंका वध करता है।

१८५ महित्वा तविषीभिः आ पप्राथ-अपने महत्त्वसे अपनी शक्तियोंके द्वारा विश्वमें प्रसिद्ध होता है।

१८५ हरिवान वज्रं नि मिमिक्षन्- उत्तम घोडोंका प्रयोग करनेवाला वीर शत्रुपर अस्त्र फेंकता है।

१८६ वृषा वृषणं रणाय जजान— बलवान् पिता बलशाली पुत्रको युद्ध करनेके लिये उत्पन्न करता है।

१८६ नारी नर्यं ससूव- पत्नी मानवोंका हित करनेवाला पुत्र उत्पन्न करती है।

१८६ यः नृभ्यः सेनानीः प्रास्ति- वह मानवोंका हित करनेवाला वीर सेनापति होता है।

१८६ सः इनः सत्वा गवेषणः धृष्णुः— वह वीर स्वामी शक्तिमान चुराई गौओंकी खोज करनेवाला तथा शत्रुका पराभव करनेवाला है।

१८७ यः अस्य घोरं मनः आविवासत्, स जनः नुचित् भ्रेजते, न रेषत्- जो इसके प्रभावी मनको प्रसन्न रखता है वह मनुष्य स्थानभ्रष्ट नहीं होता और नाही क्षीण होता है।

१८७ यः इन्द्रे दुवांसि दधते स ऋतपा ऋतेजा राये क्षयत्- जो प्रभुपर भक्ति रखता है, वह सत्यपालक, सत्यप्रवर्तक धनके लिये रहता है, धन प्राप्त करता है।

१८८ पूर्वः अपराय शिक्षन्-पूर्वज वंशजको शिक्षण देता है।

१८८ देष्णं कनीयसः ज्यायान् अयत्- कुछ धन कनिष्ठसे श्रेष्ठके पास जाता है।

१८८ अमृतः दूरं पर्यासीत— न मरता हुआ दूर देशमें जाकर जो प्राप्त किया जाता है (वह भी धन है।)

१८८ चित्र्यं रयिं नः आ भर- यह सब प्रकारका धन हमें प्राप्त हो।

१८९ अव्रतः चनिष्ठाः ते सुमतौ स्याम- हम विनष्ट न होते हुए, तथा धनधान्यसंपन्न होकर, तेरी प्रसन्नताके भागी बनें।

१८९ नृपीतौ वरूथे स्याम- जनताकी सुरक्षा करनेमें, तथा जनताको वरिष्ठस्थान प्राप्तकर देनेमें हम सफल हों।

१९१ नः इषे धाः- हमें धन तथा अन्नसे संपन्न कर।

१९१ वस्वी शक्तिः स्वस्तु— सुखसे निवास करनेकी शक्ति हमारे अन्दर अच्छी तरहसे रहे।

(ऋ० ७।२१)

१९४ विश्वा कृत्रिमा भीषा रेजन्ते- सब बनावटी शत्रु तेरे भयसे कांपते हैं। (सुभा० सं० २६६)

१९५ इन्द्रः नर्याणि विश्वा अपांसि विद्वान्— इन्द्र वीर जनताके हित करनेके सब कार्य जानता है।

१९५ भीमः आयुधेभिः एषां विवेश— यह प्रचण्ड वीर अनेक शस्त्रास्त्रोंसे शत्रुसैनिकोंमें घुसता है।

१९५ जर्हषाणः वज्रहस्तः महिना जघान— प्रसन्नचित्तसे वज्र हाथमें लेकर अपनी महतीशक्तिसे शत्रुपर प्रहार करता है।

१९६ यातवः नः न जुजुवुः— डाकू लुटेरे हमारे पास न आ जांय।

१९६ वंदना वेद्याभिः नः न जुजुवुः— वंदन करके नम्रभाव दिखाकर हमारे अन्दर रहनेवाले हमारे अन्तःशत्रु, उनके ज्ञानपूर्वक बर्ते गये साधनोंके साथ हमारे अन्दर न रहें।

१९६ स अर्यः विषुणस्य जन्तोः शर्धत्— वह श्रेष्ठ वीर विषम भाव रखनेवाले शत्रुका नाश करता है।

१९६ शिश्नदेवा नः ऋतं मा गुः— शिश्नको ही देव माननेवाले कामी लोग हमारे सत्यधर्मके स्थानपर न आ जांय।

१९७ क्रत्वा क्ष्मन् अभि भूः— अपने पुरुषार्थ प्रयत्नसे पृथ्वीपरके अपने शत्रुओंका पराभव कर।

१९७ ते महिमानं रजांसि न विव्यक्— तेरी महिमाको भोगी लोग नहीं जान सकते।

१९७ स्वेन शवसा वृत्रं जघन्थ— अपने बलसे घेरनेवाले शत्रुको उसने मारा।

१९७ शत्रुः युधा ते अन्तं न विविदत्— शत्रु युद्ध करके तेरी शक्तिका अन्त न जान सके (ऐसी शक्ति धारण कर।)

१९८ पूर्वदेवाः असुर्याय क्षत्राय ते सहांसि अनु ममिरे— असुर शत्रुओंने अपने क्षात्र बलको तेरे सामर्थ्यसे कम ही माना था।

१९८ इन्द्रः विषह्य मघानि दयते-इन्द्र शत्रुका पराभव करके धनोंका दान करता है।

१९९ कीरिः अवसे ईशानं जुहाव— शिल्पी अपनी सुरक्षाके लिये प्रभुकी प्रार्थना करता है।

१९९ भूरेः सौभगस्य अवः— सब प्रकारके ऐश्वर्योंका संरक्षण होना चाहिये।

१९९ अभिक्षत्तुः वरूता— चारों ओरसे हिंसा करनेवाले शत्रुओंका निवारण कर।

२०० नमोवृधासः विश्वहा सखायः स्याम— अन्नकी अधिक उपज करनेवाले सब सर्वदा आपसमें मित्र होकर रहें। एक ही कार्यमें दत्तचित्त रहें।

२०० अवसा समीके अर्यः अभीतिं वनुषां शवांसि वन्वन्तु— अपने बलसे युद्धमें आर्यदलके वीर आक्रमणकारियोंके तथा हिंसक शत्रुओंके बलोंका नाश करें।

(ऋ० ७।२२)

२०६ ते असुर्यस्य विद्वान् तुरस्य गिरः न मृष्ये— तेरे सामर्थ्यको जाननेवाला मैं त्वरासे तेरे शत्रुका नाश करनेके कार्यकी प्रशंसा करना मैं नहीं छोडूंगा।

२०६ स्वयशसः ते नाम सदा विवक्मि— अपने प्रभावसे यशस्वी होनेवाले ऐसे तेरे नामको मैं सदा गाता रहूंगा।

२०९ मन्यमानस्य ते महिमानं नू चित् उद्-श्नुवन्ति— सन्मान योग्य ऐसी तेरी महिमाको कोई पार नहीं कर सकता।

२०९ ते राधः वीर्यं न उदश्नुवन्ति— तेरे धन और पराक्रमका पार कोई नहीं लगा सकता।

२१० ते सख्यानि अस्मे शिवानि सन्तु— तेरी मित्रता हमारे लिये कल्याण करनेवाली होगी।

(ऋ० ७।२३)

२११ समर्ये इन्द्रं महय— युद्धके समय वीरको उत्साहित करो।

२१२ शुरुधः इरज्यन्त— शोकको रोकनेवाली कृतियाँ बढायी जाय।

२१२ जनेषु स्वं आयुः न हि चिकीते— लोगोंमें अपनी आयु (कितनी है यह) कोई नहीं जानता।

२१२ अंहांसि अस्मान् अतिपर्षि— पापोंसे हमें पार ले जाओ।

२१४ त्वं धीभिः वाजान् विदयसे— तू बुद्धियोंके साथ बलोंको देता है।

२१५ शुष्मिणं तुविराधसं— बलवान् तथा सिद्धि जिसे प्राप्त है ऐसा पुत्र प्राप्त हो। (सुभा० सं० २९५)

२१५ देवत्रा एकः मर्तान् दयते- देवोंमें एक ही (इन्द्र) मनुष्योंपर दया करता है ।

(ऋ. ७।२४)

२१६ वज्रबाहुं वृषणं अर्चन्ति— वज्रधारी बलवान् वीरकी सब पूजा करते है ।

२१६ स वीरवत् गोमत् नः धातु- वह वीरों और गौओंसे युक्त धन हमें दे देवे ।

२१७ सदने योनिः अकारि— रहनेके लिये घर बनाओ ।

२१७ नृभिः आ प्रयाहि—वीरोंके साथ आगे बढो ।

२१७ अविता वृधे असः- संरक्षक यश बढानेवाला हो ।

२१७ वसूनि ददः- धनका दान कर ।

२२० वृषणं शुष्मं वीरं दधत्- बलिष्ठ और सामर्थ्यवान् वीर पुत्र हमें प्राप्त हो ।

२२० सुशिप्रः हर्यश्वः- उत्तम कवच धारण करनेवाला शीघ्रगामी घोडोंसे जानेवाला वीर हो ।

२२० विश्वाभिः ऊतिभिः सजोषाः स्थविरेभिः वरीवृजत्- सब संरक्षक शक्तियोंके साथ उत्साहसे अपना वीर युद्धनिपुण वीरोंके साथ शत्रुनाश करे ।

२२१ महे उग्राय वाहे वाजयन् एष स्तोमः अधायि— बडे उग्रवीरका वर्णन करनेवाला यह वीर काव्य है ।

२२१ धुरि अत्य अधायि—धुरामें वेगवान् घोडा रखो ।

२२१ अयं वसूनां ईष्टे— यह धनोंका स्वामी है ।

२२१ नः श्रोमतं अधिधाः— हमें यशस्वी पुत्र हो ।

२२२ नः वार्यस्य पूर्धि— हमें भरपूर धन चाहिये ।

२२२ ते मही सुमतिं प्रवेविदाम— तेरी प्रसन्नता हमें प्राप्त हो ।

२२२ सुवीरां इषं पिन्व— उत्तम वीरपुत्रोंके साथ रहनेवाला धन प्राप्त हो ।

(ऋ० ७।२५)

२२३ समन्यवः सेनाः समरन्त— उत्तम उत्साही सेनाएं लडती हैं ।

२२३ नर्यस्य महः बाह्वोः दिद्युत् ऊर्मी पताति— मानवोंका हित करनेवाले बडे वीरके बाहुओंसे तेजस्वी शस्त्र शत्रुपर गिरता है ।

२२३ मनः विष्वद्र्यक् मा विचारीत्— मन इधर उधर न भटकता रहे (किसी एककार्यमें मन लगे ।)

२२४ दुर्गे मर्तासः नः अमन्ति, अमित्रान् निश्नथिहि— कीलेमें रहकर जो हमारा नाश करते हैं उन शत्रुओंका नाश करो ।

२२४ निनित्सोः शंसं आरे कृणुहि— निंदककी निंदा हमसे दूर रहे ।

२२४ वसूनां संभरणं नः आभर— धनोंका संग्रह हमारे पास हो ।

२२५ वनुषः मर्त्यस्य वधः जहि— हिंसक मनुष्यका वध कर ।

२२५ अस्मे द्युम्नं रत्नं अधिधेहि— हमें तेजस्वी रत्न दो ।

२२६ तविषीवः उग्रः— बलवान् वीर उग्र होता है ।

२२६ विश्वा अहानि ओकः कृणुष्व— सब दिन अपने घरका संरक्षण करो ।

२२७ देवजूतं सहः इयानाः— देवोंद्वारा प्रशंसित बल हमें प्राप्त हो ।

२२७ तरुत्रा वाजं सनुयाम— दुःखोंसे पार होकर हमें बल प्राप्त हो ।

२२७ सत्रा वृत्रा सुहना कृधि— शत्रु सदा सहजहीसे मारनेयोग्य हो जाय ।

(ऋ० ७।२६)

२३० पुत्राः पितरं अवसे हवन्ते— पुत्र पिताको अपनी सुरक्षाके लिये सहायार्थ बुलाते हैं ।

२३० सबाधः समानदक्षाः ईं अवसे हवन्ते— एक बंधनमें आये, समानतया दक्ष रहनेवाले इस वीरको अपनी सुरक्षाके लिये बुलाते हैं ।

२३१ सर्वाः पुरः समानः एकः सुनिमामृजे— शत्रुके सब नगर वह एक ही वीर उत्तम रीतिसे अपने वशमें करता है ।

२३१ यस्य मिथस्तुरः पूर्वीः ऊतयः— इस वीरके परस्पर मिले पूर्वकालसे चले आये सुरक्षाके साधन हैं ।

२३१ एकः तरणिः मघानां विभक्ता- एक ही तारक वीर धनोंका बंटवारा करता है । (सुभा० सं० ३३०)

२३२ अस्मे प्रियाणि भद्राणि सश्चत- हमें प्रिय कल्याण प्राप्त हों।

२३३ कृष्टीनां वृषभं नूनं ऊतये गृणाति- मानवोंमें बलवान् वीरको मानवोंके रक्षणार्थ बुलाते है।

२३३ नः सहस्रिणः वाजान् उपमाहि- हमें सहस्रों धन मिलें।

(ऋ० ७।२७)

२३४ नरः पार्या धियः युनजते- नेता लोग संकटोंसे पार होनेके लिये अपनी बुद्धियोंका उपयोग करते हैं।

२३४ नेमधिता नरः इन्द्रं हवन्ते- युद्धमें नेता इन्द्रको सहायार्थ बुलाते हैं।

२३४ शूरः नृषाता शवसः चकान- शूर मनुष्योंको योग्यतानुसार धनका बंटवारा अपने सामर्थ्यसे करता है।

२३५ यः ते शुष्मः अस्ति, सखिभ्यः नृभ्यः शिक्ष- जो तेरा सामर्थ्य है वह अपने मित्र नेताओंको सिखाओ।

२३५ त्वं विचेताः परिवृतं राधः नः अपवृधि— तूं ज्ञानी शत्रुके गुप्तधनको हमारे सामने प्रकट कर।

२३६ जगतः चर्षणीनां इन्द्रः राजा- जंगम पदार्थों और मानवोंका इन्द्र राजा है।

२३६ अधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति- पृथिवीपर जो कुरूप या सुरूप वस्तुमात्र है (उसका भी राजा वही प्रभु है।)

२३६ दाशुषे वसूनि ददाति— वह दाताको धन देता है।

२३६ उपस्तुतः चित् राधः चोदत्- स्तुति करनेपर धनको स्तोताके पास प्रेरित करता है।

२३७ दानः मघवा नः सहूती नः ऊती वाजं नियमते- दानी इन्द्र हमारे बुलाने पर हमारे संरक्षणके लिये हमें बल देता है।

२३७ यस्य अनूना दक्षिणा सखिभ्यः नृभ्यः वामं पीपाय— इसकी भरपूर धनकी पूंजी समान विचारवाले नेताओंको धन पहुंचाती है।

२३८ नः राये वरिवः कृधि- हमारे लिये श्रेष्ठ धन दो।

२३८ गोमत् अश्ववत् रथवत् व्यन्तः- गौ घोडे और रथवाला धन हमें चाहिये।

(ऋ० ७।२८)

२३९ हे विश्वमिन्व ! त्वा विश्वे मर्ताः चित् विह्वन्त— हे विश्वको संतोष देनेवाले वीर! तुझे सब मानव बुलाते हैं।

२४० हस्ते वज्रं आदधिषे, घोरः सन् क्रत्वा अषाळ्हः जनिष्ठाः— तू हाथमें वज्र धारण करता है, और भयंकर होकर, अपने कर्तृत्वसे शत्रुके लिये असह्य होता है।

२४१ तव प्रणीती नॄन् रोदसी संनिनेथ— तुम्हारी पद्धतीके अनुसार नेता वीरोंको तुम इस विश्वमें चलाते हो।

२४१ महे क्षत्राय शवसे जज्ञे— बडे क्षात्रतेजके लिये और बलके लिये (यह वीर) उत्पन्न हुआ।

२४१ तूतुजिः अतूतुजिं अशिश्नत्— उदार कंजूसको पीछे रखता है।

२४२ दुर्मित्रासः क्षितयः पवन्ते, एभिः अहभिः नः दशस्य— दुष्ट लोग सज्जनोंपर आक्रमण करते हैं, उनको इन दिनोंमें हमारे अधीन कर।

२४२ अनेनाः मायी वरुणः— निष्पाप कर्ममें कुशल वरुण है।

२४२ यत् अनृतं प्रतिचष्टे, द्विता अवसात्— जो असत्य हममें दिखाई देगा, वह द्विधा होकर दूर हो जावे।

२४३ महः राधसः रायः नः— बडी सिद्धि देनेवाले धन हमें प्राप्त हो जांय।

२४३ ब्रह्मकृतिं अविष्ट— ज्ञानपूर्वक की हुई कृतिका रक्षण कर।

(ऋ० ७।२९)

२४७ ते पुरुष्याः असन्— तुम्हारे मानवोंका हित करनेके ये प्रयत्न होते हैं।

२४७ त्वं प्रमतिः आसि— तू उत्तर बुद्धिमान हो।

(ऋ० ७।३०)

२४९ देव शुष्मिन् सुवज्र शूर नृपते— दिव्यगुण संपन्न बलवान् उत्तम वज्रधारी शूर राजा!

२४९ शवसा आयाहि— अपने बलसे यहां आओ।

२४९ अस्य रायः वृधे भव— इसका धन बढाओ।

२४९ अस्य महे वृष्ण्याय भव— इसके बडे सामर्थ्यको बढाओ ।

२४९ अस्य महि क्षत्राय पौंस्याय भव— इसके बडे क्षात्र पौरुषको बढानेवाला हो ।

२५० विश्वेषु जनेषु शूरः सेन्यः— सब मनुष्योंमें शूर ही सेनामें भरती करने योग्य है।

२५० त्वं सुहन्तु वृत्राणि रन्धय— तू उत्तम मारक शस्त्रसे शत्रुओंका नाश कर ।

२५१ अह्ना सुदिना व्युच्छात्— दिन अच्छे दिन होकर प्रकाशित होते रहें ।

२५१ समत्सु केतं उपमं दधः— युद्धोंका ज्ञान उपमा देने योग्य धारण करो ।

२५१ असुरः सुभगाय अत्र निषीदत्— बलवान् वीर उत्तम भाग्य प्राप्त करनेके लिये यहां हमारे पास बैठे ।

२५२ सूरिभ्यः उपमं वरूथं यच्छ— विद्वानोंको उत्तम धन दो ।

२५२ स्वाभुवः जरणां अश्नवंत— उत्तम ऐश्वर्यवाले वृद्धावस्थाका भोग करें ।

(ऋ० ७।३१)

२५६ त्वं नः वाजयुः— तू हमें अन्न बल तथा धन दे ।

२५६ त्वं गव्युः हिरण्ययुः— तू हमें गौएं और सुवर्ण दे ।

२५८ अर्यः, वक्तवे निदे अराव्णे नः मा रन्धि— तू स्वामी है, अतः कठोरभाषी, निंदक, कंजूसके अधीन हमें न कर ।

२५९ त्वं वर्म असि— तू कवच के समान रक्षक है।

२५९ पुरोयोधाः असि— तू सामने जाकर शत्रुसे युद्ध करनेवाला है ।

२५९ त्वया युजा प्रतिब्रुवे— तू साथ रहनेसे मैं शत्रुको योग्य उत्तर दूगा ।

२६१ कृष्टयः ते संनमन्ते— प्रजाजन तुम्हें प्रणाम करते हैं ।

२६३ महे महीवृधे प्रभरध्वं— बडे राष्ट्रका संवर्धन करनेवाले वीरका सत्कार करो ।

२६३ प्रचेतसे सुमतिं प्रकृणुध्वं- विशेष ज्ञानीकी प्रशंसा करो ।

२६३ चर्षणिप्राः विशः प्रचर— किसानोंकी इच्छाएं पूर्ण करना है तो प्रजाजनोंमें भ्रमण करो ।

२६४ उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिं- विशेष यशस्वी बडे वीरकी प्रशंसा करो ।

२६४ विप्राः ब्रह्म जनयन्त— ज्ञानी ज्ञानका प्रचार करते हैं ।

२६४ तस्य व्रतानि धीराः न मिनन्ति— उस प्रभुके नियमोंका धीर पुरुष निषेध नहीं करते ।

२६५ अनुत्तमन्युः राजा- राजा उत्साही हो ।

२६५ सहध्यै इन्द्रं वाणीः दधिरे- बल बढानेके लिये इन्द्रकी प्रशंसा करते हैं ।

(ऋ० ७।३२)

२६८ रायस्कामः वज्रहस्तं सुदक्षिणं हुवे— धनकी इच्छा करनेवाला वज्रधारी उत्तम दक्षवीरका गुणगान करे ।

२७० श्रुत्कर्णः वसूनां ईयते- प्रार्थना सुननेवाले प्रभुके पास वीर धनके लिये जाते हैं ।

२७० दित्सन्तं न किः आ मिनत्-वह देने लगा तो उसे कोई रोक नहीं सकता ।

२७१ इन्द्रेण अप्रतिष्कुतः सः वीरः नृभिः शुशुवे- इन्द्रके द्वारा प्रतिबन्ध न होनेपर वह वीर मानवों द्वारा संमानित होता है ।

२७२ मघवन् ! मघानां वरूथं भव-हे धनवान् वीर ! तू धनोंका संरक्षक कवच जैसा हो ।

२७२ शर्धतः समजासि— स्पर्धा करनेवाले शत्रुका निवारण कर ।

२७२ त्वाहतस्य वेदनं विभजामहि--तुम्हारे प्रयत्नसे शत्रुका नाश होनेपर उसका धन हम आपसमें बांट लेंगे ।

२७२ दुर्नशः गयं आभर- अविनाशी घर हमें चाहिये ।

२७३ मयः पृणन् पृणते- सुख देता हुआ (शुभकर्म) पूर्ण करता है ।

२७४ महे आतुजे राये कृणुध्वं- बडे शत्रुका विनाश और धन प्राप्त करो ।

२७४ तरणिः इत् जयति- त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला विजयी होता है । (सुभा० सं० ३९६

२७४ **तरणिः इत् क्षेति**— त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला ही सुखसे यहां रहता है।

२७४ **तरणिः इत् पुष्यति**— त्वरासे उत्तम कर्म करनेवाला ही यहां पुत्र पौत्र धन धान्यसे पुष्ट होता है

२७४ **कवत्नवे देवासः न**— कुत्सित कर्म करनेवालेके लिये देव सहायता नहीं करते।

२७५ **सुदासः रथं नकिः पर्यास**— उत्तम दाताके रथको कोई रोक नहीं सकता।

२७६ **हे इन्द्र ! त्वं यस्य अविता भुवः, मर्तः वाजयन् वाजं गमत्**— हे प्रभो ! तू जिसका संरक्षक होता है वह मनुष्य अपना बल बढाकर बलवान् होता है।

२७६ **अस्माकं नृणां अविता बोधि**— हमारे मानवोंका संरक्षक बन।

२७७ **जिग्युषः धनं**— विजयी वीरका धन होता है।

२७७ **तं रिपः न दभन्ति**— उस विजयी वीरको शत्रु नहीं दबाते।

२७९ **वाजी पार्यं वाजं सिषासति**- बलवान् वीर दुःखसे पार करनेवाले बलको प्राप्त करता है।

२८० **सूरिभिः विश्वा दुरिता तरेम**— विद्वानोंकी सहायतासे सब कष्टोंको पार करेंगे।

२८१ **हे इंद्र ! त्वं अवमं मध्यमं वसु पुष्यसि विश्वस्य परमस्य राजसि**- हे प्रभो ! तू निकृष्ट मध्यम और श्रेष्ठ धनको बढाता है और उसपर प्रभुत्व करता है।

२८२ **त्वं विश्वस्य धनदा श्रुतः असि**- तू सबमें प्रसिद्ध धनका दाता है।

२८२ **ये आजयः भवन्ति**- जो युद्ध होते हैं (उनमें भी तूही वीर करके प्रसिद्ध है।)

२८२ **अयं विश्वः पार्थिवः अवस्युः नाम भिक्षते**— ये सब पृथ्वीपरके मनुष्य अपनी सुरक्षाके लिये तुम्हारा ही नाम लेते हैं।

२८३ **एतावत् अहं ईशीय**— इतना धन मेरा हो।

२८३ **पापत्वाय न रासीय**- पाप बढानेके लिये धनका उपयोग नहीं करूंगा।

२८४ **हे मघवन् ! नः आप्यं, त्वत् अन्यत् नहि**— हे प्रभो ! तू ही हमारा बन्धु है, तेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं।

२८५ **तरणिः पुरंध्या युजा वाजं सिषासति**— कुशलतासे सत्वर कार्य करनेवाला विशाल बुद्धिसे धन और बल प्राप्त करता है।

२८५ **तष्टा सुद्र्वं नेमिं**— सुतार उत्तम लकडीसे चक्र तैयार करता है।

२८६ **बहुस्तुतं गिरा आनमे**— बहुतों द्वारा प्रशंसित वीरको मैं अपने भाषणसे अपना नम्रभाव प्रकट करता हूं।

२८६ **दुष्टुती मर्त्यः वसु न विन्दते**— दुष्टकी प्रशंसा करनेवाला मनुष्य धन नहीं प्राप्त कर सकता।

२८६ **स्रेधन्तं रयिः न नशत्**— हिंसकको धन नहीं मिलता।

२८६ **पार्ये सुशक्तिः देष्णं विन्दते**— दुःखसे पार होनेके समयमें अच्छी शक्ति वाला ही धन प्राप्त करता है।

२८७ **अस्य तस्थुषः जगतः स्वर्दृशं ईशानं अभि नोनुमः**— इस स्थावर जंगम विश्वके दिव्य दृष्टीवाले ईश्वरको हम सब प्रणाम करते हैं।

२८८ **दिव्यः पार्थिवः त्वावान् अन्यः न जातः न जनिष्यते**— द्युलोकमें अन्तरिक्षमें और पृथ्वीपर तेरेसे भिन्न कोई दूसरा ईश्वर न हुआ और न होगा।

२८८ **गव्यन्तः अश्वायन्तः वाजिनः त्वा हवामहे**— गौओं, घोडोंको चाहनेवाले तथा बल बढानेकी इच्छा करनेवाले हम तेरी प्रार्थना करते हैं।

२८९ **ज्यायः कनीयसः सत् अभ्याभर**— बडाभाई छोटेभाईको धन देता है, वैसा हमें दे दो।

२८९ **सनात् पुरुवसुः असि**— तू सदा धनवान है।

२८९ **भरे भरे हव्यः**- प्रत्येक युद्धमें तू बुलाने योग्य है।

२९० **अमित्रान् परा नुदस्व**— शत्रुओंको दूर कर।

२९० **नः वसु सुवेदाः कृधि**— हमें धन सुखसे प्राप्त हो ऐसा कर।

२९० **महाधने सखीनां अविता वृधः बोधि**— युद्धोंमें मित्रोंका रक्षण करनेवाला और बढानेवाला हो।

२९१ **पुत्रेभ्यः पिता, तथा त्वं नः क्रतुं शिक्ष, आभर**— जैसा पुत्रोंको पिता वैसा तू हमें शुभकर्मोंकी शिक्षा दो और हमारी शक्ति बढा दो। (सुभा० सं० ४२२)

२९१ अस्मिन् यामनि जीवाः ज्योतिः अशीमहि— इस अवसरपर हम जीवित रहें और ज्योतिको प्राप्त करें ।

२८२ अज्ञाता अशिवासः दुराध्यः वृजनाः नः मा अवक्रमुः— अज्ञातमार्गसे अशुभ दुष्ट हिंसक हमपर आक्रमण न करें ।

२९२ वयं प्रवतः शश्वतीः अपः अतितराम- हम सब अपना संरक्षण करनेमें समर्थ होकर, सदा कर्मोंको निर्विघ्नतया कर सकेंगे ।

(ऋ० ७।३३)

२९५ एभिः सिन्धुं कं ततार— इन साधनोंसे सिन्धुको सुखसे पार किया ।

२९५ एभिः भेदं जघान— इन साधनोंसे आपसकी फूटका नाश किया ।

२९६ ब्रह्मणा वः पितॄणां जुष्टी— ज्ञानसे आपके पितरोंकी भी प्रसन्नता होती है ।

२९६ अक्षं अव्ययं— रथका अक्ष न टूटनेवाला हो ।

२९६ न रिषाथ— तुम क्षीण न बनो ।

२९६ इन्द्रे शुष्मं अदधात— वीर इन्द्रका बल बढा दो ।

२९७ तृष्णजः वृतासः नाथितासः उदद्यीधयुः— प्यासे, शत्रुसे घेरे हुए, उन्नति चाहनेवाले वीरोंने प्रभुकी प्रार्थना की ।

२९७ तृत्सुभ्यः उरुं लोकं अकृणोत्— उन्नतिकी इच्छा करनेवाले (भक्तोंको इन्द्रने) बडा विस्तृत राष्ट्र कर दिया ।

२९८ गो-अजनासः दण्डाः, भरताः परिच्छिन्नाः आसन्— गौओंको चलानेके दण्डके समान भरत लोग निर्बल और आपसकी फूटसे विभक्त थे ।

२९८ तृत्सूनां पुर एता वसिष्ठः अभवत्— उन भरतोंका वसिष्ठ पुरोहित-नेता-बना ।

२९८ आदित् तृत्सूनां विशः अप्रथन्त- इससे भरतोंकी प्रजा उन्नत हुई ।

२९९ ज्योतिरग्राः आर्याः तिस्र प्रजाः— ज्योतिको अग्रभागमें रखनेवाले आर्य (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) ये तीन प्रकारके प्रजाजन हैं ।

२९९ भुवनेषु त्रयः रेतः कृण्वन्ति- भुवनोंमें ये तीन (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) वीर्य शक्ति बढाते हैं ।

२९९ त्रयः घर्मासः उषसं वयन्ति- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके तीनों कर्तव्य उषःकालमें शुरू होते हैं ।

३०० सूर्यस्य ज्योतिः, समुद्रस्य गंभीरः, वातस्य प्रजवः- सूर्यकी ज्योति, समुद्रकी गंभीरता, वायुका वेग ये शक्तियां हैं । मनुष्यमें तेज गंभीरता और वेग हो ।

३०० अन्येन अन्वेतवे न- किसी दूसरेके द्वारा अनुकरण करने योग्य ये नहीं है ।

३०१ हृदयस्य प्रकेतैः निण्यं सहस्रवल्शं अभि-संचरन्ति- हृदयकी ज्ञानशक्तियोंसे गुप्तरीतिसे सहस्रों वर्षोंतक (ज्ञानी इस विश्वमें) चारों ओर संचार करते हैं ।

३०१ यमेन ततं परिधिं वयन्तः- यमके द्वारा फैलाये आयुष्य रूपी वस्त्रको लोग बुनते जाते हैं ।

३०४ यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्- यमके फैलाये आयुष्य रूप वस्त्रको यह बुनेगा ।

३०६ वः वसिष्ठः आगच्छति, सुमनस्यमानाः एनं आध्वं— तुम्हारा निवास करानेवाला ज्ञानी तुम्हारे पास आरहा है, प्रसन्नचित्तसे तुम उसका आदर करो ।

३०७ शुक्रा मनीषा देवी— बल बढानेवाली बुद्धि देवी है ।

३०७ सुतष्टा वाजी रथः— उत्तम बनावटका उत्तम बलवान् घोडोंवाला रथ (जैसा चलता है, वैसे तुम प्रगति करो)

३०९ वृत्रेषु उग्राः शूराः मंसन्ते- शत्रुओंका हमला होनेपर शूर वीर ही आगे होते हैं ।

३११ यज्ञं अभि प्रस्थात- यज्ञ स्थानमें जाओ ।

३११ त्मना याता- स्वयं स्फूर्तिसे जाओ ।

३११ पत्मन् हिनोत— मार्गमें वेगसे चलो ।

३१२ समत्सु त्मना वीरं हिनोत— युद्धोंमें स्वयं स्फूर्तिसे वीरको भेजो ।

३१२ जनाय केतुं यज्ञं दधात— लोगोंके हितके लिये ज्ञान और कर्म करते रहो ।

३१३ शुष्मात् भानुः उदार्त— बलसे सूर्य उदय होता है ।

३१२ शुष्मात् पृथिवी भारं बिभर्ति— बलसे पृथ्वी भारको धारण करती है।

३१३ भूम शुष्मात् भारं बिभर्ति— उत्पन्न हुए भूत बलसे भार उठाते है।

३१४ अयातुः ऋतेन साधन् देवान् ह्वयामि— अहिंसक रहकर सत्यसे साधना करता हुआ सहायार्थ देवोंको बुलाता हूं।

३१५ देवीं धियं अभिदधिध्वं— दिव्य गुणवाली बुद्धिका धारण करो।

३१५ देवत्रा वाचं प्रकृणुध्वं— दिव्य भावोंको प्रकट करनेवाली वाणी बोलो।

३१७ राष्ट्राणां राजा असै अनुत्तं क्षत्रं विश्वायु- राष्ट्रोंके राजाके लिये प्रबल क्षात्रतेज और दीर्घ आयु प्राप्त हो।

३१८ विश्वासु विक्षु अस्मान् अविष्टः- सब प्रजा- जनोंमें हम सबकी सुरक्षा हो।

३१८ निनित्सोः शंसं अघं कृणोत— निन्दकोंकी निंदाको निस्तेज कर।

३१९ द्विषां दिद्युत् अशेवाः विष्वक् व्येतु- शत्रु- ओंके शस्त्र निष्फल होकर चारो ओर व्यर्थ जांय।

३१९ तनूनां रपः विष्वक् वियुयोत— शारीरिक पाप हमसे दूर हो।

३२१ अपां न-पातं सखायं कृध्वं- जीवनको न गिरा- नेवालोंको अपना मित्र बनाओ।

३२१ देवेभिः सजूः नः शिवः अस्तु- विबुधोंके साथ रहनेवाला हमारे लिये सुखदायी हो।

३२३ बुध्न्यः अहिः नः रिषे मा धात्- मूलतः बढने- वाला शत्रु हमारा विनाश न करे।

३२३ अस्य ऋतायोः यज्ञः मा क्षिधत्— सत्यके लिये जिसने अपनी आयु दी है उसका यज्ञ नष्ट न हो।

३२४ नृषु श्रवः धुः- मानवोंमें यश फैले।

३२५ राये शर्धन्तः अर्यः प्रयन्तु- धन प्राप्तिमें स्पर्धा करनेवाले हमारे शत्रु दूर भाग जांय।

३२५ महासेनासः अमेभिः शत्रुं तपन्ति- बडी सेनावाले सेनापति अपने बलोंसे शत्रुको ताप देते हैं।

३२६ सुपाणिः त्वष्टा पत्नीः वीरान् दधातु- कुशल शिल्पी प्रभु पत्नियोंमें वीर पुत्रोंको धारण करे।

३२८ रातिषाचः नः वसूनि रासन्— दान देने- वाले हमें धन दें।

३२९ नः रायः पर्वताः आपः ओषधीः परिपासतः- हमारे धनका संरक्षण पर्वत नदियां औषधियां करती है।

३३० रायः धियध्यै धरुणं स्याम— धनका धारण करनेके लिये हम धारण करनेमें समर्थ बनें।

(ऋ० ७।३५)

३३३ पुरंधिः नः शं— विशाल बुद्धि हमें शान्ति देने- वाली हो।

३३३ रायः शं— धन शान्ति देनेवाला हो।

३३३ सुयमस्य सत्यस्य शंसः शं— उत्तम संयम पूर्वक किया हुआ सत्यका वर्णन शान्ति बढानेवाला हो।

३३५ सुकृतां सुकृतानि नः शं सन्तु— सत्पुरुषोंकी पुण्यकारक कृतियां हमें शान्ति देनेवाली हों।

३३८ ब्रह्म नः शं— ज्ञान हमें शान्ति देनेवाला हो।

३३९ पर्वताः सिन्धवः नः शं- हमारे पर्वत और हमारी नदियां हमें शान्ति देनेवाली हों।

३४१ क्षेत्रस्य पतिः नः प्रजाभ्यः शं अस्तु- देशका राजा हमारी सब प्रजाके लिये शान्ति देनेवाला हो।

३४२ सरस्वती धीभिः सह शं अस्तु- विद्या देवी बुद्धियोंके साथ शान्ति बढानेवाली हो।

३४३ सत्यस्य पतयः नः शं— सत्यके पालन करने- वाले हमारे लिये शान्ति देनेवाले हों।

३४३ सुकृतः सुहस्ताः नः शं- कुशल शिल्पी हमें शान्ति देनेवाले हों।

(ऋ० ७।३६)

३४८ इनः अदब्धः पदवीः— स्वामी न दबनेवाला हो और लोगोंकी परीक्षा करके उनको योग्यस्थान देनेवाला हो।

३५३ वजिनः नः तोकं धियं च अवन्तु-बलवान् वीर हमारे पुत्र और बुद्धियोंका संरक्षण करें।

३५३ ते नः युज्यं रयिं अवीवृधन्— वे हमारे योग्य धनको बढावें। (सुभा० सं० ४९५)

३५४ मह्यै अरमतिं प्रकृणुध्वं—पृथ्वीपर विशाल कार्य-क्षेत्र अपने लिये निर्माण करो।

३५४ विदथ्यं पूषणं वीरं प्रकृणुध्वं- युद्धके लिये योग्य हृष्टपुष्ट वीरपुत्रको निर्माण करो।

३५४ धियः अवितारं भगं प्रकृणुध्वं— बुद्धिपूर्वक किये कर्मका संरक्षण करनेवाले भाग्यवान् पुत्रको निर्माण करो।

३५४ सातौ पुरंधिं रातिषाचं वाजं प्रकृणुध्वं-युद्धके समय ग्रामरक्षण करनेवाले, दान देनेवाले बलवान पुत्रको निर्माण करो।

३५५ प्रजायै वयः धुः— प्रजाके लिये अन्न दिया जावे।

३५६ ऋभुक्षणः वाजाः— शिल्पियोंका निवास करनेवाले अन्न हैं।

३५७ ऋभुक्षणः स्वर्दृशः- शिल्पियोंका निवास करनेवाले आत्मनिरीक्षक होते हैं।

३५७ अमृक्तं रत्नं धत्थ— सुरक्षित रहनेवाला रत्न हमें दो।

३५७ मतिभिः राधांसि नः दयध्वं—बुद्धियोंके साथ धन हमें दे दो।

३५८ महः अर्भस्य वसुनः विभागे देष्णं उवोचिथ-बडे अथवा छोटे धनके दानके समय देने योग्य धनके दान करनेकी घोषणा कर।

३५८ ते उभा गभस्ती वसुना पूर्णा- तुम्हारे दोनों हाथ धनसे भरपूर हैं।

३५८ सूनृता वसव्या न नियमते— सत्यभाषण करनेवाली वाणीको धन देनेके समय कोई नहीं रोकता।

३५९ इन्द्रः स्वयशाः ऋभुक्षाः- इन्द्र वीर यशस्वी है और शिल्पियोंको वसानेवाला है।

३५९ वाजः साधुः— अन्न बल बढानेवाला है।

३६० धीभिः विवेषः— अपनी बुद्धियोंसे चारों ओर फैलो।

३६० प्रवतः सनिता असि— तू संरक्षक धनका दाता है।

३६० युज्याभिः ऊती ववन्म- योग्य साधनोंसे संरक्षण हम प्राप्त करेंगे।

३६१ वेधसः वासयासि— ज्ञानियोंको वसाता है।

३६१ अस्य अस्तं सुवीरं रयिं पृक्षः— इसके घर उत्तम वीर पुत्रके साथ धन भरपूर हो।

३६३ स्तवध्यै राधांसि नः आयान्तु— प्रशंसनीय धन हमारे पास आजाय।

३६३ दिव्यः पायुः सदा नः सिषक्तु- दिव्य संरक्षक सदा हमारे पास रहे।

(ऋ० ७।३८)

३६४ पुरुवसुः रत्ना विदधाति— बहुत धनवाला रत्नोंको अपने पास रखता है।

३६५ उत्तिष्ठ— उठो, खडा हो जाओ।

३६५ नृभ्यः मर्तभोजनं आसुवानः— मनुष्योंको मानवोंके योग्य भोजन दो।

३६६ विश्वेभिः पायुभिः सूरीन् नीपातु— सब संरक्षणके साधनोंसे ज्ञानियोंका संरक्षण करे।

३६९ जास्पतिः रत्नं नः अनुमंसीष्ट- प्रजाका पालक राजा रत्न हमें देनेके लिये मान्यता देवे।

३७० अहिं वृकं रक्षांसि जंभयन्तः— वीर बढनेवाले क्रूर राक्षसोंका नाश करते हैं।

३७० सनेमि अमीवाः अस्मत् युयवन्- पुराने रोग हमसे दूर हों।

३७१ हे वाजिनः! विप्राः अमृता ऋतज्ञाः वाजे वाजे नः धनेषु अवत— हे बलवान् वीरो! ज्ञानी अमर सत्यमार्ग जाननेवाले वीर प्रत्येक युद्धमें हमें धनोंके लिये सुरक्षित रखें।

(ऋ० ७।३९)

३७२ अग्निः ऊर्ध्वः- अग्निकी ज्वाला ऊपर जाती है।

३७२ वस्वः सुमतिं अश्रेत्- निवासके उपयोगी धन प्राप्त करनेकी सुबुद्धिका आश्रय किया जाय।

३७२ रथ्या पथां भेजाते- रथके मार्गसे जाते हैं।

३७२ ऋतं यजाति - सरल कर्म करते रहो।

३७३ विश्पती विशां स्वस्तये बिरीठे ऐयाते- प्रजापालक राजा प्रजाजनोंके कल्याणके लिये राजसभामें जाते हैं। (सुभा० सं० ५२९)

३७४ शुभ्राः मर्जयन्त— शुद्ध वीर अधिक स्वच्छता करते है।

३७५ ऊमाः यज्ञियासः— वीर संरक्षण करते हैं वे पूज्य हैं।

३७५ विश्वे देवाः सधस्थं अभिसन्ति— सब विबुध अपने स्थानमें रहते हैं।

३७७ मर्त्यानां कामं असिन्वन् नक्षन्— मानवोंकी उन्नतिकी इच्छाका प्रतिबंध न करो और उसमें प्रगति करो।

३७७ अविदस्यं सदासां रयिं धात— अक्षय सदा रहनेवाले धनको हमें दो।

३७८ नः उपमं अर्कं यच्छन्तु— हमें उत्तम धन मिले।

(ऋ० ७।४०)

३७९ विदथ्या श्रुष्टिः समेतु— संगठनसे मिलनेवाला धन हमें मिले।

३७९ तुराणां स्तोमं प्रतिदधीमहि— त्वरासे उत्तम कार्य करनेवालोंकी प्रशंसा हम करते हैं।

३७९ अस्य रत्निनः विभागे स्याम— इस धनीके धनके बंटवारेके समय हम वहां रहें।

३८० द्युभक्तं रेक्णः दिदेष्टु— तेजस्वी वीरोंको जो प्रिय धन है वह हमें मिले।

३८१ यं मर्त्यं अवाथः, स उग्रः शुष्मी— जिस मनुष्यकी तुम सुरक्षा करते हो, वह शूरवीर और बलवान होता है।

३८१ सरस्वती ईं जुनति— विद्यादेवी उसे प्रशस्तकर्म में प्रेरित करती है।

३८१ तस्य रायः पर्येता नास्ति— उसके धनको घेरनेवाला कोई नहीं है।

३८२ अयं ऋतस्य नेता— यह वीर तो सत्यका नेता है।

३८२ राजानः अपः धुः— राज्यशासक प्रशस्त कर्मोंको धारण करते हैं।

३८२ नः अरिष्टान्— हम विनष्ट न हों।

३८२ नः अंहः अतिपर्षत्— हमें पापसे बचाओ।

३८३ विष्णोः देवस्य वयाः— सर्वव्यापक एक देवके (अन्य देव) शाखा जैसे हैं।

३८३ रुद्रः रुद्रियं महत्वं विदे— रुद्रदेव अपना महत्त्व जाने।

३८४ मयोभुवः अर्वन्तः निपान्तु— सुख देनेवाले संरक्षक हमारी सुरक्षा करें।

(ऋ० ७।४१)

३८७ तुरः राजा मन्यमानः— त्वरासे उत्तम कार्य करनेवाला राजा माननीय होता है।

३८८ प्रणेतः सत्यराधः भगः— उत्तम नेता सच्चे धन वाला भाग्यवान है।

३८८ ददत् धियं उदव— दातृत्व बुद्धिको सुरक्षित रखो।

३८८ गोभिः अश्वैः नृभिः प्रजनय— गौवें घोडे तथा वीर पुत्र पर्याप्त हों।

३८९ इदानीं भगवन्तः स्याम— अब हम धनवान हों।

३८९ वयं देवानां सुमतौ स्याम— हमें देवोंकी प्रसन्नता प्राप्त हो।

३९० सः नः पुर एता भवतु— वह हमारा नेता बने।

३९२ गोमतीः अश्वावती वीरवती घृतं दुहाना उषसः भद्राः नः सदं उच्छन्तु— गौवें घोडे और वीर पुत्र युक्त, घी का दोहन करनेवाली कल्याण करनेवालीं उषाएं हमारे घरको प्रकाशित करती रहें।

(ऋ० ७।४२)

३९४ सनवित्तः अध्वा सुगः— बहुत समयसे चला हुआ मार्ग सुगम होता है।

३९५ देवान् सुयजस्व— देवोंका उत्तमरीतिसे यजन करो।

३९६ सः इयत्यै विशे वार्यं ददाति— वह समीपवर्ति प्रजाके लिये स्वीकारने योग्य धन देता है।

३९८ अस्मे इषं रयिं वाजं पप्रथत्— हमें अन्न धन और बल वह देता है।

(ऋ० ७।४३)

३९९ विप्राः देवयन्तः— ज्ञानी देव बननेका यत्न करते हैं।

४०१ देवताता नः मृधः मा कः— युद्धमें हमारे शत्रुओंकी सहायता न कर।

४०१ वसूनां ज्येष्ठं महः आगंतन- धनोंमें श्रेष्ठ धन हमारे पास आजाय ।

४०२ समनसः यति स्थ- एक विचारसे यत्न करो ।

४०३ राया युजा सधमादः अरिष्टाः सहस्रावन्- धनसे युक्त होकर एक स्थानमें रहनेवाले विनष्ट न हों और शत्रुका पराभव करनेके बलसे युक्त हों ।

(ऋ० ७।४४)

४०६ मंश्चतोः वरुणस्य भ्रभ्रं बभ्रुं उपब्रुवे- घमंडी शत्रुका नाश करनेवाले वीर वरुणके बडे भूरे घोडेका वर्णन करता हूं ।

४०६ ते अस्मत् विश्वा दुरिता यवयन्तु-- वे हमसे सब पाप दूर करें ।

४०८ विश्वे महिवा असुराः शृण्वन्तु-- सब बलवान् ज्ञानी वीर (हमारा भाषण) सुनें ।

(ऋ० ७।४५)

४०९ सविता देवः हस्ते पुरूणि नर्या दधानः भूमः निवेशयन् प्रसुवन्- सविता देव अपने हाथमें बहुतसा धन लेकर बहुतोंका निवास करावे और उनको प्रेरणा भी देवे ।

४१० सूरःचित् अपस्यां अनुदात्— सूर्यके समान वह कर्म करनेकी प्रेरणा देता है ।

४११ सहावा वसुपतिः नः वसूनि आसाविषत्- बलवान् धनपति हमें धन देवे ।

४११ सहावा वसुपतिः उरूचीं अमतिं विश्रयमाणः- बलवान् धनपति विशाल प्रगति करनेके कार्योंको विशेष आश्रय देता रहे ।

४११ सहावा वसुपतिः मर्तभोजनं रासते— बलवान धनपति मनुष्योंके योग्य भोजन देता है ।

(ऋ० ७।४६)

४१३ इमा गिरः स्थिरधन्वने क्षिप्रेषवे स्वधाव्ने वेधसे अषाळ्हाय सहमानाय तिग्मायुधाय रुद्राय भरत— ये स्तोत्र सुदृढ धनुष्यवाले, शीघ्र बाण छोडनेवाले अपनी धारण शक्तिसे युक्त, विशेष धारक; असह्य, शत्रुका पराभव करनेवाले, तीक्ष्ण शस्त्रवाले, शत्रुको रुलानेवाले वीरके लिये गाओ ।

४१४ क्षम्यस्य जन्मनः क्षयेण सः चेतति— पृथ्वी पर जन्मे मनुष्यके उत्तम निवारा करनेसे वह प्रसिद्ध होता है ।

४१४ दिव्यस्य जन्मनः साम्राज्येन स चेतति— दिव्य जीवनवाले मनुष्योंके साम्राज्यसे वह प्रकाशित होता है ।

४१४ सः अवतीः अवन्— अपना रक्षण करनेवाली प्रजाका वह रक्षण करता है ।

४१४ दुरः उपचर- द्वारोंपर रक्षक रखो ।

४१४ जासु अनमीवः भव— प्रजाओंमें नीरोग हो ।

४१५ सहस्रं भिषजा- सहस्रों औषधियां है ।

४१५ तनयेषु तोकेषु मा रीरिषः- बालबच्चोंकी क्षीणता न हो ।

(ऋ० ७।४७)

४१७ शुचिं अरिप्रं मधुमन्तं वयं अद्य वनेम— शुद्ध पापरहित मधुर जल हमें आज मिले ।

(ऋ० ७।४८)

४२१ ऋभुक्षणः वाजाः मघवानः नरः— शिल्पियोंके निवासक अन्नवान् बलवान् धनवान् नेता होते है ।

४२१ ऋभुभिः ऋभुः स्याम— शिल्पियोंके साथ रहकर हम उत्तम शिल्पकार बनें ।

४२१ विभुभिः विभ्वः स्याम— वैभवयुक्त पुरुषोंके साथ रहकर हम वैभवयुक्त बनें ।

४२१ शवसा शवांसि— बलसे बल बढायेंगे ।

४२१ वाजसातौ वाजः अस्मान् अवतु- युद्धके समय बल हमारा संरक्षण करे ।

४२३ पूर्वीः शासा ते अभिसन्ति- शत्रुसेना बहुत होनेपर भी उत्तम शस्त्रोंसे वह पराभूत होगी ।

४२३ उपरताति विश्वान् अर्यः वन्वन्— अपने उत्तम शस्त्र सब शत्रुओंका पराभव करते हैं ।

४२३ विभ्वाः ऋभुक्षाः वाजः अर्यः-- वैभवसंपन्न, शिल्पियोंको बसानेवाले बलवान् वीर शत्रुओंका पराभव कर सकते हैं ।

४२३ शत्रोः नृम्णं मिथत्या कृण्वन्- शत्रुका बल नष्ट करो ।

४२४ नः वरिवः कर्तन— हमें धन देदो ।

(सुभा० सं० ५९३)

४२४ विश्वे सजोषाः नः अवसे भूत- सब उत्साही वीर हमारी सुरक्षा करें ।

४२४ वसवः अस्मे इषं संददीरन्- निवासक वीर हमें अन्न दें ।

(ऋ० ७।४९)

४२६ दिव्याः खनित्रिमाः स्वयंजाः- वृष्टि जल, कूवेका जल तथा स्वयं बहनेवाला जल ये अनेक प्रकारके जल हैं।

४२७ राजा वरुणः जनानां सत्यानृते अवपश्यन् याति- राजा वरुण लोगोंके पुण्य पाप देखता हुआ जाता है।

४२७ आपः मधुश्चुतः शुचयः पावकाः मां अवन्तु- जलप्रवाह मधुर रसमय स्वयं शुद्ध और पवित्र करनेवाले हैं वे मेरी सुरक्षा करें ।

(ऋ० ७।५०)

४२९ कुलायत् विश्वयत् नः मा आगन्— स्थानमें रहनेवाला अथवा फैलनेवाला विष हमारे पास न आजाय ।

४२९ अजकावं दुर्दशीकं तिरः दधे— रक्तरोग तथा दृष्टिदोष हमसे दूर हो ।

४२९ त्सरुः पद्येन रपसा मां मा विदत्- सर्प पांवके शब्दसे मुझे न जाने ।

(ऋ० ७।५१)

४३४ भुवनस्य गोपाः अस्माकं सन्तु- विश्वके संरक्षक हमारी सुरक्षा करें ।

(ऋ० ७।५२)

४३७ अन्यजातं एनः मा भुजेम- दूसरेका किया पाप हमें न भोगना पडे।

(ऋ० ७।५३)

४३९ पूर्वे गृणन्तः कवयः पुरः दधिरे- प्राचीन स्तोत्रपाठक कवि आगे रखे जाते हैं। सन्मान किया जाता है।

४४० दैव्येन जनेन नः आयातं, वां वरूथं महि- दिव्य जनोंके साथ हमारे पास आओ, आपका धन बडा है।

४४१ सुदासे पुरूणि रत्नधेयानि सन्ति- उत्तम दाताके लिये अनेक प्रकारके धन मिलते हैं।

(ऋ० ७।५४)

४४२ वास्तोष्पते ! अस्मान् प्रतिजानीहि— हे वस्तुओंके स्वामिन् ! हमें तुम अपने समझो ।

४४२ स्वावेशः अनमीवः भव— अपना रहनेका घर नीरोग हो ।

४४२ द्विपदे चतुष्पदे शं— द्विपाद चतुष्पादके लिये सुख मिले ।

४४२ यत् ईमहे तत् नः प्रतिजुषस्व— जो हमें चाहिये वह हमें प्राप्त हो ।

४४३ वास्तोष्पते ! नः प्रतरणः एधि—हे स्वामिन् ! तू हमारा तारक हो ।

४४३ गयस्फानः— घरका विस्तार करो ।

४४३ गोभिः अश्वेभिः अजरासः स्याम— गौओं और घोडोंसे युक्त होकर हम जरारहित हो जांय ।

४४३ ते सख्ये स्याम— तेरी मित्रतामें हम रहें ।

४४४ वास्तोष्पते ! शग्मया रण्वया गातुमत्या संसदा सक्षीमहि— हे स्वामिन् ! सुखदायी, रमणीय, प्रगति साधक सभास्थान हो ।

४४४ क्षेमे योगे नः वरं पाहि— योगक्षेममें हमारे धनका संरक्षण कर ।

४४५ अमीवहा— रोग दूर करनेवाला हो ।

(ऋ० ७।५५)

४४५ विश्वा रूपाणि आविशन्, नः सुशेवः सखा एधि— सब रूपोंमें प्रविष्ट होकर हमारा सुखदायी मित्र बन ।

४४७ तस्करं स्तेनं वा राय- चोर और डाकूपर दौड।

४४९ माता, पिता, विश्पतिः, जनः ससतु, सर्वे ज्ञातयः ससन्तु- (सुरक्षित नगरमें) माता, पिता, प्रजापालक राजा, सब जनता, सब जातियां सुखसे सोजांय ।

४५१ प्रोष्ठेशयाः वह्येशयाः, तल्पशीवरीः पुण्यगन्धाः स्त्रियः ताः सर्वाः स्वापयामसि- अंगनमें, वाहनमें, बिस्तरोंपर सोनेवाली जो उत्तम सुगन्धवालीं स्त्रियां हैं वे सब स्त्रियां (सुरक्षित नगरमें) सुखसे सोजांय।

(ऋ० ७।५६)

४५६ धीरः एतानि निण्या चिकेत— धैर्यवान वीर पुरुष वीरोंके इन गुप्तकार्योंको जानता है। (सुभा० सं० ६२२)

४५७ सा सुवीरा विट्, सनात् सहन्ती, नृम्णं पुष्यन्ती अस्तु- वह उत्तम वीरता युक्त प्रजा, सदा शत्रुका पराभव करती और अपने पौरुषको बढाती रहती है।

४५८ यामं येष्ठाः शुभाः शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्लाः ओजोभिः उग्राः— ये वीर शत्रुपर आक्रमण करते, अलंकारोंसे सुशोभित होते, तेजसे तेजस्वी होते और सामर्थ्यसे उग्र होते हैं।

४५९ वः ओजः उग्रं, शवांसि स्थिरा— आप वीरोंका बल उग्र है और स्थिर बल हैं।

४५९ वः गणः तुविष्मान्— तुम्हारा गण बलवान् है।

४६० वः शुष्मः उग्रः, मनांसि क्रुध्मी- आपका बल उग्र है और मन क्रोधसे भरे हैं।

४६० धृष्णोः शर्धस्य धुनिः- शत्रुका नाश करनेवाले सांघिक बलका आपका वेग प्रचण्ड है।

४६३ स्वायुधाः इष्मिणः सुनिष्काः स्वयं तन्वः शुम्भमानाः- ये वीर उत्तम शस्त्र धारण करनेवाले, वेगवान्, आभूषण धारण करनेवाले, अपने शरीरोंको सुशोभित करनेवाले हैं।

४६४ ऋतसापः शुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ऋतेन सत्यं आयन्- ये वीर सत्यका पालन करनेवाले, शुद्ध जन्मवाले, स्वयं शुद्ध और दूसरोंको पवित्र करनेवाले हैं, ये सरलतासे सत्यको प्राप्त करते हैं।

४६५ वः अंसेषु खादयः वक्षःसु रुक्माः उपशिश्रियाणाः, विद्युतः न रुचानाः, आयुधैः स्वधां अनुयच्छमानाः— इन वीरोंके कंधोंपर आभूषण हैं, छातीपर अलंकार लटक रहे हैं, बिजलीके समान चमकनेवाले ये अपने शस्त्रोंसे अपनी शक्ति प्रकट करते हैं।

४६६ वः बुध्न्या महांसि प्रेरते- तुम्हारे मौलिक सामर्थ्य प्रकट हो रहे हैं।

४६७ सुवीर्यस्य रायः मक्षु दात, यं अन्य अरावा नृचित् आदभत्- उत्तम वीर्यसे युक्त धन हमें तुरन्त दो, जिस धनको दूसरा कोई शत्रु दबा नहीं सकेगा।

४६८ हर्म्येष्ठाः शिशवः शुभ्राः- राजमहलमें रहनेवाले बालकोंके समान ये वीर गोरे हैं।

४६८ पयोधाः वत्सासः न प्रक्रीडन्तः- दूध पीनेवाले बालकोंके समान ये वीर खिलाड़ होते हैं।

४६९ गोहा नृहा वः वधः आरे अस्तु- गोघातक और मनुष्य घातक आप वीरोंका शस्त्र हमसे दूर रहे।

४७० ईवतः अद्वयावी गोपाः- प्रगतिशीलोंका अनन्यभावसे संरक्षण करनेवाला वीर है।

४७१ तुरं रमयन्ति- वीर त्वरासे कार्य करनेवालोंको सुख देते है।

४७१ सहः सहसः आनमन्ति- अपनी शक्तिसे साहसी शत्रुको विनम्र करते हैं।

४७१ अररुषे गुरु द्वेषः दधन्ति- शत्रुपर वीर बडा द्वेष करते हैं।

४७१ वसवः यथा रध्रं जुनन्ति, भ्रमिं जुनन्ति- निवास करानेवाले वीर जैसे समृद्ध मनुष्यके पास जाते हैं वैसे ही भीख मांगनेके लिये भ्रमण करनेवालेके पास भी जाते हैं।

४७१ तमांसि अपबाधध्वं- अन्धकारोंको दूर करो।

४७१ अस्मे विश्वं तोकं तनयं धत्त- हमारे सब बालबच्चोंको सुखमें रखो।

४७४ यत् शूराः जनासः मन्युभिः संहनन्त, पृतनासु नः त्रातारः भूत— जब शूर पुरुष उत्साहसे मिलकर शत्रुपर हमला करते हैं, उन युद्धोंमें तुम हमारे संरक्षक बनो।

४७५ उग्रः पृतनासु साळ्हा- उग्रवीर युद्धोंमें शत्रुका पराभव करता है।

४७६ यः असुरः जनानां विधर्ता, वीरः शुष्मी अस्तु- जो बलवान् वीर जनोंका धारण करता है वह वीर प्रबल होवे।

४७६ सुक्षितये अपः तरेम- उत्तम निवास होनेके लिये हम दुःखोंको पार करेंगे।

(ऋ० ७।५७]

४७८ युद्धेषु शवसा प्रमदन्ति, उग्राः अयासः- जो युद्धोंमें अपने बलके कारण आनंदित होते हैं, वे उग्रवीर शत्रुपर आक्रमण करनेवाले हैं। (सुभाषित संख्या ६४८)

४७९ विदथेषु विभ्रियाणाः वीतये बर्हिः आसदन्— युद्धोंमें आनन्दसे भाग लेनेवाले वीर अन्न सेवन करनेके समय इकठ्ठे होकर आसनोंपर बैठें।

४८० इमे रुक्मेभिः आयुधेभिः तनूभिः भ्राजन्ते— ये वीर भूषणों और शस्त्रोंसे सेजे अपने शरीरोंसे चमकते हैं।

४८० शुभे समानं अञ्जि कं आ अञ्जते— शोभाके लिये एक जैसा समान गणवेश पहनते इसलिये सुखसे जाते हैं।

४८१ अनवद्यासः शुचयः पावकाः— निष्पाप शुद्ध और पवित्र ये वीर है।

४८२ सुमतिभिः प्र अवत— उत्तम बुद्धिसे संरक्षण करो।

४८२ वाजेभिः पुष्यसे प्रतिरत— अन्नोंसे पुष्टी करनेके लिये प्रथम दुःखोंके पार हो जाओ।

४८३ नः प्रजायै अमृतस्य दत्तात— हमारी प्रजाको अपमृत्युसे दूर रखो।

४८३ सूनृता रायः मघानि जिगृत— सत्यनिष्ठा, धन और महत्ता हमें मिलें।

४८४ सर्वताता सूरीन् ऊती आजिगातन— सर्व हितकारी कर्मके समय ज्ञानियोंको संरक्षण मिलता रहे।

४८४ ये त्मना शतिनः वर्धयन्ति— जो अकेले ही सैंकडों मानवोंको बढाते हैं।

(ऋ० ७।५८)

४८५ तुविष्मान् दैव्यस्य धाम्नः— बलवान दिव्य धामको प्राप्त करता है।

४८५ साकं उक्षे गणाय प्रार्चत— साथ रहकर अपनी उन्नति करनेवाले संघका सत्कार करो।

४८५ अवंशात् निऋतेः क्षोदन्ति— वंश नाशकी आपत्तिसे वीर बचाते हैं।

४८५ महित्वा नाकं नक्षन्ते— अपने सामर्थ्यसे स्वर्गको प्राप्त करते हैं।

४८६ भीमासः तुविमन्यवः अयासः— बडे शरीरवाले अतुल उत्साही वीर शत्रुपर आक्रमण करते हैं।

४८६ जनूः त्वेष्येण महोभिः ओजसा प्रसन्ति— वीरोंके जन्म तेजस्विता, महत्ता और सामर्थ्यके लिये प्रसिद्ध होते हैं।

४८६ यामन् विश्वः भयन्ते— शूरोंके आक्रमणसे सब भयभीत होते हैं।

४८७ मघवद्भ्यः बृहद् वयः दधात— धनवानोंको बडी आयु दो।

४८७ यातः अध्वा जन्तुं न तिराति— वीर जिस मार्गसे जाते हैं वह मार्ग किसी प्राणीका नाश नहीं करता।

४८७ स्पार्हाभिः ऊतिभिः नः तिरेत— स्पृहणीय संरक्षणोंसे हम दुःखसे पार हों।

४८८ युष्माऊतः विप्रः शतस्वी सहस्री— तुम्हारे द्वारा सुरक्षित हुआ ज्ञानी सैंकडों और सहस्रों धनोंसे युक्त होता है।

४८८ युष्माऊतः अर्वा सहुरिः— आपके द्वारा संरक्षित घोडा शत्रुका पराजय करता है।

४८८ युष्मा-ऊतः सम्राट् वृत्रं हन्ति— आपके द्वारा संरक्षित सम्राट् शत्रुका वध करता है।

(ऋ० ७।५९)

४९१ यं त्रायध्वे, यं नयथ, शर्म यच्छत— तुम जिसका संरक्षण करते हो, जिसको योग्य मार्गसे चलाते हो, उसे तुम सुख देते है।

४९२ युष्माकं अवसा द्विषः तरति— तुम्हारे संरक्षणसे सुरक्षित हुआ वीर शत्रुको लांघता है।

४९४ यस्मै अराध्वं, वः ऊताः पृतनासु नहि मर्धति— जिसका तुम संरक्षण करते हो, तुम्हारे संरक्षणसे वह युद्धोंमें सुरक्षित रहता है।

४९६ स्पार्हाणि वसु दातवे नः अवित— स्पृहणीय धन देनेके लिये हमें सुरक्षित रख।

४९८ दुर्हणायुः तिरः यः नः चित्तानि अभिजिघांसति, द्रुहः पाशान् प्रतिमुचिष्ट, तं तपिष्ठेन हन्मना हन्तन— अतिक्रोधी और तिरस्कारके योग्य, जो हमारे मनोंको ही मारता है, उस शत्रुके पाशोंसे हमें मुक्त करो और उसे तप्त शस्त्रसे मारो।

४९९ सांतपनाः रिशादसः— शत्रुको ताप देनेवाले वीर शत्रुका नाश करें।

५०२ मृत्योः बन्धनात् मुक्षीय— मृत्युके बंधनसे छुडाओ।

(सुभा० सं० ६७८)

(ऋ० ७।६०)

५०३ हे सूर्य ! उद्यन् अद्य अनागाः ब्रुवः— उदय होनेपर हमें प्रथम निष्पाप करके घोषित करो ।

५०३ हे अर्यमन् ! तव प्रियासः स्याम— हे आर्य मनवाले ! हम तेरे प्रिय होकर रहें ।

५०४ विश्वस्य स्थातुः जगतः च गोपा— यह सब स्थावर जंगमका संरक्षक है ।

५०४ मर्त्येषु ऋजु वृजिना च पश्यन्— मनुष्योंमें सरल और तेढा कौन है यह देखता है ।

५०१ यूथा इव धामानि जनिमानि वेद— गौओंके झुण्डका पालक उनके नामों और स्थानोंको जानता है ।

५०७ अदितेः पुत्रा अदब्धासः शग्मासः— अदितिके वरिपुत्र किसीसे न दबनेवाले तथा सुख बढानेवाले हैं ।

५०८ इमे दूळभाः— ये वीर न दबनेवाले हैं ।

५०८ अचेतसं दक्षैः चितयन्ति— अज्ञानीको अपने बलोंसे सज्ञान बना देते हैं ।

५०८ सुचेतसं क्रतुं वनन्तः— उत्तम ज्ञानी कुशल कर्म कर्ताको प्रगतिके पथपर चलाते हैं ।

५०८ अंहः तिरः नयन्ति— पापसे पार ले जाते हैं ।

५०८ सुक्रतुं सुपथा नयन्ति- उत्तम कर्मकर्ताको उत्तम मार्गसे ले जाते हैं ।

५०९ इमे दिवः पृथिव्याः अचेतसं अनिमिषा चिकित्वांसः नयन्ति- ये ज्ञानी वीर द्युलोक तथा भूलोकको न जाननेवाले अज्ञानीको अविलंबसे ज्ञानी बना देते हैं ।

५०९ प्रवाजे नद्यः गाधं अस्ति— निम्न प्रदेशमें नदियाँ अधिक गहरी होती हैं ।

५०९ अस्य विष्पितस्य पारं नः पर्षत्- इस गहरी नदिके पार हमें ये ले चलें ।

५१० गोपावत् भद्रं शर्म सुदासे यच्छन्ति— रक्षण करनेका कल्याण तथा सुख दाताको (वे वीर) देते हैं ।

५१० तस्मिन् तोकं तनयं आदधानाः- उस सुख दायक कर्ममें हम अपने बालबच्चोंको रखकर प्रवीण बनाते हैं ।

५१० तुरासः देवहेळनं कर्म मा- त्वरासे कार्य करते हुए देवोंको बुरा लगनेवाला कर्म न करो ।

५११ यः वेदिं अवयजेत स रिपः चित्— जो वेदीमें यज्ञ नहीं करता वह शत्रु है ।

५११ अर्यमा द्वेषोभिः परिवृणक्तु- अर्यमा शत्रुओंसे हमें दूर रखे ।

५११ सुदासे उरुं लोकं— उत्तम दाताको विस्तृत स्थान मिले ।

५१२ एषां समृतिः सखः त्वेषी- इन वीरोंकी मित्रता परस्पर सहायक तथा तेजस्वी होती है ।

५१२ अपाच्येन सहसा सहन्ते— अपने बलसे शत्रुका पराभव करते हैं ।

५१२ युष्मत् भिया रेजमानाः— तुम्हारे भयसे शत्रु भयभीत होते हैं ।

५१२ दक्षस्य महिना नः मृळत— अपने बलकी महिमासे हमें सुखी करो ।

५१३ उरु क्षयाय सुधातु चक्रिरे— विशाल निवासके लिये उत्तम स्थान बनाते हैं ।

५१४ विश्वानि दुर्गा नः तिरः पिपृतं— सब विपत्तियोंको हमसे दूर करो ।

(ऋ० ७।६१)

५१५ सूर्यः विश्वा भुवना अभिचष्टे— सूर्य सब भुवनोंको देखता है ।

५१५ सः मर्त्येषु मन्युं आचिकेत— वह मानवोंमें रहनेवाला उत्साह जानता है ।

५१६ ऋतावा दीर्घश्रुत् विप्रः— सत्यनिष्ठ बहुश्रुत ज्ञानी होता है ।

५१६ सुक्रतू ब्रह्माणि अवाथः— उत्तम कर्म करनेवाले ज्ञानोंका रक्षण करते हैं ।

५१६ क्रत्वा शरदः आ पृणैथे— पुरुषार्थसे मनुष्य अनेक वर्षोंमें पूर्ण होता है ।

५१७ ऋधक् यतः अनिमिषं रक्षमाणा— सत्यमार्गसे चलनेवालोंका सतत संरक्षण करते हैं ।

५१८ शुष्मः महित्वा रोदसी बद्धे— इनका बल अपने महत्त्वके कारण विश्वभरमें फैलता है ।

५१८ अयज्वनां मासाः अवीरा आयन्— यज्ञ न करनेवालोंके महिने वीरतारहित अवस्थामें जांयगे ।

५१८ यज्ञमन्मा वृजनं प्रतिराते— यज्ञ करनेमें जिनका मन लगता है वे अपना बल बढाते हैं।

५१९ विश्वा अमूरा वृषणौ— सब ज्ञान प्राप्त करें और बलवान बनें।

५१९ यासु चित्रं न ददृशे, न यक्षं— इन (काव्यों-में) न विलक्षणता है और न बल है (ये गुण काव्यमें होने चाहिये ।)

५१९ वां निण्यानि अचित्ते न अभूवन्– तुम्हारे कार्य अज्ञान बढानेके लिये न हों।

(ऋ० ७।६१)

५२१ सूर्यः बृहत् पुरु अर्चिः उदश्रेत्— सूर्य बहुत तेजका आश्रय करता है।

५२१ सूर्यः मानुषाणां विश्वा जनिम– सूर्य मनुष्यों-के जन्मवृत्त जानता है।

५२१ दिवा रोचमानः समः ददृशे–दिनमें प्रकाशता हुआ सबको समान दीखता है।

५२१ क्रत्वा कृतः, कर्तृभिः सुकृतः भूत्– पुरुषार्थसे बनाया हुआ यह, कर्तृत्वसे उत्तम कार्यकर्ता बन जाता है।

५२४ चन्द्राः उपमं अर्कं नः आयच्छन्तु— आनन्द देनेवाले विबुध हमें उत्तम पूजनीय धन दें।

५२५ नृणां हेळे मा भूम— मनुष्योंका क्रोध हमपर न हो।

५२६ जीवसे गव्यूतिं घृतेन औक्षतं– दीर्घजीवनके लिये गौओंका आनेजानेका मार्ग जलसे सिंचित करो।

५२६ जने नः आश्रावयतं—लोगोंमें हमारा यश फैले।

५२७ त्मने तोकाय वरिवः दधन्तु– अपने पुत्रके लिये धन दे दो।

५२७ नः विश्वाः सुपथानि सुगाः सन्तु– हमारे लिये सब मार्ग जानेके लिये सुगम हों।

(ऋ० ७।६३)

५२८ सुभगः सूर्यः विश्वचक्षाः मानुषाणां साधा-रणः तमांसि समविव्यक्– भाग्यवान् सूर्य, सबका निरीक्षक, सब मनुष्योंके लिये समान रीतिसे अन्धकारको समेट लेता है।

५२९ समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्– सूर्य एक ही कालचक्रको घुमाता है।

५३१ रुक्मः उरुचक्षाः दूरे अर्थः तरणिः भ्राज-मानः– तेजस्वी सूर्य विशेष रीतिसे देखनेवाला, दूर विराज-मान, तारक और प्रकाशक है।

५३१ सूर्येण प्रसूताः जनाः अर्थानि अयन् अपांसि कृण्वन्– सूर्यसे उत्पन्न हुए ये मनुष्य अर्थोंको प्राप्त करके उत्तम कर्मोंको करते है।

(ऋ० ७।६४)

५३४ सुक्षत्रः राजा वरुणः– उत्तम क्षात्रबलसे युक्त राजा वरुण है।

५३५ महः ऋतस्य गोपा राजाना सिन्धुपती क्षत्रिया– बडे ऋतके संरक्षणकर्ता सिन्धुके स्वामी क्षत्रिय ये दो राजा हैं।

५३७ ऊर्ध्वां धृतिं कृणवत् धारयत्— उच्च धैर्यकी स्थिति करनी और उसको धारण करना।

५३७ ता राजाना सुक्षिती तर्पयेथां– वे दोनों राजा प्रजाका उत्तम निवास करनेवाले और उनकी तृप्ती करने-वाले हैं।

५३८ धियः अविष्टं— बुद्धियोंका संरक्षण करो।

५३८ पुरंधिः जिगृतं— विशाल बुद्धिकी प्रशंसा करो।

(ऋ० ७।६५)

५३९ अक्षितं ज्येष्ठं असुर्यं विश्वस्य जिगत्नु— अक्षय रहनेवाला श्रेष्ठ बल विश्वका विजय करनेवाला है।

५४० असुरा अर्या क्षितिः ऊर्जयन्ती करतं— बलवान् आर्य वीरोंको सामर्थ्यवान् निर्माण कर।

५४१ अनृतस्य सेतुः– असत्यसे पार होनेका सेतु बन।

५४१ मर्त्याय रिपवे दुरत्येतु– मर्त्य शत्रुका आक्रमण रोकनेकी शक्ति धारण करो।

५४१ ऋतस्य पथा दुरिता तरेम– सत्यके मार्गसे हम पापोंसे बचें।

(ऋ० ७।६६)

५४४ नमस्वान् शूष्यः स्तोमः–अन्नसे युक्त बलवर्धक यह स्तोत्र है।

५४५ देवाः सुदक्षाः प्रमहसा असुर्याय धारयन्त- उत्तम दक्ष विबुध अपने महत्त्वसे अपनी शक्तिका संवर्धन करते हैं। (सुभा० सं० ७४३)

५४६ स्त्रिपाः तनूपाः— अपने घरका तथा शरीरका रक्षण करो।

५४८ क्षयः सुप्रावीः अस्तु-- घर सुरक्षित हो।

५४८ यामन् प्र आवीः अस्तु— तुम वीरोंका आना संरक्षक हो।

५४८ नः अंहः अतिपिप्रति— तुम्हारा आना हमें पापोंसे बचावे।

५४९ अदब्धस्य व्रतस्य स्वराजः राजानः महः ईशते— न दब जानेवाले व्रतको स्वयं स्फूर्तिसे निभानेवाले ये राजा लोग बडे महत्त्वको प्राप्त करते हैं।

५५० सूरे उदिते रिशादसं अर्यमणं प्रतिगृणीषे— सूर्यका उदय होते ही शत्रुनाशक श्रेष्ठ मनवाले आर्य वीरका काव्यगान करो।

५५१ हिरण्यया राया इयं मतिः अवृकाय शवसे, मेधसातये च— सुवर्णमय धनसे युक्त यह मेरी बुद्धि अहिंसक बल बढानेके लिये और धारणावती बुद्धिकी वृद्धिके लिये हो।

५५२ सूरिभिः सह स्याम— विद्वानोंके साथ हम रहें।

५५२ इषं स्वः च धीमहि— अन्न और आत्मबलका विचार करेंगे।

५५३ बहवः सूरचक्षसः अग्निजिह्वा ऋतावृधः विश्वानि त्रीणि विदथानि परिभूतिभिः धीतिभिः येमुः— सूर्यके समान तेजस्वी, अग्निके समान भाषण करनेवाले, सत्यमार्गका वर्धन करनेवाले बहुतसे वीर सब तीनों युद्धक्षेत्रोंका शत्रुपराजय करनेके सब साधनोंसे नियमन करते हैं।

५५३ अनाध्यं क्षत्रं राजानः आशत— शत्रुके लिये प्राप्त करना कठिन ऐसा क्षात्रबल राजा लोग प्राप्त करें।

५५४ शरदः, मासं, अहः, अक्तुं ऋचं, यज्ञं विदधुः— वर्ष, महिना, दिन रात्री मंत्रके साथ यज्ञ करते हैं। (सब समय शुभ कर्ममें लगाते हैं।)

५५५ ऋतस्य रध्यः यूयं ओहते तत् मनामहे— सत्यके पथ प्रदर्शक आप जिसका विचार करते हैं, उसीका हम मनन करते हैं।

५५६ ऋतावानः ऋतजाताः ऋतावृधः अनृतद्विषः घोरासः, वः सुच्छर्दिष्टमे सुम्ने सूरयः नरः स्याम— सत्यपालक, सत्यके लिये जन्मे, सत्यका संवर्धन करनेवाले, असत्यका द्वेष करनेवाले बडे घोर दीखनेवाले वीरोंके उत्तम घरमें रहनेसे प्राप्त होनेवाले सुखको हम सब ज्ञानी नेता प्राप्त करें।

५५९ तत् देवहितं शुक्रं चक्षुः उच्चरत्— वह देवों का हित करनेवाला बलवान् शुद्ध आंख जैसा तेज उदय हुआ है।

५५९ पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं— सौ वर्षतक देखें और जीवें।

५६० अदाभ्या द्युमत्— तुम न दब जानेवाले हो इस लिये तेजस्वी हो।

५६१ अद्रुहा ऋतावृधा— द्रोह न करनेवाले और सत्यके बढानेवाले हो।

(ऋ. ७।६७)

५६३ नृपती धिष्ण्या— राजा लोग बुद्धिमान होने चाहिये।

५६४ तमसः अन्ताः उपादृशन्— अज्ञानान्धकारका अन्त दिखाई दिया है।

५६५ वसुमता स्वर्विदा रथेन पूर्वीभिः पथ्याभिः आयातं— धन युक्त सुख देनेवाले रथसे पहिलेके ही मार्गोंसे आओ।

५६७ मे वसूयुं अमृध्रां प्राचीं धियं सातये कृतं— मेरी धन प्राप्तिकी इच्छा करनेवाली अहिंसक सरल बुद्धिको धन प्राप्त करनेके लिये सुयोग्य बनाओ।

५६७ वाजे विश्वाः पुरंधीः आविष्टं— युद्धके समय सब विशाल बुद्धिपूर्वक किये कर्मोंका संरक्षण करो।

५६७ शचीभिः नः शक्तं— शक्तियोंके योगसे हमें समर्थ बनाओ।

५६८ आसु धीषु नः अविष्टं— इन बुद्धियुक्त कर्मोंमें हमें सुरक्षित रखो।

५६८ नः प्रजावत् रेतः अह्रयं अस्तु— हमारा सुप्रजा उत्पन्न करनेवाला वीर्य क्षीण न हो।

५६८ तोके तनये तूतुजानाः— बालबच्चोंको त्वरासे समर्थ बनाओ।

५६८ सुरत्नासः देववीतिं आगमेम— उत्तम रत्न प्राप्त करके देवोंकी पवित्रता प्राप्त करेंगे।

५६९ मानुषीषु विक्षु अहेळता मनसा आयातं— मानवी प्रजाओंमें क्रोधरहित मनसे आजाओ।

(सुभा० सं० ७७२)

५७१ गव्या अश्व्याः मघानि पृञ्चन्तः— गौओं और घोडोंसे युक्त धन दे दो ।

५७१ बन्धुं सूनृताभिः प्रतिरन्ते— बन्धु बान्धवोंके साथ होनेवाले झगडे मीठे भाषणोंसे दूर होते हैं ।

५७१ रत्नानि धत्तं, सूरीन् जरतं— रत्नोंका धारण करो, ज्ञानियोंकी सराहना करो ।

(ऋ० ७।६८)

५७४ अरं गन्त— सीधे जाओ ।

५७४ अर्यः तिरः- शत्रुओंको दूर करो ।

५७५ मनोजवो रथः शतोतिः- इच्छाके अनुसार चलनेवाला रथ सैंकडों प्रकारोंसे संरक्षक होता है ।

५७५ रजांसि तिरः प्रयति- धूलीके प्रदेशोंको दूर रखो ।

५७६ वल्गुः विप्रः— सुन्दर रूपवाला ज्ञानी हो ।

५७७ चित्रं भोजनं अस्ति— विलक्षण भोजन है (जो बल बढाता है ।)

५७८ ऊती वर्पः अधि धत्थः— मृत्युसे बचानेवाला रूप तुमने उसे दे दिया ।

५८० यौ शचीभिः शक्ती स्तर्यं अघ्न्यां अपिन्वतं- तुम दोनोंने अपने सामर्थ्योंसे वंध्या गौओंको दुधारू बना दिया ।

५८१ एष सुमन्मा कारुः उषसां अग्रे बुधानः- यह बुद्धिमान शिल्पी उषःकालके पूर्व जागता है (और काम करने लगता है ।)

५८१ अघ्न्या पयोभिः इषा तं वर्धत्- गौ अपने दूध रूपी अन्नसे उस अशक्तको बढाती है ।

(ऋ० ७।६९)

५८२ वाजिनीवान् नृपतिः रोदसी बद्बधानः-- सेनाके साथ जानेवाला राजा सब विश्वको निनादित करता है ।

५८३ देवयन्तीः विशः गच्छथ- देव बननेकी इच्छा करनेवाली प्रजाके पास (उनकी सहायताके लिये) जा ।

५८५ देवयन्तं शचीभिः अवथः- देव बननेकी इच्छावालेका अपनी शक्तियोंसे संरक्षण करो ।

५८८ समुद्रे अवविद्धं भुज्युं युवं अश्विनौ अश्वैः अव्यथिभिः पतत्रिभिः दंसनाभिः पारयन्ता— समुद्रमें गिरे हुए भुज्युको तुमने सुदृढ, श्रम न देनेवाले तथा व्यथा न देनेवाले पक्षी जैसे उडनेवाले विमानोंसे और उत्तम योजनाओंसे पार कर दिया ।

(ऋ० ७।७०)

५९१ मनुषः दुरोणे घर्मः अतापि- मनुष्योंके घरोंमें अग्नि जलता है ।

५९३ यत् ऋषीणां योग्याः अश्ववेथ, ओषधीषु अप्सु चनिष्ठं- जो ऋषियोंके भोजनके लिये अन्न होता है वह औषधियोंमें और जलमें होता है ।

५९३ पुरूणि रत्नानि निदधतौ- तुम दोनों अनेक रत्नोंको धारण करते हो ।

५९४ अस्मे जनाय वां सुमतिः चनिष्ठा अस्तु- इस मनुष्यके लिये आपकी सुबुद्धि अन्न देनेवाली हो ।

५९५ कृतब्रह्मा समर्यः भवाति- ज्ञानका प्रचार करनेवाला मनुष्योंका संघटन करनेवाला होता है ।

(ऋ० ७।७१)

५९७ दिवा नक्तं शरुं अस्मत् युयोत- दिनमें तथा रात्रीमें हमारे शत्रुको हमसे दूर रखो ।

५९८ अनिरां अमीवां अस्मत् युयुतं- दरिद्रता और रोगोंको हमसे दूर करो ।

५९८ दिवा नक्तं त्रासीथां-दिन रात हमारा संरक्षण करो ।

५९९ ऋतयुग्भिः अश्वैः स्यूमगभस्तिं वसुमन्तं आवहेथां— सरलतासे जोते जानेवाले घोडोंसे तुम्हारे तेजस्वी धनसे भरे रथको यहां लाओ ।

६०१ जरसः च्यवानं अमुमुक्तं— बुढापेसे च्यवनको मुक्त किया ।

६०१ अश्वं आशुं पेदवे निरूहथुः- घोडेको शीघ्रगामी करके पेदुको दिया ।

६०१ अत्रिं तमसः पारं निष्पर्तं— अत्रिको अन्धकारसे पार किया ।

६०१ जाहुषं शिथिरे अन्तः निधातं— जाहुषको अन्तमें राज्यपर पुनः बिठलाया ।

(ऋ० ७।७२)

६०३ स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना- उत्तम शोभासे अपने शरीरोंको वीर सुशोभित करते हैं ।

६०३ पुरुश्चन्द्रेण रथेन आयातं— चमकीले रथसे आओ ।

६०४ पित्र्याणि सख्यानि, उत समानः बन्धुः, तस्य वित्तं— पितासे चली आयी मित्रताएं, और समानतासे उत्पन्न होनेवाला बन्धुभाव, इनको भूलना नहीं।

६०७ पाञ्चजन्येन राया आयातं— पांचों जनोंके हित करनेवाले धनके साथ यहां आओ।

(ऋ० ७।७३)

६०८ अस्य तमसः पारं अतारिष्म— इस अन्धकार के पार हम जांय।

६०९ विदथेषु प्रयस्वान्— युद्धोंमें प्रयत्नशील वीर हो।

६११ वीळुपाणी रक्षोहणा संभृता—शस्त्रधारी शत्रु-का नाश करनेवाले वीर इकट्ठे हों।

(ऋ० ७।७४)

६१३ अवसे विशं विशं गच्छथः– रक्षण करनेके लिये प्रत्येक प्रजाजनके पास जाओ।

६१४ युवं चित्रं भोजनं ददथुः– तुम उत्तम विलक्षण पौष्टिक अन्न देते हो।

६१४ सूनृतावते चोदेथां— सत्यमार्गसे जानेवालेको प्रेरित करो।

६१५ उपभूषतं– अपने आपको सुशोभित रखो।

६१५ नः मा मर्धिष्टं— हमें कष्ट न दो।

६१५ पयः दुग्धं– समयपर दूध दुहो।

६१७ छर्दिः ध्रुवं यशः यंसतः— उत्तम घर और स्थायी यश दो।

६१८ जनानां नृपातारः अवृकासः- लोगोंके रक्षक हिंसक न हों।

६१८ स्वेन शवसा शूशुवुः- अपने बलसे वे वीर बढते हैं।

(ऋ० ७।७५)

६१९ द्रुहः अजुष्टं तमः अपावः- दुष्टोंको तथा अप्रिय अंधकारको दूर करती है।

६१९ पथ्या अजीगः– मार्ग प्रकाशसे बताती है।

६२० महे सुविताय बोधि— बडी सुखमय अवस्था प्राप्त करनेका मार्ग जानो।

६२० महे सौभगाय प्रयन्धि– बडे सौभाग्य प्राप्त कर-नेके लिये यत्न करो

६२० चित्रं यशसं रयिं धेहि– विलक्षण यशस्वी धन धारण करो।

६२० मर्तेषु श्रवस्युं धेहि-मनुष्योंको यशस्वी पुत्र दो।

६२१ दैव्यानि व्रतानि जनयन्तः— दिव्य नियमोंको प्रकट करो।

६२२ पञ्च क्षितीः युजाना— पांचों मनुष्य कार्यमें जुडे हैं।

५२२ पञ्च क्षितीः परिजिगाति– पांचों मानवोंके पास जाकर उनको प्रेरित करती है।

५२२ जनानां वयुना अभिपश्यन्ती— मनुष्योंके कार्योंको देखती है।

५२२ दिवः दुहिता भुवनस्य पत्नी– द्युलोककी पुत्री भुवनोंका पालन करनेवाली है।

५२३ वाजिनीवती चित्रामघा वसूनां रायः ईशे– अन्नवाली और धनवाली यह स्त्री धनोंकी स्वामिनी है।

५२३ ऋषिस्तुता मघोनी उच्छन्ती– ऋषियों द्वारा प्रशंसित धनवाली स्त्री प्रकाशित होती है।

६२४ शुभ्रा विश्वपिशा रथेन याति– शुभ्रवस्त्र पहन-नेवाली यह गौर वर्णकी स्त्री सब प्रकारसे सुंदर रथसे जाती है।

६२४ विधते जनाय रत्नं दधाति-उत्तम कर्म करनेवाले मनुष्यको रत्न देती है।

६२५ देवी देवेभिः दळ्हा रुजत्– देवी देववीरोंके साथ शत्रुके सुदृढ कीलोंको तोड देती है।

६२५ सत्या सत्येभिः दळ्हा रुजत्— सत्यपालन करनेवाली सत्यपालक वीरोंके साथ रहकर शत्रुके सुदृढ कीलोंको तोड देती है।

६२५ देवी उस्त्रियाणां ददत्— देवी गौओंको देती है।

६२६ गोमत् अश्ववत् वीरवत् पुरुभोजः रत्नं धेहि— गौवों घोडों वीर पुत्रोंके साथ तथा बहुत अन्नके साथ रत्नोंको दे दो।

६२६ पुरुपता नः बर्हिः निदे मा कः— पुरुषोंमें हमारे कर्मोंकी निन्दा न हो।

(ऋ० ७।७६)

६२७ देवानां चक्षुः क्रत्वा अजनिष्ट— देवोंका आंख सूर्य-उत्तम कर्मके साथ प्रकट हुआ है।

६२७ उषा विश्वं भुवनं आविः अकः— उषा सब भुवनोंको प्रकाशित करती है।

६२८ देवयानाः पन्थाः असर्धन्त— दिव्य मार्ग हिंसा रहित होते हैं।

६२८ प्रतीची हर्म्येभ्यः अध्यागात्— पश्चिम दिशाके प्रासादोंपर उषाने अपना तेज डाला है।

६२९ सूर्यस्य प्राचीना उदिता बहुलानि दिनानि आसन्- सूर्यके पूर्व उगे हुए बहुत दिन थे।

६२९ उषा जार इव पर्याचरन्ती, न यती इव— उषा जारकी सेवा करनेके समान सेवा करती है, यतीके समान नहीं रहती।

६३१ समान ऊर्वे आधिसंगतासः— एक महत्कार्यमें आये लोग संगठित होते हैं।

६३१ ते संजानते, ते मिथः न यतन्ते— वे परस्पर एक विचारसे रहते हैं, आपसमें संघर्ष बढने नहीं देते।

६३१ ते देवानां व्रतानि न मिनन्ति- वे दिव्य अनुशासन नहीं तोडते।

६३३ दीर्घश्रुतं रयिं अस्मे दधाना— अत्यंत यशस्वी धन हमें दो।

(ऋ० ७।७७)

६३४ युवतिः योषा न उषो रुरुचे-तरुणी स्त्री वस्त्रालंकारोंसे सुशोभित होकर तरुण पतिके साथ चमकती है।

६३४ विश्वं जीवं चरायै प्रसुवती— सब जीवोंको विचरनेके लिये प्रेरित करती है।

६३४ मानुषाणां अग्निः समिन्धे अभूत्— मानवोंके घरोंमें अग्नि प्रदीप्त होने लगा है।

६३४ तमांसि बाधमाना ज्योतिः अकः— अन्धकारोंको बाधा पहुंचानेवाली ज्योति प्रकट हो रही है।

६३५ विश्वं प्रतीची सप्रथाः उदस्थात्— सबके सामने यह सुप्रसिद्ध उषा उठी है। उदित हुई है।

६३५ रुशत् शुक्रं वासः बिभ्रती अश्वैत्— चमकीला शुभ्र वस्त्र पहन कर आगे बढ रही है।

६३५ हिरण्यवर्णा सुदृशीकसंदृक्— यह सुवर्णके वर्णवाली सुंदर दर्शनीय है।

६३६ सुभगा देवानां चक्षुः वहन्ती— यह भाग्यवाली देवोंके नेत्ररूपी सूर्यको लेकर आती है।

६३६ चित्रा मघा विश्वं अनु प्रभूता— अनेक प्रकारके श्रेष्ठ धनोंसे युक्त यह उषा सब विश्वके सामने प्रकट हो रही है।

६३७ अमित्रं दूरं उच्छ- शत्रुको दूर कर।

६३७ ऊर्वीं गव्यूतिं नः अभयं कृधि— विस्तृत भूप्रदेशपर हमारे लिये अभय कर।

६३७ द्वेषः यावय, वसूनि आभर— शत्रुओंको दूर कर, धन भरपूर भर दे।

६३८ न आयुः प्रतिरन्ती—हमारी आयुको बढाती है।

६३८ गोमत् अश्वावत् रथवत् इषं राधः नः दधती— गौओं, घोडों, रथोंके साथ अन्न और धन देती है।

६३८ गृणते राधः चोदय—भक्तके लिये धन देती है।

६३९ अस्मासु बृहन्तं ऋष्वं रयिं धाः- हमें बडा तेजस्वी धन दे।

(ऋ० ७।७८)

६४० अर्वाचा बृहता ज्योतिष्मता रथेन अस्मभ्यं वामं वक्षि- हमारे पास आनेवाले बडे तेजस्वी रथसे आकर हमें श्रेष्ठ धन दे।

६४१ उषा विश्वा तमांसि दुरिता ज्योतिषा अपबाधमाना याति- उषा सब अन्धकारों और पापोंको तेजसे दूर करती हुई आती है।

६४२ अजुष्टं तमः अपाचीन आगत्—अप्रिय अन्धकारको दूर कर रही है।

६४४ विभाती तिलिविलायध्वं- स्वयं तेजस्वी बनो और विश्वको स्नेहमय प्रकाश भरपूर दो।

(ऋ० ७।७९)

६४५ जनानां पथ्या उषाः व्यावः— लोगोंको मार्ग बतानेवाली उषा प्रकट हुई है।

६४५ मानुषीः पञ्च क्षितीः बोधयन्ती— मानवोंके ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-निषाद-इन पांचों प्रजाजनोंको जगाती है।

६४६ उषसः अक्तून् दिवः अन्तेषु व्यञ्जते— उषाएं अपने प्रकाशको आकाशके अन्तोंतक फैलाती हैं।

६४६ युक्ताः विशः न उषासः यतन्ते— संघटित प्रजाजनोंकी तरह उषायें अन्धकार दूर करनेका यत्न करती है।

६४६ ते गावः तमः समावर्तयन्ति- उषाकी किरणें अन्धकारको समेटती है।

६४६ सूर्यः इव बाहु, ज्योतिः यच्छन्ति— जैसा सूर्य अपने किरणोंको वैसे ही उषा प्रकाशको फैलाती है।

६४७ इन्द्रतमा मघोनी उषा अभूत्- उत्तमोत्तम इन्द्रके समान स्वामिनी धनवाली उषा प्रकट हुई है।

६४७ सुविताय श्रवांसि अजीजनत्— लोगोंके कल्याणके लिये अन्नोंको यह उत्पन्न करती है।

६४७ सुकृते वसूनि विदधाति— उत्तम कर्म करनेवालेके लिये धन देती है।

६४८ दृळ्हस्य अद्रेः दुरः व्यौर्णोत्— सुदृढ कीलोंके द्वार खोल दिये हैं (और गौवें बाहर आरही हैं।)

६४९ देवं देवं राधसे चोदयन्ती- प्रत्येक कर्म कर्ताको ऐश्वर्य प्राप्तिके लिये प्रेरणा देती है।

६४९ अस्मद्र्यक् सूनृताः ईरयन्ती- सत्य भाषण करनेवालोंको हमारे पास प्रेरित करती हैं।

६४९ व्युच्छन्ती नः सनये धियः धाः- अन्धकारको दूर करती हुई धन प्राप्त करनेवाली उत्तम बुद्धिका धारण करती है।

(ऋ० ७।८०)

६५० एषा नव्यं आयुः दधाना उषा ज्योतिषा गूढ्वी तमः अबोधि— यह उषा तरुण आयुवाली अपने तेजसे अन्धकार दूर करती हुई जाग उठी है।

६५० अह्रयमाणा युवतिः अग्रे एति— लज्जा न करनेवाली यह तरुणी स्त्रीके समान आगे आती है।

६५१ गोमतीः अश्वावतीः वीरवतीः भद्रा उषसः नः सदं उच्छन्तु— गौओं घोडों और वीर पुत्रोंके साथ कल्याण करनेवाली उषाएं हमारे घरोंको प्रकाशित करें।

६५१ घृतं दुहानाः विश्वतः प्रपीताः— घीका दोहन करने वाली सब ओरसे परिपुष्ट हुई उषाएं प्रकाश फैल रही हैं।

(ऋ० ७।८१)

६५३ महितमः अपव्ययति, सूनरी चक्षसे ज्योतिः कृणोति— बडे अन्धकारको उषा दूर करती, और उत्तम नेतृत्व करनेवाली यह उषा लोगोंको प्रकाश दिखानेके लिये प्रकाश करती है।

६५४ उद्यत् नक्षत्रं अर्चिमत्— उदय होनेवाला नक्षत्र तेजस्वी होता है।

६५४ भकेन संगमेमहि— अन्नको हम प्राप्त करेंगे।

६५५ पुरु स्पार्हं वहसि, दाशुषे मयः रत्नं— स्पृहणीय बहुत धन तू धारण करती है और दाताको सुख और रत्न देती है।

६५७ दीर्घश्रुत्तमं चित्रं राधः आभर— अत्यंत यशस्वी विलक्षण धन हमें भरपूर दे डालो।

६५७ मर्तं भोजनं रास्व—मनुष्योंके योग्य भोजन दो।

६५८ सूरिभ्यः अमृतं वसुत्वनं श्रवः, गोमतः वाजान्,- ज्ञानियोंके लिये अमर धन, यश और गौओंसे प्राप्त होनेवाले दूध रूपी अन्न दो।

(ऋ० ७।८२)

६५९ विशे जनाय महि शर्म यच्छतं— प्रजाजनोंको बडा सुख दे दो।

६५९ यः पृतनासु दूढ्यः दीर्घप्रयुज्यं अति वनुष्यति तं जयेम— जो युद्धोंमें पराजित नहीं होता ऐसा दुष्ट शत्रु सज्जनको बडे कष्ट पहुंचाता है, उसपर हम विजय प्राप्त करेंगे।

६६० विश्वे देवासः ओजः बलं संदधुः- सब देव ओज और धन धारण करते हैं।

६६१ धियः पिन्वतं- बुद्धियोंको बढाओ।

६६२ मितज्ञवः क्षेमस्य प्रसवे युवां हवन्ते— घुटने टेक कर आसन लगा कर बैठनेवाले क्षेमसुखकी प्राप्तिके लिये तुम्हें बुलाते हैं।

६६२ कारवः उभयस्य वस्वः ईशानाः- शिल्पी दोनों प्रकारके धनोंके स्वामी है।

६६६ भुवनस्य विश्वा जातानि मज्मना चक्रथुः- भुवनके सब पदार्थ तुम अपनी शक्तिसे निर्माण करते हैं।

(सुभा० सं० ८९९)

६६४ अन्यः श्नथयन्त अजामिं आतिरत्— एक अधिकारी बन्धुभाव न रखनेवाले हिंसक दुष्टको दूर करे ।

६६४ अन्यः दभ्रेभिः भूयसः प्रवृणोति- दूसरा अधिकारी थोडेसे सैन्यसे बहुत शत्रुओंको घेरता है ।

६६४ त्विषे ओजः मिमाते- तेज बढानेके लिये शक्ति बढाते हैं ।

६६५ तं मर्तं न अंहः, न दुरितानि, न तपः, नशते यस्य अध्वरं गच्छथः- उस मनुष्यको पाप, दुष्कृत्य, संताप कष्ट नहीं देते, जिसके यज्ञमें आप जाते है ।

६६६ दैव्येन अवसा अर्वाक् आगतं- दिव्य रक्षणसे पास आओ ।

६६६ युवयोः सख्यं आप्यं मार्डीकं नियच्छतं- तुम्हारी मित्रता, बन्धुता, सुख दायिता हमें प्राप्त हो ।

६६७ भरे भरे पुरोयोधा भवत- प्रत्येक युद्धमें आगे होकर युद्ध करनेवाले बनो ।

६६८ अस्मे महि द्युम्नं सप्रथः शर्म यच्छन्तु- हमें महान् तेजस्वी विस्तृत सुख प्राप्त हो ।

(ऋ० ७।८३)

६६९ दासा वृत्रा आर्याणि च हतं- विनाशक, घेरनेवाले शत्रु और क्षुद्र विचारके शत्रुसे मिले आर्य जो होंगे वे सब शत्रु हैं, उनको मारो ।

६७० कृतध्वजः नरः समयन्ते- ध्वज ऊपर उठाकर वीर लडते हैं ।

६७० आजौ किंचन प्रियं न भवति- युद्धसे कुछ भी प्रिय नहीं होता ।

६७० यत्र स्वर्दृशः भुवना भयन्ते- युद्धसे ज्ञानी लोग भयभीत होते हैं ।

६७१ भूम्याः अन्ताः ध्वसिताः समदृक्षत- भूमीके ऊपरके प्रदेश उध्वस्त हो जाते हैं ।

६७१ दिवि घोषः आरुहत्- आकाशमें बडा कोलाहल सुनाई देता है ।

६७१ जनानां अरातयः उपतस्थुः- जनताके शत्रु सामने सामने खडे होते हैं ।

६७१ अवसा अर्वाक् अगातं- संरक्षक साधनोंसे समीप आजाओ ।

६७२ अघ्नति भेदं वधनाभिः [illegible]— [illegible] बढनेकी अवस्थामें आपसका भेद वध आदि साधनोंसे नाश करो ।

६७२ सुदासं प्रावतं— उत्तम दानी सज्जनकी सुरक्षा रखो ।

६७३ अघ्यः अघानि मा अभ्यातपन्ति— शत्रुके पाप मुझे ताप दे रहें है ।

६७३ उभयस्य वस्वः पूर्वं राजथ— दोनों धनोंके तुम स्वामी हो ।

६७४ उभयस्य वस्वः सातये आजिषु हवन्ते- दोनों प्रकारके धनोंके दानके लिये होनेवाले युद्धोंमें तुम वीरोंको बुलाते है ।

६७५ अन्नसदां, नृणां उपस्तुतिः सत्या- अन्न [illegible] करनेवालोंकी आकांक्षाएं सफल हुई ।

६७७ अन्यः समिथेषु वृत्राणि जिघ्नते- एक वीर युद्धोंके समय शत्रुओंका नाश करता है ।

६७७ अन्यः सदा व्रतानि अभिरक्षते- दूसरा वीर सत्कर्मोंकी सुरक्षा करता है ।

६७७ अस्मे शर्म यच्छतं- हमें सुख दो ।

(ऋ० ७।८४)

६७९ इन्द्रा वरुणौ राजानौ- इन्द्र और वरुण राजे हैं ।

६८० युवोः बृहत् राष्ट्रं द्यौः इन्वति- आपका बडा राष्ट्र यह द्युलोक सबको प्रसन्न करता है ।

६८० अरज्जुभिः सेतृभिः सिनीथः- रज्जु रहित बंधनोंसे पापियोंको बांध देते हैं ।

६८० वरुणस्य हेळः नः परिवृज्याः- वरुण देवका क्रोध हमपर न हो ।

६८० इन्द्रः नः उरुं लोकं कृणवत्- इन्द्र हमारे लिये विस्तृत कार्यक्षेत्र बना देवे ।

६८१ विदथेषु नः यज्ञं चारुं कृतं— युद्धोंमें भी हमारा यज्ञ उत्तम करो ।

६८१ सूरिषु प्रशस्ता ब्रह्माणि कृतं- विद्वानोंमें प्रशंसा योग्य ज्ञान हो ।

६८१ देवजूतः रयिः नः उपो एतु— देवोंद्वारा मिलनेवाला धन हमारे पास शीघ्र आजाय ।

६८१ स्पार्हाभिः ऊतिभिः नः प्रतिरेतं— स्पृहणीय संरक्षणके साधनोंसे हमें सुरक्षित करो ।

६८२ अस्मे विश्ववारं वसुमन्तं पुरुक्षुं रयिं धत्तं- हमें सबके सेवनके योग्य ऐश्वर्य युक्त बहुत अन्नके साथ रहनेवाला धन दो ।

६८२ यः अनृता प्रमिनाति— जो वीर असत्योंको रोकता है ।

६८२ शूरः अमिता वसूनि दयते- शूर वीर अपरिमित धन देता है ।

६८३ सुरत्नासः देववीतिं गमेय- उत्तम रत्नोंको धारण करके यज्ञमें जायेंगे ।

(ऋ० ७.८५)

६८४ अरक्षसं मनीषां पुनीषे- राक्षस भावरहित बुद्धिको तुम अधिक पवित्र करता है ।

६८४ अभीके यामन् नः उरुष्यतां- युद्धमें शत्रुपर आक्रमण करनेके समय हमारे वीरोंका संरक्षण हो ।

६८५ येषु दिद्यवः ध्वजेषु पतन्ति- युद्धोंमें तेजस्वी शस्त्र ध्वजोंपर गिरते है ।

६८५ युवं अमित्रान् हतं— तुम शत्रुओंको मारो ।

६८५ शर्वा विषूचः पराचः- घातक शस्त्रोंसे सब शत्रु भ्रांत होकर भागने लगे ।

६८६ अन्यः प्रविभक्ताः कृष्टीः धारयाति— एक अधिकारी प्रत्येक प्रजाजनका पृथक् धारण करता है ।

६८६ अन्यः अप्रतीनि वृत्राणि हन्ति- दूसरा शत्रु-ओंका नाश करता है ।

६८७ सुक्रतुः होता ऋतचित् अस्तु- उत्तम कर्म करनेवाला होता यज्ञ विधिको जाननेवाला हो ।

६८७ सः प्रयस्वान् सुविताय असत्— वह अन्नवान् होकर उत्तम फल प्राप्त करनेके लिये योग्य होता है ।

(ऋ० ७।८६)

६९० उत स्वया तन्वा संवेद ? क्या मैं अपने शरीरसे उस प्रभुके साथ बोलूं ?

६९० कदा वरुणे अन्तः भुवानि— कब वरुणमें मैं हो जाऊं ।

६९० कदा सुमनाः मृळीकं अभिख्यं— कब मैं उत्तम विचार वाला होकर प्रभुके साथ बोलूं ।

६९१ विपृच्छं चिकितुषः उपो एमि- मै पूछनेकी इच्छासे विद्वानोंके पास गया हूं ।

६९३ नः पित्र्या द्रुग्धानि अवसृज— हमारे पिताके पापोंको दूर कर ।

६९३ वयं तनूभिः या चकृम अवसृज— हमने अपने शरीरोंसे जो पाप किये हों, उनको दूर कर ।

६९३ पशुतृपं तायुं— पशुकी चोरी करता है, पश्चात् वह चोर उस पशुको घास पानी देकर तृप्त करता है । (यह पापमें पुण्य है ।)

६९४ कनीयसः ज्यायान् उपारे आस्ति— छोटेके समीप बडा रहकर उसको पापमें प्रवृत्त करता है ।

६९४ स्वप्नः अनृतस्य प्रयोता- सुस्ती असत्यका प्रवर्तन करती है ।

६९५ मीळ्हुषे भूर्णये देवाय अनागाः अहं अरं कराणि— इच्छा पूर्ण करने, तथा भरण-पोषण करनेवाले ईश्वरकी सेवा निष्पाप बनकर मैं करूंगा ।

६९५ अर्यः देवः अचितः अचेतयत्— श्रेष्ठ ईश्वर अज्ञानियोंको ज्ञान देता है ।

६९५ कवितारः देवः गृत्सं राये जुनाति— श्रेष्ठ कवि विबुध उपासकको धन देता है ।

६९६ नः योगे क्षेमे शं अस्तु— हमारे योग क्षेममें कल्याण हो ।

६९६ हृदि उपाश्रितः शं अस्तु— हमारे हृदयमें प्रसन्नता रहे ।

(ऋ० ७।८७)

६९८ ते विश्वा धाम प्रियाणि- तुम्हारे सब धाम हमारे लिये प्रिय हैं ।

६९९ वरुणस्य स्पशः स्मदिष्टाः सुमेके उभे रोदसी परिपश्यन्ति- वरुणके दूत चलते हुए द्यावा पृथिवीमें सबको देखते हैं ।

६९९ ये ऋतावनः कवयः यज्ञधीराः प्रचेतसः मन्म इषयन्त- ये सत्य पालक, ज्ञानी, यज्ञबुद्धि धारण करनेवाले विद्वान् मननीय स्तोत्रको प्रेरित करते हैं ।

(सुभा० सं० ९६३)

७०० विद्वान् विप्रः उपराय युगाय शिक्षन् पदस्य गुह्या वोचत्- विद्वान् विशेष बुद्धिवान् समीप आनेवाले शिष्यको सिखानेकी इच्छासे पदके गुह्य अर्थको समझाता है ।

७०१ गृत्सः राजा वरुणः दिवि शुभं चक्रे- ज्ञानी राजा वरुणने द्युलोकमें कल्याणका साधन निर्माण किया है ।

७०२ सुपारदक्षः गंभीर शंसः अस्य सतः राजा- उत्तम रीतिसे दक्षतासे दुःखके पार होनेवाला, गंभीर कीर्तिसे युक्त ऐसा यह इस विश्वका राजा है ।

६०३ आगः चक्रुषे मिळयाति, वरुणे वयं अनागा स्याम- पाप करनेवालेको भी सुख देता है, उस वरुणके सामने हम निष्पाप होकर रहेंगे ।

(ऋ० ७।८८)

७०४ मीळ्हुषे वरुणाय शुन्ध्युवं प्रेष्ठां मतिं प्रभरस्व- सुख देनेवाले वरुणके लिये शुद्ध और प्रिय स्तोत्र भरपूर गाओ ।

७०६ नाव आरुहाव, समुद्रं मध्ये प्रेरयावः, यत् अपां स्नुभिः अधिचराव, शुभे कं प्रेखं प्रेखयावहे- नौकापर हम दोनों (वरुण और भक्त) चढें, समुद्रके मध्यमें नौकाको चलायें, जब हम समुद्रके मध्यमें विचरने लगें, तब कल्याणके साधनके लिये झुलेपर चढनेके समान होता रहेगा ।

७०८ पुरा चित् अवृकं सचामहे- प्राचीन कालसे चलता आया अकुटिल सख्य हो ऐसा हम चाहते हैं ।

७०८ ते बृहन्तं मानं सहस्रद्वारं गृहं जगाम- तेरे बडे प्रमाणवाले हजारों द्वारोंवाले सभा गृहको मै प्राप्त होऊं।

७०९ ते नित्यः आपिः, ते प्रिय सखा,- तेरा नित्य मित्र और तेरा प्रिय सखा होकर मैं रहूंगा ।

७१० ध्रुवासु आसु क्षितिषु क्षियन्तः— इस जनतामें हम सदा रहें ।

७१० वरुण अस्मत् पाशं विमुमोचत्- वरुण हमसे पाशको दूर करे ।

(ऋ० ७।८९)

७११ अहं मृण्मयं गृहं मो गमं— मुझे मिट्टीके घरमें रहना न पडे ।

७११ हे सुक्षत्र ! मृळय— हे उत्तम क्षत्रिय । हमें सुखी कर ।

७१२ प्रस्फुरन् एमि— स्फुरण प्राप्त करके मैं चलूंगा ।

७१३ समह शुचे ! क्रत्वः दीनता प्रतीपं जगम मृळय— हे धनवान पवित्र देव ! कर्म शक्तिकी न्यूनताके कारण मैं दुःखको प्राप्त हुआ हूं, इसलिये मुझे सुखी कर ।

७१५ दैव्ये जने यत् मनुष्या अभिद्रोहं चरामसि अचित्ती तव यत् धर्मा युयोपिम, तस्मात् एनसः नः मा रीरिषः— दिव्य मनुष्यके संबंधमें जो द्रोह हम मनुष्योंने किया हो, न समझते हुए जो कर्तव्यका लोप हमसे हुआ हो, उस पापसे हमारा नाश न कर ।

(ऋ० ७।९०)

७१७ मर्तेषु प्रशस्तं कृणोषि— मानवोंमें प्रशंसा होने-योग्य श्रेष्ठताके प्रति तुम पहुंचाते हैं ।

७१९ अरिप्राः सुदिनाः उषसः उच्छन्- निष्पाप उत्तम दिनोंकी उषायें हमारे लिये प्रकाशित होती रहें।

७२० वां ईशानयोः वीरवाहं रथं पृक्षः अभि सचन्ते- आप स्वामियोंके वीर बैठनेवाले रथको अन्न यज्ञके स्थानके पास पहुंचाते हैं ।

७२१ ईशानासः गोभिः अश्वैः वसुभिः हिरण्यैः स्वः नः दधते- आप स्वामी गौवें घोडे धन सुवर्णसेयुक्त धन हमें देते हैं ।

७२१ सूरयः विश्वं आयुः अर्वद्भिः वीरैः पृतनासु सह्युः— ज्ञानी लोग पूर्ण आयुतक अश्वारोही वीरोंके साथ युद्धोमें शत्रुका पराभव करते रहेंगे ।

(ऋ० ७।९१)

७२३ बाधिताय मनवे अनवद्यासः आसन्- दुःखी मनुष्यके हितके लिये यत्न करनेवाले प्रशंसित होते हैं ।

७२५ पीवः अन्नान् रयिवृधः सुमेधाः नियुतां अभि श्रीः श्वेतः सिषक्ति- पुष्टि कारक अन्नों और धनों-वाले वीरोंकी सेवा बुद्धिमान तेजस्वी घोडोंमेंसे श्वेत वर्णका घोडा करता है ।

(ऋ० ७।९२)

७३१ नः सभोजसं रयिं गव्यं अश्व्यं वीरं च राधः नियुवस्व- हमारे लिये उत्तम भोजनके साथ धन, गौवें, घोडे, वीर पुत्र और वैभव दे दो ।

७३३ अर्थः नितोशनासः सूरिभि वृत्राणि घ्नन्तः स्याम— शत्रुओंका नाश करनेवाले, तथा ज्ञानियोंके साथ दुष्टोंका नाश करनेवाले हम हों । (सुभा० सं० ९८८)

७३३ नृभिः युधा अमित्रान् घ्नतः— वीरोंके साथ रहकर युद्धोंमें शत्रुओंको मारेंगे।

(ऋ० ७।९३)

७३६ उशते वाजं धत्ताः— उन्नतिकी इच्छा करनेवालेके लिये अन्न बल और सामर्थ्य दे दो।

७३६ साकं वृधा शूशुवांसः— साथ साथ रहकर बढनेवाले प्रभावी वीर बनो।

७३६ भूरेः रायः यवसस्य क्षयन्तौ— बहुत धन और धान्य अपने पास रखनेवाले बनो।

७३६ स्थविरस्य घृष्वेः वाजस्य पृक्तं— बहुत शत्रु नाशक बल हमें चाहिये।

७३७ वाजिनः विप्राः प्रमतिं इच्छमानाः विदथं उपोगुः— बलवान् ज्ञानी वीर अपनी बुद्धिका विकास करनेकी इच्छासे स्पर्धा क्षेत्रोंमें जाते हैं।

७३७ नरः काष्ठां नक्षमाणाः— नेता लोग उन्नतिकी पराकाष्ठाको पहुंचना चाहते हैं।

७३८ प्रमतिं इच्छमानः विप्रः पूर्वभाजं यशसं रयिं ईट्टे— बुद्धिके प्रकर्षकी इच्छा करनेवाला ज्ञानी प्रथम उपभोग लेने योग्य धनकी इच्छा करता है।

७३८ नव्येभि देष्णैः नः प्रातिरतं— नवीन देने योग्य धन देकर हमें दुःखसे पार करो।

७३९ मही मिथती शूरसाता तनूरुचा संयतैते— बडी लडनेवाली शत्रुकी शूर सेनासे होनेवाले युद्धमें तेजस्वी वीर ही विजयके लिये प्रयत्न करते हैं।

७३९ देवयुभिः जनेन सत्रा अदेवयुं विदथे हतं— देवभक्तोंके साथ रहनेवाले वीरोंके द्वारा युद्धमें देवनिंदक शत्रुका वध किया गया है।

(ऋ० ७।९४)

७४४ ईशानाः धियः पिप्यतं— तुम राजा हो इसलिये अपनी बुद्धियोंको बढाओ।

७४५ पापत्वाय अभिशस्तये निदे मा रीरधतं— पाप निंदा हीनत्व आदिके कारण हमारा नाश न हो।

७४६ धिया धेनाः ऐरयामः— बुद्धिसे वाणीको हम प्रेरित करते हैं।

७४७ सबाधः विप्राः वाजसातये ईळते— एक दुःखमें रहनेवाले ज्ञानी संगठित होकर बल बढानेके लिये वीर काव्यका गान करते हैं।

७४८ विपन्यवः प्रयस्वन्तः सनिष्यवः मेधसाता वां गोभिः हवामहे— ज्ञानी प्रयत्नशील धनकी इच्छा करनेवाले बुद्धिके संवर्धनके लिये आपकी प्रार्थना करते हैं।

७४९ दुःशंसः नः मा ईशत— दुष्ट हमारे ऊपर प्रभुत्व न करे।

७४९ चर्षणीसहा अस्मभ्यं अवसा आगतं— शत्रुका पराभव करनेवाले वीर हमारे पास संरक्षक शक्तिके साथ आजांय।

७५० कस्य अरुषस्य मर्त्यस्य धूर्तिः नः मा प्रणक्— किसी शत्रुकी हिंसा करनेकी शक्ति हमारा नाश न करे।

७५१ गोमत् अश्ववत् हिरण्यवत् वसु वनेमहि— गौवें घोडे, सुवर्णसे युक्त धन हमें मिले।

७५४ दुःशंसं दुर्विद्वांसं आभोगं रक्षस्विनं हन्मना हतं— दुष्ट तथा दुष्ट बुद्धिवाले अपहरण करनेवाले आसुरी स्वभाववाले शत्रुका शस्त्रसे वध कर।

(ऋ० ७।९५)

७५५ एषा सरस्वती आयसी पूः धरूणं— यह विद्या देवी लोहेके कीलेके समान सबका रक्षण करनेवाली है।

७५६ एका सरस्वती अचेतत्— यह एक ही विद्यादेवी चेतना उत्पन्न करती है।

७५६ भुवनस्य भूरेः रायः चेतन्ती— विश्वके अनेक प्रकारके धनोंको यह विद्यादेवी बताती है।

७५७ नर्यः वृषा यज्ञियासु योषणासु वावृधे— मानवोंका हित करनेवाला बलवान तरुणवीर पूजनीय स्त्रियोंमें उत्पन्न होकर बढता है।

७५८ सुभगा सरस्वती— उत्तम भाग्यवाली यह विद्या देवी है।

७५८ युजा राया सखिभ्यः उत्तरा सरस्वती— योग्य धन धान्य होनेसे परस्पर प्रेम भावसे रहनेवालोंके लिये उच्चतर अवस्था देनेवाली यह विद्या देवी है।

७६० ऋतस्य द्वारौ व्यावः— सत्यके द्वार खोल दिये गये हैं—

७६० वाजान् रासि— अन्नों और बलोंको देती है।

(सुभा० स० १०१७)

(ऋ० ७।९६)

७६१ पूरवः उभे अन्धसी अधिक्षियन्ति– नागरिक लोग दोनों प्रकारके अन्नोंको प्राप्त करते हैं।

७६१ सरस्वती अवित्री— विद्या देवी संरक्षण करती है।

७६२ मघोनां राधः चोद्– धनवानोंके धनको सत्कर्ममें प्रेरित कर।

७६३ भद्रा सरस्वती भद्रं इत् कृणवत्– कल्याण करनेवाली सरस्वती अधिक कल्याण करती है।

७६३ अकवारी वाजिनीवती चेतति– सीधा मार्ग बतानेवाली अन्न देनेवाली विद्या देवी स्फुरण देती है।

७६४ जनीयन्तः पुत्रीयन्तः सुदानवः अग्रवः सरस्वन्तं हवामहे– पत्नीवाले पुत्रकी इच्छा करते हैं, ये उत्तम दान देते हुए अग्रेसर होकर सरस्वान् (सरस्वतीके पति-विद्याके स्वामी) की सहायता चाहते हैं।

७६५ अविता भव– संरक्षण करनेवाला हो।

(ऋ० ७।९७)

७६८ दैव्या अवांसि आवृणीमहे– हम दिव्य संरक्षणके साधनोंको प्राप्त करेंगे।

७६८ यः परावतः पिता इव नः दाता– जो दूर रहनेवाले पिताके समान हमारे कल्याणके लिये देनेवाला है।

७६८ निऋद्धये अनागाः भवेम– सुख देनेवाले उस प्रभुके सामने हम निष्पाप होकर रहेंगे।

७६९ यः देवकृतः ब्रह्मणः राजा– जो देवके द्वारा बनाये ज्ञानका राजा है।

७७० नः सुवीर्यस्य रायः काम– हमें बडे पराक्रम करनेकी शक्तिरूपी धन प्राप्त हो यही हमारी इच्छा है।

७७० नः सश्चतः अरिष्टान् अतिपर्षत्– हमारे ऊपर आये दुःखोंको हम दूर करेंगे।

७७० श्रेष्ठः बृहस्पतिः नः योनिं आसदतु— श्रेष्ठ बृहस्पति हमारे यज्ञ गृहमें आकर बैठे।

७७१ अमृताय जुष्टं अर्कं अमृतासः आधासुः— मृत्युको दूर करनेवाले सेवनीय अन्नको अमरदेव हमें देते हैं।

७७१ अनर्वाणं बृहस्पतिं हुवेम— पीछे न हटनेवाले बृहस्पतिका हम वर्णन करते हैं।

७७२ शग्मास अरुपासः सहवाहाः अश्वाः बृहस्पतिं वहन्ति, यस्य सहः चित्– सुखदायी तेजस्वी साथ रहक वाहन ढोनेवाले घोडे बृहस्पतिको वहन करते हैं, इसका शत्रुनाशक बल बडा है।

७७३ शुचिः शतपत्रः शुन्ध्युः हिरण्यवाशीः इषिरः स्वर्षाः स्वावेशः ऋण्वः बृहस्पतिः सखिभ्यः पुरु आसुतिं करिष्ठः— पवित्र सैंकडों वाहनोंवाला, शुद्ध सुवर्ण जैसे तेजस्वी आयुधोंवाला, प्रगतिशील, निजतेजसे प्रकाशित सुन्दर अपने मित्रोंके लिये पर्याप्त पेय करता है।

७७५ धियः अविष्टं— अपनी बुद्धियोंका संरक्षण करो।

७७५ पुरंधीः जिगृतं— विशाल बुद्धकी प्रशंसा करो।

७७५ वनुषां अर्यः अरातीः जजस्तं— भक्तोंके शत्रुओंकी सेनाका नाश करो।

७७६ दिव्यस्य पार्थिवस्य वस्वः ईशाथे– तुम दिव्य और पार्थिव धनके स्वामी हो।

७७६ कीरये धनं धत्तं— ज्ञानी कविके लिये धन दो।

(ऋ० ७।९८)

७८० महतः मन्यमानान् योधयाः, शाशदानान् बाहुभिः साक्षाम– बडे घमंडी शत्रुओंका युद्ध तुम्हारे साथ हुआ, उन हिंसक शत्रुओंका पराभव हम अपने बाहुबलसे करेंगे।

७८० नृभिः युतः अभियुध्वाः तं सौश्रवसं आजि जयेम— अपने वीरोंके साथ रहकर जिस समय तुम शत्रुसे युद्ध करोगे, उस यश बढानेवाले युद्धमें हम विजय पायेगें।

७८१ अदेवीः मायाः असहिष्ट– आसुरी कपटोंका तुमने पराभव किया है।

७८१ गवां एकः गोपतिः असि— गौओंका एक ही स्वामी तुम हो।

७८२ ते प्रयतस्य वस्वः ईशीमहि— तुम्हारे दिये धनका हम भोग करेंगे।

(ऋ० ७।९९)

७८४ ते महित्वं न अश्नुवन्ति— तेरी महिमाको कोई नहीं जान सकता।

७८४ त्वं परमस्य वित्से— तू परम श्रेष्ठ ज्ञानको जानता है।

(सुभा० सं० १०४७

७८५ ते महिम्नः परं अन्तं न जायमानः न जातः आप— हे प्रभो तेरी महिमाके पारको कोई न जन्मनेवाला और न कोई जन्मा हुआ जान सकता है।

७८७ यज्ञाय उरुं लोकं चक्रथुः— यज्ञके लिये तुमने विस्तृत स्थान बनाया है।

७८७ वृषशिप्रस्य दासस्य मायाः पृतनाज्येषु जघ्नतुः— बलवान तथा सुरक्षित शत्रुके कपट जालोंको तुमने युद्धोंके समय नष्ट किया है।

७८८ शंबरस्य दंहिताः नव नवतिं च पुरः श्नथिष्टं— शंबरासुरकी सुरक्षित निन्यानवे नगरोंका तुमने नाश किया।

७८८ वर्चिनः असुरस्य शतं सहस्रं च वीरान् अप्रति साकं हथः— तेजस्वी बलिष्ट असुरके सौ और हजारों वीरोंको तुमने अतुलनीय रीतिसे मारा।

७८९ वृजनेषु इषः पिन्वतं— युद्धोंके समय अन्नको अधिक तैयार करो।

(ऋ० ७।१००)

७९१ एतावन्तं नर्यं आविवासत्— ऐसे ही मनुष्योंके हित करनेवाले वीरकी पूजा होती है।

७९१ विश्वजन्यां अप्रयुतां सुमतिं मतिं दाः— हमें सर्वजन हितकारी दोषरहित उत्तम विचारोंसे युक्त बुद्धि दो।

७९१ सुवितस्य अश्वावत् पुरुश्चन्द्रस्य भूरेः रायः पर्च— हमें सुखसे प्राप्त घोडोंसे युक्त तेजस्वी विपुल धन दो।

७९२ तवसः तवीयान् विष्णुः प्रास्तु— समर्थसे समर्थ यह व्यापक प्रभु हमारा सहायक हो।

७९३ अस्य स्थविरस्य नाम त्वेषं हि— इस बडे देवका नाम बडा तेजस्वी है।

७९४ एष विष्णुः एतां पृथिवीं मनुषे क्षेत्राय दशस्यन्— इस व्यापक प्रभुने इस बडी पृथिवीको मानवोंके लिये निवासार्थ दिया है।

७९४ अस्य कीरयः जनासः ध्रुवासः— इसके भक्त यहां स्थिर होते हैं।

७९४ सुजनिमा उरुक्षितिं चकार— कुलीन वीर इस पृथिवीको निवासके लिये उत्तम बनाता है।

७९५ ते नाम, वयुनानि विद्वान् अर्यः अद्य प्र शंसामि— तेरे नामको, तेरे कार्योंको जाननेवाला मैं आज गाता हूं।

७९५ अतव्यान् तवसं त्वा गृणामि— मैं छोटा तुझ बडेका यश गान करता हूं।

७९६ समिथे अन्य रूपः बभूव— युद्धमें तुम अन्यान्य रूपोंको धारण करता है।

(ऋ० ७।१०१)

७९८ सद्यः जातः वृषभः रोरवीति— अभी उत्पन्न हुआ बैल भी शब्द करता है।

७९९ यः विश्वस्य जगतः देवः ईशे— जो देव सब विश्वपर प्रभुत्व करता है।

८०१ यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः— जिसमें सब भुवन रहते हैं (वह प्रभु है)

(ऋ० ७।१०२)

८०५ यः पर्जन्यः ओषधीनां गवां अर्वतां पुरुषीणां गर्भं कृणोतिः— यह पर्जन्य, औषधि, गौवें, घोडे तथा मनुष्यकी स्त्रियोंका गर्भ करता है।

(ऋ० ७।१०३)

८१० एनोः अन्यः अन्यं अनुगृह्णाति— इनमेंसे एक दूसरेकी सहायता करता है।

(ऋ० ७।१०४)

८१७ रक्षः तपतं, उब्जतं— दुष्टोंको ताप दो, उनको मारो।

८१७ तमोवृधः न्यर्पयतं— अज्ञान बढानेवालोंको हीन बनाओ।

८१७ अचितः परा शृणीतं— अज्ञानियोंको दूर करो।

८१७ अत्रिणः न्योषतं, हतं, नुदेथां, निशिशीतं— दूसरोंको खानेवाले दुष्टोंको जला दो, काटो, भगा दो, निर्बल बना दो।

८१८ अघशंसं अघं समभि— पापी दुष्टको विनष्ट करो।

८१८ तपुः अग्निवान् चरुः इव अयस्तु— दूसरोंको ताप देनेवाला अग्निपर रहे चावल जैसा जलकर नष्ट हो जाय।

(सुभा० सं० १०७५)

८१८ **ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे किमीदिने अनवायं द्वेषः धत्तं**— ज्ञानके द्वेषी, कच्चा मांस खानेवाले, भयंकर रूपवाले, सब कुछ खानेवालेके संबंधमें निरंतर द्वेष धारण करो।

८१९ **दुष्कृतः अनारंभणे तमसि अन्तः प्रविध्यतं**- दुष्टकर्म करनेवालेका अथांग अन्धकारमें विनाश करो।

८१९ **यथा एकः च न पुनः अतः न उदयत्**— जिससे एक भी दुष्ट फिर कष्ट देनेके लिये न आसके, (ऐसा करो।)

८१९ **तत् वां मन्युमत् शवः शवसे अस्तु**— वह आपका उत्साही बल शत्रुपर विजय देनेके लिये पर्याप्त हो।

८२० **दिवः पृथिव्याः वधं तर्हणं अघशंसाय संवर्तयतं**- द्युलोकसे अथवा पृथिवीसे घातक शस्त्र दुष्टोंके नाश करनेके लिये प्राप्त करो।

८२० **पर्वतेभ्यः स्वर्यं उत्तक्षतं, येन ववृधानं रक्षः निजूर्वथः**- पर्वतोंसे घातक शस्त्र ले आओ, जिससे बढनेवाले राक्षसोंको तुम मार सकोगे।

८२१ **अग्नितप्तेभिः अश्महन्मभिः तपुर्वधेभिः अजरेभिः अत्रिणः पर्शाने निविध्यतं, निस्वरं यन्तु**- अग्निके समान तपानेवाले, पत्थरोंके समान मारनेवाले, तपाकर प्रहार करनेवाले, क्षीण न होनेवाले आयुधोंसे सर्वभक्षक दुष्टोंकी पसलियां तोड दो, वे चुपचाप भाग जांय।

८२२ **तुजयद्भिः एवैः प्रतिसरेथां**- वेगवान घोडोंसे शत्रुपर आक्रमण करो।

८२२ **भंगुरावतः द्रुहः रक्षसः हतं**— विनाशकारी द्रोही राक्षसोंको मारो।

८२३ **दुष्कृते सुगं मा भूत्**— दुष्टोंको व्यवहार करना सहज न हो।

८२३ **यः नः द्रुहा अभिदासति**— जो हमारा द्रोह करता है (उसका नाश करो।)

८२४ **पाकेन मनसा चरन्तं मां, यः अनृतेभिः वचोभिः अभिचष्टे, असतः वक्ता असन् अस्तु**— पवित्र मनसे व्यवहार करनेवाले मुझे भी, जो असत्यभाषणोंसे निंदा करता है, उसका वह असत्यभाषण असत्य ही सिद्ध हो।

८२५ **ये पाकशंसं एवैः विहरन्ते, ये स्वधाभिः भद्रं दूषयन्ति, तान् अहये प्रददातु, निर्ऋतेः उपस्थे वा दधातु**— मुझ जैसे सत्यवादीको अनेक उपायोंसे जो कष्ट देते हैं, जो अपनी शक्तिके कारण हितकर्ताको भी दूषण देते हैं, उनको शत्रुके अधीन करो अथवा उनको निर्धन अवस्थाको पहुंचा दो।

८२६ **यः गवां अश्वानां तनूनां पित्वं रसं दिप्सति, सः स्तेयकृत् स्तेनः रिपुः दभ्रं एतु, सः तन्वा तना च निहीयतां**- जो गौवों, घोडों और मानवोंके शरीरोंके सत्त्वरूप रसको नष्ट करता है, वह चोर आदि शत्रु विनाशको प्राप्त हो जाय, वह अपने शरीर तथा संतानसे विनष्ट होवे।

८२७ **यः दिवा नक्तं नः दिप्सति, अस्य यशः परिशुष्यतु, स तन्वा तना च परः अस्तु**- जो दिनरात हमें कष्ट देता है, इसका यश सूख जाय, और वह शरीर और संतानसे रहित हो जाय।

८२८ **सत् च असत् च वचसी पस्पृधाते, तयोः यत् सत्यं, यतरत् ऋजीयः, तत् सोमः अवति, असत् हन्ति**— सत् और असत् भाषणोंकी स्पर्धा होती है, जो सत्य और जो सरल होता है, उसका रक्षण सोम करता है जो असत् होता है उसका नाश करता है।

८२९ **सोमः वृजिनं नैव हिनोति**— सोम पापीको नहीं छोडता।

८२९ **मिथुया धारयन्तं क्षत्रियं न हिनोति**— मिथ्या व्यवहार करनेवाले क्षत्रियको भी वह नहीं छोडता।

८२९ **रक्षः असत् वदन्तं हन्ति, उभौ इन्द्रस्य प्रसितौ शयाते**- राक्षसों और असत्यभाषण करनेवालेका वह वध करता है। ये दोनों इन्द्रके बन्धनमें पडते हैं।

८३० **द्रोघवाचः ते निर्ऋथं सचन्तां**— द्रोह भाषण करनेवाले निकृष्ट स्थितिको पहुंचें।

८३१ **यदि यातुधानः अस्मि अद्य मुरीय**— यदि मैं राक्षस बनूं तो आज ही मर जाऊं।

८३१ **यदि पुरुषस्य आयुः ततप**— यदि मैने किसीको कष्ट दिये है (तो मै आज ही मर जाऊं।)

८३१ **यः मा मोघं यातुधान इति आह, सः दशभिः वीरैः वियूयाः**— जो मुझे व्यर्थ राक्षस करके कहता है वह अपने दसों पुत्रोंके साथ मर जांय।

(सुभाषित संख्या १०९८)

८३२ यः मा अयातुं यातुधान इत्याह, यः रक्षाः शुचिः अस्मि इत्याह, इन्द्रः तं महता वधेन हन्तु, सः विश्वस्य जन्तोः अधमः पदीष्ट— जो मैं राक्षस न होते हुए मुझे राक्षस कहता है, जो स्वयं राक्षस होते हुए अपनेको शुद्ध करके पुकारता है, इन्द्र उसका वध बडे शस्त्रोंसे करे, वह सब प्राणियोंमें हीन दशाको प्राप्त हो जाय।

८३३ या नक्तं तन्वं गूहमाना अपप्रजिगाति, सा अनन्तान् वव्रान् अवपदीष्ट, ग्रावाणः उपब्दैः रक्षसः हन्तु— जो रातके समय अपने शरीरको ढंककर घूमती है, वह राक्षसी गढोंमें गिर जाय, तथा पत्थरोंसे राक्षस मारे जांय।

८३४ विक्षु वितिष्ठध्वं, इच्छत, गृभायत, रक्षसः संपिनष्टन- तुम प्रजाओंमें रहो, राक्षसोंको पहचाननेकी इच्छा करो, उनको पकडो और राक्षसोंको पीस डालो।

८३५ प्राक्तात् अपाक्तात् अधरात् उदक्तात्, रक्षसः पर्वतेन अभिजहि— पूर्व पश्चिम, दक्षिण उत्तरसे राक्षसोंका पर्वतास्त्रसे पराभव करो।

८३६ शक्रः पिशुनेभ्यः वधं शिशीते— इन्द्र इन राक्षसोंको मारनेके लिये शस्त्र तीक्ष्ण करता है।

८३६ यातुमद्भ्यः अशनिं सृजत्— राक्षसोंपर अस्त्र फेंको।

८३७ इन्द्रः यातूनां पराशरः अभवत्— इन्द्र राक्षसोंको दूर करनेवाला है।

८३७ शक्रः रक्षसः अभ्येति— इन्द्र राक्षसोंपर आक्रमण करता है।

८३८ उलूकयातुं, शुशुलूकयातुं, श्वयातुं, कोकयातुं, सुपर्णयातुं, उत गृध्रयातुं प्रमृण, रक्ष च— उल्लूके समान, भेडियेके समान, कुत्तेके समान, चिडियेके समान, गरुडके समान, गीधके समान चाल चलनवाले जो राक्षस हैं, उनका वध कर और हमारी रक्षा कर।

८३९ रक्षः अभिनत्— राक्षस नष्ट हो जांय।

८३९ यातुमावतां मिथुना अपोच्छतु— यातना देनेवाले राक्षसोंके स्त्रीपुरुषोंके जोडे हमसे दूर हों।

८३९ या किमीदिना अपोच्छन्तु— जो सदा खानेवाले हैं वे हमसे दूर हों।

८४० पुमांसं यातुधानं जहि— पुरुष राक्षसका नाश करे।

८४० मायया शाशदानां स्त्रियं जहि— कपटसे हिंसा करनेवाली राक्षसीका भी नाश कर।

८४० मूरदेवाः विग्रीवासः सन्तु— मूढोंके पूजक राक्षसोंका गला कट जाय।

८४१ प्रतिचक्ष्व, जागृतं, रक्षोभ्यो वधं, यातुमद्भ्यः अशनिं अस्यतं- देखो, जागो, राक्षसोंपर शस्त्र फेंको और यातना देनेवालोंपर वज्र फेंको।

(ऋ० ८।८७।१-६)

८४३ मधुमन्तं घर्मं पिबतं- मीठा गरम रस पीओ।

८४३ बर्हिः आसीदतं- आसनोंपर बैठो।

८४३ मनुषः दुरोणे मन्दसाना वेदसः निपातं— मनुष्योंके घरोंमें आनन्दसे रहकर धनोंका संरक्षण करो।

८४५ सुमत् बर्हिः आसीदतं- सुखकारक आसनपर बैठो।

(ऋ० ९।६७।१९-३२)

८४८ स्तोत्रे सुवीर्यं दधत्— काव्यमें उत्तम बल है।

८५० यत् भयं अन्ति, यत् दूरके, तत् विजहि— जो भय समीप या दूर हो वह दूर हो जाय।

८५१ विचर्षणिः पोता पवमानः नः पुनातु— विशेष निरीक्षण करनेवाला पवित्र करनेवाला, हमें पवित्र करे।

८५२ यत् ते अर्चिषि अन्तः विततं पवित्रं ब्रह्म नः पुनीहि— तुम्हारे तेजमें जो फैला हुआ पवित्र ज्ञान है वह हमारी पवित्रता करे।

८५६ देवजनाः मां पुनन्तु— दिव्य विबुध हमें पवित्र करें।

८५९ अलाय्यस्य परशुः तं ननाश— आक्रमणकारी शत्रुका शस्त्र उसीका नाश करे।

८६० ऋषिभिः संभृतं रसं पावमानीः यः अध्येति स पूतं अश्नाति— ऋषिओंद्वारा इकठ्ठा किया हुआ ज्ञानरूप यह रस जो अध्ययन करता है वह सब पवित्र अन्न सेवन करता है। (सुभा० सं० ११२५)

८६१ ऋषिभिः संभृतं रसं पावमानीः अध्येति, तस्मै क्षीरं सर्पिः मधु उदकं दुहे- ऋषियोंद्वारा संग्रहित किया इस वियारूपी रसका जो अध्ययन करता है, उसको यह विद्या दूध, घी, मधु और जल भरपूर देती है।

(ऋ० ९।६७।३१-३२)

८६२ आयुधा संशिशानः— वीर अपने शस्त्रोंको तेज करता है।

८६३ रत्नधाः वार्याणि विदयते- रत्नोंका धारण करनेवाला धनी धनोंका दान करता है।

८६४ शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान्, जेता तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा, समत्सु अषाळहः पृतनासु शत्रून् साह्वान् धनानि सनिता— शूरोंका संघ बनानेवाला, सब वीरोंको पास रखनेवाला, शत्रुका पराभव करनेवाला, विजयी, तीक्ष्ण आयुधवाला, धनुष्य अतिशीघ्र चलानेवाला, युद्धोंमें असह्य, युद्धोंमें शत्रुओंका पराभव करनेवाला वीर धनोंका दान करता है।

८६५ अभयानि कृण्वन्— निर्भयता स्थापन कर।

८६६ पुरंधीः समीचीने— विशाल बुद्धि निर्दोष हो।

८६७ ऋतुमान् राजा इव अमेन विश्वा दुरिता घनिघ्नत्— उत्तम प्रजापालनरूप कर्म करनेवाला राजा अपने बलसे सब अनिष्टोंको दूर करे।

(ऋ० ९।९७)

८६८ भद्रा समन्या वस्त्रा वसानः- हितकारी तथा युद्धके योग्य वस्त्रोंका धारण करनेवाला वीर हो।

८६९ महान् कविः निवचनानि शंसन्- बडा कवि सुंदर वचनोंको कहता है।

८६९ विचक्षणः जागृविः- ज्ञानी जाग्रत रहता है।

८७० यशसां यशस्तरः, क्षितः प्रियः- यशस्वी वीरोंमें यह वीर अधिक यशस्वी और भूमिपर यह वीर अधिक प्रिय है।

८७४ देवानां जनिमा विवक्ति- देवोंके जविनवृत्त वह कहता है।

८७४ महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः- बडे नियमोंका पालक शुद्ध बन्धु जैसा पवित्र करनेवाला होता है।

८७७ रक्षः हन्ति, अरातीः परिबाधते, वरिवः कृण्वन्, वृजनस्य राजा— राक्षसोंको मारता, शत्रुओंको बाधा पहुंचाता है, धन [illegible] करता है [illegible] राजा है।

८७९ ऋतुथा [illegible] [illegible] [illegible] अनुसार व्यवहार चलाकर अपने प्रिय [illegible] करता है।

८८० आज्ञा शृण्वे आजुर्यन्- युद्धके समय [illegible] सुनाई देता है।

८८१ सुपथा सुगानि कृण्वन्- उत्तम मार्गोंको सुगम करो।

८८३ दुरितानि विष्वक् छिन्धन्- पापियोंको चारों ओरसे काटो।

८८४ ऋजुं मार्गं कृणुते च— सीधा मार्ग करो और बल बढाओ।

८८५ पस्त्यावान् मर्त्यः- घरवाला मनुष्य हो।

८८६ सहस्रधारः अदब्धः नृषह्ये वाजसातौ परिस्रव- सहस्रों धारावाले शस्त्रोंको धारण करनेवाला, अदम्य शक्तिवाला वीर मनुष्योंद्वारा बलसे किये जानेवाले संग्राममें अन्नके बंटवारेके लिये जाता रहे।

८८८ उग्रं वीरवन्तं रयिं ददातु— उग्र वीरोंसे युक्त धन देवे।

८९० राजा वृजन्यस्य धर्मा बभूव- राजा बलवर्धन करनेका कर्तव्य करनेवाला होता है।

८९१ देवानां उत मर्त्यानां राजा रयीणां रयिपतिः- देवों और मानवोंका यह राजा धनोंका स्वामी है।

८९३ नः सुवीरं क्षयं धन्वन्तु- हमें उत्तम वीरोंसे, वीर पुत्रोंसे युक्त धन देवें।

८९६ महतः धनस्य पुर एता असि— तू बडे धनका नेता है।

८९७ धीरः राजा मित्रं न हिनस्ति- धैर्यवान् राजा अपने मित्रका नाश नहीं करता है।

(ऋ० ९।१०८)

८९९ स्वायुधः नृभिः युक्तः- उत्तम शस्त्रधारी वीर नेताओंसे युक्त रहता है।

(ऋ० १०।१३७।७)

९०१ अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां त्वा उपस्पृशामि- नीरोगिता स्थापन करनेवाले दोनों हाथोंसे तुम्हें मैं स्पर्श करता हूं। (इससे तुम नीरोग हो जाओगे।)

(सुभा० सं० ११५४)

(अथर्व० ३।१९)

९०१ येषां जिष्णुः पुरोहितः अस्मि, तेषां क्षत्रं अजरं अस्तु- जिनका मैं विजय देनेवाला पुरोहित हूं, उनका क्षात्रबल कभी क्षीण नहीं होगा।

९०२ मे इदं ब्रह्म वीर्यं बलं संशितं— मेरे प्रयत्नसे (इसके राष्ट्रमें) ज्ञान, वीर्य और बल तेजस्वी हुआ है।

९०३ अहं एषां राष्ट्रं स्यामि- मैं इनका राष्ट्र तेजस्वी करता हूं।

९०३ ओजः वीर्यं बलं संस्यामि- (मैं इनके राष्ट्रमें) वीर्य और बल बढाता हूं।

९०३ शत्रूणां बाहून् वृश्चामि- शत्रुओंके बाहुओंको मैं काटता हूं।

९०४ ये नः मघवानं सूरिं पृतन्यात्, ते नीचैः पद्यन्तां, अधरे भवन्तु- जो हमारे धनवान् ज्ञानीपर सैन्यको छोड देते है, वे नीचे गिरें और अवनत हों।

९०४ अहं ब्रह्मणा अमित्रान् क्षिणामि, स्वान् उन्नयामि- मैं ज्ञानसे शत्रुओंको क्षीण करता हूं। और अपने लोगोंकी उन्नति करता हूं।

९०५ येषां अहं पुरोहितः अस्मि, तेषां परशोः तीक्ष्णीयांसः अग्नेः तीक्ष्णतराः, वज्रात् तीक्ष्णीयांसः- जिनका मैं पुरोहित हूं उनके शस्त्र परशु, अग्नि और वज्रसे भी अधिक तीक्ष्ण करके रखूंगा।

९०६ अहं एषां आयुधा संस्यामि- मैं इनके आयुध तीक्ष्ण करता हूं।

९०६ एषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि- इनका राष्ट्र उत्तम वीरोंसे युक्त करके बढाता हूं।

९०६ एषां क्षत्रं अजरं जिष्णु अस्तु- इनका क्षात्रतेज अक्षय जयशाली होगा।

९०७, वाजिनानि उद्धर्षन्तां, जयतां वीराणां घोषः उदेतु- इनके सैन्य उत्तेजित हों, विजयी वीरोंके घोष आकाशमें उठें।

९०७ केतुमन्तः घोषाः उदीरतां- ध्वजवाली सेनाका घोष ऊपर उठे।

(अथर्व ३।२०)

९११ हे विशांपते ! इह नः अच्छ वद, नः प्रत्यङ् सुमनाः भव- हे प्रजाके पालक ! यहां हमारे साथ अच्छी-तरह भाषण कर और प्रत्येकके साथ उत्तम मनसे बर्ताव कर।

९१४ त्वं नः दातवे दानाय रयिं चोदय— तू हमें देनेके लिये धनको भेजो।

९१५ नः सर्वः जनः संगत्यां सुमनाः असत्— हमारे सब लोग संगठनमें उत्तम मनसे रहें। उत्तम विचार धारण करें।

९१७ सर्ववीरं रयिं नियच्छ —सब वीरोंको धन दो।

९१९ गोसनिं वाचं उदेयं— गौका दान करनेका ही भाषण करूंगा।

(अथर्व० ३।२१)

९२३ धीरः शक्रः परिभूः अदाभ्यः- धीर वीर समर्थ, विजयी और न दब जानेवाला वीर होता है।

(अथर्व० ३।२२)

९३२ येन वर्चसा मनुष्येषु राजा बभूव, तेन वर्चसा मां वर्चस्विनं कृणु- जिस तेजसे मनुष्योंमें राजा तेजस्वी होता है, उस तेजसे मुझे तेजस्वी कर।

(अथर्व. ४।२२)

९३६ मे इमं क्षत्रियं वर्धय— मेरे इस क्षत्रियको बढा।

९३६ मे इमं विशां एकवृषं कृणु- मेरे इस क्षत्रियको प्रजाओंमें अद्वितीय बलवान् राजा कर।

९३६ अस्य सर्वान् अमित्रान् निरक्ष्णुहि- इस राजाके सब शत्रुओंको निर्बल बना दो।

९३६ अहं उत्तरेषु तान् अस्मै रन्धय- युद्धोंमें उन शत्रुओंको इसके सहायतार्थ विनष्ट कर।

९३७ यः अस्य अमित्रः तं निर्भज- जो इसका शत्रु है उसको (धनका भाग) न दो।

९३७ अयं राजा क्षत्राणां वर्ष्म अस्तु- यह राजा सब क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ हो जाय।

९३८ अयं धनानां धनपतिः अस्तु— यह धनोंका स्वामी हो।

९३८ अयं राजा विशां विश्पतिः अस्तु– यह राजा प्रजाओंका पालक हो।

९३८ अस्मिन् महि वर्चांसि धेहि— इस राजामें सब तेजोंका निवास करो।

९३८ अस्य शत्रुं अवर्चसं कृणुहि– इसके शत्रुको निस्तेज कर।

९३९ अयं राजा इन्द्रस्य प्रियः भूयात्— यह राजा-इन्द्रका-प्रभुका- प्रिय हो।

९४० येन जयन्ति, न पराजयन्ते— जिससे निःसंदेह जय होता है और कभी पराजय नहीं होता वह बल है।

९४० त्वा जनानां एकवृषं मानवानां राज्ञां उत्तमं करत्– तुझे लोकोंमें एक मात्र बलवान् और मानवोंमें तथा राजाओंमें श्रेष्ठ करता हूं।

९४१ हे राजन्! त्वं उत्तरः, ते सपत्नाः शत्रवः अधरे— हे राजा! तूं ऊंचा हो, तेरे शत्रु नीचे हों।

९४१ त्वं एकवृषः जिगीवान् शत्रूयतां भोजनानि आभर— तूं अद्वितीय बलवान् और विजयी होकर शत्रुओंके भोगके पदार्थ इधर लाकर रख।

९४१ सिंहप्रतीकः सर्वा विशः आद्धि— तूं सिंहके समान पराक्रम करनेवाला हो और सब प्रजाजनोंको पर्याप्त भोजन सामग्री दो।

९४२ व्याघ्रप्रतीकः शत्रून् अवबाधस्व- समान सब शत्रुओंको बाधा पहुंचाओ।

९४२ एकवृषः जिगीवान् शत्रुयतां भो आखिद्– अद्वितिय बलवान् और विजयी होकर भोगसाधन खींचकर इधर लाओ।

(अथर्व १९।११।६)

९४३ शंयोः तत् इदं शस्तं अस्मभ्यं शान्ति और सुख देनेवाला यह प्रशंसायोग्य ज्ञान हमें

९४३ गाधं उत् प्रतिष्ठां अशीमहि— गंभीर प्रतिष्ठा हमें प्राप्त हो।

९४३ महते दिवे सादनाय नमः— बडे लिये आदर हो।

९४४ सुजातता तमः अपसंवर्तयति- अज्ञानके अन्धकारको दूर करते हैं।

९४४ सुवीरः शतहिमाः मदेम— उत्तम वीरो हम सौ वर्ष आनन्दमें रहेंगे।

९४५ वज्री वृषभः तुराषाट् शुष्मी वृत्रहा : वज्रधारी, बलवान, शत्रुको दबानेवाला, सामर्थ्यवान् नाशक राजा हो।

॥ यहां सुभाषितोंका संग्रह समाप्त हुआ ॥

वसिष्ठ मन्त्र सूची।

× मन्त्रपूर्वस्थिताङ्कश्च वासिष्ठमन्त्राणां क्रमाङ्को ज्ञातव्यः। * अत्र सप्तमं मण्डलं ऋग्वेदस्य बोध्यं सर्वत्र प्रथमम्।

१०५ त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां ७।१२।३; सा० सं० २।६५६; पं० विं० ब्रा० १५।२।४; तै० ब्रा० ३।५।२।३; ६।१२

२५३ त्वं वर्मासि सप्रथः ७।३१।६; अथर्व० २०।१८।६

९१ त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो ७।९।६

६१ त्वामग्ने हरितो वावशाना । ७।५।५

९९ त्वामीळते अजिरं दूत्याय ७।११।२; तै० ब्रा० ३।६।८।२

१४४ त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं देवासो ७।१७।६; तै० सं० ३।१।४।४; ५।२

२२६ त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि ७।२५।४

१७ त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास । ७।१।१७

१३३ त्वे अग्ने स्वाहुत ७।१६।७; सा० सं० १।३८; वा० सं० ३३।१४

६२ त्वे असुर्यं वसवो न्यृण्वन् । ७।५।६

१४६ त्वे ह यत् पितरश्चिन्न इन्द्र ७।१८।१

२९८ दण्डा इवेद् गो अजनास आसन् ७।३३।६

४०५ दधिक्राम्णु नमसा बोधयन्त ७।४४।२

४०४ दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषसमग्निं ७।४४।१

४०६ दधिक्रावार्णं बुबुधानो अग्निं ७।४४।३; मै० सं० ४।११।१; १६२।२

४०७ दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वा ७।४४।४

६७५ दश राजानः समिता अयज्यवः ७।८३।७

४६९ दशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु ७।५६।१७

५ दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं ७।१।५

६७६ दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः ७।८३।८

९२६ दिवं पृथिवीमन्वन्तरिक्षं अथर्व० ३।२१।७

५३४ दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां ७।६४।१; ऐ० ब्रा० ५।२०।८; कौ ब्रा० २६।१५

५६१ दिवो धामभिर्वरुण मित्रः ७।६६।१८

८९७ दिवो न सर्गा असस्रग्रमह्नां ऋ० ९।९७।३०

५३१ दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति ७।६३।४; कौ० ब्रा० १०।१५; तै० ब्रा० २।८।७।३

८०८ दिव्या आपो अभि यदेनमायन् ७।१०३।२

१५३ दुराध्यो अदितिं स्रेवयन्तः ७।१८।८

९१८ दुहां मे पञ्च प्रदिशः अथर्व० ३।२०।९

२९४ दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो ७।३३।२

६४९ देवं देवं राधसे चोदयन्त्यस्मद् ७।७९।५

८१५ देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं ७।१०३।९

६३६ देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती ७।७७।३

८९३ देवाव्यो नः परिषिच्यमानाः ऋ० ९।९७।२६

१९८ देवाश्चित् ते असूर्याय पूर्वेऽनु ७।२१।७

७७४ देवी देवस्य रोदसी जनित्री ७।२७।८

१३७ देवो वो द्रविणोदाः पूर्णा ७।१६।११; सा० सं० १।५५; २।८६३; मै० सं० २।१३।८; १५७।७; ऐ० ब्रा० ३।३५।६; पं० विं० ब्रा० १७।१।१०।११; १८।१४

५२५ द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः ७।६२।४; ४।५५।१

८४२ द्युम्नी वां स्तोमो अश्विना ८।८७।१

१६७ द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा ७।१८।२२

६८९ धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि ७।८६।१; कौ० ब्रा० ४।१६

१४९ धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्षन्नुप ७।१८।४

७१० ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तः ७।८८।७

४५४ नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते ७।५६।२; ऐ० ब्रा० ५।५।१३

२७५ नकिः सुदासो रथं ७।३२।१०; ऐ० ब्रा० ५।१।१६; १२।७; २०।१०

१६५ न त इन्द्र सुमतयो न रायः ७।१८।२०

६६५ न तमंहो न दुरितानि मर्त्यं ७।८२।७

२०६ न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य ७।२२।५; सा० सं० २।११४९

७८५ न ते विष्णो जायमानो न ७।९९।२

२८८ न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवः ७।३२।२३; अथर्व० २०।१२१।२; सा० सं० २।३१; वा० सं० २७।३६; मै० सं० २।१३।९; १५८।१६; का० सं० ३९।१२

२८६ न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते ७।३२।२१

१९६ न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न ७।२१।५

५८७ नरा गौरेव विद्युतं तृषाणा ७।६९।६

२७ नराशंसस्य महिमानमेषामुप। ७।२।२; वा० सं० २९।२७; मै० सं० ४।१३।३; २०१।१२; का० सं० ३७।४; तै० ब्रा० ३।६।३।१ निरु० ८।७

११५ नव्यं नु स्तोममग्नये दिवः ७।१५।४; का० सं० ४०।१४; तै० ब्रा० २।४।८।१

९१२ प णो यच्छत्वर्यमा ऋ० १०।१४१।२ अथर्व० ३।२०।३; वा० सं० ९।२९ तै० सं० १।७।१०।२

७,५ प्र तन्‌ ते अद्य शिपिविष्ट नामार्यः ७।१००।५; सा० सं० २।९२६; तै० सं० २।२।१२।५; मै० सं० ४।१०।१; १४४।६; का० सं० ६।१०

६४० प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्‌ ७।७८।१

८४१ प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रः ७।१०४।२५; अथर्व० ८।४।२५

६५५ प्रति त्वा दुहितर्दिवः ७।८१।३

६४४ प्रति त्वाद्य सुमनसो बुधन्ता७।७८।५

६३२ प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा ७।७६।६

६२४ प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाः ७।७५।६

३२७ प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुषेत ७।३४।२१

५६३ प्रति वां रथं नृपती जरध्यै ७।६७।१

५३९ प्रति वां सूर उदिते सूक्तैः ७।६५।१॥७।६६।७; सा०सं० २।४।७

६५० प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा ७।८०।१

८२३ प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं ७।१०४।७ अथर्व० ८।४।७

६४१ प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः ७।७८।२

४. प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः ७।१।४

६५३ प्रत्यु अदर्श्यायत्यु१च्छन्ती ७।८१।१; सा० सं० १।३०३;२।१०१; तै० ब्रा० ३।१।३।१

८९० प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्व ऋ० ९।९७।२३

४३९ प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः ७।५३।१; ऐ० ब्रा० ५।५।८ कौ० ब्रा० २२।९

४४० प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिः ७।५३।२; तै० सं० ४।१।११।४; मै० सं० ४।१०।३; १५०।१६; तै० ब्रा० २।८।४।७

८५७ प्र प्यायस्व प्र स्यन्दस्व ऋ० ९।६७।२८

८३ प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि ७।८।४; वा० सं० १२।३४; तै० सं० २।५।१२।४; ४।२।३।२; मै० सं० २।७।१०; ८७।१६; का० सं० १६।१० ऐ० ब्रा० १।१७।१०; श० ब्रा० ६।८।१।१४

५२६ प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न ७।६२।५; वा० सं० २१।९; तै० सं० १।८।२२।३; मै० सं० ४।११।२; १६६।१३; का० सं० ४।१६; कौ० ब्रा० १८।१३; तै० ब्रा० २।७।१५।६; ८।६।७

४६६ प्र बुध्न्या व ईरते महांसि ७।५६।१४; तै० सं० ४।३।१३।६; मै० सं० ४।१०।५; १५७।१४; का० सं० २१।१३

३९३ प्र ब्रह्माणो अंगिरसो नक्षन्त ७।४२।१; ऐ० ब्रा० ५।२०।८; कौ० ब्रा० २६।११

३४७ प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य वि ७।३६।१; कौ० ब्रा० २५।२

५४४ प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो ७।६६।१; गो० ब्रा० २।३।१३

६२८ प्र मे पन्था देवयाना ७।७६।२

४८० प्र यज्ञ एतु हेत्वो न ७।४३।२

१९३ प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति बर्हिः ७।२१।२

८३३ प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तं ७।१०४।१७; अथर्व० ८।४।१७

७३२ प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा ७।९२।३; वा० सं० २७।२७; तै० सं० २।२।१२।७; मै० सं० ४।१०।६; १५८।४; का० सं० १०।१२; ऐ० ब्रा० ५।१६।११

१६६ प्र ये गृहादममदुस्त्वाया ७।१८।२१

६१८ प्र ये ययुरवृकासो रथा ७।७४।६

२५४ प्र व इन्द्राय मादनं ७।३१।१; सा० सं० १।१५६; २।६६ पं० विं ब्रा० ९।२।२

८३५ प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र ७।१०४।१९; अथर्व० ८।४।१९

४७ प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं ७।४।१; मै० सं० ४।१४।३; २१८।४; का० सं० ७।१६; कौ० ब्रा० १२।७; २६।८; तै० ब्रा० २।८।२।३

५७४ प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुररं ७।६८।२; ऐ० ब्रा० ४।११।२०

५७१ प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति ७।६८।३

५२६ प्र वां स मित्रावरुणा वृतावा ७।६१।२

३७३ प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा ७।३९।२; वा० सं० ३३।४४; निरु. ५।२८

७१६ प्र वीरया शुचयो दद्रिरे ७।९०।१; वा० सं० ३३।७०; ऐ० ब्रा० ५।२०।८; कौ० ब्रा० २६।८

७३ प्र वो देवं चित् सहसानम् ७।७।१

३५४ प्र वो महीमरमतिं कृणुध्वं ७।३६।८

२६३ प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे ७।३१।१०; सा० सं० १।३२८; २।११४३। अथर्व० २०।७३।३; पं० विं ब्रा० १२।१३।१९

३९९ प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो ७।४३।१; ऐ० ब्रा० ५।१६।११; कौ० ब्रा० २६।८

३०७ प्र शुक्रैतु देवी मनीषा ७।३४।१; मै० सं० ४।९।१४; १३४।११; ऐ० ब्रा० ५।५।१०; कौ० ब्रा० २२।९; पं० वि० ब्रा० १।२।९; ६।६।१६

७०४ प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं ७।८८।१

६६ प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिं ७।६।१; सा० सं० १।७८; कौ० ब्रा० २२।९

४८५ प्र साकमुक्षे अर्चता गणाय ७।५८।१

४९० प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं ७।५८।६

७३१ प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात् ७।९२।२; ऐ० ब्रा० ५।१६।११; कौ० ब्रा० २६।१५

८७५ प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छामादः ऋ० ९।९७।८; सा० सं० २।४६७

८६२ प्र हिन्वानो जनिता रोदस्योः ऋ० ९।९०।१; सा० सं० १।५३६

५७ प्राग्नये तवसे भरध्वं गिरं ७।५।१

१०६ प्राग्नये विश्वशुचे धियंधेऽसुरघ्ने ७।१३।१

७५ प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः ७।७।३

५६७ प्राचीमु देवाश्विना धियं मे ७।६७।५

३८६ प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे ७।४१।१; अथर्व० ३।१६।१; वा० सं० ३४।३४; तै० ब्रा० २।८।९।७

३८७ प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम ७।४१।२; अथर्व० ३।१६।२; वा० सं० ३४।३५; तै० ब्रा० २।८।९।७; निरु० १२।१४

४६२ प्रिया वो नाम हुवे तुराणामायत् ७।५६।१०; तै० सं० २।१।११।१; मै० सं० ४।११।२; १६७।१४; का० सं० ८।१७

१७८ प्रियास इत् ते मघवन्नभिष्टौ ७।१९।८; अथर्व० २०।३७।८

९०८ प्रेता जयता नर उग्रा अथर्व० ३।१९।७; ऋ० १०।१०३।१३; सा० सं० २।१२१२; वा० सं० १७।४७

३ प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नो ७।१।३; सा० सं० १।७२५; वा० सं० १७।७६; तै० सं० ४।६।५।४; ५।४।७।३

७८१ प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि ७।९८।५; अथर्व० २०।८७।५

१८ प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् ७।३।२; सा० वे० २।५७०; वा० सं० १५।६२; तै० सं० ४।४।३।३ मै० सं० २।८।१४; ११८।९; का० सं० १७।१०; श० ब्रा० ८।७।३।१२

५१७ प्रोरोर्मित्रा वरुणा पृथिव्याः ७।६१।३

४५२ प्रोष्ठेशया वह्येशया ७।५५।८ अथर्व० ४।५।३

५५३ बहवः सूर चक्षसो ७।६६।१०; ऐ० ब्रा० ४।१०।९; ५।६।७

७६१ बृहदु गायिषे वचः ७।९६।१; ऐ० ब्रा० ५।६।७

४८७ बृहद् वयो मघवद्भ्यो दधात ७।५८।३

७७६ बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वः ७।९७।१०; ९८।७; अथर्व० २०।१७।१२; ८७।७; गो० ब्रा० २।४।१६; तै० ब्रा० २।५।६।३

२०४ बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां ७।२२।३; अथर्व० २०।११७।३; सा० सं० २।२७९; मै० सं० ४।१२।४; १८९।३; का० सं० १२।१५

२४५ ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणः ७।२९।२; ऐ० ब्रा० ४।३।३; कौ० ब्रा० २६।११

२३९ ब्रह्माण इन्द्रोप याहि विद्वानर्वाञ्चस्ते ७।२८।१; ऐ० ब्रा० ५।१८।८

८१४ ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ७।१०३।८

८१३ ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे ७।१०३।७

३९० भग एव भगवाँ अस्तु देवाः ७।४१।५; अथर्व० ३।१६।५; वा० सं० ३४।३८; तै० ब्रा० २।५।५।१; ८।९।८

३८८ भग प्रणेतर्भग सत्यराधो ७।४१।३; अथर्व० ३।१६।३; वा० सं० ३४।३६; तै० ब्रा० २।५।५।२; ८।९।८

३३४ शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु ७।३५।३; अथर्व० १९।१०।३

३७० शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु ७।३८।७; वा० सं० ९।१६;२१।१०; तै० सं० १।७।८।२; मै० सं० १।११।२; १६२।१०; का० सं० १३।१४; श० ब्रा० ५।१।५।२२

१६३ शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे ७।१८।१८

५१८ शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम ७।६१।४

८५५ शंसेदुक्थं सुदानव उत ७।३१।२; सा० सं० २।६७

९१८ शान्तो अग्निः क्रव्याच्छान्तः अथर्व० ३।२१।९

२८४ शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे ७।३२।१९; अथर्व० २०।८२।२; सा० सं० २।११४७; कौ० ब्रा० २२।४

५५८ शीर्ष्णः शीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पतिं ७।६६।१५

७३५ शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्येन्द्राग्नी ७।९३।१; तै० सं० १।१।१४।१; मै० सं० ४।११।१;१५९।१७; का० सं० १३।१५; तै० ब्रा० ३।४।८।३

४६४ शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां ७।५६।१२; मै० सं० ४।१४।१८;२४७।६

४६० शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि ७।५६।८

५९४ शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्यभि ७।७०।५

८६४ शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता ऋ० ९।९०।३; सा० सं० २।७५९

७४४ शृणुतं जरितुर्हवं ७।९४।२;८।८५।४; सा० सं० २।२६७

२७० श्रवच्छुत्कर्ण ईयते वसूनां ७।३२।५

६५८ श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं ७।८१।६;८।१३।१२

२०५ श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा १।२२।४; सा० सं० २।११४८; ऐ० ब्रा० ५।४।१९

२९३ श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा ७।३३।१

४७४ सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः ७।५६।२२; का० सं० ८।१७

७३९ सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने ७।९३।५

८०७ संवत्सरं शशयानाः ७।१०३।१; अथर्व० ४।१५।१३; निरु० ९।६

९०२ संशितं म इदं ब्रह्म अथर्व० ३।१९।१; वा० सं० ११।८१; तै० सं० ४।१।१०।३; ५।१।१०।२; मै० सं० २।७।७; ८४।६; ३।१।९; १२।११; का० सं० १६।७; १९।१०; श० ब्रा० ६।६।३।१४

७७० स आनो योनिं सदतु प्रेष्ठः ७।९७।४; का० सं० १७।१८

१०० सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम ७।२१।९

४८ स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु ७।४।२

४११ स घा नो देवः सविता सहावा ७।४५।३; मै० सं० ४।१।१-६;२२३।१७; श० ब्रा० १३।४।२।१०

६३ स जायमानः परमे व्योमनि ७।५।७;१।१४३।२;७।८।२; मै० सं० ४।११।१;१६१।९

३११ सजूर्देवेभिरपां नपातं सखायं ७।३४।१५

६२५ सत्या सत्येभिर्महती महद्भिः ७।७५।७

३०५ सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः ७।३३।१३

१७९ सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ ७।१९।९; अथर्व० २०।३७।९

७६ सद्यो अध्वरे रथिरं जनन्त ७।७।४

२०१ स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना ७।२१।१०।७।२०।१०

१७६ सना ता त इन्द्र भोजनानि ७।१९।६; अथर्व० २०।३७।६

३६० सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद् ७।३७।५

४६१ सनेम्यस्मद् युयोत दिद्युं ७।५६।९; मै० सं० ४।१६७

१२२ स नो राधांस्या भरेशानः ७।१५।११

११४ स नो वेदो अमात्यमग्नी ७।१५।३; सा० सं० २।७३१

५८३ स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा ७।६९।२; मै० सं० ४।१४।१;२१९।१३०; तै० ब्रा० २।८।७।७

२९ सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु ७।२।४

३०४ स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान् ७।३३।१२

६७१ सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षत ७।८३।३

३९१ समध्वरायोवसो नमन्त ७।४१।६; अथर्व० ३।१६।६; वा० सं० ३४।३९; तै० ब्रा० २।८।९।९

१३५ स मन्द्रया च जिह्वया ७।१६।९

२३ स मर्तो अग्ने स्वनीक ७।१।२३

९०३ समहमेषां राष्ट्रं स्यामि अथर्व० ३।१९।२

१०४ स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वान् ७।१२।२; सा० सं० २।६५५

६३१ समान ऊर्वे अधि संगतासः ७।७६।५

१०९ समिधा जातवेदसे ७।१४।१;३।२०।३

पुनरुक्ताः मन्त्राः ।

(सर्वत्र ऋग्वेदे सप्तममण्डलस्य वसिष्ठ ऋषिः)

७।१।१३ (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः)
पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात् **पाहि धूर्तेररुषो** अघायोः ।

१।३६।१५ (कण्वो घौरः । अग्निः)
पाहि नो अग्ने रक्षसः, पाहि धूर्तेरराव्णः ।

७।१।२० (अग्निः)
नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते **यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥**

७।१।२५ (सर्वः पुनरुक्तः । अग्निः)
७।१।२० (अग्निः)
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।
(एकोनाशीतिवारं पुनरुक्तः सप्तमे मंडले)

७।२।४— (इध्मः समिद्धोऽग्निः)
प्र वृञ्जते नमसा बर्हिरग्नौ ।

६।११।५—(बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । अग्निः)
वृञ्जे ह यन्नमसा ।

७।२।६— (इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा)
उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।

१।१८६।४— (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । विश्वेदेवाः)
उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।

७।२।८-११— (अग्निः)

आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः । सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥ तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व । यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति । सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥ आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः । बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥

३।४।८-११ (गाथिनो विश्वामित्रः) (८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळा भारत्यः, ९ त्वष्टा १० वनस्पतिः ११ स्वाहाकृतयः)
(तथैव समानाः)

७।२।११— (इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा)
इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।

३।४।११— (गाथिनो विश्वामित्रः । स्वाहाकृतयः)
इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।

५।११।२-- (सुतंभर आत्रेयः । अग्निः)
इन्द्रेण देवैः सरथं बर्हिषि ।

१०।१५।१०- (शंखो यामायनः । पितरः)
इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः ।

७।२।११- (इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा)
स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ।

३।४।११- (गाथिनो विश्वामित्रः । स्वाहाकृतयः)
स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ।

१०।७०।११— (सुमित्रो वाध्र्यश्वः । स्वाहाकृतयः)
स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ।

७।३।२— (अग्निः)
आदस्य वातो अनु वाति शोचिः ।

१।१४८।५— (दीर्घतमा औचथ्यः । अग्निः)
आदस्य वातो अनु वाति शोचिः ।

७।३।६— (अग्निः)
वि यद् **रुक्मो न रोचस उपाके ।**

४।१०।५— (वामदेवो गौतमः । अग्निः)
श्रिये **रुक्मो न रोचस उपाके ।**

७।३।१०— (अग्निः)

एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम। विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

७।४।१० — (अग्निः) (तथैव समानः)

७।६०।६ — (सूर्यः)

इमे मित्रो वरुणो दूळभासोऽचेतसं चिच्चितयन्ति दक्षैः। अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्तस्तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति ।

७।४।२— (अग्निः)

स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः । सं यो वना युवते शुचिदन् भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः ॥

१०।११५।२- (वार्ष्टिहव्य उपस्तुतः । अग्निः)

अग्निर्ह नाम धायि दन्नपस्तमः सं यो वना युवते भस्मना दता । अभि प्रमुरा जुह्वा स्वध्वर इनो न प्रोथमानो यवसे वृषा ॥

७।४।४- (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः)

अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि । स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ॥

१०।४५।७- (वत्सप्रिर्भालन्दनः । अग्निः)

उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि । इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥

७।४।७— (अग्निः)

नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।

४।४१।१०- (वामदेवो गौतमः । इन्द्रावरुणौ)

नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।

७।४।९— (अग्निः)

त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् । सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥

६।१५।१२- (बार्हस्पत्यो भरद्वाजो, वीतहव्य आंगिरसो वा । अग्निः) (तथैव समानः)

७।५।२— (वैश्वानरोऽग्निः)

पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां ।

१।९८।२- (कुत्स आंगिरसः । अग्निः, वैश्वानरोऽग्निर्वा)

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां ।

७।५।२-- (वैश्वानरोऽग्निः)

नेता सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।

६।४४।२१- (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)

वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।

७।५।४- (वैश्वानरोऽग्निः)

अजस्रेण शोचिषा शोशुचानः ।

६।४८।३- (शंयुर्बार्हस्पत्यः तृणपाणिः । अग्निः)

अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे ।

७।५।६- (वैश्वानरोऽग्निः)

उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय ।

१।११७।२१- (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । अश्विनौ)

उरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ।

७।५।७- (वैश्वानरोऽग्निः)

स जायमानः परमे व्योमन् ।

१।१४३।२— (दीर्घतमा औचथ्यः । अग्निः)

स जायमानः परमे व्योमन् ।

६।८।२— (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । अग्निः)

स जायमानः परमे व्योमनि ।

७।६।४- (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । वैश्वानरोऽग्निः)

यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचीश्चकार नृतमः शचीभिः । तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीषेऽनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ।

१०।७४।५- (गौरिवीतिः शाक्त्यः । इन्द्रः)

शचीव इन्द्रमवसे कृणुध्वमनानतं दमयन्तं पृतन्यून् । ऋभुक्षणं मघवानं सुवृक्तिं भर्ता यो वज्रं नर्यं पुरुक्षुः ॥

७।७।४— (अग्निः)

अग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।

४।६।५- (वामदेवो गौतमः (अग्निः)

अग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।

७।७।७— (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः)

नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् । इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

७।८।७- (अग्निः) (तथैव)

७।८।६- (अग्निः)

शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवाति ।

२।३८।११– (गृत्समद (आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः सविता)

शं यत् स्तोतृभ्य आपये भवाति ।

७।९।२– (अग्निः)

तिरस्तमो ददृशे राम्याणाम् ।

६।४८।६– (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)

तिरस्तमो ददृशे उर्म्यास्वा ।

७।१०।५— (अग्निः)

मन्द्रं होतारमुशिजो यविष्ठमग्निं विश इळते **अध्वरेषु ।**

स हि क्षपावाँ अभवद् रयीणामतन्द्रो दूतो यजथाय देवान् ।

१०।४६।४– (वत्सप्रिर्भालन्दनः । अग्निः)

मन्द्रं होतारमुशिजो नमोभिः प्राञ्चं यज्ञं नेतारमध्व-**राणाम् । विशामकृण्वन्**नरतिं पावकं हव्यवाहं दधतो मानुषेषु ॥

७।१०।५— (अग्निः)

स हि क्षपावाँ अभवद् **रयीणाम् ।**

१।७०।५– (पराशर शाक्त्यः । अग्निः)

स हि क्षपावाँ, अग्नी **रयीणाम् ।**

७।११।१– (अग्निः)

महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वदमृता मादयन्ते । आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैर्न्यग्ने होता प्रथमः सदेह ॥

१०।१०४।६– (अष्टको वैश्वामित्रः । इन्द्रः)

उप ब्रह्माणि हरिवो हरिभ्यां सोमस्य याहि पीतये सुतस्य । इन्द्र त्वा यज्ञः क्षममाणमानट् **दाश्वाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतः ॥**

७।११।२– (अग्निः)

त्वामीळते अजिरं **दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः ।**

१०।७०।३– (सुमित्रो वाध्र्यश्व । इळः)

शश्वत्तम**मीळते दूत्याय हविष्मन्तो मनुष्यासो** अग्निम् ।

७।११।४– (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः)

अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्याऽग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य । क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्ताऽथा **देवा दधिरे हव्यवाहम् ।**

१०।५२।३– (सौचीकोऽग्निः । विश्वे देवाः)

अयं यो होता किरु स यमस्य कमप्यूहे यत्समञ्जन्ति देवाः । अहरहर्जायते मासिमास्यथा **देवा दधिरे हव्यवाहम्** ।

७।१२।१– (अग्निः)

अग्निः प्रत्ने दृश आ जातवेदाः ।

६।१२।४– (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । अग्निः)

अग्निः प्रत्ने दृश आ जातवेदाः ।

७।१३।१– (वैश्वानरोऽग्निः)

आ रोदसी अपृणा जायमानः ।

३।६।२— (गाथिनो विश्वामित्रः । वैश्वानरोऽग्निः)

आ रोदसी अपृणा जायमानः ।

४।१८।२– (वामदेवो गौतमः । इन्द्रः, अदितिः)

आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।

१०।४५।६– (वत्सप्रिर्भालन्दनः । अग्निः)

आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।

७।१४।१– (अग्निः)

समिधा जातवेदसे ।

३।१०।३– (गाथिनो विश्वामित्रः । अग्निः)

समिधा जातवेदसे ।

७।१४।१— (अग्निः)

वयं ते अग्ने समिधा **विधेम ।**

५।४।७– (वसुश्रुत आत्रेयः । अग्निः)

वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम ।

४।४।१५ - (वामदेवो गौतमः । रक्षोहाग्निः)

अया ते अग्ने समिधा विधेम ।

७।१४।२– (अग्निः)

वयं देव हविषा भद्र शोचे ।

५।४।७– (**वसुश्रुत** आत्रेयः । अग्निः)

वयं हव्यैः पावक **भद्रशोचे ।**

७।१४।३– (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः अग्निः)

आ नो देवेभिरुप देवहूतिमग्ने याहि वषट्कृतिं जुषाणः । तुभ्यं देवाय दाशतः स्याम **यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥**

७।१७।७– (अग्निः)

ते ते **देवाय दाशतः स्याम** महो नो रत्ना विदध इयानः ।

७।१५।२– (अग्निः)

यः पञ्च चर्षणीरभि ।

९।१०१।९- (नहुषो मानवः । पवमानः सोमः)
यः पञ्च चर्षणीरभि ।
५।८६।२- (भौमोऽत्रिः । इन्द्राग्नी)
या पञ्चचर्षणीरभि ।

७।१५।२- (अग्निः)
कविर्गृहपतिर्युवा ।
१।१२।६- (मेधातिथिः काण्वः । अग्निः)
कविर्गृहपतिर्युवा ।
८।१०२।१- (भार्गवः प्रयोगः अग्निर्वार्हस्पत्यः, पावको वा, सहसः पुत्रौ गृहपति-यविष्ठौ तयोर्वान्यतरः । अग्निः)
कविर्गृहपतिर्युवा ।

७।१५।६- (अग्निः)
यजिष्ठो हव्यवाहनः ।
१।३६।१०- (कण्वो घौरः । अग्निः)
यजिष्ठं हव्यवाहन ।
१।४४।५- (प्रस्कण्वः काण्वः । अग्निः)
यजिष्ठं हव्यवाहन ।
८।१९।२१- (सोभरिः काण्वः । अग्निः)
यजिष्ठं हव्यवाहनम् ।

७।१५।८- (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अग्निः)
क्षप उस्रश्च दीदिहि **स्वग्नयस्त्वया** वयम् । **सुवीरस्त्वमस्मयुः** ॥
८।१९।७- (सोभरिः काण्वः । अग्निः)
स्वग्नयो वो अग्निभिः स्याम सूनो सहस ऊर्जापते । **सुवीरस्त्वमस्मयुः** ॥

७।१५।१०- (अग्निः)
अग्नी रक्षांसि सेधति ।
१।७९।१२- (गौतमो राहूगणः । अग्निः)
अग्नी रक्षांसि सेधति ।

७।१५।१०- (अग्निः)
शुचिः पावक ईड्यः ।
२।७।४- (सोमाहुतिर्भार्गवः । अग्निः)
शुचिः पावक वन्द्यः ।

७।१५।११- (अग्निः)
ईशानः सहसो यहः ।
१।७९।४- (गौतमो राहूगणः । अग्निः)
ईशानः सहसो यहः ।

७।१५।१३- (अग्निः)
अग्ने रक्षाणो अंहसः **प्रति** ष्म **देव रीषतः** । तपिष्ठैरजरो दह ॥
८।४४।११- (विरूप आंगिरसः । अग्निः)
अग्ने नि पाहि नस्त्वं प्रति ष्म **देव रीषतः** । भिन्धि द्वेषः सहस्कृत ॥

७।१५।१५- (अग्निः)
त्वं नः पाह्यंहसो दोषावस्तरघायतः । दिवा नक्तमदाभ्य ॥
६।१६।३०- (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । अग्निः)
त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो **अघायतः** । रक्षाणो ब्रह्मणस्कवे ॥

७।१६।१- (अग्निः)
एना वो **अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे । प्रियं चेतिष्ठमरतिं** स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥
१।१२८।८- (परुच्छेपो दैवोदासिः । अग्निः)
प्रियं चेतिष्ठमरतिं ।
८।४४।१३- (विरूप आंगिरसः । अग्निः)
ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावक शोचिषं । अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे ॥

७।१६।३- (अग्निः)
उदस्य शोचिरस्थादाजुह्वानस्य मीळ्हुषः । उद् धूमासो अरुषासो दिविस्पृशः समग्निमिन्धते नरः ॥
८।२३।४- (विश्वमना वैयश्वः । अग्निः)
उदस्य शोचिरस्थाद् दीदियुषो व्य१जरम् । तपुर्जम्भस्य सुद्युतो गणश्रियः ॥

७।१६।४- (अग्निः प्रगाथः)
देवाँ आ वीतये वह ।
५।२६।२- (वसूयव आत्रेयाः । अग्निः)
देवाँ आ वीतये वह ।

७।१६।६- (अग्निः प्रगाथः)
त्वं हि रत्नधा असि ।
१।१५।३- (मेधातिथिः काण्वः । त्वष्टा)
त्वं हि रत्नधा असि ।

७।१६।९– (अग्निः प्रगाथः)
वह्निरासा विदुष्टरः ।
६।१६।९– (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । अग्निः)
वह्निरासा विदुष्टरः ।

७।१६।१०– (अग्निः प्रगाथः)
शतं पूर्भिर्यविष्ठाय ।
६।४८।८ (शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिः) अग्निः)
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः ।

७।१६।११– (अग्निः प्रगाथः)
पूर्णा विवष्ट्यासिचम् ।
२।३७।१ (गृत्समद (आंगिरसः, शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । ऋतु देवताः)
अध्वर्यवः स **पूर्णां वष्ट्यासिचम् ।**

७।१६।१२– (अग्निः प्रगाथः)
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यं ।
४।१२।३– (वामदेवो गौतमः । अग्निः)
दधाति रत्नं विधते यविष्ठः ।
४।४४।४– (पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ । अश्विनौ)
दधथो **रत्नं विधते** जनाय ।

७।१७।३– (अग्निः)
स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ।
३।६।६– (गाथिनो विश्वामित्रः । अग्निः)
स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ।
६।१०।१– (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । अग्निः)
स्वध्वरा करति **जातवेदाः ।**

७।१७।४– (अग्निः)
स्वध्वरा करति **जातवेदाः ।**

७।१७।७– (अग्निः)
ते ते **देवाय दाशतः स्याम ।**

७।१४।३– (अग्निः)
तुभ्यं **देवाय दाशतः स्याम ।**

७।१८।१२– (इन्द्रः)
त्वा यन्तो **ये अमदन्ननु त्वा ।**
१।५२।१५– (सव्य आंगिरसः । इन्द्रः)
विश्वे देवासो **अमदन्ननु त्वा ।**
१।१०३।८– (कुत्स आंगिरसः । इन्द्रः)
विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।

७।१८।२०– (इन्द्रः)
अव त्मना बृहतः शम्बरं भेत् ।
१।५४।४– (सव्य आंगिरसः । इन्द्रः)
अव त्मना धृषता शम्बरं भिनत ।

७।१८।२५– (इन्द्रः)
इमं नरो मरुतः सश्चतानु ।
३।२६।२– (कात्य उत्कीलः । अग्निः)
इमं नरो मरुतः सश्चता वृधं ।

७।१९।४– (इन्द्रः)
भूरीणि **वृत्रा हर्यश्व हंसि ।**
७।२२।२– (इन्द्रः)
येन **वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।**

७।१९।४– (इन्द्रः)
अस्वापयो दभीतये सुहन्तु ।
४।३०।२१– (वामदेवो गौतमः । इन्द्रः)
अस्वापयद् दभीतये

७।१९।८– (इन्द्रः)
अतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ।
६।२६।३– बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्रः)
अतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ।

७।२०।३– (इन्द्रः)
युध्मो अनर्वा **खजकृत् समद्वा ।**
६।१८।२– (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्रः)
स **युध्मः** सत्वा **खजकृत् समद्वा ।**

७।२०।३– (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः)
युध्मो अनर्वा **खजकृत् समद्वा** शूरः सत्राषाड् जनुषेम-षाळ्हः । **व्यास इन्द्रः पृतनाः स्वोजा** अधा विश्वं शत्रूयन्तं जघान ॥
६।१८।२– (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्रः)
स **युध्मः** सत्वा **खजकृत् समद्वा ।**
१० २९।८– (ऐन्द्रो वसुक्रः । इन्द्रः)
व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥

७।२०।१०— (इन्द्रः)
स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

७।२१।१०— (इन्द्रः)
(तथैव समानः)

७।२१।३— (इन्द्रः)
परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
२।११।२— (गृत्समद (आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । इन्द्रः)
परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।

७।२१।४- (इन्द्रः)
अपांसि विश्वा **नर्याणि विद्वान् ।**
४।१६।६- (वामदेवो गौतमः । इन्द्रः)
विश्वानि शक्रो **नर्याणि विद्वान् ।**

७।२२।२- (इन्द्रः)
येन **वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।**
७।१९।४— (इन्द्रः)
भूरीणि **वृत्रा हर्यश्व हंसि ।**

७।२२।९- (इन्द्रः)
ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्रः ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः। **अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि** यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
१०।२३।७- (ऐन्द्रो विमदः प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । इन्द्रः)
माकिर्न एना सख्या वि यौषुस्तव चेन्द्र विमदस्य च ऋषेः । विद्मा हि ते प्रमतिं देव जामिव **दस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि ॥**

७।२३।३— (इन्द्रः)
इन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ।
६।४४।१४- (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
इन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान ।

७।२३।४- (इन्द्रः)
याहि वायुर्ननियुतो नो अच्छा ।
३।३५।१- (गाथिनो विश्वामित्रः । इन्द्रः)
याहि वायुर्ननियुतो नो अच्छा ।

७।२३।५- (इन्द्रः)
अस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ।
२।१८।७— (गृत्समद (आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । इन्द्रः)
अस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ।

७।२९।२- (इन्द्रः)
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्व ।

७।२३।६— (इन्द्रः)
एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ।
९।९७।४९— (कुत्स आंगिरसः । पवमानः सोमः)
अभीन्द्रं वृषणं वज्रबाहुम् ।

७।२३।६- (इन्द्रः)
वसिष्ठासो **अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।**
६।५०।१५- (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
भरद्वाजा **अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।**

७।२३।६— (इन्द्रः)
स नः स्तुतो वीरवद् धातु गोमद् ।
१।१९०।८- (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । बृहस्पतिः)
स नः स्तुतो वीर् धातु गोमद् ।

७।२४।१— (इन्द्रः)
योनिष्ट इन्द्र सदने **अकारि ।**
१।१०४।१- (कुत्स आंगिरसः । इन्द्रः)
योनिष्ट इन्द्र निषदे **अकारि ।**

७।२४।२- (इन्द्रः)
सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
१।१७७।३- (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)
सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।

७।२४।३- (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः)
आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्निदं बर्हिः सोमपेयाय याहि । वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्चमाङ्गूषमच्छा तवसं मदाय ॥
८।५९।४— (कृत्नुर्भार्गवः । सोमः)
त्वं चित्ती तव दक्षैर्दिव **आ पृथिव्या ऋजीषिन् ।** यावीरघस्य चिद् द्वेषः ॥

७।२४।४ — (इन्द्रः)

आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि। वरीवृजत् स्थविरेभिः सुशिप्राऽस्मे दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्र ॥

८।८।१— (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)

आ नो विश्वाभिरूतिभिराश्विना गच्छतं युवम्। दस्रा हिरण्यवर्त्तनी पिबतं सोम्यं मधु ॥

१।९२।१८— (गोतमो राहूगणः । अश्विनौ)

एह देवा मयोभुवा **दस्रा हिरण्यवर्तनी** ।

६।६०।१५— (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्राग्नी)

वीतं हव्यान्या गतं **पिबतं सोम्यं मधु** ।

५।७५।३- (अवस्युरात्रेयः । अश्विनौ)

अश्विना गच्छतं युवाम् ।

८।८।१८- (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)

आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत । राजन्तावध्वराणामश्विना यामहूतिषु ॥

१।४५।४- (प्रस्कण्वः काण्वः । अग्निः)

महिकेरव ऊतये **प्रियमेधा अहूषत । राजन्तमध्वराणामग्निं** शुक्रेण शोचिषा ॥

१।१।८ (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । अग्निः)

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् ।

८।८७।३- (कृष्ण आंगिरसो वासिष्ठो वा द्युम्नीकः। आश्विनौ)

आवां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत । ता वर्तिर्यातमुप वृक्तबर्हिषो जुष्टं यज्ञं दिविष्टिषु ॥

७।२४।६- (इन्द्रः)

एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वे विदाम । इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

७।२५।६- (इन्द्रः) (**तथैव समानः**)

७।२५।३- (इन्द्रः)

जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ।

४।२२।९- (वामदेवो गौतमः । इन्द्रः)

जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ।

७।२६।५- (इन्द्रः)

सहस्रिण उप नो माहि **वाजान्** ।

१।१६७।१- (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः)

सहस्रिण उप नो यन्तु **वाजाः** ।

७।२८।५- (इन्द्रः)

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद् ददन्नः । यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

७।२९।५— (इन्द्रः) (**तथैव समानः**)

७।३०।५-- (इन्द्रः) (**तथैव समानः**)

७।२९।१— (मैत्रा वरुणिर्वासिष्ठः । इन्द्रः)

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्त- दोकाः । **पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोर्ददो** मघानि- मघवन्नियानः ॥

३।५०।२- (गाथिनो विश्वामित्रः । इन्द्रः)

पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोः ।

९।८८।१- (उशना काव्यः । पवमानः सोमः)

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि । त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दुं मदाय युज्याय सोमम् ॥

७।२९।२- (इन्द्रः)

अर्वाचीनो **हरिभिर्याहि तूयम्** ।

३।४३।३— (गाथिनो विश्वामित्रः । इन्द्रः)

इन्द्र देव **हरिभिर्याहि तूयम्**

७।२९।२- (इन्द्रः)

अस्मिन्नू षु सवने मादयस्व ।

२।१८।७— (गृत्समद आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् भार्गवः शौनकः । इन्द्रः)

अस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ।

७।२३।५- (इन्द्रः)

अस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ।

७।२९।२- (इन्द्रः)

उप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ।

६।४०।४- (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्रः)

उप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ।

७।३०।४- (इन्द्रः)

वयं ते त इन्द्र ये च देव ।

५।३३।५- (प्रजापत्यः संवरणः । इन्द्रः)

वयं ते त इन्द्र ये च नरः ।

७।३१।४- (इन्द्रः)

वयमिन्द्र त्वायवः ।

३।४१।७— (गाथिनो विश्वामित्रः । इन्द्रः)
वयमिन्द्र त्वायवः ।
१०।१३३।६— (सुदाः पैजवनः । इन्द्रः)
वयमिन्द्र त्वायवः ।

७।३१।१२— (इन्द्रः)
इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥
८।१२।२२— (पर्वतः काण्वः । इन्द्रः)
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे देवासो दधिरे पुरः । **इन्द्रं वाणी-रनूषता समोजसे ॥**
३।३७।५— (गाथिनो विश्वामित्रः इन्द्रः)
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे ।

७।३२।२— (इन्द्रः)
इमे हि ते **ब्रह्मकृतः सुते सचा ।**
१०।५०।७— (वैकुण्ठ इन्द्रः । इन्द्रः)
एते विप्र **ब्रह्मकृतः** सुते सचा

७।३२।४— (इन्द्रः)
सोमासो दध्याशिरः।
१।५।५— (मधुच्छन्दा विश्वामित्रः । इन्द्रः)
सोमासो दध्याशिरः ।
१।१३७।२— (परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ)
सोमासो दध्याशिरः ।
५।५१।७— (स्वस्त्यात्रेयः । विश्वेदेवाः)
सोमासो दध्याशिरः ।
९।२२।३— (काश्यपोऽसितो देवलो वा । पवमानः सोमः)
सोमासो दध्याशिरः
९।६३।१५— (निध्रुविः काश्यपः । पवमानः सोमः)
सोमासो दध्याशिरः ।
९।१०१।१२— (मनुः सांवरणः । पवमानः सोमः)
सोमासो दध्याशिरः ।

७।३२।६—(मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः)
स वीरो अप्रतिष्कुत इन्द्रेण शूशुवे नृभिः ।
यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन् **त्सुनोत्या च धावति ॥**
८।३१।५— (मनुर्वैवस्वतः । दंपती)
या दंपती समनसा **सुनुत आ च धावतः ।**
देवासो नित्ययाशिरा ॥

७।३२।८— (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः)
सुनोता सोमपाव्ने **सोममिन्द्राय वज्रिणे ।**
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित् पृणन्नित् पृणते मयः ॥
९।३०।६— (बिन्दुरांगिरसः । पवमानः सोमः)
सुनोता मधुमत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
चारुं शर्धाय मत्सरम् ॥
९।५१।२— (उचथ्य आंगिरसः । पवमानः सोमः)
दिवः पीयूषमुत्तमं **सोममिन्द्राय वज्रिणे ।**
सुनोता मधुमत्तमम् ॥

७।३२।१०— (इन्द्रः)
गमत् **स गोमति व्रजे ।**
१।८६।३— (गोतमो राहूगणः । मरुतः)
स गन्ता गोमति व्रजे ।
८।४६।९- (वशोऽश्व्यः । इन्द्रः)
गमेम **गोमति व्रजे ।**

७।३२।११- (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रः)
गमद् वाजं वाजयन्निन्द्र मर्त्यो यस्य त्वमविता भुवः ।
अस्माकं बोध्यविता रथानामस्माकं शूर नृणाम् ॥
१०।१०३।४— (ऐन्द्रोऽप्रतिरथः । इन्द्रः)
बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा **जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥**

७।३२।२२- (इन्द्रः)
अभि त्वा शूर नोनुमः ।
८।२१।५— (सोभरिः काण्वः । इन्द्रः)
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ।

७।३२।२३- (इन्द्रः)
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो **न जातो न जनि-ष्यते ।**
१।८१।५- (गोतमो राहूगणः । इन्द्रः)
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन **न जातो न जनिष्यते**ऽति विश्वं ववक्षिथ ।

७।३२।२५— (इन्द्रः)
सुवेदा नो वसू कृधि ।
६।४८।१५- (शंयुर्बार्हस्पत्यः (तृणपाणिः) मरुतः)
सुवेदा नो वसू करत् ।

७।३२।२५— (इन्द्रः)
अस्माकं बोध्यविता महाधने ।
६।४६।४— (शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः)
अस्माकं बोध्यविता महाधने ।

७।३३।७— (वसिष्ठपुत्राः, इन्द्रो वा)
तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
७।१०१।१— (पर्जन्यः)
तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्राः ।

७।३३।९— (वसिष्ठपुत्राः, इन्द्रो वा)
यमेन ततं परिधिं वयन्तः ।
७।३३।१२— (वसिष्ठपुत्राः इन्द्रो वा)
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन् ।

७।३४।१७— (विश्वेदेवाः)
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धात् ।
५।४१।१६— (भौमोऽत्रिः । विश्वेदेवाः)
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धात् ।

७।३४।२२— (विश्वेदेवाः)
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु ।
५।४६।८— (प्रतिक्षत्र आत्रेयः । विश्वेदेवाः)
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु ।

७।३४।२५— (विश्वेदेवाः)
तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त । शर्मन् त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
१०।६६।९— (वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः)
द्यावापृथिवी जनयन्नभि व्रता ऽऽप ओषधीर्वनिनानि यज्ञिया । अन्तरिक्षं स्व१रा पप्रुरूतये वशं देवासस्तन्वी३ नि मामृजुः ॥

७।३५।१०— (विश्वे देवाः)
शं नो देवः सविता त्रायमाणः ।
६।५०।८— (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)
आ नो देवः सविता त्रायमाणः ।

७।३५।१४— (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः)
आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः । शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥
१०।५३।५— (देवाः, सौचीकोऽग्निः । अग्निः, देवाः)
पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः । पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान् ॥

७।३५।१५— (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः)
ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः । ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
१०।६५।१४— (वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः)
विश्वे देवाः सह धीभिः पुरंध्या मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः । रातिषाचो अभिषाचः स्वर्विदः स्व१र्गिरो ब्रह्म सूक्तं जुषेरत ॥
१०।६५।१५— (वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः)
देवान् वसिष्ठो अमृतान् ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः । ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

७।३६।२— (विश्वेदेवाः)
जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः ।
३।५९।१— (गाथिनो विश्वामित्रः । मित्रः)
मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणः ।

७।३७।५— (विश्वे देवाः)
सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद् याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः । ववन्मा नु ते युज्याभिरूती कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ॥
८।९७।१५— (रेभः काश्यपः । इन्द्रः)
तन्न ऋतमिन्द्र शूर चित्र पात्वपो न वज्रिन् दुरिताति पर्षि भूरि । कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः विश्वप्स्न्यस्य स्पृहयाय्यस्य राजन् ॥

७।३८।१— (सविता)
उदु ष्य देवः सविता ययाम ।
२।३८।१— (गृत्समद [आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्] भार्गवः शौनकः । सविता)
उदु ष्य देवः सविता सवाय ।
६।७१।१— (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । सविता)
उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया ।

६।७१।४ (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। सविता)
उदु ष्य देवः सविता दमूना।

७।३८।१- (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। सविता)
उदु ष्य देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामशि-श्रेत्। नूनं भगो हव्यो मानुषेभिर्वि यो रत्ना पुरूवसुर्दधाति॥

३।३८।८- (प्रजापतिर्विश्वामित्रः। इन्द्रः)
तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत्। आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे॥

७।३८।६- (सविता वा भगः)
अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः। भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम्॥

७।५२।३- (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। आदित्याः)
तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः। पिता च तन्नो महान् यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषन्त॥

७।३८।८- (वाजिनः)
तृष्णा यात पथिभिर्देवयानैः।

४।३७।१- (वामदेवो गौतमः। ऋभवः)
देवा यात पथिभिर्देवयानैः।

१।१८३।६- (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। अश्विनौ)
एह यातं पथिभिर्देवयानैः।

७।३९।४- (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। विश्वेदेवाः)
ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः। ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरंधिम्॥

१०।७७।८- (स्यूमरश्मिर्भार्गवः। मरुतः)
ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमा आदित्येन नाम्ना शंभविष्ठाः। ते नोऽवन्तु रथतूर्मनीषां महश्च यामन्नध्वरे चकानाः॥

७।३९।७- (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। विश्वेदेवाः)
नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः। यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

७।४०।७- (तत्रैव समानः) (विश्वेदेवाः)

७।६२।३- (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। सूर्यः मित्रावरुणौ)
वि नः सहस्रं शुरुधो रदन्त्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः। यच्छन्तु चन्द्रा उपमं अर्कं आ नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः॥

७।४०।१- (विश्वेदेवाः)
यदद्य देवः सविता सुवाति।

५।४२।३- (भौमोऽत्रिः। विश्वेदेवाः)
चन्द्राणि देवः सविता सुवाति।

७।४०।४- (विश्वे देवाः)
सुहवा देव्यदितिरनर्वा।

२।४०।६- (गृत्समद [आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्] भार्गवः शौनकः। सोमापूषणौ)
अवतु देव्यदितिरनर्वा।

७।४०।५- (विश्वेदेवाः)
विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः।

२।३४।११- (गृत्समद [आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्] भार्गवः शौनकः। अपां-न-पात्)
विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे।

७।४१।५- (अग्नीन्द्रमित्रावरुणाः)
तेन वयं भगवन्तः स्याम।

१।१६४।४०- (दीर्घतमा औचथ्यः। विश्वेदेवाः)
अथो वयं भगवन्तः स्याम।

७।४१।७- (उषसः)
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः। घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

७।८०।३- (उषसः)
(समानस्तथैव)

७।४२।१- (विश्वे देवाः)
प्र ब्रह्माणो अंगिरसो नक्षन्त।

७।५२।३- (आदित्याः)
तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त।

७।४२।३- (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। विश्वे देवाः)
समु वो यज्ञं महयन् नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके। यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः॥

७।६१।६- (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। मित्रावरुणौ)
समु वां यज्ञं महयं नमोभिर्हुवे वां मित्रावरुणा

सचाभुः । प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ॥

७।४२।५- (विश्वेदेवाः)
इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व ।
५।४।८- (वसुश्रुत आत्रेयः । अग्निः)
अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व ।
६।५२।१२- (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वेदेवाः)
इमं नो अग्ने अध्वरम् ।

७।४४।१- (दधिक्राः)
इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं ।
५।४६।३ (प्रतिक्षत्र आत्रेयः । विश्वे देवाः)
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिम् ।

७।४४।१- (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । दधिक्राः)
दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषसमग्निं समिद्धं भगमूतये हुवे । इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिमादित्यान् द्यावा-पृथिवी अपः स्वः ।
१०।३६।१- (लुशो धानाकः । विश्वेदेवाः)
उषासानक्ता बृहती सुपेशसा द्यावाक्षामा वरुणो मित्रो अर्यमा । इन्द्रं हुवे मरुतः पर्वतॉं अप आदित्यान् द्यावापृथिवी अपः स्वः ॥

७।४४।२- (दधिक्राः)
उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
४।३९।५- (वामदेवो गौतमः । दधिक्राः)
उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।

७।४४।५- (दधिक्राः)
ऋतस्य पन्थामन्वेतवा उ ।
१।२४।८- (आजीगर्तिः शुनःशेप स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः । वरुणः)
सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।

७।४५।१- (सविता)
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि ।
१।७२।१- (पराशरः शाक्त्यः । अग्निः)
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि ।

७।४५।३- (सविता)
मर्तभोजनमध रासते नः ।
[illegible] ([illegible])
[illegible]

७।४६।१- (रुद्रः)
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे ।
[illegible] ([illegible])
[illegible]

७।४६।४- (रुद्रः)
मा नो वधी रुद्र मा परा दाः ।
१।१०४।८- (कुत्सः आंगिरसः । इन्द्रः)
मा नो वधीरिन्द्र मा परा दाः ।

७।४७।३- (आपः)
देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः ।
३।८।९- (गाथिनो विश्वामित्रः । विश्वेदेवाः यूपाः)
देवा देवानामपि यन्ति पाथः ।

७।४७।३- (आपः)
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि ।
७।७६।५—
ते देवानां न मिनन्ति व्रतानि ।

७।४७।३- (आपः)
सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत ।
३।५९।१- (गाथिनो विश्वामित्रः । मित्रः)
मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ।

७।४९।१- (आपः)
ता आपो देवीरिह मामवन्तु ।
७।४९।४- (आपः)
ता आपो देवीरिह मामवन्तु ।

७।५०।१- (मित्रावरुणौ)
मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः ।
७।५०।२- (मित्रावरुणौ)
मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः ।

७।५२।२- (आदित्याः)
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत् कर्म वसवो यच्चयध्वे ।
६।५१।७- (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वेदेवाः)
मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत् कर्म वसवो यच्चयध्वे ।

७।५१।३- (आदित्याः)
तुरण्यवोऽङ्गिरसो **नक्षन्त** ।

७।४२।१- (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः)
प्र ब्रह्माणो **अंगिरसो नक्षन्त** ।

७।५१।३- (आदित्याः)
रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।

७।३८।६- (सविता भगो वा)
रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।

७।५३।१- (द्यावापृथिवी)
प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः ।

१।१५९।१- (दीर्घतमा औचथ्यः । द्यावापृथिवी । जगती)
प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा ।

७।५४।१- (वास्तोष्पतिः)
शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ।

१०।८५।४३- (सावित्री सूर्या ऋषिका । जगती)
शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ।

१०।८५।४४- (सावित्री सूर्या ऋषिका । जगती)
शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ।

६।७४।१- (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । सोमारुद्रौ
शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ।

७।५५।१- (मैत्रावरुणिर्वासिष्ठः । वास्तोष्पतिः)
अमीवहा वास्तोष्पते **विश्वा रूपाण्याविशन्** । सखा सुशेव एधिनः ॥

८।१५।१३- (गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । इन्द्रः)
अरं क्षयाय नो महे **विश्वारूपाण्याविशन्** । इन्द्रं जैत्राय हर्षया शचीपतिम् ॥

९।२५।४- (दृळ्हच्युत आगस्त्यः । पवमानः सोमः)
विश्वारूपाण्याविशन् पुनानो याति हर्यतः । यत्रामृतास आसते ॥

७।५५।२- (प्रस्वापिनी उपनिषत् ।
यदर्जुन सारमेय दतः पिशंगः यच्छसे । वीव भ्राजन्त ऋष्टय **उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप** ॥

८।७२।१५- (हर्यतः प्रागाथः । अग्निः)
उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि । इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥

७।५५।३- (वास्तोष्पतिः, इन्द्रः)
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान् दुच्छुनायसे नि षु स्वप ।

७।५५।४- (वास्तोष्पतिः, इन्द्रः)
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान् दुच्छुनायसे नि षु स्वप ।

७।५५।७- (वास्तोष्पतिः, इन्द्रः)
सहस्रशृंगो वृषभः ।

५।१।८- (बुधगविष्ठिरावात्रेयौ । अग्निः)
सहस्रशृंगो वृषभस्तदोजाः ।

७।५६।११- (मरुतः)
स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ।

५।८७।५- (एवयामरुदात्रेयः । मरुतः । अति जगती ।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः रथारश्मानो हिरण्ययाः **स्वायुधास इष्मिणः** ।

७।५६।२३- (मरुतः)
मरुद्भिरित् **सनिता वाजमर्वा** ।

६।३३।२- (शुनहोत्रो भरद्वाजः । इन्द्रः)
त्वोत **इत् सनिता वाजमर्वा** ।

७।५६।२५= ७।३४।२५- (मरुतः)=(विश्वेदेवाः, अहिर्बुध्न्यः)

७।५६।२५- (मरुतः)
आप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।

७।३४।२५- (मैत्रावरुणिर्वासिष्ठः । विश्वेदेवाः)
आप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।

१०।६६।९- (वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वेदेवाः)
आप ओषधीर्वनिनानि । यज्ञिया ।

७।५७।४- (मरुतः)
ऋधक् सा वो मरुतो दिद्युदस्तु **यद् व आगः पुरुषता कराम** । मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा **अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा** ॥

१०।१५।६- (शंखो यामायनः । पितरः)
आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे, मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो **यद्व आगः पुरुषता कराम** ॥

७।७०।५- (अश्विनौ)

शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्यभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम् ।
प्रति प्र यातं वरमा जनायाऽस्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥

७।५७।७- (मरुतः)

आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती ।

५।४३।१०- (भौमोऽत्रिः । विश्वेदेवाः)

विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती ।

१०।३५।१३- (लुशो धानाक । विश्वेदेवाः)

विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती ।

७।५८।३- (मरुतः)

बृहद् वयो मघवद्भ्यो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः ।
गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्र णः स्पार्हाभिरूति-
भिस्तिरेत ॥

७।८४।३- (इन्द्रः । वरुणः)

कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता ।
उपो रयिर्देवजूतो न एतु प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्ति-
रेतम् ॥

७।५८।६- (मरुतः)

आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत ।

६।४७।१३- (गर्गो भारद्वाजः इन्द्रः०)

आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।

१०।७७।६— (स्यूमरश्मिर्भार्गवः । मरुतः)

आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोत ।

१०।१३१।७— (सुकीर्तिः काक्षीवतः । इन्द्रः, अश्विनौ)

आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।

७।५९।२— (मरुतः)

युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिये ।

१।११०।७— (कुत्स आंगिरसः । ऋभवः)

युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिये ।

७।५९।२— (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः)

युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः । प्र
स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ॥

८।२७।१६— (मनुर्वैवस्वतः । विश्वेदेवाः)

प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय
दाशति । प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि अरिष्टः सर्व
एधते ॥

६।७०।३— (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । द्यावापृथिवी)

प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।

१।४१।२— (कण्वो घौरः । वरुणमित्रार्यमणः)

अरिष्टः सर्व एधते ।

७।६०।२— (सूर्यः, मित्रावरुणौ)

विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपाः ।

६।५०।७— (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः)

विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ।

१०।६३।८— (गयः प्लातः । विश्वेदेवाः)

विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।

७।६०।२— (सूर्यः, मित्रावरुणौ)

ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ।

४।१।१७— (वामदेवो गौतमः । अग्निः)

ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ।

६।५१।२— (ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वेदेवाः)

ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ।

७।६०।३— (सूर्यः, मित्रावरुणौ)

अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद् ।

१।११५।४— (कुत्स आंगिरसः । सूर्यः)

यदेदयुक्त हरितः सधस्थाद् ।

७।६०।३— (सूर्यः, मित्रावरुणौ)

सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ।

४।२।१८— (वामदेवो गौतमः । अग्निः)

आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद् देवानां यज्जनिमान्त्युग्र ।

७।६०।४— (मित्रावरुणौ)

उद् वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुः ।

४।४५।२— (वामदेवो गौतमः । अश्विनौ)

उद् वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते ।

७।६०।४— (मित्रावरुणौ)

आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।

५।४५।१०— (सदापृण आत्रेयः । विश्वेदेवाः)

आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।

७।६०।४— (मित्रावरुणौ)

मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।

१।१८६।२— (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । विश्वेदेवाः)

मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।

७।६०।५— (मित्रावरुणौ)
समासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ।
  २।२८।३— (कूर्मो गार्त्समदो । वरुणः)
  यूयं नः पुत्रा अदितेरदब्धा ।
७।६०।६— (मित्रावरुणौ)
अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्तः ।
  ७।३।१०— (अग्निः)
  अपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
  ७।४।१०— (अग्निः)
  अपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
७।६०।११— (मित्रावरुणौ)
वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।
  ४।१२।३— (वामदेवो गौतमः । अग्निः)
  अग्निर्वाजस्य परमस्य रायः ।
७।६०।११— (मित्रावरुणौ)
उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ।
  १।३६।८— (कण्वो घौरः । अग्निः)
  उरु क्षयाय चक्रिरे ।
७।६०।१२— (मित्रावरुणौ)
  इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि । विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।
७।६१।७— (मित्रावरुणौ)

(समानो मन्त्र)

७।६१।१— (मित्रावरुणौ)
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे ।
  १।१०८।१— (कुत्स आंगिरसः । इन्द्राग्नी)
  अभि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।
७।६१।४— (मित्रावरुणौ)
शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम ।
  १।१५२।४— (दीर्घतमा औचथ्यः । मित्रावरुणौ)
  प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ।
७।६१।६— (मित्रावरुणौ)
समु वां यज्ञं महयं नमोभिः ।
  ७।४२।३— (विश्वेदेवाः)
  समु वो यज्ञं महयन् नमोभिः ।
७।६१।७= ७।६०।१२ (मित्रावरुणौ)= (मित्रावरुणौ)
७।६२।१— (सूर्यः)
क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ।
  ७।१६।१— (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्रः)
  पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ।
७।६२।३— (सूर्यः)
ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः । यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कम् ॥
७।३९।७– (विश्वेदेवाः)
७।४०।७– (विश्वेदेवाः)

(तथैव समानः)

७।६२।४– (मित्रावरुणौ)
द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः ।
  ४।५५।१– (वामदेवो गौतमः । विश्वेदेवाः)
  द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः ।
७।६२।५– (मित्रावरुणौ)
श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ।
  १।१२२।६– (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । विश्वेदेवाः)
  श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ।
७।६२।६– (मित्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ)
  नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु । सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
७।६३।६– (मित्रावरुणौ अर्यमा च)

(तथैव समानः)

७।६३।४– (सूर्यः)
दूरे अर्थस्तरणिर्भ्राजमानः ।
  १०।८८।१६– (आंगिरसो मूर्धन्वान् वामदेव्यो वा । सूर्य वैश्वानरोऽग्निः)
  अप्रयुच्छन् तरणिर्भ्राजमानः ।
७।६३।५– (सूर्यमित्रावरुणाः)
यत्रा चक्रुरमृता गातुमस्मै श्येनो न दीयन्नन्वेति पाथः । प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः ॥

७।६१।१- (मित्रावरुणौ)
प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम् ।
ययोरसुर्य१मक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु ॥

७।६६।७— (आदित्याः)
प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं
रिशादसम् ॥

७।६३।५- (सूर्य-मित्रावरुणाः)
नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः ।

६।१।१०- (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । अग्निः ।)
नमोभिरग्ने समिधोत **हव्यैः** ।

७।६३।६- ७।६२।६ (मित्रावरुणौ अर्यमा च)-(मित्रावरुणौ)

७।६४।१- (मित्रावरुणौ)
राजा सुक्षत्रो **वरुणो जुषन्त** ।

२।२७।२- (कूर्मो गार्त्समदो वा । आदित्याः)
मित्रो अर्यमा **वरुणो जुषन्त** ।

७।६४।५- (मित्रावरुणौ)
एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि । अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।

७।६५।५- (मित्रावरुणौ)
(तथैव समानः)

७।६४।५- (मित्रावरुणौ)
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः ।

७।६५।५ (मित्रावरुणौ)
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः ।

४।५०।११- (वामदेवो गौतमः । इन्द्रा बृहस्पती)
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः ।

७।९७।९- (इन्द्रा ब्रह्मणस्पती)
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः ।

७।६५।१- (मित्रावरुणौ)
प्रति वां सूर उदिते सूक्तैः ।

७।६३।५- (सूर्य-मित्रावरुणाः)
प्रति वां सूर उदिते विधेम ।

७।६६।७- (आदित्याः)
प्रति वां सूर उदिते ।

७।६५।१- (मित्रावरुणौ)
मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम् ।

१।२।७- (मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । मित्रावरुणौ)
मित्रं हुवे पूतदक्षम् ।

७।६५।३- (मित्रावरुणौ)
आपो न नावा दुरिता तरेम ।

६।६८।८- (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्रावरुणौ)
आपो न नावा दुरिता तरेम ।

७।६५।४- (मित्रावरुणौ)
आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं **घृतैर्गव्यूतिमुक्षत-मिळाभिः** ।

३।६२।१६- (गाथिनो विश्वामित्रः ; जमदग्निर्वा । मित्रा-वरुणौ)
आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।

८।५।६- (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।

७।६५।४- (मित्रावरुणौ)
प्रति वामत्र **वरमा जनाय** ।

७।७०।५- (अश्विनौ)
प्रति प्र यातं **वरमा जनाय** ।

७।६५।५- ७।६४।५ (मित्रावरुणौ)=(मित्रावरुणौ)

७।६६।२- (मित्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ)
या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा । **असुर्याय प्रमहसा** ॥

८।२५।३- (विश्वमना वैयश्वः । मित्रावरुणौ)
ता माता विश्ववेदसा**ऽसुर्याय प्रमहसा** । मही जजाना-दितिर्ऋतावरी ॥

७।६६।४- (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मित्रावरुणौ, आदित्याः)
यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा सुवाति सविता भगः ।

८।२७।१९- (मनुर्वैवस्वतः । विश्वे देवाः)
यदद्य सूर्य उद्यति प्रियक्षत्रा ऋतं दध ।
यन्निम्रुचि प्रबुधि **विश्ववेदसो यद् वा मध्यंदिने** दिवः ॥

८।२७।२१- (मनुर्वैवस्वतः । विश्वेदेवाः)
यदद्य सूर उदिते यन्मध्यंदिन आतुचि ।
वामं धत्थ मनवे **विश्ववेदसो** जुह्वानाय प्रचेतसे ॥

७।६६।४- (आदित्याः)
सुवाति सविता भगः।

५।८२।३- (श्यावाश्व आत्रेयः । सविता)
सुवाति सविता भगः।

७।६६।६- (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। आदित्यः)
उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये। महो राजान ईशते॥

८।१२।१४- (पर्वतः काण्वः । इन्द्रः)
उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत्। पुरुप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत्॥

७।६६।७- (आदित्याः)
प्रति वां सूर उदिते।

७।६३।५- (सूर्य-मित्रावरुणाः
प्रति वां सूर उदिते विधेम।

७।६५।१- (मित्रावरुणौ)
प्रति वां सूर उदिते सूक्तैः।

७।६६।१०- (आदित्याः)
अग्निजिह्वा ऋतावृधः।

१।४४।१४- (प्रस्कण्वः काण्वः । अग्निः)
अग्निजिह्वा ऋतावृधः।

१०।६५।७- (वसुकर्णो वासुक्रः। विश्वेदेवाः)
दिवक्षसो **अग्निजिह्वा ऋतावृधः।**

७।६६।१२- (आदित्याः)
तद् वो अद्य मनामहे सूक्तैः सूर उदिते। यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा **यूयमृतस्य रथ्यः॥**

८।८३।३- (कुसीदो काण्वः। विश्वेदेवाः)
अति नो विष्पिता पुरु नौभिरपो न पर्षथ। **यूयमृतस्य रथ्यः॥**

७।६६।१६- (सूर्यः)
तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत्। पश्येम **शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्॥**

१०।८५।३९- (सावित्री सूर्या ऋषिका। सूर्या सावित्री)
पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा। दीर्घायुरस्या यः पति- **र्जीवाति शरदः शतम्॥**

७।६६।१९- (सूर्य-मित्रावरुणाः)
पातं सोममृतावृधा।

१।४७।३- (प्रस्कण्वः काण्वः। अश्विनौ)
पातं सोममृतावृधा।

१।४७।५- (प्रस्कण्वः काण्वः। अश्विनौ)
पातं सोममृतावृधा।

३।६२।१८- (गाथिनो विश्वामित्रः, जमदग्निर्वा। मित्रावरुणौ)
पातं सोममृतावृधा।

८।८७।५ -(कृष्ण आंगिरसो, वासिष्ठोवा द्युम्नीकः, प्रियमेधः। अश्विनौ)
पातं सोममृतावृधा।

७।६७।६- (अश्विनौ)
अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद् रेतो अह्रयं नो अस्तु। **आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम॥**

७।८४।५- (इन्द्रावरुणौ)
इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः **प्रावत् तोके तनये तूतुजाना। सुरत्नासो देववीतिं गमेम** यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

७।८५।५- (इन्द्रावरुणौ)
इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः **प्रावत् तोके तनये तूतुजाना। सुरत्नासो देववीतिं गमेम** यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

७।६७।१०- (अश्विनौ)
नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत्। धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

७।६९।८- (अश्विनौ)
(**तथैव समानः**)

७।६८।३- (अश्विनौ)
प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति।

६।६३।७- (बार्हस्पत्यो भारद्वाजः। अश्विनौ)
प्र वां रथो मनोजवा असर्जि।

७।६९।२- (अश्विनौ)
स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः। **विशो येन गच्छथो देवयन्तीः** कुत्रा चिद् याममश्विना दधाना॥

१०।४१।२– (सुहस्त्यो घौषेयः । अश्विनौ)
प्रातर्युजं नासत्याधि तिष्ठथः प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथम्।
विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद्यज्ञं होतृ-
मन्तमश्विना ॥

७।६९।६– (अश्विनौ)
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः ।
४।४४।५– (पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ । अश्विनौ)
मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः ।

७।६९।८=७।६७।१०–(अश्विनौ) = (अश्विनौ)

७।७०।५– (अश्विनौ)
प्रति प्र यातं वरमा जनाय ।
७।५५।४– (मित्रावरुणौ)
प्रति वामत्र वरमा जनाय ।

७।७०।७– (अश्विनौ)
इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् । इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
७।७१।६– (तथैव समानः) (अश्विनौ)
७।७३।३– (अश्विनौ)
अहेम यज्ञं पथामुराणा **इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।**
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ॥

७।७१।५– (अश्विनौ)
नि पेद्‌व ऊहथुराशुमश्वम् ।
१।११७।९– (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । अश्विनौ)
नि पेद्‌व ऊहथुराशुमश्वम् ।

७।७१।६=७।७०।७ (अश्विनौ) = (अश्विनौ)

७।७१।६– (अश्विनौ)
इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
७।७०।७ (अश्विनौ)
इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
७।७३।३– (अश्विनौ)
इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।

७।७२।४– (अश्विनौ)
प्र वां ब्रह्माणि कारवो **भरन्ते ।**
६।६७।१० (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । मित्रावरुणौ)
वि यद्वाचं कीस्तासो भरन्ते ।

७।७२।४– (अश्विनौ)
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेत् ।
४।६।२– (वामदेवो गौतमः । अग्निः)
ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेत् ।
४।१४।२– (वामदेवो गौतमः । अग्निः)
ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेत् ।
४।१३।२– (वामदेवो गौतमः । अग्निः)
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेत् ।

७।७२।५– (अश्विनौ)
आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधराद्‌दुक्तात् । आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥
७।७३।५– (अश्विनौ)
(तथैव समानः)

७।७३।१– (अश्विनौ)
अतारिष्म तमसस्पारमस्य ।
१।१८३।६– (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ)
अतारिष्म तमसस्पारमस्य ।
१।१८४।६– (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ)
अतारिष्म तमसस्पारमस्य ।

७।७३।३– (अश्विनौ)
इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
७।७०।७– (अश्विनौ)
इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
७।७१।६– (अश्विनौ)
इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।

७।७३।४– (अश्विनौ)
उप त्या वह्नी गमतो विशं नो रक्षोहणा संभृता वीळुपाणी।
समन्धांस्यग्मत मत्सराणि **मा नो मर्धिष्टमा गतं** शिवेन ॥
७।७४।३– (अश्विनौ)
आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू **मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥**

७।७३।५=७।७२।५ (अश्विनौ) = (अश्विनौ)

७।७४।२— (अश्विनौ)
अर्वाञ्चं रथं समनसा नि यच्छतं ।
१।९२।१६— (गोतमो राहूगणः । अश्विनौ)
अर्वाञ्चं समनसा नि यच्छतं ।
८।३५।२२— (श्यावाश्व आत्रेयः । अश्विनौ)
अर्वाग् रथं नि यच्छतं ।
७।७४।२— (अश्विनौ)
पिबतं सोम्यं मधु ।
६।६०।१५— (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्राग्नी)
पिबतं सोम्यं मधु ।
८।५।११— (ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ)
पिबतं सोम्यं मधु ।
८।८।१— (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)
पिबतं सोम्यं मधु ।
८।३५।१२— (श्यावाश्व आत्रेयः । अश्विनौ)
पिबतं सोम्यं मधु ।
८।२४।१३— (विश्वमना वैयश्वः । इन्द्रः)
पिबाति सोम्यं मधु ।
७।७४।३— (अश्विनौ)
मा नो मर्धिष्टमा गतं ।
७।७३।४— (अश्विनौ)
मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ।
७।७५।६— (उषसः)
दधाति रत्नं विधते जनाय ।
४।४४।६— (पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ । अश्विनौ)
दधथो रत्नं विधते जनाय ।
७।७५।७— (उषसः)
देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
४।५६।२— (वामदेवो गौतमः । द्यावापृथिवी)
देवी देवेभिर्यजते यजत्रैः ।
१०।१२।८— (आंगिर्हविर्धानः । अग्निः)
देवो देवेषु यजतो यजत्र ।
७।७६।५— (उषसः)
ते देवानां न मिनन्ति व्रतानि ।
७।४७।३— (आपः)
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि ।
७।७६।६— (उषसः)
उषः सुजाते प्रथमा जरस्व ।
१।१२३।५— (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । उषाः)
उषः सूनृते प्रथमा जरस्व ।
७।७७।४— (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । उषाः ।
अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः । यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ॥
९।७८।५— (कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः)
एतानि सोम पवमानो अस्मयुः सत्यानि कृण्वन् द्रविणान्यर्षसि । जहि शत्रुमन्तिके दूरके च य उर्वीं गव्यूतिमभयं च नस्कृधि ॥
७।७८।३— (उषसः)
एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन् पुरस्तात् ।
१।१९१।५— (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अप्तृणसूर्याः)
एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन् ।
७।७८।३— (उषसः)
एताः उत्या प्रत्यदृश्रन् पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातिः । अजीजनन् त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ॥
७।८०।२— (उषसः)
एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि । अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत् सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥
७।८०।३= ७।४१।७ (उषसः)= (अग्नीन्द्रमित्रावरुणाः)
७।८१।१— (उषसः)
प्रत्यु अदर्श्यायती ।
८।१०१।१३— (जमदग्निर्भार्गवः । प्रगाथः)
चित्रेव प्रत्यदर्श्यायती ।
७।८१।१— (उषसः)
ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
१।४८।८— (प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः)
ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
७।८१।६— (इन्द्रावरुणौ)
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः । चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः ॥

८।९३।११— (नारदः काण्वः। इन्द्रः)
इन्द्र शविष्ठ सत्पते रयिं गृणत्सु धारय। श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम् ॥
५।८६।६— (भौमोऽत्रिः। इन्द्राग्नी)
रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम्।
७।८१।६— (उषसः)
उषा उच्छदप स्रिधः।
१।४८।८— (प्रस्कण्वः काण्वः। उषाः)
उषा उच्छदप स्रिधः।
७।८२।१— (इन्द्रावरुणौ)
विशे जनाय महि शर्म यच्छतम्।
१।९३।८— (गोतमो राहूगणः। अग्नीषोमौ)
विशे जनाय महि शर्म यच्छतम्।
७।८२।७— (इन्द्रावरुणौ)
न तमंहो न दुरितानि मर्त्यम्।
२।२३।५— (गृत्समद भार्गवः शौनकः। बृहस्पतिः)
न तमंहो न दुरितं कुतश्चन।
७।८२।९— (इन्द्रावरुणौ)
नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु।
४।२४।३— (वामदेवो गौतमः। इन्द्रः)
नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ।
७।८२।१०— (मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। इन्द्रावरुणौ)
अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः। अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥
७।८३।१०— (तथैव समानः) (इन्द्रावरुणौ)
७।८४।१— (इन्द्रावरुणौ)
हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः।
४।४२।९— (त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः। त्रसदस्युः)
हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः।
१।१५३।१— (दीर्घतमा औचथ्यः। मित्रावरुणौ)
हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः।
७।८४।१— (इन्द्रावरुणौ)
परि त्मना विषुरूपा जिगाति।
५।१५।४— (धरुण आंगिरसः। अग्निः)
परि त्मना विषुरूपो जिगासि।

७।८४।२— (इन्द्रावरुणौ)
परि नो हेळो वरुणस्य वृज्याः।
२।३३।१४— (गृत्समद आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् भार्गवः शौनकः। रुद्रः)
परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः।
६।२८।७— (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। गावः)
परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः।
७।८४।३— (इन्द्रावरुणौ)
प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतम्।
७।५९।३— (मरुतः)
प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत।
७।८४।४— (इन्द्रावरुणौ)
रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम्।
४।३४।१०— (वामदेवो गौतमः। ऋभवः)
रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम्।
६।६८।७— (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। इन्द्रावरुणौ)
रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम्।
१।१५९।५— (दीर्घतमा औचथ्यः। द्यावापृथिवी)
रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम्।
४।४९।४— (वामदेवो गौतमः। इन्द्राबृहस्पती)
रयिं धत्तं शतग्विनम्।
७।८४।५— (इन्द्रावरुणौ)
इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत् तोके तनये तूतुजाना। सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥
७।८५।५— (तथैव समानः) (इन्द्रावरुणौ)
७।८४।५— (इन्द्रावरुणौ)
प्रावत् तोके तनये तूतुजानाः। सुरत्नासो देववीतिं गमेम।
७।८५।५— (समानः) (इन्द्रावरुणौ)
७।६७।६— (अश्विनौ)
आ वां तोके तनये तूतुजानाः। सुरत्नासो देववीतिं गमेम।
७।८६।१— (वरुणः)
धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी। प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥

९।१०१।१५- (वैश्वामित्रो वाच्यो वा प्रजापतिः । पवमानः सोमः)
स वीरो दक्षसाधनो **वि यस्तस्तम्भ रोदसी** ।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधान योनिमासदम् ॥

७।८७।३- (वरुणः)
प्रचेतसो य **इषयन्त मन्म** ।

१।७७।४- (गोतमो राहूगणः । अग्निः)
वाजप्रसूता **इषयन्त मन्म** ।

७।८९।१- (वरुणः)
मृळा सुक्षत्र मृळय ।

७।८९।४- (वरुणः)
मृळा सुक्षत्र मृळय ।

७।८९।५- (वरुणः)
यत् किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽ**भिद्रोहं मनुष्या३श्चरामसि** । अचित्ती यत् तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥

१०।१६४।४- (प्रचेता आंगिरसः । दुःस्वप्ननाशनम्)
यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽ**भिद्रोहं चरामसि** ।
प्रचेता न आंगिरसो द्विषतां पात्वंहसः ॥

७।९०।१- (वायुः)
वह वायो नियुतो याह्यच्छा ।

१।१३५।१- (परुच्छेपो दैवोदासिः । वायुः)
वह वायो नियुतो याह्यस्मयुः ।

७।९०।१- (वायुः)
पिबा सुतस्यान्धसो मदाय।

५।५१।५- (स्वस्त्यात्रेयः । इन्द्रवायू)
पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ।

७।९०।४- (वायुः)
गव्यं चिदूर्वम्**उशिजो वि वव्रुः** ।

४।१।१५- (वामदेवो गौतमः । अग्नीवरुणौ)
व्रजं गोमन्तम्**उशिजो वि वव्रुः** ।

७।९०।६- (वायुः ।)
ईशानासो ये दधते स्वर्णो **गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः** ।
इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुरर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः ॥

१०।१०८।७- (पणयोऽसुराः । सरमा देवता)
अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नो **गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्टः** ।
रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्थ ॥

७।९०।७- (वायुः)
अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः । वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

७।९१।७- (इन्द्रवायू)

(तथैव समानः)

७।९१।३ (वायुः)
विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ।

४।३४।९- (वामदेवो गौतमः)
विश्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ।

७।९१।४— (इन्द्रवायू)
यावत् तरस्तन्वो३यावदोजो ।

१।३३।१२— (हिरण्यस्तूप आंगिरसः । इन्द्रः)
यावत्तरो मघवन् **यावदोजो** ।

७।९१।७ = ७।९०।७ (इन्द्रवायू) = (इन्द्रवायू)

७।९२।५— (वायुः)
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।

१।१३५।३— (परुच्छेपो दैवोदासिः । वायुः)
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरूप याहि वितये ।

७।९२।५— (वायुः)
वायो **अस्मिन् त्सवने मादयस्व** ।

२।१८।७— (गृत्समद आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् भार्गवः शौनकः । इन्द्रः)
अस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ।

७।२३।५— (इन्द्रः)
अस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ।

७।२९।२— (इन्द्रः)
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्व ।

७।९३।१— (इन्द्राग्नी)
ता सानसी शवसाना **हि भूतं** ।

६।६८।२— (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्रावरुणौ)
शूराणां शविष्ठा **ता हि भूतं**

७।९३।६— (इन्द्राग्नी)
एन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।

१।१०८।४— (कुत्स आंगिरसः । इन्द्राग्नी)
एन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।
७।९३।७— (इन्द्राग्नी)
यत् सीमागश्चकृमा तत् सुमृळ ।
१।१७९।५— (अगस्त्यशिष्यो ब्रह्मचारी । रतिः ।
यत् सीमागश्चकृमा तत् सु मृळतु ।
७।९३।८– (इन्द्राग्नी)
मेन्द्रो नो विष्णुर्मरुतः परिख्यन् ।
१।१६२।१– (दीर्घतमा औचथ्यः । अश्वः)
मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परिख्यन् ।
७।९४।२— (इन्द्राग्नी)
इशाना पिप्यतं धियः ।
५।७१।२– (बाहुवृक्त आत्रेयः । मित्रावरुणौ)
इशाना पिप्यतं धियः ।
९।१९।२- (काश्यपोऽसितो देवलो वा । पवमानः सोमः)
ईशाना पिप्यतं धियः ।
७।९४।३– (इन्द्राग्नी)
मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये । मा नो रीरधतं निदे ।
८।८।१३– (सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ)
आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राधांस्यह्रया । कृतं न ऋत्वियावतो मा नो रीरधतं निदे ॥
७।९४।५– (इन्द्राग्नी)
ता हि शश्वन्त ईळते ।
५।१४।३ – (सुतंभर आत्रेयः । अग्निः)
तं हि शश्वन्त ईळते ।
७।९४।५– (इन्द्राग्नी)
ता हि शश्वन्त ईळत इत्था विप्रास ऊतये । सबाधो वाजसातये ॥
८।७४।१२– (गोपवन आत्रेयः । अग्निः)
यं त्वा जनास ईळते सबाधो वाजसातये । स बोधी वृत्रतूर्ये ॥
७।९४।६– (इन्द्राग्नी)
प्रयस्वन्तो हवामहे ।
५।२०।३- (प्रयस्वन्त आत्रेयाः । अग्निः)
प्रयस्वन्तो हवामहे ।
८।६५।६– (प्रगाथः काण्वः । इन्द्रः)
प्रयस्वन्तो हवामहे ।
७।९४।७– (इन्द्राग्नी)
अस्मभ्यं चर्षणीसहा ।
१।३५।१– (प्रभूवसुरांगिरसः । इन्द्रः)
अस्मभ्यं चर्षणीसहं ।
७।९४।७– (इन्द्राग्नी)
मा नो दुःशंस ईशत ।
१।२३।९– (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रो मरुत्वान् ।
मा नो दुःशंस ईशत ।
२।२३।१०— गृत्समद आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् भार्गवः शौनकः । बृहस्पतिः ॥
मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत ।
१०।२५।७– (ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । सोमः)
मा नो दुःशंस ईशता विवक्षसे ।
७।९४।८– (इन्द्राग्नी)
धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य ।
१।१८।३– मेधातिथि काण्वः । ब्रह्मणस्पतिः)
धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य ।
७।९४।८– (इन्द्राग्नी)
इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ।
१।२१।६– (मेधातिथिः काण्वः । इन्द्राग्नी)
इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ।
७।९५।४– (सरस्वती)
उत स्या न सरस्वती जुषाणः ।
६।६१।७– (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । सरस्वती)
उत स्या नः सरस्वती ।
७।९६।२– (सरस्वती)
चोद राधो मघोनाम् ।
१।४८।२— (प्रस्कण्वः काण्वः । उषाः)
चोद राधो मघोनाम् ।
७।९६।३— (सरस्वती)
गृणाना जमदग्निवत् ।
३।६२।१८— (गाथिनो विश्वामित्रः । मित्रावरुणौ)
गृणाना जमदग्निना ।
८।१०१।८— (जमदग्निर्भार्गवः । अश्विनौ)
गृणाना जमदग्निना ।
९।६२।२४— (जमदग्निर्भार्गवः । पवमानः सोमः)
गृणानो जमदग्निना ।

९।६५।२५- (भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा। पवमानः सोमः)
गृणानो जमदग्निना ।

७।९६।५— (सरस्वती)
तेभिर्नोऽविता भव ।

१।९१।९— (गोतमो राहूगणः । सोमः)
ताभिर्नोऽविता भव ।

१।८१।८— (गोतमो राहूगणः । इन्द्रः)
अथा **नोऽविता भव ।**

७।९६।६— (सरस्वती, सरस्वान्)
पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः ।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ।

९।८।९— (काश्यपोऽसितो देवलो वा । पवमानः सोमः)
नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् ।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ।

७।९७।१— (इन्द्रः)
नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।

१।१५४।५— (दीर्घतमा औचथ्यः । विष्णुः)
नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।

७।९७।९— (इन्द्राब्रह्मणस्पती)
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः ।

४।५०।११— (वामदेवो गौतमः । बृहस्पतिः इन्द्रः)
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः ।

७।६४।५— (मित्रावरुणौ)
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः ।

७।६५।५— (मित्रावरुणौ)
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीः ।

७।९७।९— (इन्द्राब्रह्मणस्पती)
जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ।

४।५०।११— (वामदेवो गौतमः । इन्द्राबृहस्पती)
जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ।

७।९७।१०— (इन्द्राबृहस्पती)
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य । धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

७।९८।१०— (तथैव समानः)

७।९७।१०- (इन्द्राबृहस्पती)
धत्तं रयिं **स्तुवते कीरये चिद् ।**

६।२३।३- (बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । इन्द्रः)
दाता वसु **स्तुवते कीरये चिद् ।**

७।९८।१— (इन्द्रः)
जुहोतन **वृषभाय क्षितीनाम् ।**

१०।१८७।१- (आग्नेयो वत्सः । अग्निः)
वृषभाय क्षितीनाम् ।

७।९८।३- (इन्द्रः)
युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ।

१।५९।५- (नोधा गौतमः । अग्निर्वैश्वानरः)
युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ।

७।९८।५— (इन्द्रः)
प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि **प्र नूतना मघवा या चकार ।**

५।३१।६— (अवस्युरात्रेयः । इन्द्रः)
प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं **प्र नूतना मघवन् या चकर्थ ।**

७।९८।१० = ७।९७।१० (इन्द्राबृहस्पती) = (इन्द्राबृहस्पती)

७।९९।४- (इन्द्राविष्णू)
उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ।

१।९३।६ — (गोतमो राहूगणः । अग्नीषोमौ)
उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ।

७।९९।७— (विष्णुः)
वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् । वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

७।१००।७ — (विष्णुः)
(तथैव समानः)

७।१००।७=७।९९।७ (विष्णुः)=(विष्णुः)

७।१०१।१ (पर्जन्यः)
तिस्रो वाचः प्र वद **ज्योतिरग्राः ।**

७।३३।७— (वसिष्ठपुत्राः, इन्द्रो वा)
तिस्रः प्रजा आर्या **ज्योतिरग्राः ।**

७।१०१।३— (पर्जन्यः)
यथावशं तन्वं चक्र एषः ।

३।४८।४— (गाथिनो विश्वामित्रः । इन्द्रः)
यथावशं तन्वं चक्र एषः ।

७।१०१।४—(मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः, कुमार आग्नेयो वा। पर्जन्यः)
यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुस्तिस्रो द्यावस्त्रेधा सस्रुरापः । त्रयः कोशास उपसेचनासो **मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥**

७।१०१।६— (पर्जन्यः)
स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम्।
३।५६।३— (प्रजापति वैश्वामित्रः,प्रजापतिर्वाच्यो वा विश्वेदेवाः)
स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम्।

७।१०१।६— (पर्जन्यः)
तस्मिन्नात्मा **जगतस्तस्थुषश्च।**
१।११५।१— (कुत्स आंगिरसः। सूर्यः)
सूर्य आत्मा **जगतस्तस्थुषश्च।**

७।१०३।१०— (मण्डूकाः [पर्जन्यः])
सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः।
३।५३।७— (गाथिनो विश्वामित्रः। इन्द्रः)
सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः।

७।१०४।१— (इन्द्रासोमौ)
इन्द्रासोमा तपतं **रक्ष उब्जतं।**
१।२१।५— (मेधातिथिः काण्वः। इन्द्राग्नी)
इन्द्राग्नी **रक्ष उब्जतम्।**

७।१०४।३— (इन्द्रासोमौ)
अनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम्।
१।१८२।६— (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। अश्विनौ)
अनारम्भणे तमसि प्रविद्धम्।

७।१०४।७— (इन्द्रासोमौ)
हतं द्रुहो रक्षसो भंगुरावतः।
१०।७६।४— (सर्प ऐरावतो जरत्कर्णः। ग्रावाणः)
अप **हत रक्षसो भंगुरावतः।**

७।१०४।७— (इन्द्रासोमौ)
इन्द्रासोमा **दुष्कृते मा सुगं भूत।**
१०।८६।५— (इन्द्रः; ऐन्द्रो वृषाकपिः; इन्द्राणी। इन्द्रः)
न सुगं दुष्कृते भुवम्।

७।१०४।१६— (इन्द्रासोमौ)
विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट।
५।३२।७— (गातुरात्रेयः। इन्द्रः)
विश्वस्य जन्तोरधमं चकार।

७।१०४।१९— (इन्द्रः)
प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि।
प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्तादभि जहि रक्षसः पर्वतेन॥
१०।८७।२१— (पायुर्भारद्वाजः रक्षोहाग्निः)
पश्चात् पुरस्तादधरादुदक्तात् कविः काव्येन परि पाहि राजन्। सखे सखायमजरो जरिम्णेऽग्ने मर्ता अमर्त्यस्त्वं नः॥

७।१०४।२०— (इन्द्रासोमौ)
नूनं सृज**दशनिं यातुमद्भ्यः।**
७।१०४।२५- (इन्द्रासोमौ)
अशनिं यातुमद्भ्यः।

७।१०४।२३— (पृथिव्यन्तरिक्षे)
मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावतामपोच्छतु मिथुना या किमीदिना।
पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान्॥
१०।५३।५— (देवाः, सौचीकोऽग्निः। अग्निः, देवाः)
पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां **गोजाता उत ये यज्ञियासः। पृथिवी नः पार्थिवात् पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात् पात्वस्मान्॥**
७।३५।१४ (विश्वेदेवाः)
गोजाता उत ये यज्ञियासः।

७।१०४।२४— (इन्द्रासोमौ)
मा ते दृशन् **त्सूर्यमुच्चरन्तम्।**
४।२५।४— (वामदेवो गौतमः। इन्द्रः)
ज्योक् पश्यात् **सूर्यमुच्चरन्तम्।**
६।५२।५— (ऋजिश्वा भारद्वाजः। विश्वेदेवाः)
पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्।
१०।५९।४— (बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः। निर्ऋतिः सोमश्च)
पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम्।
१०।५९।६—
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तम्।

धन्यवादाः

एते पुनरुक्ता मन्त्रा **श्री. मोरिस ब्लूमफील्ड**रचितात् '**ऋग्वेद पुनरुक्तमंत्रा**' इत्यस्मात् ग्रन्थात् **हार्वर्ड विश्वविद्यालय** प्रकाशिताद्धन्यवादपूर्वमुद्धृताः।